है ॥३४॥ अर शीतल गंगाका जल ताकरि निर्मल जो पहोपवृष्टि भंवरनिके समूहकरि शोभित सो जिनपतिके आगैं बरसती भई, विस्तारी है महासुगंध जानैं ॥ ३५ ॥ अर महासुंदर अशोकवृक्ष जाके मरकतमणिनिके हरितपत्र अर मणिमई अतिविचित्र पहोप अर पवनकरि हालती मनोहर शाखा तिनिकूं धारता भया ॥ ३६ ॥ सो वह अशोकवृक्ष मदोन्मत्त भंवर गुंजार करते अर कोयल बोलती तिनिके शब्दकरि मानूं वाचालित भया भगवानकी स्तुतिही करै है, शब्दकरि वाचालित करी हैं दशूं दिशा जानैं ॥ ३७ ॥ दीर्घ जे शाखा तेई भई भुजा तिनिकूं हलावता यह अशोकवृक्ष मानूं जिनेंद्रके आगैं नृत्यही करै है, फूलनिके समूहकरि मानूं जिनराजकूं प्रगट पुष्पांजलीही चढावै है। भावार्थ—वृक्षतैं फूल परै हैं सो आंजुलीहीका भाव भासै है ॥ ३८ ॥ वह अशोकवृक्ष आकाशचारीनिका मार्ग रोकता सोहै है, योजनके विस्तार शाखा तिनिकूं हलावता मानूं शोकरूप अंधकारकूं निवारै है ॥ ३९ ॥ सब दिशानिमें विस्तरि रहे हैं डाहले जाके तिनिकरि मानूं दिशानिकूं बुहारिवेकूं उद्यमी भई है बुद्धि जाकी अर फूलि रहे हैं महा प्रशस्त जपा पुष्पसमान आरक्त रत्नमई पुष्प जाके तिनिके समूहकरि मानूं वृक्ष वृषभदेवकी पूजाही करै है ॥ ४० ॥ वज्र कहिए हीरा तिनिका है देदीप्यमान जड जाकै अर महासुंदर रत्नमई हैं पेड जाकै अर पद्मरागमणिमई हैं आरक्त पुष्प जाकै अर कोयल बोलै हैं तिनिके शब्दकरि अतिसुंदर है ॥ ४१ ॥ अर उज्ज्वल छत्र तीन, क्रांतिकरि महामनोहर मानूं चंद्रमाही तीन रूप धारि जगतके पतिकी निश्चयकरि सेवा करै है ॥ ४२ ॥ ए छत्र तीन, उज्जल मोतीनिकी झालरीनिकरि कैसे सोहै हैं मानूं चंद्रमाका विंबही छत्रके आकारकूं धरता संता अपनी किरणनिके समूहकरि नक्षत्रानिसहित जगतगुरुकी सेवा करै है, इंद्रके वचनतैं कुवेर यह सब सामग्री रचता भया ॥ ४३ ॥ अमोलिक अनेक रत्न जे दिनपतिकी क्रांतिकूं हंसैं तिनिकरि जडित तीन छत्र अति सोहते भए अत्यंत उज्जल महाज्योतिरूप मानूं चांद सूर्यकूं मिलाय देवनि निरमापे हैं ॥ ४४ ॥ सत् समीचीन मोतिनिकूं धरै चंद्रमाकी द्युतिकूं हरै ऐसे महा-

मनोहर तीन छत्र अति देदीप्यमान हैं चंद्रकांतमणि अर वज्रमणि तिनिहूकी शोभाकूं जीतें ऐसे
उज्जल हैं आदिनाथकूं पायकरि परमक्रांतिकूं धरे हैं ॥ ४५ ॥ मानूं इह जगत्की लक्ष्मी हास्यरस विस्तारै
है अथवा प्रभुका उल्लासरूप यशगुण है अथवा धर्मरूप राजाका निर्मल स्वरूप है अथवा जगत्रयकूं
आनंदकारी अपूर्व चंद्रमा है ॥ ४६ ॥ या भांति लोकनिके समूहके चित्तविषैं वितर्क उपजावते वे छत्त्रय
महादेदीप्यमान क्रांतिकूं धरे सोहते भए मानूं मोहरूप वैरीके जीतिवेकरि उपार्ज्यों प्रभुने यश सोई त्रिधा-
रूप तिष्ठ्या है ॥ ४७ ॥ अर चंवरनिका समूह चहुं उर जिनेंद्रके ऊपरि ढरै है सो देवनिके हाथकरि ढरते
अति उज्ज्वल क्षीरसागरके जलकी लहरिसमान सोहै है ॥ ४८ ॥ इह चंवरनिकी पंक्ति भगवानरूप पर्व-
तके समीपकूं पायकरि ढरती गिरिके नीझरने समान सोहै है मानूं इह चंवरनिकी पंक्ति अमृतके खंडनि-
करि निर्मापी है अथवा चंद्रमाके अंशनिकरि घडी है, निर्मल है शोभा जाकी ॥ ४९ ॥ देवनिकरि लीला
सहित ढारी थकी वह चंवरनिकी पंक्ति अतिउज्ज्वल सोहती भई मानूं जिनेंद्रके सेयवेकूं देवगंगाही आई
है ऐसी लोकनिके मनमें तर्क उपजावती भई ॥ ५० ॥ वह चंवरनिकी पंक्ति शरदके मेघ समान उज्ज्वल
जिनराजपरि ढरती सो लोकनिके मनमैं ऐसी शंका विस्तारती भई मानूं इह चवरनिकी पंक्ति जिनराजके
अंगकी द्युतिही प्रगट भई है अथवा चंद्रमाकी किरणनिकी पंक्तिही पर है ॥ ५१ ॥ सो चंमरनिकी पंक्ति
अतिउल्लासरूप अमृतसमान उज्जल है अंग जाका महामनोहर सोहती भई मानूं पवनकी प्रेरी क्षीरसा-
गरके झागकी पंक्तिही उछलै है, कैसी है चंवरनिकी पंक्ति शोभाके समूहकूं धरै है ॥ ५२ ॥ वह चंद्रमा
समान अथवा अमृतसमान क्रांतिकूं धरे चंवरनिकी पंक्ति ढरती थकी परमशोभाकूं धरती भई मानूं
क्षीरोदधिकी लहरिही जिनराजके सेयवेकूं आई हैं ॥ ५३ ॥ वे श्वेतचमर चहुंउर ईश्वरपरि ढरते देवनि
ऐसे लखे मानूं आकाशमार्गतें हंसही पडै हैं अथवा प्रभुके यश ही विस्तरि रहे हैं ॥ ५४ ॥ कमलपत्र
समान सुंदर हैं नेत्र जिनिके महाप्रवीण ऐसे देव तिनिके करतैं लीलासहित चमरनिकी पंक्ति [illegible]

ढरै है अतिउज्जल सो मानूं पवनकरि दुग्धोदधिकी तरंगनिकी पंक्तिही उठै है ॥ ५५ ॥ जिनेंद्रकी भक्ति करि मानूं देवगंगाही चमरनिकी पंक्तिके मिसकरि आकाशतैं परै है सो चमरनिकी पंक्ति ढरती भले प्रकार सोहती भई भव्यजीवरूप कुमुद तिनिके प्रफुल्लित करिबेकूं मानूं चंद्रमाकी चांदिनी ही है ॥५६॥ ते चमर महाहर्षरूप प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनिके ऐसे यक्ष देव तिनिके करतैं ढरते चंद्रमासमान उज्ज्वल सोहते भए मानूं ए चमरनिके समूह जगन्नाथके गुणके समूहकी समानताही विस्तारै हैं ॥५७॥ वे चमर अप्रमाण ज्योतिकूं धरे लहलहाट करते अमृतकी राशिसमान उज्जल सोहै हैं मानूं जगतकी प्रभुताकरि प्रभुका अद्वितीय यश ताकी प्रशंसा ही करै हैं ॥ ५८ ॥ भगवान जिनेश्वर अनंत चतुष्टयरूप लक्ष्मीकरि आलिंगित है वक्षःस्थल जाका अर श्रीवृक्षके चिह्नकूं धरे तिनिके महामनोहर चमरनिकी गणना गणधरदेव चौसठि कहै हैं ॥५९॥ श्रीतीर्थंकर देवपरि तौ चौसठि चंवर ढरैं अनादितैं, अर चक्रवर्तिपरि बत्तीस, नारायणपरि सोला, मंडलीकपरि आठ, अर्द्धमंडलीकपरि च्यारि, महाराजापरि दोय, राजापरि एक ॥ ६० ॥ अर देवनिके दुंदुभि मधुरध्वनि करते भए आकाशमंडलविषैं सो तिनिका नाद सुनि उन्नत जे मयूर ते मेहके आगमकी शंकाकरि आकाशकी उर मेहका आगमन देखैं हैं ॥ ६१ ॥ पणवजातिके तुणवजातिके इत्यादि अनेक वादित्र तथा काहिल शंख ढोल इत्यादि अनेक भांतिके बाजेनिकी ध्वनि दिशानिमैं विस्तरी सो मानूं आकाशकूं वाचाल करती भई ॥ ६२ ॥ इह दंडकरि हते, देव वादित्र जिनि, सो तिनिके बजाए देवलोकके ढोल ध्वनि करते ऐसे सोहते भए मानूं बजावनहारेनिकूं कहै हैं—अहो निर्दयी हो! हमकूं काहेकूं ताडन करो हो? हम तो हमारी रीति माफिक बाजैही हैं, मानूं या भांति वे प्रगट बचन कहै हैं ॥६३॥ भगवानके देवदुंदुभि बजे हैं सो मानूं सुननहारेनिकूं ऐसी वितर्क उपजावै हैं जो इह मेहकी ध्वनि है कि समुद्र क्षोभकूं प्राप्त भया लहरनिकरि उछलै है ताकी गर्जना है? ऐसी तर्क सुरनर असुरनिकूं उपजावता देवदुंदुभीनिका नाद सो जयवंत होहु ॥ ६४ ॥ अर भगवानकी देहकरि उपजी ज्योति ताका मंडल सो समवसरणभूमिमैं

उद्योत करता सोहता भया; सुर असुर मनुष्यनिकरि भरी सभा सो देखिकरि विचारती भई, जो इह कहा अद्भुत है? ऐसा तेज जिनराजके भामंडलहीका होय ॥ ६५ ॥ तरुण सूर्यकी क्रांतिकूं मानूं आच्छादित करै है अर कोटिक देवनिकी ज्योतिकूं तिरस्कार करै ऐसा प्रभुकी देहका प्रभामंडल जगतकूं तेजोमय करता सोहै है ॥ ६६ ॥ भगवानके भामंडलरूप अमृतके पवित्र सागरविषैं देव दानव अर मानव देखते भए अपनें अपनें सात जन्म, सो देखिकरि पाया है अतिहर्ष जिन, इह भामंडल जगतका मंडल दर्पणही है जामैं जीव जन्मांतर देखै हैं ॥ ६७ ॥ शीघ्रही चंद्रमाकूं जगतपतिके तीन छत्ररूप हूवा देखिकरि देदीप्यमान है किरण जाकी ऐसा सूर्य सो मानूं पुराण पुरुषोत्तमकूं भामंडलका मिसकरि सेवता भया ॥ ६८ ॥ अर भगवानके मुखरूप कमलतैं मेघकी ध्वनिसमान दिव्यध्वनि निकसती संती भव्यनिके मनका मोहरूप अंधकार दूरकरती भई जैसैं सूर्य उदय होता रात्रिके तिमिरकूं हरै ॥ ६९ ॥ एक हू वह, सब मनुष्यनिकी भाषा अर ताकै अंतर (अंदर) तिर्यंचादिककी बहुत कुभाषा सो सब भाषारूप परिणमती अज्ञानरूप तिमिरकूं हरती वह जिनवाणी प्रभुके प्रभावकरि सबकूं प्रतिबोधै है, तत्त्वज्ञान उपजावै है ॥ ७० ॥ जैसैं जलका समूह एकरूप है परंतु वृक्षनिके भेदतैं नाना रसरूप होय है तैसैं पात्रनिके विशेषतैं इह सर्वज्ञकी ध्वनि बहुप्रकार होती भई ॥ ७१ ॥ बहुरि जैसैं फटिकमणि एकरूप है परंतु जो जो वस्तु वाके समीप आवै है तिनरूप फटिकमणि निर्मलताकरि होय है तैसैं वीतरागकी वाणी एकरूप है परंतु श्रोतानिके घटविषैं नाना भाषारूप होय परिणवै है, देव मनुष्य तिर्यंच सबही अपनी भाषामैं अर्थ समझैं हैं ॥ ७२ ॥ इह दिव्यध्वनि देवकृत आतिशय है ऐसा कहिए है सो सर्वथा ऐसैं मानें भगवानके गुणकी आच्छादना होय है, इह सब जिनेंद्रकाही अतिशय है प्रभुके प्रभावतैं सब आतिशय प्रगट भए हैं जैसैं जगतविषैं अक्षर बिना अर्थ न होय अक्षर है तौ अर्थ निपजै है तैसैं प्रभुके प्रभावतैं देव अतिशय प्रगट करै हैं ॥ ७३ ॥ इह अष्ट प्रातिहार्यनिकी शोभा कही, या भांति देवनिका राजा जगतके नाथकी भक्तिकरि

देवनिकरि करावता भया-समवसरणकी रचना, सो कैसी है—सुरपति नागपत्यादिकरि सेवनीक है ऐसे समवसरणविषैं विश्वका द्रष्टा श्रीपति विराजता भया ॥ ७४ ॥ वह भगवान श्रीऋषभदेव साक्षात सकल-वस्तुके स्वरूपका वेत्ता ज्ञानी जीवनिकरि वंदनीक हैं चरणा जाके सो जगतके प्रतिबोधिवे अर्थि हेमके सिंहासनपरि विराजता भया, कैसा है सिंहासन—जाकै च्यारूं पायनिकै रत्नमई सिंहरचे हैं जिनि सिंहनिका मुख उद्घाटित है ॥ ७५ ॥ सो समवसरणकी भूमिकूं देखिकरि तीन प्रदाक्षिणा देय हर्षित भया है मन जिनिका सो भक्तिकरि देवाधिदेवके देखिवेकूं सर्व देव सभामैं प्रवेश करते भए ॥ ७६ ॥ सो समवसरणकी भूमि धूलीसालकरि वेष्टित है मानूं निरंतर इंद्रधनुषहीकरि वेढी है अर आकाशकूं लागिरही ऐसी ध्वजा तिनिकरि मानूं समस्त आकाशकूं बुहारैही है ॥ ७७ ॥ अर जो समवसरणकी भूमि धूलिसालके आगैं आकाशकूं उलंघे ऐसे मानस्तंभनिकूं धारै है मानूं निर्मल ध्वजानिके अग्रभागकरि प्रभुकी सेवाके अर्थि स्वर्गलोकहीकूं बुलावै है ॥ ७८ ॥ अर मानस्तंभकै आगै शीतल निर्मलजलकी भरी सरोवरी सोहै है, फूलिरहे हैं कमलरूप नेत्राजिनिके सो मानूं ईश्वरके देखिवेकूं भलैप्रकार नेत्रनिकी पंक्तिही रची है, कैसे हैं ईश्वर—असुर कहिए रागद्वेषादिक अथवा असु कहिए प्राण तिनिकूं हरै ऐसा कालरूप असुर ताके अंतक कहिए नाश करणहारे हैं ॥ ७९ ॥ अर सरोवरीनिके आगैं खाई है तामैं जलके पंखी उच्चशब्द करिरहे हैं अर विस्तरी हैं लहरि तेई भए कर तिनिके समूहकरि वह खाई निर्मल नीरकी भरी मानूं इंद्रानिकूं जिनेंद्रकी सेवाकै अर्थिही बुलावै है ॥ ८० ॥ बहुरि खाईके आगैं, वह समवसरणकी भूमि वेलीनिके वनकूं धारै है जहां अनेक प्रकार वेलि अर वृक्ष हैं अर भंवर गुंजार करिरहे हैं अर जहां नानाप्रकारके फूल फूलि रहे हैं तिनिकी सुगंधता फैलिरही है ॥ ८१ ॥ अर लतावनकै आगै पहला सुवर्णमई कोट ताहि वह भूमि धारै है सो सुव-र्णका कोट मानूं जिनराजकी अद्भुत दीप्ति महासौम्य हिमऋतुके सूर्यसमान ताहि विनाही अक्षर प्रगट दिखावै है ॥ ८२ ॥ अर कोटके आगैं वह समवसरणकी भूमि दोय नाट्यशालानिकूं धारती सोहै है

नाट्यशालानिके मंडप शरदके बादरानिसमान उज्ज्वल शोभाकूं धरे जिनिमैं नृत्यकारिणी विजुरी समान चिमकै हैं मानूं जिनेंद्रके आराधिबेकूं भक्तिकरि विजुरी सहित शरदके बादरही आए हैं ॥ ८३ ॥ अर नृत्यशालाके आगैं वह समवसरणकी भूमि दोय दोय धूपके घट धारै है मानूं ए धूपघट भूमिरूप भामिनीके स्तनयुगलही हैं अथवा तीन जगतकी लक्ष्मीसहित श्रुतदेवताही आय जिनराजकी सेवाके अर्थि तिष्ठी हो। भावार्थ—इह समवसरणकी भूमि शारदासमान अर महालक्ष्मीसमान मनोहर है ॥ ८४ ॥ अर धूपघटनिके आगैं महारमणीक च्यारि वन अशोकादिक भंवरनिके समूहकरि सेवित तिनिकूं वह भूमि धारै है, वे वन महाकांतिरूप हैं मानूं इस समवसरण संपदारूप स्त्री वननिके मिसतैं नील वस्त्र धारिकरि सर्वज्ञकी सेवाकूं तिष्ठी है॥८५॥ अर इह संपदारूप स्त्री उपवननिके आगैं सरोवर तिनिके बिकसे कमल तिनिकरि देवांगनानिके मुखकी शोभाकूं धरै है। बहुरि वनवेदीके आगैं रत्ननिकरि देदीप्यमान जो वनकी भीति ताहि धारती भई जैसैं स्त्री कटिमेखलाकूं धारै ॥ ८६ ॥ बहुरि वनवेदीकै आगैं दशप्रकारकी ध्वजा तिनिकी रचनाकूं धारती वह भूमि सोहै है, ध्वजानिके वस्त्र आकाशमैं लगिरहे हैं तिनिकरि वेष्टित मानूं जिनमहिमाके स्थापिबेकूं आकाशकूं बुहारै है॥८७॥ बहुरि वह समवसरणकी भूमि ध्वजानिके आगैं दूजे कोटकूं धारै है सो वा कोटहूमैं नाट्यशाला अर धूपघट तिनिके आगैं वनवेदीसहित कल्पवृक्षनिका वन, जैसैं तारेनिकरि पूर्ण आकाश सोहै तैसैं पुष्पनिकरि पूर्ण कल्पवृक्षनिका वन सोहै है मानूं सुकृतका वन है ॥ ८८ ॥ अर कल्पवृक्षनिके वनकै आगैं वह समवसरणकी भूमि महादेदीप्यमान रत्नमई मंदिर अर मणिमई नवतूप तिनिकूं धारतीभई मानूं तीन भुवनके जीतिबेकूं धारी है इच्छा जानैं॥ ८९ ॥ बहुरि तीजा फटिकमणिमई कोट मनोहर है मूर्त्ति जाकी, फटिकमणिकी है भीति जाकै अर तलैं ऊपरि सर्वत्र फटिकमणिमई ताहि वह भूमि धरै है मानूं वह तीजा कोट अद्भुत लक्ष्मीका मंदिरही है ॥ ९० ॥ अथानंतर प्रतींद्र तथा सामानिक लोकपाल त्रायस्त्रिंशत इत्यादि देवनिमैं उत्कृष्ट जे देव तिनिकरि संयुक्त इंद्र

समवसरणमैं आया धूलीसाल आदि फटिकके कोटपर्यंत समवसरणकी भूमिकूं निरखता अति आनंदकूं प्राप्त भया अचिरजरूप भए हैं नेत्र जाके अर नष्ट कीया है मोहजिनि ऐसे जिनेंद्र तिनिके देखिबेकी है कामना जाके महाविभूतिकरि मंडित महेंद्र समवसरणमैं आया ॥ ९१ ॥ सो सिंहासनके ऊपरि तिष्ठते श्रीऋषभदेव, चहुंउर जिनिका दर्शन होय महाशोभाकूं धरैं सुरेंद्र नरेंद्रनिकरि वंदनीक, तिनिकूं देदीप्यमान सिंहासनके ऊपरि तिष्ठते देखता भया, कैसे हैं प्रभु—धर्मरूप सृष्टिके कर्त्ता अर पापानिके हर्त्ता, सबनिमैं मुख्य ॥ ९२ ॥ अर शरदका चंद्र ताकूं जीतैं मुखबिंब जिनिका अर शरदकी चांदिनीकूं जीतैं क्रांति जिनिकी महामनोहर अर नव प्रफुल्लित नीलकमल तिनितैं अधिक शोभाकूं धरैं नेत्र जिनिके महारमणीक मानूं नीलकमलकूं हंसे हैं ॥ ९३ ॥ प्रकाशरूप देदीप्यमान है अंग जिनिका सो तेजरूप जो भानुकाबिंब ताहि जीतै ऐसा ज्योतिका समुद्र ताविषैं मग्न उत्तुंग है काय जाकी देवनिकरि आराधिवे योग्य महासुमेरुसमान सुवर्णमई ॥ ९४ ॥ विस्तीर्ण है वक्षःस्थल जाका सो प्रभु अपनी लक्ष्मीकरि जगतपतिपना विनाही वचन प्रगट दिखावै है निराभरण वस्त्ररहित, अतींद्रियज्ञानका धारक, निवृत्त कीए हैं ज्ञानावरणादि कर्म जानैं ॥ ९५ ॥ सूर्यकी क्रांतितैं अधिक क्रांतिकूं धरे ऐसा भामंडल ताहि धारै हैं अर चमरनिके समूह इंद्रादिक देव ढारै हैं अर बाजे हैं दुंदुभिबाजे महारमणीक तिनिकरि दसूं दिशा पूरिरही हैं उठै हैं लहरि जाविषैं ऐसा गाजता समुद्र जैसा सोहै तैसा प्रभुका स्थानक चमरनिकरि अर दुदुंभी बाजेनिकरि सोहै ॥ ९६ ॥ कैसे हैं प्रभु—देवनिकरि करी जो पहुपवृष्टि ताकरि शोभित है स्थानक जिनिका अर महाअशोकवृक्षकूं आश्रय उत्तुंग है मूर्ति जिनिकी अर कल्पवृक्षनिके उद्यान तिनितैं परै हैं पुष्प तिनिकरि शोभित है स्थानक जिनिका अपनी ज्योतिकरि सुमेरुकूं जीतैं हैं ॥ ९७ ॥ विस्तारकूं धरे महाउज्ज्वल तीन छत्र देदीप्यमान अद्भुत मोतिनिकरि संयुक्त आकाशविषैं तिष्ठे तिनिकरि अपना माहात्म्य ऐश्वर्य अर उद्योतरूप यश प्रगट करते विराजै हैं सबनिके स्वामी हैं अर सबनिमैं आदि कहिए मुख्य हैं ॥ ९८ ॥

तिनिकूं इंद्र दूरितैं देखिकरि अपना शीस नमाय पृथ्वीमैं गोड लगाय नमस्कार करता भया अर मुकुटके अग्रभाग लागी माला तिनिकी पंक्तिकरि जिनेंद्रके चरणयुगल प्रगटपनैं पूजते भये ॥ ९९ ॥ अरहंतके प्रणामविषैं फूलि गए हैं नेत्र जिनिके ऐसे सबही इंद्र सोहते भए पवित्र हैं अर फूलि रहे हैं पुष्प जिनिके सो मानूं कुलाचल अपने कमलनिकरि मंडित जे सरोवर तिनिसहित सुमेरुकूं भजै है । भावार्थ—प्रभु तो सुमेरु भए अर इंद्र कुलाचल भये अर क्रांति जल भई अर तिनिके मुख कमल भए ॥ १०० ॥ बहुरि इंद्राणी शची समस्त देवांगना अपनें वर्गकी तिनिसहित जिनराजके चरणनिकूं प्रणाम करती भई अर अपनें मुखरूप लालकमल अर नेत्ररूप नीलकमल अर स्तुतिरूप पूर्णपुष्प तिनिकरि पूजती भई ॥१०१॥ भगवानके चरणकमल नखनिकी किरणनिके समूहकरि देवनिके मस्तककूं स्पर्शतैं संते उनके मस्तकविषैं प्रफुलित पुष्पनिकी माला सो मानूं अनुग्रहकरि अपनी पवित्र आसिका तिनिके सिरविषैं स्थापते भए ॥ १०२ ॥ ते इंद्रादिकदेव अतिभक्तितैं नमस्कारकरि जिनेंद्रके चरणारविंदकी क्रांतिकरि पवित्र करते अपना अपना मस्तक नखनिकी किरणनिका समूह सोई भया जल ताविषैं पाया है स्नान जिनि ॥ ३ ॥ अर शची अपसरानिसहित भक्तिकरि नम्रीभूत अपनें कुचनिके समीप लाग्या जो सहजसुंदर प्रभुके चरणनिके नखनिकी किरणनिका समूह ताहि वस्त्रसमान धारती भई, कैसा है नखनिकी किरणनिका समूह—मानूं मुक्तिरूप लक्ष्मीके हास्यका स्वरूप ही है ॥ १०४ ॥ नमस्कारकैं समैं देदीप्यमान हैं आभूषण जिनिके ऐसे इंद्र अपनी देवीनिसहित जिनराजकूं भक्तिकरि सेवते अति सोहते भये मानूं कल्पवेलिसहित कल्पवृक्षही सेवाकूं आये हैं ॥ ५ ॥ अथानंतर हर्षित भए इंद्र अपनें हाथकरि फल पुष्प दीप धूप मनोज्ञ अक्षत अर उत्कृष्ट अमृतके पिंड तिनिकरि जिनराजके चरणनिकी पूजा करते भए कैसा इंद्र पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध ॥६॥ श्रीऋषभदेवकी अंगरूप बेलिकरि शोभित जो भूमि ताविषैं इंद्रकरि चढाई जो पूजाकी सामग्री सो कैसी सोहती भई मानूं सामग्रीका मिसकरि समस्तही पवित्र द्रव्य प्रभुके चरणारविंदकी सेवाकूं बांछै हैं ॥७॥ इंद्राणी

रत्नके चूर्णकरि प्रभुकै आगें मंडल रचती भई सो मंडल देदीप्यमान किरणरूप अंकुरेनिकरि विचित्ररूप कैसा सोहै है मानूं इंद्रधनुषके सूक्ष्म चूर्णहीकरि रच्या है, कैसे हैं चूर्ण—कोमल सचिक्कण सूक्ष्म अनेक वर्णरूप हैं ॥८॥ बहुरि इंद्राणी जलधारा महापवित्र अपने परिणामनिसमान उज्जल देदीप्यमान रत्ननिकी झारीके नाटिकेकरि निकसती भक्तिकरि जिनराजके चरणनिके समीप ढारती भई मानूं अपनी अंतःकरणकी वृत्ति उत्तमजलरूप मनोहर सोही प्रभुकूं अर्पण करती भई ॥ ९ ॥ अर तासमैं देवलोकके उपजे, सुगंध करी हैं दसूं दिशा जिनि अर भ्रमै हैं भ्रमर जिनिपरि तिनिके शब्दकरि मनोहर ऐसे जे चंदन तिनिकरि जिनराजके चरण स्मरती संती भक्तिकरि इंद्राणी प्रभूका सिंहासन पूजती भई ॥ ११० ॥ बहुरि इंद्रानी मोतिनिके समूह अपनी चित्तकी उज्ज्वलतासमान उज्ज्वल क्रांति तिनिकरि अक्षतपूजा करती भई अर निर्मल मंदारजातिके कल्पवृक्ष तिनिके पुष्पनिकी मालानिकरि हर्षतैं प्रभुके पायनिकी पूजा करती भई ॥ ११ ॥ बहुरि रत्ननिके दीपनिकरि शची जिनरूप सूर्यकी पूजा करती भई, कैसे हैं वे दीपक—जिनराजके अंगकी ज्योतिके विस्तारकरि मंद भया है प्रकाश जिनिका अर कैसी है शची—भक्तिके आधीन है। जे भक्तिमैं लीन हैं ते तन मनकरि सेवा करै हैं, युक्त अयुक्त नांही जानै हैं ॥ १२ ॥ बहुरि शची प्रभुकै धूप खेवती भई अर महामनोहर विस्तीर्ण थालमैं धरिकरि अमृतपिंड समर्पण करती भई अर देदीप्यमान दीपक प्रकाशरूप तिनिकरि आरती करती भई सो मानूं तारानिसहित चंद्रमा राहुसंयुक्त जिनराजके चरणनिके समीप आया है। भावार्थ—अमृतपिंड तौ चंद्रमा भया अर दीपक तारा भए अर धूपका धूम राहु भई ॥ १३ ॥ बहुरि बहुत फल जिनिकी सुगंधता विस्तरि रही है अर गुंजार करते भँवर तिनिकरि मंडित सो मानूं हर्षकरि जिनराजकूं गायाही चाहै हैं सो इंद्राणी फलनिकरि प्रभुकूं पूजती भई ॥ ११४ ॥ या भांति भक्तिकरि देवनि अरहंतकूं पूजे। सो भगवान तौ कृतार्थ हैं तिनिके इनि वस्तुनिकरि कहा ? वे वीतराग रागद्वेषरहित, न काहूसूं प्रसन्न हौंहि न द्वेषरूप हौंहि तथापि अपने भक्तनिकूं फलनिसंयुक्त

करैं स्वर्गमोक्ष फल दैं ॥११५॥ अथानंतर इंद्र भलेप्रकार वाणीके स्वामी जिनराज तिनिकी स्तुति करिवेकी है इच्छा जाकै अर हर्षरूप है अंतरंग जाका सो इह वचनरूप पुष्पनिकी माला विचित्रवर्णकूं धरे सो अपने भक्तिरूप हाथनिकरि प्रभुकूं चढावता भया ॥ १६ ॥ इंद्र स्तुति करै है—हे ऋषिनिके नाथ ! हे गुण-रत्ननिके समुद्र हम तिहारी स्तुति करिबेकूं उद्यमी भए हैं, यद्यपि हम मंदबुद्धि अर मंदज्ञान हैं तथापि भक्तिके प्रसादतैं वाचाल भए हैं, हे देव तुमविषैं भक्ति है सोही मनवांछित फलकूं फलै है ॥ १७ ॥ तथापि हमारी बुद्धिकी शक्तिके अनुसार वचनविलास कीया है तुमविषैं हम भक्ति है सो यह भक्तिही विस्तारै हैं अर तिहारे गुण कहा गाय सकैं ? जैसैं अमृतके सागरका जल समस्त कोऊ पीयवे समर्थ नांही तथापि अपनी तृषाप्रमाण क्यों न पीवै ? पीवैही पीवै ॥ १८ ॥ हे देव ! कहां हम जडबुद्धि अर कहां तुम गुणानिके सागर अपार महा उत्कृष्ट ऐसा जानतेहू हम हे ईश ! तिहारे गुण वर्णन कीया चाहै हैं सो तिहारी भक्तिही हमकूं वाचाल करै है ॥१९॥ हे प्रभो तिहारे अगणित गुण गणधर देवनिहूंकरि न कहे जांहि सो हम कह्या चाहैं इह बडा अचिरज है अथवा तिहारे चरणारविंदके आश्रयतैं कहा न होय ? असमर्थहू समर्थ होय जाय॥२०॥ तातैं हे जिनराज तिहारे पूजिबेकी है इच्छा जिनिके ऐसे हम सो अब तुमविषैं प्रगट भई है भक्ति, ताकरि स्तुतिके मार्गविषैं उद्यमी भए हैं, कैसी है तिहारी भक्ति—अपार है गुणनिका उदय जाका ॥ १२१ ॥ हे प्रभो ! तुम विश्वके द्रष्टा हौ अर हे ईश्वर तुम विश्वके ज्ञाता हौ अर हे अनंतगुणनिके सागर तुम अविनाशी हो अर हे देव ! जगतका हितकारी है शासन तिहारा तातैं हे जिनचंद्र ! हमारी मंद-बुद्धीनिकी स्तुति अल्पही तिहारी भक्तिकी दाता होहु ॥ २२ ॥ हे जिनरवि ! तिहारे गुणरूप किरण समस्त कर्ममलकलंकतैं निर्वृत्त भए सोहै हैं जैसैं सूर्यकी देदीप्यमान किरण मेघपटलतैं बाहरि निकसी अत्यंत सोहै हैं ॥ २३ ॥ हे जिनेश्वर ! तुम अनंत निर्मलगुणरूप रत्नानिकूं धारो हौ जैसैं समुद्र अपने गंभीर जलकूं आश्रये प्रचुर दीप्तिकूं धरे जे निर्मल मणि तिनिकूं धारै है ॥ १२४ ॥

हे त्रैलोक्यके सूर्य ! इह संसाररूप बेलि अत्यंत विस्तरी महादुःखफलकी देनहारी जन्मजरा मरणरूप फूलनिकरि मंडित ताहि तुम अपने करनिकरि उपारते भये जैसैं सूर्य अपनी किरणानिकरि हरीबेलिकूं सुखाय निष्फलकरै तैसैं तुम संसारबेलिकूं निष्फल करी है ॥ १२५ ॥ हे जिनवर ! मोहकी सेनाके महामहंत अतिप्रबल च्यारि कषाय तिनिकूं तुम तीक्ष्णतपमई तीव्र खंग आदि शस्त्रनिकरि शीघ्र ही जीतते भए ॥ २६ ॥ हे नाथ ! कामरूप शत्रु महादुर्जय अर काहूतैं लख्या न जाय ताहि तुम वैराग्यमय तीक्ष्ण शस्त्रनिकी पंक्तिकरि रणभूमिविषैं मारते भए तातैं तुम तीनलोकविषैं बडे हो, जगत्रयके गुरु हौ ॥ २७ ॥ हे ईश ! तुम कामके जीतनहारे सो तिहारा महंतपनां महामनोज्ञ इह शरीरही प्रगट दिखावै है तिहारा शरीर बिकाररहित प्रशंसायोग्य निराभरण निर्विकार अर कटाक्षरहित नेत्र है ॥ २८ ॥ जाके हृदयविषैं काम निवास करै सो पुरुष प्रगटपनैं रागरूप रजबखेरै अर तुम कामके जीतनहारे सो विकार न होता भया । हे भवरहित ! तातैं तुम त्रिभुवनके एकही गुरु हौ ॥ २९ ॥ हे देवाधिदेव ! जो मदनके वश हैं सो निश्चयकरि नाचै गावै बजावै प्रलाप करै हंसै इत्यादि चेष्टा करै तुम मदनके मारणहारे जितेंद्रिय महाशांतरूप महासुखरूप सो तिहारा शरीरही तिहारी शांतताकूं प्रकाशै है ॥ ३० ॥ हे मानमत्सर रहित त्रिभुवनके ईश्वर ! तिहारा इह शरीर रागरूप रजरहित अर पापरूप पंकतैं निर्वृत्त सो तिहारा वीतरागपनां अर त्रैलोक्यनाथपनां कपट रहितपनां प्रगट प्रकाशै है ॥ ३१ ॥ हे गुणसमुद्र ! तिहारा शरीर सकल गुणानिके समूहकूं धरे वस्त्ररहित है तौऊ अतिरमणीक भासै है जैसैं अतिमनोज्ञ रत्ननिकी राशि महादिप्तिकूं धरै ताकै आभरण कहा सोहै तैसैं तुम महाज्योति रूप, तिहारै वस्त्र कहां ? ॥ ३२ ॥ हे दयालु ! तिहारा देह पसेवरहित, मलरहित, अतिसुगंध, महालक्षणानिकरि मंडित, क्षीरवर्ण, रुधिर, धातुरहित, तिमिरके समूहका दूर करणहारा, वज्रसमान दृढ, ॥ ३३ ॥ समचतुरस्रसंस्थानकूं धरे, अतुलवीर्य, हितमित वचनकरि युक्त, आंखिनिकी पलक न लागै ऐसा इह शरीर तिहारा दिव्यमणि समान देदीप्यमान ताहि तुम धरे हौ तातैं

तुम देवाधिदेवपदके धारक हौ ॥ ३४ ॥ इह तिहारा शरीर महाकामका उलंघनहारा सकल विकारवर्जित मोहमदरहित कनककांति सो तीन भुवनकूं उलंघै ऐसा बिभव ताहि प्रगट करै है, हे ईश! हे महाप्रभो !! तुमसे तुमही हौ ॥ ३५ ॥ हे भगवान ! तुमकूं पापनिके समूह न परसैं, अंधकार कहा सूर्यकूं पीडै कदाचि न पीडै, हे तिमिररहित ! तुम जगतपूज्य हौ, जगतके प्रकाशिबेविषैं देदीप्यमान दीपकहौ, अपने प्रबल तेज करि सबनिकूं प्रकाशोहो ॥ ३६ ॥ हे लोकेश्वर ! तिहारे गर्भावतरणविषैं रत्ननिकी धारा समस्त आकाशमैं व्याप्त होयकरि स्वर्गतैं भूमिमें परी सो मानूं या भुवनकुटीकै मध्य सृष्टिकूं संपतिमई ही करै है ॥ ३७ ॥ वह रत्ननिकी धारा ऐरावतकी सूंडिसमान दीर्घ सोहती भई सो मानूं या जगतकूं संबोधै है, ऐसी कहै है— हे जगतके जीव हौ जगज्जिनकूं भजौ, या भांति तिहारी लक्ष्मी मूर्त्तिवंती भई थकी प्राणीनिकूं प्रतिबोधती सोहै है ॥ ३८ ॥ अर तिहारी उत्पत्ति विषैं दवानिके करतैं भई जो पहोपवृष्टि सो अतिसुगंध मदोन्मत्त जे भंवर तिनिके मिष्ट शब्दकूं विस्तारती सोहती भई मानूं स्वर्गलोककी देवांगनानिके नेत्रनिकी पंक्तिही आई है ॥३९॥ सुमेरुके शिखरविषैं क्षीरसागरके निर्मल जलकरि पूर्ण जे कनकके कलश तिनिकरि तिहारा पवित्र जन्माभिषेक इंद्रनि कीया सो जगतविषैं तिहारा होणहार माहात्म्य ताहि प्रगट विस्तारता भया ॥ ४० ॥ अर तिहारे तपकल्याणकविषैं रत्नमई पालिकी ताके चलायबेकूं उद्यमी भए हम, सो या बातका अचिरज नांही, हे जिनराज ! ए सब देव गर्भतैं आदि लेय निर्वाणपर्यंत पांचू कल्याणक विषैं रावरे (आपके) किंकर हैं ॥ ४१ ॥ हे प्रभो ! महा देदीप्यमान केवलज्ञानरूप सूर्यके उदय होतैं तुम विश्वके उपदेष्टा हौ अर तीन भुवनके पति हौ, हे देव ! जन्म जरा मरणतैं रहित गुणकी निधि लोकविषैं अग्रेश्वर तुम सो तिहारै तांई हमारा नमस्कार होहु ॥ ४२ ॥ हे जिनेश्वर ! तुम या जगतकूं अब संसार समुद्रमें पतनतैं रक्षा करहु, तुमकूं ध्याये संतैं प्राणी अविनश्वर सुखकूं प्राप्त होय हैं, तुम जगतके मित्र हौ जगतगुरु हौ अर तुमही सबनिके पति हौ अर तुम धर्मके कर्त्ता हौ अर तुम तीन भुवनके

४४१

पितामह हौ ॥ ४३ ॥ हे जिनराज ! या लोकविषैं ए योगीश्वर परमसुखके परमस्थानक जो परमपद ताहि प्राप्त हूवा चाहै हैं सो ए सुबुद्धी संसारसागर तिरिबेके अर्थि तिहारा उपदेश्या जो सार आगम ताके अक्षर तिनिका निरंतर अभ्यास करै हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! तिहारा उपदेश्या पंथ ताविषैं जे भव्य जीव हैं तेही रुचि धारै हैं, तिहारे मार्गकूं पाय परम आनंदकूं प्राप्त भए हैं, तेही ध्यानरूप अग्निकी ज्वालाकरि संसाररूप वेलि जो अतिविस्तरि रही ताहि अत्यर्थपणैं भस्म करै हैं॥ ४५ ॥ हे नाथ ! तिहारे ए चंवरनिकी पंक्ति चंद्रमाकी किरणनिके समूहसमान उज्ज्वल ढरै हैं जैसैं पवनके योगतैं क्षीरसागरकी लहरि उठती सोहैं तैसी सोहै हैं सो मानूं जीवनिकूं ऐसी जनावै हैं जो कोऊ प्रभुकूं नम्रीभूत होय सो संसारके वंधनतैं छूटै ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! तिहारा सिंहासन अपनी क्रांतिकूं धरे सूर्यकी क्रांतिकूं आच्छादता सोहै है, अतिविस्तीर्ण है अर उत्तुंग है, मणिनिकरि मंडित देवनिकरि सेव्य जो सुमेरुका शिखर ताहि अपनी महिमाकरि जीतै है ॥ ४७ ॥ अर हे संसारके तारक ! ए तीन छत्र सुरशिल्पीनि निरमापे शरदके चंद्रमासमान उज्ज्वल सो तेरा त्रैलोक्यनाथपना प्रगट करै हैं, कैसा है तू—सबनिकरि पूज्य है प्रताप जाका अर मोक्षमार्गका दिखावनहारा है ॥ ४८ ॥ अर अशोकवृक्ष मरकतमणिसमान मनोज्ञस्कंध जाका सो अपनी मनोज्ञक्रांतिकूं धरे महारमणीक है अर पवनकरि हालती जे शाखारूप बाहु तिनिकरि मानूं नृत्य ही विस्तारै है, महाध्वनिकरै है भंवरनिकी पंक्ति जापरि । भावार्थ—जहां नृत्य होय तहां गानहू होय सो शाखा नृत्य करै हैं अर भंवर गान करै हैं ॥ ४९ ॥ हे देव ! तिहारे अशोकवृक्ष सोहै है दूरि कीया है प्राणीनिका शोक जानैं महाशोभायमान, पुष्पनिकरि पूर्ण, देव दानव मानव मुनिनिकरि प्रशंसायोग्य, मंदपवनकरि हालै हैं शाख जाकी, छायाकरि मंडित, भव्यनिकूं योग्य आश्रय मानूं तुम सारिखा ही सोहै है ! तुमहू छायाकारी आश्रय योग्य अर वहहू छायाकारी आश्रय योग्य है ॥ ५० ॥ अर देव आकाशविषैं व्याप्त पुष्पनिकी वृष्टि भंवरनिके मिष्टशब्दनिकरि युक्त तिहारे समीप दुंदुभीवाजेनिके गंभीर

महारमणीक नाद तिनिसहित देव गाजते वर्षते मेघनिकूं जीतिकरि उर्ध्वलोकतैं करते भये ॥ ५१ ॥ हे देव ! तिहारे देवदुंदुभीनिके समूह शब्दनिकरि वर्षाकालका संशयकरि मयूर उन्मत्त भए मधुरध्वनि करै हैं, कैसा है वर्षाकाल—मेघपटलकी कारी घटानिकरि रोक्या है आकाश जानैं अर कैसे हैं मयूर—रचे हैं मनोज्ञ पांखनिके छत्र जिनि अर मदकरि मंद मंद है गमन जिनिका ॥ ५२ ॥ हे जिनेश्वर ! तिहारे विस्तरि रही देहकी क्रांति सोई भया सरोवर ताविषैं इह चमरनिकी पंक्ति हंसकीसी शोभाकूं धारै है, चमरनिकी पंक्ति महामनोहर है अर मणिमई मुकुट सिरपरि धरे महाक्रांतिके धारक जे देव तिनिके करनिकरि ढारिए हैं ॥ ५३ ॥ अर तिहारे दिव्यवचन समस्त पदार्थ हैं गर्भमें जिनिके सो समस्त भाषानिकूं दिखावै हैं । भावार्थ—सबनिकी भाषारूप तिहारी बाणी परणवै है । अर विवेकीनिकूं शीघ्रही तत्वका ज्ञान करै है स्याद्वादनयकरि हरया है एकांतरूप अंधकार जानै ॥ ५४ ॥ हे नाथ ! तिहारा प्ररूप्या शास्त्र संसारसमुद्र तिरनेका मार्ग है तिहारी बाणी भयी इह निर्मलजल सोही समस्त मनका मैल पखारै है, भव्य जीवनिके इहही तीर्थ है, संसारसागरतें पार करै है ॥ ५५ ॥ तुम सर्वगत सकल वस्तुविषैं प्राप्त भया है ज्ञान जिनिका, तुम सर्वज्ञ समस्त पदार्थनिके समूहके वेत्ता, अर तुम सर्वके जीतनहारे जीते हैं काम क्रोध लोभ मोहादि शत्रु जिनि, तुम सर्वदर्शी सर्व भावके द्रष्टा अंतर्यामी हौ ॥५६॥ तुम तीर्थकर्त्ता, सकल पापरूप मलके हर्त्ता सत् समीचीन जो धर्मतीर्थ ताकरि निर्मल करनेकूं तत्पर अर मंत्रके करणहारे पुण्यके समूह श्रेष्ठ मंत्रविधानविषैं प्रवीण हौ ॥ ५७ ॥ तुमहीकूं परम पुरुष मानै हैं महामुनि अर तुमहीकूं अच्युत कहिए अविनश्वर कहै हैं, तुम ऋषीश्वर अविनाशी ऋद्धिके धारक हौ, तातैं हे भवतारक ! अचिंत्ययोगके धारक ! परम योगीश्वर ! जगतकरि आराधिवेयोग्य तुम तिनिकूं हम आराधै हैं ॥ ५८ ॥ हे सकल पापरूप मलके दूर करणहारे ! तुमकूं हमारा नमस्कार अर प्रगट भया है केवलमय निर्मलनेत्र जिनिकै ऐसे तुम तिनिकूं हमारा नमस्कार अर कर्मकलंकरूप सांकलके काटनहारे अर संसाररूप आगलके तोरनहारे

जिनकुंजर तुमकूं हमारा नमस्कार ॥ ५९ ॥ अर तीन भुवनके पितामह ! तुमकूं हमारा नमस्कार, हे परम निर्वाणके कारण ! तुमकूं हमारा नमस्कार अर हे गुणके समूहकरि गरुवे ! गुरुनिके गुरु ! तुमकूं हमारा नमस्कार, हे जगत्रयके अंतर्यामी त्रिकालके वेत्ता ! तुमकूं हमारा नमस्कार ॥ ६० ॥ हे देव ! हम अति अनुरागतैं ऐसा भाव धरि संक्षेपरूप विचित्रवर्णकूं धरै ऐसी इह स्तुति करी जो प्रभु हमकूं तत्त्वज्ञानका उपदेश करैंगे सो हे परमेश्वर ! तुम कृपाकरि हमकरि चरणनिविषैं चढाई सुंदरमालाकी नांई इह स्तुति करी ताकरि हमपरि अनुग्रह करौ, भवसागरके तिरवेका मूल जो अध्यात्मविद्या ताका उपदेश करहु, कैसी है स्तुतिरूप माला—भक्तिकरि पवित्र है ॥ ६१ ॥ हे जिनपति ! हम तुमकूं पूजै हैं, सुमरै हैं, हाथ जोरि नमस्कार करै हैं, तिहारी स्तुतिकरि उपार्ज्या महापुण्य ताकरि तुमविषैं हमारी निर्मल भक्ति होहु ॥ ६२ ॥ या भांति सुर असुर नाग यक्ष गंधर्व वा चारणमुनि अर उत्कृष्टज्ञानके धारक देवनिमैं श्रेष्ठ जे वत्तीस इंद्र नम्रीभूत हैं मुकुट जिनिके ते समस्त स्तुतिके सैकरानिकरि ऋषभदेवकी स्तुति करते भये। तिनिमैं व्यंतरदेवनिके भेद आठ तिनिके इंद्र प्रतींद्र बत्तीस जिनिमैं उत्कृष्ट आठ अर भवनवासीनिके दश भेद [ति]निके इंद्र प्रतींद्र चालीस तिनिमैं उत्कृष्ट दश अर स्वर्गलोकके इंद्र अर प्रतींद्र चौईस हैं तिनिमैं इंद्र बारा उत्कृष्ट अर चंद्र सूर्य ए दोय, एवं बत्तीस ॥ ६३ ॥ या भांति धर्म है प्रिय जिनिकूं ऐसे सुरपति सो नम्रीभूत हैं मुकुट जिनिके ऐसे देव तिनिसहित भक्तितैं जिनपतिकी स्तुतिकरि चौगिरद यथायोग्य समवसरणभूमिविषैं भगवानकै सन्मुख है मुख जिनिका या प्रकार तिष्ठे, कैसा है जिनपति—कर्मशत्रुनिका जीतनहारा अजर अजन्मा जगतका एक वंधु सबनिका शिरोमणि है ॥ ६४ ॥ जगतके जीतनहारे जिन तिनिका देह कनकसमान निर्मल ताविषैं परी है दृष्टि जिनिकी ऐसे देव ते अत्यंत सोहते भए जैसैं पुष्पनिके मकरंदके पानविषैं है तृषा जिनिकी ऐसे उन्मत्त भ्रमरनिके समूह कल्पवृक्षपरि परते सोहैं तैसैं देवनिकी दृष्टिका पात जिनराजकी देहविषैं सोहता भया ॥ ६५ ॥ कैसा है जिनराज गजराजकी सूंडि-

समान है महाभुजा जिनिकी अर चंद्रमासमान है मुख जिनिका अर कुंचित कहिए वक्र अर घटे बढे नाही ऐसे हैं शिरके केश जिनिके अर सुमेरुके तट समान विस्तीर्ण है वक्षःस्थल जिनिका ऐसा सबनिके स्वामी अंतर्यामी जिनेश्वर तिनिकूं देखिकरि सकल देव अति हर्षकूं प्राप्त भए ॥ ६६ ॥ जिनेंद्रका शरीर अतिमनोहर फूले कमलके दल समान हैं नेत्र जिनिके अर कुंजरकी सूंडिसमान सुंदर दोय भुजा जिनिकी महानिर्मल भगवानका अंग अतिशांतता अतिमनोज्ञतासहित ताहि देव अति आनंदकरि देखते भये, प्रफुल्लित हैं नयनकमल जिनिके ॥ ६७ ॥ बहुरि जिनवरका तन चंद्रमाकी क्रांतिकूं हरै ऐसे चमर तिनिके ढरिबेकरि अतिशोभित, अर कामके बाण तिनिके पतनतैं अडिग, मोहमदनका जीतनहारा सकल मल रहित महापवित्र ताहि सुररूप भंवर अमृतकी नाईं सेवते भए जैसैं भंवर मकरंदरूप अमृतकूं पीवै तैसैं ॥ ६८ ॥ ऋषभदेवका देह अतिक्रांतिकूं धरे देवाधिदेवका देह, देव अतिरुचिकरि निरखते भए निमेषरहित नेत्र जाके अर प्रह- अति सोहता भया, कैसा है देव—कमलके पत्र समान सुंदर हैं अर अत्यंत सुगंधताकूं धरे है, इंद्रनिके सित है वदन जाका संतोषकरि सदा बिकस्याही रहै है तिनिकरि युक्त मुखकमल ॥ ६९ ॥ नेत्रनिकूं सुखकारी निमेषरहित आपके नेत्र तेई भये भ्रमर ताके उपद्रवतैं रहित अति- अतिसुगंध अर हरी है चंद्रमाकी शोभा जानै ऐसा, कामरूप हिम दाहेका उपद्रव है अर क्रांतिसहित ताहि देव देवीनिके नेत्र अतृप्त भए पीवते भए । भावार्थ—कमलकूं मेहका अवरोध है, प्रभुके मुखकमलकूं मदनरूप दाहेका उपद्रव नांही ॥ ७० ॥ अर चंद्रमाकूं राहुका तथा भजहु, वे ऋषभ प्रभुका मुखरूप चंद्र सर्वोपद्रवरहित है, अनुपम है, तातैं हे भव्यजीव हो ! श्रीऋषभदेवकूं अर अतुलक्रांतिकूं धरे जन्म जरा मरणतैं रहित हैं अर सुरपतिकरि पूज्य हैं, उत्कृष्ट है शासन जिनिका अर देवदेवीनिके हैं, ऋषिनिके पति हैं अर कमलके पत्रकूं जीतैं ऐसे विलासरूप अनुपम हैं नेत्र जिनिके नयन तेई भए भंवर तिनिकरि मंडित है अंग जिनिका ॥ ७१ ॥ कमलसमान मुख अर कमलकी केसर-

समान सुवर्ण वर्ण अर कमलके पत्रसमान विस्तीर्ण दीर्घ निश्चल नयन अर कमलहूतैं अधिक सुगंध छाया-रहित तन, केवलीके शरीरकी छाया न दीखै अर निर्मल फटिक मणिसमान देदीप्यमान ऐसा श्रीजिनवरका अंग ताहि मैं पूजूं हूं ॥ ७२ ॥ जिनदेवकूं नमस्कार करूं हूं जाके नेत्रयुगल आरक्ततारहित क्रोधके अभावकूं कहै हैं अर चढी भृकुटीतैं रहित मुख जाका शांतताकूं प्रकाशै है अर कटाक्षरहित अवलोकन मदनसूं जीतपना प्रगट दिखावै है अर जाका अंग सौम्यताकूं प्रगट करै है ॥ ७३ ॥ अहो सुबुद्धी हो ! ता प्रभुकूं प्रणाम करौ जाका गात्र मदनका भंग करणहारा, अतिसुगंध, महासुंदर अर नेत्र ललाईरहित अर जाके अतिनिर्मल क्रांतिके विस्तारतैं जाका मुख मनोहर ऐसा भासै मानूं हंसै है अर होठ डसिबेमैं न आवै महारमणीक अतिशोभायमान ॥ ७४ ॥ ऐसे ऋषभ जिनेंद्रकूं भलीभांति नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं ऋषभ—ऋषिनिके पति हैं अर सौम्यवदन, निर्मलकमलपत्रसमान नेत्र, सुवर्णके पुंजसमान शरीर अर रक्त-कमलसमान महामनोज्ञ महाकोमल चरणयुगल अर कोमलवचन ऐसे परमपुरुष आदीश्वर तिनिकूं हाथ जोरि शीस नमाय मन वचन कायकरि प्रणाम करूं हूं ॥ ७७ ॥ सो जिनपति जयवंत होहु जाके चरणकमलकूं जीतै हैं अर कमलनिके मध्य तिष्ठते सोहै हैं उत्तम हैं लक्षण जिनिके अर कामका अनुराग ताके मर्दन करिबेकूं समर्थ हैं अर जगतके पोषनहारे हैं अर सुरपतिके सिरपरि मुकुट तापरि सेहुरा तातैं गिरै हैं मकरंद रज ताकरि पिंजर कहिए पीतस्वरूप है ॥ ७६ ॥ वह ऋषभ जयवंत होहु जाका सिंहासन अति उत्तुंग, च्यारूं पाएनिके च्यारि रत्नजडित सिंहनिकी मूर्त्ति तिनिके ऊपरि सोहै है देदीप्यमान हैं किरण जाकी, अधो (नीचे) कीया है सर्व जगत जानैं, सुमेरुकी शोभाकूं भलेप्रकार जीतै है, नम्रीभूत जे देव तिनिके मुकुटनिमैं अद्‌भुत रत्ननिकी ज्योतिकरि मानूं सुमेरुकूं तर्जना करै है ॥ ७७ ॥ सो प्रत्यक्ष श्री-आदिजिनेश्वर कर्मशत्रुनिका जीतनहारा जगतविषैं जयवंत होहु, नमस्कार करै हैं देवनिके इंद्र तिनिके उद्योतरूप मुकुट तिनिमैं महामणि तिनिकरि वंद्य हैं चरणकमल जिनिके । भावार्थ—चरणकमलनिके निकट

इंद्रनिके मुकुट नम्रीभूत होय रहे हैं संपूर्ण चंद्रमंडलकी समस्त सुंदरताकूं जीतनहारे उज्जल छत्रत्रय जा प्रभुके अति सोहै है, चंद्रमाकी उज्ज्वलताकूं हंसै है, प्रभु त्रिभुवनका गुरु है, धर्मका उपदेष्टा है ॥ ७८ ॥ सो प्रथम जिन जयवंत होहु, इंद्रनिकरि अर्चित हैं चरणयुगल जाके अर देवनिके समूह तिनिके करनिकरि ढरते चंवरनिके समूह तिनिकरि अतिशोभित है अर गिरींद्रके शिखरविषें जिनेंद्र सुरेंद्रनि संपराया है, क्षीरसागरका अमृतजल महापवित्र चंद्रमाकी किरणतैं अति उज्ज्वल ताकरि भया है जन्मसमय जन्माभिषेक जाका ॥ ७९ ॥ वह भव्यजीवरूप कमलनिकूं प्रफुलित करणहारा जिनरवि सकल जगतका पति सो भव्यजीवनिकी रक्षा करहु, जाके गुणसमुद्रके उज्ज्वल गुणनिके समूह तिनिसमान महामनोहर सोहै है, जाकी क्रांतिका समूह, सो स्वामी समस्त जीवनिका हितू, चारु कहिए अतिसुंदर चारित्रका धरणहारा, संसारसमुद्रका तारणहारा ॥ ८० ॥ वह श्रीपाति जिनपति ऋषभनाथ भव्यजीवरूप कमलनिके समूह तिनिका सूर्य जयवंत होहु, जाके अशोकवृक्ष—चलायमान है कूंपल अर विचित्र पत्रपुष्प जाकै अर श्री कहिये शोभा ताहि धरे, मरकतमणिमई है स्कंध जाका, अतिदेदीप्यमान, सुंदर अंग, सघन छायाकूं धरे सकल जीवनिके शोकका हरणहारा अति सोहै है ॥ ८१ ॥ वह जिनेंद्रका अशोक वृक्ष जयवंत होहु—अति सुंदर शोभाकूं धरे अपने चलायमान शाखानिके समूह तिनिकरि सदा पुष्पनिका समूह दिशानिकूं विस्तारता कोयलके शब्द तेई भए संगीत तिनिकरि मनोहर नृत्य करै है शाखाके अग्रभाग जाके सो मानूं भक्तिकरि भगवंतकूं भजता भव्यजीव समान सोहै है ॥ ८२ ॥ सो प्रभुके समवसरणकी भूमि हमकूं शीघ्रही कल्याण विस्तारौ—जा विषें देव आकाशतें पुष्पनिकी पंक्ति बरसावै हैं अतिप्रीतिकूं प्राप्त भए, मानूं वह पोहोपवृष्टि देवनिके नेत्रनिकी पंक्तिही है, महाचंचल उन्मत्त भंवर तिनिकरि मंडित है अर वह भूमि पवनकरि हालती ध्वजानिकी पंक्ति तिनिकरि मानूं आकाशकूं बुहारती सोहै है ॥ ८३ ॥ सो प्रभु जयवंत होहु—जाके धूलीसालविषें मग्न भई है क्रांति

जाकी ऐसा सूर्य सो अत्यंत सोहै है, कैसा है धूलीसाल–रत्ननिकी प्रभाकरि देदीप्यमान महाज्योतिवान सोहै है, अतिशयपनैंकरि मणिनिकी क्रांतिकरि महाप्रकाशरूप अतिनिर्मल है अर मानस्तंभ कल्पवृक्षनिकी प्रभासमान क्रांतिकूं धरे मानादिकके हरणहारे ऊर्ध्व हैं ध्वजा जिनिके आकाशकूं उलंघनहारा महाशोभायमान सो जिनपति जयवंत होहु ॥ ८४ ॥ बहुरि जा प्रभुके समवसरणकी भूमिविषैं रत्ननिके हैं तट जिनिके सो ऐसी वापिका निर्मलजलकी भरी नीलकमलनिकरि शोभित जिनिका सुगंधकरि अंध होय रहे भंवर गुंजार करे हैं तिनिकरि शब्दायमान वापिका अति सोहै हैं तिनिकी मैं स्तुति करूंहूं बहुरि बिकसिरहे हैं फूल जिनिके अर उदयकूं पाए हैं पल्लव जिनिके ऐसी वेलनिके वनकी पंक्ति अर ताकै आगैं पहला कोट ताहि मैं स्तवूं हूं ॥ ८५ ॥ बहुरि मैं च्यारि वननिकी शोभा ताकी स्तुति करूं हूं, कैसे हैं वन–महाउद्योतरूप मूंगानिकी तुल्य कूंपल तिनिकरि आरक्त करी हैं दिशा ऐसे अशोक सप्तच्छद चंपक आम्र ए च्यारिवन सोहै हैं, पवनकरि हलाई अपनी शाखा तिनिकरि मानूं नृत्यकूं उद्यमी भए हैं, ए च्यारू वन च्यारही चैत्यवृक्षनिकरि संयुक्त हैं, अशोकवनमें अशोकनामा चैत्यवृक्ष अर सप्तच्छदमैं सप्तच्छदनामा चैत्यवृक्ष अर चंपकवनमैं चंपकनामा चैत्यवृक्ष अर आम्रवनमैं आम्रनामा चैत्यवृक्ष ऐसे च्यारि वननिकूं धरे श्रीपतिके समवसरणकी भूमि ताहि मैं बदूंहूं ॥ ८६ ॥ पहला अशोकवन अतिआरक्त अर दूजा सप्तच्छद अतिशोभायमान अर तीजा चंपकनामावन दीपसमान उद्योतवान अर चौथा आम्रवन नंदनवनहुतैं अतिमनोहर. ए भगवानके च्यारि वन चैत्यवृक्षनिकरि मंडित तिनिकूं मैं बंदूहूं, जिनि वृक्षनिके मूलभागविषैं भगवंतके प्रतिबिंब विराजे हैं जिनकूं इंद्र विनयथकी नम्रीभूत मस्तककरि नमस्कार करे है, तिनिकूं मैं वंदूहूं ॥ ८७ ॥ बहुरि कोटके आगें सोहै हैं महामनोहर दश प्रकारकी ध्वजा–वृषभ गरुड माला गज वस्त्र मयूर हंस सिंह इत्यादि चिह्न तिनिकरि शोभित सो ध्वजानिके वस्त्रनिकी पंक्ति पवनकरि हालती अति सोहै है देवनिकरि अर्चित तिनिकूं मैं नमस्कार करूंहूं ॥ ८८ ॥ अर जे धूपके

घटयुगल आकाशमार्गकूं श्याम करै हैं अर दसूं दिशाविषैं व्यापि रही है फैलती धूमकी धूम ताकरि सब दिशा ढकिरही हैं समस्त जगतकूं शीघ्रही सुगंध करै है सो वे धूपके कुंभयुगल अर श्रीमत् नाट्यशालायुगल अति सुंदर तीनूं कोटसंबंधी हमारे मनकूं प्रीति उपजावो ॥ १८९ ॥ बहुरि मैं कल्पवृक्षनिके वन पुष्प अर पल्लवकरि शोभित महामनोहर तिनिविषैं सिद्धार्थवृक्ष तिनिकूं वंदूहूं, जिनिके मूलभागविषैं सिद्धनिके बिंब बिराजै हैं, महा शोभायमान, इंद्रादिकदेवनिकरि वंद्य, तिनिकी मैं स्तुति करूंहूं नमस्कार करूंहूं सुमरूंहूं जिनिके प्रसादतैं पवित्र बुद्धि होय अर रत्नमई है स्वरूप जिनिका जिनिपरि जिनबिंब बिराजै तिनिकूं भक्तिकरि बंदना करूंहूं ॥ १९० ॥ बहुरि कल्पवृक्षनिका वन अर वनवेदि ताकै आगैं जाय उज्ज्वल मंदिरनिकी पंक्ति अर फटिकमणिमई तीजा कोट बहुरि भगवानका श्रीमंडप तीन भुवनके प्राणीनिकूं अवकाश देय ऐसा है प्रभाव जाका अर तीन मेखलाकूं धरै ऐसा पीठ ताकै ऊपरि गंधकुटी सो हमकूं कल्याण विस्तारो ॥ १९१ ॥ मानस्तंभ, सरोवर, निर्मल जलकी भरी खाई, पुष्पनिकी बाडी कोट, नाट्यशालायें उपवन, वनवेदी अर ध्वजा बहुरि दूजा कोट अर कल्पवृक्षनिके वन अर वनवेदी रत्ननिके तूप मंदिरनिकी पंक्ति बहुरि तीजा फटिकमणिमई कोट ताकै आगैं मनुष्य देव मुनिनिकी सभा ताकै भीतरि श्रीमंडप तामैं पीठिका ऐसा स्वयंभूके समवसरणका वर्णन कीया ॥ ९२ ॥ देव अरहंत पूर्व सन्मुख बिराजै अथवा उत्तर सन्मुख विराजै जो समवसरणकै मध्य प्रभु विराजै ताकी भूमि महापवित्र ताहि प्रदक्षिणा करिकै तिष्ठते भए दूजी सभामें कल्पवासी देवनिकी देवांगना अर तीजी सभामैं आर्जिका अर श्राविका अर चौथी पांचवीं छठी सभामैं भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिकी देवांगना अर सातमी आठमी नवमी दशमी सभाविषैं च्यारि प्रकारके देव अर ग्यारमी सभाविषैं मनुष्य अर बारमी सभाविषैं पशु ए अनुक्रमकरि बारह सभा होती भई ॥ १९२ ॥ योगीश्वर महाज्ञानके धारक अर कल्पवासी देवनिकी देवांगना बहुरि आर्जिका अर राजपत्नी आदि श्राविका अर ज्योतिषी देवनिकी

स्त्री व्यंतरनिकी स्त्री भवनवासीकी स्त्री बहुरि भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी बहुरि राजा आदि नर अर वृषआदि पशुनिके समूह ए इनि सभानिविषैं जिनपतिकी चौगिरद भक्तिके भारकरि नम्रीभूत तिष्ठते भए ॥ १९४ ॥ सो भव्यजीवरूप कमलनिका भानु भगवान जिनेंद्र स्याद्वादरथविषैं चढ्या अत्यंत सोहता भया, कैसा है स्याद्वादरूप रथ—सम्यग्ज्ञानरूप है श्रेष्ठ सारथी जाकै अर महावेगवान नयरूप तुरंगनिकरि युक्त है, कैसे हैं भगवान भानु—प्रकट होते अनेकांतवचनरूप किरण तिनिकरि दूरि कीया है अज्ञानरूप तिमिर जिनि अर निवारी है संसारपरिणतिरूप निशा जानैं अर ताकी प्रात संध्या समान बारमे गुणस्थानकी अवस्था ताहि उलंघि केवल अवस्थाकूं प्राप्त भए हैं ॥ १९५ ॥ या भांति भले प्रकार प्रगट भई है समवसरणकी विभूति जाकै, धर्मचक्रका अधिपति, ताहि जो भव्यजीव भक्तिकरि वाचाल है मुख जाका अर भक्तिकरि नम्रीभूत है मस्तक जाका महाभक्तिकरि जिनराजकूं सुमरै सो जिनराजकी विभूति सकलगुणमई चिंतवनमैं न आवै अचिंत्य अकथ्य ताहि प्राप्त होय, कैसी है जिनराजकी विभूति—मणिमई मुकुटनिकूं धरे जे स्वर्गके देव तिनिके सिरपरि महाऋद्धिरूप चूडामणि अर पुष्पनिकी माला तिनिकरि पूजिवेयोग्य है ॥ १९६ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचितत्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवत्समवसृतिवर्णन नाम तेईसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २३ ॥

अथ चौवीसवां पर्व ।

सो जयवंत होहु ऋषभ, जाका ज्ञान विषहरण विद्याकी नांई या जगतकूं विषरहित करि सचेत करता भया। कैसा है यह जगत—मोहरूप विषकरि अचेत भया सूते समान है ॥ १ ॥ अथानंतर श्रीमान् भरतराज ऋषि तीन समाचार एक लार सुने गुरुकूं कैवल्यप्राप्ति अर चक्र तथा पुत्रकी उत्पत्ति ॥ २ ॥ धर्मका अधिकारी पुरुष ताके मुख तौ गुरुकूं केवल उपजनेके समाचार अर आयुधशालाके रक्षपालके मुख

चक्रकी उत्पत्ति अर खोजाके मुख पुत्रकी उत्पत्ति जानता भया ॥ ३ ॥ एक क्षण तीन समाचार सुनि कछुक विचाररूप भया, जो पहले कहा करना ? ॥ ४ ॥ धर्म अर्थ काम ए त्रिवर्ग तिनिके फलकी उत्पत्ति मेरैं एक काल भई । प्रभुकूं केवलकी उत्पत्ति सो तौ धर्मतीर्थनिष्पत्तिका कारण अर सुतकी उत्पत्ति सो कामसेवनका फल अर चक्रकी उत्पत्ति सो अर्थसाधनका उपाय ॥ ५ ॥ केवलज्ञान है सो धर्मका फल है अर पुत्र कामका फल है अर जाकरि अर्थकी सिद्धि होय सो चक्र महा देदीप्यमान ॥ ६ ॥ अथवा यह संपूर्ण धर्मका फल है जातैं धर्मरूप वृक्षका अर्थरूप फल है अर अर्थरूप फलका कामरूप रस है ॥ ७ ॥ तातैं इनि तींनूं कार्यनिविषैं धर्मकार्य कल्याणका कारण है महाफल दायक है तातैं प्रभुकी सेवा प्रथम करनी ॥ ८ ॥ ऐसा निश्चय करि वह राजेंद्र प्रथमही गुरुके पूजनका उद्यम करता भया । अहो धर्मात्मा पुरुषनिकी चेष्टा बाहुल्यताकरि कल्याणकी करणहारी है ॥ ९ ॥ सो वह राजेश्वर भाईनिसहित अर अंतःपुरसहित अर नगरके उत्तम पुरुष तिनिसहित उत्कृष्ट पूजाकी सामग्री आगैं धरि गमनकूं उद्यमी भया ॥ १० ॥ गुरुविषैं परमभक्ति विस्तारता धर्मकी प्रभावना करता संता महाविभूतिकरि युक्त भगवतकी बंदना करबेका उद्यमी भया ॥ ११ ॥ अथानंतर वह महाभाग भगवानका भक्त भरतक्षेत्रका भूप प्रभुकी बंदनाके अर्थि हाथी घोडे रथ पयादे तिनिकरि मंडित गमन करता भया ॥ १२ सेनारूप समुद्रकूं आनंद विस्तारते समुद्रके नाद समान आनंदके ढोल दसूं दिसाकूं शब्दायमान करते गंभीरनाद करते भए ॥ १३ ॥ विस्तरी है वादित्रनिकी ध्वनि जाविषैं ऐसी सेना गमन करती सोहती भई मानूं समुद्रकी बेलाही समान है, विस्तरी है अनेक ध्वजारूप तरंग जाविषैं ॥ १४ ॥ ता सेनाकरि मंडित अनेक राजनिका राजा प्रभुकै समवसरण जाय पहुंच्या । कैसा है समोसरण—दिशानिविषैं फैलती जो प्रभा ताकरि जीत्या है सूर्यका मंडल जानैं ॥ १५ ॥ सो तीन प्रदक्षिणा देय मानस्तंभनिकूं पूजता संता आगैं गया तहां खाई अर लतावन अर पहला कोट अर च्यारूं वन तिनिकूं देखि अतिहर्षित भया ॥ १६ ॥ बहुरि दूसरे कोटकूं

७५१

उलंघिकरि ध्वजानिका अवलोकन कीया अर कल्पवृक्षनिकी पंक्ति तथा रत्ननिके स्तूप अर मंदिरनिकी पंक्ति देखता थका अति अचिरजकूं प्राप्त भया ॥ १७ ॥ तब द्वारपाल जे देव तिनि अति आदरसूं मांही प्रवेश कराया सो स्वर्गकी जीतनहारी श्रीमंडलकी शोभा ताहि देखता संता परम आनंदकूं प्राप्त भया ॥ १८ ॥ बहुरि भरत नरेंद्र प्रदक्षिणा करता संता च्यारि धर्मचक्र पहले पीठपर तिष्ठैं तिनिकूं लक्ष्मीवान पूजता भया ॥ १९ ॥ बहुरि दूजे पीठपरि अष्ट महाध्वजा तिनिकूं प्रीतिकरि पूर्ण पवित्र चंदनादि वस्तुकरि पूजता भया ॥ २० ॥ बहुरि गंधकुटीके मध्य महाशोभायमान सिंहासन ताविषैं जैसैं उदयाचलके मस्तकविषैं सूर्य विराजै तैसैं विराजते विश्वनाथ तिनिकूं देखता भया ॥ २१ ॥ कैसे हैं जिनेंद्र चालते चंवरनिके समूह तिनिकरि शोभित है महा तनु जिनिका, जैसैं सुवर्णमई सुमेरु झरते नीझरनेनिकरि सोहै तैसैं ढरते चंवरनिकरि प्रभुका तन सोहै ॥ २२ ॥ महा अशोकवृक्षके निकट तीन छत्रकूं धरे छत्रपती ऐसैं सोहै है मानूं त्रिधा रूपकरि चंद्रमाही सेवाकूं आया है जैसा श्वेत बादरांनिकरि गिरिराज सोहै तैसा श्वेत छत्रनिकरि जिनराज सोहै है ॥ २३ ॥ अर चौगिर्द फूलनिकी वृष्टि होय है ताकरि प्रभु कैसे सोहै हैं जैसा सुमेरु पडते कल्प-वृक्षनिके पुष्प तिनिकरि सोहै ॥ २४ ॥ अर आकाशमैं व्यापिरहे देव दुंदुभीनिके शब्द तिनिकरि दशूं दिशा शब्दरूप होयरही हैं जैसैं पवनकरि घूमता समुद्र विस्तरती कलोल तिनिकरि गाजे शब्दरूप होय रहै ॥ २५ ॥ अर महागंभीर है शब्द जाका ऐसी दिव्यध्वनि ताकरि संदेहरहित जो धर्मरूप अमृत ताहि बरसाता वर्षाकालके मेघसमान सोहै है, आनंदरूप कीये हैं जगतके प्राणीनिके प्राण जानैं ॥ २६ ॥ अर अपनी देहकी फैलती जो चांदिनी सोही भया जल ताकरि पवित्र कीये हैं समस्त लोक जानैं मानूं क्षीर-सागरके मध्य सुवर्णका पर्वतही विराज्या है। भावार्थ—देहकी क्रांति सो तौ क्षीरसागर अर आप प्रभू सुवर्णके पर्वत ॥ २७ ॥ तिनिकूं भक्ति भावकरि प्रदक्षिणा देय उत्कृष्ट सामग्रीनिकरि पूजता भया, कैसे हैं भगवंत जगतके गुरु हैं अर कैसा है भरत, पूजाके करणहारेनिमैं मुख्य महाभक्त है ॥ २७ ॥ महाभावसूं

पूजाकरि पृथ्वीविषैं गोडे लगाय ईश्वरकूं वारंवार प्रणाम करि वचनरूप पुष्पनिकी मालानिकरि वाणीके पतिकूं पूजता भया ॥२८॥ जिनेश्वरकी भरतेश्वर स्तुति करे है;—हे प्रभो ! तुम ब्रह्मा हौ, परमज्योतिरूप, मोहांधकारके हरिवेकूं महासमर्थ हौ, अजन्मा हो, अर कर्मरजरहित निर्मल हौ, तुम आदिदेव देवनिके देव महामहेश्वर हो ॥ २९ ॥ तुम सृष्टिके स्वामी विधाता हौ, परमपुरुष ईश्वर हो, तुम आदिपुरुष विश्वेश्वर हो, अर सबतें सन्मुख हो, जगतके राजा हो ॥ ३० ॥ तुम विश्वव्यापी सर्वगत सर्वेश्वर जगतके पति हो, हे वृषभ ! वृषभकी है ध्वजा जिनिकै, परम इष्ट परम तत्त्व परमात्मा स्वयंभू हो ॥ ३१ ॥ अर तुम विश्वदर्शी विश्वके ज्ञाता विश्वके प्रभु महाप्रभु हो, हे विभो ! तुम विश्वके नेत्र ज्ञानमई योनिरहित समस्त योनिके भेद दिखावनहारे हो, हे हिरण्यगर्भ भगवान तुम काहूकरि उत्पन्न नांही स्वयमेव आत्मशक्तिकरि सदा प्रगट हो ॥ ३२ ॥ तुम जगतके सूर्य, अनंतज्योति, ईशनिके ईश, अयोनिसंभव हो, तुम जरारहित मरणरहित उत्पत्तिरहित अनादिनिधन अनंत अच्युत अविनाशी हो ॥ ३३ ॥ तुम अक्षर कबहू खिरो नांही अर अक्षरातीत हौ अक्षरनिकरि न कही जाय महिमा जिनिकी, तुम अक्षय अर अक्ष कहिये इंद्रिय तिनितैं रहित अतींद्रिय ज्ञानरूप हो, तुम विष्णु सर्वके अंतर्यामी अर जिष्णु कहिये प्रकाशरूप हो ॥३४॥ अर तुम शंभु संभव हौ अर शंभू कहिये सुखके प्राप्त करनहारे हौ अर शब्द कहिये सुखके स्वरूपके वक्ता हौ, अर सुखके करणहारे शंकर हो, कालके हरनहारे, कर्मके हरनहारे, सर्व दोषनिके हरनहारे हर हो, अर मोहरूप असुरके अरि हौ अर हरि हो, अज्ञानरूप अंधकारके रिपु भव्यजीवनिके रवि हो ॥३५॥ अर तुम सबनिकी आदि सबनिमें मुख्य आदि हो, तुम पुराण कवि, महायोगी, योगके वेत्ता तिनिमें श्रेष्ठ हो, तुम शरणागत प्रतिपाल हौ, सबनिमें श्रेष्ठ, सबनिमैं अग्रेसर, महापवित्र, पुण्यके नायक हौ ॥३६॥ अर तुम योगात्मा कहिये योगरूप ध्यानारूढ सयोगकेवली हो अर शुद्ध बुद्ध सिद्ध हो, तुम्हारे कोऊ स्वामी नांही सबनिके स्वामी तुमही हो, तुमकूं कोऊ लखि न सकै तातैं सूक्ष्म हो अर कर्मरूप अंजनतैं रहित

तातैं निरंजन हौ अर सहस्रदल कमल ताकी कर्णिकापरि अलिप्त विराजे हौ, हे जिनकुंजर ! तुम सबनिमैं बडे हौ ॥ ३७ ॥ अर तुम सकलछंदरूप जो द्वादशांग सूत्र ताके वक्ता हौ, हे वेदके वेत्ता तुम वक्तानिमैं श्रेष्ठ हौ, तुम वाणीके स्वामी अधर्मके वैरी धर्मके अग्रेसर, धराके नायक हौ ॥ ३८ ॥ तुम जिनराज कामके जीतनहारे जगतजीत हौ, तुम अरिहंत रागादिक अरिनिके हंता, अंतरायरहित धर्मकी ध्वजा हौ अर तुम धर्मके पति, कर्मरूप वैरीनिके नाश करणहारे हौ ॥ ३९ ॥ तुम भव्यजीवरूप कमलनिके वंधु परम सूर्य हौ अर कर्मरूप सामग्री होमिवेयोग्य तिनिका होमनहारा जो ध्यानरूप यज्ञ ताके तुम कारण हौ, तुम जगतपूज्य महापवित्र अगणित गुणनिकी खानि जगतके मित्र हौ, तिहारे कोऊ शत्रु नांही सबके मित्र हौ, अर तुम अपार हौ गणेंद्र मुनींद्र अहमिंद्र सुरेंद्र असुरेंद्र फणींद्र खगेंद्र रवि चंद्र कोऊ तिहारा पार न पावै, अर तुम अमध्य कहिये जघन्यता मध्यतातैं रहित सर्वोत्कृष्ट हौ अर काहूके वीच नांही सबनितैं न्यारे हौ अलिप्त हौ केवलज्ञानरूप लक्ष्मी सोहै मध्य जिनिकै ऐसे सर्वज्ञ सर्वके ज्ञायक हौ ॥४१-४२॥ सबनिमैं उत्तम सबनितैं उत्कृष्ट हौ तुमतैं अधिक कोऊ नांही, सबनिमैं ज्येष्ठ, सबनिके गुरु, महागुरु हौ, अर अत्यंत अणुरूप जिनिकूं कोऊ लखि न सकै ऐसे सूक्ष्म हौ अर महीयान् कहिये अति वडे हौ अर स्थवीयान् कहिये अत्यंत स्थूल हौ ॥४३॥ अतिविस्तीर्ण हौ जिनिके ज्ञानके अंशमैं लोकालोक समाय जाय अर निश्चल हौ अर आनंदके निवास हौ, पूज्य हौ, क्षमाकरि निश्चल पृथ्वीसमान हौ अर भूषण कहिये अपने स्वभावरूप सदा परिणवो हौ अर महासुंदर अविनश्वर मोहशत्रुके जीतनहारे सदा जयनशील हौ, अचल हौ अर शिव कहिये कल्याणस्वरूप परम आनंदमई सदा नित्य हौ महाशांत हौ भवभ्रमणके अंतक हौ ॥ ४४ ॥ आत्मज्ञानीनिकरि आराधिवेयोग्य हौ अर मोक्षपदके ईश्वर हौ । हे देव ! हम तुमकूं तिहारी नाममालाकरि या भांति स्तवै हैं ॥ ४५ ॥ तिहारे अनंत अपार नाम हैं हम कहांलग कहै ? एक सौ आठ नाम चित्तकरि ध्याय तुमकूं पूजे हैं तिहारी स्तुति करै हैं, तुम अष्ट प्रातिहार्यकरि मंडित स्तुतिके

सो अपनी छायाके

थानक हौ ॥ ४६ ॥ तिहारे यह अशोकवृक्ष उत्तुंग चलायमान है शाखा जाकी सो अपनी छायाके आश्रय आये तिनिकी रक्षा करै है, तुमतैं शिक्षा पाय प्रतिबुद्ध भया है ॥ ४७ ॥ अर हे देव ! तिहारे ए चंवरनिके समूह यक्षनिके करकरि ढरे थके कैसे सोहै हैं मानूं जीवनिका पाप निःसंदेह उडावै हैं जैसैं कोऊ मांखी उडावै तैसैं अघकूं उडावै हैं ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! तिहारे चौगिर्द पुष्पनिकी वृष्टि होय है सो मानूं हर्षकरि स्वर्गकी लक्ष्मी आनंदके अश्रुही डारै है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! तिहारे ए ऊंचे तीन छत्र सोहै हैं मोतिनिकी झालरीकरि शोभायमान सो मानूं लक्ष्मीके क्रीडा करिबेके स्थलही हैं ॥५०॥ अर हे ईश ! तिहारा यह सिंहासन नीचे होय सिंहनिनैं धर्‍या सो अत्यंत सोहै है तिहारे भारके धरिबेकूं समर्थ है ॥ ५१ ॥ हे विश्वके पति ! तिहारी देहकी प्रभाके प्रवाहकरि ए बारहसभाके प्राणी मानूं पवित्र अभिषेककूं प्राप्त भये हैं ॥ ५२ ॥ हे जिनेंद्र ! तिहारे वचनका विस्तार महामनोज्ञ जगतके मनकूं पवित्र करै है मोह-रूप अंधकारकूं हरणहारे तुम ज्ञानरूप सूर्यकी उपमाकूं धरौ हौ ॥ ५३ ॥ ए तिहारे अष्ट प्रातिहार्य महा मनोहर काहूपैं हरे न जांहि ते मानूं लक्ष्मीरूप हंसनीके क्रीडा करिबेके पवित्र पुलिनही हैं ॥ ५४ ॥ हे विश्वात्मा कहिये ज्ञानकरि सर्वव्यापक तुमकूं हमारा नमस्कार होहु, हे सृष्टिके स्वामी स्वयंभू तुमकूं हमारा नमस्कार होहु । तुम नव केवललब्धिके धारक हौ—अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र अनंतदान अनंतलाभ अनंतभोग, अनंत उपभोग, ए नव केवल लब्धि ॥ ५५ ॥ हे जिनेश ! तिहारा निर्विघ्नज्ञान विश्वकूं प्रकाशता भया, एक ही समयमैं सबनिका निश्चय करता भया। समस्त आवरणके नाशतैं यह तिहारा ज्ञान मन इंद्रीनितैं रहित अतींद्रिय है, च्यार घातिया कर्मके क्षयतैं यह क्षायक ज्ञान लोकका प्रकाशक अनुक्रम जानिबेके विघाततैं रहित है ॥ ५६ ॥ यह बडा अचिरज है जो यह विचित्ररूप जगत तुम एकही समयमैं अनुक्रमकरि रहित जानते भए ॥ ५७ ॥ कहूं इक अनुक्रम अभावहू प्रशंसायोग्य है सबनिका ज्ञान अनुक्रमरूप है अर तिहारा ज्ञान अनुक्रमरहित एक समयमैं

सकलप्रकाशी है ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! ए वाह्य इंद्रिय अर द्रव्यमन तिहारे छतेही हैं परंतु भावमन अर भाव इंद्रियनिका अभाव भया तातैं अतींद्रिय ज्ञान प्रगट है तिहारा ज्ञान चिंतवनमैं न आवै अनंत है अचिंत्य है। योगिश्वरनिकी प्रभुत्व शक्ति मनतैं अगोचर है ॥ ५९ ॥ जैसा तिहारै केवलज्ञान है तैसाही केवल-दर्शन ए दोऊ एकैंकाल सबनिकूं जानते देखत भए। औरनिके पहली दर्शन पीछैं ज्ञान, अर तिहारै ए दोऊ युगपत् यह अद्भुत बात है ॥ ६० ॥ तुम समस्त लोकालोकविषैं व्यापक अद्भुत ज्ञान गुणके धारक सर्वज्ञ सर्वदर्शी हौ योगीश्वरनिकरि गाई है महिमा जिनकी ॥ ६१ ॥ हे विश्वंभर विश्वेश्वर ! समस्त विश्वकूं जानते तुमकूं लेशमात्र खेद न उपज्या यह अनंतवीर्यकी शक्तिका माहात्म्य प्रगट दृष्टि परै है ॥ ६२ ॥ रागादि चित्तके मैल तिनिके अभावतैं तुम क्षायिकचारित्रकूं धरे हौ सो क्षायिकचारित्र अनंत आत्मिक सुखकूं प्रगट दिखावै है, ए क्षायिकचारित्रही सुख है ॥ ६३ ॥ जो निवृत्ति सो ही सुख, तातैं केवलसुख तुमहीविषैं है और विषैं नांही। अर जो प्रवृत्ति ही सुख होय तौ संसारही सुखरूप होय जाय सो संसारमैं सुख नाही संसारी जीव सब दुखी ही हैं ॥ ६४ ॥ जैसैं कर्दमरहित जल स्वच्छताकूं प्राप्त होय तैसैं मिथ्यात्वरूप कर्दमके अभावतैं तेरे आत्मा स्वरूप टारि कहूं न जाय, यह तिहारी महिमा तुम विषैंही हैं, तिहारे अंतर्बाह्य विभूति सकल पूर्ण है परंतु वाह्य विभूतिसूं तिहारै प्रयोजन नाही, वाह्यविभूति अर्थसिद्धिकी करणहारी नाही तुम कृतकृत्यार्थ तिहारै वाह्य द्रव्यका संबंध निरर्थक है ॥६५॥ तिहारे गुण बाहुल्यताकरि अनंत हैं। हे नाथ ! मैं अल्पबुद्धि तिहारे गुण लेशमात्र भी कहिवे समर्थ नांही ॥ ६६ ॥ तातैं तिहारा गुणस्तोत्र तौ दूरिही रहौ, तिहारा नाममात्रहू जप्या संता हमकूं पवित्र करै है तातैं हे ईश ! नाम कीर्तनमात्रही हम अंगीकार किया ॥६७॥ तुमकूं लोक हिरण्यगर्भ कहै हैं; काहेतैं—जो तिहारे गर्भावतरण विषैं रत्न सुवर्णकी अद्भुत वृष्टि भई ॥ ६८ ॥ देवनि पंद्रहमास रत्नवृष्टि करि जन्मलग। अर तुम वृषभदेव कहिये सर्वोत्कृष्ट हौ, जन्माभिषेकके अर्थि सुमेरुकूं गये, तुम ऋषभ ऋषिनिके नाथ हौ ॥६९॥ समस्त ज्ञेयविषैं

व्यापि रह्या ज्ञान तिहारा तातैं हे ज्ञानमूर्ति, तुमकूं परमऋषीश्वर जगत कहै है तुम जगतके ईश्वर सबनिके देव हो ॥ ७१ ॥ इत्यादि अनेक नाम तिहारे सत्यार्थ हैं तातैं तुम जगज्येष्ठ परमेष्ठी सनातन कहिए नित्य हो ॥ ७२ ॥ मेरी यह बुद्धि तिहारी भक्तिने स्तुतिके मार्गविषैं प्रेरी ताहि मैं रोकिबेकूं अस-मर्थ, तातैं हे अविनश्वर ! तिहारी स्तुतिविषैं प्रवर्त्यांहूं ॥ ७३ ॥ तिहारा दिखाया मार्ग ताहि सेयकरि हम मुक्त भया चाहै हैं तिहारे उपासक हैं सो हे देव ! कृपाकरि हमपरि अनुग्रह करौ ॥ ७४ ॥ तीन लोककूं उलंघै ऐसा विभव ताके तुम धारक सो हम स्तुतिकरि येही प्रार्थना करै हैं जो हमारी तुमविषैं पूर्ण भक्ति होहु और कछु चाहिये नांही, केवल भक्तिहीकी अभिलाषा है और अर्थके अर्थि हम नांही आराधै हैं ॥ ७५ ॥ या भांति अद्भुत स्तुति जिनेंद्रकी भरत नरेंद्र करी, स्तुति कीए पीछैं देवनि भरतकूं देख्या, देखिकरि विस्मयकूं प्राप्त भये हैं नेत्र जिनिके। बहुरि भरत श्रीमंडपमैं प्रवेशकरि मनुष्यनिकी सभामैं बैठा ॥ ७६ ॥ समस्तही सभाके लोक हाथ जोरि निश्चल तिष्ठैं, सभारूप कमलनिका वन स्वामीरूप सूर्यके वचनरूप किरणनिकरि प्रतिबुद्धतारूप प्रफुल्लितताका अभिलाषा स्थिरचित्त होय तिष्ठ्या ॥ ७७ ॥ ता समैं विनयकरि नम्रीभूत है मुकुट जाका ऐसा भरत राजेंद्र सो भक्तिकरि श्रीजिनेंद्रसूं या प्रकार वीनती करता भया, तत्त्वके जानिबेकी है अभिलाषा जाकै ॥ ७८ ॥ हे भगवान ! मैं जान्यां चाहूं हूं तत्त्वका विस्तार, सो कहा कौन भांति है ? ॥ ७९ ॥ हे वक्तानिमैं श्रेष्ठ ! महाज्ञानी मार्गका फल कहा है ? सो कृपाकरि कहो। या भांति भरतेश्वरने प्रश्न कीया ॥ ८० ॥ तब भगवान आदि जिनेश्वर गंभीरवाणीकरि तत्त्वका निरूपण करते भए ॥ ८१ ॥ व्याख्यान करते प्रभुके मुखकमलविषैं कछूही विकृति न भई जैसे पदार्थनिके प्रकाशनेविषैं दर्पणके कहा विक्रिया होय ? कदापि न होय ॥ ८२ ॥ तालवा होठ इनिका परिस्पंद कहिए चलायमानपना न भया अर मुखविषैं और छाया न भई अर इंद्रीनिका उद्यम न भया वाणी भगवानका मुखसूं निकसती भई ॥ ८३ ॥ जैसे गिरिकी गुफा गुंजार करै तैसी गुंजाररूप

दिव्यध्वनि स्वयंभूके मुखतैं निकसी, प्रकट है सकल अक्षर जाविषैं ॥ ८४ ॥ कहिबेकी इच्छा विनांही प्रभुके सरस्वती प्रकट भई सो पुराणपुरुषनिके ध्यानकरि उपजी शक्ति ताकी महिमा अचिंत्य है, काहूके चिंतवनमैं न आवै ॥ ८५ ॥ श्रीभगवानकी दिव्यध्वनिमैं आज्ञा भई। हे दीर्घायु! मैं अनुक्रमतैं तत्त्वार्थनिका व्याख्यान करूं हूं सो तू भली भांति सुनि। जीवकूं आदि दे कालपर्यंत षट् द्रव्य हैं तिनिके भेद गुणपर्यायसहित उरमैं नीके धारि ॥ ८६ ॥ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ए छह द्रव्य इनि जीवादिक पदार्थनिका निश्चयस्वरूप सो तत्त्व कहिये जिनशासनमैं तत्त्वार्थकी श्रद्धा सम्यक्त्व है सो सम्यक्त्व जीवनिकूं मोक्षका कारण जानि ॥ ८७ ॥ सामान्यपने तत्त्व एकरूप है, सबही पदार्थ सत्तारूप हैं, अर जीव अजीव इनिकरि दोय प्रकार कहिये। सिद्ध, संसारी अर अजीव इनि भेदनितैं तीन प्रकार कहिए ॥ ८८ ॥ संसारीके दोय भेद। भव्य, अभव्य। अर संसारतैं मुक्त सिद्ध अर अजीव एवं तत्त्वके भेद च्यारि ॥ ८९ ॥ अथवा जीवके भेद दोय—सिद्ध अर संसारी, अर अजीवके भेद दोय—एक मूर्त्तीक एक अमूर्त्तीक ऐसे भेद च्यारि तिनिमैं मूर्त्तीक तो पुद्गल अर अमूर्त्तीक धर्मादिक च्यारि या प्रकारहू वर्णन है। अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, ए पंचास्तिकाय बहुप्रदेशी हैं गुणपर्यायसहित हैं तिनिके कथन करि तत्त्वके पांच भेदहु कहिए ॥ ९० ॥ अर ए पंचास्तिकाय कालसहित षट् द्रव्य कहिए ऐसैं तत्त्वके छह भेद भए। याही भांति तत्त्वके अनंतभेद विस्ताररूप हैं। जे विस्तारश्रवणके आभिलाषी हैं ते भली भांति गुरुके मुख विस्तार धारैं हैं ॥ ९१ ॥ प्रथमही जीवतत्त्वका व्याख्यान सुनहु—जीव चेतनालक्षण है आदि अर अंततैं रहित है स्वरूप जाका, बहुरि ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्त्ता है, भोक्ता है, देहप्रमाण है ॥९२॥ गुणवान है अर कर्मनिसूं मुक्त होय तब ऊर्ध्वगमनस्वभाव है अर परिणामी है, दीपककी नांई संकोच विस्ताररूप शक्तिकूं धरै है ॥९३॥ ता जीवके जानिबेके उपाय गत्यादि चौदह मार्गणा अर चौदह गुणस्थान तिनिकरि जीवका स्वरूप विचारना। अर सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन काल अंतर भाव अल्पबहुत्व इनिकरि जीवका स्वरूप

विचारियें है ॥ ९४ ॥ चौदह मार्गणानिके नाम गति च्यार, इंद्रिय पांच, काय छह, योग तीन, वेद तीन,
कषाय च्यारि, ज्ञान आठ, संयम पांच, दर्शन च्यारि, लेश्या छह, भव्य अभव्य दोय, अर सम्यक्त्व छह,
सैनी असैनी दोय ॥ ९५ ॥ अर आहारक, अनाहारक ए चौदह मार्गणा तिनिविषैं जीवपदार्थ अवलोकना
अर सत् संख्यादि विचार करि विशेषपनैं जानना ॥ ९६ ॥ सत् कहिये सत्ता, अर संख्या कहिये भेदगणना
अर क्षेत्र कहिए वर्त्तमान निवास क्षेत्र, अर स्पर्शन कहिए कौन कौनका कहां लग स्पर्श, अर काल कहिए
तीन काल अर भाव कहिए औदयिक, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, पारिणामिक अर अंतर कहिये विर-
हकाल अर अल्पबहुत्व कहिये परस्पर अपेक्षा अल्पबहुत्व ये आठ भेद तिनकरि पंडितनिकूं आत्मा अव-
लोकना । कैसे हैं पंडित ? परमागम ही हैं नेत्र जिनिके ॥९७॥ ए जीवके जाननेके उपाय हैं सो ज्ञान नय
प्रमाण निक्षेपकरि होय हैं ताकरि विवेकी भलीभांति तत्त्वनिका निश्चय करै हैं । प्रमाण कहिये प्रत्यक्ष प्रमाण
अर परोक्ष प्रमाण । नय कहिये नैगम संग्रहादिक अर निक्षेप कहिये नाम स्थापना द्रव्य भाव ॥ ९८ ॥
अर उपशम भावके भेद दोय, अर क्षायिकभावके भेद नव अर क्षयोपशमके भेद अठारा अर औदयिकके
भेद इकईस अर पारिणामिकके भेद तीन । ए पांच भावके तरेपन भेद हैं ॥ ९९ ॥ इनिकरि जाका निश्चय
करिए है सो जीव जानौं । उपयोग है लक्षण जाका, सो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेद थकी दोय प्रकार जानौं
॥१००॥ तिनिमैं ज्ञानके भेद आठ—मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, केवल अर कुमति कुश्रुति, कुअवधि ।
अर दर्शनोपयोगके भेद च्यारि—चक्षु, अचक्षु, अवधि अर केवल ए उपयोगके भेद कहे । तिनिमैं ज्ञान
साकार अर दर्शन निराकार ॥१०१॥ जो विशेषपनैं, सकल भेद जानना, भिन्न भिन्न जानना सो आकार
कहिए अर सामान्यमात्र प्रतिभास सो निराकार कहिए । भावार्थ—सामान्यावलोकन सो दर्शन अर विशेष
परिज्ञान सो ज्ञान । यह साकार निराकारका भेद है । ए दोय भाव जीवके अमूर्तीक लक्षण हैं, इनिमैं
मूर्तीपनां नांही, निराकार हो हैं ॥ २ ॥ सामान्य विशेषताकरि साकार निराकार कहे जीव प्राणी जंतु

क्षेत्रज्ञ पुरुष पुमान आत्मा अंतरात्मा विज्ञ ज्ञानी ए सब जीव पदार्थके नाम हैं ॥ ३ ॥ जीवै था, जीवै है, अर सदा जीवैगा। अनेक देह धरै है परंतु जीवका नाश नांही तातैं जीव कहिए ॥ ४ ॥ अर दश प्राण याके हैं—इंद्रिय पांच, मन, वचन, काय, अर आयु तथा उच्छ्वास ए दश प्राण धरै है तातैं प्राणी कहिए। अर ए चतुर्गतिविषैं जन्म धरै हैं तातैं जंतु कहिए, अर क्षेत्र कहिए अपना स्वरूप ताका ज्ञाता तातैं क्षेत्रज्ञ कहिए ॥ ५ ॥ अर प्रचुर भोगविषैं तत्पर तातैं पुरुष कहिये अर आपकूं आप पवित्र करै तातैं पुमान् कहिए ॥ ६ ॥ अर अनेक पर्यायविषैं प्रवर्तैं गमनागमन करै तातैं आत्मा कहिए, अर अष्टकर्मके मध्यवर्त्ती तातैं अंतरात्मा कहिए ॥ ७ ॥ अर ज्ञानगुणमंडित तातैं विज्ञ कहिये, ज्ञाता कहिये ज्ञानी कहिए इत्यादि अनेक नाम तिनिकरि आत्मकूं जानहु ॥ ८ ॥ यह जीव शास्वता है कबहूं याका विनाश नांही, पर्याय अनेक धरै है जैसें मृत्तिकाद्रव्य घटादिपर्यायनिकरि उत्पत्ति अर विनाश धरै है तथापि द्रव्यकरि ध्रुव है ॥ ९ ॥ पूर्व पर्यायकूं तजिकरि नवी पर्यायविषैं उपजे है यह उत्पाद व्यय है अर वस्तुकरि सदा अविनश्वर है। या भांति आत्मा उत्पाद व्यय ध्रुवयुक्त तीन लक्षणकूं धरै है ॥ ११० ॥ ऐसा आत्माका स्वभाव ताहि न जानते संते मिथ्यादृष्टी आत्माकूं विपरीतपने जानि परस्पर बहुप्रकार विवाद करै हैं ॥ ११ ॥ कैयक कहै हैं—आत्मा नांही, कैयक कहै हैं—आत्मा है परंतु अनित्य है, कैयक कहै हैं—कर्त्ता नांही, कैयक कहै हैं—भोक्ता नांही ॥ १२ ॥ या भांति कुदृष्टी विवाद करै हैं। कैयक कहै हैं आत्मा है परंतु मोक्ष नांही, कैयक कहै हैं—मोक्ष है परंतु मोक्षका उपाय नांही सहज ही होय है ॥ १३ ॥ इत्यादि दुर्नय, तिनिकूं उत्तम नयके परिज्ञानतैं तजिकरि यथोक्त लक्षण जीवपदार्थ है ताहि तू निश्चयकरि ॥ १४ ॥ जीवकी दोय अवस्था हैं—एक संसारअवस्था, एक मोक्षअवस्था। जो चतुर्गतिविषैं भ्रमण सो संसार ॥१५॥ अर समस्त कर्मनितैं छूटना सो मोक्ष अनंतसुखरूप, ताका उपाय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ॥११६॥ देव गुरु शास्त्र अर जीवादिक पदार्थ इनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन मुक्तिका मुख्य उपाय कह्या ॥१७॥ अर जीवादिक पदा-

समस्त कर्मनितैं छूटना ...
अर जीवादिक पदार्थ इनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन मुक्तिका मुख्य उपाय कह्या ॥११७॥ अर जीवादिक पदा-

र्थनिका यथार्थ प्रकाशनहारा सो ज्ञान, अज्ञानरूप अंधकारकें नाशतैं उपजै है ॥११८॥ अर तृष्णारहित मुनि ताकै समभाव लक्षण सो चारित्र, जाके लाभ अलाभ सुख दुख शत्रु मित्र आदि सब समान सर्व परिग्रहका त्यागी निर्ग्रंथ दिगंबर निर्हिंसक मोक्षका अभिलाषी ताके यह चारित्र पूर्ण होय है ॥ १९ ॥ ए तीनूं सम्यग्दर्शनादि मुक्तिके साधन कहे इनिमैं एकहूकी कमी होय तौ कार्यकारी नांही ॥२०॥ सम्यग्दर्शनकूं होतैं सम्यक्ज्ञान अर चारित्र ए फलदायक हैं अर ज्ञान चारित्रके होतैं सम्यग्दर्शन मुक्तिका कारण है अर दर्शन ज्ञान विना चारित्र कार्यकारी नांही जैसैं अंध पुरुषका उछलना पडिवेहीके निमित्त है ॥ २१ ॥ इनि तीननिमैं एककूं मानै अर दोयकूं न मानै ऐसे तीन मिथ्याती अर इनमें एककूं न मानै दोयकूं मानै एऊ तीन ऐसैं छहप्रकार मूढमती भए ते जिनशासनविषैं निराकरण कीए । भावार्थ—तीनकूं मानै सोही सम्यग्दृष्टी अर दोयकूं मानै अर एककूं मानै सो मिथ्यादृष्टी ॥ २२–२३ ॥ या जिनधर्मतैं अधिक न कोऊ है, न कोऊ होयगा, न कोऊ पूर्वैं था, ऐसा निश्चयकरि देव गुरु धर्मकी दृढता करै सो सम्यक्त्वकी शुद्धता कहिए ॥ २४ ॥ आप्त कहिए भगवान वीतरागदेव अनंतगुणयुक्त कलंकरहित निर्मल कृतकृत्य सर्वका हितू सोही देव है और देव नांही देवसे भासै हैं परंतु तिनिमैं देवत्व नांही ॥१२५॥ अर आगम कहिए शास्त्र समस्त पुरुषार्थका साधन भगवानके वचन भगवत्वाक्यही शास्त्र हैं सो नयप्रमाणकरि गंभीर हैं यातैं और जे असत् पुरुषनिके वचन हैं ते शास्त्र नांही, शास्त्राभास हैं ॥ २६ ॥ अर पदार्थ जीव अजीवके भेदतैं दोय प्रकार है सो जीवके लक्षण पहली कहे ॥ २७ ॥ भव्य अभव्य अर मुक्त ए जीवके तीन भेद हैं जाकूं मुक्ति होनहार है सो भव्य कहिए सुवर्णसंयुक्त पाषाणसमान ॥ २८ ॥ अर जाकूं मुक्ति होनहार नांही सो अंधपाषाण तुल्य अभव्य कहिए मुक्तिके कारणकी सामग्री जाके कदाचि न होय ॥ २९ ॥ अर कर्मबंधतैं रहित त्रैलोक्यके शिखर विराजे सिद्ध निरंजन प्राप्त भया है अनंत सुख जिनिकै ते मुक्त कहिए ॥१३०॥ या भांति जीवपदार्थका स्वरूप तोहि संक्षेपतारूप कह्या । अब हे बुद्धि-

वान ! अजीव तत्त्वका कथन उरमैं अवधारि ॥ १३१ ॥ अजीवका लक्षण पंचप्रकार कहिए हैं;—धर्म, अधर्म, आकाश काल अर पुद्गल ॥ ३२ ॥ जीव अर पुद्गलकूं जो गमनसहायी सो धर्मद्रव्य कहिए अर स्थितिसहायी सो अधर्म द्रव्य कहिए ॥ ३३ ॥ जीव अर पुद्गल इनि दोयही द्रव्यनिकै गमन और स्थिति है सो इनिहीकूं धर्म अधर्म गति स्थितिके सहायी हैं। जासमैं ए गमन करैं तासमैं धर्मद्रव्य सहाई अर जासमैं तिष्ठैं तासमैं अधर्मद्रव्य सहाई। ए दोयद्रव्य प्रेरक होय गति स्थिति न करावैं ॥ ३४ ॥ सहज स्वभाव लीए उदासीन हैं जो जीव पुद्गल गतिस्थिति करै तौ निमित्तमात्र उनका सहाय है जैसें मच्छका गमन जलविना न होय, जल कछु मच्छनिकूं प्रेरक नांही सहज स्वभाव है मच्छ गमन करै तौ जल सहाई है, प्रेरक नांही तैसें धर्मस्तिकायका उपकार जीव पुद्गलकूं जानहु ॥ ३५ ॥ अर जैसें तरुकी छाया पंथीनिकूं प्रेरक होय थिरता न करावै चले जाहि तौ चले जाऊ अर जो तिष्ठै तौ छायाका सहाय है ॥ ३६ ॥ तैसें अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलकूं सहजरूप थिरताका कारण है प्रेरक होय थिरता नांही करावै है सहजस्वभाव उदासीनरूप है ॥ ३७ ॥ अर जो जीवादिक सकल पदार्थनिकूं अवकाश दे सो अवगाहन लक्षण आकाशद्रव्य कहिये सो स्पर्श गंध वर्ण रसरहित अमूर्तीक अक्रिय सर्वव्यापी है ॥ ३८ ॥ अर वर्त्तनालक्षण सो काल। वर्तना निज परकैं आश्रय है। समस्त द्रव्य अपने अपने गुण पर्यायरूप अपनी स्वभाव शक्तिकरि परिणवैं हैं अर निमित्त कारण परिणमनकूं कालका है ॥ ३९ ॥ जैसें कुंभारके चक्रकूं भ्रमणका कारण नीचली शिला निमित्तमात्र है तैसें कालद्रव्य निमित्तमात्र सवनिकूं परिणमनका सहाई है ॥ ४० ॥ सो कालके दोय भेद हैं—एक व्यवहार कल जाहि गौण कहिए अर एक निश्चयकाल जाहि मुख्य कहिये सो मुख्यके होतैं ही गौणकी प्रतीति है जैसें सिंह है तौ विलावकूं सिंहसमान कहै है ॥ ४१ ॥ तैसें निश्चयकाल है तौ व्यवहारकाल प्रवर्तै है। समय घटिकादि व्यवहारकाल कहिए सो निश्चय कालकी पर्याय है। अर वह निश्चयकाल एक प्रदेशी लोकके असंख्यात प्रदेश सो प्रदेश प्रदेशमैं

निश्चयकाल एक प्रदेशी लोकके असंख्यात प्रदेश सो...

एक एक कालाणु भिन्न भिन्न तिष्ठै है जैसैं रत्ननिकी राशिमें रत्न सब जुदे जुदे हैं दोऊ काहूसूं कोऊ काहूसूं न मिलै तैसैं कालकी अणु असंख्यात हैं ते परस्पर मिलै नांही, भिन्न रहैं ॥१४२॥ बहुप्रदेशके अभावतैं कालकूं पंचास्तिकायमैं न गिन्यां, पंचास्तिकाय बहुप्रदेशी हैं अर यह एकप्रदेशी है तातैं अस्तिकाय नांही, षटद्रव्यमैं हैं ॥ ४३ ॥ धर्म अधर्म आकाश काल ए पदार्थ अमूर्त्तीक जड हैं अर पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, ताके भेद अब सुनि ॥ ४४ ॥ वर्ण गंध रस स्पर्श इनिकूं धरे सो पुद्गल। मिलै अर विछुरै तातैं पुद्गल सत्यार्थ नाम पाया ॥ ४५ ॥ अणु अर स्कंधके भेदतैं पुद्गलका स्वरूप दोय प्रकार है। स्निग्ध अर रूक्ष गुणकूं धरे ऐसी जे पुद्गल परमाणु तिनिका परस्पर मिलिकरि समूह होना सो स्कंध कहिए ॥ ४६ ॥ दोय परमाणु आदि महास्कंधपर्यंत स्कंधका विस्तार है। छाया, आतप, अंधकार, चांदिनी, मेघ इत्यादि सब भेद पुद्गल स्कंधके हैं॥ ४७ ॥ पुद्गल परमाणु हैं ते कारणरूप हैं अर कार्य कहिए घटपटादि पर्याय ते कार्यरूप हैं सो घटपटादि पर्यायनिकरि परमाणुका अस्तित्व जान्या जाय है। परमाणुविषैं स्पर्श दोय एक तौ शीत उष्ण मध्ये एक स्निग्ध रूक्ष मध्ये ए दोय स्पर्श। अर पांच वर्ण मध्ये एक वर्ण। अर पांच रस मध्ये एक रस। अर दोय गंध मध्ये एक गंध। ए परमाणुमैं पांच गुण मुख्य हैं परमाणु द्रव्य नित्य है अर स्कंध पर्याय अनित्य है ॥ ४८ ॥ पुद्गलके भेद छह—सूक्ष्म सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, स्थूलसूक्ष्म, स्थूल अर स्थूलस्थूल ॥ ४९ ॥ सूक्ष्मसूक्ष्म तौ एक परमाणु सो अदृश्य है अर अस्पृश्य है, अर सूक्ष्म कर्मवर्गणा जो अनंत प्रदेशनिका समूह है परंतु दृष्टि न परै ॥ ५० ॥ अर शब्द स्पर्श, रस, गंध ए च्यारि इंद्रियनिके विषय सूक्ष्मस्थूल हैं दृष्टि न परै अर इंद्रियनिकरि जानैं जांहि ॥१५१॥ अर स्थूलसूक्ष्म छाया अंधकार चांदनी आतप आदि ते दीखिबेमैं तौ आवै अर ग्रहिबेमैं न आवैं ॥ ५२ ॥ अर जलादि द्रवीभूत द्रव्य स्थूल कहिए अर कंकर पत्थर ठीकरी आदि भेद्य स्कंध स्थूलस्थूल कहिए ॥ १५३ ॥ या भांति पदार्थनिका सत्यार्थ स्वरूप कह्या जो इनिकी सत्यार्थ श्रद्धा करै सो भव्यजीव परम

ब्रह्मपदकूं प्राप्त होय ॥१५४॥ यह तत्त्वार्थका संग्रह समस्त भरतकै तांई आदि जिनेश्वर जतावते भए अर कैयक तत्त्वनिके वीज नाममात्र कहे ॥ ५५ ॥ पुरुष कहिये जीव अर पुरुषार्थ कहिये धर्म अर्थ काम मोक्ष अर मार्ग कहिए यती श्रावकका धर्म अर मार्गका फल शुद्धोपयोग अर वंध कहिए प्रकृत्यादि च्यारि प्रकार बंध, अर मोक्ष कहिए सकल कर्मका अभाव अर बंधके कारण रागादिक अर मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादिक अर बद्ध कहिये संसारी जीव अर मुक्त कहिये सिद्ध परमेष्ठी सो यह सब व्याख्यान भूतेश्वरनैं भरतेश्वरकूं कह्या ॥ ५६ ॥ अर तीन जगतकी रचना, नरकनिके पाथडे अर असंख्यात द्वीप समुद्र, पद्मादि द्रह, सुमेरादि पर्वत यह सर्व कथन जगतपतिनैं नरपतिकूं कह्या ॥ ५७ ॥ अर स्वर्गके तरेसठि पटल अर देवनिकी आयु तथा भोगनिका विस्तार अर मुक्तिका स्थान लोककै शिखर अर समस्त लोकनाडीका कथन यह समस्त निर्णय, जिनेंद्रनैं नरेंद्रसूं कह्या ॥ ५८ ॥ तीर्थेश्वर अर चक्रेश्वर अर अर्द्धचक्री ए समस्त त्रेसठिशलाके महापुरुष तिनिके पुराण अर तीर्थंकरनिके पंचकल्याणकका वर्णन अर तीर्थंकर पदके कारण सोलह भावना सो सब वर्णन ऋषभदेव भरतसूं कहते भये ॥ ५९ ॥ वे भगवान जगतगुरु आदिजिन गति अगति जीवनिकी उत्पत्ति प्रलय अर ध्रुवता सब भेद कहते भये अर भुक्त कहिए सुखादि भोग अथवा भुक्त कहिए क्षेत्र षटखंडादि अर ऋद्धि कहिये मुनिनिकी अनेक ऋद्धि अर करिबेयोग्य कहा न करिबे योग्य कहा यह सब वर्णन विस्तारसूं कहते भये ॥ ६० ॥ जो होय गई अर होय है अर होयगी सो सब अर सकल द्रव्यनिकी चर्चा यह सब निर्णय श्रीभगवान भरतकूं कहते भए ॥ १६१ ॥ सो गुरुकै मुख सकल व्याख्यान भरतचक्री सुनिकरि परमहर्षकूं प्राप्त भया, कैसे हैं गुरु–परम पुरुषार्थके अधिपति हैं ॥ ६२ ॥ यह सब चर्चा जगतपतिके मुख भरतक्षेत्रका पति सुनिकरि सम्यक्त्वकी शुद्धता अर संपूर्ण व्रतनिकी शुद्धताकूं प्राप्त भया, परम आनंदकूं धारता संता जिनवचनकी श्रद्धा धरि कृतार्थ भया ॥१६३॥ निष्फल कहिए शरीरबंधतैं रहित भगवान भूतेश्वर तिनितैं उपदेश पाय

शरीरबंधतैं रहित भगवान भूतेश्वर तिनितैं उपदेश पाय

प्रथम चक्री मनकी परम शुद्धताकरि प्रतिबुद्ध भया परमेश्वरके मुखतैं तत्त्वका निर्णय सुनि राजेश्वर प्रफुल्लित वदन होय सोहता भया जैसैं शरदऋतुविषैं कमलनिका वन दिनकरकी किरणनिकूं पायकरि प्रफुल्लित होय ॥ १६४ ॥ सो राजेंद्र जिनेंद्रकूं आराधिकरि व्रत अर शीलनिकी पांक्ति सोई भई निर्मल मुक्ताफलनिकी कंठी, सम्यग्दर्शन है मध्यनायक जाविषैं ताकरि शोभित ॥ ६५ ॥ गुरुथकी व्रतसंस्कार पायकरि भरतेश्वर अति देदीप्यमान है मध्यनायक जाविषैं ताकरि देदीप्यमान दिपताभया जैसैं महाखानकी मणि संस्कारके योगतैं दिपै ॥ ६६ ॥ सुर असुर नरनिकी सभा मुनीश्वरनि सहित धर्म अमृतकूं पीयकरि परम संतोषकूं प्राप्त भई ॥ ६७ ॥ भव्यनिके समूह पपीहानिकी नांई मेघकी ध्वनिसमान जो प्रभुकी दिव्यध्वनि ताहि सुनिकरि परमहर्षकूं प्राप्त भए ॥ ६८ ॥ अर अशोकवृक्षकी शाखानिपरि आरूढ हुते देवरूप मयूर ते मेघकी गर्जनासमान दिव्यध्वनिकूं सुनिकरि मधुर शब्द करते नृत्य करते भए ॥ ६९ ॥ वे भगवान सब जीवनिके रक्षक महादेदीप्यमान कर्मकाष्ठके जरायबेकूं अग्निसमान, तिनिकूं पायकरि भव्यजीवरूप रत्न महाविशुद्धताकूं धरते परमक्रांतिकूं प्राप्त होते भए ॥ ७० ॥ तासमैं भरतका लघुभ्राता पुरिमतालपुरका राजा श्रीमान् वृषभसेन महाबुद्धिवान शूरवीर परमपवित्र धीरवीरनिमैं धोरी ॥ ७१ ॥ सुमतिका सागर मन इंद्रियका जीतनहारा गुरुके निकट प्रतिबोधकूं पायकरि जिनदीक्षा धरि आदि गणधर भया ॥ ७२ ॥ सो सप्तऋद्धिकरि मंडित तपो दीप्तिकरि संयुक्त अधिक दिपता भया जैसा शरदऋतुविषैं सूर्य दिपै, दूर कीया है अंधकारका उदय जानैं ॥ ७३ ॥ अर श्रीमान् कुरुवंशका शिखामणि राजा सोमप्रभ अर श्रेयांस ए दोऊ भाई अर और कैयक राजा दीक्षा धारि गणधर भए ॥७४॥ अर भरतकी छोटी बहन ब्राह्मी आर्जिकाके व्रत धारि आर्जिकानिमैं मुख्य भई, देवनिकरि पूज्य ॥१७५॥ सो राजकन्या राजहंसीसमान सुंदर शब्दकी बोलनहारी पाया है वैराग्य जानैं दीक्षारूप शरदकी नदीके शीलरूप पुलिन विषैं निवास करती सोहती भई ॥७६॥ अर ब्राह्मीकी छोटी बहन सुंदरी पाया है वैराग्य जानैं सो ब्राह्मीके

४६५

पीछें दीक्षा धारती भई अर औरहू वैराग्यविषैं पारायण अनेक राजानिकी रानी गुरुकी वाणी सुनि अर्जिकाके व्रत धारती भई ॥ ७७ ॥ अर श्रुतकीर्त्तिनामा महाबुद्धिवान श्रावकके व्रत धारता भया, देशव्रती जे गृहस्थ अणुव्रती तिनिमैं मुख्य भया ॥ ७८ ॥ अर एक प्रियव्रतानामा स्त्री सो अणुव्रत धारि श्राविकाके व्रत धारती भई महाधीर पवित्र है चित्त जाका महासती निर्मलचित्त जे स्त्री तिनिमें अग्रेसरी होती भई ॥ ७९ ॥ प्रभुकी कैवल्यप्राप्तिके समैं और भी वहुत पृथ्वीविषैं उत्तम अनेक पुरुष परमऋद्धिके धारी योगीश्वर होते भए ॥ ८० ॥ अर प्रतिबुद्ध भया भरतका भाई अनंतवीर्य सो जिनदीक्षा धरि देवनिकरि पूजित भया अर या भरतक्षेत्रविषैं चौथेकालकी आदि मोक्षगामीनिमें आदि भया। भावार्थ—प्रथमही अनंतवीर्य मुक्त भया ॥ ८१ ॥ अर मारीच टारि सवही तापस ऋषि भट्टारकके निकट प्रतिवोध पाय महामुनि भए ॥ ८२ ॥ वहुरि पवित्र है बुद्धि जाकी ऐसा भरत प्रभूकूं पूजिकरि निजपुरकूं सन्मुख भया. चक्रके प्रभावकरि दिग्विजयका है उद्यम जाकै ॥ ८३ ॥ अर महाबुद्धिवान जवान बाहुवली अर और सब भरतके भाई जगतगुरुकूं वंदि भरतके लार भए ॥ ८४ ॥ अथानंतर ते भाई भरतेश्वररूप जो भानु ताकै संगि चालते भए जैसें दिनकी आदि सूर्यकी किरण सूर्यके लार उदयकूं प्राप्त होंहि। किरण सब दिशानिमें प्रकाश करनहारी हैं अर भाई हू सब दिशानमैं उद्योत करनहारे हैं, कैसा है भरत—भानुसमान है दिव्य प्रभावका विस्तार जाकै सूर्य तो उदयकाल आरक्तताकूं धरै है. अर इह उदय कहिए प्रताप ताविषैं राग कहिए सर्व प्रजासूं अनुराग धारै है, अर सूर्य तो अंगीकार कीया है अरुणनामा सारथी अर भरत अंगीकार कीये हैं पुरोहित प्रधान सेनापत्यादि मुख्य मनुष्य. अर दिनकर तो तिमिरकूं जीतै है अर चक्रधर पृथ्वीकूं जीतै है ॥ १८५ ॥ सो नवनिधिका पति पृथ्वीपति भरत परमहर्षसूं अपनी परमपुरी जो अयोध्या ताविषैं प्रवेश करता भया। कैसी है अयोध्या—जिनवाणीसमान महामनोहर है। कैसी है जिनवाणी—अपनें भीतर धरे हैं रत्नादिरूप समस्त पदार्थनिके समूह जानें, अर कैसी है पुरी—अपनें भीतर

धरे हैं रत्नादिक समस्त द्रव्यनिके समूह जानै। बहुरि कैसी है जिनवाणी—विस्तीर्ण हैं उज्ज्वल अक्षर जामैं अर कैसी है पुरी—विस्तीर्ण हैं क्षत्रियादि उज्ज्वल वर्णजामैं। बहुरि कैसी है जिनवाणी केवली श्रुतकेवलीनिकरि करी है महिमा जाकी अर कैसी है पुरी—उत्तम प्राणीनिके समूहकरि प्रशंसायोग्य है। बहुरि कैसी है जिनवाणी-अनेक नयका समूह ताके संबंधकरि गुरुकहिए गरिष्ठ है, अर कैसी है पुरी—नीतिका समूह ताके संबंधकरि गरिष्ठ है अथवा नीतिका करणहारा जो चक्र ताके संबंधकरि गरिष्ठ है। बहुरि कैसी है जिनवाणी—महाशुद्ध है हिंसादि दोषनितैं रहित है, अर कैसी है पुरी—पापक्रियातैं रहित शुद्ध है अर जीवनिकी पोषनहारी है। बहुरि कैसी है जिनवाणी—परम संतोषकी करणहारी है अर पुरीहू परमसंतोषकी करणहारी है जाहि निरखे नेत्रनिकूं आनंद होय। बहुरि कैसी है जिनवाणी—विश्वास्या कहिए विश्वास योग्य है अथवा विश्वतोमुखी कहिये सब नयनिमें सन्मुख है अर कैसी है पुरी विश्वास योग्य है अर विश्वतोमुखी कहिए च्यारू तरफ हैं दरवाजे जाके। बहुरि कैसी है जिनवाणी—जीवदयारूप ध्वजाकूं धरै है अर कैसी पुरी ध्वजानिकरि शोभित है ॥ १८६ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवद्धर्मदेशनोपवर्णन नाम चौवीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २४ ॥

अथ पचीसवां पर्व।

अथानंतर भरतराजऋषिके गए पीछैं अर दिव्यध्वनिके व्याख्यान होय चुके पीछैं पवनरहित समुद्रकीसी नांईं सभा निश्चल तिष्ठी ॥ १ ॥ धर्मरूप जलकी वर्षाकरि सींचे जगतके प्राणीरूप वनके वृक्ष जिनि ऐसे भगवान वर्षाके मेघसमान ज्ञानरूप अमृतकी वर्षाकरि मौनरूप विराजे ॥ २ ॥ कल्पवृक्षकी नांईं मनवांछित फल देवेकूं समर्थ, विश्रामकूं पाए हैं तीन जगतके प्राणी जिनिके चरणनिकैं समीप ॥ ५ ॥ अर सूर्यकी नांईं दूर कीया है मोहरूप अंधतमका उदय जिनि अर नव केवललब्धि तेई भई किरण तिनिके समूहकरि

विराजमान हैं ॥ ४ ॥ अर महा मोटी खानिकी नांईं गुणरूप रत्ननिकी राशिकरि संयुक्त अैसे भगवान जगतके पति चिंतवनमैं न आवै अनंत विभव जिनिका ॥ ५ ॥ अर च्यारिप्रकार मुनिनिके समूहकरि मंडित अैसे सोहै हैं जैसा भद्रसालादि च्यार वननिकरि सुमेरुपर्वत सोहै। ते च्यारिप्रकार मुनि कैसे— ऋषि कहिए ऋद्धिधारी अर मुनि कहिए अवधि मनःपर्ययज्ञानी अर यति कहिए श्रेणीकूं सन्मुख अर अनगार कहिए घरके त्यागी सवही साधु ॥ ६ ॥ अैसे भगवान सकल मुनिनिके नाथ अष्ट प्रातिहार्यकरि मंडित पूर्ण हैं पंचकल्याणक जिनिकै अर चौंतीस अतिशयकरि शोभित ऋद्धिकरि पूर्ण, तीन जगतके प्रभु ॥ ७ ॥ तिनिकूं सहस्र नेत्र करि निरखता सौधर्म इंद्र समाधानरूप है चित्त जाका सो अतिप्रीतिका भर्‍या प्रभुकी स्तुति करिवेकूं उद्यमी भया ॥ ८ ॥ हे देव ! मैं बुद्धिबलकरि हीन हूं, केवल तेरी भक्तिका प्रेर्‍या तिहारी स्तुति करिवेकूं उद्यमी भया हूं, तुम परमज्योति गुणरूप रत्ननिकी खानि हो ॥ ९ ॥ जे भक्तिकरि तुम्हारी स्तुति करै हैं तिनिकै विशेष फलसंपदा स्वयमेव प्रगट होय है, अैसा निश्चय करि हम तुमकूं स्तवै हैं ॥ १० ॥ तिहारे पवित्र गुणनिका वर्णन सो स्तुति अर स्तुतिके करणहारे भव्यजीव निर्मल है बुद्धि जिनिकी अर स्तुति करिवेयोग्य तुम सकल अर्थ पूर्ण अर स्तुतिका फल निर्वाणसुख ॥ ११ ॥ मनकरि अैसा विचारि निर्वाणसुखकै अर्थि हम तिहारी स्तुति करिवेकी इच्छा करै हैं। हे प्रभो ! कृपादृष्टि करि हमकूं पवित्र करो तुम सनातन कहिये नित्य हो ॥ १२ ॥ तिहारे गुणनिकरि प्रेरी जो भक्ति सो स्तुतिके मार्गविषैं हमकूं उद्यमी करै है तातैं हम अनुरागरूप स्तुतिके मार्गविषैं लागे हैं ॥ १३ ॥ तुमविषैं अल्पहू भक्तिकरिथकी महाफलसंपदाकूं दे है। हे प्रभो ! कल्पवृक्षकी सेवा जैसें प्राणीनिकूं महाफल देहै ॥ १४ ॥ तिहारा यह शरीर कपटरहित मोहरूप बैरीसूं जीतपनां प्रगट दिखावै है, रागी पुरुषनिके आभूषणादि रागद्वेषादि दोषनिके आवेशके विकार हैं ॥ १५ ॥ तिहारा शरीर जगतका आभूषण निराभरण है तौऊ अति मनोहर भासै है जो आपही देदीप्यमान भुवनका आभूषण ताहि और आभूषण कहा चाहिये?

है तौऊ अति मनोहर भासै है जो आपही देदीप्यमान भुवनका आभूषण ताहि और आभूषण कहा चाहिये ?

॥ १६ ॥ हे प्रभो तिहारे सिरविषैं शिखाका बंध नांही अर सेहुरा नांही अर मुकुटका भार नांही तथापि सिर अतिमनोहर है ॥ १७ ॥ अर मुखविषैं भौंहका भंग नांही अर होठनिका डसना नांही अर तुम शस्त्रविषैं हाथ न धन्या तथापि कर्मशत्रुनिकूं हणतें भए ॥ १८ ॥ अर नीलकमलके दलसमान तिहारे नेत्र सो तुम मोहरूप शत्रुके प्रहारविषैं आरक्त न कीए, हे देव ! तिहारी अद्भुत शक्ति है ॥१९॥ हे जिनेंद्र तिहारे दोऊ नयन कटाक्षरहित विलोकनकूं धरे महासौम्यतारूप सो कामरूप वैरीसूं जीतपना प्रगट करे है ॥२०॥ तिहारी दृष्टिकी निर्मल दीप्ति हमारे सिरकूं स्पर्शतीसंती हमकूं पवित्र करै है मानूं जगतकूं पवित्र करनहारी एक शांतरसकी धाराही है ॥ २१ ॥ तिहारा यह मुख प्रफुल्लित कमलकी शोभाकूं जीते है अर अपनी क्रांतिरूप चांदनीकरि सरदके चांदकी नांईं जगकूं उज्ज्वल करै है ॥ २२ ॥ हे जिनवर ! तिहारा मुख अधिक हास्यतैं रहित अर हुंकारतैं रहित होठ डसिबेतैं रहित सो तिहारी वीतरागता सुबुद्धीनिकूं प्रगट करै है ॥ २३ ॥ अर तिहारे मुखतैं उपजी पावित्र सरस्वती सो देदीप्यमान दीप्तिकी नांईं अज्ञानरूप अंधकारकूं दूरि करती संती सोहै है, जीती है ऊगते सूर्यकी ज्योति जानैं ॥ २४ ॥ अर तिहारे मुखरूप कमलसूं लगि रही देवनिके नेत्रानिकी पंक्ति सो मानूं भंवरनिकी पंक्तिकी नांईं मुखकमलकी सुगंधता ग्रहती सोहै है ॥२५॥ भव्यजीवरूप भंवर तिहारे मुखरूप कमलतैं निकसे वचन तिनिकूं मकरंदकी नांईं अतृप्त भए पीयकरि परम आनंदकूं प्राप्त होय हैं ॥ २६ ॥ तुम एक उर मुख हौ तौऊ च्यारि उर चतुर्मुखी दीखौ हो सो यह तिहारा अद्भुत तेजोगुणका माहात्म्य निश्चयसेती प्रगट दीखै है, तुम एकमुखही सर्वतोमुख हौ ॥२७॥ ए तिहारे वचनरूप किरण सब ओर विस्तरै हैं। हे जिनसूर्य ! तिरजंचनिहूके हृदयका अज्ञान तिमिर हरै हैं ॥ २८ ॥ तिहारे वचनरूप अमृतकूं पीयकरि अब हम सांचे अमर भए अबतक कहिबेके अमर हुते। हे देव ! ए तिहारे वचनरूप अमृत जन्म जरा मरण रोगके हरणहारे हमकूं बहोत प्रिय है ॥ २९ ॥ हे जिनेंद्र ! तिहारा वदनकमल ऐसा सोहै है मानूं धर्मका निधानही है। कैसा है मुख–खिरै हैं वचनरूप

अमृत जातैं वहुरि कैसा है—भव्य जीवनिका पोषक है ॥ ३० ॥ हे देवाधिदेव ! तिहारे मुखरूप चंद्रतें निकसते ए वचनरूप किरण अज्ञानरूप तिमिरके हरणहारे सकल सभाके लोकनिकूं अत्यंत आह्लाद उपजावै हैं ॥३१॥ हे प्रभो ! यह वडा अचिरच है—विचित्ररूप ए वचन तिनिकी अनुक्रम रहित उत्पत्ति है सो तीर्थंकर पदका अैसाही माहात्म्य है। भावार्थ—भगवानकी वाणी एकैं लार सबजीव अपनी अपनी भाषामें समझें हैं ॥३२॥ अर पसेव रहित मलरहित महासुगंध शुभलक्षण दुग्धवर्ण रुधिर समचतुरस्र संस्थान वज्रवृषभनाराच संहननकूं धरै महादृढ तिहारा शरीर सोहै है ॥३३॥ तिहारा रूप नेत्रनिकूं आनंदकारी अर सौभाग्य चित्तका हरणहारा अर जगतकूं आह्लाद उपजावनेहारे तिहारे सुंदर वचन अर गुण अनुपम ॥ ३४ ॥ देह तौ तिहारी प्रमाणरूप अर जाविषैं वल अपार अैसा बल त्रैलोक्यविषैं औरका नाहीं जैसे स्वल्परूप दर्पणविषै गजका रूप समाय जाय तैसे तिहारे प्रमाणरूप शरीरविषैं अप्रमाण वल है ॥ ३५ ॥ ए दश अतिशय तौ तुम जन्म तैं लीएही उपजे हैं अर केवलज्ञान उपजे पीछैं और दश अतिशय प्रगट भए। तिहारे समोसरणके च्यारू उर सौ योजन दुर्भिक्ष न परे अशनपानादि सर्व सुलभ तिहारी महिमाकरि इति भीति न होय ॥३६॥ अर तिहारा आकाशविषैं गमन, पृथ्वीकूं न स्पर्शता, याहीते मानूं होता भया—जो एते देव असुरादिकका बोझ पृथ्वी सहारिवे समर्थ नांही पृथ्वीकूं पाय न परै एसे तिहारे पायनिका बोझ धरती सहारिवे समर्थ नांही देवनिका असुरनिका भार सहारै पर तिहारा वोझ न सहारि सकै ॥ ३७ ॥ अर महाक्रूर हिंसक जीव जीवनिकूं मारि न सकैं तुम जीवनिकूं संजीवन औषध समान धर्मोपदेश देवेविषैं उद्यमी सो तिहारे समीप हिंसा कैसै होय ? ॥ ३८ ॥ अर तुम क्षीणमोह तिहारे अनंत सुखके उदयतें भोजन नांही, क्षुधाके क्लेशकरि वाधारूप जो जीव सो कवलाहार करैं हैं ॥ ३९ ॥ जे कुबुद्धी असातावेदनीके उदयतैं तिहारे भोजन मानैं हैं तिनिके अज्ञानरूप वायके निवारिवेकूं विवेकरूप पुराणां घृत देना ॥ ४० ॥ हे नाथ ! घातियाकर्मके नाश होतें वेदनीरूप विषकी शक्ति घाती गई सो तुमविषैं कछु करिवे समर्थ नांही जैसें मंत्रकी

कर्मके नाश होतें वेदनीरूप विषकी शक्ति घाती गई सो तुमविषैं कछु करिवे समर्थ नांही ऐसें मंत्रकी शक्तिकरि बलरहित भया विष कछु करिवे समर्थ नांही ॥४१॥ हे ईश ! असाता वेदनीका उदय घातियानके सहायतैं असाता उपजावै है अर घातियानिके नाशतैं तुमविषैं असाताका उदय कछु करिवे समर्थ नांही। हे त्रिलोकनाथ! सामग्रीकरि फलका उदय होय है।४२। तुम ईश्वर, तिहारे निकट ईति भीति कदाचि नांही अर कोऊ उपसर्गगति नांही तुम जगतके पालक लीलामात्र पखाले हैं पापरूप कलंक जिनि ॥४३॥ तुम केवलज्ञानरूप नेत्रके धारक अनंतसुखका है प्रकार जिनिकै सो च्यारि घातियानके नष्ट होतैं चतुर्मुखता तुमही विषैं सोहै है ॥ ४४ ॥ तुम सर्व विद्याके ईश्वर योगीश्वरनिके नाथ चतुरानन अविनश्वर आत्मस्वरूप अतींद्रिय ज्योतिमई सकलकूं प्रकाशते सोहौ हौ ॥४५॥ हे देव, हे अधीश्वर ! तिहारे शरीरकै छाया नांही अर आंखिनकै टिमक न लागै, तिहारा शरीर तेजोमय दिव्य परमऔदारिक है ॥ ४६ ॥ तुम सिरपरि तीन छत्र धरतेहू छायारहित दीखौहौ तिहारे शरीरकै छाया नांही सो महत्पुरुषनिकी अद्भुत वारता है अथवा तिहारा प्रतापही ऐसा है ॥ ४७ ॥ तिहारा मुखरूप कमल टिमकरहित है निश्चल नेत्र जाके ताहि निरखिवेकूं निश्चय सेती देवनि नेत्रनिका टिमकनां निवारचा है। भावार्थ—देवनिकै प्रभुके निरखिवेका अति अनुराग ताहीतैं देव अनादिके निमेष रहित नेत्र हैं॥ ४८ ॥ अर तिहारे नख केश बढै नांही जैसेके तैसे रहें, सोप्रगट करै है तिहारा देहविषैं सप्त धातुका अभाव, तिहारा देह परम औदारिक शुद्ध स्फटिक मणिसमान निर्मल है। सात धातुके नाम—पीब लोही मांस मेद अस्थि मींगी वीर्य ॥ ४९ ॥ ए दस अतिशय केवल उपजे पीछैं कहे ए उदार गुण औरनिमैं न पाइए, तिनि स्वयमेव आकर तिहारा आश्रय कीया और कोऊ शरणां न देख्या, गुणनिकूं तिहाराही शरण है सो तुमही विषैं निवास कीया ॥ ५० ॥ ए रूप सौंदर्य क्रांति दीप्त्यादिक गुण इंद्रादिक देवनिकूं अतिप्रिय अचिरज है, ए गणधरदेव महा गुणवान कर्मबंधनके दूर करणहारे तिहारी उपासना करै हैं तुमसूं एकरूप होय रहे हैं, सो ए ही उचित है शिष्यकूं स्वामीके छांदे (अनुकूल) चालना, तुम वीतराग सो एऊ वीतरागताकूं प्राप्त भए हैं

॥ ५१ ॥ अर यह मंद मंद पवनकरि हालै हैं शाखारूपकर जाके सो मानूं शाखारूप करनिकूं हलावता तिहारे यह अशोकवृक्ष हर्षकरि नृत्यही करै है ॥ ५२ ॥ अर ए चवंरनिके समूह देवनि लीलाकरि ढारे तुम सिरि ढरै हैं सो चलायमान क्षीरसागरको लहरि तिनिसूं मानूं स्पर्द्धा ही करै हैं ॥५३॥ अर ए तिहारे तीन छत्र मोतोनिकी झालरनिकरि शोभायमान चंद्रमासारिखे निर्मल आकाशविषैं सोहै है मानूं वीतराग भावके अंशही हैं ॥५४॥ अर तिहारे यह ऊंचा सिंहासन रत्नमई सिंहनिपरि धऱ्या अति सोहै है मानूं तिहारे स्पर्शतें रत्नमई किरणनिकरि हर्षके अंकुरही धारे हैं ॥ ५५ ॥ अर ए बहुकोटि देवदुंदुभी धरती आकाशकूं पूरिकरि मधुर ध्वनि करै हैं सो मानूं तिहारी जीतिका उच्छवही गावै हैं ॥ ५६ ॥ अर तिहारी गंभीर जो दिव्यध्वनि ताकी समानता करिवेकूं उद्यमी ए साढा बारा कोडि जातिके देवदुंदुभी बाजै हैं ॥५७॥ अर आकाशतें यह पुष्पवृष्टि देवनिकरि कीजिए है सो मानूं अतिअनुरागकूं प्राप्त भई स्वर्गकी लक्ष्मी ताकरि प्रेरे कल्पवृक्षही वृष्टि करै हैं ॥ ५८ ॥ अर हे जगतपति ! तिहारे शरीरकी प्रभाका मंडल सब उर धरती आकाशविषैं उद्योत करता सभाके लोकनिकूं निरंतर प्रभा ताकी शोभा जनावै है ॥ ५९ ॥ अर तिहारे चरणनिके नखनिकी किरणनिका समूह दसूं दिशाविषैं विस्तरि रह्या है सो मानूं तिहारे चरणरूप कल्पवृक्षनितैं अंकुरेही निकसे हैं ॥ ६० ॥ ए तिहारे चरणनिके नखरूप चंद्रकिरण सकलकूं आह्लाद उपजावनहारे हमारे सिरपरि आ परे हैं सो मानूं तिहारे कृपाके अंशही हैं ॥ ६१ ॥ यह मनोज्ञ लक्ष्मीरूप कलहंसिनी तिहारे चरणकमलकी छायारूप सरोवरी ताहि अवगाहै है, कैसी है छायारूप सरोवरी—नखनिकी क्रांति सोई है मृणाल जाविषैं ॥ ६२ ॥ तिहारे चरणकमलजुगलकी पगथली अतिआरक्तता धरे सोहै है मानूं मोहरूप वैरीके दलनतैं लागी है रक्तकी आली (गीली) छटा ताहिकरि अत्यंत अरुण भासै है ॥ ६३ ॥ तिहारे चरणनिके नखनिकी क्रांतिका समूह सोई भया सरोवर ताविषैं प्रतिविंबित भए देवांगनानिके मुख ते कमलकी शोभाकूं विस्तारै है ॥ ६४ ॥ तुम स्वयंभू कहिये अनादिसिद्ध अजन्मा सो

गनानिके मुख ते कमलकी शोभाकूं विस्तारे है ॥ ६४ ॥ तुम स्वयंभू कहिये अनादिसिद्ध [illegible] त भए देवां- [illegible] अजन्मा सो

तिहारे तांई नमस्कार होहु, तुम आपकूं आपकरि आपविषैं उपजाय प्रगट भए हौ, उपजी है आत्मवृत्ति जिनिके अर अचिंत्य है वृत्ति जिनिकी ॥६५॥ हे जगतके पति ! तिहारे तांई नमस्कार होहु अर ए अनंत-चतुष्टयविभूति अथवा समवसरणविभूति ताके नाथ हौ तुमकूं नमस्कार होहु, हे विदांवर ! कहिए ज्ञानीनिमैं श्रेष्ठ अर हे वदतांवर ! कहिये वक्तानिमैं श्रेष्ठ तुमकूं हमारा नमस्कार वारंवार होहु ॥ ६६ ॥ हे देव ! जे बुद्धिवान हैं ते तुमकूं काम शत्रुका हंता मानैं हैं। इंद्रके मुकुट तिनिविषैं कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी माला ताकरि अर्चित हैं चरण जिनिके ऐसे तुम सो हम तिहारी स्तुति करै हैं नमस्कार करै हैं ॥ ६७ ॥ ध्यान-रूप कुठारकरि काटेहैं महासघन घातियाकर्मरूप वृक्ष जिनि ऐसे तुम सो अनंतभव संतान जीतिबेतैं अनंतजित् नाम पाया ॥ ६८ ॥ अर त्रैलोक्यके जीतिबेकरि पाया है महामद जानैं ऐसा अतिदुर्जय कालरूप राजा ताहि जीतिकरि हे जिनराज ! तुम मृत्युंजय भये ॥ ६९ ॥ काटे हैं समस्त भवबंधन अर सकल भव्यनिके बांधव ऐसे तुम ईश्वर जन्म जरा मृत्युके अंतकरण हारे तातैं त्रिपुरारि कहाये ॥ ७० ॥ हे ईश्वर ! त्रिकाल गोचर समस्त पदार्थ तिनिका ज्ञायक केवलनामा नेत्र ताके धारक तुम तातैं त्रिनेत्र हौ ॥ ७१ ॥ अर मोहरूप अंधासुरके मर्दनतैं तुमकूं अंधकांत कहैं हैं अर जीवके अरि अष्ट कर्म तिनिमैं च्यारि घातिया तिहारे नांही तातैं तुम अर्द्धनारीश्वर हौ ॥ ७२ ॥ अर शिवपद जो निर्वाण पद ताके अध्या-सतैं तुम शिवहौ अर पापरूप वैरीके हरणहारे हर हौ अर लोकविषैं सुखके करणहारे शंकर हौ अर सुख विषैं सुखकरि उपजे तातैं तुम संभव हौ ॥ ७३ ॥ अर जगतविषैं ज्येष्ठ तातैं वृषभ हौ अर अनंत अपार अग्रेश्वर मुख्य गुण तिनिके उदयकरि तुमकूं पुरु कहैं हैं अर नाभितैं उपजे तातैं नाभेय कहै हैं, तुम इक्ष्वाकु-कुलनंदन हौ ॥ ७४ ॥ तुम एक पुरुष हौ अर तुम दोय लोकके लोचन हौ, तुम तीन प्रकार जान्या है मोक्षमार्ग अर तीन ज्ञानके धारक त्रिज्ञ हौ ॥ ७५ ॥ अर तुम संपूर्ण बुद्धि च्यारि शरण च्यारि मंगल ए ही लोकोत्तमरूप हौ अरहंत सिद्ध साधु केवलीभाषित धर्म ए ही शरण ए ही मंगल ए ही लोकोत्तम अर

४७३

तुम पंचपरमेष्ठी स्वरूप पवित्र हौ, हमकूं पवित्र करौ ॥ ७६ ॥ स्वर्गावतरण कल्याणविषैं तुम सद्योजात कहाए सो तुमकूं नमस्कार अर जन्माभिषेकविषैं वाम कहिए अति मनोहर रूप दिखाया तातैं वामदेव कहाए, सो हे आदिदेव ! तिहारे तांई नमस्कार ॥ ७८ ॥ अर वैराग्यकल्याणक विषैं तुम परमशांतभावकूं प्राप्त भए तातैं अघोर कहाए, घोरनाम भयंकरका अर अघोरनाम शांतका अर केवलज्ञानकी सिद्धिविषैं तुम जगतके ईश्वर सो तिहारे तांई हमारा नमस्कार ॥ ७९ ॥ अर अब शुद्धात्मस्वरूपकरि मुक्तिपदकूं प्राप्त होहुगे सो होणहार वह परमअवस्था ताके धरणहारे तुम सो तिहारे तांई हमारा नमस्कार होहु ॥८०॥ ज्ञानावरणीकर्मके नाशतैं तुम अनंतज्ञानी अर दर्शनावरणीके नाशतैं तुम विश्वद्रष्टा, हे लोकेश्वर ! तिहारै तांई नमस्कार ॥ ८१ ॥ अर दर्शनमोहके क्षय करणहारे निर्मल क्षायिक सम्यग्दृष्टी तिहारे तांई नमस्कार अर चारित्रमोहके घातनहारे वीतराग महातेजोनिधि परम पराक्रमी तिहारै तांई नमस्कार ॥ ८२ ॥ हे अनंतवीर्यके स्वामी ! अनंत सुखरूप ! तिहारै तांई नमस्कार, हे अनंत ज्ञानके धारक लोकालोक अवलोकन करणहारे तिहारै तांई नमस्कार ॥८३॥ हे अनंतदानके दाता ! तिहारै तांई नमस्कार, हे अनंतलाभ के स्वामी तिहारै तांई नमस्कार, हे अनंतभोग अनंत उपभोगके भोक्ता तिहारै तांई नमस्कार ॥ ८४ ॥ हे परमयोगरूप योगींद्र ! तिहारै तांई नमस्कार, हे अयोनिसंभव ! चौरासीलाख योनितैं रहित तिहारै तांई नमस्कार, हे परमपवित्र ! परमऋषि ! तिहारै तांई नमस्कार ॥ ८५ ॥ हे परमविद्याके स्वामी अविधिमार्गके छेदनहारे तिहारे तांई नमस्कार। हे परमतत्त्व परमात्मा तिहारे तांई नमस्कार ॥ ८६ ॥ हे परम रूप परम प्रतापके धारक तिहारे तांई नमस्कार। हे परममार्ग परमेष्ठी तिहारै तांई नमस्कार ॥ ८७ ॥ हे परमधामके स्वामी परम ज्योति तिहारै तांई नमस्कार। हे तिमिरकै पार उत्कृष्टस्वरूप महातेजस्वी परात्पर तिहारे तांई नमस्कार ॥ ८८ ॥ हे. क्षीणकलंक क्षीणबंध तिहारै तांई नमस्कार। हे क्षीणमोह क्षीणदोष वीतराग तिहारै तांई नमस्कार ॥ ८९ ॥ हे पंचमगतिके प्राप्त करणहारे सर्वगत सर्वव्यापक

क्षीणदोष वीतराग तिहारे तांई नमस्कार ॥ ८९ ॥ हे पंचमगतिके प्राप्त करणहारे सर्वगत सर्वव्यापक

तिहारे तांई नमस्कार । हे अतींद्रिय सुखके स्वामी मन इंद्रिय रहित तिहारैं तांई नमस्कार ॥९०॥ हे कायरूप बंधनतैं मुक्त अकाय ! तिहारैं तांई नमस्कार । हे अयोग मन वचन कायके योगतैं रहित योगींद्र तिहारै तांई नमस्कार ॥ ९१ ॥ हे वेदरहित निर्वेद ! हे अकषाय ! तिहारै तांई नमस्कार । परम योगीश्वरनिकरि बंदनीक हैं चरण जुगल जिनिकै ऐसे तुम, सो तिहारै तांई नमस्कार ॥ ९२ ॥ हे परमविज्ञान परम संयम तिहारै तांई नमस्कार हे परमदृष्टि परमार्थके देखनहारे जगतके पालक तिहारै तांई नमस्कार ॥९३॥ हे लेश्या-रहित ! शुद्ध लेश्याके परसनहारे तिहारै तांई नमस्कार । हे भव्य अभव्य अवस्था रहित निर्वाणरूप तिहारै तांई नमस्कार ॥९४॥ सैनी असैनी दोऊ अवस्था रहित निर्मल आत्मा तिहारै तांई नमस्कार । हे च्यारि संज्ञा-राहित क्षायिकदृष्टि तिहारै तांई नमस्कार ॥९५॥ हे निराहार सदा तृप्त परमक्रांतिके धारक समस्त दोषरहित संसारसमुद्रके पारगामी तिहारै तांई नमस्कार ॥ ९६ ॥ हे अजर अमर अजन्मा तिहारै तांई नमस्कार । हे अचल अविनश्वर अक्षर तिहारै तांई नमस्कार ॥९७॥ हे देव ! तिहारै गुणनिका स्तोत्र तौ दूरही रहौ गुण अनंत हैं तातैं तिहारे नाम स्मरणमात्रकरि हम उपासनां कीया चाहे हैं ॥९८॥ प्रसिद्ध एक हजार आठ लक्षण तिहारे, तुम बाणीके पति सो एक हजार आठ नामनिकरि तिहारी स्तुति करे हैं, परमपदकी प्राप्तिके अर्थि ।९९। श्रीमान् कहिये अनंतचतुष्टयविभूतिके नाथ अर स्वयंभू कहिए स्वयमेव अपनी शक्तिकरि प्रगट भए अर वृषभ कहिए धर्मकरि शोभायमान अर संभव कहिए सुखकरि उपजे अर शंभु कहिए सुखके भोक्ता अर आत्मभू कहिए आपकरि उपजे अर स्वयंप्रभ कहिए स्वयं प्रकाशक अर प्रभु कहिये सबनिके स्वामी महासमर्थ, भोक्ता कहिये आनंदके भोक्ता अर विश्वभू कहिये समस्तकी उत्पत्तिके ज्ञायक अर अपुनर्भव कहिये बहुरि भव धरना नांही ॥ १०० ॥ अर विश्वात्मा कहिये सकलके हितू अनंतस्वरूप अर विश्वलोकेश कहिये समस्त लोकके ईश्वर अर विश्वतश्चक्षु कहिये सकलके नेत्र अर अक्षर कहिये अविनाशी विश्ववित् कहिये सकलके वेत्ता अर विश्वविद्येश कहिये समस्त विद्याके स्वामी अर विश्वयोनि कहिए सकलयोनिका स्वरूप जानन-

हारे अर आप योनिरहित अर अनश्वर कहिए मरणरहित ॥१०१॥ अर विश्वद्रष्टा कहिये समस्तके देखनहारे अर विभु कहिए सकलके पति परमविभवसंयुक्त अर विधाता कहिये धर्मकी प्रवृत्तिके कर्त्ता अर विश्वेश कहिए सर्वके ईश्वर अर विश्वलोचन कहिए जगतके लोचन अर विश्वव्यापी कहिए सर्वव्यापी अर विधिर्वेधा कहिए विधिविधानके कर्त्ता अर शाश्वत कहिए सदा सासते अर विश्वतोमुख कहिए सबसूं सन्मुख ॥ २ ॥ अर विश्वकर्मा कहिए सबनिके भले बुरे जानैं, अर जगज्ज्येष्ठ कहिए जगतमें वडे अर विश्वमूर्त्ति कहिए जगतमें अनंतमूर्त्ति अर जिनेश्वर कहिए गणधरनिके स्वामी अर विश्वदृक् कहिए सकलदर्शी अर विश्वभूतेश कहिए समस्त जीवनिके ईश्वर अर विश्वज्योति कहिए अनंत ज्योति जगतकूं प्रकाशनहारे अर अनीश्वर कहिए जिनिका स्वामी कोऊ नांही आप सबनिके स्वामी ॥ ३ ॥ अर जिन कहिए कर्मनिके जीतनहारे अर जिष्णु कहिए प्रकाशरूप देदीप्यमान अर अमेयात्मा कहिए प्रमाणरहित है ज्ञान जिनिका अनंतरूप अर विष्णु कहिए सकल द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं व्यापक घट घटके अंतरजामी अर जगत्पति कहिये जगतके पति अर अनंताजित् कहिये अनंत संसारके जीतनहारे अर अचिंत्यात्मा कहिये चिंतवनमैं न आवै स्वरूप जिनिका अर भव्यबंधु कहिये भव्यजीवनिके बंधु परमहितकारी अर अबंधन कहिए कर्मबंधनतैं रहित ॥ ४ ॥ अर युगादिपुरुष कहिए कर्मभूमिकी आदिमें परमपुरुष अर ब्रह्मा कहिये विस्ताररूप अर पंचब्रह्ममय कहिये पंचपरमेष्ठीस्वरूप अर शिव कहिये कल्याणस्वरूप, पर कहिये सर्वोत्कृष्ट अर परतर कहिए उत्कृष्टतैं उत्कृष्ट अर सूक्ष्म कहिये अवधि मनःपर्ययज्ञानीनितैं अगम्य एक केवलज्ञानकरिही गम्य अर परमेष्ठी कहिये परमइष्ट अर सनातन कहिये नित्य स्वयंज्योति कहिये स्वयमेव प्रकाशरूप अर अज कहिये काहूकरि उपजै नांही अर अजन्मा कहिये शरीरधारणतैं रहित अर ब्रह्मयोनि कहिये आत्मयोनि ज्ञानकी खानि अर अयोनि कहिये योनिरहित अर मोहारिविजयी कहिये मोहरूप वैरीके जीतनहारे अर जेता कहिये सर्वजीत अर धर्मचक्री कहिये धर्मचक्रके धारक अर दयाध्वज कहिये दया-

जीतनहारे अर जेता कहिये सर्वजीत अर धर्मचक्री कहिये धर्मचक्रके धारक अर दयाध्वज कहिये दया-

रूप ध्वजाकूं धरै ॥ १०६ ॥ अर प्रशांतारि कहिये शांत कीये हैं रागादि रिपु जिनि अर अनंतात्मा कहिये अनंतगुणरूप अर योगी कहिये ध्यानारूढ अर योगीश्वरार्चित कहिये योगीश्वरनिकरि अर्चित अर ब्रह्मवित् कहिये ब्रह्मके वेत्ता आत्मानुभवी अर ब्रह्मतत्त्व कहिये मोक्षका स्वरूप जाननहारे अर ब्रह्मोद्यावित् कहिये ब्रह्मवचनके वेत्ता ब्रह्मवचन कहिये जिनवचन अर यतीश्वर कहिये यतीनिके ईश्वर ॥ ७ ॥ अर सिद्ध कहिये कृतकृत्य जिनिकूं कछु कार्य नांही अर बुद्ध कहिये महाज्ञानी अर प्रबुद्धात्मा कहिये जान्या हैं आत्मा जिनि अर सिद्धार्थ कहिये सिद्ध कीये हैं सकल अर्थ जिनि अर सिद्धशासन कहिये पूर्ण है शासन जिनिका अर सिद्धसिद्धांतवित् कहिये अनादिसिद्ध जो जैनसिद्धांत ताके वेत्ता अर ध्येय कहिये ध्यायबेयोग्य अर सिद्धसाध्य कहिये मुनिनिकरि साधिबेयोग्य अर जगद्धित कहिये जगत्के हितू ॥ ८ ॥ अर सहिष्णु कहिये सहनशील अर अच्युत कहिये अखंड अनंत कहिये अंतरहित अर प्रभविष्णु कहिये उत्कृष्ट समर्थतारूप परिणमनहारे अर भवोद्भव कहिये संसारथकी है उद्भव जिनिका। भावार्थ—जे सिद्ध भए ते संसारतैं भए जो चांवल भया सो सालितैं भया। अनंतज्ञानादिरूप है प्रगटपना जाका अर प्रभूष्णु कहिये समय समय स्वाभाविक परिणतिकरि परिणवे है अर अजर कहिये वृद्ध अवस्थारहित है अर अजय्य कहिये काहूतैं ग्रस्या न जाय अर भ्राजिष्णु कहिये प्रकाशरूप है अर अधीश्वर कहिये सकलका ईश्वर है अर अव्यय कहिये अविनाशी है ॥ ९ ॥ अर विभावसु कहिये बसै है प्रभा जाविषैं अर असंभूष्णु कहिये काहूके सहायकरि प्रकाशरूप नांही स्वतःसिद्ध है अर स्वयंभूष्णु कहिये स्वयमेव प्रगट प्रकाशरूप है अर पुरातन कहिये अनादिसिद्ध है अर परमात्मा कहिए उत्कृष्ट है आत्मा जाका अर परमज्योति कहिए महाज्योतिरूप है अर त्रिजगत्परमेश्वर कहिए तीन लोकका परमेश्वर है ॥ ११० ॥ अर दिव्यभाषापति कहिए दिव्यध्वनिका पति है अर दिव्य कहिए महा मनोज्ञ है अर पूतवाक् कहिए पवित्र हैं वचन जाके अर पूतशासन कहिये पवित्र है मार्ग जाका

अर पूतात्मा कहिये पवित्र है आत्मा जाका अर परंज्योति कहिए उत्कृष्ट ज्योतिरूप है अर धर्माध्यक्ष कहिए धमका अधिकारी है अर दमीश्वर कहिये मन इंद्रीनिके जीतनहारे यती तिनिका ईश्वर है ॥११॥ अर श्रीपति कहिए लक्ष्मीका पति है अर भगवान् कहिये महाज्ञानवान् है अर अर्हन् कहिए अराधिवेयोग्य है अर अरजा कहिए कर्मरजरहित है अर विरजा कहिए जाके प्रसादतें भव्यनिकी कर्मरज दूरि होय है अर शुचि कहिए महापवित्र है अर तीर्थकृत् कहिए धर्मतीर्थका कर्त्ता है अर केवली कहिए केवलज्ञानका धारक है अर ईशान कहिए जगतका ईश्वर है, पूजार्ह कहिए पूजा योग्य है अर स्नातक कहिए तीन वेद रहित पूर्णज्ञानी है अर अमल कहिए निर्मल है ॥ ११२ ॥ अर अनंतदीप्ति कहिए अनंतदीप्तिका धारक है अर ज्ञानात्मा कहिये ज्ञानरूप है अर स्वयंबुद्ध कहिए काहूकरि प्रतिबुद्ध न भया आपही महाप्रतिबुद्ध है अर प्रजापति कहिए प्रजाका पति है सबनिका राजा है अर मुक्त कहिये सर्वोपाधिरहित है अर शक्त कहिये समर्थ है अर निराबाध कहिए बाधारहित है अर निःकल कहिए शरीररहित है अर भुवनेश्वर कहिए तीन भुवनका ईश्वर है ॥ १३ ॥ अर निरंजन कहिए कर्म अंजनतें रहित है अर जगज्ज्योति कहिये जगतका प्रकाशक है अर निरुक्तोक्ति कहिये प्रमाणीक हैं वचन जाके अर निरामय कहिए रोगरहित है अर अचलस्थिति कहिये अचल है स्थिति जाकी अर अक्षोभ्य कहिए व्याकुलता रहित है अर कूटस्थ कहिये लोकके शिखर विराजे है सदानित्य है अर स्थाणु कहिये गमनागमनरहित है अर अक्षय कहिये क्षयरहित है ॥ ११४ ॥ अर अग्रणी कहिये सबनिमैं अग्रेसर है अर ग्रामणी कहिए समूहका स्वामी है अर नेता कहिए पृथ्वीका नाथ है सबनिका नियंता है अर प्रणेता कहिए शास्त्रका प्ररूपण हारा है अर न्यायशास्त्रकृत् कहिये युक्त्यागमका कर्त्ता है अर शास्ता कहिए दीक्षादायक है अर धर्मपति कहिए धर्मका पति है अर धर्म्य कहिए धर्मही है स्वरूप जाका अर धर्मात्मा कहिये धर्मात्मा है अर धर्मतीर्थकृत् कहिये धर्मतीर्थका कर्त्ता है ॥ १५ ॥ अर वृषध्वज कहिए धर्मकी है ध्वजा जाके अर

अर धर्मतीर्थकृत कहिये धर्मतीर्थका कर्त्ता है ॥ १५ ॥ अर वृषध्वज कहिए धर्मकी है ध्वजा जाके अर

वृषाधीश कहिए धर्मका स्वामी है अर वृषकेतु कहिये बैलकी है ध्वजा जाके अर वृषायुध कहिये धर्मही है आयुध जाकै अर वृष कहिये धर्मामृतकी वृष्टि करै है अर वृषपति कहिये परम धर्मका स्वामी है अर भर्त्ता कहिये सबनिका नायक है अर वृषभांक कहिए वृषभका है चिह्न जाके अर वृषोद्भव कहिए धर्मकरि प्रगट भया है ॥ ११६ ॥ अर हिरण्यनाभि कहिए नाभिराजाका धन है अथवा सुंदर है नाभि जाकी अर भूतात्मा कहिये विद्यमान है स्वरूप जाका अथवा सत्य है स्वरूप जाका अर भूतभृत् कहिये मंगलका धारक है अथवा जीविनिका पोषक है अर भूतभावन कहिये सत्य है मंगलरूप भाव जाका अर प्रभव कहिये उत्कृष्ट है उत्पाद जाका अर विभव कहिये भवतैं रहित है अर भास्वान् कहिये देदीप्यमान है अर भव कहिये समय समय स्वभावरूप है अर भाव कहिये परम पदार्थ है अपने स्वभावकूं सदा ध्यावै है अर भवांतक कहिये भवभ्रमणका अंतक है ॥ १७ ॥ अर हिरण्यगर्भ कहिये विभूति है जाके गर्भविषै अथवा गर्भकल्याणकविषैं रत्ननिकी वर्षा होय है अर श्रीगर्भ कहिये लक्ष्मी है अंतर्गत जाकै अर प्रभूतविभव कहिये अनंत है विभव जाका अर अभव कहिये उत्पत्तितैं रहित है अर स्वयंभू कहिये आपही प्रभु है अर प्रभूतात्मा कहिये विस्तीर्ण है स्वरूप जाका अर भूतनाथ कहिये जीवनिका नाथ है, जगत्प्रभु कहिये जगतका स्वामी है ॥ १८ ॥ अर सर्वादि कहिये सर्वकी आदि है, सर्वदृक् कहिये सर्वका द्रष्टा है, सार्व कहिये सर्वका हितू है अर सर्वज्ञ कहिये सर्वका ज्ञायक है अर सर्वदर्शन कहिये केवलदर्शनका धारक है अर सर्वात्मा कहिये सर्वका वल्लभ है अर सर्वलोकेश कहिये सर्व लोकका ईश्वर है अर सर्ववित् कहिये सर्वका वेत्ता है अर सर्वलोकजित् कहिये सर्वलोकका जीतनहारा है ॥ ११९ ॥ अर सुगति कहिये सुंदर है ज्ञान जाका पंचमगतिका कारण है अर सुश्रुत कहिये सुंदर है शास्त्र जाका सबनिकी भलै प्रकार सुनै है, घटघटविषैं अंतर्लीन है अर सुवाक् कहिये सुंदर है वचन जाकै अर सूरि कहिये सबनिका आचार्य है अर वहुश्रुत कहिये शास्त्रका पारगामी है अर विश्रुत कहिये शास्त्रतैं परै है,

जाहि शास्त्रहू न पाय सकै अर विश्वतःपाद कहिए अनंत किरणका धारक है अर विश्वशीर्ष कहिये विश्वका सीस है सवनिके सिर विराजै है लोकशिखरविषैं है निवास जाका अर शुचिश्रवा कहिए पवित्र है श्रवण जाका ॥ १२० ॥ अर पवित्र है ज्ञान जाका अर सहस्रशीर्ष कहिये अनंत सुखी है अर क्षेत्रज्ञ कहिये आत्माका ज्ञाता है अर लोकालोकका ज्ञाता है अर सहस्राक्ष कहिये अनंतदर्शी है अर सहस्रपात् कहिये अनंतवीर्यका धारक जीवनिका रक्षक है अर भूतभव्यभवद्भर्त्ता कहिये अतीत अनागत वर्तमान तीनूंकालका पति है अर विश्वविद्यामहेश्वर कहिये सकल विद्याका महेश्वर है ॥ २१ ॥ अर स्थविष्ठ कहिए अत्यंत स्थूल है जाके अंशमैं सब लोकालोक समा जाय अर स्थविर कहिए अनतानंतकाल है जाकी आदि नांही अतिवृद्ध है, अर ज्येष्ठ कहिए मुख्य है अर पृष्ठ कहिए अग्रगामी है सब जाके पीछैं हैं अर प्रेष्ट कहिए अत्यंतप्रिय है अर वरिष्ठधी कहिये अतिशयपणेंकरि श्रेष्ठ है बुद्धि जाकी अर स्थेष्ठ कहिए अत्यंत स्थिर है अर गरिष्ठ कहिए अत्यंतगुरु है अर बंहिष्ठ कहिये अतिशयपणेंकरि वहुरूप है अनंत गुणरूप है अर श्रेष्ठ कहिए अति प्रशंसायोग्य है अणिष्ठ कहिये परमाणुसे भी अतिसूक्ष्म है च्यारिज्ञानके धारक जानि न सकैं जाहि केवली ही जानें अर गरिष्ठगी कहिए गरिष्ठ है वाणी जाकी ॥२२॥ अर विश्वभुत् कहिये विश्वका ज्ञाता है अर विश्वसृट् कहिये समस्तविधिका कर्त्ता है अविधिका हर्त्ता है अर विश्वभुक् कहिये विश्वका पालक है अर विश्वनायक कहिये जगतका नायक है अर विश्वासी कहिए विश्वास करिवे योग्य है अर विश्वरूपात्मा कहिए अनंतरूप है आत्मा जाका अर विश्वजित् कहिये विश्वका जीतनहारा है अर विजितांतक कहिये कालका जीतनहारा है ॥ १२३ ॥ अर विभव कहिये मनतैं रहित है अमन अतिंद्री है अर विभयो कहिये सकल भय रहित है अर वीरो कहिये महालक्ष्मीका नाथ है अतिप्रबल है अर विशोको कहिये शोकरहित है अर विजर कहिये जरारहित है अर जरन् कहिए नवा नांही अनादिकालका है अर विरागो कहिए रागरहित है अर विरतो कहिये काहूविषैं आसक्त नांही अर असंगो कहिये परवस्तुके संगतैं रहित है केवल चिद्घन है अर विविक्त

कहिए पवित्र है अकेला है अर वीतमत्सर कहिये अदेखसका नाही, आनंदरूप है ॥ २४ ॥ अर विनय
जनतावंधु कहिये धर्मात्माजीवनिका बंधु है अर विलीनाशेषकल्मष कहिये समस्त कालिमातैं रहित है अ
वियोगी कहिये संयोगसंबंधतैं रहित है अर योगवित् कहिये योग मार्गका वेत्ता है अर विद्वान् कहि
महापंडित है अर विधाता कहिए सबनिका नियंता है गुरु है अर सुविधि कहिये सकल आधितैं रहि
है विधिमार्गका उपदेष्टा है अर सुधी कहिये महासुबुद्धि है ॥ २५ ॥ क्षांतिभाक् कहिये महाक्षमाका धरण
हारा अर पृथिवीमूर्ति कहिये पृथ्वीसमान है मूर्त्ति जाकी अर शांतिभाक् कहिए शांतिका धरणहारा अ
सलिलात्मक कहिये जलस्वरूप है अर वायुमूर्त्ति असंगात्मा कहिए पवनमूर्त्ति असंगी है जैसें पवन स
संगतैं रहित है तैसें आप संगरहित है अर वह्निमूर्त्तिः अधर्मधक् कहिए अधर्मके भस्म करणेकूं अग्नि
मूर्त्ति हौ ॥ २६ ॥ अर सुयज्वा कहिये कर्मरूप सामग्रीके होम करणहारे शोभायमान होता अर यजमा
नात्मा कहिये भावपूजाके कर्त्ता स्वभावके आराधक अर सुत्वा कहिये आनंदसागरमैं अभिषेक करणहा
अथवा जन्मसमय सुरगिरिपरि क्षीरसागरके जलकरि अभिषेक करणहारे अर सुत्रामपूजित कहि
इंद्रकरि पूजिबेयोग्य अर ऋत्विग् कहिये ध्यानाग्निविषैं शुभाशुभ कर्मके भस्म करिबेकी विधि ऐसा ज्ञान
यज्ञ ताके आचार्य अर यज्ञपति कहिये पूजाके पति अर यज्वा कहिये पूजिबेयोग्य अर यज्ञांग कहिये यज्ञके
साधन, भावार्थ—मुख्य कारण, अर अमृत कहिये अमृत समान अर हवि कहिये अपनी आत्मामैं लीन
रहनेसैं घृतसमान ॥ २७ ॥ अर व्योममूर्त्ति कहिये आकाशसमान है मूर्त्ति जाकी अर अमूर्त्तात्मा कहिये
अमूर्त्तीक है स्वरूप जाका अर निर्लेपो कहिए कर्मलेपतैं रहित अर निर्मल कहिये रागादिक मलतैं रहित
अर अचल कहिए चलायमान नाही अर सोममूर्त्ति कहिये चंद्रमासमान शीतल है मूर्त्ति जाकी अर सौम्यात्मा
कहिये शांत है आत्मा जाका अर सूर्यमूर्त्ति कहिये अनेक सूर्यसमान तेजोमय है मूर्त्ति जाकी अर महाप्रभ
कहिये अतुल है क्रांति जाकी।२८। अर मंत्रवित् कहिये मंत्रका वेत्ता अर मंत्रकृत् कहिये मंत्रका कर्त्ता अर मंत्री

कहिये प्रधान सबमैं मुख्य अर मंत्रमूर्त्ति कहिये मंत्रही मूर्ति जाकी अर अनंतग कहिये अनंतज्ञानी अर स्वतंत्र कहिये स्वाधीन अर तंत्रकृत् कहिये शास्त्रका कर्त्ता अर स्वंतः कहिये सुंदर है अंतः करण जाका अर कृतांतांतक कहिये कालका अंत करणहारा अर कृतार्थकृत् कहिये कृतार्थ करणहारा, धर्मकी रीतिका कर्त्ता, महापुण्यवान है ॥ २९ ॥ अर कृती कहिये प्रवीण, कृतार्थ कहिये सब अर्थ करि चुक्या अब कछु करना नांही अर सत्कृत्य कहिये समीचीन हैं कार्य जाके अर कृतकृत्य कहिये कीये हैं करिबे योग्य कार्य जानैं अर कृतक्रतु कहिये द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप सामग्री तिनिकूं ध्यानाग्निविषैं भस्म करणहारा ज्ञानयज्ञका कर्त्ता है अर नित्य कहिये सदा नित्य है अर मृत्युंजय कहिये क्षायिकभावकी अपेक्षा मृत्युका जीतनहारा है अर अमृत्यु कहिये पारिणामिक भावकी अपेक्षा जाके मृत्युही नांही सदा अविनाशी है अर अमृतात्मा कहिये अमृतरूप है स्वरूप जाका अर अमृतोद्भव कहिए सदा आत्मलीन है अर परब्रह्म कहिये सबमैं उत्कृष्ट ब्रह्म अर ब्रह्मात्मा कहिए ज्ञानस्वरूप अर ब्रह्मसंभव कहिये ज्ञानका है उपजना जाके अर महाब्रह्मपति कहिये महापुरुषनिका पति है अर ब्रह्मेट् कहिये ज्ञानका ईश्वर है अर महाब्रह्मपदेश्वर कहिये मोक्षपदका स्वामी है ॥३१॥ आत्मा मोक्ष ज्ञान चारित्र ब्रह्मचर्य अर भगवान इनिकूं ब्रह्म कहिए अर ज्ञानधर्मदमप्रभु कहिए ज्ञान धर्म इंद्रियनिका दम इनिका प्रभु है अर प्रसन्नात्मा कहिए निर्मल है स्वभाव जाका अर सुप्रसन्न कहिये सदा आनंदरूप है अर उपशमात्मा कहिये परम उपशमभावरूप है आत्मा जाका अर प्रशांतात्मा कहिये परम शांत है स्वरूप जाका अर पुण्य कहिये नवीन नांही अनंतयुगका है अर पुरुषोत्तम कहिये महापुरुषनिमैं उत्तम है ॥ ३२ ॥ अर महाअशोकध्वजो कहिये महा अशोक वृक्ष है ध्वजा जाका अर अशोक कहिये शोकरहित है अर कःस्वरूप कहिये सुखका उपजावनहारा है जाहि ब्रह्मा हू कहै हैं सबनिका पितामह है अर पद्मविष्टर कहिये कमल है सिंहासन जाके अर पद्मेश कहिये लक्ष्मीका स्वामी है अर पद्मसंभूति कहिए विहारक्रियाविषैं देव पायनि तलि कमल रचैं हैं अर पद्मनाभि कहिए कमलके समान नाभि है अर

अर पद्मविष्टर कहिए कमल है सिंहासन जाके अर पद्मेश कहिए लक्ष्मीका स्वामी है अर पद्मसंभूति कहिए विहारक्रियाविषै देव पायनि तलि कमल रचै हैं अर पद्मनाभि कहिए कमलके समान नाभि है अर

अनुत्तर कहिए जातैं और श्रेष्ठ नांहीं ॥ ३३ ॥ अर पद्मयोनि कहिए लक्ष्मीके उत्पन्न होनेके स्थान हैं अर जगत्योनि कहिए जगत्की उत्पत्ति मरण सब जानै है अर इत्यः कहिये ज्ञानगम्य है अर स्तुत्य कहिए जाकी अस्तुति करै हैं अर स्तवनार्ह कहिए स्तुति करिबेयोग्य है अर हृषीकेश कहिए इंद्रिनिका वशि करणहारा है जितेंद्री है अर जितजेय कहिए जीते हैं जीतिबेयोग्य रागादिक जानै अर कृतक्रिय कहिए सर्व उत्तम क्रियाका करणहारा है ॥ ३४ ॥ अर गणाधिपो कहिए मुनिगण सुरगण नरगण तिनिका अधिपति है अर गणज्येष्ठ कहिए सकल समूहमैं मुख्य है अर गुण्य कहिए महागुणवान है अर पुण्य कहिए महापवित्र है अर गणाग्रणी कहिए सबनिमैं अग्रेसर है अर गुणाकर कहिए गुणनिकी खानि है अर गुणांभोधि कहिए गुणनिका सागर है अर गुणज्ञ कहिए गुणनिका ज्ञाता है अर गुणनायक कहिए गुणनिका नायक है ॥३५॥ अर गुणादरी कहिए गुणनिका आदर करणहारा है अर गुणोच्छेदी कहिए बंधका छेदनहारा है अर निर्गुण कहिए विभाव गुणनितैं रहित है केवलरूप है अर पुण्यगीर्गुण कहिए पवित्र वाणी है गुण जाका अर शरण कहिए जाका शरण लीजिए ऐसा है अर पुण्यवाक् कहिए हिंसा-दि दोषनिकरि वर्जित हैं वचन जाके अर वरेण्य कहिए सबनिमैं श्रेष्ठ है अर पुण्यनायक कहिए पुण्यका नायक है ॥ ३६ ॥ अर अगण्य कहिए गिनिबेमैं न आवै गुण जाके अर पुण्यधी कहिए पवित्र है बुद्धि जाकी अर गण्य कहिए स्मरणयोग्य है अर पुण्यकृत् कहिए पुण्यका कर्ता है अर पुण्यशासन कहिए पवित्र है मार्ग जाका अर धर्मारामो कहिए धर्मका वन है अर गुणग्राम कहिए गुणनिका समूह है अर पुण्यापुण्यनिरोधक कहिए शुभ अशुभ दोऊ कर्मका निरोधक है ॥ ३७ ॥ अर पापापेतो कहिए हिंसादि सकल पापनितैं रहित है अर विपापात्मा कहिए निष्पाप है अर विपाप्मा कहिए पापरहित है विभूति जाकी अर वीतकल्मषः कहिए सकल कालिमारहित है अर निर्द्वंद्वो कहिए निःपरिग्रह है अर निर्मद कहिए मदरहित है अर शांतो कहिए उपाधिरहित है अर निर्मोहो कहिए मोहरहित है अर निरुपद्रव

कहिए उपद्रवरहित है ॥ ३८ ॥ अर निर्निमेषो कहिए निमेपरहित हैं नेत्र जाके अर निराहारो कहिए जाके आहारका ग्रहण नांही अर निःक्रियो कहिए समस्त शुभाशुभ क्रियातें रहित है अर निरुपप्लव कहिए निर्विघ्न है अर निष्कलंको कहिए निकलंक है, अर निरस्तैना कहिए पापनिका छेदनहारा है अर निर्धूतात्मा कहिए समस्त अपराधका नाश करणहारा है अर निराश्रव कहिए कर्मनिके आश्रवतें रहित है ॥३९॥ अर विशाली कहिए विस्तीर्ण है अर विपुलज्योति कहिए अपार है ज्योति जाकी अर अतुलो कहिए जाकी तुल्य और नांही अचिंत्यवैभव कहिए चिंतवनमैं न आवे विभव जाका अर सुसंवृत कहिए संवररूप है अर सुनयतत्त्ववित् कहिए भली नयके स्वरूपका ज्ञायक है ॥ ४० ॥ अर एकविद्यो कहिए एक अध्यात्मविद्यामई है रहस्य जाका अर महाविद्यो कहिए महाविद्यावान है अर मुनिः कहिए प्रत्यक्षज्ञानी है केवली है अर परिवृढ कहिए तपस्वीनिका स्वामी है अर पति कहिए जगतका पति है अर धीशो कहिये बुद्धिका स्वामी है अर विद्यानिधिः कहिए ज्ञानकी निधि है अर साक्षी कहिये सवानिका साखी है अर विनेता कहिए मार्गका चलावणहारा है अर विहतांतक कहिए अंतक जो काल ताका अंत करणहारा है ॥ ४१ ॥ अर पिता कहिए जगतका पिता है अर पितामह कहिए सवानिका दादा है अर पाता कहिए पालक है अर पवित्र कहिए महापवित्र है अर पावनो कहिये पवित्र है गति जाकी अर त्राता कहिए जीवनिका रक्षक है अर भिषग्वर कहिए मरणरोगका हरणहारा महावैद्य है अर वर्यो कहिए विशिष्ट है अर वरदः कहिए मनवंछित फलका दाता है अर परमपुमान् कहिए परम पुरुष है ॥ ४२ ॥ अर कवि कहिए महाकवि है अर पुराणपुरुषो कहिए पुराणा पुरुष है अर वर्षीयान् कहिए अनंत वरसका है अतिवृद्ध है अर ऋषभः कहिए आदितीर्थेश्वर है परमज्ञानी है अर पुरः कहिए सवानिमैं अग्रगामी है अर प्रतिष्ठाप्रसवो हेतु कहिए प्रतिष्ठा जो महिमा ताकी उत्पत्तिका कारण है अर भुवनैकपितामह कहिए तीन भुवनका एक दादा है ॥४३॥ श्रीवृक्षलक्षण कहिए श्रीवृक्षका चिह्न धरे है अश्लक्ष्णो कहिए महासूक्ष्म है अर लक्षण्य कहिए

- तुक - ... मह ... - भुवनका एक दादा है ॥४३॥ श्रीवृक्षलक्षण कहिए श्रीवृक्षका चिह्न धरै है अश्लक्ष्णो कहिए महासूक्ष्म है अर लक्षण्य कहिए

लक्षणवान है अर शुभलक्षण कहिए सुंदर है लक्षण जाकै अर निरक्ष कहिए इंद्रीनितैं रहित है अर पुंडरीकाक्ष कहिए कमल समान हैं नेत्र जाकै अर पुष्कल कहिए विस्तीर्ण है अर पुष्कलेक्षण कहिए विस्तीर्ण हैं नेत्र जाके अनंतचक्षु है ॥ ४४ ॥ अर सिद्धिद कहिये सर्व सिद्धिका देनहारा है अर सिद्धसंकल्प कहिये सिद्ध भया है मनोरथ जाका अर सिद्धात्मा कहिये पूर्णानंदस्वरूप है अर सिद्धसाधन कहिये सिद्ध भया है साधन जाका अर बुद्धबोध्य कहिये सम्यग्दृष्टीनिकरि जानिवे योग्य है अर महाबोधी कहिये महाज्ञानी है अर वर्द्धमानो कहिये अतुल्य है प्रमाण जाका अर महर्धिक कहिये महाऋद्धिका धारक है ॥ ४५ ॥ अर वेदांगो कहिए वेद जो परमागम ताका मूल है अर वेदविद्वेद्यो कहिए वेदके वेत्ता गणधर देव तिनकरि ध्यायबेयोग्य है अर जातरूपो कहिए दिगंबर है अथवा रूपरहित अरूप है अर विदांवर कहिए ज्ञातानिमैं श्रेष्ठ है अर वेदवेद्य कहिए जिन आगमकरि जानिबेयोग्यहै अर सुसंवेद्य कहिए अनुभवगम्य है आपही करि आपहीकूं आप अनुभवै है अर विवेदो कहिये वेदकै परे है, निर्वेद है, अर वदतांवर कहिए वक्तानिमैं श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ अर अनादिनिधनो कहिए आदि अंततैं रहित है अर अव्यक्तो कहिए मन इंद्रिय बुध्यादिकरि अगोचर है अर व्यक्तवाक् कहिए प्रगट हैं वचन जाके अर व्यक्तशासन कहिए प्रगट है मार्ग जाका अर युगादिकृत् कहिए युगकी आदि कर्मभूमिकी रीतिका कर्त्ता है अर युगाधारो कहिए युगका आधार है अर युगादि कहिए युगकी आदि है अर जगदादिज कहिए जगतकी आदिमैं कर्मभूमिमैं उत्पन्न भया है ॥ ४७ ॥ अर अतींद्रो कहिए अतिशयपणैं करि सुर असुर नर मुनि सबनिका इंद्र है अर अतींद्रियो कहिए इंद्रियज्ञानतैं रहित है अर धींद्रो कहिए बुद्धिका इंद्र है अर महेंद्रो कहिए पूजाका अधिपति है इंद्रनिकरि पूज्य है अर अतींद्रियार्थदृक् कहिए मन इंद्रीनितैं अगोचर जे अरूपी पदार्थ तिनिका देखनहारा है अर अनिंद्रियो कहिए इंद्रीरहित है अर अहमिंद्राच्यों कहिए नव ग्रीव नव अनुत्तर पंच अनुत्तर ए सोला स्वर्गके ऊपरि अहमिंद्रनिके स्थानक हैं तिनि सब अहमिंद्रनिकरि पूज्य है

अर महेंद्रमहितो कहिए सर्व इंद्रनिकरि पूज्य है अर महान् कहिए सबमैं बडा है ॥ ४८ ॥ अर उद्भव कहिए संसारतैं रहित है अर कारण कहिए मोक्षका कारण है अर कर्त्ता कहिए शुद्ध भावका कर्त्ता है अर पारगो कहिए भवसमुद्रका पारगामी है अर भवतारक कहिए भवोदधिका तारक है अर अगाह्यो कहिए काहूकरि अवगाह्या न जाय अर गहन कहिए जाविषैं प्रवेश करना अति कठिन है अर गुह्यो कहिए गोप्य है परमरहस्य है अर परार्द्ध कहिए उत्कृष्ट ऋद्धिका धारक है अर परमेश्वर कहिए परम ईश्वर है सकलका स्वामी है ॥ ४९ ॥ अर अनंतार्द्धि कहिए अनंत ऋद्धिका धारक है अर अमेयार्द्धि कहिए अप्रमाण ऋद्धिका धारक है अर अचिंत्यार्द्धि कहिए चिंतवनमैं न आवै ऋद्धि जाकी अर समग्रधी कहिए पूर्ण है बुद्धि जाकी अर प्राग्र्य कहिए सवनिमैं मुख्य है अर प्राग्रहर कहिए सबनिमैं श्रेष्ठ है अर भव्याग्र कहिए जे भव्य शिरोमणि हैं तिनिका शिरोमणि है अर प्रत्यग्रोग्रचो कहिए जे प्रबल प्रचंड हैं तिनिमैं अग्रेश्वर है अर अग्रिमोग्रज कहिए जे सर्वोत्कृष्ट हैं तिनिमैं बडा है ॥ ५० ॥ अर महातपो कहिए महातपोनिधि है अर महातेजा कहिए महातेजस्वी है अर महोदर्को कहिए महाफलका दायक है अर महोदय कहिए महाप्रतापी है, महायशा कहिए महायशवंत है अर महाधामा कहिए महाप्रकाशरूप है परमधामका दायक है अर महासत्त्वो कहिए महापराक्रमी है अर महाधृती कहिए महासंतोषी है ॥ ५१ ॥ अर महाधैर्यो कहिए महाधैर्यका धारी है अर महावीर्यो कहिए अनंतवीर्यका धारी है अर महासंपत् कहिए महालक्ष्मीवान है अर महावल कहिए महाबली है अर महाशक्ति कहिए महाशक्तिवान है अर महाज्योति कहिए महायोनिरूप है अर महाभूति कहिए महाविभूतिवंत है अर महाद्युति कहिए महाकांतिरूप है ॥ ५२ ॥ अर महामति कहिए महाबुद्धिवान है अर महानीति कहिए महानीतिवान है अर महाक्षांति कहिए महाक्षमावान है अर महोदय कहिए जाका कबहुं अस्त नांही सदा उदयरूप है अर महाप्रज्ञो कहिये महाप्रवीण है अर महाभागो कहिये महाभाग है अर महानंदो कहिये महा आनंदरूप

अर महाप्रज्ञो कहिये महाप्रवीण है अर महाभागो कहिये महाभाग है अर महानंदो कहिये महा आनंदरूप

है अर महाकवि कहिये शास्त्रका कर्त्ता है गणधरादिकका गुरु है ॥५३॥ महामहा कहिए महातेजरूप है जाके तेज आगैं रागादि सकल विभाग विलय गये अर महाकीर्त्ति कहिये जगतविषैं व्यापिरही है कीर्ति जाकी अर महाकांति कहिये महाकांतिका धारक है अर महावपु कहिये महासुंदर है शरीर जाका अर महादानो कहिये महादानका दाता है अर महाज्ञानो कहिये महाज्ञानरूप है अर महागुण कहिये महागुणवंत है ५४ अर महामह पति कहिए महापूजाका पति है अर प्राप्तमहाकल्याणपंचक कहिये पाए हैं पांचू महाकल्याणक जानैं अर महाप्रभु कहिए महासमर्थ है, गणेंद्र मुनींद्र अहमिंद्र सुरेंद्र असुरेंद्र नरेंद्र फणेंद्र खगेंद्र रवि चंद्र इत्यादिकका नाथ है अर महाप्रातिहार्याधीशो कहिए अष्ट प्रातिहार्यका स्वामी है अर महेश्वर कहिए महाईश्वर है ॥ ५५ ॥ महामुनि कहिए जासमान और मुनि नांही अर महाध्यातो कहिए महाध्यानी है अर महामौनी कहिए वचनालापरहित है अर महादम कहिए विषयकषायका दमन करणहारा है अर महाक्षमो कहिए महाक्षमावान है जाकै क्रोध नांही अर महाशीलो कहिए अठारह हजार शीलके भेद तिनिका धारक है अर महायज्ञो कहिए विभावपरिणतिरूप सामग्रीका स्वभावपरिणतिरूप अग्निविषैं होम करना ताहि महायज्ञ कहिए अथवा तपरूप अग्निविषैं विषयाभिलाषकूं भस्म करना ताहि महायज्ञ कहिए ताका कर्त्ता है अर महामख कहिए महापूजायोग्य है ॥ ५६ ॥ अर महाव्रतपति कहिए पंचमहाव्रतका पति है अर मह्य कहिए जगतपूज्य है अर महाकांतिधराधिप कहिए महाकांतिधारीनिका अधिपति है अर महामैत्रीमयो कहिए महामैत्रीभावनामई है जगतका मित्र है जीवमात्रका शत्रु नांही अर अमेयो कहिए प्रमाणरहित है अनंतगति है जाके ज्ञानके अंशमैं लोकालोक समाहि जाय अर महोपायो कहिए मोटा है उपाय जाका जगतके सब उपाय तजै तब ताहि पावै अर महोमय कहिए महातेजोमय है जासमान वीराधिवीर और नांही ॥५७॥ अर महाकारुणिक कहिए महादयावंत है अर मंता कहिए घट पटका ज्ञाता है अंतरजामी है अर महामंत्रो कहिए महामंत्रका स्वामी है अर महायति कहिए महायति है कर्मरोगका हरणहारा है अर महानादो

कहिए महासुंदर है दिव्यध्वनिका नाद जाका अर महाघोषो कहिए सुंदर हैं शब्द जाके अर महेज्यो कहिए महापुरुषनिकरि पूज्य है अर महसांपति कहिए तेजका पति है ॥ ५८ ॥ अर महाध्वरधरो कहिए महा अहिंसाका धरणहारा है करुणानिधि है अर धुर्यो कहिए धुरंधर है सबनिमैं धोरी है अर महौदार्यो कहिए महाउदार है जीवनिकूं आपसमान करि ले अर महिष्ठवाक् कहिए पूज्य हैं वचन जाके अर महात्मा कहिए सबनिमैं बडा है अर महसांधाम कहिए प्रकाशका धाम है अर महर्षि कहिए महा ऋषि है अर महितोदय कहिए पूज्य है उदय जाका ॥ ५९ ॥ अर महाक्लेशांकुश कहिए महाक्लेशका हर्त्ता है अर शूरो कहिए महाशूर वीर है मोह मान माया मत्सर मदन इत्यादि सब विभावनिका जीतनहारा है क्रोधलोभादि रहित है अर महाभूतपतिर्गुरु कहिए गणधर वज्रधर चक्रधर चापधर त्रिशूलधर इत्यादि वडे पुरुषनिका गुरु है अर महापराक्रमो कहिए महापराक्रमी है अर अनंतो कहिए जाका अंत नांही अपार है अर महाक्रोधरिपुर्वशी कहिए क्रोधरूप महावैरीका वशि करणहारा है ॥ ६० ॥ अर महाभवाब्धिसंतारी कहिये महाभवसागरका तारक है अर महामोहाद्रिसूदक कहिए महामोहरूप पर्वतका चूर्ण करणहारा है अर महागुणाकर कहिए महा गुणनिकी खानि है अर क्षांतो कहिए निष्कषाय है अर महायोगीश्वर कहिए महायोगीश्वरनिका ईश्वर है अर शमी कहिए महाशांत है ॥ ६१ ॥ अर महाध्यान कहिए शुक्लध्यानका स्वामी है अर ध्याता कहिए निजस्वरूपका ध्याता है आप अपने स्वरूपमैं मग्न है अर महाधर्मा कहिए धर्मात्मा है अर महाव्रत कहिए महाव्रतरूप है अर महाकर्मारिहा कहिए कर्मरूप महाशत्रुनिका हंता है अर आत्मज्ञो कहिए आत्मज्ञानी है अर महादेवो कहिए देवनिका देव है जाहि सुर नर विद्याधर सब पूजे हैं अर महेशिता कहिए महाईश्वरता धरै है समर्थ है ॥ ६२ ॥ अर सर्वक्लेशापह कहिए सर्वक्लेशका दूरि करणहारा है, साधु कहिए समीचीन है अर सर्वदोषहरो हर कहिए सर्वदोषनिका हरणहारा है, हर है अर असंख्येयो कहिए जाके गुणनिकी संख्या नांही अर अप्रमेयात्मा कहिए अप्रमाण वीर्यकूं धरै है आत्मा जाका अर

कहिए जाके गुणनिकी संख्या नांही अर अप्रमेयात्मा कहिए अप्रमाण वीर्यकूं धरे है आत्मा जाका अर

समात्मा कहिए समभावका स्वरूप है अर प्रशमाकर कहिए परमोपशमभावकी खानि है ॥ ६३ ॥ अर सर्वयोगीश्वर कहिए सकल जोगीश्वरनिका ईश्वर है अर अचिंत्य कहिए चिंतवनमैं न आवै महिमा जाकी अर श्रुतात्मा कहिए शास्त्रका रहस्य है भावश्रुतरूप है अर विष्टरश्रवा कहिए सकल ज्ञेयकूं प्रवेश देय ऐसा है ज्ञान जाका सर्वज्ञ है अर दांतात्मा कहिए जितेंद्री सबकूं शिक्षादायक है अर दमतीर्थेशो कहिए इंद्रीनिका दमन सोई तीर्थ ताका ईश है अर योगात्मा कहिए योगरूप है अर ज्ञानसर्वग कहिए ज्ञानकरि सर्वगत है ॥ ६४ ॥ अर प्रधानात्मा कहिये आत्माही है प्रधान जाके प्रकृतिपरम कहिये परम है प्रकृति जाकी उत्कृष्ट है लक्ष्मी जाकै अर परमोदय कहिये परम उदयकूं धरे है अर प्रक्षीणबंध कहिये बंधका क्षीण करणहारा है अर कामारि कहिये कामका नाश करणहारा है अर क्षेमकृत् कहिये कल्याणका कर्त्ता है अर क्षेमशासन कहिए कल्याणरूप है मार्ग जाका ॥६५॥ अर प्रणेव कहिये ओंकारस्वरूप है, प्रणयी कहिये सबका मित्र है, प्राण कहिये सबका प्राण है जगतवल्लभ है अर प्राणदः कहिये प्राणीनिकूं प्राणका दाता है महादयावान है अर प्राणतेश्वर कहिये अत्यंत नम्रीभूत जे इंद्रादिक तिनिका ईश्वर है अर प्रमाण कहिये प्रमाणनयका वक्ता है ज्ञान प्रमाण है अर लोक प्रमाण है अर देहप्रमाण है अर प्रणधि कहिये सबनिका मर्मी है घटपट अंतर्लीन है सब विहारी है अर दक्ष कहिये चतुर है अर दक्षिण कहिये सरल है अर अध्वर्यु कहिये थावर जंगमकी हिंसातैं रहित पापका भस्म करणहारा है अर अक्षर कहिये अखंड है ॥ ६६ ॥ आनंदो कहिये आनंदरूप है अर नंदन कहिए आनंदका दायक है अर नंदो कहिये सदा वर्द्धमान है अर वंद्यो कहिये बंदनीक है अर अनिंद्यो कहिये निंदारहित है अर अभिनंदन कहिए सर्वथा आनंदकारी है, कामहा कहिये कामका हर्ता है अर कामद कहिये मनवांछित फलका दाता है अर काम्य कहिये महारमणीक है अर कामधेनु कहिये सकल कामना पूर्ण करै है अर आरिंजय कहिये रागादिक शत्रुनिका जीतनहारा है ॥ ६७ ॥ अर असंस्कृतसुसंस्कारो कहिये विना संस्कारही महारमणीक है

सहज सुंदर है अर अप्राकृतो कहिए जाका स्वरूप प्रकृतिंजानित नांही असाधारण अद्वितीय है अर वैकृतांतकृत् कहिए नाशका नाश करणहारा है अर कांतगुः कहिए सुंदर है प्रभा जाकी अर कांति कहिए क्रांतिधारी है अर चिंतामणिरभीष्टद कहिए मनोकामना सिद्ध करणहारा चिंतामणिसमान है ॥ ६८ ॥ अर अजितो कहिए काहूकरि जीत्या न जाय अर जितकामारि कहिए जीत्या है कामरूप वैरी जानैं अर अमितो कहिए अनंत है जाकी मर्याद नांही अर अमितशासन कहिए अपार है शासन जाका अथवा मितशासन कहिए मर्यादका मूल है सूत्र जाका अर जितक्रोधो कहिए जीता है क्रोध जानैं अर जितामित्रो कहिए जीते हैं कर्मशत्रु जानैं अर जितक्लेश कहिए जीत्या है क्लेश जानैं अर जितांतक कहिए जीत्या है काल जानैं ॥ ६९ ॥ अर जिनेंद्र कहिए गणधरानिका इंद्र है अर परमानंदो कहिए परम आनंदरूप है अर मुनींद्रो कहिये मुनिनिका इंद्र है अर दुंदुभिस्वनः कहिए दुंदुभिसमान है ध्वनि जाकी अर महेंद्रवंद्यो कहिए महेंद्रकरि वंदनीक है अर योगींद्रो कहिए योगीश्वरनिका इंद्र है अर जितेंद्रो कहिये जितेंद्रीनिका इंद्र है साधुनिका स्वामी है अर नाभिनंदनः कहिए नाभिराजाका पुत्र है ॥७०॥ अर नाभेयो कहिये नाभि है पिता जाका अर नाभिजो कहिये नाभिकै घर धर्‍या है जन्म जानैं अर अजातः कहिये काहूकरि उपज्या नांही स्वतः सिद्ध है अर सुव्रतो कहिए भले व्रतनिका धारक है अर मनुः कहिए रीतिका वतावनहारा है अर उत्तमः कहिए सवनिमैं उत्तम है अर अभेद्यो कहिए भेद्या न जाय अर अनत्यय कहिए नाशरहित है जाका कवहू अंत नांही अर अनाश्वान् कहिये निराहार है अनशनव्रतका धारक है अर अधिको कहिये सवनिमें अधिक है अर अधिगुरु कहिए जगतका गुरु है अर सुगी कहिये सुंदर है वाणी जाकी ॥ ७१ ॥ अर सुमेधा कहिए भली है बुद्धि जाकी अर विक्रमी कहिये महापराक्रमी है अर स्वामी कहिए सवका स्वामी है अर दुराधर्ष्यो कहिये दुर्निवार है काहूतें निवार्‍या न जाय अर निरुत्सुकः कहिए निरभिलाषी है अर विशिष्ट कहिए विशेषतारूप है अर शिष्टभृत् कहिए शिष्टनिका पालक है अर

क्षिष्ट कहिए रागद्वेष मोहादिकका नाशक है अर प्रत्यय कहिये विश्वासरूप है अर कामनः कहिए महामनोहर है अर अनघ कहिये पापरहित है ॥ ७२ ॥ क्षेमी कहिये सुकुशलका धारक है अर क्षेमंकरः कहिये कल्याणका कर्त्ता है अर अक्षय्य कहिये जाका कबहू क्षय नांही अर क्षेमधर्मपति कहिए क्षेमधर्मका पति है अर क्षमी कहिए क्षमावान है अग्राह्यो कहिए काहूतैं ग्रहा न जाय अर ज्ञाननिग्राह्यो कहिए ज्ञानकरि ग्राह्य है अर ध्यानगम्यो कहिए ध्यानगम्य है अर निरुत्तर कहिये जातैं उत्कृष्ट और नांही ॥ ७३ ॥ अर सुकृती कहिये महासुकृतरूप है अर धातु कहिए शब्दकी खानि है अर इज्यार्हः कहिये पूजायोग्य है, सुनयः कहिए भली नयका वेत्ता है अर चतुराननं कहिए चतुर्मुख है अर श्रीनिवास कहिये लक्ष्मीका निवास है अर चतुर्वक्त्र कहिये चहू उर जाका दर्शन होय है अर चतुरास्य कहिये एक मुख है परंतु चतुर्मुख भासै है ॥ ७४ ॥ सत्यात्मा कहिए सत्यरूप है अर सत्यविज्ञान कहिए सत्य है ज्ञान जाका अर सत्यवाक् कहिए सत्यवादी है अर सत्यशासन कहिए सत्य है शासन जाका अर सत्याशी कहिए सत्य है श्रद्धा जाकी अर सत्यसंधान कहिए सत्य है प्रतिज्ञा जाकी ॥ ७५ ॥ अर स्थेयान् कहिए महास्थिर है अर स्थवीयान कहिए महास्थूल है अर नदीयान् कहिए समीप है अर दवीयान् कहिए कठिन है दर्शन जाका अर अणोरणीयान् कहिए परमाणूहूतैं अतिसूक्ष्म है अर अनणु कहिए अणु नांही महास्थूल है अर गरीयसां गुरुः कहिए महत् पुरुषनिका गुरु है अर गरीयसां आद्य कहिये महत् पुरुषनिकी आदि है ॥ ७६ ॥ अर सदायोग कहिए सदायोगरूप है अर सदाभोग कहिए सदा आनंदका भोक्ता है अर सदातृप्त कहिये सदा तृप्त है अर सदाशिव कहिये सदा कल्याणरूप है अर सदागति कहिए सदाज्ञानरूप है अथवा सदा है गति कहिए गमन जाका, भावार्थ—सदाकाल सर्वत्र सर्व भावनिविषैं ज्ञानकरि सर्व विहारी सदाविहारी है अर सदासौख्य कहिए सदा सुखरूप है अर सदाविद्य कहिए सदा विद्यारूप है अर सदोदय कहिए सदा प्रतापरूप है अस्ततैं रहित है सदा उदय जाका ॥ ७७ ॥ अर सुघोष कहिए

सुंदर है शब्द जाका अर सुमुख कहिए सुंदर है मुख जाका अर सौम्य कहिए महासौम्य है अर सुखद कहिए निष्कपट है हृदय जाका अर सुगुप्तो कहिए महागुप्त है अर गुप्तिभृत् कहिये तीन गुप्तिका धारक है अर गोप्ता कहिए रक्षक है अर लोकाध्यक्षो कहिए लोकका आधिकारी है अर दमेश्वर कहिए इंद्रियदमनका ईश्वर है ॥ ७२ ॥ वृहत् कहिए बडा है अर वृहस्पति कहिए बडनिका पति है अर वाग्मी कहिए मनोहर हैं वचन जाके अर वाचस्पति कहिए वचनका पति है अर उदारधी कहिए उदार है बुद्धि जाकी अर मनीषी कहिए बुद्धिका नाथ है अर धिषणो कहिए अपार है बुद्धि जाकी, धीमान् कहिये महाबुद्धिवान है अर शेमुषीशो कहिए बुद्धिवंतनिका स्वामी है अर गिरांपति कहिए वाणीका पति है ॥ ७९ ॥ अर नैकरूपो कहिए अनेकरूप है अर नयोतुंगो कहिए उत्तंग है नय जाकी अर नैकात्मा कहिए अनेक गुणरूप है अर नैकधर्मकृत् कहिए अनेक स्वभावका कर्त्ता है अर अविज्ञेयो कहिए केवली बिना काहूकरि जान्या न जाय अर अप्रतर्क्यात्मा कहिए संदेहरहित है आत्मा जाका अर कृतज्ञ कहिए जीवनिके सकल कृत्य जानै है अर कृतलक्षण कहिए संपूर्ण है लक्षण जामैं ॥ ८० ॥ अर ज्ञानगर्भो कहिए ज्ञान है जाके अंतरंगविषैं अर दयागर्भो कहिए दया है जाके भावविषैं अर रत्नगर्भ कहिए अनेक गुणरूप रत्न हैं जाके उरमैं अर प्रभास्वरः कहिए देदीप्यमान है अर पद्मगर्भो कहिए कमल समान अलेप है अंतःकरण जाका अर जगतगर्भो कहिए सर्व लोक है जाके ज्ञानकै भीतर अर हेमगर्भ कहिए कनकसमान काईरहित है अंतःकरण जाके गर्भकल्याणकविषैं रत्न अर सुवर्णकी वर्षा होय है अर सुदर्शन कहिए सुंदर है दर्शन जाका सम्यग्दर्शनका धारी है ॥ ८१ ॥ अर लक्ष्मीवान कहिए महालक्ष्मीवान है अर त्रिदशाध्यक्षो कहिए तेरह प्रकार चारित्रके धारी मुनि तिनिकूं प्रत्यक्ष है अथवा त्रिदश कहिए देवतानिका अधिपति है अथवा बाल युवा वृद्ध इनि तीनूं दशानिमैं महासुंदर है अर द्रढीयान् कहिए महादृढ है अर इन-ईशिता कहिए सूर्यका स्वामी है महातेजोनिधि है अर मनोहरो कहिए महामनोहर है अर मनोज्ञांगो कहिए मनोज्ञ है अंग जाका

वृद्ध इनि तीनू दशानम महासुंदर है अर द्रढायान् कहिए महादृढ है अर इन-ईशिता कहिए सूर्यका स्वामी है महातेजोनिधि है अर मनोहरो कहिए महामनोहर है अर मनोज्ञांगो कहिए मनोज्ञ है अंग जाका

अर धीरो कहिए महाधीर है अर गंभीरशासन कहिए गंभीर है शासन जाका ॥ ८२ ॥ अर धर्मयूपो कहिए धर्मका थंभ है अर दयायागो कहिए दयारूप यज्ञका अधिपति है अर धर्मनेमि कहिए धर्मकी धुर है अर मुनीश्वर कहिए मुनिनिका ईश्वर है अर धर्मचक्रायुधो कहिए धर्मचक्र है आयुध जाके अर देव कहिए जगतका देव है सबकरि आराध्य है अर कर्महा कहिए कर्मका हंता है अर धर्मघोषण कहिए धर्म-का उपदेष्टा है ॥ ८३ ॥ अर अमोघवाक् कहिए वृथा नांही वचन जाके अर अमोघाज्ञ कहिए वृथा नांही आज्ञा जाकी अर निर्मलामोघशासन कहिए निर्मल यथार्थ है मार्ग जाका अर सुरूप कहिए महामनोहर रूप है अर सुभगः कहिए सौभाग्यरूप है अर त्यागी कहिये महा उदार है सकल विभावनिका त्यागी है अर समयज्ञ कहिए सकल कालका अथवा सकल पदार्थनिका अथवा सकल शास्त्रनिका ज्ञाता है अर समाहित कहिए समाधानरूप है बुद्धि जाकी ॥ ८४ ॥ अर स्थित कहिए निश्चल है अर स्वास्थ्यभाक् कहिए थिरताका भजनहारा है अर स्वस्थ कहिए अपने स्वरूपविषैं सदा तिष्ठै है अर नीरजस्को कहिए कर्मरूप रजतैं रहित है अर निरुद्धवः कहिए जाकै कोऊ स्वामी नांही आपही सबनिका स्वामी है अर अलेपो कहिए लेपरहित है अर निःकलंकात्मा कहिए कर्मकलंकसूं रहित है आतमा जाका अर वीतरागो कहिए रागादि दोषनितैं रहित है अथवा 'वि' कहिए विस्तीर्ण 'ई' कहिए लक्ष्मी ज्ञानानुभूति ताहि इत कहिए प्राप्त भया है राग कहिए स्नेह जाका अर गतस्पृह कहिए सकल वांछातैं रहित है ॥ ८५ ॥ अर वश्येंद्रियो कहिए इंद्रीनिका वशि करणहारा है अर विमुक्तात्मा कहिए वंधनरहित है आत्मा जाका अर निस्सपत्नो कहिए निष्कंटक है अर जितेंद्रिय कहिए जितेंद्री है अर प्रशांतो कहिए महाशांत है अर अंनत-धामर्षि कहिए अनंत प्रकाशका धारक परमऋषि है अर मंगलं कहिए महामंगलरूप है अर मलहा कहिए द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप मलका हंता है अर अनघः कहिए निष्पाप है ॥ ८६ ॥ अर अनिदृग्उपमा-भूतो कहिए संसारमैं ऐसी कोऊ उपमा नांही जो प्रभूकूं दीजिए तातैं उपमारहित है अर दिष्टि कहिए

महा भाग्यवंत है ज्ञानवंत है अर दैवं कहिए प्रवल है स्तुति करिवेयोग्य है अर अगोचर कहिए वचनगोचर नांही अर अमूर्ती कहिए अमूर्तीक है अर मूर्तिमान् कहिए पुरुषाकार है अर एको कहिए अद्वितीय है अर अनेको कहिए अनेकरूप है अर नानैकतत्त्वदृक् कहिए नानारूप अर एकरूप जो तत्त्वका स्वरूप ताहि देखनहारा है ॥ ८७ ॥ अर अध्यात्मगम्यो कहिए अध्यात्म विद्याकरि है गम्य जाकी ध्यानगोचर है अर अगम्यात्मा कहिए संसारी जीवनिकूं अगम्य है स्वरूप जाका अर योगवित् कहिए योगका वेत्ता है अर योगिवंदित कहिए योगीश्वरनिकरि बंदनीक है अर सर्वत्रग कहिए सर्वठौर है गमन जाका। भावार्थ— ज्ञानकरि सर्वव्यापी सर्वगत है अर सदाभावी कहिए सदा सर्वत्र पाइए सबनिके अभिप्राय जानै सर्वद्रव्य सर्वक्षेत्र सर्वकाल सर्वभावविषैं सदा विराजै है, त्रिकाल विषयार्थदृक् कहिए त्रिकालगोचर जे पदार्थ तिनिका द्रष्टा है ॥ ८८ ॥ अर शंकर कहिए सुखका कर्त्ता है अर शंवदो कहिए सुखके स्वरूपका वक्ता है अर दांतो कहिए मनका वशि करणहारा है अर दमी कहिए जितेंद्री है अर क्षातिपरायण कहिए क्षमाविषैं तत्पर है अर अधिप कहिए जगत्का अधिपति है अर परमानंद कहिए परमानंदरूप है अर परात्मज्ञ कहिए निज परका ज्ञाता है अर परापर कहिए उत्कृष्टतैं उत्कृष्ट है ॥ ८९ ॥ सर्वक्षेत्र सर्वकालमैं व्यापक है अर त्रिजगद्वल्लभो कहिए तीन जगतका वल्लभ है अर अभ्यर्च्य कहिए सर्वथा पूजनीक है अर त्रिजगत् मंगलोदय कहिए तीन जगतविषैं मंगलका प्रगट करनहारा है अर त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रि कहिए इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिकरि पूजनीक हैं चरण जाके अर त्रिलोकाग्रशिखामणि कहिए तीन लोकके शिखरका शिखामणि है ॥ ९० ॥ अर त्रिकालदर्शी कहिए अनागत वर्त्तमान भूतकालका द्रष्टा है जा थकी कछु छानी नांही अर लोकेशो कहिए लोकका ईश है अर लोकधाता कहिए भलीभांति लोकका प्रवर्त्तक है अर दृढव्रत कहिए दृढव्रती है अर सर्वलोकातिग कहिये सर्वलोकतैं न्यारा है अर पूज्य कहिये जगत्पूज्य है अर सर्वलोकैकसारथि कहिये सर्व लोकका एक नियंता है मार्ग चलावणहारा है ॥९१॥ अर पुराण कहिये

प्राचीन है अर पुरुष कहिये सबनिका पुरिखा है सबनिमैं बडा है अर पूर्व कहिये सब जाके पीछैं है आप सबनिमैं अग्रेश्वर है अर कृतपूर्वांगविस्तार कहिये कीया है ग्यारह अंग चौदह पूर्वका विस्तार जानैं अर आदिदेव कहिये सब देवनिमैं मुख्य है अर पुराणाद्य कहिये पुराणनिकी आदि है अर पुरदेव कहिये सब देवनिमैं अग्रसर है थावर जंगमका ईश्वर है अर अधिदैवत कहिए देवाधिदेव है ॥ ११२ ॥ अर युगमुख्यो कहिए कर्मभूमिकी प्रवृत्तिविषैं मुख्य है अर युगज्येष्ठो कहिए युगविषैं ज्येष्ठ है अर युगादिस्थितिदेशक कहिए कर्मभूमिकी आदिविषैं रीतिका उपदेष्टा है अर कल्याणवर्ण कहिए सुवर्ण समान है वर्ण जाका अर कल्याण कहिए कल्याणमूर्त्ति है अर कल्प कहिए प्रशंसायोग्य है अर कल्याणलक्षण कहिए कल्याणरूप है लक्षण जाके ॥ ९३ ॥ अर कल्याणप्रकृति कहिए कल्याणरूप है प्रकृति जाकी अर दीप्त कहिये देदीप्यमान है अर कल्याणात्मा कहिये कल्याणरूप है आत्मा जाका अर विकल्मष कहिए पापतैं रहित है अर विकलंक कहिये कामादि कलंकतैं रहित है अर कलातीत कहिए शरीरतैं रहित है अर कलिलघ्न कहिए पापका नाश करणहारा है अर कलाधर कहिये कलाधारी है ॥ ९४ ॥ अर देवदेवो कहिये सब देवनिका देव है अर जगन्नाथो कहिये जगत्का नाथ है अर जगद्बंधु कहिये जगतका बंधु है अर जगद्विभु कहिये जगत्का प्रभु है अर जगद्धितैषी कहिये जगत्के हितका वांछक है अर लोकज्ञ कहिये लोकका ज्ञाता है अर सर्वगो कहिये सर्वगत अर जगदग्रज कहिये जगतका ज्येष्ठ है ॥९५॥ अर चराचरगुरु कहिए थावर जंगमका गुरु है अर गोप्यो कहिए गोप्य है अर गूढात्मा कहिए गूढ है स्वरूप जाका अर गूढगोचर कहिए गूढ पदार्थ हैं गोचर जाकूं अर सद्योजात कहिए जवान नवा है जाहि जीर्णता नांही नित्य नवल है अर प्रकाशातमा कहिए प्रकाशरूप है आतमा जाका अर ज्वलज्ज्वलनसप्रभ कहिए देदीप्यमान अग्नि समान है प्रभा जाकी ॥ ९६ ॥ अर आदित्यवर्णो कहिए सूर्यसमान है वर्ण जाका अर भर्माभ कहिए सुवर्णसमान है आत्मा जाकी अर सुप्रभः कहिए सुंदर है

प्रभा जाकी अर कनकप्रभ कहिए कनकसमान काईरहित है अर सुवर्णवर्णो कहिए पीतवर्ण है अर रुक्माभ कहिए उज्जल है क्रांति जाकी अर सूर्यकोटिसमप्रभ कहिए सूर्यसमान है प्रभा जाकी ॥ १९७ ॥ अर तपनीयनिभः कहिए ताए सुवर्णसमान सुंदर है अर तुंगो कहिए ऊंचा है अर बालार्काभो कहिए ऊगते सूर्यसमान है आभा जाकी अर अनलप्रभ कहिए अग्निसमान है प्रभा जाकी संध्याभ्रवर्ण कहिए सांझके बादरे समान है वर्ण जाका अर हेमाभः कहिए हेम समान है क्रांति जाकी ॥ ९८ ॥ अर तप्तचामीकरच्छवि कहिए ताए सुवर्णसमान है छवि जाकी अर निष्टप्तकनकच्छाय कहिये सोलहवानीके कनक समान है रंग जाका अर कनत्कांचनसंनिभः कहिए देदीप्यमान कंचनसमान है सुंदरता जाकी अर हिरण्यवर्ण कहिए कंचनवर्ण है अर स्वर्णाभ कहिये सुवर्णसमान मनोज्ञ है ज्योति जाकी अर शातकुंभनिप्रभ कहिये सुवर्णसमान है द्युति जाकी ॥ १९९ ॥ अर द्युम्नाभो कहिये कनकसमान रमणीय है अर जातरूपाभो कहिये सोनासमान है आभा जाकी अर दीप्तजांबूनदद्युति कहिये देदीप्यमान कंचनसमान है क्रांति जाकी अर सुधौतकलधौतश्री कहिये निर्मल सुवर्णसमान है शोभा जाकी अर प्रदीप्तो हाटकद्युति कहिये देदीप्यमान हेमसमान है प्रभा जाकी ॥ २०० ॥ अर शिष्टेष्ट कहिये उत्तमपुरुषनिका इष्ट है अर पुष्टिदः कहिए पुष्टताका देनहारा है अर पुष्ट कहिए आप महाप्रवल है अर स्पष्ट कहिए सदा प्रगट है अर स्पष्टाक्षर कहिए स्पष्ट हैं अक्षर जाके अर क्षमः कहिए समर्थ है अर शत्रुघ्नो कहिए रागादि शत्रुनिका हंता है अर अप्रतिघो कहिए क्रोधरहित है अर अमोघ कहिए विफलतारहित है अर प्रशास्ता कहिए शिक्षादायक है अर शासिता कहिए सबका रक्षक है अर स्वभू कहिए स्वयमेव प्रगट भया है काहूका तनुज नांही ॥ २०२ ॥ अर शांतिनिष्ठो कहिए शांतिभाव विषैं तलीन है अर मुनिज्येष्ठ कहिए मुनिनिमैं बडा है अर शिवताति कहिए सुखकी परंपराय है अर शिव पद कहिए मुक्तिका दाता है अर शांतिदः कहिए शांतिका दायक है अर शांतिकृत् कहिए शांतिका कर्त्ता है अर शांति कहिए आप शांतिरूप है अर

कांतिमान् कहिए कांतिधारी है अर कामितप्रदः कहिए मनवांछित फलका दाता है ॥२०२॥ अर श्रेयोनिधि कहिए कल्याणकी निधि है लक्ष्मीका निवास है अर अधिष्ठान कहिए धर्मका मूल कारण है अर अप्रतिष्ठ कहिए काहूकरि नांही पाई है प्रतिष्ठा जानैं, भावार्थ—काहूका कीया ईश्वर नांही। आपही प्रतिष्ठित कहिए प्रतिष्ठारूप है अर सुस्थिर कहिए महास्थिर है अर स्थावर कहिए विहाररहित है अर स्थाष्णु कहिए निश्चल है अर प्रथीयान् कहिए अतिविस्तीर्ण है अर प्रथित कहिए विख्यात है अर पृथु कहिए अतिविस्तार है ॥ ३ ॥ अर दिग्वासा कहिए दिशाही है चीर जाकै अर वातरसनो कहिए पवनही है कांचीदाम जाकै अर निर्ग्रंथेशो कहिए मुनिनिका स्वामी है अर दिगंबर कहिए दसूं दिशाही है वस्त्र जाकै अर निकिंचनो कहिए किंचित् मात्रहू परिग्रह जाकै नांही अर निराशंसो कहिए आशारहित है अर ज्ञानचक्षु कहिए ज्ञानही है नेत्र जाके अर अमोमुह कहिए अत्यंत निर्मोह है ॥ ४ ॥ अर तेजोराशि कहिये तेजकी राशि है अर अनंतौजा कहिए अनंत पराक्रमी है अर ज्ञानाब्धि कहिए ज्ञानका समुद्र है अर शीलसागर कहिए शीलका सागर है अर तेजोमय कहिये तेजोमई है अर अमितज्योति कहिए अनंत है ज्योति जाकी अर ज्योतिमूर्ति कहिए ज्योतिही है मूर्ति जाकी परमज्योति स्वरूप है अर तमोपह कहिए अज्ञान अंधकारका हर्त्ता है ॥ ५ ॥ अर जगच्चूडामणि कहिए जगतका चूडामणि है अर दीप्त कहिए देदीप्यमान है अर शंमान् कहिये महासुखी है अर विघ्नविनायक कहिए अंतरायका नाशक है अर कलिघ्न कहिए दोषनिका हंता है अर कर्मशत्रुघ्नो कहिए कर्मशत्रुनिका घातक है अर लोकालोकप्रकाशक कहिए लोक अर अलोकका प्रकाशक है ॥ ६ ॥ अर अनिद्रालु कहिए निद्रारहित है अर अतंद्रालु कहिए प्रमादरहित है अर जागरूक कहिए सदा जागृतरूप है अर प्रभामयी कहिए ज्ञानमयी है अर लक्ष्मीपति कहिए अविनाशी विभूतिका पति है अर जगज्ज्योति कहिए जगतका प्रकाशक है अर धर्मराज कहिए धर्मका राजा है अर प्रजाहित कहिए प्रजाका हितू है ॥ ७ ॥ अर मुमुक्षु कहिए निर्वाणकी है रुचि जाकै अर बंधमोक्षज्ञो

कहिए बंधमोक्षका ज्ञाता है अर जिताक्षो कहिए जितेंद्री है अर जितमन्मथ कहिए कामका जीतनहारा है अर प्रशांतरसशैलूषो कहिए शांतरसका नृत्य करणहारा है अर भव्यपेटकनायक कहिए भव्यनिके समूहका नायक है ॥२०८॥ अर मूलकर्त्ता कहिए शुद्ध भावका मूलकर्त्ता है धर्मकी सर्वरीतिका प्रकाशक है अर अखिलज्योति कहिए अनंत ज्योतिरूप है अर मलघ्नो कहिए रागादि मलका नाशक है अर मूलकारण कहिए मोक्षका मूल कारण है अर आप्तो कहिए सकलमैं सदा व्याप्त है पूर्ण है अर वागीश्वर कहिए वाणीका ईश्वर हैं अर श्रेयान् कहिए कल्याणरूप है अर श्रायसोक्ति कहिए प्रशस्त हैं वचन जाके अर निरुक्तवाक् कहिए निःसंदेह है वचन जाके ॥ ९ ॥ अर प्रवक्ता कहिए शास्त्रका वक्ता है अर वचसां ईश कहिए वचनका ईश्वर है अर मारजित् कहिए कामका जीतनहारा है अर विश्वभाववित् कहिए समस्त भावनिका वेत्ता है अर सुतनु कहिए सुंदर है तनु जाका अर तनुनिर्मुक्ति कहिए शरीरतैं रहित है अर सुगतो कहिए भलीभांति सबमैं व्यापक है अर आत्मलीन है अर हतदुर्नय कहिए हती है खोटी नय जानैं ॥ १० ॥ अर श्रीश कहिए अंतरबाह्य लक्ष्मीका ईश्वर है अर श्रीश्रितपादाब्जो कहिए लक्ष्मीकरि आश्रित हैं चरण कमल जाके, लक्ष्मी जाके चरण कमलनैं बसै है अर वीतभी कहिए भयरहित है अर अभयंकर कहिये औरनिकूं निर्भय करणहारा है अर उच्छन्नदोषो कहिए सर्वदोष निवृत्त करणहारा है अर निर्विघ्नो कहिए विघ्नरहित है अर निश्चलो कहिए निश्चल है अर लोकवत्सल कहिए लोकनिपरि अनुग्रह करणहारा है ॥२११॥ अर लोकोत्तरो कहिए लोकतैं उत्कृष्ट है अर लोकपति कहिए तीन लोकका पति है अर लोकचक्षु कहिये लोकका नेत्र है अर अपारधी कहिए अपार है बुद्धि जाकी अर धीरधी कहिए धीर है बुद्धि जाकी अर बुद्धसन्मार्ग कहिये जान्या है भला मार्ग जानैं अर शुद्ध कहिए शुद्ध है अर सूनृतपूतवाक् कहिए सत्य हैं पवित्र वचन जाके।१२। अर प्रज्ञापारमित कहिए बुद्धिके पार प्राप्त भया है अर प्राज्ञ कहिए महापंडित है, महाबुद्धिवान है अर यति कहिये मनका जीतनहारा है अर नियमितेंद्रिय कहिये वशि करी हैं इंद्रिय

जानैं अर भदंतो कहिये पूज्य है अर भद्रकृत् कहिए कल्याणका कर्त्ता है अर भद्र कहिये निःकपट है अर कल्पवृक्षो कहिए कल्पवृक्ष है अर वरप्रदः कहिये वरदायक है जाकै जो कामना होय सो ताकै प्रसादतैं पूर्ण होय ॥ २१३ ॥ अर समुन्मूलितकर्मारि कहिये मूलतैं उखाडे हैं कर्मरूप वैरी जानैं अर कर्मकाष्ठाशुशिक्षिणि कहिये कर्मरूप काष्ठके भस्म करिबेकूं अग्नि समान है अर कर्मण्य कहिये क्रियाविषैं प्रवीण है अर कर्मठः कहिये क्रियाविषैं शूर है अर प्रांसु कहिये सबतैं ऊंचा है अर हेयादेयविचक्षण कहिए हेयोपादेयके जाणिबेविषैं प्रवीण है ॥ १४ ॥ अर अनंतशक्ति कहिये अनंतशक्तिका धनी है अर अच्छेद्य कहिए अछेद्य है अर त्रिपुरारि कहिये जन्म जरा मरणरूप जे त्रिपुर तिनिका हरणहारा है अर त्रिलोचन कहिए तीनूं कालके पदार्थनिका देखनहारा है सबका ज्ञाता है अर त्रिनेत्र कहिये ज्ञानरूप है तीसरा नेत्र जाके अर अंबक कहिये तीन जगतका पिता है अर अक्ष्य कहिये रत्नत्रयही है नेत्र जाके ॥ १५ ॥ अर समंतभद्र कहिये सर्वथा मंगलरूप है अर शांतारि कहिये शांत कीये हैं कर्म शत्रु जानैं अर धर्माचार्यो कहिये धर्मका आचार्य है अर दयानिधि कहिये जीवदयाकी निधि है अर सूक्ष्मदर्शी कहिये सूक्ष्मपदार्थनिका देखनहारा है अर जितानंग कहिये जीत्या है काम जानैं, कृपालु कहिये सब जीवनिपरि कृपाका करणहारा है बहुरि धर्मदेशक कहिये धर्मका उपदेश करणहारा है ॥ १६ ॥ अर शुभंयु कहिये शुभसूं मिलावनहारा है अर सुखसाद्भूत कहिये सुख है आधीन जाकै अर पुण्यराशि कहिये पवित्रताकी राशि है अर अनामय कहिये रोगरहित है अर धर्मपालो कहिये धर्मका पालक है अर जगत्पालो कहिये जगत्का पालक है अर धर्मसाम्राज्यनायक कहिये धर्मरूप राज्यका नायक है ॥ १७ ॥ ए एक हजार आठ नाम कहे, नाम तो अनंत अपार हैं कहांलग कहैं ? ॥ २१८ ॥ हे तेजके पति ! तेरे ए नाम आगमविषैं प्रवीण जे गणधरदेव तिनि एकत्र कीये हैं सो तिनिकूं ध्यावता थका पुरुष परमज्ञानी होय ॥ २१९ ॥ हे नाथ ! तुम वाणीकरि स्तुति करिबे योग्य हो तथापि वचनतैं अगोचर हो। जे तिहारी स्तुतिके करणहारे हैं ते

निःसंदेह मनवांछित फलकूं पावै हैं ॥२२०॥ तातैं तुम जगतके बंधू हौ, जगतके वैद्य हौ, जगतके विधाता हौ, जगतके हितू हौ ॥ २१ ॥ तुम एक जगतकी ज्योति हौ तुम ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगके धारक दोय रूप हौ तुम मुक्तिके कारण रत्नत्रयस्वरूप तीनरूप हौ अर अनंतचतुष्टयके धारक तातैं च्यारिरूप हौ ॥ २२ ॥ पंच परमेष्ठीका स्वरूप पंचकल्याणकके नायक तातैं पंचरूप हौ अर छह भेद जीवादिक द्रव्य तिनिके स्वरूपके ज्ञाता तातैं तुम षट्प्रकार हौ ॥ २३ ॥ अर सम्यक्त्वादि सिद्धनिके अष्ट गुण तेई हैं मूर्त्ति तिहारी तातैं अष्टगुणमूर्त्ति हौ अर नवकेवललब्धिके स्वामी तातैं नवरूप हौ अर महाबलादि दश भवके धारक अथवा संसारकी दशातैं पार गये संसारकी दशातैं रहित तातैं दशावतार हौ सो हे परमेश्वर हमारी रक्षा करो ॥ २४ ॥ तिहारे नामनिकी पंक्ति ताकरि रची है देदीप्यमान स्तोत्रकी पंक्ति ताकरि तुमकूं हम सेवै हैं, हे देव ! कृपाकरि हमपरि अनुग्रह करो ॥ २५ ॥ यह तिहारा स्तोत्र ध्यायकरि भक्त पवित्र होय हैं जो या पाठकूं पढै सो कल्याणका भाजन होय ॥ २६ ॥ तातैं सदाकाल पुण्यका अर्थी पवित्रबुद्धि पुरुष या स्तोत्रकूं पढौ जौ इंद्रपदकी लक्ष्मी पायवेकी है अभिलाषा जाकै ॥ २७ ॥ या भांति इंद्र महाभक्त देवनिके देव थावर जंगमके स्वामी जगतके गुरु भगवान तिनिकी स्तुतिकरि अवसर पाय तीर्थविहारकी वीनती करता भया ॥ २८ ॥ हे भगवान ! भव्यजीवरूप धान्य पापरूप अनावृष्टिके दोषतैं सूखै हैं सो तुम धर्मरूप अमृतके सींचिवेकरि रक्षा करहु । हे प्रभो ! जीवनिकूं तिहाराही शरण है ॥२९॥ हे भव्यजीवनिके समूहके अधिपति ! दयारूप ध्वजाकरि विराजित तिहारा यह धर्मचक्र जीतिके उद्यमके साधनविषैं सदा प्रवर्तै है ॥ २३० ॥ मोहकी सेना जीतिकरि तिहारा यह धर्मोपदेशका समय आया है। मोहकी सेना मुक्तिमार्गकी रोकणहारी है ॥ २३१ ॥ भगवान स्वयंभू समस्त तत्त्वनिके ज्ञाता जगत्पति विहार करैंही, तिनिकूं इंद्रके मुखतैं प्रार्थनाके वचन निसरेते पुनरुक्त समान होते भये ॥ ३२ ॥ अथानंतर—वे भगवान जिनेंद्रसूर्य तीनि भवननकूं आनंद उपजावै ऐसी तीर्थंकरनामा प्रकृति सोई है

सारथी जिनिकैं सो आप भव्यजीवरूप कमलनिके प्रफुल्लित करिबेकूं उद्यमी भए ॥ २३३ ॥ मोक्षके चढनेकूं निसेनीसमान तीन उज्ज्वल छत्र जिनिपरि फिरै हैं अर यशसमान तथा क्षीरसागरके झागसमान उज्जल चमर जिनिपरि ढरै हैं ॥ ३४ ॥ अर महाधीर गंभीर दिव्यध्वनि प्रभुके मुखतें खिरै है अर कोटि सूर्यकी प्रभाकूं जीतै ऐसा भामंडल महा देदीप्यमान सोहै है ॥ ३५ ॥ अर देवनिकरि है बजाए गंभीर दुंदुभी बाजै हैं अर देवनिके समूहके हाथनिकरि पुष्पनिकी वर्षा होय है ॥ ३६ ॥ अर मेरुके शिखर समान ऊंचा सिंहासन तापरि जगतके नायक विराजै हैं अर छायासहित फलसहित अशोकवृक्ष जिनिके समीप सोहै है ॥ ३७ ॥ अर धूलीसालकरि आवऱ्या समोसरण है जिनिका अर मानस्तंभनिकरि निवाऱ्या है कुदृष्टीनिके मदका विभ्रम जिनि ॥ ३८ ॥ अर निर्मल जलकी खाई ताके समीप लतावन ताकरि वेष्टित समोसरण, ए समोसरणकी भूमिकूं सोभित करै है जिनिका वर्णन पूर्व करि आए ॥३९॥ कैसी है समोसरणकी भूमि अचरजकारी है विभव जाका अर एक फटिकका एक सुवर्णका एक रूपेका ए तीन कोट, तिनिके दरवाजे बारह अमोलक रचनाकरि मंडित तिनिकरि प्रगट कीया है महा उदय जाका ॥ ४० ॥ अर अशोकादिवननिकी पंक्ति ताकरि करी है छाया ऐसी समोसरणकी भूमि दशप्रकारकी ध्वजानिके उल्लासकरि बुलावै है मानूं जगतके प्राणिनिकूं ॥ ४१ ॥ अर कल्पवृक्षनिके वनकी छाया तहां विश्राम करै हैं देव, तिनिकरि पूजित है वह भूमि अर मंदिरनिकरि रमणीक वह भूमि, तहां किन्नर गावै हैं यश ॥ ४२ ॥ अर देदीप्यमान महा उन्नत रत्ननिके तूप तिनिकरि प्रगट कीया विभव जानैं अर दरवाजै दरवाजै दोय दोय नाट्यशाला तिनिकरि बढाया है प्राणीनिकूं उच्छव अर धूपकी सुगंधता करि सुगंध करी है दसूं दिसि ऐसी महा गंधकुटी, ताविषैं विराजमान तीन लोकके पति उत्कृष्ट पूजायोग्य परमेश्वर ॥ ४३ ॥ तीन जगतके वल्लभ श्रीमान् भगवान् आदिपुरुष सो विहारका उद्यम करते भये कैसे हैं भगवान्—धर्मचक्रके नायक हैं ॥ २४४ ॥ भगवानके विहारसमयकूं प्राप्त भये ए चालते भये कोटिक

देव चलायमान है मुकुटकी अनी जिनिकी ॥ २४५ ॥ तब महाहर्षरूप जे इंद्र तिनिके मुकुटनितैं उछली मणीनिकी ज्योति जगतविषैं उद्योत करती भई ॥ ४६ ॥ अर देव जैजैकार शब्दकरि आकाशकूं आच्छादित करते भये अर अपने तेजकरि दशूं दिशाके मुखकूं आच्छादित करते भये ॥ ४७ ॥ भगवानके विहारका उद्यम सोई भया प्रबलपवन ताकरि देवनिके नायक इंद्र अर चतुर्निकायके देव समुद्रकी नांई उल्लासकूं प्राप्त भए ॥ ४८ ॥ प्रस्थान करते भये भगवान, अर लारले (साथलेकर) सुरनर विद्याधर तथा असुर, सो इच्छाविना भगवान पृथ्वीविषैं विहार करते अज्ञान तिमिरकूं हरते भये जैसैं सूर्य उदय होता तिमिरकूं हरै ॥ ४९ ॥ सर्व जीवनिकी भाषारूप परणवै ऐसी भगवानकी अर्द्धमागधी भाषा ताकरि अनेक जीव अतिबोधकूं प्राप्त भये । कैसी है भाषा—परस्पर तीन जगतके जीवनिकूं मैत्री भावना उपजायवेका है अद्भुत गुण जामैं सो तीन जगतके जीव परस्पर मैत्रीभाव धारते भये ॥ ५० ॥ जा वोर (तरफ) जिनवर विहार करै ता वोर छऊं ऋतुके फल फूलनिकूं वृक्ष फल अर अरसा (काच) समान निर्मल सकल भूतल होय जाय ॥ ५१ ॥ अर शीतल मंद सुगंध पवन वाजती भई अर सकल जीवनिके समूहकूं परम आनंदका उदय होता भया ॥ २५२ ॥ अर पवनकुमारजातिके देव एक योजनप्रमाण भूमि उज्जल करते भये अर मेघकुमार जातिके देव सुगंध जलकी वर्षाकरि भूमिकूं रजरहित करते भये ॥ ५३ ॥ अर मृदु है सुखदायक स्पर्श जिनिका ऐसे कमल पदपंकजकै तलि देव स्थापते भये अर सालि आदि समस्त अन्न पृथ्वीविषैं निष्पन्न होय गये, प्रभुके आगमके सूचनहारे ॥ ॥ ५४ ॥ अर जैसा सरद ऋतुका सरोवर उज्जल होय जाय तैसा आकाश निर्मल होय गया अर सब दिशा निर्मल होय गई, प्रगट दिखाया है भगवानका आगम जिनि ॥ ५५ ॥ अर देवनिका परस्पर बुलावना ताके परस्पर शब्दकरि रुकी दिशा अर सहश्र है आरा जाकै ऐसा देदीप्यमान धर्मचक्र सो आगैं आगैं जाय है । ५६ । अर अष्टमंगलद्रव्य लीये देव आगैं आगैं जाय हैं अर ध्वजानिकी पंक्ति विस्तररही है आकाशविषैं, सुर असुर पीछैं जाहि हैं ऐसे प्रभू विहारसमैं सोहते

भये ॥ २५७ ॥ ता समैं मधुर गंभीर दुंदुभिनिकरि ध्वनि आकाशकूं पूरि क्षोभकूं प्राप्त भया समुद्र ताके शब्दकी नांई विस्तरती भई ॥ ५८ ॥ अर आकाशकूं पूरि बरसती भई फूलनिकी वर्षा, सो वर्षा भव्य-जीवरूप भंवरनिकूं प्रसन्न करणहारी है ॥ ५७ ॥ अर चौगिरद लहलहाट करते सोहते भये अनेक ध्वजानिके अग्रभाग, मानूं पवनकरि हालते भव्यजीवनिके समूहकूं दर्शनके निमित्त बुलावेही है ॥ ६० ॥ अर आपके प्रयाणविषैं पदपद प्रति ढोल अर दमामनिका टंकार होता भया मानूं वह टंकार दसूं दिसाका पूरनहारा महातेजस्वी कर्मरूप रिपुनिकूं तिरस्कारही करता भया जो इहां तिहारे आयवेका काम नांही अर आकाशविषैं लहलहाट करैं हैं मोहरूप पताका जिनिकी अर अपनी देहकी प्रभाकरि सब दिशानिमैं उद्योत करती देवांगना आकाशविषैं नृत्य करती भईं ॥ ६१ ॥ अर देव उछाहके पाठ पढ़ते भए अर गंधर्व विद्याधरनिसहित बीन बजावते भये ॥ ६२ ॥ अर इंद्र देदीप्यमान है मुकुटकी अनी (अग्रभाग) जिनिकी सो समस्त जगतकूं ज्योतिमई करते जिनेंद्रकी लार (साथ) विहार करते भए ॥ ६३ ॥ अर दसूं दिशा धूमरहित निर्मल होयगई मानूं हर्षथकी विमलताही धरै है ॥ ६४ ॥ अर सालिकूं आदि देय परिपक जे अन्न तिनिकरि पृथ्वी सोहती भई मानूं पृथ्वीके पृथ्वीपतिके लाभतैं हर्षके अंकुरही निकसे हैं ॥ ६५ ॥ अर गंगाकी तरंगनिकूं स्पर्शती सुगंध पवन बाजती भई खैंची है कमलनिकी मकरंद जानैं सो मानूं पटवास कहिए सुगंधचूर्ण ताके पटहीकरि मंडित है ॥२६६॥ अर पृथ्वी समतल होय गई नीची ऊंची न रही, दर्पणतल समान उज्जल सोहती भई अर देवनि सुगंध जलकरि सींची सो कैसी सोहती भई मानूं रजरहित स्नानकरि निर्मल भई है ॥ ६७ ॥ अर वृक्ष विना समय फूलनिके प्रकाशकूं दिखावते भए । छऊं ऋतुके फल अर फूल एकलार फूलि गए मानूं सबही ऋतु आयकरि वृक्षनिसूं बेढी है ॥ ६८ ॥ अर च्यारिसै कोस लग काल न परै अर सकलकूं आरोग्यता होय जिनराजके माहात्म्यतैं, पृथ्वी ऐसी सोहती भई । नांही उपजै है जीवनिकी हिंसा जामैं, पृथ्वी निर्हिंसक होय गई ॥ २६९ ॥

अकस्मात् प्राणी महाहर्षकूं प्राप्त भए अर जैसी भाईनिमैं मित्रता होय तैसी परस्पर मित्रता धारते भए ॥ २७० ॥ अर भगवान चरण धरैं ताकै तलै देव सुवर्णके कमल रचते भए, ते कमल मकरंदरजके बरसणहारे नवीनवी विकसित है केसरि जिनिविषैं अर नाना प्रकारके रत्ननिकरि निर्मापित सुंदर हैं कर्णिका जिनिमैं अर लहलहाट करै हैं पत्र जिनिकै ॥ ७१ ॥ अर कोमल है स्पर्श जिनिका अर उदार है शोभा जिनिकी ऐसे कनककमल देवनिके थापे आकाशविषैं देवाधिदेवके चरणतलि सोहते भये ॥ ७२ ॥ सात कमल पीछे अर सात आगैं प्रफुल्लित सोहते भए, महासुगंध सघन मकरंदकी रेणु प्रगट होती भई ॥ ७३ ॥ तथा और हू कमल तिनिके समीप सोहते भए मानूं लक्ष्मीके निवासके आकाशविषैं चालते महलही हैं ॥ ७४ ॥ सुवर्णके कमलनिकी पंक्ति भंवरनिकी पंक्तिमंडित इंद्रके आदेशतैं देव रचते भये ॥ ७५ ॥ सो कमलनिकी पंक्ति जिनराजके चरणकमलसूं सन्मुख सोहती भई मानूं चरण कमलकी क्रांति अति अधिक है ताहि ए अंगीकार कीया चाहै हैं चरण कमलकी क्रांति अपनी अधिकतातैं सबनिकी क्रांतिकूं तलै पारै है (मात करै है) ॥ ७६ ॥ वह विहार समयके कमलनिकी पंक्ति जिनराजके चरण कमलनिके समीप सोहती भई। आकाशरूप सरोवरविषैं महा प्रफुल्लित पंकज पंदरा, सात आगैं सात पीछैं अर एक मध्य सब मिलि दोयसै छप्पन जानना ॥ ७७ ॥ ता समैं सुवर्णके कमलनिकरि आकाश सब प्रकारतैं सरोवर समान सोहता भया मानूं जिनराजके दिग्विजयविषैं आकाश सरोवरके भावकूं प्राप्त भया है ॥ ७८ ॥ या भांति जगतकूं आनंदमई करता जीवनिकूं धर्मामृत पावता समस्त पृथ्वीविषैं हर्ष विस्तारता विहार करता भया। अपने वचनरूप अमृतकरि भव्यनिकूं पोखता भया ॥ ७९ ॥ वचनरूप किरणनिकरि मिथ्यात्वरूप अंधकारकी रचनाकूं दूरिकरि जिनसूर्य जीवनिकी आरति हरता जगतविषैं उद्योत करता भया ॥ २८० ॥ सुवर्णके कमलनिपरि थापै हैं चरण जानैं ऐसा भगवान धर्मरूपअमृतजलकूं बरसाता भया ताकरि भव्यजीव संतोषकूं धरते भए। जिनराज मेघकी नांई धर्मरूप वृष्टिकूं बरसाते भये

सो जगत् सुखके प्रवाहकरि सतोषकूं धारता आनंदविषैं मगन होता भया ॥ ८२ ॥ चिरकालके तिसाए भव्य-रूप पपीहा अतिवांछाकरि जिनरूप मेघतैं धर्मरूप जल पीयकरि तृप्त भए ॥ ८३ ॥ या भांति वह थावर जंगमका गुरु संसाररूप गर्ततैं जीवनिके उधारिबेकी है अभिलाषा जाकै, अखंड है वृत्ति जाकी देव अर असुरनिकरि संयुक्त पृथ्वीविषैं विहार करता भया, सुवर्णके कमलनिके मध्य थापे हैं चरणकमल जानैं ॥८५॥ वह भगवान मेघसमानरूप अमृतकी बूंदनिसूं सींचिकरि त्रिभुवनरूप वनकूं आह्लाद उपजावता संता सोहता भया। कैसा है भगवानरूप मेघ—दिव्यध्वनि रूप दिव्यनादकूं धरै है, दूरि कीया है आताप जानैं अर कैसा है त्रिभुवनरूप वन महातीव्र जो भवरूप दावानल ताकरि जरै है ॥८६॥ कहां कहां विहार कीया;—काशी अवंती कोसल कुरुजांगल सुम्ह पुंड्र चंदेरी अंग वंग कलिंग मगध अंध्र मद्र पंचाल मालव दशार्ण विदर्भ इत्यादि अनेक देशनिविषैं सन्मार्ग उपदेशविषैं तत्पर महाधीर आदिजिन विहार करता भया ॥ ८७ ॥ भगवान महाशांतचरित्र धीरैं धीरैं बहुदेशनिविषैं विहार करि कैलास पर्वतपरि आय विराज्या सो कैलासगिरि चंद्रमा समान अति उज्जल है अर ऋषभदेवके जसकी समानताकूं धरै है ॥ ८८ ॥ ताके मनोहर अग्रभागविषैं देवनि रच्या है श्रीमत् समवसरण पूर्वोक्त समस्त वर्णनाकरि युक्त स्वर्गकी शोभाकूं विस्तारै ताविषैं श्रीमान् भगवान भक्तिकरि नम्रीभूत जे बारह सभा तिनिकरि मंडित विराजते भए, प्रभू कर्मरूप शत्रुनिके जीतन-हारे अनंतवीर्यके धारक शोभायमान हैं अष्ट प्रातिहार्य जिनिकै तिनिकूं मैं भक्तिकरि वदूंहूं ॥ २८९ ॥ इंद्रनिकरि पूज्य हैं चरण जिनिकै अर घातिया कर्मनिके क्षयकरि उपजे हैं अनंत चतुष्टय जिनिके ऐसे जिनस्वामी भव्यजीव कमलनिके प्रफुल्लित करिबेकूं सूर्य समान मानस्तंभके विलोकनकरि जगतका मान निवारणहारे त्रिलोकपति पाई है अचिंत्य अंतर्बाह्य विभूति जिनि अर सकल पापतैं रहित हैं ॥ २९० ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भगवत्तीर्थविहारवर्णन नाम पचीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २५ ॥

अथ छब्बीसवां पर्व ।

अथानंतर भरतचक्रवर्त्ती विधिवत् चक्रकी पूजा करता भया बहुरि पुत्रके जन्मकरि प्रसन्न होय अति उच्छव करता भया ॥ १ ॥ ऐसा उछव कीया जाविषैं पृथ्वीमैं कोई दरिद्री न रह्या. याचकनिकूं हेरते फिरे सो याचक न पाए, उछवविषैं सकललोक तृप्त भए, काहूकै कामना न रही ॥ २ ॥ चौहटे अर गलीगलीनिमैं तथा नगरके बाहिर भीतरि चक्रवर्त्तिनैं रत्ननिके ढेर कीए अर अर्थीनिकूं दीये ॥ ३ ॥ याकै चक्रकी पूजा शत्रुनिकी अभिचार क्रिया समान होती भई. अभिचार क्रिया मरणक्रियाका नाम है। वैरी ऐसे डरे मानूं हमकूं मारे सो चक्रकी पूजा तौ दुष्टनिके निग्रहनिमित्त होती भई अर पुत्रके जन्मका, उछव जगतकी शांतिकै अर्थि होता भया। कोऊ पूछै—ऐसे सत्पुरुषनिकै शत्रु कौन ? ताका समाधान जो प्रजाका बाधक सोई पृथ्वीपतिका शत्रु है ॥ ४ ॥ चक्रवर्त्तिके दिग्विजयके उद्यमकै समय सरद ऋतु आई सो मानूं याकी विजय लक्ष्मी ही आई। सरद ऋतुविषैं निर्मल है अंबर कहिए आकाश अर विजय लक्ष्मीके प्रसन्नतारूप उज्जल वस्त्र हैं ॥ ५ ॥ या सरद ऋतुकै भंवरनिके समूह केशसमान सोहते भये कैसी है शरद ऋतु—सप्तच्छद जातिके वृक्षनिके पुष्प तिनिकरि उपजी जो सुगंध ताकरि शोभित है शरीर जिनिका ॥ ६ ॥ सरोवर तथा नदीनिका जल निर्मल होता भया. जननिके मन प्रसन्न करणहारा कविनिकी उत्तमकाव्य समान सुंदर सोहता भया ॥ ७ ॥ अर हंसनिकी पंक्ति सब उरतैं परती सोहती भई मानूं स्थूल मुक्ताफलनिकरि रची सरदलक्ष्मीकी कंठमालाकी पंक्तिही है ॥ ८ ॥ अर सरोवरनिका जल कमलनिके मकरंदकरि मंडित सोहता भया मानूं सुवर्णकी रजकरि युक्त पृथ्वीतलही है ॥ ९ ॥ कमलनिकी मकरंदकरि आच्छादित हुवा सरोवरनिका जल ताहि कलहंसिनी देखिकरि स्थलकी आशंका धरि वारंवार मोहकूं प्राप्त होती भई ॥ १० ॥ अर कमलनिका मकरंद ताके पुंजकरि पीत भई भंवरनिकी पंक्ति सो मानूं सुवर्णमणिकरि रची शरदऋतुकी कंठीसमान सोहै है ॥ ११ ॥ सरोवरका जल तहां प्राप्त

भए वाचाल हंस सो कैसें सोहै हैं जैसे बंदीजन मिष्टवादी दातारनिके समूहके ढिंग जाते सोहैं। कैसा है मिष्टवादी दातारनिका समूह–प्रगट भई है सुवासना जाकी महा सुहृदताकूं धरै है ॥ १२ ॥ अर नदीनिके पुलिन शरदके आगमनविषैं अतिपवित्र होते भए सो मानूं सुफेद वस्त्रनिकरि हंसकी शय्याही रची है ॥ १३ ॥ सरोवर कमलनिकरि मंडित अर खेतनिकी भूमि स्थल कमलनिकरि शोभित अर नदीनिके पुलिन हंसनिकरि युक्त सो कामी जनानिके चित्त हरते भए ॥ १४ ॥ उज्जल हैं जल जिनिके जैसी सरोवरी सारसनिकरि मंडित कलहंसनिके शब्दकरि सोहती भई। कैसे हैं कलहंसनिके शब्द–जीत्या है नूपुरका शब्द जिनि ॥ १५ ॥ अर शरदकी शोभारूप स्त्री कमलरूप मुख अर नीलकमलरूप नेत्रकूं धरे सोहती भई कलहंसीनिके मिष्ट शब्द तिनिकरि मानूं प्रगट वचनालापही करे है ॥ १६ ॥ पाकी जे सालि तिनिकै निपजी जे नम्रीभूत बालि तिनिकरि पीत है शोभा जाकी ऐसी पृथ्वीरूप स्त्री सो मानूं शरदकालरूप प्रीतमके आगमविषैं हरिद्रासहित स्नानकूं प्राप्त भई अतिमनोज्ञ सोहै है ॥ १७ ॥ शरदऋतुकी शोभाकूं पायकरि हंस तौ हर्षकूं प्राप्त भए अर मयूर हर्ष छांडते भए सो यहु उचित ही है–शरद ऋतु उज्जल है अर हंसहू उज्जल है सो हंसनिकूं सरदऋतुही प्रिय। अर वर्षाऋतु नीलवर्ण है अर मयूरहू नीलकंठ है तातैं मयूरनिकूं वर्षाऋतु प्रिय है, इह अपना अपना आश्रय है ॥ १८ ॥ निर्मल है मूर्त्ति जिनिकी ऐसे कलहंस मानूं अपने शब्दनिकरि मयूरनिकूं हंसते भए, अहो तुम जलप्रिय हौ। भावार्थ–जडप्रिय हौ जडानिसूं है प्रीति तिहारे ॥ १९ ॥ मयूर जो हैं ते इंद्रधनुषसहित अपनी उत्तुंगता तजते भए कैसे हैं मयूर अर कैसे हैं इंद्रधनुष–अनेक प्रकारके हैं वर्ण जिनिविषैं अर मेघविषैं बांधी है बांछा जिनि अर पर्वतनिका है आश्रय जिनिकै ॥२०॥ मिझन्या (जपा) के फूल तेही सावणकी डोकरी (वर्षाऋतुमें होनेवाले लाल लाल जीव) की शोभाकूं वननिकी पंक्तिविषैं विस्तारते भए मानूं शरदलक्ष्मीने तांबूल रसकी बूंदीही डारी है ॥ २१ ॥ शरदऋतु प्रगट होती थकी पतिव्रता जो पवित्र स्त्री ताकी नांई बंधूकजीव कहिए मिझन्याके फूल तिनिकूं

प्रफुल्लित करती भई जैसें पतिव्रता जो पवित्र स्त्री ताकी नांई बंधुजीव कहिये बंधुजन तिनिको प्रफुल्लित करै है। भावार्थ—पतिव्रताके बंधुजन प्रफुल्लित रहैं। अर कैसी है शरदऋतु—निर्मल करी है दिशा जानें अर कैसी है पवित्र स्त्री—निर्मल है चित्त जाका अर निर्मल कीया है कुल जानें बहुरि कैसी है शरदऋतु—निर्मल है वस्त्र जाके ॥२२॥ हंसिनीके शब्द तेई हैं वादित्र जाकै अर आकाशकी उज्जलता सोई है चमर जाकै अर पुंडरीक कहिए सुफेद कमल तेई हैं छत्र जाकै सो मानूं यह शरदऋतु दिग्विजयहीकूं चक्रीकी नांई उद्यमी भई है, चक्रकरि उपजी चक्रवर्त्तिकी जीतिही है ॥ २३ ॥ वह शरदकाल दिशानिके शोभित करिबेके अर्थि वाणासन कहिए झिंटी जातिके पुष्प तिनिकूं धारता भया जैसें जीतिबेकी है इच्छा जिनिकै तिनिकूं दिशानिके जीतिबेके अर्थि बाणासन कहिए धनुष ताका ग्रहण प्रशंसायोग्य है ॥ २४ ॥ जब शरदऋतु आई तब मेघमाला क्षीण भई सुफेद भई अर आशा कहिए दिशा तिनिकूं तजती भई मानूं वर्षाकालके वियोगकरि उपजी चिंता ताकरि व्याकुल भया है चित्त जिनिका। भावार्थ—जब काहूकूं प्रीतमका वियोग होय तब वह कृश होय जाय, सुफेद पडिजाय आशा तजिदे ॥ २५ ॥ अर सरदरितुविषैं आकाश तारानिसाहित कुमुदके वनकूं हंसता सोहता भया अर कुमुदका वन तारानिसहित आकाशकूं जीतता सोहता भया। भावार्थ—सरदरितुविषैं आकाश हू निर्मल होय अर सरोवरहू निर्मल होय, ताराहू प्रगट होहि अर कुमुदहू फूलै ॥ २६ ॥ तारारूप कुमुद तिनिकरि पूर्ण आकाशरूप निर्मल सरोवर, ताविषैं चंद्रमा हंससमान सोहता भया, फैलाई है किरणरूप पांख जानें ॥ २७ ॥ अर आकाशरूप घरके आंगणविषैं दिशारूप स्त्रीके हार देदीप्यमान मोतिनिकी ज्योतिसमान जे तारा सो पुष्पनिके समूहकी शोभाकूं विस्तारते भए ॥२८॥ आकाशरूप समुद्रविषैं तारारूप देदीप्यमान निर्मल मुक्ताफल हिमसमान शीतल कैसे सोहै हैं मानूं मेघके समूहकरि बखेरे बोरांनिके समूहही हैं ॥२९॥ तारानिके समूह आकाशरूप अंगणविषैं विखरे शोभाकूं विस्तारते भये, मानूं चांदिनीरूप जलतैं उपजी बुदबुदानिकी पंक्ति ही है ॥ ३० ॥ अर तुच्छ होय गया है जलका प्रवाह

जिनिका औसी नदी क्षीणदशाकूं धरती भई। मानूं वर्षाकालरूप पतितैं विछुरी यह विरहिणी नायिका ही है॥ ३१॥ नदीरूप स्त्री वर्षाकालके अभावतैं मानूं विधवाके भावकूं प्राप्त भई है, कैसी है नदी—उद्धतपनैंतैं रहित है अर विधवाहू उद्धतपनैंतैं रहित है बहुरि कैसी है नदी? गंभीर तातैं रहित है जिनिकी कोऊ शंका न राखै उतरिवेतैं डरै नांही अर विधवाहूकी कोऊ शंका न राखै, उतरिवेतैं डरै नहीं अर चाहै ज्यो कहै बहुरि कैसी है नदी—निर्मल ऊज्ज्वलही है वस्त्र जिनिका अर विधवाहू सुफेद वस्त्र धारै है विधवाकूं सुंदर वस्त्र उचित नांही अर आभूषणका धारण नांही॥ ३२॥ अर दिशारूप स्त्री मेघके योगतैं विरही थीं सो वर्षाके दूरि भए प्रकाशरूप भई, हंसरूप है हास जिनिकै हास गलेका आभरण है सो दिशारूप स्त्री प्रगट होय मानूं परस्पर हास्य करती भई॥ ३३॥ कलहंसनिके शब्दकरि जीते मयूर अपनी धुनि तजते भए। सब कोई कालके बलतैं बली हैं। भावार्थ—वर्षामें मयूरका शब्द प्रिय अर सरदमें हंसका शब्द सुंदर॥ ३४॥ निर्मल सरदरूप अंगना सोहती भई, कैसी है सरदरितु अंगना चांदिनीरूप है मनोहर वस्त्र जाकै अर लहलहाट करै है नक्षत्रनिकी पंक्तिरूप नक्षत्रमालानाम हार जाकै अर मिझन्यांके फूल तेई हैं अधर जाकै॥ ३५॥ सरदकी शोभाकूं पायकरि गगनमंडलविषैं चंद्रमा चांदिनीरूप कीर्तिकूं विस्तारता उत्तमराजा समान अत्यंत सोहता भया॥ ३६॥ सरदरितुरूप स्त्री नई विवाही नवोढा नारी ताकी नांई सोहती भई, कैसी है शरदरितु—बंधूजीव कहिए मिझन्यांके फूल तिनिविषैं थापी है ललाई जानैं, अर कैसी है नवोढा—बंधुजनविषैं थाप्या है अनुराग जानैं, बहुरि कैसी है सरदरूप नवोढा—वाणासन जातिके वृक्ष तेई है क्रांति जामें अर हंसीरूप सखी तिनिकरि मंडित है॥३७॥ स्वयमेव उज्जल भया आकाश सोहता भया अर चंद्रमा स्वयमेव पखाल्या गया अर नदी स्वयमेव निर्मल भई अर दिशा स्वयमेव उज्जल भई॥ ३८॥ सरदरितुरूप लक्ष्मीके मुखके अवलोनकर दर्पणता समान उज्जल चंद्रमंडल ताविषैं प्रजाकी दृष्टि अनुरागकूं भजती भई, कैसा है चंद्रदर्पण—विना मांजे उज्जल भया है॥ ३९॥ वनकी पंक्ति विस्तरी है सुगंध जिनिमें पुष्पनिके

आभरणकरि उज्जल तिनिकूं गुंजार शब्द करते भंवर भजते भए ॥ ४० ॥ वनकी बेलि महाकृश अंगकी धरणहारी सोहती भई, फूल तेई भए मुलकनि जिनिकी अर गंधके लोलुपी अंध होय रहे अतिचंचल भ्रमर तेई भये केश जिनिके, तिनिकरि मंडित मनुष्यानिके मन हरै है ॥ भावार्थ—अलि जे भ्रमर ते अलकसमान सोहै हैं ॥ ४१ ॥ अर गर्वकरि प्रचंडताकूं धरै खुरनिकरि पृथ्वीकूं खोदते लाल कीये हैं नेत्र जिनि ऐसे वृषभनिके देखिबेकरि क्रोधरूप भये शब्द करै हैं ॥ ४२ ॥ धीर हैं शब्द जिनिके ऐसे बलध सींगनिके अग्रभागकरि वनस्थलीकूं खोदै हैं, कैसी है वनस्थली स्थलकमलनिके मृणालनिके खंडकरि संयुक्त सोहै है ॥ ४३ ॥ कुंद समान सुफेद वलद तिनिके कांधेपरि ककुद ताकै लगि रही है मृत्तिका सो चिह्नसहित चंद्रमा ताकी शोभाकूं धरै है ॥ ४४ ॥ अर प्रशंसायोग्य गाय वननिमें विचरती दूध झरती दूधके झरिवेकरि समस्त वनस्थलीकूं दूधके प्रवाहमई करती सोहती भई, महा सुंदर हैं शब्द जिनिके ॥ ४५ ॥ वननिमें उज्जल गौ अतिनिर्मल मानूं अमृतके पिंडकरि घडी हैं सो सरदकी लक्ष्मीसमान सोहती भई, तत्काल भई है प्रसूति जिनिके अर दूधसूं भरे हैं स्तन जिनिके ॥ ४६ ॥ हंभा शब्द करती दूधकी भरी गाय दूधरूप अमृतके अभिलाषी शब्द करते वछरे तिनिकूं दूध पावती भई, पयकरि पूर्ण हैं स्तन जिनिके ॥ ४७ ॥ दूधकी इच्छा जिनिके ऐसे अपने वछरे तिनिकूं गोपनिकरि निवारीहू गाय दूध पावती भई, हंभा गंभीर शब्दकी करनहारी धेनु अपने वालकनिकूं पोषती भई ॥४८॥ मोरनिकूं पहली वर्षारितुविषैं वादरे जलके भरे प्यारे हुते सो अव वर्षा गये वादररहित रिक्त होय गये सो अप्रिय लागै। हाय हाय! दरिद्रता बडा कष्ट है, रोता काहूकूं नीका न लागै ॥ ४९ ॥ अर पर्वत फूलां आए वृक्ष तिनिकरि परस्पर मानूं हास्यही विस्तारते भये अर उज्जल नीझरननिके छांटनिकरि मानूं परस्पर जलसिंचनही करते भये ॥ ५० ॥ अर चांवलनिकी सालि पाकिकरि नम्रीभूत होय रही है अनेक पंखीनिकरि मंडित अति सोहै है अर परिपक्क होयकरि सूखि गई है जैसे वृद्ध भई वय जाकी

ऐसा पुरुष कुब्ज होयकरि नय जाय अर सूखि जाय ॥ ५१ ॥ अर मदोन्मत्त भ्रमरनिके समूहकरि मंडित जे पुष्प तिनिकरि सहजनाके वृक्ष सोहै हैं मानूं सुवर्णके आभूषण इंद्रनीलमणिकरि जडे हैं ॥५२॥ मेघके आवरणतैं रहित भई सब दिशा प्रगट होय सोहती भई जैसे नृत्यकारिणी आभूषणके गृहतैं निकसिकरि रंगभूमिमैं आई सोहै ॥ ५३ ॥ अर पर्वत वर्षारहित वादरानिकूं शिखरपरि तथा तटपरि धरते भये मानूं नवीन वस्त्रही धारै हैं ॥ ५४ ॥ पवनरूप महावतके प्रेरे मेघरूप हाथी दसौं दिसिमैं भ्रमते भए, पर्वतनिके तटनिविषैं गाजते जलधारारूप मदधारा डारते भए ॥ ५५ ॥ अर सूवानिकी पंक्ति मूंगा समान है चोंच जिनिकी सो आकाशविषैं शोभा विस्तारती भई जैसैं हरित मणिनिकरि निर्मापी तोरणकी पंक्ति महारक्त जो पद्मरागमणि तासहित सोहै ॥ ५६ ॥ अर नदीनिके तारणहारे मलहा तिनके चित्त वर्षाविषैं अतिउद्धत होते सो दीनताकूं प्राप्त भये जैसैं अधिकारीनिका अधिकार जाता रहै अर वे दीन होय जांहि तैसैं होय गये ॥ ५७ ॥ अर महाप्रतापी पृथ्वीका अद्वितीय नेत्र सदा है उदय जाका तेजमई भानु भरतेश्वरकी नांई भासता ॥ ५८ ॥ या भांति प्रगट है चद्रमाकी किरणका विकास जाविषैं ऐसा सरदरितुका आगम ताविषैं चक्रवर्ती, चक्र है अग्रेसर जाकै सो दिग्विजयका उद्यम करता भया ॥ ५९ ॥ तब प्रस्थानके नगारे बजाये थकै महागंभीर शब्द करते भए सो मेहके आडंबरकी है अभिलाषा जिनके ऐसे मयूर तिनि ऊंची नाड (गर्दन) करि प्रीतिसूं सुने, जाने मेह आया ? ॥ ६० ॥ करे हैं मंगल शृंगार पहिरे हैं अनेक अद्भुत आभूषण जानै ऐसा भरतेश्वर सो मुक्ताफलनिका हार अर हरिचंदन ताकरि युक्त जो उरःस्थल ताहि धारता अत्यंत सोहता भया मानूं यह हार अर यह हरिचंदन सरदरितुरूप लक्ष्मीनैं भूपतिकूं भेट कीया है ॥ ६१ ॥ अर चांदनीके वस्त्र अतिमिही (बहुत पतले) मनोहर महादिव्य महा-कोमल राजेश्वर पहरता भया मानूं सरदरितुनैं आय महारायके पायनि मेले हैं ॥ ६२ ॥ अर गोडनितक (घुटनोंतक) लंबायमान यज्ञोपवीत ताकरि पृथ्वीका नाथ सोहता भया जैसैं गंगाजलके प्रवाहकरि हिमाचल

सोहै, कैसा है प्रवाह—तट-स्पृशा कहिये गिरिके तटकूं स्पर्शे है ॥ ६३ ॥ अर चक्री सिरपरि मुकुट धरता भया, कानानिमैं कुंडल पहरता भया मानूं चांद सूर्यके मंडलही कुंडलका रूप धरि जीतिका उछव कहिबेकूं आये हैं ॥ ६४ ॥ अर याके उरःस्थलविषें कौस्तुभमणि महामनोहर सोहती भई मानूं विजयलक्ष्मीके विवाह मंगलका प्रगट करनहारा दीपकही है ॥ ६५ ॥ अर चद्रबिंबकी स्पर्द्धा करै ऐसा उज्ज्वल छत्र ताहि छत्रपति धारता भया मानूं छत्रका मिसकरि चंद्रही आयकरि नरेंद्रकूं सेवै है ॥ ६६ ॥ सो छत्र-चूडामणि रत्नकी किरणनिकरि अतिशोभाकूं विस्तारता भया मानूं सूर्यकी किरणसहित श्वेतकमलही है ॥ ६७ ॥ अर गंगाकी तरंगनिकी स्पर्द्धा करै ऐसे उज्जल चमरनिके समूह सो दिक्कन्या समान वारांगना हाथनिकरि ढारती भई ॥ ६८ ॥ अर सिलावट रत्न है तातैं महासुंदर सुवर्णमयी नानाप्रकार मणिनिकरि जडित जो सुमेरुके तटकी शोभाकूं हंसै ऐसा रथ निरमाप्या ॥ ६९ ॥ चक्ररत्नकी स्पर्द्धा करै ऐसे हैं चक्र कहिए पहिए जाके वज्रमणि जे हीरा तिनिकरि रच्या रथ ऐसा सोहै मानूं महीपतिका मनोरथही है ॥ ७० ॥ ता रथके तुरंग जोये, ते कैसे हैं—चाहा जाहि (इच्छानुसार चलें) पवन समान है वेग जिनिका अर कुमुद समान उज्जल है क्रांति जिनकी मानूं ते तुरंग नरेंद्रके समूह तुल्यही हैं ॥७१॥ सो चक्रेश्वर ता रथपरि चढता भया जैसैं सुमेरुके तटपरि सुरेंद्र चढै, कैसा है रथ—महाश्रेष्ठ सारथीकरि संयुक्त है ॥ ७२ ॥ तब प्रयाणके समय मंगलरूप वचन कहैं ऐसे पुण्यपाठक शुभ वचन कहते भये। दिग्विजयविषें उद्यमी भरतेश्वर कीया है प्रस्थान मंगल जानें सो प्रयाण करता भया ॥ ७३ ॥ तासैं समस्त आकाश जय जय शब्दकरि पूरिगया अर नृपका आंगण सेनाके नायकनिकरि पूरि गया ॥ ७४ ॥ चहूं वोरसूं (तरफसे) आयकरि महा मुकुटबद्ध राजा राजेंद्रकूं बेढते भये, दूरिहीतें नवै हैं मस्तक जिनिके, जैसें देवेंद्रकूं नरेंद्र बेढै ॥ ७५ ॥ चालता भया चक्रवर्तीका कटक, सो नगरकी गली अर चौहट सब सुभटनिकरि रुक गए मानूं प्रयाणसमै कोइक अपूर्व महासांवतनिमई सृष्टि होती

भई ॥ ७६ ॥ आगै पयादे, तिनि पीछैं घोडे अर तिनिके पीछैं रथनिके समूह, रथनिके पीछैं हाथिनिके समूह या अनुक्रमतैं नरेश्वरके रथकूं बेढिकरि सेना चाली, कैसैं है राजेश्वरके रथ फरहरै ध्वजा जापरि ॥ ७७ ॥ रथनिके घोडे तिनिके संघट्टतैं उठी मार्गकी हेममई रज ताकरि आकाश आच्छादित होय गया सो मानूं पृथ्वी कटकका वोझ सहारि न सकी सो रजके मिसकरि आकाशकूं ऊंची गया चाहै है ॥ ७८ ॥ सुवर्णकी रजकरि आच्छादित भया आकाशका आंगण, सो कैसा सोहता भया मानूं ऊगते सूर्यकरि स्पर्श्या गया है अथवा मकरंदकी रजकरि पूरि गया है ॥ ७९ ॥ धीरां धीरां कटकके लोगनि नगरकी गली छांडी सो कैसी सोहती भई मानूं समुद्रकी बेलाकरि उपजी जो कल्लोल तिनिकरि तजी जैसी समुद्रके तीरकी भूमि सोहै ॥८०॥ नगरकी नारी महलके झरोखनिमैं बठी तिनि नृपतिके ऊपरि पुष्पनिकी आंजुली बखेरी अर नेत्रनिकरि चक्रवर्त्तीकी विभूति निरखती भई ॥८१॥ अर नगरके लोग पवित्र आसिकानिके सैंकरानिकरि पृथ्वीपतिकूं पूजते भए अर या भांति असीस देते भए—हे ईश ! तुम जयवंत होहु विश्वकूं जीतौ दसूं दिशानुकूं जीतौ ॥८२॥ चक्रवर्ती ता समै अयोध्याकी परम विभूति देखता तथा धीरां धीरां नगरके दरवाजै आय प्राप्त भया सो दरवाजा रत्नके तोरणनिकरि अति देदीप्यमान है ॥८३॥ नगरकै वाहरि भीतरि सब उर पृथ्वीपतिनै दृष्टिपर्यंत असंख्यात वल देख्या ॥ ८४ ॥ जगत्के प्रसूतिगृह समान वह नगर तातैं कटक नीठि (जबरदस्तीसे) निकस्या, लोक सांस भरिगए अर दरवाजे अटके ॥ ८५ ॥ सो आकाशविषैं गमन करते देव आश्चर्यसहित कटककूं देखिकरि ऐसा विचारते भए जो कहा यह प्रलय-कालके क्षोभतैं समुद्रकूं क्षोभ प्राप्त भया अथवा तीन जगतकी सृष्टि नवी बनी ? ऐसी वितर्क देवनिकैं उपजी ॥ ८६ ॥ अर चक्रवर्तीका कटक नगरतैं निकरि च्यारि उर फैलिगया ॥ ८७ ॥ अथानंतर पूर्वदि-शाके जीतिबेका है उद्यम जाकै ऐसा पृथ्वीपति सो चक्रकैं पीछैं चालता संता पूर्वकूं सन्मुख होयकरि प्रयाण कीया ॥ ८८ ॥ आकाशविषैं चक्र देदीप्यमान गमन करता भया, चौगिरद देवनिकरि मंडित मानूं

देदीप्यमान सूर्यका बिंबही है ॥ ८९ ॥ चक्रकै पीछैं नव निधिके स्वामीका कटक चालता सोहता भया जैसैं गुरुके इच्छावर्ती मुनिनिका मंडल चालै ॥ ९० ॥ अर दंडरत्नकूं अग्रेसर करि सेनापति अग्रगामी भया नीची ऊंची भूमिकूं बराबर करता कटक चाल्या, कटकके योगतैं जे विषमस्थल हुते ते सम होय गए ॥ ९१ ॥ दंडरत्नकरि अग्रगामीनैं पंथ शुद्ध कीया जाविषैं राजा गमनकरै ऐसा कीया, सो सेना यथेष्ट गमन करती भई, कहूं भी मार्ग न अटक्या अखंडगति चले गए ॥ ९२ ॥ मार्गविषैं पृथ्वीका नाथ शरदकी शोभा देखता चल्या मानूं वह शरदकी शोभा दसूंदिसाकूं शोभित करणहारी चक्रवर्तीकी निर्मल कीर्तिही है सो अपनी कीर्तिसमान उज्जल सरदरितुकी शोभा ताहि निरखता संता चल्या जाय है ॥ ९३ ॥ नव निधिका स्वामी राजानिका इंद्र सरदकी लक्ष्मीके मुखसमान सरोवर कमलनिकी सुगंधताकूं प्रगट करते शोभायमान तिनिकूं देखिकरि आनंदकूं प्राप्त भया ॥ ९४ ॥ अर सरोवरनिके तीरविषैं शब्द करते हंस तिनिकूं देखता संता हर्षित भया ते हंस मृणाल कहिए कमल ताका पीथ कहिए मांखन ताकरि पुष्ट हैं मानूं वे हंस शरदरितुके पुत्रही हैं ॥ ९५ ॥ हंस कमलनालकूं चौंचसूं उठायकरि हंसनीकूं देता संता राजेंद्रके हृदयविषैं महाहर्षकूं विस्तारता भया, राजेंद्र राजनिमें हंस कहिए महाश्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥ अर चकवा सरोवरकी लहरिकरि आच्छादित जो चकवी ताहि न देखता संता सरोवरकी चौगिरद अत्यर्थ शब्द करता चक्रवर्तीके मनकूं अतिप्रीति विस्तारता भया ॥ ९७ ॥ अर तरुण हंस अपनी हंसनीकूं कमलनिके मकरंदकरि पीतवर्ण देखि चकवीकी आशंकाकरि न आरता भया ॥ ९८ ॥ अर जलकी तरंगनिकरि धवल होय गया है शरीर जाका ऐसी चकवी ताहि वृद्ध हंस हंसनी जानि मोहके योगतैं धावता भया ताहि देखिकरि चक्रेश्वर हास्यरसकूं प्राप्त भया ॥ ९९ ॥ अर पवित्रताकी हद्द जे नदीनिके पुलिन, हंस अर सारस तिनिकरि मनोहर तिनिविषैं चक्रवर्तीके महाप्रीति होती भई, वे नदीनिके पुलिन मानूं मनोज्ञ शय्या समान सुंदर है॥ १००॥ भरत क्षेत्रका अधीश नदीनिकी तीरकी भूमि देखता भया वह भूमिजलके प्रवाह-

करि तरंगरूप है, लता तिनिकी शिखातैं गिरैं हैं फूलनिके समूह, ताकरि शोभित है ॥ १०१ ॥ महामनोहर लतामंडप तिनिके देखिबेतैं भरतेश्वरकै अधिक अनुराग होता भया, स्वयमेव गिरते फूलनिके समूह तिनिकरि रचे हैं साथरे जहां ॥ २ ॥ अर कहूंइक लतामंडपनिके मध्य तिष्ठती चंद्रकांत मणिकी शिला ताविषैं तिष्ठते किंनर देव चक्रनाथका जस गायबेविषैं आसक्त तिनिकूं राजनिका प्रभू अवलोकता भया ॥ ३॥ अर कहूंइक लतानिके पुष्प तिनिविषैं लीन होय रही भंवरनिकी पंक्ति तिनिकूं देखिकरि नृपनिका इंद्र सेजकै नीचैं परे हैं केश जिनिके ऐसेसी (ऐसी ऐसी) अपनी प्यारी स्त्री तिनिकूं चितारता भया ॥ ४ ॥ अर फूलि रहे हैं मार्गके वृक्ष पवनकरि हालै है शाखाके अग्रभाग जिनिके सो फूलनिकी वर्षा करते ऐसे सोहते भए मानूं प्रीतिकरि याके मस्तकविषैं आसिकाके पुष्पही डारैं हैं ॥ १०५ ॥ सो राजानिका नाथ मार्गके वृक्षनिकूं भलीभांति दृष्टि धरि देखता भया। मानूं वे वृक्ष राजानिके तुल्यही हैं—वृक्ष भी छाया सहित अर राजा भी छायासहित है अर फलनिकरि मंडित हैं ऊंचे हैं अर सर्वके भोगिबेयोग्य है संपदा जिनिकी ॥६॥ नदीके तीरकी भूमि ताहि देखतासंता देशपतीनिका अधिपति अति हर्षित होता भया। नदीनिके तीरकी भूमि कमलनिके मकरंदकरि युक्त है, पंथीनिके हृदयविषैं सुवर्णस्थलीकी आशंका विस्तारै है ॥७॥ अर कटककी रजकरि रुकि गया आकाश सो अंधकारयुक्त होय गया, चकवी जानी राति परी ऐसा भ्रमकरि विलाप करती भई ताहि पृथ्वीनाथ देखिकरि जानता भया जो पतिके वियोगके भयकरि यह चकवी विलाप करै है ॥ ८ ॥ अर गायनिके समूह गम्य जो वन ताविषैं विचरणहारे तिनिकूं राजनिका ईश्वर देखता भया, मानूं ए गायनिके समूह दूधके मेघही हैं, झरै हैं दूध ताकरि सजल होय रहे हैं निकटके स्थानक जिनिके ॥ ९ ॥ अर सींगनिके अग्रभागकरि उखारे हैं स्थलकमल जिनि ऐसे बलध (बैल) मदकरि युक्त तिनिकूं महाकाम देखता भया सींगनिके लगि रहे हैं स्थलकमल तिनितैं मृणाल गिरै हैं मानूं पृथ्वीपतिका जसही विस्तारै हैं ॥ ११० ॥ अर उज्जल बछरानिके समूह दूधके पोखतैं पुष्ट हैं शरीर

जिनिके तिनिकूं भूमिपालनिका प्रतिपाल देखता भया ते वछरानिके समूह धरतीतैं आकाशविषैं उछलैं हैं मानूं चपलताकी हदही हैं ॥ १११ ॥ अर भूपतीनिका पति मिष्ट सुगंध चावलनिके खेतनिकूं देखता भया, पाकी जे बालि ताकरि नम्रीभूत होय रहे हैं मानूं मनुष्यनिकूं ऐसा उपदेश देवेकूं उद्यमी भए हैं— जो फलैगा सो नम्रीभूत होयगा, उद्धतपणां सफल नांही ॥ १२ ॥ सो राजेंद्र खेतनिविषै चावल आदि पके धान्य तिनिकूं देखिकरि परमहर्षकूं प्राप्त होता भया, वे धान खेतनिकी समीप भूमिविषैं फूलि रहे कमल तिनिके सूंघिबेकूं मानूं नम्रीभूत होय रहे हैं ॥ ११३ ॥ वहुरि वह नरेंद्रनिका इंद्र सालिकी संपदा देखतासंता हर्षित होता भया सो सालि दूधकी भरी गायकी नांई दूध झरै है। गायहू पहली जल पीयकरि पीछैं उत्कृष्ट दूध दे लोककूं उपकार करै है अर ए सालिही पहली जल पीयकरि पीछैं दूधकरि पूर्ण होय हैं अर लोकनिकूं उपकार करै हैं ॥१४॥ राजनिका स्वामी खेतनिविषैं फलकरि नम्रीभूत जे बालि तिनिकूं देखता भया, मानूं वे बालि अपने जन्मका कारण जो खेत ताहि आदरथकी नमस्कारही करै हैं ॥ ११५ ॥ अर किसाननिकी स्त्री चक्रेश्वरके नेत्रनिकूं हर्ष विस्तारती भई, नवीन है वय जिनिकी अर नीलकमलनिके हैं कर्णपूर जिनिके अर कमलनिकी मकरंदकरि मंडित हैं स्तन जिनिके अर सांठेनिके दंड हाथमैं धरे पंखीनिकूं उडावै हैं ॥ १६ ॥ अर मनोहर गीतनिके शब्दकरि आए हैं हंसनिके मंडल तिनिकरि वेष्टित हैं ऐसी किसाणनिकी स्त्री पृथ्वीनाथकी दृष्टिकूं हर्ष विस्तारती भई॥ ११७ ॥ जिनिके गीत सुनि पंथी पंथ चलिबेतैं बैठि रहैं ऐसे गीत गावती हर्षकी भरी पालतीनिकी स्त्री बालिनिके कर्णपूर जिनि, तिनिकूं प्रजानाथ देखि हर्षित होता भया ॥ ११८ ॥ वे सालिनिके खेतनिकी रक्षक पालतीनिकी पुत्री सुगंध हैं मुखके श्वास जिनिके तिनिकरि गुंजार करै हैं भंवर जिनिपरि तिनिकूं उडावती उडावती व्याकुल होय जाय हैं तिनिकूं देखिकरि चक्रनाथका मन प्रसन्न होता भया, जो मेरी प्रजा सुखी है ॥११९॥ मार्गके समीप वाहे हैं खेत जिनि ऐसे किसाण सो इत उत दौडे फिरै हैं, कटकके गमनकरि उपज्या है खेद जिनिकूं तिनिकूं

कौतुकसहित राजेंद्र देखता भया अर कटकमैं ऐसी आज्ञा है जो कोऊ काहूका एक तृण न तोडि सकै ॥१२०॥ अर चौगिरद गांधनिकूं देखता भया, गांव धन धान्यकरि पूर्ण हैं अर विना बही नांही है पृथ्वी जहां अर खेतनिके लुणनहारे किसाण इत उत दौडे फिरै हैं तिनिकरि गांव अर खेत परिपूर्ण हैं॥२१॥ सो नरपतिनिका अधिपति गांवानिके समीप मार्गकूं कछुयक कर्दमकरि सजल देखता भया अर गांवकी चौगिरद कांटेनिकी बारि विलोकता भया अर मार्गकूं प्रगटपनैं गायनिके खुरनिके खोज तिनिकरि विषमोन्नत कहिए नीचा ऊंचा देखता भया ॥२२॥ अर गांवनिकी चौगिरद पटेलनिकूं देखता भया अर बागनिके महावृक्ष तिनिकूं देखता भया वृक्ष महाफलकूं फले हैं अर पटैलहू महाफलकूं फले हैं अर वृक्षनिमैं दूध झरै हैं अर पटैल दूध दहीके घडे भेट लीए आवै हैं बहुरि वृक्ष लोकनिकरि सेव्य हैं अर पटैलहू पालती लोकनिकरि सेव्य हैं ॥ २३ ॥ अर गांव कूकडा उडांण नजीक नजीक, तिनिकूं पृथ्वीनाथ उलंघता भया ते गांव पुष्पनिकरि मंडित पटोलिका आदि बेलि तिनिकरि शोभित जो कांटेनिकी बाडि ताकरि वेष्टित हैं ॥ २४ ॥ अर गांवनिमैं लोगनिके घरूंके आंगणविषैं फल पुष्पकरि नम्रीभूत जो बेलि तिनिकूं देखतैं संते राजेंद्रकै अतिहर्ष होता भया मानूं वे बेलि पुत्रादिकरि मंडित पतिव्रता स्त्री ही हैं ॥ १२५ ॥ अर गांवकी स्त्री बडिकै निकट कटककूं निरखती राजेश्वरका मन हर्षित करती भई, ते स्त्री सुवर्णकी माला अर सुवर्णके वलय तिनिकरि शोभित हैं ॥ २६ ॥ अर गांव गांवके पटैल पृथ्वीके पालकसूं आय आय मिलै । गायनिके भैंसनिके घृत अर दधि दुग्ध तिनिके कलश अर गांवनिके नानाप्रकार फल पृथ्वीनाथकी भेट करते भए ॥ २७ ॥ सो धीर भूपतिनिका अधिपति सेनासहित अनेक गांवनिकूं उलंघि कैयक प्रयाणमैं गंगाकै निकट प्राप्त होता भया ॥ १२८ ॥ चक्रधरनैं गंगा देखी, सो गंगा हिमवान पर्वततैं निकसी है अर प्रशंसायोग्य है समीचीन है समुद्रपर्यंत है गमन जाका अर पवित्र प्रवाहकूं धरे है बहुत काल पर्यंत है वृत्ति जाकी, मानूं वह गंगा चक्रवर्त्तीकी कीर्त्ति ही है । भावार्थ—गंगाहू हिमवानके शिखरपरि विस्तरी अर

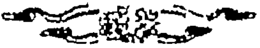
कीर्त्तिहू विस्तरी, अर गंगाहू प्रशंसायोग्य अर कीर्त्तिहू प्रशंसायोग्य, अर गंगाहू समीचीन अर कीर्त्तिहू समीचीन, दोऊ ही समुद्रपर्यंत गमन करणहारी अर दोऊ ही पवित्र प्रवाहकूं धरैं अर दोऊही वहुत कालपर्यंत स्थिर ॥ २९ ॥ वहुरि कैसी है गंगा—मानूं नवीन नायिकाही हैं, मीन हैं नेत्र जाके अर उठती तरंग तेही हैं भौंह जाकै अर वनकी पंक्ति सोई भई मनोहर सारी ताहि धरे है ॥ १३० ॥ अर जाके पुलिन नारीनिके जघन समान सुंदर हैं विस्तीर्ण हैं लोकनिकरि संभोग्य हैं अर शब्द करती हंसनिकी पंक्ति सोई कटिमेखला है, तरंगरूप वस्त्र महामनोहर तिनिकरि मंडित है ॥ १३१ ॥ अर महाचंचल लहरिरूप हाथ तिनिकरि उडाई है पंखीनिकी पंक्ति जानैं सो वे पंखी मिष्ट शब्द करते उडे हैं तिनि शब्दनिकरि मानूं तटके वृक्षनिकूं कछुयक वचनालापका यत्न करै हैं ॥ १३२ ॥ अर वनके हाथी तिनिके दांतनिके प्रहार लगैं हैं दोऊ तटरूप जंघनिकै, तिनिकूं मानूं समुद्रके भय थकी तरंगरूप वस्त्रनिकरि ढांकै है ॥ ३३ ॥ अर महामनोहर नीलवनकी पंक्ति सोई भई रोमनिकी पंक्ति ताहि प्रगट करता मानूं समुद्रकूं अपनी भँवणरूप नाभि दिखायवेकी अभिलाषा करै हैं ॥ ३४ ॥ अर चंचल जे लहरि तिनिके संघट्टतैं उडी जो पंखीनिकी पंक्ति सो मानूं या गंगानैं सर्व नदीनिके जीतिवेतैं पाई कीर्त्ति, सो पंखीनिकी पंक्ति जीतिकी ध्वजा ही खडी है ॥ ३५ ॥ वहुरि यह गंगा मानूं उज्जल उत्तम गायकूं हंसै है, केसी है गंगा—मीनादि जलचर तिनिकूं उदरविषैं धरै है अर गाय प्रतिवर्ष उदरविषैं गर्भकूं धरै है अर गायहू वहुत दिननकी है अर गंगाहू चिरकालकी है अर गाय सुंदर शब्द करै है अर गंगाहू सुंदर शब्द करै है अर गाय जगतविषैं पवित्र है अर गंगाहू जगतविषैं पवित्र है, गायहू मान्य है अर गंगाहू मान्य है परन्तु गाय गंगा समान नांही गंगा अखंड है निराबाध है गाय बाधासहित है तातैं गंगा गायकूं हंसै है जो तू मेरी तुल्य नांही ॥ १३६ ॥ वहुरि यह गंगा मानूं निर्मल जिनवाणीही है जिनवाणी तौ गुरु जे केवली श्रुतकेवली तिनिके प्रवाहकरि विस्तरी है अर गंगाहू गुरु कहिए बडे प्रवाहकरि विस्तरी है अर जिनवाणी तौ जे भवसमुद्र तिरिवेके अभिलाषी

भव्यजीव तिनिकरि सेयबेयोग्य है अर गंगा यात्रीनिकरि सेयबेयोग्य है अर जिनवाणी गंभीर शब्दकी धारक है अर गंगाहू गंभीर शब्दकूं धरै है अर जिनवाणी तौ अमल कहिए निर्मल है रागादि मलकी हरणहारी है अर गंगा निर्मल जलकी धरणहारी है ॥ ३७ ॥ बहुरि राजनिका इंद्र गंगाकूं आपकी जयलक्ष्मी समान देखता भया। कैसी है जयलक्ष्मी—राजहंस जे बडे राजा तिनिकरि सेयबेयोग्य है अर गंगा राजहंस जे पंखी तिनिकरि सेयबेयोग्य है अर जयलक्ष्मी काहूकरि लंघी न जाय अर गंगाहू अलंघि है अर दोऊ ही दीर्घ हैं अर दोऊ ही विस्तीर्ण हैं अर दोऊ ही समुद्रगामिनी हैं सो चक्रधर महानदीकूं आपकी जयलक्ष्मी समान देखि अति हर्षित भया ॥ ३८ ॥ बहुरि चक्रवर्त्ती गंगाकूं अपनी लक्ष्मीसमान विलोकता भया आपकी लक्ष्मी पद्मनामा निधितैं उपजी है अर गंगा पद्मनामा द्रहतैं उपजी है बहुरि लक्ष्मी जगतकूं आनंदकी देनहारी है अर गंगाहू जगतकूं आनंदकारी है अर आपकी लक्ष्मी जगतकूं तृप्त करिबे योग्य है अर गंगाहू तृप्त करिबे योग्य है अर लक्ष्मी दीर्घताकूं धरै है अर गंगाहू दीर्घताकूं धरै है ॥१३९॥ अर पृथ्वीका इंद्र गंगाकूं अपनी सेनासमान देखता भया, कैसी है सेना—विजयार्द्धके तटके उलंघनकरि पाई है प्रशंसा जानैं अर गंगाहू विजयार्द्धके उलंघनकरि प्रशंसा योग्य है, तीव्र है वेग जाका अर सेनाहू तीव्र वेगकूं धरै है अर गंगाका विस्तार कोऊ रोकि न सकै अर सेनाहूका विस्तार कोऊ रोकि न सकै अर दोऊही महामनोज्ञ हैं ॥ ४० ॥ अर यह गंगा अपनी चंचल लहरि तिनिकरि स्पर्शे अपने तटके वृक्ष तिनिकरि मानूं रोमांचकूं धरै है, जैसैं स्त्री कामी पुरुषनिकरि स्पर्शी हर्षके रोमांच धारै ॥ ४१ ॥ अर गंगा तीरके लतामंडप तिनिविषैं अपनी इच्छाकरि तिष्ठे जे देव देवी तिनिकूं मानूं अपनी विस्तरती जे तरंग तिनिकरि उठे शब्द तिनिकरि हंसै है ॥ ४२ ॥ बहुरि गंगा कैसी है—किंनर देवनिके मिष्ट शब्द अर बीन सहित सुंदर संगीत तिनिकरि सेयबे योग्य जे तीरके भूभाग तहां लतानिके मंडप तेई हैं आभूषण जाके ॥ ४३ ॥ अर गंगा मनोहर जे किंनरनिके गीत तिनिकरि बुलाई जे मृगी तिनिकूं अपने तीरके वनविषैं

घरैं है, कैसी हैं मृगी–सुखके अतिशयकरि पसाऱ्या है कंठ जिनि ॥ ४४ ॥ अर महामनोहर सारसनिके शब्द तिनिसहित जे अपने पुलिन तिनिकरि कांचीदामसहित जे देवांगनानिके नितंब तिनिकूं हंसैं हैं, ते पुलिन विस्ताररूप हैं ॥ ४५ ॥ अर चौदह हजार नदी गंगामैं आय मिली हैं तेई भई सहेली तिनिसूं लहरिरूप भुजानिकरि मानूं आलिंगन करै है ॥१४६॥ या भांति प्रगट है शोभा जाकी ऐसी गंगा ताहि, भरतक्षेत्रका स्वामी देखता भया, मानूं हिमाचल पर्वतनैं समुद्रकूं मोतीनिकी कंठीही भेजी है ॥ ४७ ॥ पृथ्वीका पति गंगाकूं देखतासंता परमहर्षकूं प्राप्त होता भया । कैसी है गंगा–सरदरितुकरि प्राप्त भई है क्रांति जाविषैं । बहुरि वह गंगा मानूं सुंदर स्त्रीही है–तीरके वननिकी पंक्ति सोई है वस्त्र जाके अर दोऊ तरफके पुलिन तेही हैं नितंब जाकै तिनिकरि महामनोज्ञ है अर गंभीर भंवण सोही है नाभि जाकै ॥ ५८ ॥ निरंतर गंगाकी तरंगनिकूं स्पर्शती जो शीतल पवन सो राजानिकी रानीनिका मार्गका खेद हरती भई । कैसी है पवन–कमलनिकी मकरंद ताकी सुगंध ताकरि महासुगंध है अर हलाए हैं तीरके वन तिनिकी कूंपल तिनिके मंद मंद हालनेकरि अंगीकार करी है मंदता जानैं । भावार्थ–पवनके तीन लक्षण हैं–शीतल मंद अर सुगंध । सो ऐसी पवनकरि रानीनिका मार्गका खेद निवृत्त भया ॥ १४९ ॥ नवनिधिका अधिपति राजनिका ईश्वर भरतेश्वर गंगाकूं निरखता संता परम प्रीतिकूं प्राप्त भया सो गंगा जिनराजकी कीर्त्तिसमान जगतविषैं विस्तरी है–जिनराजकी कीर्त्तिहू निर्मल है अर गंगाहू निर्मल है अर जिनराजकी कीर्त्ति अर गंगा जगतकूं आनंदकारिणी है, जिनराजकी कीर्त्ति अर गंगा दोऊही दिशानिमैं फैलि रही हैं अर जिनराजकी कीर्त्ति तौ रज कहिए कर्मरज ताकी नाश करणहारा है अर गंगा रज कहिए मल तिनिकी नाश करणहारी है अर जिनराजकी कीर्त्ति अर गंगा दोऊ ही जगत विषैं पवित्र हैं अर जिनराजकी कीर्त्ति तौ द्विजकुंजर कहिए महामुनि तिनिकरि सेवनीक है अर गंगा द्विज कहिए पंखी तिनिमैं कुंजर कहिए श्रेष्ठ हंस गरुड भैरुंड तिनिकरि सेव्य है अर जिनराजकी कीर्त्ति

तौ संताप कहिए जन्म जरा मरणका आताप ताकी दूर करणहारी है अर गंगा शरीरका संताप दूर करणहारी है ॥ १५० ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतराजदिग्विजयोद्योगवर्णन नाम छब्बीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २६ ॥



अथ सत्ताइसवां पर्व।

अथानंतर राजानिका पति गंगाकी तरफ अपनी दृष्टि विस्तारता भया सो गंगा मानूं निर्मल जलकरि भरतेश्वरका अर्घ पाद्यही करै है ॥ १ ॥ नरेंद्रकी गंगाकी उर दृष्टि देखि सारथी अवसर पाय मनके रिझावनहारे वचन कहता भया ॥ २ ॥ हे देव ! यह गंगा समस्तभुवनकी हर्षित करणहारी वीतरागदेवकी वाणी समान सोहै है। वीतरागकी वाणी तौ कर्मरूप रजका नाश करै है अर यहहू रज जो मैल ताकूं नाश करै है ॥ ३ ॥ यह महानदी प्रसूतिविषैं तौ हिमाचलकूं पवित्र करै है अर प्रवेशविषैं समुद्रकूं पवित्र करै है, महागंभीर है अर निर्मल है ॥ ४ ॥ या गंगाकूं पायकरि वनके गज मदकरि रहित भए सुखी होंहि हैं जैसैं मुनींद्र अध्यात्मविद्याकूं पायकरि मुक्त होंहि हैं, परम सुखी होंहि हैं। कैसी है अध्यात्मविद्या— महागंभीर है अर आतापकी दूर करणहारी है अर यह गंगाहू गंभीर है अर आतापकूं हरै है ॥ ५ ॥ एक उर तौ याविषैं वनके गज शब्द करते जल पीवैं हैं अर एक उर शरदके मेघ शब्द करते याहि पूरण करैं हैं ॥ ६ ॥ अर याके प्रवाहकूं गंभीरताके योगतैं समुद्रही धारै है अर विजयार्द्धगिरि उत्तुंग है अचल है परंतु गंभीर नांही तातैं याके प्रवाहकूं धारि न सक्या। भावार्थ—बडेनिकूं गंभीरगुणका धारकही धारि-सकै, अचलहू अर उत्तुंगहू धारि न सकै ॥ ७ ॥ अर याके जलके प्रवाहकरि निश्चयसेती समुद्र तृष्णा रहित होय है, समुद्र अपने क्षार जलकरि दह्यमान है ॥ ८ ॥ अर यह गंगा हिमवान पर्वतका उज्जल-चित्त समान जो पद्मद्रह ताथकी उपजी है अर पृथ्वीविषैं विस्तरी है। जो शुद्ध वंशका उपज्या होय सो

पूज्य होय ॥ ९ ॥ अर यह गंगा आकाशतैं पृथ्वीविषैं पडी तातैं याहि व्योमापगाहू कहै हैं अर गंगादेवीका निवास ताहि अपने जलके प्रवाहतैं सजलकरि यह विस्तरी है ॥ १० ॥ चंद्रमाकी किरण समान निर्मल यह महानदी ताहि हिमवान पर्वत प्रगट करै है। यह गंगा समुद्रपर्यंत विस्तरी लोकविषैं पवित्र मानूं हिमवानकी कीर्तिही है ॥ ११ ॥ अर दोऊ तटविषैं शोभित वनकी पंक्ति ताकरि यह महानदी सोहै है मानूं वे दोऊ उरके वन अतिमनोज्ञताके धरणहारे हरितवस्त्रके युगलही हैं ॥ १२ ॥ अर यह गंगा अपने तटकी आश्रय करणहारी जो हंसनिकी पंक्ति मिष्ट शब्दकी बोलनहारी, कमलनिके मकरंदकरि पीत है शरीर जाका ताहि कटिमेखलाकी नांई धरै है। भावार्थ—कटिमेखलाहू शब्दायमान है अर सुवर्णकरि पीतवर्ण है अर हंसनिकी पंक्तिहू शब्दायमान है अर कमलनिके मकरंदकरि पीत होयरही है ॥ १३ ॥ अर यह गंगा महानदी अतिनिर्मल कमलके ततु समान उज्जल है, अनेक नदीरूप सखी तिनिकूं अति आदरतैं धारै है। सो सखीपनां ऐसाही प्रशंसायोग्य है जो सखीनिकूं आदरसूं ग्रहै ॥ १४ ॥ चक्रवर्तीकूं सराथी कहै है—हे देव ! यह गंगा तिहारी लक्ष्मीसमान सोहै है, तिहारी लक्ष्मी तौ राजहंस जे बडे राजा तिनिकरि सेवनीक है अर यह महानदी राजहंस जे पंखी तिनिकरि सेवनीक है अर तिहारी राजलक्ष्मी अलंघ्य महिमाकूं धरै है काहूकरि लंघी न जाय अर यह गंगाहू अलंघ्य महिमाकूं धरै है अर तिहारी लक्ष्मी जगतके प्राणीनिकूं प्रीति विस्तारै है अर यह गंगाहू जगतके जीवनिकूं प्रीति विस्तारै है ॥ १५ ॥ तिहारी लक्ष्मी अर गंगा दोऊही जगतकूं प्रिय है अर गंगा सुवर्णमई उत्तुंग वनबेदीकूं धरै है मानूं वह वनवेदी आकाशके मार्गकूं लंघनहारी तिहारी आज्ञा समानही अलंघ्य है ॥१६॥ अर हे नाथ ! प्रसन्न होयकरि सरदरितुकी शोभाकूं देखहु, यह सरदकी शोभा वनकी पंक्तिविषैं तथा सरवर अर नदीनिविषैं प्रगट होयरही है।१७। ए सप्तच्छद जातिके वृक्ष चौगिरद पुष्पनिकूं बखेरै हैं सो तिनिके पुष्पनिकी मकरंद सुगंधचूर्णकी नांई दिशानिकूं सुगंधकी करणहारी सब उर विस्तरि रही है ॥ १८ ॥ अर वाण जातिके वृक्ष फलि रहे हैं सो कामके वाणनिकी नांई कामी जीवनिका

चित्त भेदै हैं। मनोहर वस्तु कौनका चित्त न हरै ॥ १९ ॥ अर सरोवरनविषैं अरुण कमल अर नील कमल फूलिरहे हैं सो मानूं शरदलक्ष्मीके नेत्र अर वदनही फूलिरहे हैं ॥ २० ॥ अर सुगंधके लोलुपी भंवर कमलनिविषैं लीन होय रहे हैं जैस कामिनीके मुखकमलविषैं कामी पुरुष लीन होय रहैं कैसे हैं कामी अर कैसे हैं भंवर—मंद हैं वचन जिनिके ॥ २१ ॥ ए मधुकर कहिए भंवर कामके वाणनिकी पांख समान है पांख जिनिकी सो कमलनिके वनविषैं विचरैं हैं. मकरंदके रसके आभिलाषी ॥ २२ ॥ अर ए भंवर कमलनिके मकरंदकरि आच्छादित भए सुवर्णसमान पीत होय रहे हैं, सो कैसे सोहैं हैं, मानूं कामरूप अग्निके फुलिंगाही हैं ॥ २३ ॥ अर स्थलविषैं स्थलकमलिनी फूली सोहे हैं मानूं सरदकी लक्ष्मी जगतके जीतवेकूं चढी है ताके ए डेराही खडे भए हैं ॥ २४ ॥ कमलनिके मकरंदकरि मंडित जो सरोवर ताविषैं हंसनी स्थलकमलकी शंका करती संती अपनी पांखनिकूं संकोचिकरि प्रवेश करती थकी जलविषैं मगन होय है ॥ २५ ॥ अर यह हंस अपने बालककूं चूचतैं उठाय माखणकी बुद्धिकरि कमलनालका तंतु देहैं वह तंतु चंद्रमाकी किरणसमान उज्जल अर कोमल है.॥ २६ ॥ अर ए राजहंस सरोवरके जलविषैं यत्नतैं चुमकी लेहैं, कैसा है सरोवरका जल—मकरंदकी रजकरि आच्छादित है सो ए हंस अपनी पांखनिकूं संकोचि शनैः प्रवेश करैं हैं ॥ २७ ॥ अर यह चकवा सरोवरके तीर तरंगनिकरि आच्छादित भई जो चकवी ताहि न देखता संता अश्रुपात सहित हैं लोचन जाके सो विलाप करै है ॥ २८ ॥ अर धार्तराष्ट्र कहिए श्याम चंचु अर श्याम चरणसहित जो हंस सो शब्द करता संता हंसनीकी आशंका करि चकवीकी उर जाय है अर वह याहि न इच्छै है। कैसी है चकवी—सरोवरकी तरंगनिकरि उज्जल भया है अंग जाका सो हंस जानैं यह हंसनीही है? अर वह याहि अन्य जानि न इच्छै है। जाकी लाल चंचु अर लाल चरण अर लाल नेत्र सो राजहंस कहिए अर जिनिके श्यामचरण अर श्यामचंचुते धार्त्तराष्ट्र कहिए ॥ २९ ॥ अर गंगाके तीर यह सप्तच्छद जातिका वन सोहै है, अपने पुष्पनिकी मकरंद

करि आकाशविषैं मानूं चंदोवा ताणि राख्या है ऐसी शोभाकूं धरै है ॥ ३० ॥ अर सारथी कहै है—हे पृथ्वीनाथ ! गंगाकी तरंगनिकूं स्पर्शिकरि आई जो पवन सो हमारे अंगकूं स्पर्शतीसंती मार्गका खेद हरै है अर तटके वनके वृक्षनिकूं कंपायमान करै है ॥ ३१ ॥ यह पवन वनकी कुंजगलीनिके वृक्षनिकूं हलावती संती सन्मुख आवै है सो मानूं हमारी पाहुणगतिही विस्तारै है, कैसी है पवन हरी है गंगाजलकी तरंग जानैं ॥ ३२ ॥ बहुरि सारथी चक्रेश्वरकूं कहै है—हे प्रभो ! यह वन गायके खोजनितैं रहित है यहां गायनिका संचार नांही अर देवनिकरि सेवित अति सोहै है अर या वनविषैं फूलनिके सांथरानिकरि मंडित लतामंडप सोहै है ॥ ३३ ॥ अर ए देव मंदार वनकी कुंजगली तिनिमैं सघन छायाविषैं चंद्रकांतमणिकी शिला तिनिविषैं तिष्ठै रमै है ॥ ३४ ॥ अहो देव ! या गंगाके तट वनकी अद्भुत मनोज्ञता है जहां स्वर्गलोकके देव अपने वासकूं तजिकरि रमिबेकी इच्छा करै हैं ॥ ३५ ॥ इहां कामके निवासकी शोभा विस्तरि रही है जहां देव देवी अपनी इच्छाकरि रतिक्रीडा करै हैं ॥ ३६ ॥ इह गंगा अपनी तरंगनिकरि उठे जे जलकण तिनिकरि मानूं देवांगनानिकूं हंसै है । कैसी हैं देवांगना—निधुवन कहिए संभोग ताविषैं आसक्त हैं अर अव्यक्त हैं शब्द जिनिके ॥ ३७ ॥ अर या वनविषैं एक उर तौ किंनर संगीत करि रहे हैं अर एक उर बीन वजि रही है अर एक उर विद्याधरी नृत्य करै हैं तिनिकी गतिका विभ्रम कथनमैं न आवै ॥ ३८ ॥ अर अपसरानिका नृत्य देखतासंता अर उनिके गीतनिके मनोहर शब्द सुनता संता इह यक्ष जातिका देव अपनी कांतासहित ऊंची नाडि (गर्दन) करि निरखै है ॥ ३९ ॥ अर या वनविषैं छऊं रितु एकै लार विस्तरि रही है मानूं परस्पर देखिवेकी अभिलाषा करि भेली (इकट्ठी) भई है, अनुरागरूप है चित्त जिनिका ॥ ४० ॥ अर या वनविषैं अशोकवृक्ष पुष्पनिकी मंजरीकूं विस्तारै है सो अशोक आलतेकरि आरक्त जे देवांगनानिके चरण तिनिकरि स्पर्श्यां है ॥ ४१ ॥ अर इह आम्रका वृक्ष मदनके तीरसमान जे मंजरी तिनिकूं धरै, कैसा है आम्रवृक्ष—कोकिलानिके मधुर शब्दकरि वाचाल

करि आकाशविषैं मानूं चंदोवा ताणि राख्या है ऐसी शोभाकूं धरै है ॥ ३० ॥ अर सारथी कहै है—हे पृथ्वीनाथ ! गंगाकी तरंगनिकूं स्पर्शिकरि आई जो पवन सो हमारे अंगकूं स्पर्शतीसंती मार्गका खेद हरै है अर तटके वनके वृक्षनिकूं कंपायमान करै है ॥ ३१ ॥ यह पवन वनकी कुंजगलीनिके वृक्षनिकूं हलावती संती सन्मुख आवै है सो मानूं हमारी पाहुणगतिही विस्तारै है, कैसी है पवन हरी है गंगाजलकी तरंग जानैं ॥ ३२ ॥ बहुरि सारथी चक्रेश्वरकूं कहै है—हे प्रभो ! यह वन गायके खोजनितैं रहित है यहां गायनिका संचार नांही अर देवनिकरि सेवित अति सोहै है अर या वनविषैं फूलनिके सांथरानिकरि मंडित लतामंडप सोहै है ॥ ३३ ॥ अर ए देव मंदार वनकी कुंजगली तिनिमैं सघन छायाविषैं चंद्रकांतमणिकी शिला तिनिविषैं तिष्ठै रमै है ॥ ३४ ॥ अहो देव ! या गंगाके तट वनकी अद्भुत मनोज्ञता है जहां स्वर्गलोकके देव अपने वासकूं तजिकरि रमिवेकी इच्छा करै हैं ॥ ३५ ॥ इहां कामके निवासकी शोभा विस्तरि रही है जहां देव देवी अपनी इच्छाकरि रतिक्रीडा करै हैं ॥ ३६ ॥ इह गंगा अपनी तरंगनिकरि उठे जे जलकण तिनिकरि मानूं देवांगनानिकूं हंसै है । कैसी है देवांगना—निधुवन कहिए संभोग ताविषैं आसक्त हैं अर अव्यक्त हैं शब्द जिनिके ॥ ३७ ॥ अर या वनविषैं एक उर तौ किंनर संगीत करि रहे हैं अर एक उर बीन बजि रही है अर एक उर विद्याधरी नृत्य करै हैं तिनिकी गतिका विभ्रम कथनमैं न आवै ॥ ३८ ॥ अर अपसरानिका नृत्य देखतासंता अर उनिके गीतनिके मनोहर शब्द सुनता संता इह यक्ष जातिका देव अपनी कांतासहित ऊंची नाडि (गर्दन) करि निरखै है ॥ ३९ ॥ अर या वनविषैं छऊं रितु एकै लार विस्तरि रही है मानूं परस्पर देखिवेकी अभिलाषा करि भेली (इकट्ठी) भई है, अनुरागरूप है चित्त जिनिका ॥ ४० ॥ अर या वनविषैं अशोकवृक्ष पुष्पनिकी मंजरीकूं विस्तारै है सो अशोक आलतेकरि आरक्त जे देवांगनानिके चरण तिनिकरि स्पर्श्या है ॥ ४१ ॥ अर इह आम्रका वृक्ष मदनके तीरसमान जे मंजरी तिनिकूं धरै, कैसा है आम्रवृक्ष—कोकिलानिके मधुर शब्दकरि वाचाल

करी है दशूं दिशा जानें ॥ ४२ ॥ अर या वनविषै वसंतसमैं चंपा फूलि रहे है सो कामके दीपनिसमान पुष्पनिके समूहकूं धरै हैं ॥ ४३ ॥ अर नानाप्रकार पुष्पनिविषै मदोन्मत्त भंवर मधुर शब्द करै है, मानूं जगतके जीतिवेकी है इच्छा जाकै ऐसा जो क

करी है दसूं दिशा जानें ॥ ४२ ॥ अर या वनविषें वसंतसमैं चंपा फूलि रहे हैं सो कामके दीपनिसमान पुष्पनिके समूहकूं धरे हैं ॥ ४३ ॥ अर नानाप्रकार पुष्पनिविषें मदोन्मत्त भंवर मधुर शब्द करे हैं, मानूं जगतके जीतिवेकी है इच्छा जाकै ऐसा जो काम ताके वादित्रही बाजे हैं ॥ ४४ ॥ अर कोकिलानिके शब्द तेई भए नगारे, अर भंवरनिके शब्द तेई भए धनुषनिकी फिडचिनिके शब्द तिनिकरि काम जो है सो तीन भुवनके जीतिवेकूं मानूं सेनासहित जाय है ॥ ४५ ॥ अर या वनविषें कमल फूलि रहे हैं अर आम फलि रहे हैं अर माधुरी लता फूलि रही है सो मानूं परिपूर्ण वसंतकी लक्ष्मीकूं वर्षाकालकी शोभासहित विस्तारे है ॥ ४६ ॥ अर माधुरी लतानिके गुच्छे तिनिविषें वसंतका विकास होय रह्या है मानूं वनलक्ष्मीकी हास्यलीलाकूं सब उर विस्तारे है ॥ ४७ ॥ ए वसंतलता वसंतकी शोभाकूं विस्तारती विकसि रही हैं, पुष्पनिकी सुगंध ताकरि व्याकुल कीए हैं भंवर जिनि ॥ ४८ ॥ अर मालतीकी विस्तरी है सुगंध ताकरि चंचल होय रहे हैं भंवर, सो मानूं वृक्षनिविषें ग्रीष्मरितु स्थानककूं धरै है, पुष्पही है मंदहास्य जाकी ॥ ४९ ॥ अर सारथी कहे है—हे देव ! या वनविषें कदंबकी सुगंध ताकरि महासुगंध अर केतकीकी धूलिकरि धूसर कहिए किंचित् उज्जल, वर्षाकालकी पवन सदा विस्तरै है ॥ ५० ॥ अर या वनविषें मोरनि सहित कोयल निरंतर उन्मत्त होय रही हैं अर कलहंसीनिके मिष्ट शब्द तिनिकरि मिश्रित हैं शब्द जिनिके। भावार्थ—कोयल तो वसंतही विषें उन्मत्त होय हैं अर मोर वर्षाविषें उन्मत्त भए नाद करे हैं अर कलहंस सरदविषें सुंदर शब्द करे हैं अर या वनविषें सदाही सब रितुका विकास है सो कोयल अर मयूर अर हंस सदाही सुंदर शब्द करै हैं ॥ ५१ ॥ कोयलनिके समूह उन्मत्त भए मिष्ट शब्द करे हैं अर मयूर अपनी बाणी बोलि रहे हैं अर इनि दोऊनिहीकूं हंस उत्तर देहैं। भावार्थ—हंस मयूर कोयल सबही मनोहर शब्द करै हैं ॥ ५२ ॥ या तरफ वनविषें किंनरदेव मधुर गीत गावै हैं तिनिके सुरनिकूं कोयलनिके सब्द शोभित करै हैं ॥ ५३ ॥ अर जीत्या है नूपुरनिका झंकार जिनि ऐसे हंस शब्द करि

करि आकाशविषैं मानूं चंदोवा ताणि राख्या है ऐसी शोभाकूं धरै है ॥ ३० ॥ अर सारथी कहै है—हे पृथ्वीनाथ ! गंगाकी तरंगनिकूं स्पर्शिकरि आई जो पवन सो हमारे अंगकूं स्पर्शतीसंती मार्गका खेद हरै है अर तटके वनके वृक्षनिकूं कंपायमान करै है ॥ ३१ ॥ यह पवन वनकी कुंजगलीनिके वृक्षनिकूं हलावती संती सन्मुख आवै है सो मानूं हमारी पाहुणगतिही विस्तारै है, कैसी है पवन हरी है गंगाजलकी तरंग जानें ॥ ३२ ॥ बहुरि सारथी चक्रेश्वरकूं कहै है—हे प्रभो ! यह वन गायके खोजनितैं रहित है यहां गायनिका संचार नांही अर देवनिकरि सेवित अति सोहै है अर या वनविषैं फूलनिके सांथरानिकरि मंडित लतामंडप सोहै है ॥ ३३ ॥ अर ए देव मंदार वनकी कुंजगली तिनिमैं सघन छायाविषैं चंद्रकांतमणिकी शिला तिनिविषैं तिष्ठै रमै है ॥ ३४ ॥ अहो देव ! या गंगाके तट वनकी अद्भुत मनोज्ञता है जहां स्वर्गलोकके देव अपने वासकूं तजिकरि रमिबेकी इच्छा करै हैं ॥ ३५ ॥ इहां कामके निवासकी शोभा विस्तरि रही है जहां देव देवी अपनी इच्छाकरि रतिक्रीडा करै हैं ॥ ३६ ॥ इह गंगा अपनी तरंगनिकरि उठे जे जलकण तिनिकरि मानूं देवांगनानिकूं हंसै है । कैसी हैं देवांगना—निधुवन कहिए संभोग ताविषैं आसक्त हैं अर अव्यक्त हैं शब्द जिनिके ॥ ३७ ॥ अर या वनविषैं एक उर तौ किंनर संगीत करि रहे हैं अर एक उर बीन बजि रही है अर एक उर विद्याधरी नृत्य करै हैं तिनिकी गतिका विभ्रम कथनमैं न आवै ॥ ३८ ॥ अर अपसरानिका नृत्य देखतासंता अर उनिके गीतनिके मनोहर शब्द सुनता संता इह यक्ष जातिका देव अपनी कांतासहित ऊंची नाडि (गर्दन) करि निरखै है ॥ ३९ ॥ अर या वनविषैं छऊं रितु एकै लार विस्तरि रही है मानूं परस्पर देखिबेकी अभिलाषा करि भेली (इकट्ठी) भई है, अनुरागरूप है चित्त जिनिका ॥ ४० ॥ अर या वनविषैं अशोकवृक्ष पुष्पनिकी मंजरीकूं विस्तारै है सो अशोक आलतेकरि आरक्त जे देवांगनानिके चरण तिनिकरि स्पर्श्यां है ॥ ४१ ॥ अर इह आम्रका वृक्ष मदनके तीरसमान जे मंजरी तिनिकूं धरै, कैसा है आम्रवृक्ष—कोकिलानिके मधुर शब्दकरि वाचाल

आदिपुराण
वचनिका
५२५

करी है दसूं दिशा जानैं ॥ ४२ ॥ अर या वनविषैं वसंतसमैं चंपा फूलि रहे हैं सो कामके दीपनिसमान पुष्पनिके समूहकूं धरै हैं ॥ ४३ ॥ अर नानाप्रकार पुष्पनिविषैं मदोन्मत्त भंवर मधुर शब्द करै हैं, मानूं जगतके जीतिबेकी है इच्छा जाकै ऐसा जो काम ताके वादित्रही बाजै हैं

या वनक कसे ॥ ६७ ॥

अर इह आरण भैंसा मेघसमान श्यामवर्ण घूघूनिके वनतें निकसिकरि जाय है कालकी डाढ समान तीक्ष्ण भयंकर हैं सींग जाकै ॥ ६८ ॥ अर ए सर्प कटकविषैं क्षोभकूं विस्तारै हैं, चलायमान है पूंछ जिनिकी, अर चंचल है जीभ जिनिकी अर आरक्त हैं नेत्र जिनिके अर भयकरि वर्जित हैं ॥ ६९ ॥ अर अष्टापद आकाशकूं उछलिकरि पीछापरया है सो पाछा परता हूं पीठिके चरणनिकरि दुःखकी अवस्थाकूं नांही वेलै है ॥ ७० ॥ अर इह व्याघ्र सेनाके अवरोधतैं शीघ्रही धावता थका सेनाकूं क्षोभ विस्तारै है मानूं गर्वहीका स्वरूप है, काहूतें रोक्या न जाय है ॥ ७१ ॥ अर सारथी चक्रनाथकूं कहै है—हे देव! यह सुस्सा उछलता थका दौडता चल्या जाय है तिहारा कटक शरणागत प्रतिपाल जहां काहू जीवकूं काहू प्रकार उपद्रव नांही सो शरणके अर्थि इह सुस्सा कटकहीमें आया है, भयरूप है आत्मा जाका सो कटकके लोकनि जतनसूं राख्या है, इहां काहूका भय नांही ॥ ७२ ॥ अर अपने शरीरकी छायाकरि श्याम कीया हैं वन जानैं ऐसा मृग सो सींगनिके भारकरि धीरा धीरा चल्या जाय है मानूं सूखी शाखाकूं सिरपरि धरे जाय है ॥ ७३ ॥ सारथी कहै है—हे नाथ! कटकमैं सब उर जीवनिकी दया है कोऊ प्राणी कबहू विध्वंस्या न जाय है सो ए मृगनिके समूह दक्षिणभागविषैं वनकूं देखिकरि बाधारहित चले जाय हैं तिहारा न्याय प्रजाका पालनहारा प्रगट दिखावै है तिहारे राजमैं ज्यूं मनुष्यनिकूं बाधा नांही त्यूं पशुनिहूकूं बाधा नांही, सब सुखी हैं ॥ ७४ ॥ अर मयूर पांखनिके समूहकरि मंद मंद जाय हैं अपनी पांखनिकी शोभाकरि स्त्रीनिके केशनिकी दीर्घताकी शोभाकूं विस्तारै हैं ॥ ७५ ॥ अर हे प्रभो! या वनके स्थलविषैं इह मोरनिका समूह अपनी पांखनि चंद्रकानिकरि नेत्रनिका पंक्तिकी शोभाकूं विस्तरता सोहै है ॥७६॥ अर ए रथनिके पहे चीतकार शब्द करते जाय हैं तिनिके शब्दनिकूं बारंबार सुणते चितवन करते ए हिरणनिके समूह मार्गतैं नाहीं हटै है तिहारे कटकमैं जीवनिकूं काहू प्रकारका भय नांही सो निर्भय भए बिचरै

रहैं . अर या उर वंद्याध नृत्य करै . . तैं धेक मनोहर मयूर नृत्य क . . . ॥ ५४ ॥ अर या उर पुलिनकी रजमें सूते हंसनिके वालक तिनिकूं विद्याधरीनिके नूपुरानिका शब्द प्रातही जागृत करै है ॥ ५५ ॥ अर या उर रची है लतामंडपनिमें महामनोहर पुष्पनिकी सेज सो देवनिकरि भोग्य है अर लतामंडपनिके मध्य चद्रकांतमणिनिकी शिला है ॥ ५६ ॥ या भांति इह वन अत्यंत रमणीक सामग्रीनिकरि देवनिका सदा स्वर्गके वनहूतैं अधिक प्रीति उपजावै है ॥५७॥ अर हे प्रभो ! तटके वनतैं वाह्य इह महावन दीखै है सो नानाप्रकारके वृक्ष अर बेलि अर गुल अर जालि तिनिकरि अतिदुर्गम है ॥ ५८ ॥ इह वन दृष्टिहूकूं अगम्य, ताविषैं नाना जातिके मृगनिके समूह सेनाके क्षोभतैं चकित भए दौडे जाय हैं, यद्यपि यह जिनधर्मीनिका कटक महाकरुणरूप है, इहां काहू जीवकूं काहू प्रकारका भय नांही तथापि ए पशु वृथा दौडे जाय हैं ॥५९॥ यद्यपि इह जिनधर्मनिका कटकके क्षोभतैं भयभीत भए हैं मृगनिके समूह, तिनिके क्षोभतैं इह वन मानूं व्याकुलचित्त होय रह्या है, वनमैं पशुनिके उद्वेगकरि मानूं अंधकार होय रह्या है ॥ ६० ॥ अर या उर वनविषैं बहुत जलका स्थानक हैं तहांतैं अंधकारके समूह निकलै हैं कटकके क्षोभतैं जुदे जुदे होय शीघ्रही दौडे जाय हैं ॥ ६१ ॥ इह भद्र जातिका हाथी, हाथीनिके समूहका स्वामी, दिशानिकूं देखता संता धीरा धीरा चल्या जाय है, ऊंची करी है सूंडि जानैं सो ऐसा सोहै है मानूं महासर्प सहित गिरिराजही है ॥ ६२ ॥ अर इह महासर्प श्वास भरता चल्या जाय है, ऊंचा कीया है फण जानैं, सो मानूं वृक्षनिकी दीर्घता मापता चल्या जाय है ॥ ६३ ॥ अर या वनविषैं अजगरके बच्चा एकत्र होय रहे हैं, स्वास ले हैं, मानूं या वनके आंतानिके ढेरही हैं सेनाके क्षोभतैं निकसि परे हैं ॥ ६४ ॥ अर यह वनका सूवर तीव्र रोसकूं धरे मुखकी दंतला करि खोद्या है निकटका स्थल जानैं सो अकेलाही विचरे है, रोक्या है कटक जानैं ॥ ६५ ॥ सेनाके लोक याहि तिरस्कारकरि परा (दूर) करै हैं तथापि नांही टरै है कटककूं व्याकुल करै है जैसैं गैंडा गंडपर्वतकूं प्रगटपनैं व्याकुल करै ॥ ६६ ॥ अर या वनतैं दावा-

नल सारिखे सिंह केसनिकी छटा हलावते निरंतर निकसै हैं मानूं या वनके प्राणही निकसै हैं ॥ ६७ ॥ अर इह आरण भैंसा मेघसमान श्यामवर्ण घूघूनिके वनते निकसिकरि जाय है कालकी डाढ समान तीक्ष्ण भयंकर हैं सींग जाके ॥ ६८ ॥ अर ए सर्प कटकविषैं क्षोभकूं विस्तारै हैं, चलायमान है पूंछ जिनिकी, अर चंचल है जीभ जिनिकी अर आरक्त हैं नेत्र जिनिके अर भयकरि वर्जित हैं ॥ ६९ ॥ अर अष्टापद आकाशकूं उछलिकरि पीछापरया है सो पाछा परता हूं पीटिके चरणनिकरि

मार्गका खेद जिनि ऐसे सेनाके लोक ते डेरा आय पर्या है सो तहां पहोंचे, सेनापतिनैं आगें डेरा खडे कराए हैं ॥२१॥ मध्याह्नके समैं सूरज सिरपरि आय रह्या है तातें तासमैं पृथ्वीका पति डेरानिके समीप आया मध्याह्नका सूर्य अपने तेजकरि अंतःपुरकी स्त्रीनिके मुखकी क्रांतिका लोपणहारा है ॥ २२ ॥ अर नृपतिका स्वामी दिव्यरथविषैं आरूढ छत्ररत्ननिकरि करी है छाया जापरि सो आतापकी बाधाकूं न जानता भया ॥ २३ ॥ कुलकरि बडे अर वयकरि बडे ऐसे महाराजा रथकै निकट चले जाहि हैं तिनिसूं भरतक्षेत्रका अधिपति सुखकी कथा करता गमन करता हू मार्गका खेद न जानता भया ॥ २४ ॥ रथके शीघ्र चालिवेविषैं पहियेनिके परिवर्त्तनकरि राजेंद्रकै अंगविषैं रंचमात्रहू पीडा न होती भई । रथ अति उतावला (बहुत जल्दी) चाल्या तौऊ दिव्यप्रभावथकी राजेश्वरकूं खेद न उपज्या ॥२५॥ अर रथके वेगकरि ध्वजाका वस्त्र ऊपरिकूं गया सो पीछैं आवै है सो सेनाके लोकनिकूं मार्ग दिखावता भया ॥ २६ ॥ रथकी उद्धत गतिके क्षोभतें उपज्या है अंगका खेद जिनिके ऐसे कार्यके अर्थी नर सो क्यूंही क्यूंही प्रभुके रथतक पहोंचे ॥ २७ ॥ मार्गके काटनहारे तुरंग तिनिकरि असवार मार्गकूं उलंघतें संते स्वामीके साथी डेरा आय पहोंचे ॥ २८ ॥ दूरिहीतें राजनिका प्रभू कटककूं देखता भया, महासुंदर उज्जल वस्त्रके डेरा खडे होय रहे हैं सो मंदिरनिकी शोभाकूं हंसै हैं तिनिकूं देखिकरि भूपतिका भूप प्रसन्न भया ॥ २९ ॥ रूपनिके बांस तिनिपरि डेरा खडे हैं अर विस्तरि रहे हैं ऐसे पटमंडप, मनुष्यनिके आताप हरणहारे मानूं महा सज्जनही हैं तिनिकूं पृथ्वीका नाथ देखता भया ॥ ३० ॥ अर लोक दूरिहीतें डेरानिकूं देखिकरि ऐसी आशंका करते भए—ए कहा स्थलकमल हैं कि हंसनिके समूह हैं ? ॥ ३१ ॥ महा मनोहर डेरानिकूं देखि लोक अचिरजकूं प्राप्त भए, ऐसे डेरे चक्रवर्तीहीके कटकमैं होंहि अर सामंतनिके अनेक प्रकारके डेरे जिनिमैं अनेक रचना सो चक्रेश्वर देखता भया ॥ ३२ ॥ अर डेरानिके चौगिरद लोहके कांटेनिकी बाडि देखिकरि राजनिका ईश्वर मनमैं ऐसी मानता भया जो मेरा निष्कंटक राज्य है तामैं एही कंटक दीखे

हैं ॥७७॥ अर मृगीनिके नेत्रनिविषैं कौतूहलकी भरी कटककी कामिनी अपने नेत्रनिकी शोभाकूं देखै हैं अर मयूरनिकी पांखनिविषैं अपने केशनिकी शोभाकूं देखै हैं । भावार्थ–तिहारे कटककी कामिनीके नेत्र मृगीनिहूतैं अति रमणीक हैं अर केश मयूरनिकी पांखनिहूतैं लंबायमान हैं ॥ ७८ ॥ इह वन चहूं उर निराकुल दीखै है यद्यपि सेनाके लोक वनविषैं सर्वत्र विचरै हैं तथापि काहू जीवकूं काहू प्रकारकी बाधा नांही, वनके पशु अर पंखी सबही बाधारहित दीखै हैं ॥ ७९ ॥ अर या रितुविषैं प्रवृद्ध आताप है तौऊ या बनमैं निरंतर महावृक्षनिकी छायाके प्रबंधकरि हमकूं आताप बाधा नांही करै है ॥ ८० ॥ अर ए वनके वृक्ष महा मनोहर सघन है छाया जिनकी ते ऐसे सोहै हैं मानूं तिहारी भक्तिकरि वनलक्ष्मीनैं मंडपही रचे हैं ॥ ८१ ॥ अर सरोवरी निर्मल जलकी भरी तटके वृक्षनि निवारी है उष्णता जिनिकी ते मानूं वनलक्ष्मीनैं कटकके जल पीवै अर्थि जलके स्थानकही रचे हैं, जिनिके देखिवेकरि खेद मिटि जाय ॥ ८२ ॥ हे नाथ ! इह वन तिहारे कटकके भावकूं आचरै है, तिहारा कटक तौ वहुत बाणासन कहिए धनुषनिकरि भऱ्या है अर इह वन बाणासन जातिके वृक्ष तिनिकरि भऱ्या है अर कटक तो खडगी कहिए खड्गके धारक सावंत तिनिकरि भऱ्या है अर इह वन खड्गी कहिए गेंडा तिनिकरि भऱ्या है अर कटक हाथिनिके समूहकरि पूर्ण है अर इह वन वनगजनिकरि पूर्ण है ॥ ८३ ॥ या प्रकार वनकी शोभा सारथीनैं निरूपण करी सो चक्रेश्वर नीकैं निरखी राजनिका अधिपति सुखसूं वनभूमिकूं उलंघता भया ॥ ८४ ॥ ता समैं घोडेनिके खुरनिकरि उठी वनकी रेणु सो दशूं दिशानिविषैं यवनिका कहिए आडा वस्त्र ताकी शोभाकूं धारती भई ॥ ८५ ॥ अर घोडेनिके असवार तिनिके वगतर पीतवस्त्रनिकरि संयुक्त सो वनकी रजकरि वेढे ऐसे होय गए मानूं कसायले रंगकरि रंगे हैं ॥ ८६ ॥ अर स्त्रीनिके स्तन आच्छादनके वस्त्र तिनिके लागी वनकी रेणु ताकरि भारी भए हैं, ऐसे होय गए जे स्त्री मार्गके खेदकरि आलसकूं प्राप्त भई तिनिवस्त्रनिकूं कष्टतैं धारती भई । भावार्थ–ऐसी ही तो नाजिक अंग (कोमलशरीर) वे स्त्री,

आदिपुराण
मार्गका खेद जिनि ऐसे सेनाके लोक ते डेरा आय पऱ्या है सो तहां पहोंचे, सेनापतिनैं आगैं डेरा खडे

जे पांव तिनिकरि कंटक पाषाण अर फांसनिके उलंघनहारे हैं ॥ ११ ॥ अर कैयक पयादे शक्तिके धारणहारे, कैयक बरछीके धारणहारे, कैयक लोहयष्टीके धारणहारे, कैयक भालानिके धारणहारे, कैयक धनुषबाणके धारणहारे, कैयक खडग अर कटारीके धारणहारे, कैयक तीक्ष्ण छुरीनिके धारणहारे इत्यादि अनेक शस्त्रनिके धारक पयादे परस्पर स्पर्द्धांकरि शीघ्र गमन करते भए ॥ ११ ॥ पयादे महासुभट आगैं दौडे जाय हैं, चलायमान हैं आँगेनिके अग्रभाग जिनिके, जैसें उडते पंखीनिके पंख हालैं तैसें अतिशीघ्र दौडते पयादेनिके आँगेनिके अग्रभाग हालै हैं ॥ १२ ॥ आगैं चलनहारे सुभट पयादे या प्रकार उच्चस्वरसे ध्वनि करते मार्गकूं उलंघते भए, कहा ध्वनि करै हैं—हे लोक हो ! शीघ्र चालो मार्ग छोडो काहेकूं पंथ रोकि रहे हौ ? ॥ १३ ॥ अरे भाई ! निर्भय कहा ऊभे (खडे) हौ । या उरतैं अश्वनिके समूह आवैं हैं अर या उरतैं हाथी दौड्या आवै है अर या उरतैं रथ आवै हैं, तुम कहा ऊभे हो, आघे (दूर) टरो ॥ १४ ॥ इह लोगनिका संघट्ट ता थकी अपने बालकनिकूं उठावो या उरतैं प्रबल हाथी आवै है सो तुरंगनिकूं शीघ्रही आघे (दूर) ल्यो ॥ १५ ॥ या उरकूं मार्ग रोकिकरि दुष्ट गज ऊभा (खडा) है, प्राणीनिका घातक । अर मार्गके मध्य रथवानके प्रमादतैं रथ उलघि (पलट) गया है ॥ १६ ॥ अर इह ऊंट चिमक्या है सो पाछा दौडे है, भार नाखि (डाल) दीया है लंबायमान हैं ओष्ठ जाके, लोकनिकूं विटंबावता संता (घबराहट पैदा करता हुआ) दौऱ्या जाय है ॥ १७ ॥ अर विझक्या है (चिमक गया है) खच्चर ता थकी अंतःपुरकी स्त्री पडै है ताहि थांभता संता या पर्वतके तटविषैं इह खोजाहू गिरै है ॥१८॥ अर इह तरुण पुरुष वेश्याके मुखकूं देखि विस्मयकूं प्राप्त भया अश्वनिके संघट्टकरि पाऱ्या है तौऊ शून्यबुद्धी आपकूं नांही बेवै है (जानता है) ॥१९॥ कामके मदकरि उन्मत्त मूर्ख अचेत होय रह्या है, अर देखो यह वृद्ध पुरुष ककल१ (औषध) करि काले बाल कीए आंखनिमैं काजल घाले दूतीके पीछैं पीछैं जाता तरुणके भावकूं आचरै है ॥ २० ॥ या भांति प्रयाणके शब्द तिनिकरि नांही जान्या है

॥ ९८ ॥ या भांति सरदरितुसंबंधी आताप मध्याह्नसमय तीव्र भया। नदी तथा सरोवरनिके पुलिन तप्ताय यमान होय गए, सो हंस पुलिनविषैं स्थानकूं न धरते भए ॥ ९९ ॥ अर मध्याह्नसमय सूर्य मध्य आया सो मध्यस्थ है तौऊ तीव्र आतापकूं उपजावता भया। निश्चयसेती जे तीव्र प्रतापके धारक हैं तिनिका मध्यस्थपनाभी आतापकारी है ॥ १०० ॥ अर राजानिकी रानी पसेवकी बूंदनिकरि मंडित जे वदन तिनिकूं धारती भई जैसैं सरोवरी जलकी तरंगनिकरि सजल जे कमल तिनिकूं धारै ॥ १०१ ॥ वह पसेवकी बूंदनिका विकास रानीनिके मुखकमलविषैं शोभाकूं पोषता भया मानूं लावण्यरसका प्रवाह ही निकस्या है ॥ १०२ ॥ गिरैं हैं पसेवकी बूंद जिनितैं ऐसे रानीनिके मुख कैसे सोहते भये जैसैं झरती जलकी बूंदनितैं कमल सोहै ॥ १०३ ॥ बहुरि रानीनिके मुखकमलविषैं पसेवकी बूंद ऐसी सोहती भई मानूं केसनिविषैं पिरोए जे मुकताफल ते द्रवीभूत होयकरि जलकणरूप होय गए हैं ॥ ४ ॥ अर मध्याह्न समय सूर्यकूं तीव्र तपते संते रथनिके घोडे रथनिकूं देखतैं चलावते भए, झाग सहित हैं मुख जिनिके अर समान भूतल विषैंही विषमस्थलकी नांई स्खलित होंहि हैं खुर जिनिके ॥ ५ ॥ बहुरि ह्रस्व कहिए छोटे हैं अर वृत्त कहिए गोल हैं खुर जिनिके अर उत्तुंग है अंग जिनिका अर सूक्ष्म अर स्निग्ध हैं रोम जिनिके अर विस्तीर्ण हैं आसन जिनिके ऐसे उत्तम अश्व पवनकी नांई शीघ्रगति गमन करते भए ॥ ६ ॥ महा तेज-करि युक्त मुखतैं मानूं खुरनिकूं उगलैं हैं, महासुंदर है उरुस्थल जिनिका अर स्फुरायमान हैं नाक जिनिके ऐसे महा जातिवंत तुरंग शीघ्र गमन करते भए ॥ ७ ॥ ऊंचे हैं अग्रभाग जिनिके अर देवमणि आदि शुभ हैं आंवर्त्त जिनिके अर मनहूतैं शीघ्र है वेग जिनिका ऐसे तुरंग मार्गके पूर्ण करिबे अर्थि शीघ्र गमन करते भए ॥ ८ ॥ ते तुरंग बुद्धिवान तेजवान बलवान विनयवान अर मनोज्ञ हैं चरण जिनिके सो मानूं पृथ्वीकूं रजस्वला जानि नांही स्पर्शिबेकी है इच्छा जिनिके, तातैं अतिशीघ्र गमन करै हैं ॥ ९ ॥ अर तुरंगनितैं अर रथनितैं पयादे शीघ्र गमन करते भए ते पयादे पाहनी (पगरखी) सहित

जे पांव तिनिकरि कंटक पाषाण अर फांसनिके उलंघनहारे हैं ॥ ११ ॥ अर कैयक पयादे शक्तिके

है ॥३३॥ अर कंटकके बाहरिहू कैयक लोक पडे हैं तिनिकै आवास नरनिकानाथ निरखता भया, वृक्षनिकी शाखाके अग्रभाग धरे हैं पलाण आदि परिकर जिनि ॥ ३४ ॥ इत्यादि कटककै बाहरि अनेक लोकनिके आवास देखता संता नृपनिका इंद्र कटककै द्वार आय पहौंच्या ॥३५॥ बहुरि सेनासहित कटकके द्वारकूं उलंघि करि कछुयक माहै (भीतर) आय कटकके बाजारमैं आप पहौंच्या सो बाजार महासमुद्र समान है होय रहे हैं गंभीर शब्द जहां ॥ ३६ ॥ अर नानाप्रकारकी है शोभा जहां, रचे हैं तोरण जहां अर बहुत प्रकार फहरै ध्वजा जहां वणिक लोक रत्ननिके अर्घ लेले सन्मुख आए। महानिधिका बाजार ताहि चक्रेश्वर उलंघता भया ॥३७॥ तहां हाटनिमैं रत्ननिकी राशि देखी मानूं वे रत्नराशि निधिही हैं तिनिकूं देखता संता प्रजाका पिता मनमैं असी मानता भया—जो मेरै लोक नवनिधि कहे हैं सो नवनिधि प्रसिद्ध हैं तातैं लोक उनहीका वर्णन करै हैं, मेरै निधिका पार नांही अपार निधि हैं ॥ ३८ ॥ कटकके रथ जिहाजकी नांई बाजाररूप समुद्रकूं उलंघते भए सो बाजाररूप समुद्र मोतिनिके समूहकरि संयुक्त हैं अर देदीप्यमान हैं रत्ननिके पुंज जाविषैं अर लोकनिके समूह तेई भए तरंग तिनिकरि पूर्ण है॥ ३९ ॥ वह राजमार्ग समुद्रकी लीलाकूं धारता भया, चालते अश्व तेई हैं कलोल जाविषैं अर देदीप्यमान खड्ग तेई हैं मीन जाविषैं अर बडे हाथी तेई हैं मगर जाविषैं ॥ ४० ॥ राजानिके समूह कटकके द्वारतैं लेकरि राजद्वार लग दोऊ उर खडे हैं पृथ्वीपतिकूं प्रणाम करै हैं। तासमैं वह वणिकपथ सत्यही राजपथ होता भया ॥ ४१ ॥ चहुं ऊर स्थापे हैं रत्ननिके देदीप्यमान तोरण अर रथनिके समूहकरि वेष्टित ॥ ४२ ॥ घोडेनिकरि रुकि रह्या अर हाथीनिकरि अतिदुर्गम अर हाथीनिके छावे (बच्चे)अर हथनी तिनिकरि संयुक्त मानूं इह राजपथ नागवन समानही है ॥ ४३ ॥ अर छत्रनिके समूहकरि भई है छाया जहां सो कटकके कहूं कहूंक औसा भासै है—मानूं महावनही है अर कहूंइक सावंतनिकी मंडलीकरि रच्या है आस्थान मंडल जहां ॥ ४४ ॥ अर केई नियोगी अधिकारी पैसै हैं (प्रवेश करते हैं)अर केई निकसैं हैं तिनिकरि राजद्वार औसा सोहै है—जैसा कलोल-

मार्गका खेद जिनि ऐसे सेनाके लोक ते डेरा आय पऱ्या है सो तहां पहौंचे, सेनापतिनैं आगैं डेरा खडे कराए हैं ॥२१॥ मध्याह्नके समैं सूरज सिरपरि आय रह्या है तातैं तासमैं पृथ्वीका पति डेरानिके समीप आया मध्याह्नका सूर्य अपने तेजकरि अंतःपुरकी स्त्रीनिके मुखकी कांतिका लोपणहारा है ॥ २२॥ अर नृपतिका स्वामी दिव्यरथविषैं आरूढ छत्ररत्ननिकरि करी है छाया जापरि सो आतापकी बाधाकूं न जानता भया॥ २३॥ कुलकरि बडे अर वयकरि बडे ऐसे महाराजा रथकै निकट चले जाहि हैं तिनिसूं भरतक्षेत्रका अधिपति सुखकी कथा करता गमन करता हू मार्गका खेद न जानता भया ॥ २४ ॥ रथके शीघ्र चालिबेविषैं पहियेनिके परिवर्त्तनकरि राजेंद्रकै अंगविषैं रंचमात्रहू पीडा न होती भई । रथ अति उतावला (बहुत जल्दी) चाल्या तौऊ दिव्यप्रभावरथकी राजेश्वरकूं खेद न उपज्या ॥२५॥ अर रथके वेगकरि ध्वजाका वस्त्र ऊपरिकूं गया सो पीछैं आवै है सो सेनाके लोकनिकूं मार्ग दिखावता भया ॥ २६ ॥ रथकी उद्धत गतिके क्षोभतैं उपज्या है अंगका खेद जिनिके ऐसे कार्यके अर्थी नर सो क्यूंही क्यूंही प्रभुके रथतक पहौंचे ॥ २७ ॥ मार्गके काटनहारे तुरंग तिनिकरि असवार मार्गकूं उलंघतैं संते स्वामीके साथी डेरा आय पहौंचे ॥ २८॥ दूरिहीतैं राजनिका प्रभू कटककूं देखता भया, महासुंदर उज्जल वस्त्रके डेरा खडे होय रहे हैं सो मंदिरनिकी शोभाकूं हंसै हैं तिनिकूं देखिकरि भूपतिका भूप प्रसन्न भया ॥ २९ ॥ रूपनिके बांस तिनिपरि डेरा खडे हैं अर विस्तारि रहे हैं ऐसे पटमंडप, मनुष्यनिके आताप हरणहारे मानूं महा सज्जनही हैं तिनिकूं पृथ्वीका नाथ देखता भया ॥ ३० ॥ अर लोक दूरिहीतैं डेरानिकूं देखिकरि ऐसी आशंका करते भए—ए कहा स्थलकमल हैं कि हंसनिके समूह हैं ? ॥ ३१ ॥ महा मनोहर डेरानिकूं देखि लोक अचिरजकूं प्राप्त भए, ऐसे डेरे चक्रवर्तीहीके कटकमैं हौंहि अर सामंतनिके अनेक प्रकारके डेरे जिनिमैं अनेक रचना सो चक्रेश्वर देखता भया ॥ ३२ ॥ अर डेरानिके चौगिरद लोहके कांटेनिकी बाडि देखिकरि राजनिका ईश्वर मनमैं ऐसी मानता भया जो मेरा निष्कंटक राज्य है तामैं एही कंटक दीखे

आदिपुराण
वचनिका

है ॥३३॥ अर कंटकके बाहरिहू कैयक लोक पडे हैं तिनिके आवास नरनिकानाथ निरखता भया, वृक्षनिकी शाखाके अग्रभाग धरे हैं पलाण आदि परिकर जिनि ॥ ३४ ॥ इत्यादि कटकके बाहरि अनेक लोकनिके

प्रदानादिकरि पूर्वके राजा राजेश्वरकूं आराधते भए महाप्रबल जो चक्रवर्तीकी सेना ताकरि दबाए। कैयक मानी राजा अपनां मान तजि नृपनिके इंद्रकूं प्रणाम करते भए, दूरिहीतैं नम्रीभूत भए हैं मुकुट जिनिके। जैसैं देव जिनेश्वरकूं सेवैं तैसैं राजा राजेश्वरकूं सेवते भए। कैसा है जिनेश्वर अर कैसा है चक्रनाथ—अद्भुत है उदय जाका ॥ ५२ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतराजपिमयाणवर्णन नाम सत्ताईसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २७ ॥

अथ अठाईसवां पर्व।

अथानंतर औरैं दिन (दूसरे दिन) प्रभातसमैं प्रभातकी क्रियाकरि चक्रवर्ती चक्रका प्रयाण कराय चक्रके पीछैं आपभी प्रयाण करता भया ॥ १ ॥ दाब्या है परचक्रका प्रयाण पराक्रम जानैं ऐसा अलंघ्य चक्र अर दंडे हैं शत्रुका पराक्रम जानैं ऐसा दंडनामा रत्न सो चक्र अर दंड ए दोऊ चक्रीके अग्रगामी होते भए ॥ २ ॥ रक्षा करै हैं हजार हजार देव जिनिकी ऐसे ए दोऊ रत्न नृपेंद्रके जीतिके कारण होते भए और सब इनिके पीछैं हैं ॥३॥ अर विजयार्द्धपर्वतकी स्पर्द्धा करै ऐसा उत्तंग पाट हस्ती तापरि चक्री चढिकरि प्रयाण कीया, हाथीका नाम विजयपर्वत है ॥ ४ ॥ समुद्रपर्यंत पूर्व दिशाके जीतिबेका है उद्यम जाकै सो हाथीके मिसतैं मानूं विजयार्द्धपर्वतही चढ्या ॥ ५ ॥ जैसैं इंद्र ऐरावत हाथीपरि चढ्या सोहै तैसैं नरेंद्र विजयपर्वत हाथीपरि चढ्या सोहता भया। कैसा है ऐरावत अर कैसा है विजयपर्वत—सुंदर हैं शब्द जिनिके अर शरदके मेघसमान उज्जल है। अर कैसे हैं इंद्र अर नरेंद्र—देदीप्यमान हैं मुकुट जिनिके। भावार्थ—भरतेश्वर तौ देवेश्वरसमान है अर हाथी ऐरावतसमान है ॥ ६ ॥ अर भूपेंद्रके सुफेद छत्र सिरपरि शोभाकूं धारता भया मानूं छत्रके मिसतैं जसके उत्पत्तिका स्थानकही विस्तर्‍या है ॥ ७ ॥ अर लक्ष्मीके हाससमान निर्मल उज्ज्वल चंवरनिकी पंक्ति चौगिरद ढरती सोहती भई मानूं सरदकी चांदिनीही है, दूरि कीया है

निकरि महासमुद्रका तट सोहै हो रही है नाना प्रकारकी ध्वनि जहां ॥ ४५ ॥ खडे द्वारपाल कैयकनिकूं बाहरि काढे हैं कैयकनिकूं भीतरि लेहैं अर होय रहे हैं मंगल शब्द जहां मानूं इह नृपांगण सरस्वतीका स्थानकही है ॥ ४६ ॥ अर राजानिका ईश्वर नृपांगणकूं निरखता संता कछुइक आश्चर्यभावकूं प्राप्त भया, सो नृपांगण चिरकाल देख्या है परिचया है तौऊ शोभाकरि अपूर्व भासै है ॥ ४७ ॥ चक्रवर्तीका बडा डेरा ताका विशेष वर्णन कौन करिसकै ? नवनिधि हैं पर्यंत जाकै अर अगणित रत्न हैं मध्य जाकै ॥ ४८ ॥ वह लक्ष्मीका पति राजानिका अधिपति महालक्ष्मीवान लक्ष्मीके निवाससमान जो अपने डेरे तिनिकूं सब उरतैं निरखता संता पाया है प्रमोद जानैं सो राजद्वारहूकूं उलंघिकरि भीतरि आया। कैसा है राजद्वार—स्वर्गकी शोभाकूं हंसै ऐसी है लक्ष्मी जहां दौरे दौरे फिरै हैं द्वारपाल तिनि भीतरि आयबेसूं रोके हैं लोकनिके समूह, सो भीडिकी नांही है वाधा जहां अर फरहरै हैं ध्वजा जापरि ऐसा अपनां निवास तहां पृथ्वीपति प्रवेश करता भया ॥४९॥ नवनिधिका नाथ पूर्वदिशाके जीतिबेका उद्यमी भया अनेक देशनिकूं जीतता अनेक नृपनिकूं नम्रीभूत करता थका सुखसूं अपने निवासमें तिष्ठता भया, कैसा है निवास—प्रगट कीए हैं मंगल जहां अर गंगाकी लहरिकरि उपजी पवन ताकरि बुहारी है आंगणकी बेदी जहां अर बिखरि रहे हैं आतापके हरणहारे जलकण जहां, सो निवास महाविस्तीर्ण प्रशंसायोग्य सिलावटनामा रत्ननैं तत्काल निर्माप्या है ॥ ५० ॥ वह चक्रवर्तीका कटक लोकनिकूं ऐसा दृष्टि पऱ्या मानूं चिरकालका इहांही वसै है लारके राजा अपने अपने डेरा गए, अर शांत होय गया मनुष्यनिके समूहका क्षोभ, अर पीया है जल जिनि ऐसे तुरंग ते अश्वशालमैं बांधे अर डारे हैं सुंदर तृणनिके भारे जिनिकै निकट अर गंगाकी तीरके सरोवर तिनिमें कीया है अवगाह जिनि ऐसे चक्रवर्तीके हाथी वनविषैं बडे बडे वृक्षनिसूं बांधे सो कटक ऐसा भासता भया मानूं बहुत दिनका नगरही है ॥ ५१ ॥ तहां चक्रवर्ती विराजे सो पूर्वदिशाके राजा भेट ले ले आए जो घरमैं सार-धन था सो भेट कीया अर अपनी कन्या चक्रवर्तीकूं परनाई, कन्या-

आदिपुराण वचनिका
पर्व

प्रदानादिकरि पूर्वके राजा राजेश्वरकूं आराधते भए महाप्रबल जो चक्रवर्तीकी सेना ताकरि दबाए। कैयक मानी राजा अपनां मान तजि नृपनिके इंद्रकूं प्रणाम करते भए, दूरिहीतैं नम्रीभूत भए हैं मुकुट

दशा धरणहारी अर गंगा तौ त्रिपथगामिनीहू कहिए है अर इह सेना बहुमार्गगा कहिए बहुत मार्गकी गमन करनहारी है, सो सेना गंगातैं अधिक शोभा धरै है ॥१९॥ सो वह सेना गंगाके तीर गमन करती ध्वजानिके वस्त्रकरि मानूं आकाशके अंगणकूं बुहारती भई, कैसा है आकाशका अंगण—वनकी रजकरि पूर्ण है ।२०। सेनाके लोक मार्गविषैं गंगाकी अनुगामिनी जे बहुत नदी तिनिकूं तिरते भए, कैसी है नदी—कठिन है अवगाह जिनिविषैं अर बडे ग्राहनिकरि पूर्ण है अर कैसी है सेना कठिन है अवगाह जाविषैं अर महाग्राहा कहिए बडा है सावंतनिका आदर जहां अर नदी तौ बहुराजकुलस्थित कहिए अनेक राजकुलकी है स्थिति जाके तट अर सेनाविषैं अनेक राजानिके समूह आवै हैं ॥ २१ ॥ मार्गविषैं अनेक प्रकारके देश अर नदी अर पर्वत अर गढ अर खानि तिनिकूं पृथ्वीका नाथ उलंघता भया, कैसा है पृथ्वीका नाथ—महाधनकरि पूर्ण है ॥ २२ ॥ जे अगम्य वन हैं तिनिविषैं नृपनिका नाथ दृष्टि विस्तारता भया, मानूं भूमिके छिद्र हैं तिनिके आच्छादनके अर्थि क्षणेक यत्न विचारता भया ॥ २३ ॥ मार्गविषैं बडे बडे मंडलके अधिपति आयकरि चक्रेश्वरकूं प्रणाम करते भए। नृपनि मनमैं विचारी इह सब देश चक्रनाथका है दंडरत्नकरि प्राप्त भई है प्रबलता जाकै सो सबही राजेंद्रकूं अपना प्रभू जानि पायनिपडैं ॥ २४ ॥ याहि विना ही यत्न शत्रु आय नए। ऐसा शब्दही कहूं ठौर न भया—जो हे राजेंद्र! चक्रकूं धारहु अर हे सारथी! धुरसहित रथकूं प्रेरि ॥ २५ ॥ नृपनि विचारी—जो हम या चक्रवर्तीसूं युद्धविषैं लरिबे समर्थ नांही अर याहि ताडना करनी सो कैसैं होय? तब नमस्कारके मिसतैं अपने मुकुटनिकरि याके चरणनिकूं स्पर्शते भए। भावार्थ—लरि न सकै अर पायनि परे, अपने मुकुटनिकरि याके चरण सपरसे ॥२६॥ वह पृथ्वीका नाथ स्वचक्रकी नांई परचक्रविषैं चेष्टा धारता भया। महत पुरुषनिकी चेष्टा आश्चर्यकारी है—स्वचक्रविषैं तो विभुत्वं कहिए प्रभुता दई अर अरिचक्रविषैं विभुत्वं कहिए भूमिरहितपना कीया अर स्वचक्रके राजनिकूं तो अनुरागकरि राजी कीए अर जे अरिचक्र हैं तिनिकूं भू कहिए पृथ्वी ताकी पराग कहिए रज तामैं मिलाए। या भांति

आताप जानैं ॥ ८ ॥ चक्रवर्त्ती जीतिके हाथी चब्वा दैदीप्यमान जीतिके शस्त्रकरि महाप्रतापरूप सो जयलक्ष्मीकी कटाक्ष तिनिका निशाना होता भया । भावार्थ—विजयलक्ष्मी याहीकी उर निरखै ॥ ९ ॥ हजारां महामुकुटबद्ध राजा चक्रेश्वरकी लार चालते भए जैसैं देव इंद्रके लार चालैं ॥ १० ॥ प्रयाणसमैं सेनापति सेनाके लोगनिकूं या भांति आज्ञा करता भया जो अति दूरि जाना है अर समुद्रके तीर डेरा है सो सबही सिताबी (जल्दी) करो, ढील न करो ॥ ११ ॥ प्रभू तौ पधारे अर तुम कहा ढील करि रहे हौ आजि प्रयाण लंबा है या भांति सेनाके अधिकारीनिका वचन सेनाके लोकनिकूं शीघ्र उद्यमी करता भया ॥ १२ ॥ आज समुद्रपर्यंत गमन है अर गंगाके द्वार डेरे हैं अर समुद्रकूं उलंघिकरि आजिही मागध देव वशि करना है ॥ १३ ॥ पृथ्वीपतिकी ऐसी आज्ञा है जो समुद्रकूं आजिही देखूंगा ऊंची ऊंची उठै हैं तरंग जाविषें । आजिही समुद्रके उलंघनविषैं पृथ्वीपतिकी अलंघ्य आज्ञा है ॥ १४ ॥ परस्पर ऐसे वचनालाप करते सेनाके लोक गमन करते भए अर प्रयाणके वादित्र वाजे तिनिकी ध्वनि दसूं दिसामें विस्तरती भई ॥१५॥ सब सेना गंगाके तीर लंबी होय चाली मानूं गंगाकी लंबाई मापैही है, विस्तरी है सेनाकी महाध्वनि जहां ॥ १६ ॥ चक्रीकी सेना गंगाके तीर तीर गमन करती भई । गंगा तरंगनिकरि युक्त है अर सेना तुरंगनिकरि युक्त है अर गंगा तौ चालते हंसनिकरि शोभित है अर सेना ढरते चंवरनिकरि शोभित है अर गंगा तौ अनेक पंखीनिकरि युक्त है अर सेना ध्वजानिकरि युक्त है ॥१७॥ सेना समुद्रकी उर चाली सो मानूं इह सेना दूजी गंगाही है, गंगा तौ राजहंस जे पंखी तिनिकरि सेवित है अर सेना राजहंस जे वडे राजा तिनिकरि सेवित है, गंगा अखंडगति है अर सेनाहू अखंडगति है, दोऊही काहूतैं रोकी न जांय दोऊही समुद्रकी उर अखंड चली जाय हैं ॥ १८ ॥ वहुरि मानूं इह सेना गंगाकी शोभाकूं जीतती भई । गंगा तौ वि-परीतां कहिए पंखीनिकरि मंडित, 'वि' नाम पंखीका है अर इह सेना विपरीतवृत्तितैं रहित अर गंगा तौ निम्नगा कहिए नीची तरफ ढरनहारी अर इह सेना उन्नतस्थिति कहिए ऊंची

दशा धरणहारी अर गंगा तौ त्रिपथगामिनीहू कहिए है अर इह सेना वहुमार्गगा कहिए बहुत मार्गकी गमन करनहारी है, सो सेना गंगातैं अधिक शोभा धरै है ॥१९॥ सो वह सेना गंगाके तीर गमन करती ध्वजानिके वस्त्रकरि मानूं आकाशके अंगणकूं बुहारती भई, कैसा है आकाश

वनविषैं पृथ्वीका नाथ भीलनिकी कन्यानिकूं दूरितैं देखिकरि हर्षित भया, स्याम सुंदर हैं अंग जिनिके, प्रगट नांही दीखै है रोमनिकी पंक्ति जिनिके अर पातुरी है कटि जिनिकी अर महाचपल जे वृक्षनिके पल्लव तिनिके कीए हैं वस्त्र जिनि अर चमरी मृगनिके जे केश तिनिकरि गूंथी है चोटी जिनि सो अति मनोज्ञ भासै है अर चिरमिनि (रत्ती जिससे तोला करते हैं) करि रची है माला जिनि तिनिकरि शोभित हैं कंठ जिनिके अर किस्तूरिया मृग तिनिकी सुगंध ताकरि सुगंध होय रह्या है वन ताविषैं मंडनकी आभिलाषाकरि कस्तूरीकी वीणा वींणै हैं। भीलनिकी कन्या कटककूं देखि अचिरजकूं प्राप्त भई। विनाही शृंगार सुंदर शरीर तिनिकूं भूमिका पालक देखिकरि जानता भया जो मेरी प्रजा सबही सुखी है ॥ ३८–३९–४०–४१ ॥ वनविषैं भीलनिके राजा भूमिपालनिके प्रतिपालककी भेट कस्तूरीके बीण अर चमरी मृगनिके चमर इत्यादि भली भली वस्तु भेट करते भए अर पृथ्वीपतिका दर्शनकरि सनाथ भए ॥ ४२ ॥ अर चक्रवर्त्तीकी आज्ञातैं सेनापति गंगा सिंधुके राजानिके हजारां गढ वसि करता भया ॥ ४३ ॥ ते राजा अपूर्व रत्ननिके समूह अर अद्भुत वस्त्र अर सारभूत धन चक्रेश्वरकी भेटकरि प्रणामकरि आज्ञा मानते भए ॥ ४४ ॥ अर चक्रेश्वर सेनासहित मार्गकूं दूरि उलंघिकरि गंगाके द्वार जाय प्राप्त भया, कैसा है द्वार—आपसमान अलंघ्य है। भावार्थ—आप तौ राजानिकरि देवांनिकरि अलंघ्य है अर वह द्वार जलकरि अलंघ्य है ॥ ४५ ॥ अर समुद्रकै बाहरि द्वीपसंबंधी जल अधिक अगाधताके भावकूं प्राप्त भया है मानूं इह उपसमुद्र लवणसागरकी मोरीही है सो उपसमुद्रकूं भरतेश्वर समुद्रकै समीप देखता भया ॥ ४६ ॥ कर्मभूमिके आरंभविषैं वर्षाका आरंभ भया तबहीतैं कालके प्रभावकरि जल बध्या सो द्वीपके अंतकूं बेढता भया ॥ ४७ ॥ सो द्वीपसंबंधी जल अलंघ्यपनैंतैं अर अत्यंत महत्त्वपनैंतैं अर द्वीपपर्यंत बेढिबेतैं अगाधताके भावकूं प्राप्त भया सो उपसमुद्र नाम पाया ॥ ४८ ॥ ता उपसमुद्रकूं देखता थका आदीश्वरका पुत्र सुखकै मार्ग होय गंगाके उपवनकी वेदी ताके अंतभागविषैं

स्वचक्रकी नांई परचक्रविषैं चेष्टा करी ॥ २७ ॥ संधि विग्रह यान आसन द्वैधाश्रय ए राजानिके षट् गुण सो चक्रवर्तीके काहेकूं होय ? कोऊ याकी बराबरीका होय तो संधि कहिए मित्रता होय अर तबहूं काहूंसूं जुद्ध होय सो चक्रधर तौ सब राजानिका स्वामी है याकै संधि आदि षट्गुण कथनमात्र होते भये ॥२८॥ देश देशके राजा भेंट लेय लेय आय मिले तिनिकूं अपनी सुदृष्टिकरि पोखता भया तिनिका सत्कार करता संता अनेक देशनिकूं उलंघता भया ॥ २९ ॥ केवल प्रभुत्व शक्तिहीकरि पृथ्वीपतिनैं पूर्व दिशा जीती, खडगविषैं हाथ न धरया अर धनुषविषैं फिडचि न चढाई, प्रतापहीकरि प्रजापति जीते ॥ ३० ॥ सो प्रजापति गायानिके वाडेनिकै समीप तरुण ग्वालिनिकूं देखता भया आश्चर्यकूं प्राप्त भया, वनकी बेलनिकरि बांधे हैं सिरके केश तिनि अर गायनिकी रक्षा करैं हैं ॥ ३१ ॥ बहुरि पृथ्वीका नाथ ग्वालनिकूं देखता संता आश्चर्यकूं प्राप्त भया । दही बिलोवनेके माथने तिनिका जो बिलोवना ताके खेदकरि उपजी पसेवकी बूंद तिनिकरि मंडित हैं मुख जिनिके अर बिलोवती संती कुचनिकूं कंपायमान करैं हैं अर नितंब तथा पृष्ठ अर अधर इनिकूं लीलासहित नचावैं हैं ॥ ३२ ॥ अर माथणेंकी रस्सीके खैंचिबेकरि हाले हैं भुजा जिनिकी ताकरि शिथिल होय गये हैं वस्त्र अर ढीली होय गई कांचुरी ताकरि लखिबेमैं आवै है महामनोहर त्रिवलीसहित उदर ॥ ३३ ॥ अर माथणेंके क्षोभकरि उछली है स्थूल गोरसकी बूंद सो कोई कोई अंगविषैं लागी हैं तिनिकरि ग्वालिनीनिकी अद्भुत शोभा बनिरही है ॥ ३४ ॥ अर माथणेंके शब्दके अनुसारि कछुइक राग अलाप्य हैं सुनिबेवारेनिके मनकूं हरै हैं । अर ढीला हो गया है चोटीका बंधन, सो मानूं कामकी पताकाही है ॥ ३५ ॥ अर गायनिके स्थानकविषैं परस्पर वचनालापकरि अपनी इच्छापूर्वक आरंभ्या है बिलोवणां जिनि सो ग्वालिनीकी अद्भुत शोभा देखिकरि देशपतिनिका अधिपति हर्षकूं प्राप्त होता भया ॥ ३६ ॥ बहुरि वनके गजनिकरि शोभित जो वन ताविषैं भील राजेश्वरकै निकट आए । करींद्रनिके दंत अर गजमोती इत्यादि वनकी नानाप्रकारकी वस्तु भेट करी ॥ ३७ ॥ अर

कार समस्तकूं जीतहु ॥ ६१ ॥ या समुद्रके निवासी देव तिहारे क्षेत्रमें बसे हैं तिनिके जीतिबेका इह समय है। या प्रकार उच्च शब्दकरि पुरोहित आशीर्वाद देता भया ॥ ६२ ॥ तब कैयक राजानिकरि मंडित नव-निधिका नाथ आदिनाथका नंदन आदि चक्रधर गंगाके द्वारकी जो वेदी ताकै ऊपरि चढ्या ॥ ६३ ॥ सो केवल समुद्रके द्वारहीमें प्रवेश न कीया, कार्यसिद्धिका जो द्वार तामैं अपना प्रवेश मानता भया, मनमें इह जानी जो मैं कार्यसिद्धि कर चुका ॥ ६४ ॥ धरे हैं मंगल आभूषण जानैं सो मानूं द्वारकी वेदीपरि आरोहण न किया विजयलक्ष्मीके विवाहकी वेदीही परि आरोहण कीया, ऐसा सोहता भया ॥ ६५ ॥ वह नृपनिका नाथ महागंभीर जो लवणसागर ताविषैं कृत्रिम अल्पनदीसमान बुद्धिकरि दृष्टिकूं विस्तारता भया। इह वेदी मेरे घरके आंगणकी वेदी है ऐसी विचारता संता अपनी दृष्टिकूं फैलावता भया ॥ ६६ ॥ वह भरतक्षेत्रका पति वेदीपरि ऐसैं आरूढ भया जैसैं महामुनि क्षपकश्रेणीपरि आरूढ होय। सो चक्री आपकूं समुद्र तिर्‍याही मानता भया जैसें मुनींद्र भवसागरकूं तिर्‍याही आपकूं मानै ॥ ६७ ॥ बारंबार पवनकी हती उठै हैं कल्लोल जामें तिनिका शब्द होय रह्या है सो मानूं समुद्र अपने उलंघनके भयतें उच्च प्रकार पुकारही करै है ॥ ६८ ॥ मुक्ताफलरूप जे अक्षत तिनिकरि मिश्रित जे रत्न तिनिसहित लहरिरूप भुजानिकरि उछाले जे जलके छांटे तिनिकरि मानूं समुद्र चक्रनाथका अर्घपाद्यही करै है, ऐसी चक्रवर्ती मानता भया ॥ ६९ ॥ समुद्रकूं देखि चक्रनाथ ऐसी जानी जो इह समुद्र मानूं मेरे कटकसमानही है। कटकहू औरनिकरि अलंघ्य अर समुद्रहू औरनिकरि अलंघ्य। कटकहू क्षोभरहित अर समुद्रहू क्षोभरहित। कटकहू अपार अर समुद्रहू अपार। कटकहू समस्त देशनिका दावनहारा अर समुद्रहू अनेक द्वीपनिका दावनहारा है। अर कटकहूमैं संख्यारहित शंख अर समुद्रहूमें संख्यारहित शंख ॥७०॥ बहुरि चक्रवर्तीने समुद्र कैसा देख्या मानूं भृगीके रोगकरि संयुक्त है, प्रगट है झागरूप जंभाई जाकै। मिरगीवाराहू काहूतैं थांभ्या न जाय अर समुद्रहू थांभ्या न जाय। अर अतिशयपणेंकरि अथिर है थिति जाकी

सेनाका निवास करता भया ॥ ४९ ॥ तहां वेदिकाके तोरणका द्वार बडा है ता द्वार होय धीरां धीरां अंतर्वनमैं प्रवेशकरि सेनाके डेरे कराए ॥ ५० ॥ तहां क्षेत्रके वशतैं कछुइक कटक सकुचिकरि पर्‍या, कटकका निवेश अंतर्वनमें भया ॥ ५१ ॥ कटककी रचनाका विस्तार अलंध्य है नंदनवन सारिखा वह वन, वृक्षनिके योगकरि नांही प्रवेश करै है आताप जहां, अर गंगाकी शीतल पवन ताके स्पर्शकरि चक्रीका कटक सुखसूं रहता भया ॥ ५२ ॥ तहां मगधदेवका वशि करना सो चक्रधरके पुरुषार्थकरि ही साधिवेयोग्य है परंतु आप पुरुषार्थकरि साध्य जो काम ताहू विषैं दैवकूं प्रमाण करता संता लवणसमुद्रके जीतिबेविषैं कीया है उद्यम जानैं सो देवके वशि करिबेकी क्रिया बांछता भया ॥ ५३ ॥ मंत्रकरि संस्कार कीए हैं जीतिके शस्त्र जानैं अर तीन दिन उपवास कीए, मंत्रके स्मरणकरि पवित्र है आत्मा जाका, पवित्र जो डाभकी सेज ता ऊपरि तिष्ठता, आप महापवित्र ॥ ५४ ॥ सायंकाल अर प्रातःकालके समस्त करिबे योग्य जे कार्य तिनिविषैं सावधान पुरोहितसहित पंच परमेष्ठीकी पूजा करता भया ॥ ५५ ॥ सेनापतिकूं विधिपूर्वक कटककी रक्षाके काजि थापिकरि आप लवणसमुद्रके जीतिबेकी है इच्छा जाकै सो दिव्यास्त्रकूं धरे समुद्रमें प्रयाण करिबेका उद्यमी भया ॥ ५६ ॥ इह वस्तु इहांही मेल्हिए, इह वस्तु लीजिए ऐसी चिंता जाके चित्तविषैं न होती भई अर समुद्रकूं उलंध्या चाहै है सो बडे पुरुषनिका धैर्य आश्चर्यकारी है ॥ ५७ ॥ दिव्यास्त्रनिकरि पूर्ण जो अजितंजयनामा रथ तापरि आरूढ भया अर थलके उलंघनहारे जे दिव्यतुरंगम ते रथके जोए ॥ ५८ ॥ ते हरितवर्णके तुरंग इंद्रनीलमणिके रथकूं दिव्यरथवानके प्रेरे भलै प्रकार चलावते भए। कैसा है रथ—चलायमान है चक्रके चिह्नकी ध्वजा जापरि अर हरे घोडे जुये हैं ते घोडे महाशीघ्रगामी हैं ॥ ५९ ॥ जब चक्रेश्वर रथपरि आरूढ होय चाल्या तब प्रोहित धरे मंगलद्रव्य, पवित्र आशीर्वाद देता भया हे देव ! तुम विजयकूं प्राप्त होहु, इह ऋचा पढी ॥ ६० ॥ जो काटे हैं समस्त कर्मनिके बंध जिनि ऐसे धर्मके नायक जगतके जीतिबवारे तीर्थंकर तुम तिनिके प्रसादतैं धर्मधारी होय

समूह—महोदर नामा है राक्षस जिनिमैं ॥ ७८ ॥ बहुरि वह समुद्र अपनी तरंगरूप भुजानिकरि निरंतर तटकी वेदीकूं स्पर्शे है सो मानूं तटकी वेदीकूं साक्षीकरि अपना मर्यादवंतपना प्रगट जनावै है ॥ ७९ ॥ अर पर्वतसमान ऊंची चालती जे अपनी कलोल तिनिकरि उछलि पाछा आवै है सो मानूं नदीरूप स्त्रीनिके संभोगतैं बृद्धिकूं प्राप्त भया आपविषैं नांही समावै है ॥ ८० ॥ बहुरि कैसा है समुद्र—मानूं वृद्धही है, उपजी है तरंगरूप किरवरी (सलवट) जाविषैं बहुरि पृथुक कहिए बालकही है । बालकहू पृथ्वीविषैं परसता चालै है अर समुद्रहू पृथ्वीविषैं पसरि रह्या है अर बालकहू अनेक तरंग उठावै है अर समुद्रविषैं भी अनेक तरंग उठै हैं । बहुरि कैसा है समुद्र ? अतिसुंदर है रत्नसहित है अर ग्रहसहित अतिडरावना है ॥ ८१ ॥ बहुरि समुद्र प्रगटही जलाशय कहिए जडबुद्धि है । काहेतैं—जो लावण्यताविषैं हू संभोग्य नांही, भावार्थ—लावण्यता नाम सुंदरताका है सो सुंदर वस्तुहू भोगिवे योग्य नांही (समुद्रमें लावण्य कहिये खारापन होता है सो किसीके भोग्य नहीं)। बहुरि जो गंभीर होय है सो निश्चल होय है अर इह गंभीर है तौऊ चंचल है । अर जे बडे होहिहैं ते पुकार नांही करै हैं इह महत्वताविषैंहू पुकारै है, भावार्थ—शब्द करै है । तातैं जानिये है इह प्रगटही जडाशय है ॥ ८२ ॥ अर याकै मदिराका प्रसंग नांही अर कोऊ मदनज्वर नांही तथापि प्रबल है । कंदर्प कहिये जलका है गर्व जाकै, भावार्थ—कंदर्प नाम कामका है, सो काम तौ नांही अर 'कं' कहिये जल ताका दर्प कहिए गर्व है । अर मधुनाम मदिराका है सो मदिराका प्रसंग तो नांही अर मधु कहिए अमृत ताकी विक्रिया है । भावार्थ—लोकविषैं कहै हैं—समुद्रविषैं अमृत प्रगट होय है सो इह तौ कहिवेमात्र है अर अमृतनाम जलका है सो जलकी उत्पत्ति समुद्रविषैं है ॥ ८३ ॥ बहुरि समुद्र कैसा है—महास्वेद जो नदीनिका जल ताहि पीयकरि मानूं प्रसन्नता थकी अपनी लहरि निकरि गमनागमनही करै है, अनेक नदीनिका जल यामैं आवै है परंतु यह तृप्त नांही ॥ ८४ ॥ बहुरि इह समुद्र मानूं चक्रवर्ती समान प्रसिद्ध है, सर्वत्र विस्तरि रह्या है नदीरूप जे स्त्री

समुद्रहू अथिर कहिए चंचल है अर भिरगीवाराहू थिरतारहित है ॥ ७१ ॥ बहुरि वह समुद्र अति चंचल सूवेकी स्थितिकूं धरै है, विना कारण उच्चरै है ध्वनि जाविषैं अर विना निमित्तही अतिचंचल है अर विना कारणही कीया है आवर्त्त जानैं अर आवर्त्त कहिए भंवण जानैं। ए विशेषण सूवाके अर समुद्रके समान हैं ॥ ७२ ॥ अर समुद्र उठते झागनिकरि मानूं हंसै है अर तरंगनिकरि मानूं नृत्य करै है अर कलोलनिकरि मानूं चलायमान है अर घूमिबेकरि मानूं मदोन्मत्त है ॥ ७३ ॥ बहुरि समुद्र देदीप्यमान सर्पसमान है, सर्पहू रत्नसहित अर समुद्रहू रत्नसहित अर सर्प विषका भऱ्या अर समुद्रहू विष कहिए जल ताकरि भऱ्या अर सर्पहू शब्द करै अर समुद्रहू शब्द करै अर दोऊही भयंकर अर सर्प तौ कांचुरी करै अर समुद्र तरंगनिकरि कचरा बाहरि डारै ॥ ७४ ॥ बहुरि समुद्र कैसा है—अति जलपानतैं उपज्या है मानूं रोग जाकै सो हजारां ध्वनि नांही करै है मानूं खांसैही है ॥ ७५ ॥ बहुरि पीया है समस्त नदीनिका जल जानैं सो रसकी आधिक्यतातैं मानूं डकारही विस्तारै है, नांही है तृप्ति जाकै ॥ ७६ ॥ बहुरि जलकरि अतृप्त होता संता अपना अतिगंभीर जो पातालगर्त्त ताके मिसतैं मानूं जलकूं सोसैही है, विकाररूप है सुख जाका ॥ ७७ ॥ बहुरि वह समुद्र मानूं राक्षसनिका समूहही है अथवा राक्षसनिका निवासही है ? कैसा है समुद्र—"दिशां रावणं" कहिए दिशानिकूं शब्दायमान करै है शब्दरूप है अर कैसा है राक्षसनिका समूह—रावण है मुख्य जिनिमैं। बहुरि समुद्र तौ अचलग्राहं कहिए—पर्वतनिका है अंगीकार जाविषैं अर राक्षसनिका समूह—अचलग्राहनामा कोई राक्षस है मुख्य जिनिमैं। बहुरि कैसा है समुद्र—विभीषणं कहिए भयंकर है अर कैसा है राक्षसनिका समूह—विभीषणनामा है रावणका छोटा भाई जिनिमैं। बहुरि कैसा है समुद्र—अतिकायं कहिए विस्तीर्ण है मूर्त्ति जाकी अर कैसा है राक्षसनिका समूह—अतिकाय कहिए कछुइक असुंदर है अथवा अतिकायनामा है कोइक राक्षस मुख्य जिनिमैं। बहुरि कैसा है समुद्र—महोदर कहिए बडा है उदर जाका अर कैसा है राक्षसनिका

... राजा ते सिरपरि धारै हैं अर या समुद्रकी बेला जे लहरि ते भोगी जे नागकुमार देव ते धारै हैं, अर भला राजाहू उच्चवृत्ति है निर्मल प्रवृत्ति है अर समुद्रहू स्वच्छ वृत्तिकूं धरै है; स्वच्छ नाम निर्मलका है, अर भला राजाहू मर्यादाकूं धरै है अर समुद्रहू मर्यादाकूं धरै है ॥ ९१ ॥ बहुरि इह समुद्र महागंभीर आपके मध्यवर्ती जे अनेक अंतर्द्वीप तिनिकूं धारै है मानूं वे अंतर्द्वीप दुर्गदेश ही हैं, काहूकरि लंघे न जाहिं ॥ ९२ ॥ अर इह समुद्र महागंभीर है, गाजते वादरेनिके समूह तिनिकरि जलतें भरिए है मानूं वे वादरे याके किंकरही हैं ते वादरे आकाशविषैं व्यापि रहे हैं अर जलकरि भरे हैं। समुद्र महाप्रवल है काहूकरि भुजानितैं तिरया न जाय ॥ ९३ ॥ अर इह समुद्र भूतलागे पुरुष समान है जाहि भूत लाग्या होय सो पृथ्वीविषैं पसरि जाय सो इह पृथ्वीविषैं पसरि रह्या है, अर भूतसहित पुरुष चंचल होय अर इह तरंगनिकरि चंचल है, अर वह पुरुषहू क्षोभ कहिए उद्वेग ताहि धरै है अर समुद्र क्षोभसहित है, अर भूत लाग्या पुरुषहू ऊंचा उछलै है अर समुद्रहू ऊंचा उछलै है, अर वह पुरुषहू भ्रमण करै है अर याविषै भंवण उठै हैं अर वह पुरुषहू जंभाई लेहै अर इह जंभित कहिए विस्तारि रह्या है, भूत लागा पुरुषहू ध्वनि करै है अर इहहू गरजे है अर वहहू भ्रमै इहहू भ्रमै ॥ ९४ ॥ इह लवणोदधि रत्ननिकी किरणनिकरि विचित्ररूप है तल जाका अर मोतिनिकरि मिश्रित है जल जाका सब उर ग्राहनिकरि मंडित है तातैं सुहावणाभी है अर डरावणां भी है ॥ ९५ ॥ बहुरि यह समुद्र अति अद्भुतताकूं धरै है—नदीन कहिए नदीनिका स्वामी है अर रत्नभूयिष्टं कहिए बहुत रत्ननिसूं भरया है बहुरि अप्प्राणं कहिए जलही है प्राण जाके, बहुरि चिरजीवितं कहिए चिरकालका है अर समुद्र कहिए मुद्रासहित है, मर्यादमें है अर झषकेतु कहिए मछलीनिकी ध्वजासहित अर अमन्मथ कहिए मनोहर मनकूं क्लेशकारी नांही। अर दूजा अर्थ व्यंग्यरूप—रत्ननिकरि भऱ्या है तौऊ संचयदोषकरि दीनसमान है अर अप्राणं कहिए प्राणरहित है तौऊ चिरंजीवी है अर मुद्रा कहिए मर्यादसहित है तौऊ उन्मुद्र कहिए विस्तीर्ण है ढक्या नांही उघाडा

तिनिकरि सेयबे योग्य है अर कीया है रत्ननिका अंगीकरि जानै। चक्रवर्ती हू रत्ननिकरि परिपूर्ण है अर समुद्रहू रत्ननिकरि पूर्ण है अर चक्रवर्ती तो महाभोगी जे बडे राजा तिनिकरि सेवनीक है अर इह समुद्र महाभोगी जे बडे सर्प तिनकरि सेव्य है ॥ ८५ ॥ अर जलचरनिकी भुजा तिनिके निर्घातकरि उछली जे जलकी छटा तिनिकरि इह लवणोदधि ऐसा सोहै है मानूं समस्त समुद्रनिके जीतिवेतैं याने ध्वजा खडी करी है ॥ ८६ ॥ अर मानूं इह समुद्र जंबूद्वीपरूप मंदिरका नील रत्नकरि निरमाप्या ऊंचा कोटही है। कैसा है जंबूद्वीपरूप मंदिर—कुलाचलरूप विस्तीर्ण हैं थंभ जाके ॥ ८७ ॥ बहुरि इह समुद्र मानूं दूसरा जैन शास्त्रही है—जैन शास्त्रहु अनादि है अर जैनशास्त्रकाहू अंत नांही अर समुद्रका आदि अंत नांही अर जैनशास्त्र तौ अखिल पदार्थ जे जीवादिक तिनिकी रचनाकरि पूर्ण है अर इह समुद्र सगरत जे पदार्थ कहिए रत्न तिनिकरि पूर्ण है अर जैनशास्त्र अर समुद्र दोऊ ही गंभीर शब्दकूं धरै हैं ॥ ८८ ॥ बहुरि इह समुद्र सदा सासता है तातैं नित्यताके आश्रय द्रव्यार्थिक नयकूं आश्रय है अर लहरिनिकी क्षणभंगुरतातैं पर्यायार्थिक नयकूं अंगीगार करै है। भावार्थ—द्रव्यार्थिक नय तो नित्यताका निरूपण करै है अर पर्यायार्थिक नय अनित्यताका प्ररूपण करै है सो इह समुद्र सदा नित्य प्रवृत्तिकूं धरै है अर क्षणभंगुर तरंगनिकूं धरै है तातैं दोऊ नयका स्वरूप है ॥ ८९ ॥ अर मानूं इह समुद्र खोटे राजासमानही है। कैसा है खोटा राजा—सदा बढी है तृष्णा जाकै अर समुद्रहू महातृष्णाकूं धरै है बहुरि खोटे राजाके जड जे मूढ तिनिका अंगीकार है अर समुद्रके जड जो जल ताका अंगीकार है। अर खोटा राजा तो गुरु जे गुरुजन तिनिकी अवज्ञा करै है अर इह समुद्र गुरु जे भारी पदार्थ तिनिकूं डुबोवे है अर हलकनिकूं उतारै है तातैं निरंतर मानूं कुतिरात राजाकी वृत्तिकूं धरै है ॥ ९० ॥ बहुरि इह समुद्र मानूं भले राजाकी वृत्तिकूं धरै है। भला राजा सत्त्व जो पराक्रम ताकरि संयुक्त है अर इह समुद्र सत्त्व जे जलचर तिनिकरि संयुक्त है अर भला राजा अतिगंभीर है अर समुद्रहू अतिगंभीर है अर भले राजाकी आज्ञा

सारथीकूं आज्ञा करी—तू रथकूं आघा प्रेरि ॥ ४ ॥ वह चक्रीका रथ, जाकै जुये हैं मनसमान वेगके धरनहारे तेज तुरंग ते रथकूं लवणोदधिमांहि चलावते भए मानूं इह रथ समुद्रविषैं जिहाजके भावकूं प्राप्त भया है ॥ ५ ॥ रथ तौ मनोरथ पहली गया चाहै अर मनोरथ है सो रथ पहली गया चाहै, वह चक्रीका रथ समुद्रकूं अवगाहता भया ॥ ६ ॥ जलस्थंभनीविद्याकरि जल था सो मानूं थलही होय गया ए तुरंग रथकूं थलकी बुद्धिकरि चलावते भए ॥ ७ ॥ जैसैं स्थलविषैं पहेनिका चीत्कारशब्द होय अर अश्व हींसैं शब्द करैं तैसैंही जलविषैं पहेनिका चीत्कार भया अर तुरंगनिका शब्द भया, जैसैं घोडे थलविषैं चालैं तैसे जलविषैं भी चालैं। अहो चक्रवर्त्तीके पुण्यका अतिशय कहिबेमैं न आवै ॥ १०८ ॥ वडी वडी कलोल जलकी उठीं तिनिकरि सींचे तुरंग विना खेद रथकूं चलावते भए। अश्वनिका अखिल परिश्रम दूरि होता भया ॥ ९ ॥ रथके पहेनिके पीडनतैं उछल्या जलका समूह सो ध्वजाके वस्त्रकूं सजल करता भया । जडनिकी इही गति है जो उछरिकै माथैं चढैं ॥ १० ॥ चक्रवर्त्तीका ऐसा अतिशय जो जलकरि तुरंगनिके अंगका रंग न पखाल्या गया, रंग ज्यूंका ज्यूं रह्या, पुरुषके वेगनिकरि उठी जलकी छटा अर अंगका पसेव ताकरि रंगका अभाव भया ॥ ११ ॥ क्षणेक रथके पहेनिके संघट्टतैं समुद्रका जल फटि गया सो मानूं हौंणहार जे चक्रवर्त्ती हैं तिनिकूं मार्गही प्रगट कीया । भावार्थ—प्रथम चक्री तौ ए भए अर इनि पीछैं ग्यारा और हौंहिगे तिनिकूं आप मार्ग प्रगट कीया ॥ १२ ॥ सारथीका प्रेर्‌या रथ वांछित स्थानक जाय प्राप्त भया अर पुण्यरूप सारथीका प्रेर्‌या मनोरथ सिद्धिकूं प्राप्त भया ॥ १३ ॥ जायकरि समुद्रविषैं कैयक जोजन रथ अर जलकै मध्य खडा होय रह्या मानूं समुद्रने तुरंग थांभे जो मागधका इहांही निवास है ॥१४॥ बारह योजन समुद्रकूं अवगाहिकरि रथ स्थिरीभूत भया तहां चक्रवर्त्ती मागधदेवपरि क्रोधकरि धनुष हाथि लीया ॥ १५ ॥ स्फुरायमान है फिडचि जाकी ऐसा वज्रकांडनामा धनुष सो चक्रवर्त्तीनैं चढाया तब जगतके प्राणी जीवनेका संदेह सोई भया हिंडोला ताविषैं आरूढ भए। भावार्थ—सब भयभीत भए ॥ ११६ ॥

है, अर झषकेतु कहिए मीनध्वज है तथापि कामरूप नांही । इह विरोधाभास अलंकार है ॥ ९६ ॥ बहुरि कैसा है—जाका पार नांही अर क्षोभरहित है अविनाशी है अर जलके निवाणनिविषैं समुद्रसमान और श्रेष्ठ नांही मानूं इह समुद्र सिद्धालयसमान अमृतका स्थानक प्रगट है अर अव्यक्त है । भावार्थ—सिद्धालयहू अपार है अर इहहू अपार है, सिद्धालयहू क्षोभरहित अव्याकुल है अर इहहू अक्षोभ्य कहिए काहूकरि डहोल्या न जाय अर सिद्धालय विनाशरहित है अर इहहू अविनाशी है अर सिद्धालयसमान कोऊ निवास नांही अर या समान कोऊ निवास नांही सर्वोत्कृष्ट है अर सिद्धालय प्रगट है अर इहहू प्रगट है अर सिद्धालय अगम्य है अगोचर है अर इहहू अगम्य है अगोचर है अर सिद्धालय तौ अमृत कहिए अमरणताका स्थानक है जहां मृत्यु नांही अर इह अमृतास्पद कहिए अमृत जो जल ताका निवास ही है ॥ ९७ ॥ अर कहूंइक समुद्र पद्मरागमणिनिकी क्रांतिकरि सांझके बादरेनिकीसी शोभाकूं धरै है अर कहूंइक इंद्रनीलमणिनिकी क्रांतिकरि अंधकारस्वरूप होय रह्या है । इंद्रनीलमणि तौ स्याम है अर पद्मरागमणि अरुण है ॥ ९८ ॥ अर कहूं इक हरी जे मरकतमणि तिनिकी प्रभाके समूहकरि सिवालकासा संदेह उपजावै है अर कहूंइक विद्रुम जे मूंगा तिनिके अंकुरानिकरि केसरिकीसी क्रांतिकूं धरै है ॥ ९९ ॥ अर कहूंइक सीपनिके पुटनिका भेद भया है तामैंतैं उछरैं हैं मोती तिनिकी शोभाकरि तारानिके समूहकरि पूर्ण जो आकाश ताहि हंसै है ॥ १०० ॥ अर तटपर्यंत फैलती सर्व रत्ननिकी क्रांति तासंयुक्त जे जलकी छटा तिनिकरि मानूं आकाशविषैं इंद्रधनुषही शोभाकूं विस्तारै है ॥ १०१ ॥ या प्रकार चक्रवर्त्ती लवणोदधिकूं भलैप्रकार अपूर्व महानिधिकी नांई देखता भया, कैसा है लवणोदधि—अनेक कोटि रत्ननिकरि भर्‍या है ॥ १०२ ॥ इह पैंतीस श्लोकनिमैं समुद्रका वर्णन कीया ।

सो महाभाग पूर्णबुद्धि महाधीर हैं शब्द जाके ऐसा धराका धनी भरत ता समुद्रकूं देखिकरि गायके खोजसमान तुच्छ जानता भया ॥ ३ ॥ बहुरि मनवंछित सिद्धिके अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कार कीया अर

अबतक कोऊ वैरीकूं कद (कभी) न सहिसक्या। पूर्वे तुम सुनी है जो मागध काहूकरि दव्या ॥२८॥ जो पुरुष पराधीन होय मान भंगकरि मलिन अपने प्राणनिकूं धारै सो कहिवेमात्र पुरुष है, गुणनिकरि पुरुष नांही ॥ १२९ ॥ सो चित्रामका पुरुष है अथवा तृणसमान है जो पुरुषके गुण शूरता उदारता तिन बिनाही नाममात्र पुरुष कहावे हैं सो निंद्य है ताहि पुरुष न कहिए ॥ १३० ॥ पुरुष वह जो अपने कुलकूं अर जन्मकूं पुरुषार्थकरि पवित्र करै अर जो पुरुषार्थतैं रहित है। अपने मुखहीतैं आपकूं सुभट कहे हैं सो पृथ्वीविषैं उपज्याही न उपजिवे बराबर है ॥ ३१ ॥ हम सबनिकूं जीति सकै हैं तातैं देव कहावे हैं कछु इच्छाविहारतैं नांही तातैं अरिनिके विजयहीतैं हमारे सदा संपदा होहु ॥ ३२ ॥ जो वस्तु वाहन देयकरि अर राज्यके चिह्न छत्र चामरादि त्यजिकरि पराई आराधना करै है ताका ऐश्वर्य पराधीन है, ताहि मैं बिडंबना मानूंहूं ॥ ३३ ॥ इह बाणका वाहिवेवारा (चलानेवाला) कोइक मोतैं धन चाहै है सो वा धनाभिलाषीकूं प्रधन कहिए युद्ध ताकरि निधन कहिए मृत्यु सो थूंगा ॥ ३४ ॥ इह बाण मेरी क्रोधरूप अग्निका प्रथम इंधण है सो याहि अल्पखंडरूप चूर्णकरि क्रोधरूप अग्निके प्रज्वलित करिबेकूं सिंदूकण (संधुक्षण—अग्नि सुलगानेका साधन) करूंगा ॥ ३५ ॥ या भांति तिरस्कारयुक्त अतिक्रोधतैं ऐसे प्रचंड वचन कहिकरि दांतनिकी चांदनीकूं संकोचता मागध मौन गहि तिष्ठता भया ॥ ३६ ॥ तब ताहि समीपवर्ती बडे देव परंपरायके देखनहारे अपने स्वामीकूं क्रोधतैं निवारिबेकूं मर्यादके वचन कहते भये, इह बात उचित है जे विद्याकरि वृद्ध हैं तिनहिकरि नृपनिकी मर्यादरूप बुद्धि होय है ॥ ३७ ॥ वे देव अवसर पाय महा मनोहर वचन अर्थरूप मर्याद लीये जिनिमैं बहु विस्तार अर आकुलतारहित महागंभीर जे मूर्खनिपै न कहे जांहि ते वचन कहते भए ॥ १३८ ॥ हे नाथ! इह सांच है जो महान पुरुष हैं तिनितैं अपमान सह्या न जाय परंतु बलवंतनिसूं विरोध करना अपने विशेष अपमानका कारण है ॥ ३९ ॥ प्राण हू अर धनहू खोयकरि जसकी रक्षा करनी इह बडे पुरुष कहै हैं सो जस बुद्धिवान स्वामीके

स्फुरायमान है फिडचि जाका ऐसा धनुष दसूं दिशाकूं शब्दायमान करता समुद्रकूं क्षोभित करता भया। कैसा है समुद्र—चलायमान जे जलचरनिके समूह तिनिकरि व्याकुल है ॥ १७ ॥ इह चक्रवर्त्ती कहा समुद्रकूं संहार करेगा? ऐसी आशंकाकरि आकाशविषैं विद्याधर क्षणेक खडे होय रहे हैं ॥ १८ ॥ तौ वज्रकांड धनुषविषैं चक्रवर्त्ती अमोघ बाण आरोपता भया । सो धनुष वक्र है तौऊ गुणसंयुक्त है, इहां गुण नाम फिडचिका जानना । बहुरि कैसा है धनुष—कर्मविषैं सरल है । भावार्थ—धनुषतैं बाण सूधा चालै है। योग्य स्थानका आश्रय करै सो प्रशंसायोग्य है बाणनैं धनुषका आश्रय कीया तब कार्यकारी भया ॥ १९ ॥ चक्रवर्त्ती बाण पत्रसंयुक्त चलाया—पत्रमैं इह लिख्या;—मैं भरतनामा चक्रवर्त्ती ऋषभका पुत्र सो मेरे क्षेत्रनिवासी देव मेरे समीप आय आधीन होहु ॥ २० ॥ या भांति प्रगट अक्षरकी है रचना जाविषैं सो बाण मुख्य दूतकी नांई चक्रीका चलाया पूर्वदिशाकूं सन्मुख भया ॥ २१ ॥ जीत्या है वज्रपातका शब्द जानैं सो आकाश ध्वनि करता मगधके निवासमैं पर्‍या, मागधकी सकल सेनाविषैं भय उपजाया ॥ २२ ॥ ताकी सेनाके देवनि जानी—इह कहा प्रलयकालकी पवनका प्रेर्‍या समुद्र क्षोभित भया कि वज्रपात पर्‍या ताका शब्द है कि भूमिकंप भया ताका शब्द विस्तर्‍या है ॥ २३ ॥ या भांति अति आकुल भई है बुद्धि जिनिकी ऐसे मगधके समीपी जे देव ते आयुधनिकूं सजि मागधके समीप आए, अपनी सेनाकरि मागध युक्त भया ॥ २४ ॥ ते देव आयकरि मागधकूं कहते भए—हे देव ! इह देदीप्यमान बाण आकाशतैं अपने आवासविषैं पर्‍या ताकरि इह अति क्षोभ भया और कारण नांही ॥ २५ ॥ जानैं इह बाण पठाया सो वह देव होहु अथवा दानव होहु जानैं इह बाण चलाया है तासुं हम युद्ध करिनेकूं सजिकरि प्रभुपै आए हैं जो आज्ञा होय सो करैं ॥ २६ ॥ या भांति मागधके अंगके रक्षक देव योद्धा तिनि शीघ्रही स्वामीसूं वीनती करी । तब मागध कहता भया—तिहारे सुभटपनेके आलापनिकरि कहा? तुम मौन गहि रहो ॥१२७॥ तुम तौ मेरे आधीन हो, मैं मागध

पूर्णता नांही सदा जडताका आश्रय करिबो ही करै ॥ १७२ ॥ अर तिनि बडे मच्छ चालते कुलाचल समान सो याकै उदरकूं व्यापिकरि सदा जलकरि पुष्ट याके पुत्रसमान याविषैं क्रीडा करै हैं। अर प्रमाण-रहित कलोल सब उरतैं याविषैं उठै हैं ते कलोल परस्पर संघट्ट करती याहीविषैं प्रवेश करैं हैं ॥ ७३ ॥ हे ईश! याके जल सोही धन अर अतिचंचल, अर नानारूप नदी ते याकै स्त्री अर जलचर तेई याकै पुत्रभावकूं आचरै हैं अर सिकता कहिए रेत सोही याकै रत्न या प्रकार इह तुच्छ विभूतिकूं धरै तोऊ गर्ववंत होय रह्या गाजै है इह बडा अचिरज है अर इह आपका महोदधि नाम धरावै है। सो तुच्छ विभूतिपरि एता गर्व कहा? याका जल काहूका कामका नांही ॥ ७४ ॥ अर याविषैं ए सर्व निश्वास डारते धूम्रसमान श्याम अर फणमंडलकै मध्य प्रगट है रत्ननिकी क्रांति जिनिकै ते चौगिरद भ्रमै हैं, दीर्घ हैं शरीर जिनके, परस्पर रोसकरि दोरै हैं सो अकस्मात् आलात चक्रकीसी शोभाकूं धरैं हैं ॥ ७५ ॥ इह समुद्र चंद्रमाकी शीतल किरणनिकरि स्पर्श्या है जल जाका सो तत्काल मानूं रोसकरि आकाशकूं उछलै है। भावार्थ– पाद नाम किरणका है अर पाद नाम चरणहूका है, सो कोऊ काहूकूं चरणनिकरि परसै सो क्रोध करै है तातें इह समुद्र क्रोधकरि आकाशकूं उछलै है अर कलोलनिके मिसकरि गंभीर शब्द करै है। सो इह बात प्रमाण है जो महान होय सो पराया कीया अपमान न सहिसकै ॥ ७६ ॥ या समुद्रविषैं हजारां महामनोज्ञ अंतर्द्वीप हैं सो मानूं याके विषम गढही हैं? कैसे हैं द्वीपस्थल–देवनिके देवी-निसहित क्रीडा करिबेके सुंदर हैं वन जहां, ते अतिरसके भरे हैं ॥ ७७ ॥ इह समुद्र चंचल हैं कलोल जाविषैं सो उछलती कलोल स्पर्शै है आकाश मंडलकूं, तिनिके समूह पवनके योगकरि चंचल तटनिके वनकूं प्रगट सपरसते संते मानूं क्रोधकरि इनिकूं ताडना करै हैं सो इह क्रोध या वातका है जो ए वन हमारे रोकनिहारे हैं इनिकै परैं हमारा गमन नांही। भावार्थ–जो आपका रोकनहारा होय तापरि क्रोध उपजै सो जलकी कलोल मानूं क्रोधकरि तटके वननिका ताडन करै है ॥ ७८ ॥ मानूं इह समुद्र शब्दकरि कुला-

अति अचिरजिका भऱ्या है ॥ ६७ ॥ तब कौतूहलतैं चक्रधर समुद्रकूं देखता भया तासमैं सारथी दांतनिकी किरणनिकरि मानूं फूलनिकी मंजरी बखेरती ऐसे वचन कहता भया ॥ ६८ ॥ सारथी कहै है हे नाथ ! यह समुद्र मानूं तुमकूं अर्घही देहै। कैसा है समुद्र—उछलैं हैं चंचल लहरि तेई भई भुजा तिनिकरि देदीप्यमान मणिनिके समूह धरे सोई है अर्चाकी सामग्री जाकै अर वाजै हैं असंख्य शंख तिनिकरि शब्दाकुल है अर वेला कहिए कलोल तिनिकरि भलैप्रकार नाद करै है अर पवनकरि उठै है जल तेई है बादित्र जाकै सो इह रत्नाकर निरंतर आनंदकूं विस्तारो ॥ ६९ ॥ याका जल चंद्रमाकी किरणसमान मनोहर छवि धरे आकाशविषें उछलता लखिए है, अर जलकी छटानिकरि दिशारूप वधूनिके मिलापकें अर्थि मानूं हास्यही करै है, सब दिशानिप्रति यशके विभाग तिनिके विस्तारवेकी है इच्छा जाकै ॥ ७० ॥ अर कहूंइक फटि गई है सीप तिनिके विस्तरि रहे हैं मोती तिनिकरि, तारानिकरि युक्त जो आकाश ताहि जीतै है। कैसा है आकाश—भंवरसमान श्याम है अर समुद्रका सलिलहू श्याम है अर आकाशविषें नव ग्रह मकर अर मीन राशिकूं आश्रयै है अर समुद्रका जल मगर अर मीन तिनिकरि राशि कहिए समूह ताहि धारै है ! कहूंइक याका जल भोगी कहिए सर्प तिनिकै समूहकरि संयुक्त ऊंचे राजानिके कुलकूं मानूं जीतै है। कैसे हैं राजानिके कुल—भोगी कहिए भोगी जन तिनिके समूहकरि मंडित हैं अर सबमैं उन्नत हैं अर उत्तम रीतिकूं धरे हैं अर उद्भट कहिए प्रबल हैं। भावार्थ—राजकुलहू प्रबल अर समुद्रहू प्रबल अर वहहू उत्तम रीतिकूं धरै अर इहहू उज्वल दशाकूं धरै ॥ ७१ ॥ या समुद्रविषैं एक उर सरदके वादरानिके समान उज्वल छविकूं धरै गंगाका प्रवाह प्रवेश करै है। कैसा है गंगाका जल—हिमाचलतैं चया है, अर एक उर या विषैं अमृतसमान सिंधुका जल प्रवेश करै है, सिंधुहू हिमाचलतैं आवै है। अनेक नदी याविषैं आवै हैं तथापि याकै जलके आगमनतैं संतोष नांही। निश्चयसेती इह जलाशय है सो जलके संग्रहकरि याहि तृप्ति नांही। भावार्थ—जो जडाशय कहिए मूर्ख होय ताकै जडताके संग्रहकरि

बहुरि सारथी स्वामीसूं कहै है—हे कमलवदन ! समुद्रके तट इह वनकी पंक्ति देखहु, दूरि कीया है आताप जानैं अर विस्तरि रह्या है जल जहां ! कैसी है वनकी पंक्ति—समुद्रकी कलोलनिके स्पर्शकरि जलके कणानिकरि सजल है, मानूं इह वनकी पंक्ति पुष्पनिकरि मंडित सुंदर नीली सारी जलकणकानिकरि मंडित है ॥ ८७ ॥ अर सरोवरीनिके चौगिरद रमके भरे तृण तिनिकूं चिरकाल चरते सुखरूप विचरै हैं। या समुद्रके तट स्वतः स्वभाव सुखरूप निरुपद्रव वन तिनिविषै आयकरि मृगादिक सुखसूं चरते विचरै हैं ॥ ८८ ॥ इह मृगनिका समूह तटवनविषैं सुवर्णके स्थल क्रांतिकरि देदीप्यमान तिनिकूं देखिकरि अतिशयपणै दावानलकी शंका मानि तीरकी भूमिविषैं दौरै दौरै फिरैं हैं ॥ ८९ ॥ सारथी कहै है—हे नाथ ! इह लवणसमुद्र अपनी लावण्यता कहिए सुंदरता ताथकी नदीरूप जे स्त्री तिनिकूं अभिसारिका करता संता तरंगनिकरि बारंबार आलिंगन करता नांही तृप्त होय है। या लोकविषैं जे रसिक पुरुष हैं ते संभोगकरि नांही तृप्त होय हैं कैसी है नदीरूप स्त्री—अतिसूक्ष्म हैं जलरूप वस्त्र जिनिकै, मानूं ए नदीरूप स्त्री अभिसारिका नायिकाही हैं। जो स्त्री नायकपै चलायकरि आवै ताहि अभिसारिका कहिए ॥ ९० ॥ या समुद्रके तीरके स्थानक,—सूक्ष्म जे जलकी छटा तिनिकरि सींचे, पवनकरि बुहारे, निरंतर उछलै हैं तरंग तिनिकरि सोहै हैं, निरंतर लतानितैं झरते पुष्प तिनिकरि सदा शोभित अति मनोहर देवतानिके रमिवेयोग्य हैं ॥ ९१ ॥ हे प्रभो ! या समुद्रके तीरके स्थानक तहां विद्याधरी मंद है गमन जिनिका सो सुंदर पद धरती कछुइक गान करती भ्रमण करै हैं। इह मंदार जातिके कल्पवृक्षनिका वन स्वर्गके वनकी शोभाकूं हंसै है ताविषैं फूलि रहे हैं सब रितुके फूल अर वनकी वीचितैं मंद मंद पवन आवै है ॥ ९२ ॥ इह जलविषैं उपज्या तिमि जातिका मच्छ जीवनिके निगलिबेकी है इच्छा जाकै सो दूरितैं शीघ्र आवै है जलचर जीवनिकूं उपद्रवका करणहारा, पर्वततैं ऊंचे जे मच्छ तिनिकूं गिलै है अर दूजा याही सारिखा मौंह फाडे यासूं युद्ध की है इच्छा जाकै सो आगैं खडा है ॥ ९३ ॥ अर हे नाथ ! इह तटके वनविषैं अजगर दीर्घ है शरीर

चलनिकूं ऐसैं कहै है—जो तुम मेरी अवज्ञाकरि मोहि अपने पायनिकरि काहेकूं हणौंहो तिहारी ऊंचाई वृथा है तुम मोसमान गंभीर नांही अर अलंघ्य नांही ॥ ७९ ॥ अर इहां इह तिमि जातिका मच्छ मुख फारि रह्या है ताविषैं इह सर्पका बच्चा बिल जानिकरि प्रवेश करै है ताहि वह अपनी आंत जानि निगलै है जैसैं कोऊ अपनी आंतकूं अनुरागकरि ग्रहै है तैसैं कृपाकरि इह मच्छ इनिकूं निगलै है ॥ ८० ॥ इह मीननिका समूह पद्मराग मणिनिकी क्रांतिकरि लाल होय रह्या जल ताहि आमिषकी बुद्धिकरि ग्रहिबेकूं दौरै है बहुरि ज्योतिरूप देखि अग्निकी बुद्धिकरि भय मानि पाछा भागै है ॥ ८१ ॥ हे देव ! देखो—इह तिमि जातिका मच्छ निश्चल हैं नेत्र जाके चंचल जे तरंग तिनिकरि सजल भई है दृष्टि जाकी अर अतिवृद्ध है सो इह मूढमति अपने रथकूं तिमिंगलकी आशंकाकरि देखै है ॥८२॥ अर हेनाथ ! इहां ए भुजंग रत्नसहित फणनिके अग्रभाग तिनिकरि फणनिकूं ऊंचेकरि आकाशकी उर निरखते ऐसे सोहै हैं मानूं समुद्रनैं तरंगरूप हाथनिकरि ए दीपकही उद्योत कीए हैं ॥ ८३ ॥ इह समुद्रका जल ज्योतिवंत है सो भुजंगनिके गमनकरि ऐसा लखिए है—मानूं महानील मणिनिका मंदिर अनेक दीपकनिकरि व्याप्त है। कैसे हैं दीपक चलायमान अति देदीप्यमान अर अंधकारके नाश करणहारे हैं, अर कैसा है समुद्रका जल—ज्योतिवंत हैं अनेक कोटि रत्न जाविषैं ॥१८४॥ पवनके योगतैं उच्च प्रकार मृदंगकीसी अतिगंभीर ध्वनि करता जो समुद्र सो ताहि ध्वनि करतैं द्वीपकै समीप निरंतर नृत्य करती क्रीडा करै हैं ते मयूरनिसहित देवकन्या ॥ ८५ ॥ बादरानिके समूह अत्यंत श्याम उच्च प्रकारैं शब्द करते विजुरीनिकरि संयुक्त वर्षाकालविषैं याके जलकूं आलिंगन करते प्रगटताके भावकूं नांही प्राप्त होंहि हैं। कैसा है याका जल—नील कहिए श्याम है अर अत्यंत गरजै है अर देदीप्यमान हैं सर्पनिके फणाविषैं रत्न जहां। भावार्थ—समुद्रका जलहू श्याम अर बादरे हू श्याम, अर समुद्रहू शब्द करैं अर बादरेहू शब्द करैं अर समुद्रमें रत्न चमकै अर बादरेनिमैं वीजरी चमकै, तातैं वर्षाकालविषैं बादरे याविषैं बरसते प्रगट नांही दीखै हैं एकरूप भासै हैं ॥ ८६ ॥

...जैसे धन बांटवे अर्थि परस्पर सोर (हल्ला) करते कलह करैं तैसैं याके पुत्रसमान मगर परस्पर शब्द करते युद्ध करै हैं सो मानूं बटही बटाया चाहैं हैं। या जगतविषैं अर्थके अर्थी घने तातैं अर्थकूं धिकार ॥ ९९ ॥ हे पृथ्वीपति ! अनादिकालतैं लेयकरि अर अनंतकालपर्यंत समुद्रके रत्ननिकरि अर जलके समूहनिकरि वियोग नांही। यद्यपि फाऱ्या है वदन जानैं ऐसी वडवानल ताकरि निरंतर जलका शोषण होहै तथापि याका जल अक्षय है। कैसे हैं याविषैं रत्न अर जलके समूह–लोकनिकूं आनंद करणहारे अर प्रमाणरहित नाना प्रकारके अर सर्पनिके मस्तकविषैं आरूढ महापवित्र संतापके हरणहारे हैं ॥ २०० ॥ हे नृपेंद्र ! बज्रकी कडाहीविषैं मानूं उकाल्या है याका उदर, सो प्रगट उपजैं हैं बुदबुदा जाविषैं, ऐसा याविषैं जल सो प्रवल पाताल रंध्रके उच्छ्वाससमान जो पवन ताके बलतैं चौगिरद उठै हैं भंवर जाविषैं सो प्रचंड वायु, वाके विस्तरि रहे अनेक रत्न, तिनिकूं हरै हैं तातैं इह अंतः-करणविषैं तप्तायमान है। सो इह बात प्रमाण है–धनका वियोग बडे पुरुषनिहूके अंतःकरणविषैं अत्यंत दाहकूं उपजावै है ॥ २०१ ॥ सारथी कहै है—हे दीर्घायु ! इह समुद्र अति अचरजकारी शोभाकूं धरे है, महामनोहर रत्ननिकूं धरे जगतके जीवनिका जीवनोपाय है गंभीर है प्रकृति जाकी अर अनालसत्त्वयोग कहिए नालरहित जीवनिकरिसहित है सो बाहुल्यताकरि मानूं तिहारी तुल्यता धरै है। एक इह अंतर है–इह जलसंग्रहकूं धरै अर तुम जडसंग्रहतै रहित। भावार्थ–तुम गुणनिधि इह जलनिधि, तुमहू अजिरज-कारी विभूतिकूं धरौ अर इहहू अद्भुत विभूतिकूं धरै। इहहू रत्नराशि तुमहू रत्नराशि। तुम जगतके जीवनो-पाय अर इहहू जीवनोपाय याके रत्ननिकरि लोक आजीविका पूर्ण करैं अर याके द्वीपनिकी अनेक वस्तुनिका व्यापार होय है। तुमहू गंभीर अर इहहू गंभीर तुमतौ आलसपनेके योगतैं रहित अर इह नालसहित जीवनितैं रहित जलचरनिके नाल नांही, नाभिनालका नाम नाल है जाहि 'औलि' कहै हैं। सब उपमा तिहारी अर याकी मिली, एक इहही भेद–इह तौ जलसंग्रह अर तुम जलसंग्रह नांही तिहारे विवेकीनिका संग्रह है ॥२॥ या

जाका सो जलतैं बडे मच्छकूं खैंचै है अर मच्छ जलतैं अजगरकूं खैंचै है सो युद्धकी इच्छाकरि परस्पर दृढ ग्रहण करै हैं तथापि ए दोऊ समानबल हैं सो दोऊनिमैं काहूकी जय नांही। दोऊ बराबरके लरैं तिनिमैं हारि जीति काहूकी न देखिबेमैं आवै ॥ १४ ॥ इह समुद्रका जल सो जलगजनिकरि अवगाह्या मृदंगके शब्दकीसी शोभाकूं धरै है जैसैं वन गजवनकूं अवगाहै तैसैं जलगज जलकूं अवगाहै हैं। वन नाम जलहूका है, कैसा है जल—प्रगट है विशेषताकरि शब्द जाविषैं, सो या समुद्रका तट दिशानिके समूहविषैं शोभाकूं विस्तारै है ॥ १५ ॥ तिमि जातिके मूए (मरे हुए) मच्छ तिनिके तिरै हैं कलेवर प्रगट सीपनिके खंडकरि युक्त, तिनिकरि संयुक्त है जल जाका स्फुरायमान, कठोर हैं शब्द जिनिके, अर इह समुद्रका जल धरै है पाताल कलशकूं अर भयानकताकूं प्राप्त है ऐसा समुद्रका जल, चालते सर्प तिनि डारी है जलविषैं कंचुकी तिनिकरि संयुक्त जे तरंगनिकी पंक्ति तिनिकरि चंचल है ॥ १६ ॥ या समुद्रविषैं या उर जलकूं कंपायमान करणहारी पवन शीतल छटानिकूं बखेरती तटके वृक्षनिके सुगंध पुष्प तिनिकी सुगंधताकूं खैंचती मंद मंद आवै है अर दूजी उर तिमि जातिके मूए (मरे हुए) मगर तिनिके कलेवरनिकूं हलावती निर्मल कलोलनिके कठोर शब्द तिनिकरि भयानक तीव्र पवन बाजै है ॥ १९७ ॥ हे देव! या समुद्रके तटकी भूमि अत्यंत सोहै है, अतिशयपणैं कल्लोलनिकरि उछले मोतिनिकरि मंडित है अर पुष्पनिके पुंज तिनिकरि उपजी शोभा तिनिकूं धरै अत्यंत सोहै है। या समुद्रके तीरकी भूमि महामनोहर स्वर्गके देव देवांगनासहित अतिहर्षकूं धरै तटके वनके तरुनिकी छाया बैठे स्वर्गलोककूं बिसरि जाय हैं ॥ ९८ ॥ हे नाथ! ए मगरादिक जलचर या समुद्रकूं रत्ननिकरि पूर्ण अर निर्विघ्न जानि अपने उदरका भरणहारा कृपण मानि याके उदरविषैं उपजे निजपुत्रसमान, मानूं बट (भाग) के बांटिबेकी इच्छाकरि पिताके आगैं ही धन बांटिबेके अर्थि परस्पर सोरकरि पिताके आगै भेलै होय बहुत क्रोधकरि आक्रोश करते युद्ध करै हैं तातैं धनकूं धिक्कार। भावार्थ—जैसैं धनवान पिताके पुत्र

जायकरि राजमंदिरके द्वार पर्यंत पहोंच्या तहां निकटवर्त्ती लोक अर खोजे अर वारांगना इत्यादि सबही आशीवचन कहते भए, तिनिकी आसिका ग्रहता संता नवनिधिका स्वामी निजनिवासविषैं प्रवेश करता भया। कैसा है निवास—पवनके योगकरि फरहरे हैं ध्वजा जहां ॥ ९ ॥ तासमैं कटकविषैं ऐसा हर्षका कलकलाट होता भया—इह देव अखंडित तन समुद्रकूं जोतिकरि आया है सो तू अक्षत सहित ल्याओ आसिका स्वामीके सन्मुख जाय शीघ्रही आसिका बंधावो ऐसा शब्द सेनाविषैं होता भया ॥ २१० ॥ ता समैं वृद्ध पुरुष ऐसे वचन कहि पवित्र आसिकानिके लेकरे समर्पण करते भए, सो पृथ्वीपति अंगीकृत करता भया। कैसे वचन वृद्ध कहते भए—हे देव ! तुम घने दिन जीवौ, नांदो, विरधौ, रिपुनिकूं जीतौ, पृथ्वीकूं पालै. दीर्घायु होहु, तिहारे मनवंछित सिद्धि होहु ऐसे वचन कहि असीस देते भए ॥ ११ ॥ तुम देवनिके जीतनहारे सकल अरिनिकूं जीतो, हे नाथ ! वसुधाकूं वसि करहु, सिद्ध भए हैं चक्रादि रत्न जिनिकूं ऐसे तुम चिरकाल जीवहु, सब चक्रीनिमैं आदि दीर्घायु तुम सदा मंगलरूप होहु। ऐसे मंगलीक शब्द वृद्धलोक वारंवार कहते भए। मंगलीक शब्दनिविषैं पुनरुक्त दोष नांही ॥ १२ ॥ इह देव अगाध, अलंघ्य, अपार ऐसा समुद्र ताहि उलंघिकरि पाई है विजय जानैं सो समुद्रके देवनिकूं जीति पाछा सेनामैं आया, पुण्यही है सारथी जाकै जाहि कोऊ अंतराय न भया। पुण्यके प्रसन्न होते प्राणीनिकूं कछु विषम नांही, सबही सुगम है ॥ १३ ॥ पुण्यके उदयतैं इह भरत चक्रधर पृथ्वीके जीतिवेकी है इच्छा जाकै सो समुद्रकूं उलंघि तत्काल मागध देवकूं जीतता भया। पुण्यके प्रबल होतैं या जगतविषैं कौन जीत्या न जाहि ? सबही जीते जांहि। कैसा है समुद्र—प्रगट हैं कल्लोल जाविषैं, पवनके योगतैं उठै हैं तरंगनिके समूह जाविषैं ऐसा समुद्रकूं लीलामात्रमैं उलंघता भया ॥ २१४ ॥ पुण्यके उदयकरि समुद्रका जल है सीमा जाकी ऐसी पृथ्वी ताहि अपने आधीन करता भया। कैसा है चक्रधर—विस्तीर्ण है लक्ष्मी जाकै सो विना उपसर्ग समुद्रकूं उलंघि देव-

भांति सारथी समुद्रकी परमशोभा नानाप्रकारके युक्त वचननिकरि वर्णन करता भया सो सुनिकरि नरेंद्र अतिप्रमोदकूं प्राप्त भया। बहुरि शीघ्रही कटकमैं पाछा आयवेकूं अभिलाप करता भया ॥ ३ ॥ अथानंतर रथके पाछे फेरिबे निमित्त सारथी यत्नतैं घोडनिकूं पाछा फेरता भया, आकर्षणके योगतैं वक्र भई है ग्रीवा जिनिकी, तुरंगनिकूं पाछे फेरणेंकी है इच्छा जाकै, मंद मंद पवन वाजै है अर लहरिनिके वेगकी उपशांतता भई है तासमैं नवनिधिका स्वामी डेरानिकूं पाछा भया ॥ ४ ॥ जलविषैं अवरुद्ध भया रथका पहिया ताहि यत्नतैं पाछा फेर्‌या अर प्रेरणके योगतैं तुरंग रोससंयुक्त भए हुते तिनिकूं शीघ्रही प्रसन्नताकरि सारथी रथकूं समुद्रविषैं उलटा फेरता भया अर समुद्रका जल पहेनिकी लार उछल्या। पृथ्वीका नाथ कार्यसिद्धिकरि पाछा चाल्या सो मानूं समुद्र पहोंचायवेकूं संगि चाल्या है ॥ ५ ॥ समुद्रके तीर ऊभे (खडे) कटकके लोग परस्पर या भांति वात करै हैं—अहो समुद्रके जलका समूह सब दिशाकूं आच्छादित करणहारा सो रथके वेगतैं भेदी गई है लहरि जाकी ऐसा इह समुद्र चक्रवर्त्तीके प्रभावतैं अल्पसर समान होय गया है, लोगनिमैं इह बात होय रही है। अर तेजवंत तुरंगनिका खींच्या रथ समुद्रके बाहरि आय प्राप्त भया ॥ ६ ॥ समुद्रकी तरंगनिकूं उलंघि इह रथ अतिसुंदर अतिदृढ रची है सर्वांग रचना जाकी, कुशल क्षेमतैं पाछा आय प्राप्त भया। चक्रका है आयुध जाकै ऐसा चक्रवर्त्ती सदा कल्याणरूप ताके प्रभावतैं कहा विघ्न होय? तुरंगनिके अंग जलनिधिके जलकरि पखाले गए अर खुर जलमैं डूबे नांही राजेंद्रका मोटा पुण्य है या भांति तटके लोक वचनालाप करते भए ॥ ७ ॥ अर गंगाके द्वारविषैं नम्रीभूत भए मणिनिके मुकुटनिपरि धरे हैं हाथ जिनि महाभक्तिवंत जय जयकार शब्द करते राजा लोक वेदीके अधोभागलग सन्मुख गए अर अधिकारी लोग द्वारकै बाहरि एक लार (एक साथ) जाय मिले, निरंतर जय जय शब्द करते भए, चक्रवर्त्ती अपने कटकके द्वार बाहरि तोरणकी भूमि आए सो सबनि देखे ॥ २०८ ॥ तहां पढैं हैं मंगलपाठ बंदीजन, अर जय जयकार शब्द होय रहे हैं सो नृपेंद्र कटककैं भीतरि

सुखसूं निवास करता भया। जलनिधिके जीतिवेकी प्रशंसा अर लोकनिके आशीर्वाद सुनता जिनेंद्रका ध्यान करता नरेंद्र तिष्ठता भया ॥ २२१ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पूर्वार्णवद्वारविजयवर्णन नाम अठाईसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २८ ॥



अथ उनतीसवां पर्व।

अथानंतर चक्रधर संपूर्ण इष्टकी साधनहारी जो जिनेंद्रदेवकी पूजा ताहिकरि दक्षिण दिशाके जीतिवेकी है इच्छाजाकै सो समुद्रके तीरतीर प्रयाण करता भया ॥ १ ॥ वाके ढोल दमामे आदि वादित्रनिकी ध्वनि गंभीर उच्चार करती संती शंख कलताल तुरही इत्यादि फूंकके बाजे तिनिकरि मिश्रित वादित्रनिकी ऐसी ध्वनि भई जो समुद्रकी गरज दबिगई ॥ २ ॥ प्रयाणकी भेरीके शब्द तिनिकरि व्याप्त होयगई दशूंदिशा सो मानूं प्रजापति दिशानिकूंही क्षोभ न उपजावता भया सत्रुनिके हृदयकूं उद्वेग उपजाया ॥ ३ ॥ इह जीतिका अभिलाषी ताकी विजय पताका पवनकी प्रेरी हालती सोहती भई मानूं उठे हैं समुद्रकी कल्लोल तिनिकूं ए जीत्या चाहै हैं तरंगनितैं स्पर्द्धा करै हैं ॥ ४ ॥ एक उर लवणोदधि अर दूजी उर खारडी उपसमुद्र तिनिकै मध्य चालता चक्रीका कटक ऐसा सोहता भया मानूं तीसरा समुद्र है ॥ ५ ॥ हस्ती रथ तुरंग पयादे ए च्यारि सेना सबही राजानिकै होय हैं अर चक्रवर्तीकै च्यारि तौ ए अर देव विद्याधर इह षडंग सेना दसूं दिशाकूं दाबती विस्तरी ॥ ६ ॥ आगें आगें चक्ररत्न अर दंडरत्न जाय हैं तिनिकरि शोध्या जो मार्ग ताविषैं कटक सुखसूं चाल्या ॥ ७ ॥ ताका चक्र, अरिनिके चक्र कहिए समूह तिनिके बलकूं करोंत समान विदारणहारा होता भया अर दंडरत्न दुष्टनिकूं ऐसा भासै है मानूं दूजा काल दंडही है ॥ ८ ॥ समुद्रके तटके समीप वेदी ताके मध्य वन ताविषैं चक्रवर्ती कटकके डेरे करावता सब दिशाकूं वश करता भया ॥ ९ ॥ समुद्रकै तट अपनी अलंघ्य जो सेना ताहि विस्तारता अपनी आज्ञारूप बेलि

निकूं निज आधीन करता भया। तातैं ऐसा जानिए है—इष्ट वस्तुकी सिद्धि करणहारा पुण्य सिवाय और साधन नांही ॥ २१५ ॥ अहो पुण्यविना और कोई पदार्थ जगतविषैं वशीकरण नांही पुण्यही वशीकरण है, देखौ इह चक्रायुध अरिनिके चक्रकूं भयंकर है तेज जाका सो अति भयानक जलचरनिके समूह जाविषै, ऐसे समुद्रकूं उलंघिकरि औरनितैं वसि न होय ऐसा मागध देव ताहि वसि करता भया, तातैं पुण्यही वशीकरण मंत्र है ॥ २१६ ॥ पुण्य जो है सो मनुष्यनिकूं स्थलकरि दिखावै है अर थलविषैं जलकी नांई शीघ्रही आताप निवारै है। इह पुण्य जल अर थलके भयविषैं शरणरूप तीजा पदार्थ है तातै भो प्राणी हो! जिनेश्वर देवनैं जो दया दान पूजादिरूप पुण्य प्ररूप्या है सो करो ॥ २१७ ॥ पुण्य जो है सो आपदाविषैं परम अलंघ्य शरण है अर पुण्य दरिद्री जीवनिकूं धनका दाता है अर सुखकी अर्थी जीवनिकूं पुण्यही सुखका कारण है, इह जिनभाषित पुण्य परमरत्न है, तातैं भो सुजन हौ ! तुम या पुण्यकूं पुष्ट करहु ॥ २१८ ॥ पुण्यका प्रथम भेद जिनेंद्रका पूजन है जिनेंद्रकी पूजातैं पुण्य प्राप्त होय है अर इह पुण्य पात्रदान अर करुणादानतैं उपजै है। मुनि आर्जिका श्रावक श्राविका अर अव्रतसम्यग्दृष्टि ए पात्र हैं तिनिकूं विनय भक्तिकरि विधिपूर्वक योग्यदान देना अर दुःखित भुखित अंध पंगु रोगी रंक दीन दरिद्री तिनिकूं दयाकरि देना सो पुण्य है अर श्रावकके अर यतीके व्रत पालना सो महापुण्य है अर उपवासादि तप तिनिके योगतैं महापुण्य होय है इनि च्यारि बातनिकरि पुण्यके अर्थिनिकूं पुण्यका उपार्जन करना ॥ २१४ ॥ या भांति चक्रवर्त्ती लोगनिके समूहकरि पुण्यकी घोषणा सुनता अर अपने पुण्यके उदयकरि उपज्या इष्ट लाभ ताहि अंगीकार करता सभागृहमैं आया। राजानिके मध्य विस्तीर्ण सिंहासन परि तिष्ठता इंद्रकी नांई सोहता भया ॥ २२० ॥ हलाए हैं तटके वनविषैं अशोकवृक्ष तिनिके पल्लवनिकूं स्पर्शता मंद मंद पवन जलकी तरंगानकू भेदता बाजे है। भावार्थ—शीतल मंद सुगंध पवन बाजे है, गंगाद्वारके समीप महासेनासहित राजानिका प्रभु

तेज जाता रह्या अर मरणसमय अंतरंगविषैं व्याकुल होय सांस लेय तैसैं राजाहु चित्तविषैं व्याकुल होय सांसभरि गए ॥ २० ॥ जो पुरुष यासूं वैराभिलाषी भया सो पहलीही बिनसि गया जैसैं पतंगा अग्निविषैं परै ताहि कुशल कहांतैं होय ? ॥ २१ ॥ जो दुष्ट राजा प्रजाके बाधक हुते तिनिके वस्तु वाहन सर्व छिनाय लीए अरिनिके चक्रविषैं प्रगट अरिपना कीया । अरिका अर्थ कहा ?—नांही है धन जिनिकैं ऐसे निर्धन करि डारे ॥ २२ ॥ अर कैयक पहली अरि हुते पीछैं सुबुद्धि उपजी तब वे राजा कुटुंबसुद्धे (कुटुंबसहित) सर्वस्व लेयकरि पायनि आए उनिकूं अतिवढाए अर अपने अधिकारी कीए ॥ २३ ॥ या चक्रवर्त्तीनैं सेनाकरि जो पृथ्वी उलंघनकरी पहली वह भूमि भयवंत हुती सो जब आप आगैं आए तब वह पृथ्वी धनकरि भरि गई, अतिसंतोषकूं प्राप्त भई निर्भय होय गई ॥ २४ ॥ जे बडे कुलके उपजे राजा हुते ते अपनी कन्या अर भेट देकरि अपनी पृथ्वीके स्वामी भए अर अधिक विभूति उपार्जी । कैसे हैं राजा अनेक हैं रानी जिनिके अर धनरूप जलके सागर हैं ॥ २५ ॥ अर जा देशविषैं प्रजा करके भारकरि पीडित हुती, राजा जहां अनीत हुता ताहि राजतैं दूरिकरि और न्यायवंत राजाकूं राज देता भया ॥ २६ ॥ जे राजा दुष्ट हुते, हिंसक हुते, आज्ञारहित गर्ववंत हुते तिनिका निग्रह कीया अर जे क्रियावान पात्र हुते महान्यायवान तिनिपरि अनुग्रह कीया प्रजाकूं कल्याणके उपजायबेकी इच्छाकरि पृथ्वीविषैं नीतिवान राजा थापे । क्षत्रियधर्मका इहही न्याय है ॥ २७ ॥ जो प्रजापति होय सो प्रजाके योगक्षेमका चिंतवनकरै, योग कहिए अलब्धका लाभ अर क्षेम कहिए लब्धकी रक्षा सो जगतकी मर्यादके अर्थि सबही राजा करै हैं अर इह राजनिका राजा, राजा अर प्रजा सबहीकी रक्षा चिंतवता भया ॥ २८ ॥ जो एक देशका राजा होय ताकै वर्णाश्रम प्रजा है अर सर्वभूमिका भूप चक्रवर्त्ती ताके सब राजाही प्रजा है ॥ २९ ॥ याकै नरेंद्रपदका साधन पुण्य है अर ताका पोषक चक्र है, साध्यके सिद्धिके कारण तौ दोय हैं अर षडंगसेना विभूतिके अर्थि है ॥ ३० ॥ या भांति मंडलीक राजानिकूं वलात्कारतैं

ताहि नृपरूपपर्वतनिके मांथे आरोप्या ॥ १० ॥ जे शत्रुजन हैं ते याके प्रयाण पहलीही चलायमान भये अर याके निकलबे पहलीही निकले अर गमन करिवे पहिलीही गमन करते भये मानूं वे शत्रु सेनाके लोकके भावकूं प्राप्त भये ॥ ११ ॥ सो चक्रवर्ती राजानिकरि बंदनीक होता भया, चक्रवर्ती बाहरि निकस्या इह सुनिकरि सब सचिंत भए अर आया इह सुनि भयभीत भए अर निपट निकट आया इह सुनि औरही अवस्था होय गई सो सबही नम्रीभूत होय पायनि आयपरे ॥ १२ ॥ जानें यासूं पराङ्मुखता करी सो जैसें महानदीका प्रवाहकरि बडा वृक्ष उपरि जाय तैसें निर्मूल होय गया ॥ १३ ॥ जो चक्रवर्ती पराक्रमका पुंज दर्पणविषैं अपनी छायाकी वक्रता न सहारिसकै सो वैरीनिकी वक्रता कैसें देखिसकै ॥ १४ ॥ सेनाके प्रयाणका शब्दही सुनिकरि कैइक विरोधी मृगकी नांई अतिदूर भागिगए ॥ १५ ॥ अर कैइक राजा भूपेंद्रके भयथकी छत्र चामरादि राज्यके चिह्न तजते भए जैसें सर्प काचुरी तजै वे राजा भुजंग समान विषके भरे हैं, भुजंगकै भोग कहिए महामोटा फण है अर राजानिकै महाभोग कहिए महाभोग सामग्री है सो राजा मंडल छोडि भागिगए जैसें सर्प गरुडका नाम सुनि मंडल कहिए गोल होय परचा था सो लांबा होय भागिजाय तैसें अनेक दुष्ट राजा भागिगए ॥१६॥ अर जैसें दुष्ट सर्पनिकूं मंत्रवादी मंत्रकी शक्तिकरि घडेमें डारै तैसें इह राजनिका इंद्र राजमंत्रके योगतैं भोगी कहिए सर्प ता समान दुष्ट राजा तिनिकूं राजमंत्रतें वशिकरि वडे दुर्ग तिनिविषैं बंदकरि डारि देता भया अर उनके स्थानक विवेकीनिकूं देता भया ॥ १७ ॥ अर जे कैइक बुद्धिवान अपने आतापके विच्छेदकूं इच्छे हैं ते और शरणां न जानि आपके चरणरूप वृक्षकी छाया अतिसुखकी देनहारी महाशीतल तहां आए ॥ १८ ॥ अर कैइक राजा वृक्षसमान अतिऊंचे महा अभिमानी तिनिकूं पत्र कहिए हाथी घोडे रथ आदि तिनितैं रहित कीए अर कांतिसूं रहित कीए जैसें वसंतऋतु वृक्षानिकूं पतझरकरि छायारहित करै ॥ १९ ॥ याकै समीप आवते जे वैरी राजा हुते ते मृतसमान होयगए जैसें जाकै मरण निकट आवै तब ताके तनकी उपमा जाती रहै तैसें राजानके तनका

देशनिके नृपनिकूं सेनापति चक्रीका अभिप्राय जणावता भया जो स्वामीका इह अभिप्राय है—कोऊ काहूकूं पीरि न सकै सब राजा प्रजा न्यायमार्ग चालैं ॥ ४१ ॥ दशार्णदेश कामरूपदेश काश्मीरदेश उशीरदेश मध्यदेश इत्यादि देशनिके भूपनिकूं सेनापति शीघ्रही वशिकरि चक्रवर्त्तीपैं ल्याया ॥ ४२ ॥ राजा पूर्व दिशाके कलिंगदेशके अर अंगदेशके हाथी पर्वतसमान ऊंचे झरे हैं मद जिनिकै ते भेट करते भए ॥४३॥ दिग्गजनिकी स्पर्द्धा करै ऐसे हाथी नागवनके अधिपति भेट करते भए दशार्णदेशके वनविषैं उपजे गजराज अर चेदी देशके अर कसेरुदेशके हस्ती भेट करते भए ॥ ४४ ॥ मानूं इह वसुंधरा गार्भिणी स्त्रीकी नांई असंख्यात रत्न उत्पन्न करती भई, धराके धनीके कटकका भार अति दुःसह मानूं धरा सहि न सकी ॥ ४५ ॥ हिमाचलके तटतैं लेय वैतारपर्वतपर्यंत अर गोरथनामा गिरिलग याके विजयकुंजर विचरते भए ॥४६॥ बंगदेश अंगदेश पुंड्रदेश मगधदेश मालवदेश काशीदेश कोशलदेश इत्यादि अनेक देशनिविषैं सेनाके लोक जीतिके साधनकरि भ्रमते भए ॥ ४७ ॥ चक्रीकी आज्ञातैं सेनापति कालिंददेश अर कालकीटदेश अर किरातदेश मल्लदेश तहां गमन करता भया ॥ ४८ ॥ अर नदी सुमागधी अर गंगा गोमती कपीवती रेवसी इत्यादि नदीनिकूं तिरिकरि चक्रीके सेनाके गज भ्रमते भए ॥ ४९ ॥ बहुरि गंभीरा अतिगंभीरा यमुना कौशिकी कालमही ताम्रा अरुणा निधुरा इत्यादि अनेक नदीनिकूं उलंघिकरि जाके गज गाजते भए ॥ ५० ॥ ताकी सेनाके मतंगज पूर्वदिशाके वननिके उपजे लौहित्यसमुद्रनामा सरवर अर कंबुकनामा महासरोवर तहां विचरते भए ॥ ५१ ॥ शोणनामा नदकी दक्षिणदिशाविषैं अर नर्मदासूं उत्तरदिशाविषैं अर बीजा नदीके दोऊ तरफ अर मेखलानदीके चौगिरद जाकै तुरंग विचरते भए ॥५२॥ अपने खुरनिकरि धूलि ताकरि आच्छादित करी हैं सब दिशा ऐसे तेजस्वी तुरंग चक्रवर्त्तीकी सेनाके मंडन स्फुरायमान हैं नाक जिनिके, जीतिके कारण विचरते भए ॥ ५३ ॥ याके हाथी अनेक नदीनिका जल पीवते भए, नदीनिके नाम;—उदंबरी पनसा तमसा प्रमृशा शुक्तिमती यमुना ॥ ५४ ॥

चक्रवर्त्ती नवावता भया, तिनिका मानही नवाया अर और कछु बाधा न करी जैसैं जे सेवामें आये तिनिसूं अधिक स्नेह कीया ॥ ३१ ॥ प्रयाण प्रयाण प्रति आयकरि याहि अनेक राजा प्रणाम करते भए अर याकी आज्ञा अपनें सिरपरि प्राणरक्षासमान धरते भए ॥ ३२ ॥ सो पृथ्वीका प्रभु नम्रीभूत भए जे राजा तिनिकूं अधिक फलकरि संयुक्त करता भया, कल्पवृक्षकी सेवा कहा फलरहित होय ? कि अल्पफल होय ? वह सेवा महाफलही दे ॥ ३३ ॥ जे नृप पांयनि आए तिनिकूं नृपेंद्र स्नेहकी दृष्टिकरि अर मंद हास्यकरि तथा हास्यकरि अर विश्वासकूं उपजावै ऐसे वचननिकरि तृप्त करता भया, राजानिका इंद्र तिनि राजानिका यथायोग्य सन्मान करि अपने करता भया ॥ ३४ ॥ मुलकनि अर मिष्टवचन अर विश्वास हास्य हर्ष अपनी सुदृष्टिकरि नृपनिविषैं अनुराग विस्तारता भया ॥ ३५ ॥ नम्रीभूतनिकूं तृप्त करता भया अर प्रजाके विरोधीनिकूं आताप उपजावता भया पृथ्वीके जीतिबेकूं राजानिके ए ही दोय उचित गुण हैं, एक शम कहिए शांतता दूजा प्रताप कहिए महातेज ॥ ३६ ॥ मानूं ए राजा नटकासा चरित्र करै है जे नम्रीभूत हैं तिनिविषैं प्रीतिकी दृष्टिकरि अनुग्रह करै अर जे रिपु हैं तिनिविषैं भौंह टेढी करि कोप करै जैसैं नट अनेक चेष्टा करै तैसैं राजाहू अनेक चेष्टा करै ॥ ३७ ॥ अंगदेशके राजा आय मिले नम्रीभूत भए नानाप्रकारकी भेट करी तिनिकूं आप रत्नादिक आभूषणादि दानकरि तृप्त करता भया अर वंगदेशके राजा अनेक वस्तु भेट करते भए तिनिकूं उत्तुंग मतंगज मय करता भया अर कलिंग देशके राजा कन्या आदि अनेक सामग्री समीप लाये तिनिकूं मणि माणिक मोती अर हस्ती आदि देता भया ॥ ३८ ॥ मगध देशके राजा चक्रवर्त्तीके मागध कहिए भाट चारण समान कीर्त्तिके कथनहारे भए चक्रेश्वरके अनेक गुण राजा गावते भए, कृपाकी है अभिलाषा जिनिके ॥३९॥ कुरुदेश अवंतीदेश पांचाल काशी कौशल विदर्भ इत्यादि देशानिके अधिपति तिनिकूं सेनापति प्रभुकै निकट ल्याया, आप उनकूं अपने सेवक कीए॥ ४० ॥ सेनापति अगाऊ गमनकरि मंद्रदेश कच्छदेश चेदीदेश वत्सदेश सुह्मदेश पुंड्रदेश औंड्रदेश गौडदेश इत्यादि

ताहि उलंघिकरि असुरधूपनपर्वतके समीप डेरे भए अर मदेभ अनंगरयिक इत्यादि गिरिनिकूं उलंघिकरि याकी सेनाके गज निःकटक भ्रमते भए अर याकी सेनाके लोक अपने गजनिकरि वनके गजनिका ग्रहण करते भए ॥ ७०-७१ ॥ जे नदी अगाधजल तिरिबेकूं अगम्य हुती ते अल्पजल होय गई, कटकके लोग नदीका जल सोसिगए अर जे पर्वतविषैं काहुतैं जिनिपरि कोऊ चढि न सकै सो विदारे गए तट जिनिके ऐसे होय गए जिनिपरि सुखसूं चढैं ॥ ७२ ॥ जे बडे बडे देशनिके उपजे बडे राजा फलके निमित्त स्वामीकी सेवा करते भए सो चक्रेश्वरनैं महाफलकूं प्राप्त कीए ॥ ७३ ॥ जे बडे राजा समुद्रके तटके अर खारडी सागरके द्वीपनिके तिनिकूं महाबली पृथ्वीपति अपने बलतैं वशिकरि सेवा करावता भया अर वनके गजनिकूं वशिकरि पोखता भया ॥ ७४ ॥ राजानितैं मनवांछित नानाप्रकारके रत्न लीए वे आज्ञासैं आए तब भरतेश्वर प्रसन्न होय तिनिकूं तहां स्थापता भया ॥ ७५ ॥ ऊंचे गिरिनिके गढ अर नीचे पृथ्वीके गढ वे सब वशि कीए बलकरि बेढे सब सिद्ध भए। बडेनिकूं कहा असाध्य? ॥ ७६ ॥ या भांति वह पृथ्वीपति पूर्वदिशासंबंधी सर्व राजानिकूं जीतिकरि दक्षिणदिशाके राजानिके जीतिबेकी है इच्छा जाके सो दक्षिणदिशाकूं प्रयाण करता भया ॥ ७७ ॥ जहां जहां भूपेश्वरका कटक गया तहां तहांके देशपति नम्रीभूत हैं मुकुट जिनिके सो पहलेही आय नम्रीभूत भए ॥ ७८ ॥ त्रिकलिंग देशके राजा अर औद्र देशके राजा कच्छ देशके राजा अर अंध्र देशके राजा तथा प्रातर केरल चेर पुनाट इत्यादि अनेक नृपनिकूं जीतता भया ॥ ७९ ॥ अर कूटस्थ औलिक माहिष कमेकुर पांड्य अनंतरपांड्य इत्यादि अनेक देशनिके नरपति तिनिकूं दंडरत्नकरि वशि करता भया ॥ ८० ॥ इनि राजानिकूं जीतिकरि शीघ्रही अपने पायनि लगाए अर उनके देशविषैं रत्नादिक जो जो सार वस्तु हुती सो तिनि प्रभुकी भेट करी, राजानिका प्रभु राजानिकी भेट लेकरि परमहर्षकूं प्राप्त भया ॥ ८१ ॥ सेनापति प्रभुकी आज्ञा सिरपरि धरता अनेक देशनिविषैं जा देशपतिनिकूं वशिकरि

अर चेदीपर्वतकूं उलंघिकरि चेदीदेश जीत्या, या छत्रपतिके तुरंगम पंपानामा सरोवर ताहि उलंघते भए ॥५५॥ अर ऊरूनामा पर्वत ताहि उलंघिकरि याके गजराज कोलाहलनामा पर्वतकूं प्राप्त भए अर गांगमाल्यनामा गिरि तहां पहौंचे, कैसा है इह राजेंद्र—सवनिका जीतनहारा आप काहूपै जीत्या न जाय ॥ ५६ ॥ नागप्रियनामा पर्वत ताहि उलंघिकरि याकी सेनाके गज चेदीदेश अर कसेरुदेशके उर जे अनेक देश अनेक वन अनेक पर्वत तिनिकूं घरकी देहलीसमान उलंघते भए ॥५७॥ अर छत्रवती नदी, वनके गज तिनिके दांतनिके प्रहारकरि विदारे गए हैं तट जाके ताहि उलंघिकरि याकी सेनाके सुभट तुरंगनिकरि चित्रावती नदीका जल पीवते भए ॥ ५८ ॥ अर याके हस्ती मालवतीनामा नदी ताके तीरके वन वनगजनिकरि व्याकुल तिनिकूं उलंघिकरि यमुनाका जल पीयकरि अनेक देश जीतते भए ॥ ५९ ॥ याका कटक वेणुमतीनामा नदी ताके तीर जायकरि वच्छदेशकी भूमिकूं उलंघिकरि दशार्णदेशकूं उलंघता भया ॥ ६० ॥ बहुरि विशाला नालिका सिंधुपारा निकुंदरी वहुवज्रा रम्या सिकेतिनी इत्यादि नदी ॥ ६१ ॥ अर कुहा समतोया कंजा कपीवती निर्विंध्या जंबूमती इत्यादि महानदी ॥ ६२ ॥ अर वसुमती अंबुधिगामिनी शर्करावती क्षिप्रा कृतमाला परिंजा पनसा ॥ ६३ ॥ अवंतिकामा हस्तिपानी कागधुनी व्याघ्री चर्मवती इत्यादि अनेक नदी ॥ ६४ ॥ बहुरि शतभागा नंदा करभवेगिनी चुल्लितापी रेवा सप्तपारा कौशिकी ॥ ६५ ॥ इत्यादि वडी नदी अगाध है जल जिनिमैं तिनिकूं वेढिकरि चक्रीका कटक अश्वनिके खुरनिकरि खोदे हैं तट जिनिके सो विस्ताररूपिणी करता भया ॥ ६६ ॥ तैरश्चिकनामा पर्वत ताहि उलंघिकरि वैडूर्यपर्वत जाय भूपेंद्रके सुभट कूटाचलकूं उलंघिकरि पारियातक पर्वतकूं प्राप्त भए ॥ ६७ ॥ जायकरि पुष्पगिरिके तट उलंघि सितागिरिहू उलंघ्या अर गदागिरिके वननिमैं नरेंद्रका बल निवास करता भया ॥ ६८ ॥ वानप्रस्थनामा पर्वत रीछनिकरि संयुक्त है गुफा जाकी तहां सेनाके लोक पहुंचते भए अर कमलाचलके तटहू उलंघे ॥ ६९ ॥ अर वासवंतनामा महापर्वत

जिनिके अर खंडे हैं वैरीनिके मंडल जिनि अर बाहुल्यताकरि हाथिनिसूं है प्रेम जिनिके अर धनुषधारी अर बरछीका है बहुत साधन जिनिके ॥ ९५ ॥ देखी है लोकनिकी अनेक सामर्थ्यता जिनिकी इत्यादि औरहू अनेक राजा जिन जिन सिर ऊंचाया तिनिकूं सेनापति जीतिकी सेनाकरि जीति बाशि करता भया ॥ ९६ ॥ तब बडे बडे प्रबल प्रचंड राजा सेनापतिकूं आगैं करि भयवंत भए, चक्रीपै आय दूरिहीतैं प्रणाम करते भए, कैसा है चक्री अंगीकृत करी है महा संपदा जानैं ॥ ९७॥ दक्षिणदिशाकी भूमि नवीन वधू समान तासूं कर ग्रहणकरि अपने आधीन करता भया अर बलात्कारतैं दक्षिण दिशाकी जो जो सारभूत वस्तु हुती सो ग्रही, दाक्षिणके सब राजानिकूं वशिकरि राजानिका प्रभु दक्षिणदिशाकै समुद्र आया ॥ ९८ ॥ तहां चंदनकी लता अर इलायची लवंग तिनिकी लतानिकरि मंडित जे समुद्रके तटके वन तिनिकूं देखता दिशापति अत्यंत हर्षकूं प्राप्त भया॥ ९९ ॥ सो तीरके वननिका वायु महासौम्य इलायचीनिकी सुगंधताकूं लीए मंद मंद कपाया है सरोवरनिका जल जानैं सो सन्मुख आई मानूं चक्रवर्तीकी सेवाहीकूं आई है ॥१००॥ पवनकरि हालती जे शाखा तिनिके अग्रभाग तिनिकरि विखरी है पुष्पनिकी पंक्ति सो मानूं वे वननिके स्थानक पृथ्वीनाथकूं पुष्पांजली देयकरि अति आदरसूं बुलावैंही है ॥ १०१ ॥ अर पवनकरि हालते जे शाखाके अग्रभाग ते हालै हैं सो मानूं सेनाके लोकनिकूं झाला देय बुलावै हैं अर भंवर गुंजार करै हैं तिनिके शब्दनिकरि मानूं हेला देय बुलावै हैं ॥ २ ॥ अथानंतर तिनि वननिके विस्तारविषैं धराका धनी वैजयंतनामा महाद्वारके निकट समुद्रके तट सेनाका निवास करावता भया ॥ ३ ॥ जैसा वन तैसाही चक्रवर्तीका कटक सो समानसूं समान मिले। कैसा है वन–सत् समीचीन हैं नागवृक्ष जहां अर कैसा है कटक–अतिसमीचीन है नाग कहिए हस्ती जहां अर वनमैं तौ पुंनाग केसर है अर कटकमैं पुरुष श्रेष्ठ है अर वन तौ सुमन कहिए पुष्पनिकरि शोभित है अर कटक सुमन कहिए सज्जन तिनिकरि शोभित है अथवा देवनिकरि शोभित है अर वन तौ बहुपत्ररथ कहिए बहुत पंछीनिकरि मनोहर है अर कटक अनेक

पृथ्वीपतिके पायनि ल्याया, पहाड नदी देश वन कलिंगदेश संबंधी सब बशि कीए ॥ ८२ ॥ सो सेनापति सेनासहित तैलानामा महानदी अर इक्षुमती नक्रवा वंगा श्वसना इत्यादि महानदी ॥ ८३ ॥ अर वैतरणी माषवती महेंद्रका इत्यादि नदीनिकूं सेनासहित सेनापति उलंघिकरि शुष्कनदी गया ॥ ८४ ॥ अर सप्तगोदावर द्रह ताहि तिरिकरि गोदावरी नदीकूं देखता पवित्र है मन जाका सो मानससरोवरकूं पायकरि हर्षकूं प्राप्त भया ॥ ८५ ॥ सुप्रयोगानामा नदी अर कृष्णवर्णा सन्नीरा प्रवणी इत्यादि नदीनिकूं सेनासहित सेनाधिप उलंघता भया ॥ ८६ ॥ कुब्जा धैर्या चूर्णा वेणा सूकरिका अवर्णा इत्यादि नदीनिकूं देखता दक्षिण दिशाके देशपतीनिकूं चक्रपतिकी आज्ञा सुनावता भया जो प्रभुकी इही आज्ञा है तुम आज्ञाकारी होयकरि प्रजाकी रक्षा करहु जो प्रजाका विरोधी होयगा सो पृथ्वीपतिका विरोधी है ॥ ८७ ॥ बहुरि माहेंद्राचलकूं उलंघिकरि विंध्याचलकी तलहटी जीति नागपर्वत डेराकरि मलयाचल पर्वत गया ॥ ८८ ॥ गोशीर्षनामा गिरि अर दर्दुर अर पांड्यगिरि तथा कवाटक शीतगुह तहां आया अर श्रीकटननामा पर्वत गया ॥८९॥ बहुरि श्रीपर्वत किष्किंध तिनिकूं जीतिके साधनकरि जीतता सेनापति तिनि स्थानकनिके उचित लाभकरि वृद्धिकूं प्राप्त भया ॥ ९० ॥ बहुरि कर्णाटक देशके राजा प्रगट है गर्व जिनिमें अर महाविकट विकराल भेषके धरणहारे हरिद्रा अर तांबूल है प्रिय जिनिकूं आंखिनिमें अंजन धरे यशही है धन जिनिके तिनिकूं आज्ञाकारी कीए ॥ ९१ ॥ अर अंध्रदेशके राजा शस्त्रके प्रहारविषै प्रबल कपटी कदर्य कृपण अंगहू जिनिके पाषाणसमान कठिन अर हृदयहू जिनिके पाषाणसमान कठोर ॥ ९२ ॥ कलिंग देशके राजा जिनिकी बहुत सेना अर कलाही है धन जिनिकै अर वाहुल्यताकरि ऐसेही औद्रदेशके राजा महाजड अर युद्ध है प्रिय जिनिकूं ॥ ९३ ॥ अर द्रविड देशके राजा कठोर हैं वचन जिनिके अर कला गोष्ठीविषै प्रवीण अर बाहुल्यताकरि असत्य है प्रिय जिनिकूं अर वक्र है चेष्टा जिनिकी अर केरल देशके राजा सरल हैं वचन जिनिके अर कलागोष्ठीविषैं प्रवीण ॥ ९४ ॥ अर पांड्यदेशके राजा प्रचंड हैं भुजदंड

सोहता भया मानूं अश्वनिके ऊपरि सुगंधपटका मंडपही ताण्या है ॥ १४ ॥ बडे बडे तुरंग रजकरि युक्त रजस्वलासमान जो पृथ्वी ताहि स्पर्शिकरि ग्लानि धरते शीघ्रही उठे सो उठिकरि शीघ्रही सरोवरनिके जलविषैं प्रवेश करते भए इह बात उचितही है जो रजस्वलाका स्पर्श होय तौ स्नान करना योग्य है ॥१५॥ जलके कमलनिकी केसर ताकरि व्याप्त भए घोडानिके अंग सो मानूं आगैं अंगकैं रंग लाग्या हुता सो जलमैं धोय बहुरि कमलनिकी रजकरि अपना अंग रंगरूप करै हैं ॥ १६ ॥ सरोवरकूं अवगाहिकरि निवार्‍या है खेद जिनि ऐसे अश्व आंखिनिकूं मुद्रित करते विस्तरे जे पटमंडप तहां निवास करते भए ॥ १७ ॥ अर नालेरनिके बडे वृक्ष तिनिके उत्तुंग शरीरके धरणहारे गज बांधे सो इह सत्य है—बडेनिहीसूं बडे टिकैं, तालीवनविषैं भूपेंद्रनिके हाथिनिके समूह नालेरनिके वृक्षनिसूं बांधे ॥१८॥ तहां गिरते भए नालेरनिके फल तिनिकरि विषम होय गई वन भूमि सो हाथी अपनी सूंडिनिकरि तिनिकूं बगाय (फैंक कर) अपना स्थान समतल करते भए ॥१९॥ अर हाथी तीव्र तृषाकरि तृषित हुते सो जल पीयकरि सूंडिसूं जलके छांटे बखेरते भए अर महावतनि हाथिनिकूं जलकै अर्थि सरोवरानिमैं ले गए ॥ २० ॥ मंद मंद गमनकरि प्रगट भया है मार्गका खेद जिनिकै ऐसे गज तिनिकूं महावत सरोवरविषैं अवगाहनकै अर्थि लेगए ॥ २१ ॥ सो सरोवरमैं पैठाए तहां कमलिनी पत्रनिकरि आच्छादित जो जल ताविषैं गजराज अवगाहन न करते भए, यद्यपि हस्तिपाल हस्तीनिकूं बहुत प्रेरे तथापि हस्ती गजबंधनकी शंकाकरि जलमैं न प्रवेश करते भए ॥ २२ ॥ अर यद्यपि वे हाथी बहुत दिनसूं वनतैं पकरे हुते तथापि वनकूं देखिकरि वनके अभिलाषी भए, कैसा है वन—स्वइच्छामात्र आहारकूं योग्य जे पल्लव ते हैं अतिविस्तीर्ण जहां ॥ २३ ॥ ते गजराज इच्छाकरि जलभी न पीवते भये अर चारा भी न चरते भए केवल वनके सुख तिनिके संभोगकूं चितारते भए ! भावार्थ—पराधीनतातैं स्वाधीनता श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ ऊंची करी है सूंडि जिनि अर देदीप्यमान सुवर्णकी हैं सांकल जिनिकै सो मानूं ए गज सर्पसहित नीलाचलही हैं अथवा विजुरी सहित श्याम घटाही है ॥१२५॥

रथ आदि वाहन तिनिकरि मंडित हैं ॥ ४॥ वनविषैं वृक्ष शीतल छायाकरि संयुक्त हैं, फलसहित हैं, ऊंचे
हैं अर बहुत पत्रनिका है संचार जहां सो ऐसे वृक्ष तापके हर्त्ता तिनिकूं प्रीतिकरि कटकके लोक सेवते
भए। मानूं वे वृक्ष बडे राजाही हैं । राजाहू छायाकारी, फलदाता, ऊंचे अर अनेक वाहनका हैं समूह
जहां अर आतापके हर्त्ता हैं ॥ ५ ॥ अर जे वृक्ष सघन छायाकरि संयुक्त हुते परंतु तिनिके फल नांहीं
सो तिनिकूं तजिकरि लोक फलसंयुक्त वृक्षनिका आश्रय करते भए। यद्यपि तिनि वृक्षनिके छाया अल्प
हुती तथापि फलदाता जानि लोक आश्रय करते भए, सो इह उचितही है जो फलदाता होय सो सब-
निकूं प्रिय है ॥ ६ ॥ अर कटकके लोक विद्यमान बहुमान बहुत छायाकूं तजिकरि होनहार ढरती जो
छाया यद्यपि अल्प है तथापि अंगीकार करते भए, काहेतैं ? जो ढलती छाया पल पलमें अधिक अर इह
विद्यमान छाया विस्तीर्ण है परंतु छिन छिन घटती ॥ ७ ॥ वनस्थलीके वृक्षनिकी छायाकरि रोकी है
सूर्यकी क्रांति सो सरोवरनिके तीर स्त्रीसहित सेनाके लोक तिष्ठते भए ॥ ८ ॥ वे वनके वृक्ष रानीनिसूं
बांध्या है प्रेम जिनि असे राजा तिनिकरि आश्रय थके प्रगट कल्पवृक्षनिकी शोभाकूं धारते भए, मानूं ए
वृक्ष तौ कल्पवृक्ष हैं अर राजा रानी भोगभूमियानिके युगल हैं ॥ ९ ॥ बेलिनिके तले बैठे हैं सेनाके
लोक तिनिकूं मर्कट कपि कछू जातिके फलनिकूं तोरि तोरि सेनाके लोकनिकूं आकुल करते भए, फल-
निके प्रहारकरि कपिनि मनुष्यनिकूं व्याकुल कीए ॥११०॥ अर सरोवरनिके आसि पासि नृपेंद्रके तुरंग-
निकी अश्वशाला रची तहां तुरंगनिके निकट महासुंदर कोमल तृणनिके अंकुर घोडानिके आगैं डारते
भए ॥ ११ ॥ ता वनमें सर्व ठौर घास पानी बहुत है, उतारे हैं घोडनिके पलाण अर जोट आदि आभू-
षण अर तुरंग सुखसूं बंधे वाचाल हैं मुख अर नाक जिनिके, ते तुरंग पृथ्वीकूं सूंघते भए लोटिबेकी है
इच्छा जिनिकै ॥ १२ ॥ सरोवरनिके समीप स्थल कमलनिके मकरंदकरि अति सुगंध तहां घोडे लौटते
थके अंगनिकूं कंपावते भए ॥ ११३ ॥ अर आकाशविषैं पवनका प्रेर्‍या मकरंदका समूह उठ्या सो ऐसा

करि शीघ्रही तंतुकी शंकाकरि सरोवरकै बाहरि बगावता भया ॥ ३७ ॥ सूंडिकरि हाथी कमलनिकूं उखारि सूंडिमैं धरते भए मानूं देवका स्मरणकरि कमल उठाय अर्घही देहैं ॥ ३८ ॥ सरोवरके तरंगनि करि धोए हैं अंग जिनिके अैसे उत्तुंग मतंगज सघन कमलनिकी रेणु अंगविषैं लागी ताकरि अैसे सोहते भए मानूं सिंगारे हैं ॥ ३९ ॥ सरोवरविषैं पंखी हुते सो हाथीनिकरि रोक्या जो सरोवरका जल ताहि तजिकरि तीरां गए; सो इह युक्तही है—सबल आवै जब निबल भागि जाय ॥ ४० ॥ सरोवरके अवगाहनकरि शुद्ध भई है मूर्त्ति जिनिकी अैसे मतंगज बहुरि सिरपरि धूरि डारि आपकूं मलिन करते भए ॥ ४१ ॥ मानूं गज सिरपरि रज डारै हैं सो प्रगट अैसा दिखावै हैं जो हम हाथी हैं अर हमारा नाम शास्त्रमैं मातंग है अर मातंगनाम चांडालहूका है, सो एक तौ हम मातंग बहुरि मदकरि युक्त सो दोय दोष भए, हमारै उज्ज्वलता कहांकी ? ॥ ४२ ॥ या भांति सरविषैं चिरकाल विहारकरि नानाप्रकारकी संताप अभ्यंतरविषैं उपजी हुती ताहि जलसूं शांतकरि तीरके वृक्षनितैं आए सो अैसे हर्षित आए जो गजपालनिके बांधे सो बंधनका खेद न वेदते भए (जाना) ॥ ४३ ॥ हाथिनि ज्यूं सरवरका जल सोख्या त्यूं मदके जलकरि बढाया सो इनि गजनि सरवरका प्रत्युपकार कीया तातैं तृप्त होय हर्षित भए बहुरि हठतैं सरवरकै बाहरि आए, कैसे हैं वे हाथी—सरवरकी लहररूप हाथ तिनिकरि उपजी अपने अवरोधकी आशंका ताकरि युक्त हैं ॥ ४४ ॥ हस्तिपाल मदरूप स्याहीकरि मलिन जे गजेंद्र तिनिकूं उज्ज्वल करिबेकूं जलका भर्या सरोवर तहां अवगाह करायबेकूं न समर्थ भए, वे गज सरके तीरही जलपान करिबेकूं खडे हैं सो हस्तिपाल हस्तीनिकूं कोमलवचनकरि घनेही प्रसन्न करै परंतु वे सरमैं न धसैं ॥ १४५ ॥ गजनि अपनी इच्छाकरि न पीया नवीन जल अर तीरके वृक्षनितले ग्रास न ग्रहे, वृक्षनिके छायाविषैं विश्राम न कीया जे मत्त मतंगज हैं तिनिकूं कछु सुधि नांही, सो इह बात सत्य है—जे मदोन्नत हैं तिनिके आत्महित नांही ॥ ४६ ॥ अर देखो—यद्यपि इनि हाथिनिनैं कछु अपराध न कीया मार्गमैं बहुत बोझ लेकरि

वनके हाथी तिनिके मदकी गंधकूं खैंचती पवन आई ताकरि कटकके हाथी कोपकूं प्राप्त भए सो हस्तिपाल अतिकष्टतैं जलकै निकट लेगए ॥ २६ ॥ अकस्मात् कोपित भया हाथी सिरकूं तिरछा घुणता भया, आंकुसके वश नांही सो गजपालककूं अति खेद उपजावता भया अर वनके हाथिनिके अवगाहकरि जल सरोवरनिका गंधसहित भया हुता सो सरोवरीमें कटकके गज प्रवेश न करते भए जैसैं माता हाथी हथिनीका स्पर्श न करै ॥ २७ ॥ पहिली पीया हुता हाथिनिनैं सरोवरीनिका जल सो तिनिके मदकरि वासना रूप हुता ताहि कटकके गज सूंडिसूं सूंघि पगनिसूं तिरस्कार करते भए जैसैं भला पुरुष पराया उच्छिष्ट जल न पीवै ॥ २८ ॥ सरोवरीनिका जल कटकके गजनि पीया अर अपनी मदधाराकरि सरोवरके जलकी वृद्धि करते भए जैसैं बडा पुरुष जाका कछु लेय ताहि बहुत दे ॥ २९ ॥ दान देना परम उपकार करना तौ योग्य है परंतु जे ऊंचे पुरुष हैं ते दान देय उपकारकरि पाछी बातैं वांछा न राखै, इह न चाहैं–जो हमारा एहू कछुकरै, ज्यौं हम दीया है त्यौं इनिहूतैं कछु आवै ऐसी चाहि अल्प पुरुषनिकै होय है महंतनिकै नांही ॥ ३० ॥ जब माता हाथी सूंडि ऊंचीकरि सरोवरनिकै मध्य गमन करता भया तब गुंजार करते भंवर हुते ते गजकूं तजि गगनमें उडिगए ॥ ३१ ॥ मेघकी स्पर्द्धाकरै ऐसा गाजता मतंगज सो कपोलनिकी खाजि प्रचंड कुरलानिके जलकरि निवारता भया ॥ ३२ ॥ सूंडिकूं ऊंची करि गजनि फुंकारनिकरि जलके छांटे बखेरे सो जल आकाशकूं उछलता फटिकके दंडकी शोभाकूं धारता भया ॥ ३३ ॥ जलके अवगाहनकरि दूरि कीया है खेद जिनि ऐसे कैइक माते हाथी लीलाकरि मृणालनिके खंडका ग्रासकरि तृप्तिकूं धारते भए ॥ ३४ ॥ अग्रभागविषैं अर्पण कीए मृणाल तिनिकरि गज सोहते भए मानूं निरंतर जलके सींचिबेकरि दांतनि अंकूरे काढे हैं ॥ १३५ ॥ अर कोइक गज उन्मत्त हूवा थका अपनी सूंडिमें धार्‍या मृणाल कहिए कमलनाल सो हस्तिपालकूं गजबंधनकी बुद्धिकरि दूणां करि देता भया ॥ ३६ ॥ अर कैइक भयकूं प्राप्त भया गज सो चरणनिविषैं लाग्या मृणाल ताहि आकर्षण

॥ ५४ ॥ ते हथनी जल पीयकरि दूरि किया है अंतरंगका ताप अर सरोवरमैं अवगाहकरि वारला तापहू दूरि कीया है, अपने छावानिसहित जल पीयकरि वनविषैं वृक्षनिके चरिवेकूं विचरी ॥ ५५ ॥ पुष्प अर पल्लवसहित बेलिनिके अग्रभाग अर गुलमनिके समूह अर रसके भरे कटंकवृक्ष अर स्वादसहित कोमल वृक्षनिके डारे हथनीनिके समूह चरते भए ॥ ५६ ॥ अर छावनिके समूह वनविषैं तृणनिके अंकुर खूंदते दांतनिकरि गिरिनिके तट विदारे, वेलिनिके अग्रभाग चरिवेविषैं समर्थ, फलनिकूं ग्रहते महाचंचल हाथिनिके छावे विचरते भए ॥ ५७ ॥ नवीन पल्लवसहित शाखा तिनिकूं चरती गहनवनविषैं अनेक हथनी तिष्ठती भई, संभोगयोग्य सरवरकै समीप सालहिके वन तहां सुखसूं विचरती भई, हस्तिपालनिकरि कीया है कोमल वचननिकरि गुणवर्णन जिनिका ॥ ५८ ॥ यथेष्ट वृक्षनिका भोगकरि रसास्वाद लेती स्वतंत्र विचरती हस्तिपालनि निवारी, बांधिवेयोग्य जे बडे छावा तिनिसहित हथनीनिके वर्ग अपने उचित गण आय प्राप्त भए ॥ ५९ ॥ अर घोडे चिमके सो अपथमैं रथकूं लेगए, रथभग्न होय गया, रथकै अंग न्यारे न्यारे होय गये अर जिनिपरि चढी है वारांगना ऐसी खचरी मार्ग छोडि भागी भागी फिरे हैं ॥ ६० ॥ अर ऊंटके देखिवेतैं चिमक्या हाथी सो अत्यंत दौडता कायरपना प्रगट करै है अर चिमक्या खच्चर तातैं गिरिपरी स्त्री अर ढीले होय गए तन अर जंघाके वस्त्र जिनिके ॥ ६१ ॥ या भांति परस्पर वात करते कटकके नान्हे लोग अर क्षोभके प्राप्त भए कटकके ऊंट बलध अर खच्चर तिनिके शब्द अर लोकनिके परस्पर बुलावनेके सेनाके लोकनिके ऊंचे शब्द तिनिकरि क्षणेक क्षोभ होता भया राजाकी सेनामैं ॥६२॥ राजानिके समूहसहित चक्रधर तुरंगनिकरि डेरा आए, घूर्ण विभवके योगतैं लोकपालनिकूं जीतता सब दिशानिमैं लोकनिकी असीस सुनता वंदीजननिके जसशब्द सुनता नवनिधिका स्वामी अपने निवासविषैं प्रवेश करता भया ॥६३॥ अथानंतर कमलनिकी सुगंध लेयकरि हलाई हैं तटके वनकी कुंजगली जानै ऐसी पवन सो मंद मंद आवती भई समस्त खेद लोकनिका दूरि करती भई, मानूं नरपतिकी सेवाकूं

शीघ्र चले आए अर युद्धविषैं कछु अपराध न किया अर भारके खैंचणहारे तथापि निश्चल बांधे तातैं धिक्कार होहु या चपलताकूं, ये हाथी चपल हुते तातैं बांधे ॥१४७॥ वे गज महावतनिकूं मानूं ऐसा कहै हैं—रे हमकूं तुम बिना अपराध क्यूं बांधौ हौ, तुम इह जानियो—याका फल तुमकूं शीघ्रही होयगा। प्रथम तौ तुम हमकूं अंकुशनिकरि मारे अर अब बांधौ हौ सो मस्तक हलाय हाथी हस्तिपालनिसूं वैर विचारते भए ॥ ४८ ॥ जो जीवनिका मारणहारा दुष्ट हाथी हुता सो वाका गात्र अगिला अर पछिला सब बांध्या सूंडिसूं ले पूछतक बांध्या, या भांति और अहिंसक हाथी गाढे न बांधे तातैं इह निश्चय भया जे हिंसक जीव हैं ते कर्मनिकरि अत्यंत बंधै हैं सो मानूं वे दुष्ट गज पापी जीवनिकूं प्रगट कहै हैं—हो हिंसको! हम हिंसक हुते सो गाढे बंधे हैं जो हिंसा करैगा सो गाढा बंधैगा ॥ ४९ ॥ गजपालनि बडे हाथी वनके वृक्षनिके दृढ पेडसूं बांधे तातैं इह युक्त है—जे बडे पुरुष आश्रय लीया चाहैं ते भली भांति निर्वाह अर्थि आपसूं बडेनिका आश्रय लेहु, कैसा है बडेनिका आश्रय-बडे बलकरि युक्त है ॥ ५० ॥ या भांति हस्तिपालनि हाथिनिके समूह ऊंचे वृक्षनिसूं बांधे सो हाथिनिके नेत्र कछु उघरै हैं हाथी सुखसूं तिष्ठे अंगविक्षेप करै हैं, लीलाकरि ग्रहै हैं ग्रास जिनि, अर प्रगटपनैं हलावै हैं काननिकूं ॥ ५१ ॥ हथनी जे हैं ते शृंखलारहित जे छावा तिनिसहित जल पीवेकूं सरोवरानिके आसि पासि विचरती भई उतारया है समस्त बोझ जिनितैं सो हलकी भई प्रगटही शीघ्र लखिवेमैं आवै है चरणनिका वेग जिनिका ॥ ५२ ॥ अर पहली पीया हुता सरोवरनिका जल ऊंटनिके समूहनि अर डारया हुता जलविषैं उगाल अर ऊंटनिके अंगकी गंधकरि जल वासरूप हुता सो तिसाराहू तरुण गज जल पीवेकी इच्छा न करते भए सो इह बात उचित है सबही जन मनोज्ञ विषयकूं बांछै है ॥ १५३ ॥ पहली गजनिके समूहनि पीया हुता सरवरका सलिल सो तिनिके मदकरि वासित हुता तहां प्रीतितैं आयकरि हथनी अर छावा शीघ्रही जल पीवते भए, सो इह बात उचित है—सुगंधवस्तु संभोगका कारण कह्या है

वृत्ति धरि चिरकाल श्रीपतिकी सेवाकूं प्राप्त भया जैसैं इंद्र आदि जिनेंद्रकी सेवाकूं प्राप्त होय ॥ १६९ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे दक्षिणार्णवद्वारविजयवर्णन नाम उनतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ २९ ॥

अथ तीसवां पर्व ।

अथानंतर पृथ्वीका प्रभु पश्चिमदिशाके जीतिबेकूं उद्यमी भया, नैऋत्य कोणकै मार्ग अपनी सेनाके साधनकरि पृथ्वीकूं वशि करता चाल्या ॥ १ ॥ आगै आगै घोडे जाय हैं तिनिकै पीछै रथ चले अर मध्यविषैं हाथीनिकी घटा चाली अर पयादे सर्वत्र चाले ॥ २ ॥ या भांति चतुरंगबल देवनिके अर विद्याधरनिके कटकसहित षडंग पृथ्वीविषैं विस्तरया ॥ ३ ॥ चालता कटकका क्षोभ ता थकी समुद्र चलायमान भया सो मानूं सेवक जे सुभट तिनिकूं स्वामीकै पीछैं चालना पहौंचावनेकूं संग होना प्रगट दिखावै है ॥ ४ ॥ कटकके लोकनि बलात्कारतैं भोगे वृक्षनिके फल सो फल तोडतैं वृक्ष नयगए अर नदीनिका जल सुसिगया कीच होय गया अर बडे बडे पहाड थल होयगए ॥ ५ ॥ याके कार्यकी सिद्धि सब सफल होती भई अतिरसकी भरी सुखकी करणहारी सेवक जननिकरि वांछिवेयोग्य महाउत्साहसहित अत्यंत फलती भई याकी मंत्रशक्ति उत्साहशक्ति प्रभुत्वशक्ति ॥ ६ ॥ अर सेना, पृथ्वीके जीतिबेकी है इच्छा जाकै सो देदीप्यमान होती भई कैसी है शक्ति अर सेना—काहूतैं भेदी न जाय, दृढ है प्रबंध जिनिका अर शत्रुनिके क्षयका कारण ॥ ७ ॥ याके योद्धा बाणनिसहित जीतिके भावकूं प्राप्त भए, कैसे हैं बाण अर योद्धा—बाण तौ फल कहिए भाला तिनिकरि संयुक्त हैं अर योद्धा मनवांछित फलकरि युक्त हैं अर बाणहू तीक्ष्ण हैं अर योद्धाहू तीक्ष्ण हैं अर बाण तौ पक्ष कहिए पांख तिनिकरि सहित हैं अर योद्धा पक्ष कहिए सहायी तिनिकरि संयुक्त हैं अर बाणहू दूरगामी अर योद्धाहू दूरगामी ॥ ८ ॥ अर याके विपक्षी कहिए शत्रु ते सत्यपनैं विपक्ष कहिए पक्षरहित सहायरहित होते भए, सेनाके लोकनि तिनिकूं दूरि काढि दीए, ते सब

समुद्रने इह शीतल मंद सुगंध पवन पठाई है ॥ ६४ ॥ चक्रीका कटक समुद्रकी तुल्यता करता भया, कैसा है कटक–प्रमाणरहित हैं रत्न अर शंख जामैं अथवा चक्रादिरत्न अर शंखादिनिधि तिनिकरि मंडित अर समुद्र रत्न अर शंखनिकरि मंडित है बहुरि कैसा है कटक–देदीप्यमान हैं मणिनिके मुकुट जिनिके ऐसे भोगी जे राजा तिनिकरि सेवनीक है अर समुद्र मणिधारी जे सर्प तिनिकरि सेवनीक है अर इहहू निरंतर वृद्धिरूप अर समुद्रहू निरंतर वृद्धिरूप अर कटकहू सब दिशिविषैं विस्तार रह्या है अर समुद्रहू विस्तरि रह्या है ॥ ६५ ॥ सो समुद्रके तटके वनविषैं डेरे कराय मनुष्यनिका देव कटककी रक्षा सेनापतिकूं सौंपि जैत्रास्त्रनिका धारणकरि रथमैं आरूढ होय समुद्रमैं प्रवेश करता भया जीती है देवनिकी सभा जानैं सो वरुणद्वीपका स्वामी वरतनुनामा देव ताहि क्षणमात्रमैं मागधकी नाई वशिकरि कल्पांतपर्यंत अपना जस ताकरि निरंतर समुद्रके द्वीपकूं दीपित करता भया ॥ ६६ ॥ ता देवथकी एती भेट चक्रवर्तीके आई–वगतर अर रत्ननिकी कंठी अर देदीप्यमान चूडामणि अर मनोहर कडे अर रत्ननिकरि देदीप्यमान जनेऊ इत्यादि रत्ननिकरि देवने नरेंद्रकी पूजा करी अर कहा आप जगतपूज्य हमारे प्रभुहो इत्यादि वहुत स्तुति करी तब भरत क्षेत्रका पति वाहि विदाकरि समुद्रके वैंजयतद्वार होय कटकमैं प्रवेश करता भया उत्तुंग है तोरण जहां ॥६७॥ वह लवणसमुद्र मंत्रीकी नाईं निष्कपट सो रत्ननिके नाथकूं आराधता भया मंत्रीहू अपना निर्मल हृदय प्रगटपनैं प्रकाशै अर इह समुद्रहू मोतिनिके मिसकरि अपनी स्वच्छता दिखावता भया अर मंत्री अंतरंगका राग बाहिर दिखावै अर समुद्रहू उद्योतमान मूंगानिके अंकुरेनिकरि अनुराग प्रगट करता भया अर मंत्री राजासूं कछु दुराव न राखै स्वामीकूं सर्वस्व अर्पण करै सो समुद्रहू गुणसमुद्र जो पृथ्वीपति ताकूं सर्वस्व अर्पण करता भया ॥ १६८ ॥ प्रयाणविषैं जीतिके दुंदुभी बाजे तासमैं गाजरूप बाजे बजावता अर प्रभातके मंगलविषैं अपनी ध्वनिकरि नाद करता जीतिकी ध्वनि प्रगटपनैं उच्चारता यद्यपि इह जलका पति जलाशय कहिए जडबुद्धि है तथापि प्रवीणबुद्धि हूवाथका किंकरकी

अर पंछीहू निशाविषै गमन न करै अर पंखी निरंतर शब्द करै हैं सो मानूं स्वाध्यायही करै हैं ॥१८॥ अर कट-
हलके वृक्ष मांही मृदु अर बाहरि जिनिकी त्वचा कांटेनिकरि युक्त तिनिके मिष्टरस अमृतसमान सेनाके लोक
यथेष्ट भखते भए ॥ १९ ॥ नारेलनिका रस पीवना अर कटहलका भोजन अर मिरचनिकी तरकारी, अहो
वनका निवासहु सुखकारी है ॥२०॥ अर तीक्ष्णरसकी भरी मिरच तिनिका आस्वादकरि पंखी शब्द करै हैं
अर परै हैं आंखिनिसूं अश्रुपात जिनिके तिनिकूं भूपेंद्र देखता भया ॥ २१ ॥ अर तरुण मर्कट महातीक्ष्ण
मिरचनिकी मंजरी ताहि भखिकरि सशंकित भए सिर हलावै हैं तिनिकूं पृथ्वीका पति निरखता भया
॥ २२ ॥ तासमैं कटकके जन लोकके उपकारी जे वनके वृक्ष तिनिकूं फलनिकरि नम्रीभूत देखि कल्प-
वृक्षनिके अस्तित्वविषैं निःसंदेह भए, मनमैं विचारी—ए वृक्षही फलदाता हैं तौ कल्पवृक्ष तौ फलदाता
होयही होंय ॥ २३ ॥ लतारूप स्त्री ताकरि मंडित अर फूलरूप प्रसूतिकरि संयुक्त ऐसे वनके वृक्ष मानूं
पृथ्वीपतिके करदेवा किसाणही हैं, ते वृक्ष लोकनिकूं फलनिकरि पोषते भए ॥२४॥ नालेरनिका रस सोई
भया आसव ताकरि मदोन्मत्त कछुइक घूमै हैं नेत्र जिनिके ऐसी सिंहलदेशकी स्त्री पृथ्वीपतिका यश
श्रुतिगंभीर स्वरसूं गावती भई, वह यश सुननहारेनिके श्रवणनिकूं अतिसुंदर ॥ २५ ॥ अर त्रिकूटाचल
मलयाचल तिनिके तटविषैं अर पांड्यकवाटक नामा पर्वत ताविषैं याका यश किंनरीदेवी अतिगंभीर
स्वरसूं गावती भई ॥२६॥ अर मलयाचलके निकट वननिविषैं अर सह्याचलके वनविषैं याका यश पृथ्वीके
जीतिबेकरि उपज्या सो भीलनिकी स्त्री गावती भई ॥ २७ ॥ अर चंदनका उद्यान ताहि स्पर्शिकरि मंद
सुगंध पवन बाजती भई, मलयाचलके कुंजनितैं हरे हैं नीझरणानिके जलकण जानैं ॥ २८ ॥ दक्षिणादि-
शाकी पवन चौगिरद विस्तरती नृपका खेद हरती मानूं पाहुणगतिकरि सेनाके लोकनिका सत्कारही
करै है ॥ २९ ॥ अर केरल देशकी स्त्री लौंग इलायची आदि सुगंध वस्तुनिकी बास तिनिकरि सुगंध हैं
मुखके श्वास जिनिके अर जिनिके स्तन सघन चंदनके द्रवकरि चरचे पांडु होय रहे हैं ॥ ३० ॥ अर

सामग्रीतैं रहित होय गए ॥ ९ ॥ एक बड़ा आश्चर्य है याके विरोधी याके कोपकूं होतसंतैं भी कुपति कहिए कुमाणस होय गए सब सामग्रीरहित भए, अर दूजा अर्थ—व्यंग्यरूप—कुपतिनाम पृथ्वीपतिका है। अर याके विरोधी पहाडनिकूं उलंघि दूरि भागे अर दूजा अर्थ भूभृत नाम राजानिका है अर याके विरोधी ऐसे होय गए जो अन्न न मिले वनफल खाय आजीविका पूर्ण करते भए अर दूजा व्यंग्य अर्थ—फलसंपदा भोगवते भए ॥ १० ॥ याके संधि कहिए मिलाप अर विग्रह कहिए युद्ध ताकी चर्चा शास्त्रविषैं होती भई समस्त शत्रुकी पक्षका निराकरण करणहारा ताके कौनसूं संधि ? अर कौनसूं युद्ध ? याके सब सेवक हैं कोऊ समान होय तो संधि विग्रह संभवे ॥ ११ ॥ या भांति इह अजितव्यपक्ष कहिए नांही रह्या कोऊ प्रबल शत्रु जीतिवेयोग्य जाके याके डिंग सब दीन है तथापि इह दिग्विजयकूं उद्यमी भया सो मानूं अपना पालिवेका भरत क्षेत्र ताकी दिग्विजयके मिसकरि प्रदक्षिणा देता भया ॥ १२ ॥ याकी सेनाके लोकनि समुद्रके तीरकी भूमि सब वशीभूत करी, कैसी है तीरकी भूमि—सुपारीके वृक्षनिकरि करी है छाया जहां अर नालेरनिके वनकरि मंडित है ॥१३॥ याकी सेनाके लोक सरोवरनिके तीर वृक्षनिकी छाया तहां विश्राम करणहारे तरुण नारेलनिका जल जो रस ताहि पीवते भए ॥ १४ ॥ अर याकी सेनाके लोक ताल वनविषैं सुनते भए सूखे पाननिके शब्द, पवनके हलायवेकरि पडे हैं ताडपत्र तिनिके पडिवेकी महा कठोरध्वनि होय रही है ॥ १५ ॥ अर इह नृपनिका पति तांबूलनिकी वेलिसहित देखता भया खैरके वृक्ष, सो परस्पर मिलि हैं मानूं लोकनिकूं ऐसी दिखावे है जो पाननिका अर हमारा एक कार्य है जहां पान तहां काथ ॥१६॥ नृपनिका इह तांबूलनिकी वेलिसूं लगि रहे खैरके वृक्ष तिनिकूं देखता संता इनि वृक्षनिकरि वेढी तांबूलकी वेलि तिनिकूं अवलोकिकरि हर्षित भया, मानूं ए स्त्री—पुरुषके युगलभावकूं आचरै हैं ॥१७॥ अर वनविषैं विहंग जे पक्षी तिनिकूं देखता संता हर्षित भया, मानूं ए पंखी मुनिसारिखे सोहै हैं मुनिहकी यह रीति है जहां सूर्य अस्त होयवेका समय निकट आवै तहांही निवास करै रात्रीकूं गमन न करै

अर पंछीहु निशाविषै गमन न करै अर पंखी निरंतर श०

है रुधिरकी छटा ॥ ४३ ॥ सह्याचल पर्वतके तटकूं समुद्रका जल स्पर्शै है सो मानूं याकी गोदमैं लोटता संता अपना दुख निवेदन करै है अर वह याकूं धारता संता मानूं भाईका भाव प्रगट करै है ॥ ४४ ॥ न सह्या परै ऐसा बलका संघट्ट ताकरि सो सह्याचल भग्न भए जे वृक्ष तिनिकरि मानूं हाथ ऊंचेकरि पुकारही करै है ॥ ४५ ॥ सह्याचल कटककरि विदार्‍या, चलायमान हैं प्राणी जहां सो गुफाके छिद्रनिकरि आकुल शब्द करता मानूं मृत्युदशाकूं प्राप्त होय है, कैसा है पर्वत–सिंहादि प्राणी ते ही हैं प्राण जाके। भावार्थ–जो मृत्यु दशाकूं प्राप्त होय है ताके प्राण चलायमान होय हैं अर याके प्राणी चलायमान हैं ॥४६॥ चलायमान हैं वृक्ष जाके अर चलायमान हैं प्राणी जहां अर शिथिल होय गई है कटिनी जाकी सो पर्वत या भांति चलाचल होताथका कहिबेमात्रही अचलनाम धरावता भया, लोकनि जानी–कहिबेका अचल है ॥ ४७ ॥ प्राणीनिके समूहनैं कीया है वनका भोग अर तुरंगनिके खुरवट्टनकरि तथा कटकके लोकनिके पांयनिकरि चूरी संती सह्याचलकी भूमि क्षणमात्रमैं स्थलके भावकूं प्राप्त भई ॥ ४८ ॥ चक्रवर्तीके विजय गज पश्चिमके समुद्रके तटपर्यंत अर मध्यमाचलगिरिपर्यंत अर तुंगवर पर्वतपर्यंत भ्रमते भए, कैसा है तुंगवर–ऊंचे पाषाणनिकरि संयुक्त है ॥ ४९ ॥ बहुरि कृष्णगिरिकूं उलंघि अर सुमंदरगिरिकूं उलंघि बहुरि मुकुंदगिरिकूं उलंघि राजेंद्रके गजराज भूमिमैं भ्रमते भए ॥ ५० ॥ तहां पश्चिमदिशिके समीपके हाथी छोटी है ग्रीवा कहिए नारि जिनिकी अर लांबे हैं दांत जिनिके अर सुंदर हैं नेत्र जिनिके अर मृदु है त्वचा जिनिकी सचिक्कण श्याम महापुष्ट ॥ ५१ ॥ बडा है शरीरका ऊपला भाग जिनिका उत्तुंग है अंग जिनिका अर रक्त हैं जीभ होठ तालवे जिनिके महामानके धरणहारे अर दीर्घ है पूंछ जिनिकी अर कमलसमान सुगंध झरै है मद जिनिकै ॥ ५२ ॥ अपने वनविषैं संतुष्ट अर महाशूरवीर दृढ हैं चरण जिनिके अर सुंदर है शरीर जिनिका ऐसे पश्चिमके हस्ती वननिके स्वामी अति आदरसूं भेट ल्याए तिनिकूं आप राखता भया ॥ ५३ ॥ सो पृथ्वीका राजा अनेक नदी उलंघता भया, कैसी हैं नदी–वनही

लीलासहित मंद है गमन जिनिका मानूं नितंबनिके भारकरि मंद चाले हैं अर कामके पुष्पवाण तिनिकी कलीके खिलिबेकेसे विभ्रमकूं धरे सुंदर है मुलकनि जिनिकी ॥ ३१ ॥ अर कोयलके आलाप-समान मधुर हैं वचन जिनिके ते वचन अतिप्रकट नांही झीणे स्वरकूं धरे हैं अर अतिकोमल जो बाहुलता अतिसुभग हिंडोरे समान तिनिकूं हलावती मनोज्ञ है चेष्टा जिनिकी ॥ ३२ ॥ अर महासुंदर नृत्य करती नृत्यसमय स्खलित होय है पगनिकी रचना जिनिकी अर बाहुल्यताकरि मोतीनिके आभूषण पहरे जीते हैं भंवरनिके गुंजार जिनि ऐसे मंद मनोहर गान करती ॥ ३३ ॥ तमालवनकी कुंजगलीनिमें यथेष्ट विचरती नवयौवनकूं धरे केरलदेशकी स्त्री याका मन प्रसन्न करती भई ॥ ३४ ॥ सो राजेंद्र दक्षिणदिशाकूं वशिकरि चोल देश केरलदेशके राजा तिनि सबनिकूं जीतिके साधनतैं वशिकरि प्रणाम करावता भया, सब राजा आय पांय परे ॥ ३५ ॥ कालिंगदेशके उपजे गज मलयाचलपर्वतसमान ऊंचे मानूं अपने उच्च शरीरकरि गिरिनिकी उच्चताकूं उलंघे हैं ॥ ३६ ॥ दिग्विजयविषैं सेनाके गज सब दिशानिमें विश्राम करते दिग्गजपणां अंगीकार करते भए, लोकनि जानी—एही दिग्गज हैं अर और दिग्गज कहिए हैं सो उपमाकै अर्थि कहिबेमात्र हैं ॥ ३७ ॥ बहुरि भरतक्षेत्रका भूपाल पश्चिमदेशकूं प्राप्त होय सह्याचलके समीप पश्चिमदिशिके समुद्रके तटके राजा तिनिकूं जीतता भया ॥ ३८ ॥ जीतिका साधन याका कटक पश्चिमदिशाके समुद्रके तीर निवास करता भया ॥ ३९ ॥ उपासिंधु कहिए खारडी समुद्र सो अपने दोऊ तटनिविषैं राजानिके राजाका कटक देखि भयथकी क्षोभकूं प्राप्त होय मानूं आकुल व्याकुल भया ॥४०॥ सेनाके क्षोभतैं समुद्र या तटकी उर प्राप्त होय अर या तटकी उर निवास करती सेनाके क्षोभतैं वा तटकी उर प्राप्त होय है ॥ ४१ ॥ हरितमणि तिनिकी प्रभाके विस्तारकरि समुद्रका जल ऐसा सोहता भया मानूं चिरकालतैं सिवाले नीचैं हुता सो ऊपरि आय गया है ॥ ४२ ॥ अर कहूंइक पद्मरागमणिनिकी किरणनि करि समुद्रका जल ऐसा सोहता भया मानूं कटकके क्षोभतैं समुद्रका हृदय विदार्या गया है तातैं उछलै

विंध्याचल जाय प्राप्त भया, कैसा है सह्याचल पसारी है नदीरूप जीभ जानैं सो मानूं समुद्रकूं पीवेकूं उद्यमी भया है ॥ ६४ ॥ अब कटक विंध्याचल आया सो विंध्याचलकूं भूपनिका भूप आपसमान देखता भया—वह गिरिनिका पति उत्तुंग अर वह आपहू उत्तुंग अर आप तौ बडे वंशकूं धरे अर वह बडे बांसनिकूं धरे, आप दीर्घताकूं धरै अर वहहू दीर्घताकूं धरे, आपहू औरनिकरि अलंघ्य अर गिरिहू औरनिकरि अलंघ्य तातैं गिरींद्रकूं आप तुल्य देखि प्रसन्न भया ॥ ६५ ॥ कैसा है गिरि—अपने ऊंचे शिखरनिकरि सोहै है उछलिकरि दूरि जाय परै हैं नीझरने जिनितैं अर ध्वजासहित विमाननिके समूहकरि मानूं विश्रामकै आर्थि याका आश्रय ले हैं ॥ ६६ ॥ जो विंध्याचल अपनी पूर्व अर पश्चिमकी अणी तिनिकरि समुद्रकूं अवगाहिकरि तिष्ठ्या है मानूं दावानलके भयतैं समुद्रसूं मित्रता कीया चाहै है ॥ ६७ ॥ अर निरंतर झरैं हैं नींझरने जाकै तलहटीके वृक्षनिके सींचिवेकै आर्थि सो मानूं इह गिरि ऐसा भाव कहै है—बडे नृपनिकूं इह योग्य है जो अपने चरणनि लागे तिनिकूं पालन करै ॥ ६८ ॥ अर तटविषैं तिष्ठते ऊंचे पाषाण तिनिसूं स्खलित होय उछलै है जल जाका ऐसी नदीरूप नारी तिनिकूं मानूं शब्दसहित नीझरने तिनिकरि हंसैही है ॥ ६९ ॥ अर दावानल नीचले विस्तीर्ण वन तिनिकूं जलकी सरदीकरि दाहिवेकूं असमर्थ तातैं भृगुपात कहिए गिरितैं गिरिवेकै आर्थि शिखरकूं चढै है भावार्थ—तलैं सरदी जलकी घनी है अर शिखरपरि जल ठहरै नांही तातैं शिखरपरि दावानल लागै है सो मानूं झंपापात लेवेकूं चढी है ॥ ७० ॥ प्रज्वलित दावानल ताकरि संयुक्त जे गिरिके शिखर तिनिकूं वनचर जे भील ते ज्येष्ठ आषाढके दिनानिमैं सुवर्णसारिखे लखै हैं ॥ ७१ ॥ जाके वन मातंग जे हाथी अथवा भीलादिक चांडाल तिनिकरि संयुक्त हैं अर भुजंग कहिए सर्प अथवा विषके भरे दुष्ट जीव तिनिका है संचार जहां अर विजाति कहिए पक्षी अथवा नीच जाति तेई भए कंटक तिनिकरि पूर्ण हैं तातैं कहूंइक अतिकष्टकूं धरै हैं ॥ ७२ ॥ अर माते हाथी तिनिका है योग जहां अर समुद्र लवणकी है बाहुल्यता जहां अर विपत्र

हैं रोमावली जिनिकै अर ऊंचे तट तेई हैं नितंब जिनिके, केई नदी पूर्वगामिनी केई नदी पश्चिमगामिनी मानूं सह्याचलकी पुत्रीही हैं, तिनिकूं उलंघता भया ॥ ५४ ॥ विचरैं हैं भीषण ग्राह जिनिमैं ऐसी भीमानामा नदी अर भीमरथी जलचरके समूह तिनिकरि उठ्या है भंवर जिनिमैं ऐसी दारुवेणा अर दारुणा महानदी तिनिकूं उलंघता भया ॥ ५५ ॥ अर नीरानामा नदी नीरके तीर जे वृक्ष तिनिके शाखाके अग्रभागकरि आच्छादित है जल जाका अर मूलानामा नदी ढाहेनिकूं उपाडै ऐसा है प्रवाह जाका सो अपने प्रवाहकरि मूलतैं उखारैं हैं तटके वृक्ष जानैं ॥ ५६ ॥ अर वाणानामा नदी, सो कैसी है—निरंतर वहै है जल जामैं अर केतवानामा नदी सदा जलकरि भरी वहुरि करीरीनामा नदी सो कैसी है—करी जे हाथी तिनिके दांतनिकरि विदारे हैं तट जाके इत्यादि महानदी तिनिकूं नृपनिका इंद्र उलंघता भया ॥ ५७ ॥ वहुरि प्रहरानामा नदी विषम जे ग्राह तिनिकरि दूपित मानूं वह नदी असती कहिए दुराचारिणी नारीही है, दुराचारिणी स्त्री विषम ग्राह जे नीचजन तिनिकरि दूपित है वहुरि मुररानामा नदी कुररजातिके पंछी तिनिकरि सेव्य सो नदी कीचरहित मानूं महासतीही है महासतीहू पंक कहिए कलंक ताकरि रहित है ॥ ५८ ॥ अर पारानामा नदी जाके जलके तीर शब्द करैं हैं कुरंचि कलहंस सारस अर मदनानामा नदी कैसी है मदना—समानस्थल अर नीचेस्थल तिनिविषैं जलकरि समान है अर अखंड है गति जाकी ॥५९॥ अर वेणुकानामा नदी मानूं इह नदी सह्याचलरूप गजकी मदधारा ही है अर गोदावरी अखंड है प्रवाह जाका अति विस्तारकूं धरै है ॥ ६० ॥ अर करीरवनकरि मंडित है तीरकी भूमि जाकी ऐसी तापीनामा नदी आतापके संतापतैं कछुइक उष्णजलकूं धरतीसंती बहै है ॥ ६१ ॥ अर रम्यानामा नदी ताके तीरके वृक्ष तिनिकी छाया सूते हैं मृगनिके बालक, अर लांगल खातिकानामा नदी कैसी है मानूं पश्चिम दिशाकी खाई ही है ॥ ६२ ॥ इत्यादि अनेक नदी तिनिकूं सेनापति सेनासहित उलंघता भया जहां जहां सेनापति गया तहां तहां वनके माते हाथी ग्रहता भया ॥ ६३ ॥ चक्रवर्त्तिका कटक सह्याचलकूं उलंघि

भासी ॥८४॥ अर इह सांचेली नर्मदा है जो राजानिकी रानीनिकूं नर्म कहिए क्रीडा ताकी देनहारी ताके मध्य मच्छी केलि करै हैं ॥८५॥ ता नर्मदाकूं उतरिकरि राजेश्वरका कटक विंध्याचलकै पैलै तट जाय पहोंच्या घरकी देहलीकी बुद्धिकरि विंध्याचलकूं उलंघ्या अर नर्मदाके पार भए, कैसी है नर्मदा—कटकके क्षोभतैं उडी है पंखीनिकी पंक्ति जाविषैं।८६। अर विंध्याचल नर्मदाकै दक्षिणदिशिभी देख्या अर उत्तरदिशिभी देख्या मानूं विंध्याचलनैं दोऊदिशाविषैं अपना रूप दोयप्रकार कीया है दोऊही दिशानिमैं जाका छेह नांही।८७। चक्रीका कटक नर्मदाकी चौगिरद विंध्याचलकूं वेढिकरि निवास करता भया मानूं इह कटक दूजा विंध्याचलही है ॥८८॥ वह कटक अर विंध्याचल परस्पर भेद न धारते भए, कटकमैं तौ गज अर गिरिमैं गंडोपल कहिए ऊंचे स्थानक अर कटकमैं अश्व अर पर्वतमैं अश्वचक्र कहिए किंनर देव, अश्वहू चपल अर किंनरहू चपल ॥८९॥ कटकनैं भखे समस्त फल अर पल्लव अर तरु सो विंध्याचल दल फल पुष्प बेलि पत्र तिनिकरि रहित होयगया सो मानूं, विंध्याचल बंध्याचल होय गया। वंध्या नाम निफलका है ॥९०॥ बांसनिके चावल बांसनिके मोतीनिकरि मिश्रित तिनिकरि कटकके लोग जिनेंद्रकी अर्चा करते अपनी इच्छाकरि सुखसूं तिष्ठते महामनोज्ञहै विंध्याचल की स्थली ॥ ९१ ॥ तहां पृथ्वीपतिनै निवास किया तब वनके राजा राजाधिराजकूं देखते भए अर वनकी नानाप्रकारकी वस्तु प्रशंसायोग्य रोगकी निवारणहारी महाऔषध भेट करते भए ॥९२॥ हाथीनिके दांत अर गजमोती अर वांसनिके मोती भीलनिके अधिपति भेट करते भए सो उचितही है पृथ्वीपतिका सत्कार करना ॥ ९३ ॥ नर्मदाकूं उतरि विंध्याचलकूं उलंघि चक्रवर्त्तीका कटक पश्चिमदिशाके जीतिबेकूं प्रयाण करता भया ॥ ९४ ॥ पहली कछुइक उत्तरदिशाकी तरफ कटक जायकरि पश्चिमदिशाकूं चक्रसहित प्राप्त भया, याका प्रताप तौ पहिलीही सब उर व्यापि रह्या है ॥ ९५ ॥ कटकके अश्व तिनिके खुरनितैं उठी पृथ्वीकी रज सो सूर्यके तेजकूं रोकती भई केवल वैरीनिकाही तेज न रोक्या जाके तेज आगै सूर्यहूका तेज रुकिगया ॥ ९६ ॥ लाट देशके राजा ललाटकरि स्पर्श्या है पृथ्वीतल जिनि अतिसुंदर

पर्व ३०

५८५

कहिए पंखीनिकी पांख जहां बहुत पडी हैं अर पत्र तथा कूंपल तिनिकरि बहुत सोहै है ॥ ७३ ॥ अर कहूंइक फटि गए हैं बांस जिनिके उदरतें गिरे जहां तहां विखरि रहे हैं मुक्ताफल तिनिकरि मानूं वन-लक्ष्मी प्रगट जो दांतनिकी किरण ताकरि वनविषैं हंसैही है ॥ ७४ ॥ अर इह विंध्याचल गुफानिके मुख तिनिकरि झरैं हैं नींझरने तिनिके शब्दकरि मानूं गाजैही है, अपनी महिमाकरि करी है कुलाचलनिसूं स्पर्द्धा जानैं ॥ ७५ ॥ अर इह पहाड नीचे ऊंचे स्थानक तिनिकरि अर नानाप्रकारकी गेरू आदि धातु तिनिकरि अर नानाप्रकारके मृगनिके रूप तिनिकरि मानूं चित्रपटके आकारकूं धरे है ॥ ७६ ॥ अर जाके वनविषैं रात्रिसमैं औषधि प्रज्वलित होय है सो मानूं देवनि ए दीपक प्रज्वलित कीए हैं अंधकारके हरणहारे ॥ ७७ ॥ अर कहूंइक मृगेंद्रनि बिदारे हैं गजेंद्रनिके कुंभस्थल तिनितें उछले हैं मोती तिनिकरि जाका समीपस्थल बिखरे पुष्पनिकी शोभाकूं धरै है ॥ ७८ ॥ सो नृपनिका नृप दूरिहीतें महागिरिकूं देखि परम आनंदकूं प्राप्त भया मानूं वह गिरि राजराजेंद्रकूं पवनकरि हालते तटके वृक्ष तिनिकरि बुलावै है ॥ ७९ ॥ सो चक्रेश्वर विंध्याचलके किरात कहिए भील अर करी कहिए हाथी तिनिकूं समूहसहित दूरतें देखता भया, कैसे हैं किरात अर कैसे हैं करी—कालीघटासमान काले अर भील तौ बांसके धनुष धरैं अर हाथी धनुषके आकार वंश कहिए पीठ ताहि धरैं ॥ ८० ॥ ता पर्वतके तटविषैं नदीरूप स्त्री चंचल जे मच्छी तेई हैं नेत्र जिनिकै अर पंछीनिके शब्द तेई हैं अव्यक्त सुंदर शब्द जिनिके ऐसी नदीरूप नारी तिनिकूं नरपति निरखता भया ॥ ८१ ॥ अर विंध्याचलके मध्य नर्मदा नदीकूं देखता भया सो नर्मदा नदीनिमैं बडी मानूं विंध्याचलकी समुद्रपर्यंत कीर्त्ति विस्तरी है काहूपै निवारी न जाय ॥ ८२ ॥ तरंगरूप है जलका वेग जाका ऐसी नर्मदा मानूं पृथ्वीकी लांबी चोटीही है अर विंध्याचलपर्वतकी पताकाही है समस्त पर्वतनिकूं जीतै ताकी प्रशंसा प्रगट करणहारी ॥८३॥ सो नदी कटकके क्षोभतैं उठी है पंछीनिकी पंक्ति जाविषैं सो मानूं पृथ्वीका पति अपने स्थल आया तातैं तोरणही बांधे हैं, पंखीनिके उडिबेतैं क्षणेक ऐसी

महाकुलीन औराकी जातिके घोडे नानादेशके विचरणहारे पूर्ण हैं अंग जिनिके तिनिकरि भूप भूपेंद्रकूं सेवते भए ॥१०८॥ प्रयाण प्रयाण प्रति याकै केवल रत्ननिहीका लाभ न भया यशका अत्यंत लाभ भया जे राजा दुःसाध्य हुते ते अपने बलतैं सब वशि कीए ॥ ९ ॥ जल और थलके पंथ तिनिकूं सब औरतैं रोकि अपनी जीतिके साधनकरि गए सिंधुके सब राजानिकूं सेनापति जीतता भया ॥ ११० ॥ नानाप्रकारके देश अर वन नदी पर्वत तिनिकूं उलंघि सेनापति पश्चिमके राजानिकूं पृथ्वीपतिकी आज्ञा सुनावता भया ॥ १११ ॥ जो काहू ठौर कछु अपराध न होय, हिंसादिक पाप अर अनीति कोऊ करि न सकै, चोरी जोरी न होय, या भांति आज्ञा सुनाय जैसैं पूर्वके भूपाल वशि कीये हुते तैसैं पश्चिमके अनुक्रमतैं वशि कीए, हऱ्या है तिनिका मानधन, या भांति सबनिकूं वशिकरि राजेंद्र पश्चिमके समुद्र आया ॥ १२ ॥ सो समुद्र तरंगनिरूप कर तिनिकूं विस्तारता दूरहीतैं मानूं नरेंद्रका सत्कार करता भया तरंगनिमैं नानाप्रकारके रत्न विस्तरे सो मानूं समुद्र अर्घपाद्यही करै है ॥ १३ ॥ जवाहरिनिकरि प्रशंसायोग्य जे बडे जवाहरी तिनिकरि या समुद्रके रत्न अल्पमूल्य गिनिये हैं अर या चक्रेश्वरके रत्न बहुमूल्य गिनिये हैं ॥ १४ ॥ अर इह नामकरि लवणसमुद्र सो लघु भया तातैं तासमैं नृपनि ऐसा माना जो इह चक्रही रत्नाकर है अनेक रत्ननिकी राशि है, या भांति सब राजनि बहुत प्रशंसा करी ॥ १५ ॥ या पश्चिमदिशाविषैं सूर्य आवै है तब सूर्यहूका तेज मंद होय जाय है सो याहू दिशिमैं नृपेंद्रका तेज अतिदेदीप्यमान होता भया, पश्चिमके सब राजा जीते ॥ १६ ॥ इह चक्रेश्वर शत्रुनिकूं तीव्र उद्वेग उपजावता सूर्यसमान दिपता भया चक्ररत्नकूं धारता सकलप्रजाके दुख टारता गुणरूप समुद्रकूं पूर्ण करता भया, सब शत्रु कंपायमान करे ॥ १७ ॥ समुद्रके तीर तीर चाल्या, पश्चिमके तीर पहुंच्या जा द्वार होय सिंधुनदी समुद्रमैं प्रवेश कीया है ऐसा सिंधुद्वार ताक समीप कटकके डेरे कराए, कैसा है कटक—अपने चित्तसमान निराकुल है चक्रेश्वर महालक्ष्मीवान जासमान अन्य कोऊ विभूतिवंत नांही ॥ १८ ॥ सिंधुके तटके वन तहां सेनाके डेरे भए

भाषा बोलते प्रभुकी आज्ञाकै वशि क पदकूं प्राप्त भए। जो स्वामीका अभिप्राय जानै अर आज्ञाप्रमाण कार्य करिबेकूं समर्थ ताहि टिक कहिए ॥ ९७ ॥ कैयक वनके अधिपति सोरठदेशके गज अर पंचनदीके वननिके गज भेंटकरि पृथ्वीनाथका दर्शन करते भए, चक्रकरि सब चलायमान होय गए ॥ ९८ ॥ चक्रके देखिबेतैं डरे, देश तजि पृथ्वीनाथकै समीप आए तिनि जानी इह सब पृथ्वी चक्रेश्वरकी है जाहि जो स्थल देय सो पावै कैयक राजा क्रूरग्रह समान महाक्रूर हुते सो चक्रीकै वशि भए ॥९९॥ भरतक्षेत्रका पति सब दिशानिके देशपत्ति माते हाथी समान मदोन्मत्त तिनकूं अपनं बलतैं दबाय सूधे करता भया कैसे हैं राजा अर कैसे हैं गजराज—राजा तो बडे वंशके उपजे अर गज बडे पीठिकूं धरें, वंशनाम पीठहूका है, अर हाथी मदोन्मत्त राजाहू मदोन्मत्त सो सब राजा राजेंद्रके प्रतापतैं निर्मद होय गए ॥ १०० ॥ सोरठदेशके राजा अर उष्ट्रदेशके राजा ल्याए हैं अनेक प्रकार भेटनिके समूह तिनिकूं पृथ्वीनाथ संतुष्ट करता तिनिपरि कृपा करता गिरिनारगिरिकी थली आया ॥ १०१ ॥ सोरठदेशविषैं गिरिनारगिरि सुमेरुसारिखा पर्वत तहां भरतक्षेत्रका पति आय पहोंच्या, असवारीतैं उतरि गिरिनारिकी प्रदक्षिणा देय होनहार बावीसमैं तीर्थंकर तिनिका ध्यान करता गिरिकी बंदना करी ॥१०२॥ रोमी कपडे अर रेशमी कपडे अर चीन पाटंवर इत्यादि अनेक प्रकारके वस्त्र भेंटकरि भूपति भूपेंद्रका दर्शन करते भए ॥ ३ ॥ कैयकनिकूं सन्मान दानकरि केइकनिकूं स्नेहवचनकरि कैयकनिकूं कृपाकी दृष्टिकरि अतिहर्षित करता भया ॥४॥ अर नानाप्रकारके गज अर ऐराकी घोडे अर नानाप्रकारके रत्न तिनिकरि पश्चिमदिशाके राजा सोरठमैं आया नृपतिका नाथ ताहि पूजते भए ॥५॥ महातेजस्वी शरीर जिनिका अतिसुंदर बुद्धिमान तरुण वय पराक्रमगुणकरि मंडित तुरुकदेशके उपजे तुरंगम तिनिकरि केइकराजा राजेश्वरकूं पूजते भए ॥ ६ ॥ अर कैयक राजा कांबोजदेशके घोडे अर वाह्लीकदेशके घोडे तथा तैतिलदेशके अर अट्टदेशके सिंधुदेशके वनायुदेशके गांधारदेशके वाणदेशके इत्यादि अनेक देशनिके तुरंगम तिनिकरि भूपेंद्रकूं आराधते भए ॥ १०७ ॥

॥ १२८ ॥ इह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे राजन्! पुण्यके प्रभावतैं इह जीव भूमंडलकी जीतनहारी चक्रवर्तीकी लक्ष्मी ताहि पावै है अर इंद्रपदकी दिव्यलक्ष्मी पावै है अर पुण्यथकीही तीर्थंकरकी विभूति पावै है अर पुण्य ही थकी परंपराय मोक्षकी अविनाशी लक्ष्मी पावै है। या भांति पुण्यके प्रभावतैं ए च्यारूं विभूतिनिका भव्यजीव भाजन होय है तातैं ऐसा जानि जे सुबुद्धि हैं ते पवित्र जिनेंद्रके आगमतैं पुण्यकूं उपार्जो ॥ १२९ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पश्चिमार्णवद्वारविजयवर्णन नाम तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३० ॥

अथ इकतीसवां पर्व।

अथानंतर ऋषभका नंदन उत्तरदिशाके जीतिवेकूं उद्यमी भया, बहुत हैं तुरंग जामें ऐसा कटककरि सब दिशानिकूं उलंघि प्रयाण करता भया ॥ १ ॥ ता समैं तज्ज्ञ कहिए प्रवीण पुरुष वस्तुके वेत्ता सो तुरंगनिके गुण जानते भए, धौरित कहिए अखंडधारागमन कूदना उछलना प्रदक्षिणाकार मंडलाकार चौगिरद भ्रम नांही सैन्या चलना इत्यादि तिनि अश्वनिकी चालकी चतुराई जानते भए अर उत्साह कहिए पराक्रम अर शिक्षा कहिए विनयकी वृद्धि अर रोम क्रांतिकूं धरैं, इह शरीरका गुण ॥ २-३ ॥ मानूं ए तुरंग पछिले भागकरि अगिले भागकूं उलंघ्या चाहै हैं, भावार्थ—अति शीघ्रही पंथ पूर्ण करते भए ॥ ४ ॥ खुरनिकरि उपजी पृथ्वीकी रज सो मति हमारे अंगकूं स्पर्शै ऐसे भयतैं मानूं अश्व महापराक्रमी मार्गकूं उलंघिकरि शीघ्रही जाते भये ॥ ५ ॥ अपनी छाया अपने बराबर चालै है सोहू सहिवेकूं असमर्थ ताहि खुरनिकरि मेट्या चाहै है सो छाया सूक्ष्म तातैं खुरनिकरि नाही बिदारी जाय है ॥ ६ ॥ अर कैइक तुरंग मानूं नृत्य ही करै हैं, शीघ्रगमनविषैं चरणनिकरि शब्द होय है सो मानूं वादित्र बाजै है ॥ ७ ॥ स्थिर है प्रकृति अर पराक्रम जिनिके केवल गमनहीविषैं चपलता भासै है, चालतैं खुरनिकरि

फौजके हाथी तिनिकें चरिवेकरि पेडमात्र रहिगये ॥ १९ ॥ तहां मंत्रसहित चक्ररत्नकी पूजा करी समस्त रीतिका वेत्ता पुरोहित, पंचपरमेष्ठीकी विधिपूर्वक पूजा करी ॥ २० ॥ पवित्र गंधोदकसूं मिश्रित आसिकासहित अक्षत देयकरि पवित्र आशीर्वाद देय पुरोहित चक्रीकूं आनंद उपजावता भया ॥ २१ ॥ तासमैं धरे हैं देवोपनीत शस्त्र जानैं पहली रातिप्रमाण रथविषें आरूढ होय लवणोदधिकूं गायके खोज समान अल्प जानि पृथ्वीका पति लवणोदधिकूं अवगाहता भया ॥ २२ ॥ उत्कृष्ट है दीप्ति जाकी ऐसा प्रभासनामा देव ताहि जीत्या पृथ्वीका पति अपनी प्रभाके समूहकरि सूर्यकी प्रभाकूं तिरस्कार करै है ॥ २३ ॥ जो वीरलक्ष्मी सोई भई मच्छी ताके वाशि करिवेकूं जालसमान मोतीनिका जाल अर संतान-जातिके कल्पवृक्षनिकी माला अर सुवर्णका जाल ए सब प्रभासदेव भेट करी सो चक्रधर ग्रही ॥ २४ ॥ या भांति पुण्यके उदयतैं पृथ्वीपति बडे देवनिकूं जीतता भया तातैं बुद्धिमान पुण्यरूप धनका निरंतर उपार्जन करहु, सो पुण्यधन महाप्रबल है ॥ २५ ॥ चक्रवर्तीनिमैं आदि प्रथमचक्री अतुल है लक्ष्मी जाकै अर नाचते उछलते उत्तुंग तुरंग तिनिके खुरनिकरि चूर्ण कीए हैं विषमस्थल जानैं, तुरंगनिके खुरनिकरि उठी रेणु ताकरि समुद्रकूं श्यामता उपजावता संता प्रभासदेवकूं जीतिकरि ताथकी सारभूत वस्तु लीन्ही ॥ २६ ॥ लक्ष्मीके हींदिबेकी लतासमान संतानजातिके कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी माला उरविषें धारी अर मोतिनिका अर सुवर्णका जालजुगल ताकरि संयुक्त जैसैं कोऊ बींद बींदनी परणि भीतरतैं बाहर निकस तैसैं लक्ष्मीका ईश लक्ष्मीकूं परणकरि समुद्रतैं निर्भय निकसता नूतन वरकी शोभाकूं धरता अत्यंत सोहता भया ॥ १२७ ॥ समुद्रपर्यंत पूर्वके राजा अर समस्त दक्षिणके राजा वैजयंतद्वारपर्यंत तिनिकूं जीतिकरि पश्चिमका समुद्र है सीमा जाकी ऐसी पश्चिमदिशा तहांके दिक्पालनितुल्य भूपाल तिनितैं प्रणाम करावता समस्त देवनिकूं कंपायमान करता समस्तदिशाके चक्रकूं अरिचक्ररहित करता भया । या भांति जीते हैं सकलभूप जानैं ऐसा नृपनिका प्रभु पृथ्वीकूं वशि करता भया

असी वनकी वेदी ताहि उलंघिकरि कटक सेनाके अधिकारीनिकरि निश्चित कीया वनकै मध्य निवास करता भया ॥ २० ॥ वन समीपकी भूमि सेनाके लोकनि रोकी, सेना सब दिशिमैं फैलि गई, वनके पंखी उडे सो मानूं वनके प्राण उडे वन उच्छ्वासरहित होता भया ॥ २१ ॥ अवतक चिरकालतैं कवहू न सुनी ऐसी कटककी ध्वनि सुनिकरि वनके तिर्यंच अधिक त्रासकूं प्राप्त भए यद्यपि इह करुणानिधानका कटक काहू जीवनिकूं बाधाकारी नांही तथापि भय मानते भए ॥ २२ ॥ कटकके क्षोभतैं वनका श्वेत हाथी शोभायमान है ध्वनि जाकी सो वनतैं वनांतरकूं जाता सोहता भया प्रगट हैं शरीरके अवयव जाकै, ऊंचा शरीर, मानूं ऐरावतही है ॥ २३ ॥ अर सिंह निश्चयसेती मुंह फाडि दिखावता संता मानूं ऐसी कहै है जो देखहु—मेरे उर अंतर्भय नांही ॥ २४ ॥ अर अष्टापद शीघ्रही आकाशकूं उछलिकरि पाछा भूमिमैं आय पऱ्या, पीठि ऊपजे पांव तिनिकरि संयुक्त है, नामकर्मकी निर्माणनामा प्रकृति ताके योगतैं ऐसाही शरीर जाका बन्या है, कबहूं जाहि भय न उपजै ॥२५॥ अर आरणा भैंसा सींगनिकरि छिद्ररूप कीया है वृक्षका पेड जानैं अर रोसकरि लाल हैं नेत्र जाकै खुरनिकरि पृथ्वीकूं खोदै है सो सेनाके लोकनि देख्या ॥ २६ ॥ अर सेनाके शब्द सुनिवेतैं उपज्या है भय जिनिकूं ऐसे वनके मृगादि कायर पशु ते विजयार्द्धकी गुफानिका आश्रय करते भए जैसें प्रलयकालके समैं आश्रय गहै हैं ॥ २७ ॥ यद्यपि मृगादिकनिकूं काहूनें उपद्रव न कीया तथापि बच्चानिसहित चहूं उरतैं भागे कंपायमान हैं अंग जिनिके मानूं भयके रसकरि सींचे हैं ॥ २८ ॥ अर वराह कहिए सूवर ते वराहार कहिए श्रेष्ठ आहार तासूं प्रीति तजि आगैं तजे हैं कर्दमसहित तुच्छ सरोवर जिनि, बिखरि गए हैं सेनाके भयतैं समूह जिनिके ॥ २९ ॥ अर कैयक वनके गज भयकरि शीघ्रही वनके सघन वृक्षनिमैं छिपि गए अर मृग मृगेंद्रनिकी गुफानिमैं धसि गए ॥ ३० ॥ या भांति वनके प्राणसमान वे प्राणी अतिशयपणें चलायमान भए बहुरि घनी वेरमैं सेनाका उद्वेग शांत भया तब वे विश्वासकूं प्राप्त भए जो इह कटक हिंसकनिका

बिदारी है भूमि जिनि ॥ ८ ॥ या भरतेश्वरके पवनकासा है वेग जिनिका अैसे तुरंग अठारह कोडि पायगाके होत भए, अैराकी है मुख्य जिनिमैं, महायोग्य, चक्रवर्त्तीके घोडानिको कहा कहना, अर और कटकके न्यारे ॥ ९ ॥ वह चक्रीकी सेना अनेक ध्वजानिकरि शोभित समुद्रके तट गमन करती समुद्रसूं प्रतिकूलता धारती भई, रोके हैं तीरके वन जानैं अर विदारी है तटकी भूमि अर अल्प कीया है जल जानैं ॥ १० ॥ पश्चिमदिशाकी सिंधुनामा नदी पृथ्वीनाथके आगमतैं हर्षित भई सो मानूं सेनाके भूपनिकूं अपनी तरंगसहित सीतल मंद सुगंध सुखकारी पवनकरि सेवती भई ॥ ११ ॥ जो पूर्वै गंगाका वर्णन करि आए सोही याका वर्णन जानू, उठै है झाग जामैं ता सिंधुकूं देखता संता नवनिधिका ईश्वर अैसी मानता भया जो मैं उत्तरदिशा जीति चुक्या ॥ १२ ॥ सिंधुनदीके तीर तीर सेनाका गमन करावता सोलहवां कुलकर आदिचक्री विजयार्द्ध पर्वतके समीप जाय प्राप्त भया। भावार्थ——कुलकर तौ चौदाही हैं परंतु आदितीर्थेश्वर अर आदिचक्रेश्वर तिनिहूंकूं कुलकर कहिए तातैं सोला कहे ॥ १३ ॥ सो विजयार्धगिरि मणिनिकरि निर्मापित जे नवशिखर तिनिकरि विस्तीर्ण आय दूरितैं देख्या मानूं वह रजताचल अर्घ लेय खडा है ॥ १४ ॥ सो रूपेका गिरि पवनकरि चलायमान जे वृक्ष तिनिकी हालै हैं शाखानिके अग्रभाग तेई भई भुजा तिनिकरि दूरितैं आया जो नरेंद्र ताहि बुलावै है ॥ १५ ॥ सो पर्वत शिखरनितैं पडते नीझरनांनिके जल तिनिकरि मानूं महीका महेंद्र आया ताकूं अर्घपाद्यही करता सोहै है ॥ १६ ॥ सो गिरि नागजातिके वृक्ष अर पुंनाग जातिके वृक्ष अर सुपारी आदि अनेक वृक्षानिके समूह तिनिकरि रमणीक अपने तटके वनस्थल तिनिकरि मानूं निधिपतिकूं निवास करिबेकूं बुलावै है ॥ १७ ॥ पवनकरि वनकी चौगिरद पुष्पनिकी मकरंद ताहि विस्तारता सन्मुख आयबेकूं मानूं उठ्या चाहै है; बोलै हैं कोयल तेई निश्चय सेती वादित्रनिके नाद भए ॥ १८ ॥ बहुत कहिबेकरि कहा ? सो पर्वत पृथ्वीपतिकूं दिग्विजयका उद्यमी देखि सत्कारके अंगनिकरि प्रगटपनैं मनुहारि करै है ॥ १९ ॥ प्रगट सोहै है तोरण जहां

देवनिसहित राजाका अभिषेक करावता भया अर कहता भया—इह मेरा नियोग है ॥ ४५ ॥ जासमैं विजयार्द्धनैं अभिषेक कीया तासमैं आकाशविषैं गंभीर वादित्र बाजे अर वनकी कुजगलीनिकूं हलावती शीतल मंद सुगंध पवन विचरी ॥ ४६ ॥ अर लीलासहित नचाई है भौंह जिनि ऐसी देवांगना नृत्य करती भई अर किंनरदेव जीतिके प्रशंसाके मंगलपाठ पढते भए ॥ ४७ ॥ वह देव चक्रेश्वरका अभिषेककरि मंडित करता भया अर जीतिकी असीस देता रत्ननिके लाभकरि मंडित करता भया ॥ ४८ ॥ रत्ननिकी झारी अर उज्ज्वल छत्र अर चमरयुगल मनोज्ञ अर रत्ननिका सिंहासन देता भया ॥ ४९ ॥ या भांति देवनैं नरदेवकी सेवा करी आभूषणनिकरि शोभित कीया अर स्तुतिके वचननिकरि अतिप्रशंसा करी तब आदीश्वरका नंदन ताविषैं कृपाकी दृष्टि विस्तारता भया ॥ ५० ॥ अर ताका सत्काररकरि विदा कीया सो चक्रनाथका सेवक होय अपना स्थानक गया ॥ ५१ ॥ विजयार्द्धके जीतेसैंतै समस्त दक्षिण भरतक्षेत्र जीत्या ऐसी मानताथका निधिका नाथ चक्ररत्नकूं पूजता भया ॥ ५२ ॥ गंध पुष्प धूप दीप फल अक्षत फल नैवेद्य देवोपुनीत महामनोहर द्रव्यनिकरि चक्रकी पूजा करी ॥ ५३ ॥ विजयार्द्धकूं जीत्या तौऊ थाकै जीतिका उद्यम मंद न भया, आधा भरतक्षेत्र और बाकी रह्या ताके जीतिवेका है उद्यम जाकै ऐसा चक्री विजयार्द्धकी पश्चिमदिशाकूं आयकरि गिरिकी पश्चिम गुफा ताके समीप वन ताहि बेढिकरि निवास करता भया ॥ ५४–५५ ॥ सो गिरिकी वेदी अर वनकी वेदी तिनि दोऊनिके मध्य अर सिंधुके तीरके वन तिनिकै बाहरि भरतेश्वरका कटक पड्या ॥ ५६ ॥ अर इह आज्ञा करी—इह गिरि बहुत आश्चर्यका भर्‍या है याविषैं मोहि बहुत वस्तु देखनी हैं तातैं इहां कैइक दिन मुकाम करूंगा ऐसी आज्ञाकरि भरतक्षेत्रका अधिपति बहुत दिन निवास करता भया ॥ ५७ ॥ बहुत दिन निवास कीया तौऊ अल्पमात्रहू धनक्षय न भया अपूर्व लाभकरि समुद्रकी नांई पूर्ण होता भया ॥ ५८ ॥ तहां चक्रीके मुकाम सुनि गंगा अर सिंधु दोऊ नदीनिके मध्य जे अनेक देश हुते तहांके राजा दर्शनकूं

नांही ॥ ३१ ॥ चक्रीका कटक किंचित् वनसूं वनांतर गया विजयार्द्धगिरिका पांचवां कूट ताकें तदें कटक आय खडा रह्या ॥ ३२ ॥ तहां वनविषैं मंद मंद पवन चाली ताकरि हालै हैं वृक्ष तहां चक्रीकी आज्ञाकरि सेनाके अधिकारी कटकका निवास करावते भए ॥ ३३ ॥ सेनाके लोक पहाडके तटविषैं अपनी इच्छासूं आवास ग्रहते भए, स्वयमेव पडे हैं पुष्पनिके समूह जहां अर सघन हैं वृक्ष जहां ॥ ३४ ॥ सरवरके तीर वृक्ष तिनिकै समीप लतानिकै मंडप अतिरमणीक तहां विना यत्न सेनाके लोकनिका आवास भया ॥ ३५ ॥ लोग कहै हैं—वनका प्रवेश वैराग्यका कारण है सो सेनाके लोकनिकूं वनका प्रवेश रागकै अर्थि होता भया ॥ ३६ ॥ अथानंतर तहां पृथ्वीपालका निवास निश्चय जानि विजयार्द्धगिरिका अधिपति विजयार्द्धनामा देव मागधकी नांई मिलिबे आया ॥ ३७ ॥ सो विजयार्द्धदेव मानूं दूजा विजयार्द्धपर्वतही है—विजयार्द्धके शिखर है याके मुकुट है अर गिरिके नीझरने हैं अर सुरके सूधा लांबा मोतीनिका हार है अर गिरिके कटक कहिए कटिनी है अर देवके कटक कहिए कडे हैं ॥ ३८ ॥ सुंदर सुफेद वस्त्र धरे पुष्पनिकी माला धरे हरिचंदनकरि चर्चित, धरे हैं रत्ननिके अर्घ जानें सो असा सोहता भया मानूं नवनिधिका नाथकी शंखनामा निधिही है ॥ ३९ ॥ सो अतिभक्तिसहित आयकरि पृथ्वीपतिकूं प्रणाम करता भया चक्रवर्ती ताका सत्कारकरि आसन दीया ॥ ४० ॥ सो देव नृपनिके देवसूं कहै है—हे देव ! मैं या पर्वतका रक्षक हूं, या गिरिके नव शिखर तिनिमें पांचवां विजयार्द्धकूट तहां मेरा निवास है चिरकालतैं स्वइच्छाचारी हुता अब आपके आधीन हूं अबतक अनाथ था ॥ ४१ ॥ मेरा नाम विजयार्द्ध जानूं अर या पर्वतका नाम विजयार्द्ध है याके आश्रयतैं मैं अलंघ्य हूं मेरे आश्रयतैं इह अलंघ्य है ॥ ४२ ॥ हे देव ! इह पर्वत दिग्विजयकी अर्द्धताकूं धारै है तातैं याका नाम विजयार्द्ध है ॥ ४३ ॥ अब आप आधी दिग्विजय करि चुके, हे दीर्घायु ! तिहारी आज्ञा पुष्पमालासमान मैं सिरपरि धरूं हूं आपके कटकके पयादे तिनिसमान हूं, और कहा विनती करूं ॥ ४४ ॥ या भांति कहतासंता विजयार्द्ध देव मंगलरूप तीर्थनिके जल तिनिकरि

सर्प शिथिल कांचुरीसहित सोहै हैं ॥ ७० ॥ कैयक योद्धा प्रगटपनैं आटोपसहित गरजे हैं, शस्त्रनिके अभ्यासविषैं उद्यमी मानूं शत्रुनिकूं अपने सन्मुख प्रत्यक्षही देखैं हैं ॥ ७१ ॥ अस्त्र कहिए दिव्यास्त्र अग्निवाण जलवाण पवनवाण नागबाण गरुड़वाण तिमिरवाण अर्कबाण गजवाण सिंहबाण गिरिवाण वज्रवाण इत्यादि अनेक जातिके दिव्यास्त्र हैं अर व्यस्त्र कहिए महावृक्ष महास्तंभ महाशिला इत्यादि अनेक अर शस्त्र कहिए कटारी तरवार सेल धनुषवाण खेट कुवार फरसा इत्यादि अनेक जातिके सामान्य शस्त्र अर तनुत्र कहिए बगतर अर शिरस्त्र कहिए माथेके टोप तिनिकूं सुभट धारते भए नाना-प्रकारके आयुध तिनिकरि राजानिकी आयुधशाला भरी है अर कटकके बाजारकी हाटनिमैं अनेक आयुध भरे हैं ॥ ७२ ॥ जे रथनिके असवार हैं ते रथनिके समूहविषैं नानाप्रकारके आयुध आरोपण करते भए सब बातनिकरि सजे अपने स्वामीनितैं अतिप्रशंसा पावते भए ॥ ७३ ॥ अर हाथीनिके चरण-निकी रक्षाके निमित्त हस्तिपालनिके समझतैं भले भले सुभट राजनि हाथिनिके समीप राखे जब राज-निका परस्पर हाथी चढे युद्ध होय तब हाथिनिके पायनिकी रक्षा करनी ॥ ७४ ॥ अर पयादेनिमैं नायक बडे सुभटराज युद्धविषैं समर्थ ते पयादेनिकी सेनाके अग्रभागी हैं अर घोडेनिके असवार जिनिके घोडे तरंग समान उछलते तिनिपरि बगतरसहित चढे असवार मुख्य हैं तुरंगनिपरि डारी है पाखर जिनि ॥ ७५ ॥ कैइक अपनी सेनाकूं सजिकरि स्वामीनिकूं महोल्लास देते भए अर आप अपने योद्धानिकूं निर-खते भए सुभटनि सेनाके व्यूह रचे सो व्यूह च्यारि प्रकार हैं—तिरछी सेना खडी रहै सो दंड व्यूह कहिए अर गोलाकार मंडलकी नांई सेनाखडी रहै सो मंडलव्यूह कहिए अर सर्पके फणके आकार सेना खडी रहै सो भोगव्यूह कहिए भोग नाम सर्पके फणका है अर सब न्यारे न्यारे आतिरेसूं खडे रहैं घिलिमिलि ऊभे न रहैं सो असंहतव्यूह कहिए ॥७६॥ सावंत मनमैं विचारै हैं—इह चक्रवर्ती महाभाग याकै ऐसा समय कब होय जासमैं हम अल्प पराक्रमी अल्पविभूतिके धनी सेवामैं भले दिखावैं इह महाभाग है, ऐसा कौन

शिरसूं लगाय सीस आए ॥ ५९॥ दूरतें नम्रीभूत भए हैं चलायमान मुकुट जिनिकै अपने करकमल नमाय प्रणाम करते महीपति स्वामीके चरणनिविषैं भक्ति प्रगट करते भए ॥ ६०॥ केसर अगर कपूर सुवर्ण माणिक मोती अनेक प्रकारके रत्न तिनिकरि महाभक्तिथकी राजेश्वरकूं पूजते भए ॥ ६१॥ सो राजेश्वर चक्रादि चौदह रत्ननिका स्वामी है अर जाकै और अनेक रत्न हैं, रत्ननिकी राशिकरि निरंतर सब उरतैं पूरता जो भंडार ताविषैं प्रवेशयोग्य जे रत्नादिक तिनिकी मर्यादा कौन करिसकै? याके घरमैं एती विभूति है इह गिनती कौन करि सकै?॥ ६२॥ कटकके अधिकारीनिके प्रेरे देशनिके अधिकारी तृण इंधनादि सामग्रीनिकरि कटकके लोकनिका सन्मान करते भए॥ ६३॥ आधा भरतक्षेत्र तौ जीति चुक्या अर विजयार्द्धपैला आधा भरत जीतिवेका उद्यमी है ऐसा सुनिकरि कुरुजंगलदेशके राजा सोमप्रभके पुत्र जयकुमारादिक चक्रवर्त्तीके बडे उमराव समस्त बलवाहनसहित आए ॥ ६४॥ कैइक राजा मंडलेश्वर बुलाए आए, कैइक राजा महाभट विना बुलाए आए॥ ६५॥ दूरदेश जाना है अर म्लेच्छराजा जीतने हैं ऐसा विचारि सब सावंत शस्त्रादिक सांतरे करते भए॥ ६६॥ जे धनुषधारी हैं ते शर कहिए बडे तीर अर नाराच कहिए छोटे नावकके तीर तिनिसूं भरे तर्कश तिनिके वांधिवेकरि मानूं अपने स्वामीनिकूं अपना ऋणका दासपना प्रगट निवेदन करै हैं। भावार्थ—हम तिहारा अन्न खाया है हमारे सिर इह ऋण है सो हम अन्नकै साटै (बदले) जीव देवेकूं उद्यमी हैं॥६७॥ धनुषके धारी फिडचिसहित धनुष ताहि खैंचते हुंकारशब्द करते ऐसे सोहै हैं मानूं शत्रुनिका जीवही खैंच्या चाहै हैं ॥ ६८॥ अर कैइक तरवारि हाथमैं लेयकरि तौलै हैं सो मानूं स्वामीके सत्कारका भार अर खड्गका भार तोलिवेकी इच्छा करै हैं। भावार्थ—जैसा स्वामी हमारा सत्कार करै है तैसी हमसूं सेवा बनै कि न बनै? हमारी तरवारि युद्धविषैं शत्रुनिपरि ऐसी चालै कि न चालै?॥ ६९॥ कैइक सावंत देदीप्यमान हैं खड्ग जिनिके ते वगतर पहरे कैसे सोहै हैं मानूं चलायमान है जिह्वा जिनिकी ऐसे महा-

गर्जना अर सुभटनिके सिंहनाद इत्यादि सेनाकी ध्वनि सो गिरिकूं शब्दायमान करती भई गिरिहू गूंजि उठ्या ॥ ८८ ॥ कटककी ध्वनिकरि गिरिकी गुफाकै छिद्रनितैं ध्वनि निकसी सो मानूं वह गिरि प्रबलसेनाके निरोधतैं रुकिगया है सो पुकार करै है ॥ ८९ ॥ अथानंतर—देदीप्यमान है मुकुट जाका सो मुकुटकी प्रभाकरि प्रकाशित कीया है आकाश जानैं ऐसा कृतमालीनामा देव सो गिरितैं उतरता नरेंद्रनैं देख्या ॥ ९० ॥ वह देव अपने सेवकनिसहित गिरितैं उतरता ऐसा सोहता भया मानूं वनसहित कल्पवृक्ष आवै है। कैसा है देव—देदीप्यमान हैं वस्त्राभरण जाकै ॥ ९१ ॥ सो देव आवता कटकके लोकनि ऐसें भ्रमसहित देख्या—इह कोऊ दिव्यप्रभाका पुंज आकाशविषैं प्राप्त भया है कि बिजुरीनिका समूह है कि अग्निकी ज्वाला है? ॥ ९२ ॥ इह कोई अधिकज्योति है प्रथम तौ लोकनि भेद न जान्या पीछैं अवयव अर अंगकी प्रगटताकरि प्रगट पुरुषाकार देव जान्या ॥ ९३ ॥ कृतमाल है नाम जाका सो अपने नामकी प्रगटताकै अर्थि मानूं चंपककी माल पहरे पृथ्वीपतिकै समीप आया सो चक्रवर्तीनैं देख्या। कैसा है कृतमाल—जैसें कोऊ माला पहरि फूलै तैसैं प्रफुल्लित है ॥ ९४ ॥ सो आयकरि पायनिकूं प्रणाम करता भया ताहि देखि चक्रेश्वर ताका यथायोग्य सन्मानकरि आसन दीया ॥ ९५ ॥ स्वामीकी आज्ञा पाय वह तिष्ठ्या, चक्रीका तेज मनुष्यनिमैं न पाइए देवनिहूतैं अधिक सो देखिकरि देव क्षणेक अचिरजरूप होयरह्या ॥ ९६ ॥ कृपाकरि राजेश्वरनैं कृपाके वचन कहे तब वह देव विनयरूप ऐसे वचन कहता भया ॥ ९७ ॥ हे देव! कहां तुम दिव्य मनुष्य अर कहां हम क्षुद्र देव तिहारे देखतैं इह हमारी देवयोनि वृथा है, तिहारे तेज आगैं बोलिवेकी शक्ति नांही तथापि तिहारी भक्ति हमकूं वाचाल करै है ॥९८॥ हे दीर्घायु! तिहारी कुशल पूछते हम लज्जावान होय हैं तुम जगतके रक्षक तिहारै आधीन समस्त भरतक्षेत्रकी कुशलक्रिया है, तिहारी कुशल कहा पूछनी? ॥ ९९ ॥ हे देव! इह तिहारी दाहिनी भुजा कुशलरूप है लोकके कल्याण करनेविषैं प्रसिद्ध है प्रवीणता जाकी समस्त पृथ्वीकी जीतनहारी

शत्रु है जो यासूं सन्मुख होय लडै अर हम तासमैं सेवामैं पहौंचै, हमारै केवल याकी भक्ति है सो भक्ति साधनी, जाउर जाय ताउर चले जाना सेवामैं सावधान रहना, सेवामैं चूकना नांही, कूचकै समैं कूच, मुकामकै समै मुकाम ॥ ७७ ॥ सेवकका धर्म है जो स्वामीका औसर साधै अर आपका जसरूप धन विस्तारै विरोधीके बलकूं उच्छेदै ए पुरुषनिके व्रत हैं सो धारने ॥ ७८ ॥ कटककै लोक परस्पर ऐसे वचन प्रशंसा योग्य कहते भए—जो देखने हैं बहुत देश अर पावनी है जीतिकी आसिका ॥ ७९ ॥ इह विजयार्द्धगिरि अतिविषम उलंघना है अर याविषैं नदी अतिविषम है सो असवारीका वडा कष्ट तातैं वाहनरहितपनाकूं प्रशस्त जानते भए ॥ ८० ॥ या भांति नानाप्रकारके भाव अर नानाप्रकारके आलाप तिनिकरि शीघ्रही सेनाके लोक जहां जहां हुते सो अपने स्वामीनिसहित कटकमैं आए ॥ ८१ ॥ सव सामग्री सहित राजा राजेश्वरपै आए, मूंग चावल अन्नादिकनितैं बलध भरै ल्याए, सवनि जानी—पृथ्वीपतिका हिमाचल पर्यंत गमन है अर वहुत दिन जीतिका उद्यम है ॥ ८२ ॥ कैइक राजा जिनिकै वडी सेना, कैइक सेवक लाठी करविषैं ग्रहैं ऐसे लाकुटिक बहुरि लालाटिक कहिए स्वामीकी चित्तकी वृत्तिके जाननहारे अर कार्य करिबेकूं समर्थ तिनिसहित भूपेंद्रके समीप आए, जिनिकै योद्धानिके अनेक आयुध हैं कैइक लोहदंडहूके धारक हैं ॥ ८३ ॥ वहूंउरतैं सेनासहित नानाप्रकारकी सामग्री सहित सावंत चक्रीकै समीप आय जय जयकार शब्द करते भए, कैसा है चक्री—पूर्ण है आज्ञा जाकी कोऊही आज्ञा लोपि सकै नांही ॥ ८४ ॥ मिले हैं सव उरतैं साभंतनिके समाज सो जैसैं नदीनिके समूहकरि समुद्र भरै तैसैं चक्रीका कटक सुभटनिकरि पूर्ण होता भया ॥ ८५ ॥ वह वन वह भूमि वह पर्वत सव उर सेनाकरि रुकिगया जैसैं जिनराजके जन्मोत्सवविषैं देवनिकी सेनाकरि सुमेरु रुक्या हुता ॥ ८६ ॥ विजयार्द्धपर्वतके तट पृथ्वीपतिके कटकमंडप स्वर्गके निवासकी शोभाकूं विस्तारते भए, कैसा है नृपेंद्रका कटक—ठौर ठौर शोभित हैं नृपनिके मंदिर जहां ॥ ८७ ॥ रथनिके चीतकार अर तुरंगनिकी हीसनां अर गजनिका

अल्प हैं समस्त असंख्यात द्वीप समुद्र तिनिविषैं कोऊ ही वस्तु हमतैं अगोचर नांही हम व्यंतर या समस्त मध्यलोकके मर्मी हैं ॥ १२ ॥ सर्वत्र हमारे स्थानक हैं हम व्यंतर वटवृक्षनिमैं रहैं हैं अर अवट कहिए औंडी जायगा खाडे खोचरे तिनिमैं रहै हैं अर गिरिनिके शिखरानिमैं रहै हैं अर वृक्षके खोलरानिमैं रहै हैं अर उटज पर्णशाला तिनिमैं रहै हैं अर अक्षपाटा कहिए दिनविषैं भ्रमण करै हैं अर क्षपाटा कहिए रात्रिविषैं भ्रमण करै हैं, हे सार्व कहिए सब प्रजाके हितू ! हमकूं तुम मध्यलोकविषैं सर्वगामी जानहु ॥ १३ ॥ या भांति शांतरूप अर तेजस्वी वचन अतिआदरसूं कहिकरि वह देव नरेंद्रकूं तिलकादिक चौदह आभरण देता भया ते आभरण और ठौर न पाइये तिनिकूं पायकरि राजेंद्र, अतिहर्षकूं प्राप्त भया, देवका सत्कार कीया सो देव भी अतिहर्षित भया ॥ १४–१५ ॥ विजयार्द्धकी गुफाके द्वारका प्रवेश ताका उपाय बतावनहारा कृतमाली ताथकी सब भेद लेकरि ताकै आगैही सेनापतिकूं गुफाद्वार उघारिबेकूं बिदा कीया, पीछैं देवकूं सीख दई ॥ ११६ ॥ सेनापतिसूं पृथ्वीपतिनैं आज्ञाकारी, तू जा या गुफाका द्वार उघारि अर जेतैं गुफा-द्वार शीतल न होय तेतैं पैले दोय म्लेच्छखंड तिनिके जीतिबेकै अर्थि उद्यम करि ॥ १७ ॥ या भांति चक्रेश्वरका आदेश सिरपरि मालकी नांई धरता संता सेनापति कृतमालदेवका कह्या समस्त उपायका वेत्ता, महाप्रवीण कैयक तुरंगनिसहित सामग्री लेकरि अश्वरत्नपरि चढ्या, दंडरत्न है जाकै हाथमैं ॥ १८–१९ ॥ सो सेनाथकी कछुइक दूर जाकरि सिंधुनदीके वनकी वेदीकूं उलंघिकरि विजयार्द्धके तटकी वेदी पहोंच्या ॥ २० ॥ तहां सिवाननिकरि विजयार्द्धगिरिकी वेदी तहां चढिकरि पश्चिमदिशाकूं है मुख जाका सो सेनापति गुफाकै समीप आय प्राप्त भया ॥ २१ ॥ अश्वरत्नपरि आरूढ मुखतैं इह शब्द करता भया जो चक्रवर्त्ती जयवंत होहु, बहुरि दंडरत्नकरि गुफाके द्वारका ताडन कीया सो गुफाके द्वारतैं प्रगट महाध्वनि निकसी ॥ २२ ॥ दंडरत्नके ताडनकरि गुफाका द्वार आगलरहित भया तब गुफाके गर्भतैं महाप्रचंड उष्णता निकसी ॥ १२३ ॥ दोऊ कपाट महा वज्रमई दंडके घातकरि अत्यंत ध्वनि

रावरी भुजा कल्याणरूप रहौ ॥ १०० ॥ समस्त जगतके जीतिवेतैं तुम देवनिके प्यारे देव हौ अर हम तौ जातिमात्र नाममात्र देव हैं इह कहावति है जो ए देव हैं ॥ १०१ ॥ हे देव ! हमारा संस्कृतविषैं गीर्वाण-नाम है सो गीर्वाणका अर्थ कहा ? वचनही हैं बाण जिनिके, सो और ठौर तौ हम गीर्वाण हैं जीतिवेविषैं वचनही हैं शस्त्र जिनिकै अर तिहारे पायनितौ हम मंदवचन होयगए हैं बोलिवेकी सामर्थ्य नांही, दूरि होय गया है गर्व हमारा सो गद्गदवाणी बोलै हैं ॥ १०२ ॥ हे राजेंद्र ! पृथ्वीविषैं राजा तुमहीहौ इह राज-पदवी तुमहीकूं सोहै है या पृथ्वीविषैं राजा और नांही, इह समस्त छहखंड पृथ्वी अखंड तिहारी आज्ञा-मैं है, तुम सबके रक्षक हौ ॥ १०३ ॥ इह तिहारा दुःसह प्रताप चक्रके स्वरूपकरि पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध है, हे प्रभो ! दंडरत्नके मिषतैं तुम पृथ्वीविषैं दंडनीति विस्तारो हौ, जे दुष्ट परधन परद्रोह इत्यादि महापापनिके करनहारे तिनिका निग्रह करोहौ अर जे दयावान सत्यवादी न्यायमार्गके चलनहारे तिनिपरि कृपा करो-हौ ॥ १०४ ॥ इह भरतक्षेत्रकी समस्त पृथ्वी तुम्हारे प्रसादतैं ऐश्वर्यवती होवेकूं योग्य है, हे ईश्वर ! तुम स्वाधीन हौ सब तिहारे आधीन है तिहारीसी निधि रत्नऋद्धि ऐश्वर्य तिहारेंही है तुम सारिखा और समर्थ कोऊ नांही ॥ ५ ॥ ऐसै है आगलरहित निरंतर तिहारी अकेली कीर्त्ति सब लोकविषैं अर सरस्वती अतिवाचाल सो ए दोऊ तिहारे कैसे प्रियतमा भई ? ॥ ६ ॥ प्रसिद्ध है महिमा तिहारी सो तिहारी सेवा करिवेकूं तिहारे कटकके शब्दके क्षोभके भयतैं हम अपना लोक छांडि तिहारे निकट आए हैं ॥ ७ ॥ हम या पर्वतके शिखरविषैं तिष्ठैं हैं कूटस्थल हैं अपने स्थानकथकी एती भूमिपर्यंत तिहारे प्रभावतैं आए हैं ॥ ८ ॥ हम व्यंतरदेव या गिरिके निवासी सर्व कार्य करिवेयोग्य तिहारे पयादेनिके तुल्य सेवक हैं सो आप अपने करहु ॥ ९ ॥ तुम मोहि या विजयार्द्धगिरिका मर्मी जानहु मेरा नाम कृतमाल है विजयार्द्धके या कूटविषैं मेरा स्थान है ॥११०॥ हे देव ! एक मोहि वशिकरि तुम इह सब पर्वत वाशि कीया या पर्वतकी गुफा अर वन सबनिका मैं भेदीहूं, इहांका मोहि मर्मी जानहु ॥ ११ ॥ या गिरिका भेदीहूं, इह कहना

पऱ्या है अब तुम सेनासहित शीघ्रही स्वामीके आराधनकूं चालौ ॥ ३५ ॥ वह भरतक्षेत्रका राजा चक्रेश्वर सबनिका स्वामी है, सब वाकी आज्ञामैं हैं, वापरि आज्ञा करणहारे कोऊ नांही, वाकी आज्ञा तुम सिरपरि धारौ या भांति उनकूं शिक्षा दई ॥ ३६ ॥ तब बनमैं कैइक बुद्धिवान हुते तिनि चक्रीकी आज्ञा अंगीकार करी अर सेनापतिसूं कही हम चिरकालमैं अब सनाथ भए या भांति अतिस्तुतिकरि आसीस दई ॥३७॥ अर कैइक राजा लेशमात्र ऐश्वर्यकरि दूषित हुते संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव अर आश्रय ए राजानिके षट्गुण तिनिके वेत्ता पराक्रमी हुते ते सेनापतिनैं बलात्कारतैं आज्ञारूप कीए ॥ ३८ ॥ अर कैइक म्लेच्छराजा झाड पकरि लरिबेकूं उद्यमी भए तिनिकूं सब उरतैं बंदिकरि सेनापति वश करता भया अज्ञानी अधिक पीडित होय तब आज्ञा मानै ॥ ३९ ॥ अर कैइक म्लेच्छराजा चक्रवर्त्तीके कटककरि वेढे पीडा सहिबेकूं असमर्थ भए तब चक्रवर्त्तीकी आज्ञामैं आए जैसैं तिलनिकूं पेलै तब तिनिमैंतैं स्नेह प्रगट होय अर खलता दूरि होय तैसैं दुर्जनकूं पीडै तब खलता तजि स्नेहकूं प्रकाशै ॥ १४० ॥ या भांति उपायकरि वह सेनापति सब उपायका जाननहारा म्लेच्छराजानिकूं वशिकरि तिनितैं कन्यादि रत्न प्रभुके भोगयोग्य लेता भया ॥ ४१ ॥ ते धर्मकर्मतैं रहित हैं मुनि श्रावकका धर्म नांही तातैं तिनिकूं म्लेच्छ कहिए अर विवाहादि आचार आर्यखंडकै अर उनके समान हैं ॥ ४२ ॥ या भांति वह म्लेच्छक्षेत्रकी भूमि व्रतविधानरहित ताहि वशिकरि म्लेच्छराजानिकूं लार लेय सेनासहित पाछा पृथ्वीपतिपै आया ॥ ४२ ॥ सो सेनापति अश्वरत्नसहित सोहता भया, सिद्धकरी है दिग्विजय जानैं मानूं इह चक्रवर्त्तीका जीतिरूप प्रतापही मूर्त्तिवान है ॥ ४४ ॥ सेनापति सिंधुनदीके वनकी वेदी तोरणसहित ताहि उलंघिकरि विजयार्द्धके तटकी वेदी सिवाणसहित तहां आया ॥ १४५ ॥ सो पर्वतकी वेदीपर चढ्या विस्तीर्ण है उरस्थल जाका अर मोटी है भुजा जाकी सो छह महीनेमैं गुफाकी उष्णता शांत भई तब गुफाके दरवाजे आया ॥ ४६ ॥ अर तहां डेरेकरि गुफाका उदर सोध्या बहुत है विघ्न जामैं, तहां सावधानीसूं रक्षाकी विधिकरि चक्रधरके

करते भए जैसैं वेदनावानके तनतैं पसेव निकसै तैसैं गुफाके गर्भतैं ऊष्मा निकसी ॥ २४ ॥ उघरे हैं कपाट जाके ऐसा द्वार ताकरि उष्णताका वमन करता विजयार्द्धगिरि सोहता भया मानूं चिरकालमैं उच्छ्वास लीया है ॥ १२५ ॥ कपाटयुगलके उघडिवेतैं गिरि महाध्वनी करता भया मानूं दंडरत्नके घातकरि पर्वत पुकारही करै है ॥ २६ ॥ सो अश्वरत्न गुफाकी उष्णताकरि न स्पर्श्या गया, शीघ्रही दूरि आय पर्‍या, देवनि अश्वकी रक्षाकरी, हजार देव याके रक्षक हैं ॥ २७ ॥ आकाशतैं अश्व ऊपरि पुष्पनिके समूह पडे अर देवांगनानिकी दृष्टि पडी, मानूं इह पहोपवृष्टि न भई जयलक्ष्मी ही प्रगट हंसै है ॥ २८ ॥ सो सेनापति विजयार्द्धके तटकी वेदी सिवाणसहित ताहि उलंघता भया अर तोरणसहित सिंधुनदीके पश्चिमवनकी वेदी तहां आय पहोंच्या ॥ २९ ॥ ता वेदीकूं उलंघिकरि पश्चिमदिशाके म्लेच्छखंड आया, कैसी है वह भूमि—नानाप्रकारकी खानि अनेक नगर अनेक गांव तिनिकी सीमाके उपवन तिनिकरि शोभित है ॥ ३० ॥ जब सेनापतिनें प्रवेश कीया तब तहांकी प्रजा त्रासकूं प्राप्त भई पुत्र कलत्र गाय भैंसि गाडा वलध लेकरि भागिबेकूं उद्यमी भए ॥ ३१ ॥ अर कैइक धीर पुरुष बुद्धिवान अर्धसहित पवित्र अक्षतादिकरि आसिखा वंधाय सेनासहित जो सेनापति तासूं आय मिले ॥ ३२ ॥ तब सेनापति सबनिकूं धैर्य बंधाया, कही—भय न करो, सुखसूं तिष्ठो, पृथ्वीका पति सबनिके सुखका अभिलाषी है, इही आज्ञा है जो कोऊ काहूकूं पीरि न सकै, सेनापतिके किंकर दिलासा देते सब ठौर भ्रमैं तब प्रजा सुखसूं तिष्ठी जानी, चक्रेश्वर सबनिका माता पिता है, प्रजापाल है पीडाकारी नांही, जो सबल होय निबलकूं पीडा उपजावैगा ताका चक्रवर्त्ती निग्रह करैगा ॥ ३३ ॥ म्लेच्छखंड जहां काहूकी आज्ञा न चालै तहां चक्रवर्त्तीकी आज्ञा सबनि मानी, कैसा है चक्रवर्त्तीका सेनापति—अखंड है आज्ञा जाकी सो म्लेच्छखंडविषैं परिभ्रमण करता संता पृथ्वीनाथकी आज्ञा म्लेच्छ राजानिकूं ग्रहण करावता भया ॥ ३४ ॥ अर म्लेच्छराजानिसूं कही—इह सब चक्रवर्त्तीका क्षेत्र है सो राजेंद्र तिहारे समीप आय

समान उज्ज्वल है छवि जिनिकी अर महामनो-
चमर [illegible] विजयार्धका शिखरही [illegible] इनि सिवाय और हू अमोलक रत्न अंगीकार
हर उत्तुंग सिंहासन मानूं विजयार्धका शिखरही ताहि पूजिकरि आदरसहित देता भया
करता भया ॥ १५८ ॥ बहुरि कृतमाल है नाम जाका सो देव ताहि पूजिकरि आदरसहित देता भया
सकल आभूषण, देवन ऐसा अद्भुत अनुपम आभरण दीये जिनिकी तुल्यता जगतमैं नांही तिनि आभू-
षणनिकरि चक्रवर्त्ती रत्नमई सिंहासनपरि बैठ्या ऐसा सोहता भया जैसा मेरुके तटकूं आश्रय फूल्या
कल्पवृक्ष सोहै ॥ १५९ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे विजयार्द्ध गुहाद्वारोद्घाटनवर्णन नाम इकतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३१ ॥

अथ बत्तीसवां पर्व ।

अथानंतर और दिन सेनाके नृप भूपेंद्रका प्रयाणसमय जानते भए, कैसे हैं नृप—प्राप्त भया है
प्रयाणका संभ्रम जिनिकूं बहुरि कैसे हैं—सन्नद्ध कहिए वस्त्र आयुध वाहन आदि सब बातनिमैं सजे हैं
॥ १ ॥ सांतरे हैं हाथिनिके समूह घोडनिके समूह रथनिके समूह पयादेनिके समूह तिनिकरि राजांगणहू
न रुक्या पर्वतके सब वनहु रुकिगए ॥ २ ॥ जयकुंजरनामा गजराज तापरि आरूढ भया राजनिका
इंद्र सो बडे बडे राजानिसहित प्रयाणके अर्थि निकसता कैसा सोहता भया जैसा देवनिसहित इंद्र सोहै
॥ ३ ॥ कछुइक पश्चिमकी उर जाय सेनापतिका सोध्या जो पंथ ताविषैं संकुचिकरि सेना चाली सो
ऐसी सोहती भई मानूं ईर्यासमितिकी शुद्धिकूं प्राप्त भई है ॥ ४ ॥ सो नृपेंद्रकी सेना जैसे मुनिके भावनिकी
शुद्धता क्षपकश्रेणीविषैं आरूढ होय तैसैं इह सेना विजयार्द्धकी श्रेणीकूं विना खेद चढती भई, कैसी हैं
क्षपकश्रेणी—प्रगुणस्थानसोपाना कहिए उत्कृष्ट गुणस्थान आठवां नवमां दशमां अर बारमां एही हैं
सिवाण जाके अर कैसी है विजयार्द्धकी श्रेणि प्रगुणस्थानसोपाना कहिए सरल आकारकूं धरे सुंदर हैं

कटक आया ॥ ४७ ॥ जब सेनापति आया तब बडे राजा सन्मुख गए, जायकरि जय जयकार शब्द करते सेनापतिकूं ल्याए ॥ १४८ ॥ सेनापति बाजारके मार्ग होय राजद्वार आया, कैसा है बाजार—ऊंचे हैं तोरण जहां अर फरहरे हैं ध्वजानिकी पंक्ति जहां ॥ ४९ ॥ सेनापति दूरिहीतैं तुरंगसूं उतरि सभासहित चक्रवर्त्ती बिराजे हुते तहां आया ॥ ५० ॥ दूरहीसूं नम्रीभूत होय गया है चलायमान मुकुट जाका, दोऊ हाथ जोडि सीस नमाय नमस्कार करता भया, सब सभाके लोकनि देख्या, देखिकरि अचिरजकूं प्राप्त भए ॥ ५१ ॥ जय जयकार शब्दकरि वाचाल हैं मुख जिनिके ऐसे म्लेच्छखंडके राजा सेनापतिकी लार राजेंद्रपै आयकरि अपने ललाटतैं स्पर्शा है भूतल जिनि सो प्रणाम करते भए ॥ ५२ ॥ सेनापति उनके ल्याए रत्ननिके अर्घ तिनिकरि पूजताथका स्वामीके समीप म्लेच्छराजानिकी भेंट धरता उन म्लेच्छ राजानिके नाम अर देश निवेदन करता संता सबनि बतावता भया ॥ ५३ ॥ चक्रवर्त्ती तिनिसूं अति प्रसन्न होय यथायोग्य तिनिका सन्मानकरि कटकमैं डेरे कीए हैं तहां जायबेकी आज्ञाकरी, ते नरेंद्रकी आज्ञा पाय अपने डेरा जाते भए ॥ ५४ ॥ या भांति पुण्यके उदयतैं चक्री बलात्कार म्लेच्छराजानिकूं जीतता भया, पुण्यविना जीति कहां ? ॥ ५५ ॥ अथानंतर राजानिके समूहनैं अनुरागसहित सेनापतिकी पूजा करी, जीते हैं सकल गढ जानैं अर नचाए हैं म्लेच्छखंडके राजा, बहुरि चौदहरत्नका स्वामी चक्रवर्त्ती तानैं सेनापतिका बहुत सन्मान कीया बहुरि विजयके अर्थि अग्रेसरपदविषैं थाप्या, इह सेनापति जीतिके चिह्नकरि जीतिका स्वरूपही है ॥ ५६ ॥ जिनवरका शासन जयवंत होहु जाके प्रसादतैं लीलामात्रमैं चक्रवर्त्तीपद पाइए, कैसा है चक्रवर्त्तीपद—उचित जे निधिरत्न तिनिके योगतैं उत्कृष्ट भोगोपभोग तिनिकरि प्रगट कीया है सारभूत सुख तहां अर अतुल्यसंपदा ताकरि अत्यंत सार है ॥ १५७ ॥ यह भरतचक्रवर्त्ती विजयार्द्धगिरिका नाथ जो विजयार्द्ध नामा देव ताके जीतिबेतैं ए अद्भुत वस्तु पावता भया, चंद्रमाकी किरणनिकूं हंसै ऐसा मनोज्ञ उज्ज्वल छत्र, सुवर्णका है देदीप्यमान दंड जाके अर दोय

अर चक्ररत्नका देदीप्यमान प्रकाश सेनापति अग्रगामी सो कटक इनिके पीछै द्विधा होयकरि चाल्या ॥ १७ ॥ सिंधुनदीका प्रवाह पूर्वापर दोऊउर बहै है सो कटक सिंधुका जल पीवता सुखसूं चाल्या ॥१८॥ जहां दुराहा आया तहां सेनाके अग्रगामीनैं सेना थांभी तब सेनाके विभागविषैं संदेहवती होती भई बहुरि अग्रगामीकी आज्ञाप्रमाण उत्तरकी उर चाली ॥ १९ ॥ कैयक प्रयाणनिमैं सुखसूं गुफाकी अर्द्धभूमि चक्रीका कटक आय पहौंच्या, प्रयाण प्रयाणप्रति अन्न जल तृणकी प्रचुरता रही ॥ २० ॥ तहां मध्यभाग-विषैं गुफाकी दोऊ उर भींति तिनिकै दोऊ कुंड तिनितैं निकसिकरि सिंधुमैं प्रवेश कीया है अैसी दोय उपनदी एकका नाम उन्मग्नजला दूजी निमग्नजला तहां कटक पहुंच्या ॥ २१ ॥ तिनिकै तट भरतेश्वर सेनाकूं थांभि दोऊ नदीनिकी विषमता कौतुकसहित देखता भया ॥ २२ ॥ एक उन्मग्नजला सो तौ काष्ठादिक तिरिवेके उपाय तिनिकूं ऊंचे उछालै अर दूजी निमग्नजला सो नीचे डबोवे दोऊ नदीनिका विरुद्ध स्वभाव सो कैसें सेनाकूं पार उतारिए ? ॥ २३ ॥ नदीके उतरिणेका उपाय कहा ? अैसा विचारि-करि शीघ्रही सिलावटरत्न बुलाया ॥२४॥ सो दोऊ नदीनिकूं निरखता भया एकका जल ऊंचा उछलता एकका जल नीचा परता सो दृष्टिकरि नदीनिकूं तोलता भया जाकी दृष्टिमैं नदी आंजुलीके जलसमान भासी ॥ २५ ॥ सिलावटनैं मनमैं विचारी इह सब वायुका प्रभाव है उन्मग्नजलाके जलकूं वायु ऊंचा उछालै है जैसैं सांस ऊंचा उठै अर निमग्नजलाके जलकूं वायु नीचा ढारै है जैसैं श्वाँस नीचा आवै ॥ २६ ॥ सो इनि दोऊनिकी पुल बांधिए या सिवाय और उपाय नांही जैसैं बडा वैद्य वमन अर विरेचनका दोऊ वेग थांभे ॥ २७ ॥ इह विचारि अपनी दिव्यशक्तिके प्रभावतैं जे निर्जनवनविषैं वृक्ष हुते ते देवमायाकरि मंगाए ॥ २८ ॥ सारभूत जे वृक्षनिके लट्ठे तिनिके जलविषैं थंभ रोपे अर तिनिके ऊपरि पुल बांधी ॥ २९ ॥ बहुत बेरमैं कटककूं कष्ट होयगा तातैं क्षणमात्रमैं स्वामीकी आज्ञातैं पुल बांधी, कैसा है सिला-वट—धीर है बुद्धि जाकी इह चौदहरत्ननिमैं एक रत्न है हजार देव याकी सेवा करै हैं ॥३०॥ जब पुल तयार

सिवाण जाकै जिनिमैं वक्रता नांही ॥ ५ ॥ तमिस्रानामा गुफा पहाडकी चौडाई समान पचास योजन है लंबाई जाकी अर आठ योजन ऊंची अर बारह योजन चौडी ॥ ६ ॥ अर आठ योजन ऊंचे वज्रमई हैं कपाटयुगल जाकै एक एक कपाट छह छह योजन कछुइक अधिक चौडा है दोऊ कपाट बारह योजन कछुइक अधिक चौडे हैं ॥ ७ ॥ कैसी है वह तमिस्रानाम गुफा—अमोलिक मणिनिकरि निर्मापित है सुंदर द्वार जाका अर द्वारके नीचे निकसै है सिंधुनदीका प्रवाह ताकरि शोभित है ॥८॥ ए गुफाके द्वारके कपाट चक्रवर्तीके सेनापति बिनु और कोऊ उघारिवे समर्थ नांही। जब सेनापतिनैं द्वार उघाड्या तब सब ऊष्मा निकसि गई ॥ ९ ॥ इह गुफा लोककी स्थितिसमान अनादि है, काहूनैं घडी नांहि अर ऐसी दीखै है मानूं काहूनैं घडी है, बहुरि कैसी है—मानूं जिनवाणीसमान महागंभीर है जिनवाणी अगम्य है अर गुफाहू अगम्य है ॥ १० ॥ बहुरि वह गुफा जीवनकी आशासमान दीर्घ है अर मूर्च्छा कहिए ममता परिग्रहकी तृष्णा तासमान तमोमयी कहिए अंधकारमई है, मूर्च्छा तौ अज्ञानमई है अर गुफा अंधकारमई है ऐसी शास्त्रविषैं मुनि कही है, जब याकी उष्णता निकलि गई जब मानूं गर्भशोधना भई तब गमनयोग्य भई है ॥ ११ ॥ जैसैं प्रसूतिगृहमैं कोऊ प्रवेश न करि सकै तैसैं यामैं कोऊ प्रवेश न करि सकै, चक्रीकी सेनाही प्रवेश करै, करी है द्वारविषै रक्षाकी विधि अर धरे हैं मंगलद्रव्य द्वारविषैं ॥ १२ ॥ सो तमिस्रानामा गुफाकूं देखिकरि नृपेंद्रका कटक दूरहीतैं कछुइक भयरूप भया जैसैं कज्जलसूं कूंपी भरी होय तैसैं गुफा तिमिरसूं भरी है ॥ १३ ॥ तब चक्रवर्ती पुरोहित अर सेनापतिकूं आज्ञा करी सो आज्ञाप्रमाण तिमिरके हरिवेका उपाय करते भए ॥ १४ ॥ गुफाकी दोऊ भीतिनिविषैं एक एक योजन कांकिणीनामा रत्न अर चूडामणिनामा इनि दोऊनिकरि चांद सूर्यका मंडल लिखते भए एक उर सूर्यका मंडल अर एक उर चांदका मंडल तिनिके प्रकाशकरि कीया है उद्योत जहां एक उर चांदनीका उद्योत अर एक उर सूर्यका उद्योत गुफाके मांही इनिके प्रकाशकरि तिमिर विघटि गया, कटक सुखसूं चालता भया ॥ १५–१६ ॥

हुते ते सब अपने आधीन कीए चक्रवर्तीके जयसाधनकारी परचक्र वश भया ॥ ४३ ॥ राजानिके एही चरित्र हैं जो अतिबलवान होय ताहि नवावना अर जो आपके आश्रय आवै ताकी रक्षा करनी अर पृथ्वीकी पीडा निवारिबेका यत्न करना, कैसे हैं राजा—परचक्रके जीतिबेकी है इच्छा जिनिकै ॥ ४४ ॥ या भांति अलंघ्य है बल जाका ऐसा चक्ररत्नकूं आगे धरे अपने साधनकरि कितीक भूमि म्लेच्छखंडकी बढता भया ॥ ४५ ॥ तब चिलात अर आवर्त्त ए हैं नाम जिनिके ते म्लेच्छखंडके दोय अधिपति चक्रीकी सेनाकरि अपनी सेनाका पराभव सुनते भए ॥ ४६ ॥ तब तिनि मनमें विचारी, हमारे खंडमें अबतक कोऊ परचक्र न आया अब आया सो याका उपाय शीघ्र करना इह विचारि वे दोऊ मिले ॥ ४७ ॥ तब इत उततैं म्लेच्छनिकी सैन्यके बडे बडे धनुषधारी हाथी घोडनि सहित इनिपै आय भेले भए ॥ ४८ ॥ ए दोऊ क्रोधकूं प्राप्त होय युद्धका आरंभ करते भए अपने पराक्रमकरि चक्रीकी सेनासूं महासुबुद्धि महाधीर कार्यके करणहारे इनिकूं रण आरंभतैं निवारि पथ्यरूप ऐसा वचन कहते भए ॥ ५० ॥ जो पुरुष अपने कार्यकी सिद्धि चाहै ताहि विना विचारे कछु कार्य न करना जे विना विचारे कार्य करे हैं तिनिकूं अर्थकी सिद्धि दुर्लभ है ॥ ५१ ॥ इह प्रभु कौन है अर केते बलका धनी है? कहांतैं चल्या आवै है? ऐसा बिचार बिना सर्वथा सनाके सन्मुख न जाना ॥ ५२ ॥ इह विजयार्द्ध पर्वतका उलंघनहारा कोऊ सामान्य नर नांही इह देव है अथवा देवनिकी सामर्थ्य धरै है याका अधिक प्रताप है यामें संदेह नांही ॥ ५३ ॥ तातैं युद्धका आरंभ दूरिही रहौ, कोऊ गढ पकरैं, गढके आश्रयकरि सहजही प्रबल बैरी व्याकुल होय जाय ॥ ५४ ॥ इह हमारा क्षेत्र स्वतः स्वभावही दुर्गम है याहि कोऊ जीति न सकै हिमाचलतैं लेय विजयार्द्ध पर्वत अर गंगा सिंधुके तट पर्यंत याकी हद है ॥ ५५ ॥ अर अपने कुलके कुलदेवता मेघमुखनाम नागकुमार हैं ते शत्रुनिकूं रोकैं ॥ ५६ ॥ या भांति मंत्रीनिके वचनतैं वे दोऊ राजा युद्धकी अभिलाषातैं रहित भए अर मेघमुखनामा नागकुमार तिनिकी पूजाकरि तिनिका स्मरण कीया ॥ ५७ ॥ तब वे नागकुमार देव

होयचुकी तब कलकलाटशब्दकरि कटकके समस्त लोक क्षणमात्रमें पार उतरि गए जेते समस्तलोक पार उतरे तेतैं आप चक्रेश्वर पैले ढाहे गज चढे खडे रहे ॥ ६१ ॥ दूजे दिन अनेक राजानिसहित राजानिका राजा हाथीनिकी घटाकरि मंडित ताही मार्ग होय विषमजलकूं उलंघता भया ॥३२॥ बहुरि कैयक प्रयाणकरि गिरि दुर्गकूं उलंघि गुफाके उत्तर द्वार आया ॥ ३३ ॥ सो वह द्वार अग्रगामीनिनैं पहलीही उघाड्या हुता सो कटकसहित द्वारकूं उलंघिकरि पृथ्वीकापति गुफाके बारिले वन तहां आय निवास करता भया ॥ ३४ ॥ सेनाके लोक गुफाके गर्भमें चिरकाल माताके उदरमें रहें तैसें रहिकरि बाहरि निकसें सो मानूं नवा जन्म पाया ॥ ३५ ॥ इह गुफा अतिगृद्धिकरि लोकनिकूं निगलगई हुती परंतु पचाय न सकी तातें उगलती भई ॥ ३६ ॥ गुफाकी उष्णताकरि चिरकालके खेदखिन्न जो सेनाके लोक तिनिकूं वृक्ष-निकी शाखानिके अग्रभाग अर वेलिनिकी शाखानिके अग्रभाग तेई भए वीजना तिनिकूं हलावती पवन निश्वास उपजावती भई, पवनकरि हालती चलायमान जे शाखा सोई भए कर तिनिके समूहकरि मानूं पृथ्वीनाथके आगमविषैं हर्षकरि नृत्य करै है, कैसा है वन—धरे हैं पुष्पादिक जानैं ॥ ३८ ॥ विज-यार्द्धके पार तीन म्लेच्छखंड तिनिमैं पूर्व पश्चिम खंड तौ सेनागृहने साधे अर मध्यमखंडके जीतिवेकूं साधनसहित राजेंद्र उद्यमी भया ॥ ३९ ॥ पृथ्वीका पैंति उत्तरदिशाविषैं तिष्ठता भया परंतु जैसें सूर्य ग्रीष्मसमैं उत्तरायण आवै तैसें तब लोकनिकूं किरणनिकरि पीडै तैसें लोकनिकूं करकरि न पीडे अर जैसें सूर्य पृथ्वीका रस शोषै तैसें चक्रवर्तीनैं रस कहिए हर्ष सो न शोष्या अर जैसें सूर्य आताप उपजावै तैसें काहूकूं आताप न उपजाया, भरतरूप भानु उत्तरविषैं आयकरि पृथ्वीका ताप निवारता भया ॥४०-४१ ॥ न तौ सेनाके व्यूह रचे, न योद्धा परस्पर भेले भए, अगारीके अगारी रहे, पछारीके पछारी रहे, दाहिनी तरफके दाहिनी तरफ रहे, बांई तरफके बांई तरफ रहे, प्रतापहीतें सर्व शत्रु जीते, देश देशमें गमन भी न किया, वृथा भ्रमण भी न भया ॥ ४२ ॥ सहजही सब गढ जीते अर जे अगम्यस्थल

शब्दकरि शब्दायमान करी है दशूं दिशा जिनि ॥ ७३ ॥ देख्या है पराक्रम जाका ऐसा कुरुवंशीनिका तिलक राजा सोमप्रभका पुत्र ताकी चक्रवर्त्ती वारवार प्रशंसा करी अर वह वीर वीराग्रणीपदविषैं थापा, स्वामीनैं याकै सिर वीरपट्ट बांध्या अर अतिसत्कार कीया ॥ ७४ ॥ जैसैं कोऊ इंद्रजाल विद्या देखि चकित होय तैसैं कटकके लोक जलका उपद्रव देखि चकित भए थे सो उपद्रव शांत भए बहुरि कटकका लोक विश्राममैं आया अर चक्रवर्तीकी जीति प्रगट भई ॥ ७५ ॥ जब नागकुमारनिकी सेना भागी तब दोऊ म्लेच्छ राजा बलरहित होय महाभयभ्रांत चक्रीके चरणा आय प्रणाम करते भए ॥ ७६ ॥ बहुत धन भेट कीया अर अपना यशःस्वरूप धन स्वामीकूं अर्पणकरि अपना कीया अपराध क्षमा कराय वीनती- करी—हे देव! हमपरि प्रसन्न होहु हम रावरे किंकर हैं या भांति अतिस्तुतिके वचन कहि सेवक भए॥७७॥ या पृथ्वीकूं कंटकरहित करता निधिका ईश्वर हिमाचल पर्यंत सेनासहित प्रयाण करता भया ॥ ७८ ॥ प्रयाणविषैं जीतिके गजनिकरि सिंधुके तटकी भूमि खूंदता सिंधुप्रयातनामा कुंड जहां सिंधुनदी हिमाच- लतैं परी है तहां आय डेरे कीए ॥ ७९ ॥ तब सिंधुनदीकी निवासिनी सिंधुनामा देवी पृथ्वीनाथकूं अपने वासकै समीप आया जांनि समस्त परिवारसहित रत्ननिके अर्घ लेय चक्रवर्तीपै जाय सेवा करती भई ॥ ८० ॥ सो देवी भद्रासनपै विराजमानकरि भरतक्षेत्रका पति ताहि पवित्र सिंधुके जल सुवर्णके सैकडा कलशनिमैं भरि अपने हाथनिकरि अभिषेक करावती भई ॥ ८१ ॥ पहरे हैं मंगल आभूषण जानैं ऐसा आदीश्वरका नंदन ताहि जीतिकी आशिखा देय आनंद उपजावती भई अर देवी चक्रनाथकी स्तुति करै है। हे देव! तिहारे दर्शनतैं मैं पवित्र भई ॥ ८२ ॥ या भांति देवीनै वचन कहे अर भद्रासन रत्नमई भेट कीया अर कैइक दूरि लार आई। बहुरि वसुधाका नाथ देवीकूं विदा करता भया ॥ ८३ ॥ हिमाचलके तटके स्थानक तिनिकूं जीतता कैइक प्रयाणकरि हिमाचलके हिमवत् कूटकै समीप जाय प्राप्त भया ॥ ८४ ॥ तहां पुरोहित है समीप जाकै सो विधिसहित उपवासकरि पवित्र जो डाभकी सेज तापरि तिष्ठ्या अर मंत्रकरि

मेहका आकार धरे अत्यंत गाजते पवनसहित चौगिरद वृष्टि करते भए ॥ ५८ ॥ सो जल मेघमुखनिकरि बरस्या अतिप्रबल चक्रवर्तीके कटककूं व्याकुल करता भया, तलै ऊपरि अर दिशि विदिशि सर्वत्र जलही दृष्टि पडै ॥ ५९ ॥ सो पृथ्वीनाथके कटकविषैं कछु बाधा न भई कटककै बाहरि तौ वृष्टिकरि एक समुद्र होगया ॥ ६० ॥ कटककी रक्षा निमित्त चक्रेश्वरने ऊपरि तौ छत्ररत्न धराया अर तलै चर्मरत्न विछाया तिनि दोऊ रत्ननिकरि बेढ्या कटक सर्वथा प्रकारकरि बाधारहित भया ॥ ६१ ॥ इनि दोऊ रत्ननिके मध्य कटक सात दिन रह्या जलके उपद्रवविषैं भरतेश्वरका कटक अंडेके भावकूं आचरता भया ॥ ६२ ॥ चक्ररत्नकरि कीया है उद्योत जहां बाहर योजनप्रमाण वह अंडक ताविषैं तिष्ठा चक्रीका कटक बाधारहित होता भया ॥ ६३ ॥ च्यारूं दरवाजेनिकै भीतरि कटककी रक्षा सेनापति करी अर दरवाजे बाहरिके कटककी रक्षा जयकुमार करी ॥ ६४ ॥ अर सिलावट रत्नैं नानाप्रकारकी पटकुटी रची विस्तीर्ण अर दिव्यरथ रचे ॥ ६५ ॥ बाह्य कलकलाट सुनिकरि इह कहा है ऐसा कहिकरि सेनाके नृप क्रोधायमान होय खड्ग ऊपरि हाथ धरते भए ॥६६॥ अर चक्रवर्तीकी आज्ञासूं गणबद्ध देव क्रोधकरि क्षणमात्रमैं हुंकार शब्द करते नागकुमारनिकूं भगावते भए ॥ ६७ ॥ अर महाबलवान कुरुवंशीनिका राजा सिंहनाद करता दिव्यास्त्रनिकरि दिव्यरथविषैं आरूढ भया नागकुमारनिकूं जीतता भया ॥ ६८ ॥ सो जयकुमार देवनिके युद्धविषैं बगतर पहरे निरंतर बाणधारा बरसाता ऐसा सोहता भया मानूं वर्षाऋतुका मेघही है ॥ ६९ ॥ जयकुमारके छोडे बाण रणसंग्रामविषैं ऐसे सोहते भए मानूं नागकुमार छिपि-रहे हैं तिनिके देखिवेकूं दीपक प्रकाशे हैं ॥ ७० ॥ बहुरि मेघमुखनामा नागकुमार तिनिकूं जीतिकरि जयकुमार पाछा पृथ्वीपतिप आया तव पृथ्वीपति प्रसन्न होय याका मेघेश्वर नाम धार्‌या ॥ ७१ ॥ कुरुवंशीनिका राजा ता समैं देदीप्यमान शब्द करता मेघमुखनिकूं जीतता भया तातैं मेघेश्वरनाम पाया ॥ ७२ ॥ याके पराक्रमकरि देव हर्षित भए सो याकी जीतिके जस देवनि गाए, बाजते वादित्र तिनिके

मालासहित भूपेंद्रकी भेट करता भया ॥ ९८ ॥ इह वनपुष्पनिकी माला औषधीनिकी माला है अर देव अतिभक्तिकरि विनयके वचन कहता भया—हे नाथ ! तिहारे क्षेत्रके निवासी ए देव दूरिहीसूं नमस्कार करै हैं, नम गए हैं मुकुट जिनिके तिहारी सुदृष्टिके अभिलाषी वीनती करै हैं ॥ ९९ ॥ हे नाथ ! हमविषैं कृपाकी दृष्टि करौ, स्वामीका प्रसाद सोही सेवकनिकूं आजीविकाका लाभ है, हमकूं सेवाके अर्थि आज्ञा करहु ॥ १०० ॥ आप आज्ञा करिवेयोग्य हैं आजीविकाके लाभतैं सेवाका लाभ सेवकनिकूं अतिप्रिय है स्वामी सेवा करावै तब सेवक अति प्रसन्न होय ॥ १०१ ॥ ऐसे विनयरूप वचन हिमवानके सुनि, अपने सब देवनिका महौला दीया सो आप अतिप्रसन्न भए अर सबनिकूं अपने कीए हिमवानका यथायोग्य सत्कारकरि देवनिसहित ताहि विदा कीया ॥ २ ॥ चक्रेश्वरके मंगलरूप यश हिमवान देवके जीतिवेके किंनरदेव हिमाचलके तटके कुंजनिमैं अपनी इच्छासूं गावते भए, जिनिकूं सुने मग्न होय जाय ॥ ३ ॥ सरोवरनिकी लहरनिकी शीतलतासहित वनकी पवन धीरे धीरे चालती निरंतर किंनरदेवनिकी देवी तिनिके स्तनवस्त्रकूं हलावती भई ॥ ४ ॥ स्थलकमलिनीके वनविषैं तिनिकी केसरिकरि उपजी जो रज ताहि बखेरता हिम कहिये शीतल पवन सो हिमाचलके कुंजनितैं निकसिकरि चक्रनाथकूं सेवता भया ॥ ५ ॥ या भरतेश्वरकी कीर्त्ति जीतिकी लक्ष्मीसहित स्थलकमलिनीकी नांई हिमाचलके वनविषैं विस्तरती भई कीर्त्ति दिग्विजयकरि उपजी है ॥ ६ ॥ हिमाचलके स्थल देखता जो चक्री ताके अतिहर्ष होता भया, कैसे हैं हिमाचलके स्थल—प्रफुलित जे स्थलकमल तिनिकरि है शोभा जहां ॥ ७ ॥ सो चक्रवर्त्ती हिमाचलकूं आप समान जानता भया—आपहू उच्चवृत्ति अर गिरिहू उच्चवृत्ति आपहू दिशानिकूं दाबे विराजै अर वहहू दिशानिकूं दाबै, आपहू दीर्घता धरै अर वहहू दीर्घता धरै, आपहू बहुत रत्नका निवास अर वहहू रत्ननिका निवास ॥ १०८ ॥ तासमैं गिरींद्रविषैं नरेंद्रकी दृष्टि अनुरागयुक्तपरी देखि पुरोहित विनोद उपजायवेकूं वाणी करि कहता भया ॥ ९ ॥ हे देव ! इह हिमवानगिरि अति उत्तुंग

दिव्यास्त्रनिकी पूजा करी ॥ ८५ ॥ तब कटकके नृपनि जानी—इह विधि है, चक्रवर्तीमें शक्तिकी न्यूनता नांही अथानंतर वज्रकांड धनुषके नरेंद्रनैं फिडचि चढाई अर अमोघनामा वाण ऊर्ध्वगामी वाणके आरोपण कीया, वायां पग आगा करि अर दाहिनां संकोचि विधिपूर्वक खडा रहि अपने नामके अक्षर तिनिकरि शोभित ॥ ८६–८७ ॥ सिंहनादकरि चक्रीने वाण देवके आवास प्रति चलाया तव आकाशविषैं देवनिके समूह प्रसन्न होय पुष्पवृष्टि करते भए ॥ ८८ ॥ सो वाण आकाशविषैं दूरि चल्या गया, कहूं भी न अटक्या, हिमवत् कूटकूं पाय हिमवानदेवके आवासविषैं पर्‍या ॥ ८९ ॥ सो हिमवान् हिमवत् कूटका निवासी देवनिमैं उत्तम मागधदेवकी नांई चक्रधरका आगम जानि स्थानकतें चाल्या ॥ ९० ॥ देदीप्यमान है मुकुट जाका सो जहां चक्रवर्ती हुता ता ठौर देव आया, चक्रवर्त्ती धनुषकी फिडचिकूं स्पर्शता संता तेजका पुंज तिष्ठै है तहां आय देव स्तुति करता भया ॥ ९१ ॥ हे देव ! इह हिमवान पर्वत अति ऊंचा है सामान्य जनकरि उलंघ्या न जाय सो तुम उलंघ्या, तिहारा चरित्र मानुषिक नांही, तिहारा दिव्यप्रताप है ॥ ९२ ॥ कहां हमारा आवास अत्यंत दूर अर कहां तिहारा वाण ? तथापि ता वाणनैं एक लार हम सबकूं कंपाए हमारे वासम वाण जाय पर्‍या ॥ ९३ ॥ तिहारा प्रताप वाणके मिसतैं आकाशविषैं उछलता हमकूं गणबद्ध देवनिमैं बुलायवेकी है इच्छा जाकै सो निश्चयसेती बुलावता भया ॥ ९४ ॥ हे प्रभो ! आप समुद्र जीत्या अर विजयार्द्ध जीत्या, विजयार्द्धकी गुफाके भीतरि कटक चला आया अब हिमाचलके शिखरविषैं तिहारी जीतिका उद्यम सिद्ध भया है ॥ ९५ ॥ सिद्ध भई है दिग्विजय जिनिकी ऐसे तुम सो तिहारा जयवाद सार्थक है जीतिके यश हम कहा गावैं ? सब जगत गावै है। हे प्रभो ! तुम जयवंत होहु, नांदो, विरधो, फलो, फूलो, हे राजनिके इंद्र ! तिहारी दीर्घायु होहु ॥ ९६ ॥ या भांति जीतिके शब्द उचारता वाचाल है मुख जाका सो अनेक देवनिसहित हिमवान देव देवनिमैं उत्तम पृथ्वीपतिकी उपचारसहित स्तुति करता भया ॥ ९७ ॥ राजेंद्रका राज्याभिषेक विधिपूर्वक करि दिव्य हरिचंदन वनके पुष्पनिकी

निकसी है गंगा अर सिंधु महानदी

नदी ताहि तोरणसहित उत्तरका द्वार ताकैं मार्ग निकाले है ॥ २३ ॥ इह गिरिराज अलंघ्य जो ए तीन
महानदी तेई भई तीन शक्ति तिनिकरि आपविषैं राजाका भाव प्रगट करै है जैसें राजाके मंत्रशक्ति
उत्साहशक्ति अर प्रभुत्वशक्ति ए तीन शक्ति हैं तैसें याकै गंगा सिंधु अर रोहिता ए तीन महानदी हैं
॥ २४ ॥ इह पर्वत शिखरनिकरि आकाशकूं स्पर्शता मानूं देवनिका मार्ग रोकै है याके शिखर अतिदेदी-
प्यमान रत्नमई हैं शोभित करी हैं दिशि जिनि ॥ २५ ॥ या पर्वतविषैं अगणित देवनिके आवास हैं
जाकरि इह अपनी संपदाकरि स्वर्गकी लक्ष्मीकूं अलख जानि हंसै है ॥ २६ ॥ या भांति अनेक गुणनि-
करि मंडित इह महागिरि ताविषैं एकही दोष है जो इह गुरु कहिए भारी होयकरि अगुरुके वृक्ष तिनिकूं
आसिपासि धारै है, इहां कोऊ पूछै—ऐसे गिरिविषैं अगुरुके वृक्ष होंहि इह योग्यही है यामैं दोष कहा ?
ताका समाधान—अगुरुके वृक्ष ऐसे गिरिनिमैं होंय इह तौ प्रमाण परंतु इहां व्यंग अर्थ है—गुरु नाम
भारीका है सो पर्वत तौ भारी अर अगुरु नाम हलकेका है जामैं गुरुता नांही सो भारी आदमी हलके
आदमीनिकूं पासि राखे इह बडा दोष है ॥ २७ ॥ अलंघ्य है महिमा जाकी अर उत्तुंग है अर अपनी
गरिमाकरि पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध, धराकूं दाबे बैठा है सो मानूं इह गिरिराज जगतके गुरु जो आदिजिन
तिनिकूं धरै हैं। वे अलंघ्यमहिमा इहहू अलंघ्यमहिमा, वेऊ उत्तुंग, इहहू उत्तुंग, वे अपनी गुरुताकरि जग-
त्प्रसिद्ध, अर इहहू गुरुता जो भारीपना ताकरि प्रसिद्ध, वेऊ धराके धरणहारे अर इहहू धराधर ॥ २८ ॥
याभांति या पर्वतकी परमशोभा पुरोहित प्ररूपी तब भरताधिप प्रसन्न होय पर्वतकी प्रशंसा करते भए
॥ २९ ॥ अपने राजकी हद्द जो इह हिमाचल ताकी प्रशंसाकरि पृथ्वीका वल्लभ कौतूहलथकी वृषभा-
चलके देखिवेकूं उद्यमी भया हिमाचलतैं वृषभाचलकूं प्रयाण कीया ॥ ३० ॥ सो वृषभाचल सौ योजन
ऊंचा है अर मूलविषैं सौ योजन चौडा है अर शिरोभागविषैं पचास योजन चौडा है मानूं पृथ्वीका मुकुटही
प्रगट भया है ॥ ३१ ॥ जाके तटकी भूमि महामनोहर केलानिके वन तिनिकरि मंडित अर लतामंडप-

है कुलाचलनिमैं मुख्य निरंतर लक्ष्मीकरि युक्त तिहारी उपमाकूं धरै है, तुम राजानिमैं मुख्य इह कुलाचलनिमैं मुख्य तुमहू निरंतर लक्ष्मीयुक्त ॥ ११० ॥ अहो इह पर्वत बडा है यापरि चढनाहू कठिन अर उतरनाहू कठिन सो तिहारे प्रतापतैं बाणके साधिबे मात्रही वशि भया ॥ १११ ॥ याकी भींति सुवर्णमई नानाप्रकारके रत्ननिकरि मंडित सो योजनमात्र ऊंची मानूं काहूनैं टांकी करि घडी है ऐसी सोहै है ॥११२॥ इह पर्वत अपनी पूर्व पश्चिमकी अनीकरि लवण समुद्रकूं अवगाहिकरि तिष्ठ्या है मानूं इह गिरि पृथ्वीके मापिबेका दंड ही है ॥१३॥ भरतक्षेत्रके पति ! इह पर्वत भरतक्षेत्रतैं चौडाईमैं दूणा है अर मूलविषैं अर उपरि भागविषैं तुल्यविस्तार है, भरतक्षेत्र पांचसै छव्वीस योजन अर छह कला चौडा है अर इह हिमवानएक हजार योजन अर बारह कला चौडा है ॥ १४ ॥ याके तटविषैं महामनोज्ञ वनकी पंक्ति सोहै है निरंतर देव विद्याधर नागकुमार तिनिकरि सेवित है ॥ १५ ॥ याके तटके विस्तार देदीप्यमान माणिनि करि विचित्ररूप सोहै हैं मानूं देव देवीनिके प्रतिबिंब तटविषैं आय परै हैं सो चित्रामसे भासै हैं ॥१६॥ और याके तटविषैं विद्याधर विद्याधरीनिसहित विचरै हैं याके तट महामनोहर जे लतामंडप तिनिकरि संभोगयोग्य हैं ॥१७॥ महापवित्र रमिबेयोग्य याके तट तहां उत्सवसहित देव अपनी देवीनिकरि युक्त अतिअनुरागसूं रमै हैं, औरठौर प्रीति नांही धरे हैं ॥ १८ ॥ याके समीप वनस्थल फूले फूलनिकरि शोभित मानूं अपनी शोभाकरि अमरोद्यानकी शोभाकूं हंसै हैं ॥ १९ ॥ इह गिरि अपने शिखरकरि सदा अखंडित लक्ष्मीकूं धरै है शास्त्रके पाठी जाकी शोभा बरणवै हैं, इह शोभा और क्षेत्रनिके मदकी निवारणहारी है, भावार्थ—याकी शोभा देखे और स्थलका अनुराग न रहै ॥ २० ॥ याके मस्तकविषैं पद्मद्रह तहां श्रीदेवीका निवास है जाका ग्रंथनिविषैं बहुत वर्णन है—निर्मल जल है अर प्रफुल्लित सुवर्णके कमल तिनिकरि मंडित है ॥ २१ ॥ या गिरिविषैं पद्मद्रह ताके तोरणसहित पूर्व पश्चिम द्वारनितैं निकसी है गंगा अर सिंधु महानदी तिनिकूं धरे इह पर्वत सोहै है ॥ २२ ॥ अर इह गिरि रोहितनामा

जानी इह सकल लोक बाहुल्यताकरि अपने स्वार्थविषैं तत्पर है ॥ ४४ ॥ अथानंतर गिरिविषैं अपनी हथेली समान जो शिलापट्ट ताविषैं वह यशोधन कहिए यशही है धन जाकै सो या भांति गंभीर अर्थरूप शब्द लिखता भया, कहा लिख्या सो सुनहु ॥ ४५ ॥ कल्याण होइ,—इक्ष्वाकुकुल सोई भया आकाशमंडल ताविषैं चंद्रमासमान उद्योत करणहारी चहुंदिशि पृथ्वीका भूप भरत जाकी माताकै सौ पुत्र ॥४६॥ सो महा लक्ष्मीवान नवाए हैं समस्त देव विद्याधर भूमिगोचरी जानैं प्रजापति जो भगवान ऋषभ तिनिका पुत्र चक्रवर्त्तीनिमैं आदि अर कुलकरनिमैं सोलमा जगतमान्य महापवित्र महाशूरवीर उदार है बुद्धि जाकी ॥ ४७ ॥ या शरीरपीछैं और शरीर न धरना तद्भवमोक्षगामी महाधीर राजनिका इंद्र, जानैं दिग्विजयविषैं समस्त धराचक्र वशि कीया, च्यारि दिशामैं आज्ञा जाकी ॥ ४८ ॥ जाके अठारह कोडि जल थलके उलंघनहारे अश्व अर चौरासीलाख जीतिकै साधन माते गज ॥ ४९ ॥ जाकी दिग्विजयविषैं चौगिरद कटककी रज उठी ताकरि सब दिशासहित आकाश आच्छादित भया सो कपोतके कंठसमान कर्बुर रंग होय गया ॥ ५० ॥ जाका यश चंद्रमासमान उज्ज्वल देव कुलाचलनिकी कंदराविषैं गावते भये ॥ ५१ ॥ अर जाकी दिग्विजयविषैं सेनाके लोक सब दिशिमैं विश्राम करते भए। कैसे हैं सेनाके लोक—चक्रके अनुसार हिमाचलके स्थलपर्यंत पृथ्वीविषैं कीया है परिभ्रमण जिनि ॥ ५२ ॥ सो भरत नाभिराजाका पोता श्री ऋषभदेवका पुत्र षट्खंडमंडित जो इह समस्त पृथ्वी ताकी रक्षा करता भया ॥ १५३ ॥ सो सब राजनिका जीतनहारा राजलक्ष्मीकूं विनश्वर जानि अपनी कीर्त्ति जगतविषैं विस्तरणहारी ताहि या पर्वतविषैं थापता भया ॥ ५४ ॥ या भांति अपनी प्रशस्ति सो आप अक्षरनिकरि लिखी जासमैं चक्रवर्त्ती वृषभाचलपरि अपना नाम लिख्या ता समैं देवनि आकाशतैं पुष्पनिकी वृष्टिकरी ॥५५॥ अर आकाशविषैं गंभीरध्वनि करते दुंदुभी बाजे बाजते भए अर देव जयजयकार शब्द आकाशविषैं करते भए ॥१५६॥ अर गंगाकी तरंगकूं स्पर्शती सुगंध मंद पवन बहती भई, हलाए हैं नंदनवनके मंदारवृक्ष जानैं ॥ ५७ ॥

करि शोभित विद्याधर अर विद्याधरीनिके संभोगयोग्य है ॥ ३२ ॥ जाकी तलहटीके वन देवनिकरि कदाचि नांही तजिए है, कैसे हैं वन—नागजातिके वृक्ष अर असनाग कहिए सहीजणां जातिके वृक्ष अर पुंनागजातिके वृक्ष तिनिकरि मंडित हैं ॥ ३३ ॥ अर अपने तट फटिकमणिमई तिनिकी विस्तरती प्रभा तिनिकरि प्रकाशरूप करी है सकल दिशा जिनि मानूं इह गिरि शरदके अभ्रनिकरि रच्या है, उत्तुंगता करि आकाशकूं स्पर्शै है ॥ ३४ ॥ ता पर्वतकूं पृथ्वीका नाथ देखता संता अपने यशसमान विचारता भया, पर्वत पृथ्वीका एक तिलकही है ॥ ३५ ॥ वह पर्वत केवल उज्ज्वलताकूं धरे मानूं अपने यशकी राशि-समानही है ताहि देखतासंता चक्री अति आनंदकूं प्राप्त भया। कैसा है गिरि—जाकी आदि अंत नांही अखंड है शोभा जाकी ॥ ३६ ॥ सो पर्वत पृथ्वीका पति आया ताहि सव उरतैं आवती शीतल मंद सुगंध पवन ताकरि स्पर्शता मानूं आदरसूं बुलावैही है. पृथ्वीपति समस्त शत्रुनिका जीतनहारा प्रजाका पालक है ॥ ३७ ॥ वृषभाचलके तटके समीप विश्राम करते विद्याधर नागकुमार अर किंनर तिनिकरि गाइए है निर्मल यश सो धराका धनी अपने श्रवणकरि सुनता भया ॥ ३८ ॥ ता पर्वतके तटकी भींति फटिकमणिमई निर्मल चक्रवर्त्तीका मन हरती भई सो भींति जयलक्ष्मीके मुखावलोकनका मंगल-दर्पण ताकी शोभाकूं धरै है ॥ ३९ ॥ या पर्वतकी शिलारूप भींति ताविषैं समस्त पृथ्वीका जीतन-हारा चक्रवर्त्ती अपने नामाक्षरकी रचनाकरि संतोषकूं प्राप्त होय है ॥ ४० ॥ जव काकिणी रत्न, लेयकरि राजेंद्रनैं अपना नाम लिखिवेकी इच्छा करी तव याविषैं अगणित राजानिके नाम निरखे ॥ ४१ ॥ असंख्यात कोटिकल्पविषैं जे चक्रवर्त्ती व्यतीत भए तिनिके नामनिकरि पूर्ण जो वह पर्वत ताहि अवलोकता संता नरेंद्र विस्मयकूं प्राप्त भया ॥ ४२ ॥ अर गर्व दूरि भया कछुइक विलखे वदन होय गया ऐसा मानैं था जो भरतक्षेत्रकी पृथ्वीका पति मैंही हूं सो न मानता भया, जानी—मो सारिखे अनंत भए अर अनंत होंहिगे ॥ १४३ ॥ एक काहूका नाम विगारि अपना नाम लिखता भया अर मनमैं

कणनिकूं स्पर्शै जो शीतल मंद सुगंध पवन ताकरि सेवनीक होता भया, गंगाके तटके वन तिनिविषैं निवास करता निधिपति ताहि वनकी पवन अनुकूलताकूं प्राप्त होती सुख उपजावती भई ॥ ७०–७१ ॥ वनविषैं वनचर जे भील तिनिकी स्त्रीनिके अलकनिकी पंक्ति ताकूं विक्षेप करती अर नाचते वनके मोर तिनिकी पांखनिकूं हलावती ॥ ७२ ॥ अर फूलिरही वनकी बेलि जिनिपरि भंवर गुंजार करते तिनिकूं हलावती गिरिके नीझरनेनिके स्पर्शकरि शीतल मंद सुगंध पवन कटकमैं आवती भई ॥ ७३ ॥ प्रयाण प्रयाण प्रति नम्रीभूत भए नृप देशनिके पृथ्वीनाथकी आराधना करैं वशीभूत भए सब आय पायनि लागे ॥ ७४ ॥ भरतक्षेत्रकी उत्तरदिशाकी सब भूमि ताहि जीतिकरि नरेंद्रका कटक विजयार्द्ध-गिरिकी स्थलीके समीप आया ॥ १७५ ॥ तहां सेनाका निवास कराय सेनापतिकूं आज्ञा करी, जो तू गुफाका द्वार खोलि अर पूर्वखंडके म्लेच्छनिकूं जीति ॥ ७६ ॥ सो आज्ञाप्रमाण दूजी गुफाका द्वार खोलि म्लेच्छ राजनिके जीतिबेका उद्यमी भया तेतैं चक्रेश्वरके छह महीना मुकाम भए महासुखसूं दिवस व्यतीत कीए ॥ ७७ ॥ दक्षिण अर उत्तर श्रेणीके निवासी सकल विद्याधरनिके राजा राजेन्द्रके देखिवेकूं आए ॥७८॥ विद्याधर क्षेत्रके अधिपति दूरहीसूं सीस नवाय नमस्कार करते भए नम्रीभूत भए हैं मुकुट जिनिके अर चक्रीके चरणनिके नखनिकी पंक्ति इनिके सिरपरि आनिपरी सो मानूं नखनिकी ज्योतिके मिसतैं नृपेंद्रकी आज्ञाही सिरपरि धरी है ॥ ७९ ॥ सकल विद्याधर नृपनिके अधिपति नमि विनमि कच्छ महा-कच्छके पुत्र अपना सारभूत धन भेट लेय सब सामग्रीसहित नृपेंद्रके निकट आए ॥८०॥ विद्याधरनिकी धराका सार धन आय भेट कीया और ठौर नांही ऐसी अद्भुत वस्तु भेट करी भरतेश्वर अतिप्रसन्न भए ॥ ८१ ॥ ते नमि विनमि रत्ननिके समूह ल्याए अर विवाहिवेकूं अनेक विद्याधरनिकी कन्या ल्याए सो नरेंद्र परणीं जैसैं समुद्र नदीनिके जलकरि पूरित होय तैसैं आदीश्वरका नंदन सब सामग्रीकरि पूर्ण भया ॥ १८२ ॥ अर नमिकी बहन सुभद्रा सो आप अतिउत्साहसहित विद्याधरनिके व्यवहारकी रीतिप्रमाण

याके नामकी अक्षरकी पंक्ति केवल पर्वतकी शिलाहीविषैं न लिखी, चंद्रमाविषै जो लांछन है सो मानूं लांछन नांही याकी कीर्त्तिहीके अक्षर लिखे हैं ॥५८॥ अर इहहू शास्त्रविषैं कह्या है—जो चक्रवर्त्ती अपने नामका लेखन वृषभाचलपरि करै, इह गिरिहू याकै राजाका नेत्र है सो इहां अपनी माखि लिखी, याके दिग्विजयविषैं देव साखी भए ॥ ५९ ॥ अहो ! इह चक्रवर्त्ती महाप्रभावसंयुक्त जानैं दिशानिके समूह जीतिवेविषैं पूर्व पश्चिम दक्षिणके समुद्रपर्यंत पृथ्वीमंडल वाशि कीया ॥ १६० ॥ अर विजयार्द्धगिरि अलंघ्य जानैं लीलामात्रमैं उलंघ्या याकी कीर्त्ति स्थलकमलिनीसमान वृषभाचलके स्थलविषैं आरूढ भई ॥ ६१ ॥ या भांति हर्षित भए सुरनायक भरतकी स्तुति करते भए अर विद्याधर हर्षकरि असीस देते भए—जो तिहारी दीर्घायु होहु पृथ्वीमंडलविषैं चिरकाल राज्य करहु, भरतेश्वर अवदात कहिए महामनोहर है, निर्मल है ॥ ६२ ॥ वहुरि पृथ्वीपति उद्यम विस्तारता देवनिकरि स्तुति करिवेयोग्य जा कुंडविषैं गंगापडी है तहां आया मानूं ताके शब्दकरि बुलयाही है ॥ ६३ ॥ पडता गंगाजल ताकी छटा कटकके गजनिके मदकी धारासूं मिली सो मानूं परस्पर जलक्रीडाही करै है ॥ ६४ ॥ पडता जो गंगाजल ताके आवर्त्तकरि वध्या है कौतुक जाकैं ऐसी गंगादेवी सो अर्घ दे चक्रवर्त्तीकी स्तुति करती भई ॥ ६५ ॥ सिंहासनविषैं पूर्व सन्मुख पधराय सुखरूप शीतल महा उज्ज्वल चंद्रमाकी किरणनिकूं हंसै ऐसा गंगाजल ताकरि अभिषेक करती भई ॥ ६६ ॥ कीए हैं मंगल संगीत जानैं वादित्रनिका मनोहर शब्द करती राजनिके इंद्रका अभिषेककरि नानाप्रकारके आभूषण पहिरावती भई ॥६७॥ भेट किया महा उत्तुंग सिंहासन सो रत्ननिकी किरणनिकरि उद्योतरूप कीया है आकाश जानैं मानूं इंद्रधनुषसहित सुमेरुका शिखरही है ॥ ६८ ॥ अर गंगादेवी नृपनाथकी स्तुति करती भई, हे देव ! तुम चिरकाल जीवहु, वृद्धिकूं प्राप्त होहु, पृथ्वीविषैं सदा सुखके वढावनहारे आप सदा आनंदरूप होहु, या भांति स्तुतिकरि देवी चक्रीकी आज्ञा पाय अपने स्थानक गई ॥६९॥ अथानंतर गंगाके तीर तीर अनेक राजानिसहित गमन करता पृथ्वीनाथ गंगाजलके

अपनी किरणनिके समूहकरि दशूं दिशिविषैं उद्योत करता नमि अर विनमि आदि विद्याधर हैं अग्रेसर जाके अर विजयार्द्धकी गुफाका अंधकार जानैं हन्या सो जीव लोककूं पोखता उदय भया ॥ ११४॥ रसकी भरी जे कूंपल तिनिकूं हलावती शीतल मंद पवन देवांगनानिके स्तनके वस्त्रानिकी सुगंधताकूं स्पर्शती गिरिकी कंदराविषैं मंद मंद विचरै है ताहि विचरतैं संतैं निधिपतिके डेरा खरे भये ॥ ११५ ॥ देवदारु जातिके वृक्ष तिनिकी कूंपलानिके पुट भेदनहारी निरंतर गंगाकी तरंगनिकी छटाकूं स्पर्शती विजयार्द्ध गिरिके तट तहांतैं आवती पवन उष्णताकरि उपजे नृपेंद्रके प्रसेवके कण तिनिकूं हरती भई ॥ ११६ ॥ भूपेंद्रका सेनापति जीतिरूप सेनासहित चक्रेश्वरकी आज्ञामात्र शीघ्रही म्लेच्छखंडकूं जीतिकरि पाई है जयलक्ष्मी जानैं सो सर्वकार्य सिद्धिकरि स्वामीके समीप आया, स्वामी सकल भरतक्षेत्रका नाथ जिनना-थका नंदन जिननाथकी नाईं जयलक्ष्मीका निधान नवनिधिका नाथ है अर कैसा है सेनापति नम्रीभूत है मुकुट जाका ॥ ११७ ॥ सो राजनिका राजा जगजीत अपने सेनापतिकूं सेनासहित पठाय भूमिपाल-निकूं जीतता संता समस्त षट्खंड पृथ्वीकूं पालता भया, चिलात अर आवर्त्त म्लेच्छनिके अधिपति तिनिकूं जीतिकरि हिमवान गिरिका अधिपति हिमवान देव ताहि जीति गंगादेवी अर सिंधुदेवी तिनिपैं प्रणाम कराय तिनिकूं अपने वशिकरि तिनि दोय भद्रासन भेट कीए सो लीए अर लीलामात्रमैं जीते हैं विजयार्द्ध गिरिके अधिपति जानैं सो सकल राजानिकूं आज्ञारूप करता प्रजाकूं सुख उपजावता भया ॥ ११९ ॥ पुण्यके उदयतैं इह चक्रवर्ती हिमाचल पर्यंत अर पूर्व पश्चिम दक्षिणके समुद्र पर्यंत पृथ्वीकूं चक्रकरि वशि करता भया तातैं जे सुबुद्धि जैनमतविषैं दृढ हैं ते पुण्यकूं उपार्जौ, कैसा है चक्रवर्ती—आरि-निके समूहकूं भयंकर हैं कर जाके ॥ ११९ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतोत्तरार्धविजयवर्णन नाम बत्तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३२॥

परणी, भरतेश्वर महाविभूतिवान जिनिकीसी विभूति काहूकै नांही ॥ ८३ ॥ नमिकी बहन विद्याधरी महामनोज्ञ रसकी खानि ताहि चक्रवर्ती पायकरि अपना जन्म सफल मानता भया । इह स्त्रीरत्न छिनिवैहजार रानीनिका तिलक पट्टरानी है अर भरत परम आनंदकरि पूर्ण जिनेश्वरदेवके बडे भक्त हैं ॥ ८४ ॥ जेतैं छह महीनां चक्रवर्त्ती विद्याधरनिके क्षेत्रमैं रहे तेतैं सेनापति सेनासहित जायकरि समस्त म्लेच्छ राजानिके देश जीति तिनिकूं लार लेय जयलक्ष्मीकरि शोभित पृथ्वीनाथकै समीप आय पायनि लाग्या ॥ ८५ ॥ करे हैं समस्त कार्य जानैं ताका स्वामीनैं सत्कारकीया अर म्लेच्छनिके नायक पायनि आए हुते तिनिकूं अपने सेवककरि विदा कीए अर दक्षिणकी उर कटकका प्रयाण भया ॥ ८६ ॥ जीतिके प्रयाणकी भेरी बाजी, सेनारूप समुद्रकी गर्जना चौगिरदके बडे बडे राजारूप पर्वत तिनिकूं क्षोभ विस्तारती दशूं दिशानिकूं शब्दायमान करती भई ॥ १८७ ॥ क्रांडकप्रपातनामा गुफा ताका द्वार सेनापतिनैं पहलीही उघाड्या हुता सो छह महीनांमैं शीतल भई ताविषैं राजेंद्रकी सेना रत्नकूं आगैं धरि प्रवेश करती भई ॥ ८८ ॥ पहली तमिस्रा नामा गुफा बरणई ताविषैं सिंधुका प्रवाह बहे है अर याविषैं गंगाका प्रवाह बहे है सो गंगाका जलपान करती सेना सुखसूं चाली, सेनापतिनैं उघारे हैं द्वार जाके, सो गुफाकूं उलंघि सेना बाहरि आई ॥ ८९ ॥ सेनाके लोकनि गुफा उलंघी सो मानूं गुफा सेनाकरि दबिगई हुती सो चिरकालमैं सास लीया अर सेनाहू गुफाकी संकीर्णतातैं निकसी । सो निकसि करि ऐसा मान्या मानूं नया जन्म धार्‍या ॥ ९० ॥ जब गुफाके बाहरि आय डेरा भए तब नाट्यमालनामा देव रत्ननिके अर्घकरि चक्रेश्वरका अर्चन करता भया, गुफातैं निकसतैंही कलश बंधाए मंगलद्रव्य भेंट कीए ॥ ९१ ॥ अतिस्तुतिकरि नानाप्रकारकी भेटकरी, वह देवनिमैं श्रेष्ठ ताका सत्कारकरि भरतेश्वरनैं विदा कीया ॥ ९२ ॥ इह भरतक्षेत्रका पति भानुसमान पृथ्वीविषैं कीया है उदय जानैं तिमिरका हरनहारा ताहि गगनगामी विद्याधर अनेक आयुध धरैं सेवते भए ॥ १९३ ॥ वह नवनिधिका पति सूर्यकी नाईं

पहूंच्या शरदके मेघ समान है छवि जाकी मानूं इह गिरि जिनवरके जसकी राशिसमान उज्ज्वल है सो पृथ्वीपति पर्वतकी अतिप्रशंसा करता भया ॥ १४ ॥ परते जे नीझरने तिनिके शब्दकरि मानूं इह गिरि देवनिकूं बुलावै है—जो आयकरि तीन जगतके गुरुकूं सेवो ॥१५॥ तटके वृक्ष पवनकरि हाले हैं शाखाके अग्रभाग जिनिके सो मानूं हर्षतैं नृत्य करै है अर फूलि रहे फूल सोही है मुलकनि जिनिकी ॥ १६ ॥ अर तटके नीझरने तिनिके परिवेकरि इह गिरि भगवानके भक्त भव्यजीवनिके समूह च्यारि उरसूं आवै हैं तिनिका मानूं अर्घपाद्यही करै है ॥१७॥ अर अपने शिखरनिकरि बिदारे हैं मेघपटल तिनितैं झरै है जल ताकरि अपने समीप लतावन तिनिकूं दावानलके भयकरि मानूं सींचैही है।१८। फटिकमणिकरि निरमापे शिखर तिनिकरि उद्योतरूप कीया है आकाश सो मानूं सूर्यके संचारकूं निवारै है, शिखर अति ऊंचे हैं ॥१९॥ अर वन कहूंइक किंनरदेवनिकरि संयुक्त हैं अर कहूंइक नागकुमारनिकरि सेवित हैं अर कहूंइक विद्याधर क्रीडा करै हैं तिनिकरि प्रगट करी है शोभा जहां ॥ २० ॥ अर कहूंइक विरली जे नीलमणि तिनिकी किरण मिली हैं फटिकमणिनिमैं सो मानूं विद्याधरनिकूं चंद्रमंडलकीसी आशंका विस्तारै हैं॥ २१ ॥ अर कहूंइक हरी मणिनिकी ज्योतिके समूह अर पद्मरागमणिनिकी ज्योतिके समूह तिनिकरि आकाशविषैं इंद्रधनुषकी शोभाकूं विस्तारै है ॥ २२ ॥ अर कहूंइक पद्मरागमणिनिकी किरण तिनिसूं मिलि फटिकमणि तिनिकरि श्वेतता अर रक्तताकूं धरे अैसा भासै है मानूं पाटलरंगकूं धरै है ॥ २३ ॥ अर कहूंइक शिथिल जे शिलापट्ट तिनिकरि संयुक्त है अर मृगेंद्रनिके नख तिनिके चिह्न सहिवेकूं समर्थ अैसे उच्च पाषाण तिनिकरि मंडित हैं ॥ २४ ॥ अर कहूंइक गुफानिके मध्य शब्द करै हैं मृगेंद्र तिनिके प्रतिशब्दकरि गाजती जो तलहटी ताकरि संयुक्त है सो तलहटी मदोन्मत्त गजनि तजी है ॥२५॥ अर कहूंइक फटिक मणिनिकी शिलाके मध्य विचरती देवांगना तिनिकूं इह पर्वत धरै है, वे कैसी सोहै हैं मानूं शरदके बादरानिमैं विजुरी चिमकै है ॥ २६ ॥ सो अद्भुत लक्ष्मीकरि मंडित पर्वतनिका पति ताहि आप सारिखा

अथ तेतीसवां पर्व।

अथानंतर चक्रेश्वर महालक्ष्मीवान नम्रीभूत किये हैं देव विद्याधर भूमिगोचरी जानैं सिद्ध भई है दिग्विजय जाकी सो अपनी राजधानी अयोध्या ताकी ओर पाछा फिरया ॥ १ ॥ याकै नवनिधि सिद्ध भई अर चउदह रत्न सिद्ध भये अर विद्याधरनिसहित छह खंडके राजा वशि भये ॥ २ ॥ इह समस्त भरतक्षेत्रकी पृथ्वी लवणोदधि है कटिमेखला जाकी ताहि जीतिकरि यशस्वतीका नंदन आदि-चक्री अयोध्या प्रति प्रयाण करता भया ॥ ३ ॥ सो सेना विजयार्द्धगिरिके तटतैं गंगाकी नांई निकसी, कैसी है सेनारूप गंगा—चमररूप हैं तरंग जाविषैं अर देदीप्यमान हैं छत्ररूप बुदबुदा जाविषैं ॥ ४ ॥ कटकरूप समुद्र उठै हैं गंभीर ध्वनि जाविषैं सो हथनीरूप नाव अर अश्वरूप कल्लोल अर मनुष्यनिके समूह तेई भए तरंग तिनिकरि दिशानिकूं रोककरि चाल्या ॥ ५ ॥ चलते जे रथ तिनिके पहेनिका चीत्कार अर घोड़निका हींसना गजेंद्रनिकी गर्जना तिनिकरि दशूं दिशा शब्दमयी होती भई ॥ ६ ॥ भेरी प्रस्थानकी प्रशंसक गंभीरध्वनिकरि संयुक्त बाजती भई सो मयूरनिकूं विना समैं मेघकी ध्वनिकी शंका विस्तारती भई ॥ ७ ॥ प्रयाण समैं अश्वनिके समूह हाथिनिकी घटा फैलती ताकरि रुकिगये आगैं चालि न सके अर रथनिके समूह दौडते तिनिकरि पयादनिके समूह रुकि गये ॥ ८ ॥ पयादेनिनैं दौरि-करि कीये हैं मार्ग सो हय गज रथ तिरछे काढे ॥ ९ ॥ चक्रधर इंद्रसमान है ज्योति जाकी सो पर्वत समान उत्तुंग जो विजयपर्वतनामा गजगुरु तापरि आरूढ देदीप्यमान है मुकुट जाकै सो प्रयाण करता भया ॥ १० ॥ गंगाके तीर तीर प्रयाण करता अनेक देश अनेक गिरि अनेक वन अनेक नदी उलंघता चक्रीका कटक कैलासके समीप आया ॥ ११ ॥ कैलासकूं समीप देखि सेनाकूं ताकै समीप राखि भरते-श्वर तीर्थेश्वरके अर्चनकूं गया ॥ १२ ॥ जब नृपेंद्र जिनेंद्रकी पूजाकूं गया ज्योतिका धारी देदीप्यमान है मुकुट जिनिके ऐसे राजा लार गये, जैसैं इंद्रकी लार देव जांहि ॥ १३ ॥ शीघ्रही भूपेंद्रके लार जाय

उष्णादि सब परीषहके सहनहारे हैं अर प्राणीनिके आताप निवारै हैं ॥ ४१ ॥ इह पर्वत शब्दसहित ए नीझरने तिनिकरि मानूं सिंहनीकूं तर्जना करै है जो इह स्थानक जिनेश्वरदेवके प्रभावतैं क्रूरकर्मतैं रहित है सो इहां अहिंसक होय रहा, कैसे हैं सिंह—प्रथम अवस्थाविषैं नखनिकरि विदारे हैं माते हाथीनिके मस्तक जिनि ॥ ४२ ॥ पुरोहित कहै है—हे देव ! जैसैं तुम राजानिकूं निकटवर्ती राखौ हौ तैसैं इह पर्वत वनगजनिकूं राखै है राजा तौ 'सानुचरान्' कहिए सेवकनिकरि संयुक्त है अर हाथी 'सानुचरान्' कहिए तटविषैं विचरै हैं, बहुरि राजा तौ भद्र कहिए मंगल रूप हैं अर हाथी भद्रजातिके हैं बहुरि राजा तौ ऊंचे वंशके हैं अर हाथी ऊंची पीठिकूं धरै हैं, वंशनाम पीठिका है अर राजा तौ सुंदर ललाटकूं धरै है अर हाथीहू मनोहर अंगनिकूं धरै हैं बनविषैं सुखसूं विचरै हैं ॥ ४३ ॥ अर गाजते मेघनिका शब्द सुनि ए अष्टापद हाथीकी आशंकाकरि शीघ्रही ऊंचे उछरि पाछे परै हैं सो वृथा परिश्रम करि शोचकी दशाकूं पावै हैं ॥ ४४ ॥ अर या पर्वतविषैं वनके वृक्ष गजनिका वन विहार मानूं प्रगट कहै हैं, कैसे हैं वृक्ष—गजनिके कपोलनिके घसिवेकरि भग्न भई है त्वचा जिनिकी अर तिनिके मदजलकरि भीगे हैं ॥४५॥ अर मृगेंद्र-निकी गर्जनाकरि मर्कट भयकूं पाय भेले होय वनविषैं तिष्ठै हैं ॥४६॥ अर या उर मुनिनिके पाठके शब्द-करि मनोहर भासै हैं अर या उर तृणनिके अग्रभाग चरते मृगनिके समूह विचरै हैं तिनिकरि भऱ्या है ॥४७॥ अर या उर सिंहनिके कठोर शब्द तिनिकरि भयंकर है सो त्रास तजि यूथतैं न्यार होय कुंजर भागैं हैं ॥४८॥ अर बडे भैंसानिके सींगनिके अग्रभागकरि भग्न भए जे तट दूजी वोर रमणीक वनके स्थानक हैं, कैसे हैं स्थानक—वनके सूरनिकरि कर्दमरूप कीए हैं छोटे सरोवर जिनिके ॥ ४९ ॥ या गिरिके वनविषैं अल्पजलमैं प्रविष्ट जे मृग तिनिकरि अर बांसके बीडानिके पासि तिष्ठते हाथी तिनिकरि इह जानिए है जो इहां सिंह हैं तिनिकरि भयानक भासै हैं ॥ ५० ॥ इह गिरींद्र मृगानिकरि अर मुनिनिकरि कबहू नांही ताजिए है, कैसे हैं मृग अर कैसे हैं मुनि—वनविषैं है निवास जिनिका अर दोऊही विषमभूमिमैं शयन करै हैं ॥५१॥

अलंघ्य देखिकरि चक्रपाणि हर्षकूं प्राप्त भया ॥ २७ ॥ धर्मबुद्धि भरतेश्वर पहाडके नीचे दूरिही वाहनादि परिकरनिकूं तजिकरि पयादा होय चाल्या ॥ २८ ॥ पहारपरि पयादा होय चढतें ताहि तुच्छमात्रहू खेद न भया जे आत्मकल्याणके अर्थी हैं तिनिकूं आत्महितरूप क्रियाविधि खेदके अर्थि नांही ॥ २९ ॥ सो राजाधिराज देवनिकरि निरमाए भिन्न भिन्न मणिनिके सिवाण तिनिकरि गिरिपरि चढता भया, वे मणिमई सिवाण मानूं स्वर्गकेही सिवाण हैं ॥ ३० ॥ सो या पर्वतकी ऊर्ध्वभूमिविषैं वननिकी स्थलीमैं तिष्ठिकरि पावता भया मानूं वनकी शीतल पवनकरि पाहुणगतिका सत्कार ॥ ३१ ॥ कहूंइक फूलि रहे मंदार जातिके कल्पवृक्षनिके वन तिनिकी कुंजगलीनिमैं विहार करणहारी फूलनिके हैं भिन्न भिन्न आभूषण जिनिके ऐसी वनदेवी तिनिकूं देखता भया ॥ ३२ ॥ अर कहूंइक वनके मध्य सूते अपने बालक तिनिकूं शयन करावती जो मृगी ताहि देखता भया, आरंभ्या जो धीरैं धीरैं बोगालनां ताकरि संयुक्त हैं ॥ ३३ ॥ अर कहूंइक वनविषैं सूते बडे अजगरके बालक, तिनिकूं देखता भया मानूं पर्वतकी आंतके ढेरही परे हैं ॥३४॥ अर कहूंइक गजके मदकी वासकरि गंधरूप जे गिरिके उच्च पाषाण तिनिकूं देखता भया जिनिकूं सिंह रोषतैं नखनिके अंकुरेनिकरि कुचरै हैं ॥ ३५ ॥ बहुरि कछुइक आगैं चढिकरि पर्वतकी परमशोभा देखता भया तहां अवसर पाय पुरोहित ऐसे वचन कहे ॥ ३६ ॥ हे देव ! देखहु, याके स्थानक अति आश्चर्यकारी जहां स्वर्गविषैंहू आदररहित भए देव रमै हैं ॥ ३७ ॥ ए ही याका प्रभाव भुवनसूं अधिक पूर्ण है जो थावर जंगमका गुरु भगवान ऋषभ यापरि बिराजै है ॥ ३८ ॥ इह महागिरि नदीरूप स्त्री तिनिकूं निरंतर अपने अंकमैं धारै है जैसैं कामी पुरुष कामिनीकूं निरंतर अपने निकट धारै, कैसी है नदीरूप स्त्री—झरै हैं नीलजलरूप वस्त्र जिनिकै ॥३९॥ इहां भगवानके प्रभावतैं हिंसा नांही, देखहु—इह मृगेंद्र हिंसारहित है अर क्रीडाके कारण गुफाथकी वडे सर्पकूं खैंचतासंता दीर्घ जानि तजै है, सर्प अतिदीर्घ हैं ॥४०॥ इह गिरि अपनी तलहटीविषैं मुनिनिके तुल्य जे वननिके विस्तार तिनिकूं धरै है मुनि अर वन दोऊही शीत

गिरिहू महत्ता अर अचलताकूं धरै है ॥ ६३ ॥ हे भरताधिप ! इह अचलाधिप शुद्ध स्फटिक समान निर्मल उदारस्वरूप शुद्धात्माकी नांईं तुमकूं कल्याणकै अर्थि होहु ॥ ६४ ॥ या भांति पर्वतकी शोभा पुरोहित प्ररूपी, ताहि सुनिकरि भरतेश्वर परम आनंदकूं प्राप्त भया, कैसा है भरत—परंतप कहिए शत्रुनिकूं कंपायमान करणहारा है ॥६५॥ वहुरि कछुइक अंतर उलंघिकरि आघा (आगैं) गया हर्षित है चित्त जाका सो विवेकीनिमैं श्रेष्ठ भगवानके समवसरणके समीप जाय पहौंच्या ॥६६॥ वरसती जो पहौपनिकी वृष्टि अर दुंदुभीनिके शब्द तिनिकरि भरतेश्वरके निवासका निकटपना जानता भया ॥ ६७ ॥ मंदारजातिके पुष्प तिनिकी सुगंधता लीए वनकी बेलिनिकूं हलावती पवन भरतकै सन्मुख आई सो मानूं उठिकरि निकट आवै है ॥ ६८ ॥ अर नीरकी वर्षा पूरचा है आकाश जानैं सो पृथ्वीविषैं पडती भई रजरहित कीया है भूतल जिनि ऐसे शीतल जलकण तिनिसहित फूलनिकी वर्षा होती भई ॥ ६९ ॥ अर दुंदुभी वाजेनिकी गंभीरध्वनि आकाशविषैं होती भई सो भरतेश्वर सुनते भए, कैसी है ध्वनि—मेहके गाजिबकी है आशंका जिनिकै ऐसे मयूर तिनि ऊंची नाडिकरि सुनी है ॥ ७० ॥ सो राजनिका ईश्वर टिकूंणे प्रमाण पुष्पनिके समूहनिकरि पूरित जो महाकोमल मार्ग ताकरि खेदरहित गिरिपरि गया ॥ ७१ ॥ पर्वतपरि चढिकरि ताके शिखरपरि जिनेश्वरका समवसरण देख्या जाका पूर्वै वर्णनकरि आए हैं ॥ ७२ ॥ जहां आयकरि सुर असुर प्रभुका दर्शन करते प्राणी सुनिवेका अवसर निरखते तिष्ठैं हैं तातैं सत्पुरुष भी ताका नाम समवसरण कह्या है ॥ ७३ ॥ अथानंतर भरतक्षेत्रका अधिपति धूलीसालकूं जाय प्राप्त भया, कैसा है धूलीसाल—अखंड है मंडल जाका अर अपने उद्योतकरि इंद्रधनुषकी शोभाकूं विस्तारै है ॥ ७४ ॥ बहुरि धूलीसालकूं उलंघिकरि आगैं जाय मानस्तंभकूं पूजता भया सो मानस्तंभ सुवर्णके स्तंभनिके अग्रभागविषैं रचे हैं रत्ननिके तोरण तिनिकरि देदीप्यमान है ॥ ७५ ॥ मानस्तंभके समीप कमलनिसहित सरोवरी तिनिकूं निरखता भया, ते सरोवरी शीतल जलसूं भरी महानिर्मल मानूं जिनवाणीही हैं ॥ ७६ ॥ अर

इह पर्वत सदा प्रशांतता अर रौद्रता धारै है अब जिनेंद्रके निवासतै महाशांतरूप होय रह्या है ॥ ५२ ॥ देखहु–मृगेंद्रनिका गजेंद्रनिसहित वनविषैं एक ठौर वास है, पूर्वै सिंहनिकरि विदारे गए हैं गजनिके कुंभस्थल तिनिकूं प्रीतिकरि स्पर्शैं है ॥ ५३ ॥ अर चारणमुनिनिकरि आश्रित जे गुफा तिनिके मध्य निःशंक भए मृग सिंहादि क्रूर जीवनिसहित प्रवेश करै हैं, भावार्थ—सिंह अर मृग मित्र भए विचरै हैं ॥ ५४ ॥ इह बडा अचिरज है जो तिर्यंच अविवेकी तिनिके समूह मुनींद्रनिके पीछैं पीछैं जाय हैं, कैसे हैं मुनि–नांही जान्या है वनका भय अर वनकी शोभा जिनि ॥५५॥ इह गिरि सत्यार्थ है नाम जिनिका ऐसे अष्टापद तिनिकरि अष्टापदनामकूं प्राप्त भया है याकूं आगामी कालविषैं अष्टापद कहैंगे ॥ ५६ ॥ देदीप्यमान है याके मणिनिके तट तिनिके निकट तारानके समूह आवते संते प्रगट नांही भासै हैं गिरिके रत्ननिकी क्रांतिकरि आच्छादित भया है मंडल जिनिका ॥ ५७ ॥ रात्रिविषैं औषधीनिके समूह दीपककी नांई प्रकाश करै हैं तथापि इंद्रनीलमणिमई हैं तट जाके तिनिकी क्रांतितैं तिमिरकी आशंकाकरि किंनर नांही आवै हैं ॥ ५८ ॥ या पर्वतविषैं हरितमणिके तट तिनिकी फैलती किरण तिनिकरि मृग तृणांकुरकी बुद्धि धरि आवै हैं सो विलख होय जाय हैं ॥ ५९ ॥ अर पद्मराग रत्ननिकी किरणनिकरि देदीप्यमान वनकी पंक्ति ऐसी शोभाकूं विस्तारै है मानूं सांझके बादरानिकरि व्याप्त है ॥६०॥ इहां सूर्यकांतिजातिकी मणि सूर्यकी किरणनिकरि स्पर्शीथकी अधिक प्रज्वलित होय है, तेजस्वीसूं तेजस्वीका संयोग होय तब दोऊनिका समान तेज प्रगटै ॥ ६१ ॥ अर इहां रात्रिविषैं चंद्रमाकी किरण चंद्रकांतमणिकूं स्पर्शैं है तब अमृत झरै है सदा इही रीति है कबहू हीनता नांही, पुद्गलद्रव्यका स्वभाव विचित्रताकूं धरै है ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! इह गिरिवर मानूं जिनवरके भावकूं आचरै है। जिनवरकै निकट देव आवै हैं जिनवर देवनिकरि आराध्य है अर इहांहू देवनिका आगम है अर जिनवरकै सिंहासनका धारण है अर इहां सिंहनिके आसनका धारण है सिंह आसन धारे तिष्ठै हैं अर जिनवर महता अर अचलताकूं धरै है अर इह

भया मानूं वनकी पंक्ति सोई भई विलासिनी ताकी रत्नजटित कांचीदामही है ॥ ९१ ॥ बहुरि ध्वजानिकरि शोभित जो भूमि ताहि देखता भया मानूं पवनकरि हालै हैं ध्वजानिके वस्त्र तिनिकरि भरतकूं बुलावै ही है ॥ ९२ ॥ आकाशविषैं विस्तरती ध्वजानिकी पंक्ति ताकरि शोभित वह भूमि चक्रसहित सोहै है मानूं प्रबल जिनराजकी जयभूमिही है ॥ ९३ ॥ ध्वजा जिनेश्वर देवकी दशप्रकारकी कही—सिंह, वस्त्र, कमल, मयूर, हस्ती, गरुड, पुष्पमाल, वृषभ, हंस, चक्र ॥ ९४ ॥ सो एक एक प्रकारकी ध्वजा एक सौ आठ आठ हैं एक दिशामैं एक हजार अस्सी, च्यारि दिशामैं तीयालीससै बीस तिनिकूं चक्रवर्त्ती पूजता संता आघा गया ॥ ९५ ॥ तहां दूजा कोट रूपामई जाकै च्यार दरवाजे, द्वार द्वार मंगलद्रव्य अर नवनिधि परी सो दूजे कोटकूं उलंघिकरि भीतर गया तहां पूर्व रीतिप्रमाण नाट्यशाला अर धूपघट देखे ॥ ९६ ॥ अर देवीनिके नृत्य देखे गीत सुने अर धूपकी सुगंधता सूंघता संता अधिक प्रसन्न भया ॥ ९७ ॥ बहुरि कल्पवृक्षनिके वनकी भूमि वस्त्र आभरण पुष्पमाला इत्यादि इष्टफलकी देनहारी ताहि देखता संता अपने नेत्र सफल जानता भया ॥ ९८ ॥ तहां सिद्धप्रतिमाकरि शोभित सिद्धार्थवृक्ष तिनिकूं प्रदक्षिणा देय प्रणाम करता संता इंद्रकरि पूजित वे विंब तिनिकूं पूजता भया ॥ ९९ ॥ बहुरि च्यारि दरवाजेनिकरि शोभित वनवेदी ताहि उलंघिकरि महलनिकरि मंडित पृथ्वी ताहि देखि स्तूपनिकूं देखता भया ॥ १०० ॥ महल नाना प्रकारके देवनिके आवासकै निमित्त रचे हैं—तिखने चौखने पचखने इत्यादि नाना रचनाकरि शोभित, ते रचना कौन कौन भांतिकी—स्वस्तिक सर्वतोभद्र नंद्यावर्त्त रुचक वर्द्धमानादि ॥ १०१ ॥ अर रत्ननिर्मापित स्तूप रत्नतोरणनिकरि शोभित जिनबिंबनिकरि संयुक्त सोहै हैं ॥ २ ॥ तिनिकूं देखता पूजता गुण गावता अचिरजकूं प्राप्त भया बहुरि तहांतैं आघा गया ॥ ३ ॥ तहां आकाशतुल्य फटिकमणिका निरमाप्या तीजा कोट मानूं जिनेंद्रके निकटतैं शुद्धताकूं प्राप्त भया है ताहि देखता भया ॥ ४ ॥ तहां कल्पवासी देव द्वारपाल आदरसूं चक्रीका प्रभुकी सभामैं प्रवेश करावते भए ॥ ५ ॥

धूलिसालके समीप मार्गके अंतर विषैं देवनिके निवासयोग्य उचित भूमि देखता भया ॥ ७७ ॥ बहुरि कछुइक आगैं जायकरि अतिनिर्मल अगाधजलकी खाई देखता भया मानूं सत्पुरुषनिके चित्तकी वृत्तिही हैं ॥ ७८ ॥ बहुरि बेलिनिका वन नानाप्रकारके पुष्पनिकरि मंडित देखता भया सो वन–पुष्पनिके मकरंदका रस लेकरि भ्रमे हैं उन्मत्त भए भ्रमर तिनिकरि मंडित है ॥ ७९ ॥ बहुरि कछुइक आगै जायकरि पहला कोट देख्या निषधाचल पर्वतके तटकी स्पर्द्धा करै ऐसा रत्ननिकी प्रभाकरि युक्त है स्वरूप जाका ॥ ८० ॥ अर देव द्वारपाल जाके दरवाजेनिमैं तिष्ठै हैं अर दरवाजेमैं अष्टप्रकार मंगलद्रव्य तिष्ठै हैं तिनिकूं देखता भया ॥ ८१ ॥ बहुरि द्वारकै भीतर प्रवेश करतासंता चक्री दोय नाट्यशाला निरखी परमप्रीतिकूं प्राप्त भया । कैसी है नाट्यशाला–इंद्राणी आदि देवांगना नृत्य करै हैं जहां ॥ ८२ ॥ बहुरि मार्गके दोऊ तरफ दोय दोय धूपघट देखे, सुगंध जो अगर चंदनादि तिनिके खेयबेकरि उठी है सुगंध धूम्र जहां ॥ ८३ ॥ बहुरि च्यारि वन देखे, परै हैं पुष्प जिनिके ऐसे वृक्षनिकरि मानूं अर्घही देहैं ॥ ८४ ॥ फूलि-रह्या है अशोकवन अर सप्तच्छदवन तथा चंपकवन अर आम्रवन सो इनिकूं देखिकरि नरेंद्र उत्सवकूं प्राप्त भया ॥ ८५ ॥ तिनिमैं च्यारि चैत्यवृक्ष अति उत्तुंग जिनबिंबनिकरि शोभित तिनिकूं लक्ष्मीवान पूजता भया । कैसे हैं वे चैत्यवृक्ष इंद्र नागेंद्र नरेंद्रनिकरि पूजनीक हैं ॥९६॥ तिनि वननिमैं किंनरदेवी जिनराजके उत्सव गावै हैं सो सुनिकरि चक्री परमसंतोषकूं प्राप्त भया, कैसे हैं किंनरीनिके गीत—मनोहर गंभीर स्वरकी है रचना जिनिमैं ॥ ८७ ॥ सुगंध पवन सोई है श्वास जाके अर फूलही हैं मुलकनि जाकी ऐसी वनलक्ष्मी सो मानूं कोकिलानिके आलापकरि चक्रवर्तीसूं वचनालापही करै है ॥ ८८ ॥ मृगीनिके गीत तिनिकरि मिले कोकिलानिके शब्द तिनिकरि मानूं वन भगवानके कामके जीतिवेके यश सोही गावै हैं ॥ ८९ ॥ तीन जगतके प्राणी तिनिके समूह निरंतर आवै हैं अर जाय हैं तिनिके शब्द सुनता भया सो मानूं समुद्रकी गाजही है ॥ ९० ॥ अथानंतर वनकी भूमिकूं बेढे जो वनवेदी ताहि देखता

सभा मानूं धर्मरूप जलके बरसणहारे वर्षाकालके मेघही है ॥ १९ ॥ नानाभाषारूप एक आपकी दिव्य-
ध्वनि ताकूं सहजही विना यत्न विस्तारै है, वह दिव्यध्वनि जीवनिका अंतरंगका तिमिर हरै है ॥ २० ॥
अर अनंत है वल जिनिमैं ऐसे जिनराज वस्त्राभरणरहित ही अतिसुंदर हैं मनोहर है वचनका विभव
जिनिका अर फैलि रही है सुगंधता शरीरकी अर शुभ हैं लक्षण जिनिके ॥ २१ ॥ अर पसेवरहित, मल-
रहित छायारहित है शरीर जिनिका, नांही लगै है आंखिनिकी पलक जिनिके अर समचतुरस्रसंस्थान
अभेद्यशरीर अतिप्रवलताकरि संयुक्त है ॥ २२ ॥ या भांति चिंतवनमैं न आवै माहात्म्य जिनिका ऐसे
देवाधिदेव तिनिकूं दूरितैं देखता संता भरत आनंदकरि पूर्ण नम्रीभूत होय नमस्कार करता भया पृथ्वी-
विषैं लगाए हैं जानु कहिए गोडे जिनि ॥ २३ ॥ दूरहीतैं नम्रीभूत भया है चलायमान मुकुट जाका अर
हालै है मणिमई कुंडल जाका सो भगवानकूं भक्तिकरि नमस्कार करता संता कैसा सोहता भया मानूं
रत्ननिकरि अर्घ देहै ॥ २४ ॥ बहुरि विधिपूर्वक जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फलकरि पूजा
करता भया, मोक्षफलकी है अभिलाषा जाकै ॥ २५ ॥ करी है पूजाकी विधि जानैं बहुरि परमेश्वरकूं
प्रणामकरि भरतेश्वर महास्तुतिकरि स्तवन करता भया ॥ १२६ ॥ हे देव ! मैं मेरी शक्ति प्रमाण तिहारी
स्तुति करूंहूं तुम परमात्मा अपारगुण अविनाशी हौ, मैं शक्तिकरि मंद तथापि प्रवल भक्तिकरि प्रेऱ्या
तिहारा स्तवन करूंहूं ॥ २७ ॥ कहां तिहारे गुण गणधरनिहूतैं अगम्य अर कहां हम सारिखे मंदबुद्धि
जगतके जीव ? तथापि तिहारे गुणनिके आधीन जो भक्ति ताकरि स्तुति करिवेका यत्न करूंहूं ॥ २८ ॥
हे प्रभो ! तिहारी भक्ति परम फलकै आर्थि होय है, जे तिहारे दास हैं ते अजर अमर पद पावै हैं सो इह
वात सत्य है—स्वामीकी संपदा सेवकनिके संपदाकी वृद्धि करै है ॥ २९ ॥ घातिकर्मरूप मलके अभावतैं
तिहारै अनंतगुण प्रगट भये हैं जैसैं मेघपटलके अभावतैं सूर्यकी किरण प्रगट होहि ॥ ३० ॥ हे देव !
तिहारे घातियाकर्मनिके जीतिवेतैं केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख वीर्यादि क्षायिकलब्धि प्रगट भई

एक योजनका लांबा एक योजन चौडा श्रीमंडप ताहि देख्या जाविषैं समस्त जगत माय जाय ॥ १०६ ॥ तहां देखता भया महाज्ञानके धारी मुनिनिकूं अर कल्पवासिनीदेवी तथा अर्जिकासहित परमश्राविका रानी आदि बहुरि ज्योतिषी देवनिकी देवी तथा व्यंतरी अर भवनवासिनी ॥ ७ ॥ बहुरि भवनवासी देव व्यंतरदेव ज्योतिपीदेव बहुरि इंद्रादि स्वर्गवासी तथा राजादिक मनुष्य अर सिंहादि पशु, ए बारह सभा भगवानके चरणनिकी उर निरखै हैं प्रीतिकरि प्रफुल्लित हैं लोचन जिनिके ॥ ८ ॥ इनि गणनिकूं देखता भरत भगवानकी तीन प्रदक्षिणा देता भया तीन हैं कटिनी जाकै ऐसा पीठ ताकी प्रथम कटिनी अवलोकी ॥ ९ ॥ तहां पूजता भया हर्षकरि चक्रवर्त्ती च्यारि धर्मचक्रनिकूं, वे चक्र यक्षनिके सिरपरि धारे हैं सूर्यके विंबकूं जीतैं ऐसी है ज्योति जिनिकी ॥ ११० ॥ बहुरि दूसरी कटिनीविषैं अष्ट महाध्वजानिकूं पूजता भया तिनि ध्वजानिमैं चक्र गज बैल कमल सिंह माला वस्त्र गरुड ए चिह्न हैं ॥ ११ ॥ बहुरि तीसरी कटिनीविषैं तानै श्रीमत् गंधकुटी देखी ताकै मध्य रत्ननिके समूहकरि मनोज्ञ सिंहासन सुमेरुके शिखर समान उत्तुंग तापरि तिष्ठतैं महासुंदर शरीर जगतके गुरु श्रीऋषभदेव देखे ॥ १२-१३ ॥ तीन छत्रनिकरि है छाया जिनिपरि अर आप शरीरकी छायातैं रहित पापनिके छेदनहारे अपने तेजोमंडल-करि प्रकाशरूप कीये हैं सुर असुर नरनिके समूह जिनि ॥ १४ ॥ अर अशोकवृक्षके चिह्नकरि मानूं प्रगट करै है जिनिभक्तनिकूं शोकका अभाव ॥ ११५ ॥ अर चालते चंवर तिनिकरि शोभित है समीप जिनिका अर महामनोहर सुंदर शरीर जैसा नीझरने झरिबेकरि सुवर्णगिरि सोहै तैसे आप सोहै हैं ॥ ११६ ॥ अर देदीप्यमान भामंडल ताकरि वेष्टित जैसा परिवेष कहिये ज्योतिका मंडल ताकरि सूर्यमंडल सोहै है ॥ ११७ ॥ अर गंभीर शब्दके करणहारे आकाशविषैं बाजते दुंदुभि तिनिकरि प्रगट है उदय जिनिका अर पहौपवृष्टिके करणहारे देवरूप मेघ तिनिकरि सेवनीक महाप्रबल लक्ष्मीकूं धरे विराजे हैं ॥ ११८ ॥ देदीप्यमान गंभीर शब्द तिनिकरि पोषी है तीन जगतकी

करि सूर्यका उदय जान्या जाय है तैसैं अनेकांतवचनकरि तिहारा अमूर्त्तिस्वरूप सर्वज्ञपना जान्या जाय है ॥ ३८ ॥ जैसैं अंधकारविषैं शब्दकरि मोर दूरितैं जान्या जाय तैसैं प्रगट सत्यार्थ वचन तिनिकरि तिहारा सर्वज्ञवीतरागपना प्रगट होय है, तुम सेयवेयोग्य हौ, आप्त ऐसा नाम तुमहीकूं संभवै ॥ ३९ ॥ हे ईश ! तिहारी अनंतज्ञानादिरूप अध्यात्मविभूति ताकी महिमा तौ दूरिही रहौ तिहारी निजविभूतिका वर्णन कौन करि सकै अत्यंत है उदय जाका, इह तिहारी बाह्यविभूतिही कहिवेमैं न आवै तिहारी अंतरंगविभूति तौ अलक्ष्य है अर इह बाह्यविभूति देखें हमकूं ऐसी प्रतीति आवे है जो तुम सबके शिक्षादायक गुरु हौ, सब तिहारे शिष्य हैं ॥ १४० ॥ इह तिहारा सिंहासन सुरशिल्पीनिका निर्माप्या रत्ननिकी क्रांतिकरि देदीप्यमान सुमेरुके शिखरसमान सोहै है ॥ ४१ ॥ अर ए तीन छत्र देवनिकरि धराए महामनोहर अतिउज्ज्वल सोहै हैं, तीन लोकके प्रभुत्वपनेका ए चिह्न है, हम कैसे प्रतीति न करें ? ॥ ४२ ॥ अर ए देवनिके ढारे चौंसठि चमर तिहारे ईश्वरपना प्रगट कहै हैं तिहारी ईश्वरता तीनभुवनकी महिमाकूं उलंघै और काहू देव मनुष्यमैं न पाइए ऐसी अद्वितीय है ॥ ४३ ॥ हे प्रभो ! ए देवरूप मेघ तिहारी सभाके चौगिरद पुष्पनिकी वर्षा करै हैं जिनिकी अद्भुत सुगंध ताकरि भंवरनिके समूह आय आय गुंजार करै हैं ॥ ४४ ॥ अर देवरूप किंकर तिनिके हाथनिकरि वजाए ए देवदुंदुभि आकाशविषैं गंभीर नाद करै हैं, तिहारी जीतिके उच्छवविषैं देव नानाप्रकारके वादित्र बजावै हैं ॥४५॥ अर इह तिहारा अशोकवृक्ष देवनिकरि सेयवेयोग्य जीवनिके समूहके शोकसंतापका हरणहारा तिहारी तुल्यता धारै है, तुमहू शोकापहारी इहहू शोकापहारी ॥ ४६ ॥ अर तिहारे देहकी दीप्ति अतिदेदीप्यमान सब सभाके आसिपासि फैलि रही है वरी है ऊगते सूर्यकी शोभा जानैं सो नेत्रनिकूं उच्छव विस्तारि रही है ॥ ४७ ॥ अर तिहारी दिव्यभाषा समस्त भाषाके भेद तिनिमैं प्रवेश करणहारी है तिर्यंचनिहूके मनका तिमिर हरे है, भावार्थ—तिहारी वाणी सुनि तिर्यंचहू श्रावकके व्रत धारै हैं ॥४८॥ हे प्रभो ! ए अष्टप्रातिहार्यमई विभूति

॥ ३१ ॥ हे नाथ ! तिहारे अनंतज्ञान ज्योतिका उदय भया ताकरि तुम लोककूं बिना अवधि जानते भए भावार्थ—अवधिज्ञानावरण बारवें गुणस्थान लग है अर तेरमें गुणठाणें केवलज्ञानका उदय भया तब मति श्रुत अवधि मनःपर्यय नांही ॥ ३२ ॥ हे ईश ! तिहारी इह वचनकी शुद्धता सर्वज्ञपनेंकूं प्रगट कहै है जे मंदबुद्धि हैं तिनिके वचनका विभव संपूर्ण नांही, तिहारे वचनकी शुद्धि सर्वभाषानुगामिनी है सब जीवनिकी भाषारूप परिणवै है ॥ १३३ ॥ वक्ताकी प्रमाणतातैं वचनकी प्रमाणता होय है अशुद्धवक्तातैं उज्ज्वलवाणी प्रगट न होय ॥ ३४ ॥ इह तिहारी वाणी सप्तभंगरूप विश्वका व्याख्यान करणहारी है सो इह वाणी तिहारा निर्मल आप्तपना प्रगट करिबेकूं समर्थ है, आप्तनाम सर्वज्ञ वीतरागका है ॥ ३५ ॥ सप्तभंगीका वर्णन करिये हैंः—स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावकरि द्रव्य कथंचित् प्रकार अस्तिरूप है अर परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावकी अपेक्षा कथंचित् प्रकार द्रव्य कहिए पदार्थ सो नास्तिरूप है अर एकही समयविषैं स्वपरचतुष्टयकी अस्ति नास्तिकरि कथंचित् प्रकार वस्तु अस्तिनास्तिरूप है अर अवक्तव्य कहिए वचनगोचर नांही, काहेतैं ? जो वस्तु तौ एकें काल अस्ति नास्तिरूप अर कहिबेमैं अस्ति नास्ति आगै पीछैं आवै तातैं अवक्तव्य है अर वस्तु अस्तिरूप है परंतु सर्वथा अस्ति कहे नास्तिका अभाव होय तातैं अस्ति अवक्तव्य है अर वस्तु परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है परंतु नास्ति कहे अस्तिका अभाव होय तातैं नास्ति अवक्तव्य है अर वस्तु एकही समयमें अस्तिनास्तिरूप परंतु कथनमें अनुक्रमतैं आवै तातैं एक समय कथनमें न सधै तातैं अस्तिनास्तिअवक्तव्य है, हे सर्वज्ञ ! तेरी वाणी अनेकांतरूप है ॥ ३६ ॥ इह सर्वज्ञपनां तुमहीविषैं तिष्ठै है, जे केवल बोधरहित संसारी जीव हैं तिनिविषैं सर्वज्ञपना संभवै नांही, कैसे हैं संसारीजीव—अस्तिनास्तिकी विरुद्धताकरि युक्त जो वाग्जाल ताकरि रुकी है बुद्धि जिनिकी ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! जैसे सूर्यकी किरण मेघमंडलके योगकरि नांही भासै है तथापि प्रशस्त जे कमल तिनिके फूलिबे

पर्व ३३
६३०

च्यारि वननिकी पंक्ति ॥ ६२ ॥ अर द्वय वनवेदी अर ध्वजानिकी पंक्तिकरि संयुक्त भूमि अर कल्पवृक्षनिके वनका विस्तार अर रत्ननिके स्तूप, महलनिकी पंक्ति ॥६३॥ इह समवसरणकी भूमि सुर असुरनिकूं पवित्र करणहारी मानूं तीन जगतकी सारसंपदाका समूह एक ठौर थाप्या है ॥ ६४ ॥ इह तिहारी वाह्य विभूति भलैप्रकार प्रगट कीया है महा उदय जानैं सो तिहारी अध्यात्मलक्ष्मीकूं प्रगट दिखावै है, तिहारे वाह्य विभूतिही अद्भुत अनुपम है तो अंतरंग विभूतिको कहा कहनौं ॥ ६५ ॥ इह तिहारा समवसरण भक्तिकरि देवनि निरमाप्या सो तिहारे वैराग्यातिशयकूं नांही निवारै है, कैसा है इह समवसरण—जाकी महिमा कहिबेमैं न आवै ॥ ६६ ॥ या भांति अद्भुत है महिमा जाकी ऐसे तुम तीन जगतके वल्लभ पवित्र आज्ञाके करणहारे सो स्तुतिका उद्यम करणेहारा मैं ताहि पवित्र करो ॥६७॥ हे ईश ! पूर्ण होहु स्तुतिके विस्तार करि, तिहारे अति अचिंत्य गुण कहांलग कहैं तुम जयवंत होहु अर नमस्कार तुमकूं या प्रकार संक्षेपथकी स्तुति करूंहूं ॥ ६८ ॥ हे ईश ! तुम जयवंत होहु भस्म कीए हैं कर्मइंधन जिनि, हे अजर ! तुम जयवंत होहु, हे लोकके गुरु सब जीवनिके हितू ! तुम जयवंत होहु, जगतके जीतनहारे तुम जयवंत होहु ॥ ६९ ॥ हे लक्ष्मीके पति ! तुम जयवंत होहु, हे प्रकाशरूप अनंतगुणानिकरि उज्ज्वल तुम जयवंत होहु, हे समस्त जगतके बंधु ! समस्त जगतके हितू ! तुम जयवंत होहु ॥ ७० ॥ हे सकल जगतके वेत्ता अनंतसुखका है उदय जिनिकै तुम सो जयवंत होहु, हे अखिल जगतमैं ज्येष्ठ ! हे अखिल जगतके प्रतिबोधक ! तुम जयवंत होहु ॥ ७१ ॥ हे मोहरिपुके हरणहारे ! हे मदनके तिरस्कार करणहारे तुम जयवंत होहु, हे जन्मजराके हरणहारे ! हे कालके जीतनहारे ! तुम जयवंत होहु ॥ ७२ ॥ हे मदरहित निर्मोह निर्मम तुम जयवंत होहु । हे निर्मल निर्द्वंद्व तुम जयवंत होहु । हे शरीरबंधनरहित अमूर्त्तीक चिदानंद सर्वव्यापक विस्तीर्ण तुम जयवंत होहु ॥ ७३ ॥ हे सन्मार्गके वेत्ता, कुमार्गके निवारक, तुम जयवंत होहु, हे कर्मरूप वैरीनिके मर्मके भेत्ता, धर्मचक्रके नायक जयवंत होहु, हे जीतनहारेनिमैं मुख्य तुम जयवंत होहु

तिहारी महिमाकूं प्रगट कहै है तिहारी महिमा तीन भुवनकूं उलंघै अैसी अनुपम है ॥ ४९ ॥ अर इह तिहारी गंधकुटी तीन कटिनीका पीठ सुमेरु सारिखा गुरुतर ताकी चूलिकासमान भलेप्रकार सोहै है, इह गंधकुटी त्रिभुवनकरि सेव्य है ॥ ५० ॥ सो इह गंधकुटी बंदना करणहारे मुनींद्र तिनिके स्तोत्रनिके शब्द सुनिकरि वारंवार प्रतिशब्द करती कैसी सोहै है मानूं अतिहर्षतैं भक्तिकरि तिहारी स्तुतिही कीया चाहै है ॥ ५१ ॥ इह गंधकुटी अमोलक रत्ननिकरि निर्मापी अत्यंत देदीप्यमान ताविषैं विराजमान तुम सो नम्रीभूत भए इंद्रादिक देव भजै हैं ॥ ५२ ॥ ए नम्रीभूत देव तिनिके मुकुट शिखामणिसहित कैसे सोहै हैं मानूं दीपसहित रत्ननिके अर्घ तिहारे चरणनिके समीप थापे हैं ॥ ५३ ॥ नमस्कार करते अनेक कोटि देव तिनिके मस्तकऊपरि तिहारे चरणनिके नखनिकी क्रांति जाय लागी है सो मानूं प्रसादके अंशही हैं ॥ ५४ ॥ अर तिहारे चरणनिके नखरूप दर्पणविषैं प्रतिविंबित भए देवांगनानिके मुख सो कैसे सोहैं हैं मानूं तिहारे चरणनिके समीप कमल ही चढाए हैं ॥ ५५ ॥ अर तिहारे पादतलकी क्रांति विस्तरतीसंती देवांगनानिके मुखविषैं कुंकुमकी शोभाकूं धरै है, कैसी है पगथलीकी क्रांति–जपापुष्पसमान अतिअरुण है ॥ ५६ ॥ हे त्रैलोक्यतिलक ! द्वादशसभाके मध्यवर्ती इह तिहारा पीठरूप पर्वत तीन कटिनीकूं धरे पृथ्वीविषैं सोहै है. प्रगट कीया है मंगल जानैं ॥ ५७ ॥ पीठकी पहिली कटिनी तौ धर्मचक्रनिकरि शोभित है अर दूजी कटिनी अष्ट महाध्वजानिकरि मंडित है। ते महाध्वजा अष्टप्रकारकी च्यारि दिशा च्यारि विदिशा तिनिविषैं हैं ॥ ५८ ॥ अर इह तिहारा श्रीमंडप एक योजनप्रमाण तीन जगतके प्राणीनिकूं निरंतर अवकाश देवे समर्थ है ॥ ५९ ॥ हे जगतगुरु ! इह धूलीसालिकी रचना अर मानस्तंभ बहुरि सरोवरी अर जलकरि पूर्ण खाई अर वेलिनिका वन ॥ ६० ॥ अर तीन कोट उत्तुंग जिनिके च्यारि च्यारि दरवाजे, दरवाजे दरवाजेमैं मंगलद्रव्यके समूह अर नवनिधि तथा तोरण ॥ ६१ ॥ अर दरवाजै दरवाजै दोय दोय नाट्यशाला अर दोऊ तरफ दोय दोय धूपघट अर चैत्यवृक्षनिकरि मंडित

धारक हौ, महाश्रेष्ठ तीन लोकके राजा हौ अर बडेनिक बडे हौ, आचार्य उपाध्याय साधु तिनिके स्वामी हौ। गणींद्र मुनींद्र अहमिंद्र इंद्र नागेंद्र असुरेंद्र खगेंद्र दिनेंद्र चंद्रादिकनिकरि आराध्य हौ, सवनिके गुरु हौ ॥ ८४ ॥ नम्रीभूत भए हैं सुरेंद्र तिनिके मुकुटविषैं चूडामणि ताकरि अर्चित हैं चरण तिहारे ऐसे तुम सो तुमकूं नमस्कार होहु, जे काम क्रोध लोभ मोह रागद्वेषादि दुर्जय तिनिके जीतिवेतैं उपार्जी है अविनाशी लक्ष्मी जिनि ऐसे तुम सो तिहारे तांई नमस्कार होहु ॥ ८५ ॥ हे नाथ ! तुम पूर्णऋद्धिके धारक परमपूजायोग्य ज्ञानावरण दर्शनावरण मोह अंतराय ए घातियाकर्म तिनिके घाततैं पाया है अरहंतनाम जिनि, हे अरहंत तिहारे तांई नमस्कार होहु ॥ ८६ ॥ अंतक जो काल ताके अंत करणहारे जितमोह तिहारे तांई नमस्कार होहु, हे कामजीत वीतराग वैराग्यके प्रकाशक स्वयंभू तिहारे तांई नमस्कार होहु ॥ ८७ ॥ सुकृती पुरुष तुमकूं नमस्कार करता संता नम्रीभूत जे नृप तिनिकरि नमस्कार योग्य होय है अर जो प्रवीण तिहारी जीतिके यश गावै सो पृथ्वीकूं जीतै, कैसा है वह—जीते हैं जीतिवे योग्य महादुर्जय काम क्रोध लोभ मोह मत्सर जाकै ॥ ८८ ॥ हे देव ! मैं आज तिहारे दर्शनतैं धन्य भया, तिहारी स्तुति करिवेतैं मेरे बचन पवित्र भए अर तिहारे चिंतवनतैं मेरा चित्त पवित्र भया अर तुमकूं नमस्कार करिवेतैं मेरा देह पवित्र भया ॥ ८९ ॥ मैं आज कृतार्थ भया, मेरा जन्म सफल भया, मेरे दोऊ नेत्र अत्यंत सुखकूं प्राप्त भए अर मेरा मन अति प्रसन्न भया ॥ ९० ॥ पुण्यरूप जलतैं भर्‍या तिहारा तीर्थरूप सरोवर ताविषैं मैं स्नानकरि आज पवित्र भया, सुखकरि तृप्त भया, चिरकालमैं इह तीर्थ महाभाग्यतैं पाया, निश्चय तीर्थ निजात्मा अर व्यवहारतीर्थ अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु जिनधर्म जिनवचन जिनमंदिर जिनप्रतिमा कृत्रिम अकृत्रिम सिद्धक्षेत्र चतुर्विधसंघ ए तीर्थ कहिए ॥ ९१ ॥ हे देव ! तिहारी चरणानिके नखनिकी क्रांतिका समूह सोई पापरूप मैलका धोवनहारा निर्मलजल सो मेरे मस्तकपरि लाग्या ताकरि मैं पवित्र भया परमस्नान कीया ॥ ९२ ॥ एक उर चक्रवर्तीपदकी लक्ष्मी अप्रतिशासना कहिए जाविषैं

॥ ७४ ॥ हे जीवदयाके पति, हे पूज्य, हे महोदय, तुम जयवंत होहु, हे उद्धर सर्वोत्कृष्ट दयालक्षण धर्मके धारक धर्मरथके सारथी तुम जयवंत होहु ॥ ७५ ॥ हे संसारसमुद्रके तारक गुणाकर तुम जयवंत होहु, हे प्रभो! समस्तविद्यारूप समुद्रके पीवनहारे तुम जयवंत होहु ॥७६॥ हे परम अनंतसुखरूप जगतके पालक तिहारे ताईं नमस्कार होहु, हे परमानंद परमात्मा तिहारै ताईं नमस्कार होहु ॥७७॥ हे त्रिभुवनके प्रकाशक ज्ञानरूप प्रभाकरि शोभित जगतके सूर्य सर्वभास्कर सर्वव्यापक तिहारै ताईं नमस्कार होहु, हे नेत्रनिकूं आनंद करणहारे परमौदारिक तनके धारक तिहारै ताईं नमस्कार होहु ॥७८॥ हे प्रभो! गर्भकल्याणकके उत्सवविषैं इंद्रनिकरि स्तुति करिबेयोग्य तिहारै तांई नमस्कार, कैसे हैं इंद्र—मस्तकविषैं थापे हैं अपने हस्तांजलिरूप कमल जिनि ॥ ७९ ॥ अर जन्मकल्याणकविषैं इंद्रादिक देवनिकरि स्तुति करिबेयोग्य तुम सो तिहारै ताईं नमस्कार, कैसे हौ तुम—जन्मोत्सवविषैं सुमेरुके शिखरपरि भया है स्नान जिनिका अर कैसे हैं इंद्रादिक रच्या है अंजुलीका बंधन जिनि अर चलायमान हैं मुकुट जिनिके, भावार्थ—हाथ जोडि सीस नवाय बारंबार वंदना करे हैं ॥ ८० ॥ अर हे नाथ! नमस्कार होहु तुमकूं, तुम तपकल्याणकके उच्छवविषैं लौकांतिकदेवनिकरि महास्तुति करिबेयोग्य हौ, तिनिके अत्यंत वल्लभ हौ, कैसे हैं लौकांतिकदेव—मुकुटके अग्रभाग धरे हैं दोऊ हाथ जिनि बारंबार नमस्कार करे हैं ॥८१॥ हे देवाधिदेव! तिहारै ताईं नमस्कार होहु, कैसे हौ तुम—पाई है केवलकल्याणकी पूजा जिनि, स्वर्गवासी देवनिके जुडिरहे करकमल तिनि रची है स्तुति तिहारी, कैसे हैं देवनिके करकमल—मुकुटके अग्रभागविषैं अद्भुत रत्न तिनिकूं स्पर्शै हैं, भावार्थ—हाथ जोडि सीस नवाय नमस्कार करे हैं ॥ ८२ ॥ हे जगद्गुरु! तिहारै ताईं नमस्कार होहु, होणहार है निर्वाणकल्याणक जिनिके, निर्वाण उच्छवविषैं मस्तकविषैं जाज्वल्यमान है कोटि मुकुट जिनिके ऐसे अग्निकुमारनिके इंद्र तिनिकरि पूजायोग्य हौ ॥ ८३ ॥ हे ईश्वर! तिहारे तांई नमस्कार होहु, कैसे हौ तुम—पाई है कल्याणक पूजा जिनि अर महातेज प्रतापके

तिनि सहित अपने घरकूं छाया फिरचा कैसा है भरत—नाभिराजाके वंशकी ध्वजा है ॥ २०१ ॥ पुण्यके उदयतैं निधिपति समस्त दिशा जीतीं सो दिग्विजयविषैं साठिहजार वर्ष वीते बहुरि अतिप्रीतिसूं जिनराजकूं वंदि परमप्रमोदकूं प्राप्त भया, तातैं सुबुद्धिजन पुण्यके संग्रहविषैं यत्न करौ ॥ २०२ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतराजके कैलाशगमनवर्णन नाम तेतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३३ ॥

अथ चौंतीसवां पर्व ।

अथानंतर जैसैं सुमेरुतैं उतरिकरि सुरपति स्वर्गलोककूं प्रयाण करै तैसैं कैलासतैं उतरिकरि नरपति अयोध्याकूं प्रयाण करता भया ॥ १ ॥ सेनाकरि संयुक्त चक्रधर अपने निवासकूं गमन करता कैसा सोहता भया जैसैं नदीनिके समूहसहित गंगाका प्रवाह समुद्रकी उर गमन करता सोहै ॥ २ ॥ कैयक दिनमैं चक्रीका कटक अयोध्या आय प्राप्त भया, कैसी है अयोध्या—बंधि रहे हैं तोरण जहां अर फरहरै हैं महलनिपरि नानाप्रकारकी ध्वजा जहां ॥ ३ ॥ अयोध्यापुरी बुहारी अर जलकरि सींची अर चंदनके द्रव्यकरि लिप्त करी कैसी सोहै है मानूं इह पुरी पतिव्रता पतिके आगमविषैं स्नानकरि सुगंधसूं लिप्त भई है ॥ ४ ॥ सो भूपेंद्र आयकरि अयोध्याकै समीप तिष्ठ्या अर पुरविषैं प्रवेशकै समय चक्र पुरके द्वारविषैं अटक्या, पुरमैं प्रवेश न करै, कैसा है चक्र—अस्त कीए हैं शत्रुनिके समूह जानैं ॥ ५ ॥ सो नगरीके दरवाजे अटक्या चक्र ताकी किरणनिकरि आरक्त भई कैसी सोहै है मानूं धरी है संध्याकी अरुणता जानैं कुंकुमकरि मंडित है छवि जाकी ॥ ६ ॥ देदीप्यमान चक्र जाकै द्वारविषैं सो पुरी कैसी भासती भई मानूं धन्या है धीजका गोला जानैं जो इह भरतराजा चक्रवर्त्तीनिकी आदि है सांचा है अर सब ठौर आज्ञा मनाई है या भांति सौगंद खाय कहै है ॥ ७ ॥ तब कैइक देव चक्ररत्नके रखवारे चक्रकूं एक ठौर अटक्या देखि अचिरजकूं प्राप्त भए ॥ ८ ॥ कैइक देव उपज्या है क्रोध जिनिकूं सो कहा है ? कहा है ? ऐसे शब्द

दूजेकी आज्ञा नांही निःकंटक राज्य अर एक उर तिहारे चरणारविंदकी सेवा लोककूं एक पवित्र करन-हारी सो तिहारी सेवातुल्य चक्रवार्त्तिपद नांही ॥ ९३ ॥ मैं मूर्ख दिग्विजयके भ्रमणकरि महापाप उपार्ज्या सो तिहारे दर्शनतैं नष्ट भया जैसैं रात्रिका तिमिर सूर्यके उदयतैं नष्ट होय ॥ ९४ ॥ तिहारे चरणारविंदके स्मरणमात्रहीकरि पुरुष पवित्र होय है तौ भक्तिकरि प्रेरी तिहारे गुणनिकी स्तुतिकरि क्यों न पवित्र होय ॥ ९५ ॥ भगवान् तिहारे गुणस्तोत्रतैं मैं जो पुण्य उपार्ज्या ताकरि तिहारे चरण कमलविषैं मेरी परमभक्ति होहु ॥ ९६ ॥ या भांति थावर जंगमके गुरु भगवान ऋषभदेव तिनिकी स्तुतिकरि अनेक राजानि सहित राजनिकाराजा पूर्ण है बुद्धि जाकी आनंदके अश्रुजल तिनिकरि सींच्या है अग्रभाग जानैं सो भक्तिकरि नमस्कार करता भया, करकमलनिकरि स्पर्श्या है मुकुट जानैं ॥ ९७ ॥ कर्मरूप वैरीनिके जीतिबेतैं पाया है निर्मलज्ञान जानैं ऐसा पुराण पुरुष ता थकी पुराणधर्म सुनिकरि भरत प्रीतिकूं प्राप्त भया, वाहुल्यताकरि पूर्णबुद्धिनिकूं कल्याणकी प्रवृत्तविषैं प्रमोद है ॥ १९८ ॥ नवनिधिका स्वामी भरतेश्वर अपने गुरु आदि जिनेश्वरकूं प्रणामकरि बहुरि शीश नवाय मुनिनिकूं प्रणामकरि अपनी निवासभूमि जो अयोध्या तहां जायवेका अभिलाषी भया, कैसा है भरत—चंचल जो मुकुट ताकै अग्रभागकरि स्पर्श्या है प्रभुका पादपीठ जानैं ॥ १९९ ॥ मानूं भगवानके चरणार-बिंदबिषैं अर्पी है पुष्पमाला समान अपनी दृष्टि जानैं, कैसी है दृष्टिरूप माला—सुमन कहिए शुभमन ताकी प्रसन्नता सोई है प्रफुल्लित पुष्प जाविषैं, भावार्थ—सुमन नाम शुभ मनका अर सुमननाम पुष्पनिकाहू है, सो शुभमनही है पुष्प जाविषैं ऐसी दृष्टिमाला सो प्रभुकूं अर्पणकरि बहुरि आसिकाकी बुद्धिकरि दृष्टि पाछी फेरता भया सो भगवानके दर्शनतैं दृष्टि अतिकष्टसूं फेरी चित्तकी वृत्ति प्रभुमैं, सो चक्रधर भगवानके समवसरणतैं गमन करता भया ॥ २०० ॥ समवसरणकी बिभूति अतिपूर्ण ताहि अवलोकता संता प्रफु-ल्लित हैं नेत्रयुगल जाके अर दीर्घ है भुजा जाकी अनेक राजानिकरि मंडित नम्रीभूत हैं मस्तक जिनिके

मोहि नांहि नवे है ताके मद निवारिवे अर्थि इह वक्र भया है ॥२३॥ सो अत्यंत तुच्छ है तौऊ शीघ्रही उच्छेदना या बालकी ढील न करनी क्षमाकरि बैठि न रहना जो तुच्छमात्रहू रेणुका कण आंखिनिमें पडै अर वाका यत्न न करे तौ पीडा उपजावै ॥ २४ ॥ तातें जो कंटक तुच्छ होय तौऊ बलात्कारें काढि डारना अर जो न काढै अर पगमें रहजाय तौ अतिशयपनें पीडा करै ॥२४॥ इह चक्रनाम परम देव है रत्ननिमें इह मुख्य है, याका अटकना विनाकारण नांही हे आर्य ! चक्रके अटकिवेका कार्य अल्प नाहीं, इह मेरे राज्यका अंग याकी विकृति अल्प कारणतें न होय, यानें सूच्या है सो बडा कार्य है ॥ २७ ॥ तातें हे बुद्धिवान ! इहां जो कारण है सो तुम भलीभांति विचारो । विना विचारें कार्यकी सिद्धि इह लोक परलोकविषें नांही ॥ २८ ॥ तुम दिव्य-नेत्र हो सो या कार्यका विज्ञान तुमविषें है जैसें सूर्यविना अंधकारके छेदनविषें अन्य कौन समर्थ होय ॥ २९ ॥ या भांति निमित्तज्ञानका वेत्ता जो पुरोहित ताहि पृथ्वीका नाथ मर्यादारूप अक्षर कहि कार्यका निवेदनकरि चुप होय रहे, जे वडे पुरुष हैं ते मर्यादारूपही बोलैं बहुत न बोलैं ॥ ३० ॥ तव भरतेश्वरके प्रबोधनिमित्त पुरोहित सुंदरवाणी बोल्या, पुरोहितकी वाणी अतिप्रसन्न महागंभीर पद अलंकारकरि कोमल ॥३१॥ पुरोहित कहै है—हे देव ! तिहारे देव वचनविषें माधुर्यता अर प्रताप अर पदकी सुष्ठुता अर कार्यका प्रयोजन सर्व, जो तिहारे वचनविषें नांही सो माधुर्यता अर प्रताप पदकी सुष्ठुता अर कार्यका प्रयोजनही नांही, भावार्थ—तिहारे वचन सर्व हैं तिहारे वचन बाहरि कछुहू नांही । आप सकल राजविद्याविषें प्रवीण हौ ॥३२॥ हम शास्त्रज्ञ हैं परंतु कार्यकी युक्तिविषें प्रवीण नांही, शास्त्रके प्रयोगका वेत्ता राजनीतिविषें तुम समान और कौन ? ॥ ३३ ॥ तुम आदिराजा राजऋषि हौ, जो राजविद्या है सो सर्व तिहारी प्ररूपी है, राज-विद्याके आचार्य तुम सो तिहारे निकट राजविद्याका निरूपण करते हम कैसें लज्जावंत न होंहि ? ॥ ३४ ॥ तथापि हमविषें तिहारा सत्कार विशेष है ऐसा अन्यत्र नांही सो इह तिहारा अनुग्रह लोकविषें हमारी गौरवता विस्तारै है, तातें हम कहिवेकूं उद्यमी भए हैं ॥३५॥ हे देव ! हम निमित्तशास्त्रविषें ऐसा सुन्यां है

करते भए। आलातचक्र घेघलीका कहतेसंते तरवारि है जिनिके हाथमैं सो आलातचक्रकी नांई भ्रमण करते भए। आलातचक्र घेघलीका नाम है॥ ९ ॥ अर लोक बारंबार ऐसा भ्रम करते भए जो कहा सूर्यका बिंब आकाशतैं गिऱ्या अथवा दूजा सूर्य भूमितैं प्रगट भया ?॥ १० ॥ क्रूरग्रहकी नांई वक्रताकूं प्राप्त भया सो कहा अकालचक्रकी नांही काहू विरोधीपरि परैगा ॥ ११ ॥ अथवा अबहू कोऊ चक्रकूं जीतना है, चक्रके अटकिबेतें केइक समझदार ऐसा विचार करते भए ॥ १२ ॥ तब सेनापति आदि बडे पुरुष चक्रवर्तीकूं निवेदन करते भए सो वार्ता सुनिबेथकी चक्रवर्ती कछुइक अचिरजकूं प्राप्त भया ॥ १३ ॥ मनमें विचारी जो इह कहा बात है ? मेरी आण कोऊ लोपि न सकै सो मोहि होतैसंतैं इह अखंडगति चक्र अटकै ? ॥ १४ ॥ इह विचारिकरि पुरोहितकूं बुलाय वह धीर या भांति धीरताके वचन कहता भया ॥ १५ ॥ जब चक्री पुरोहितसूं वचनालाप कीया तब याकै मुखकमलतैं प्रगट है अभिप्राय जाका ऐसी सरस्वती अलंकारसहित निकसी मानूं वह सरस्वती जयलक्ष्मीकी दूतीही है ॥ १६ ॥ अहो इह चक्र दशूं दिशानिका वशि करणहारा अरिमंडलकूं भयंकर द्वारके भीतर काहेतैं न प्रवेश करै है ? कैसा है इह—मंद करी है सूर्यकी प्रभा जानैं॥१७॥ पूर्व पश्चिम दक्षिणके समुद्रलग समस्त दिग्विजयविषैं काहू ठौर अटक्या नांही, इह अखंडवृत्ति विजयार्द्धकी उर्ध्व गुफानिमैं चल्या आया ॥ १८ ॥ सो अब घरके आंगणविषैं क्यूं अटकै है ? अबहू कोऊ शत्रु जीतना है ? ॥ १९ ॥ मेरे भोगका निवास जो ए भरतक्षेत्र ताविषैं कोऊ शत्रु असाध्य है, अथवा कोऊ हमारे वंशका दुष्ट है चित्त जाका सो हमसूं द्वेष करै है ॥ २० ॥ हमारे तौ काहूसूं द्वेष नांही, प्रजाके पालनका अंभिप्राय है अर जो कोई दुष्ट निःकारण द्वेष करै है हमारी संपदा देखि न सकै ताका यत्न करना, बाहुल्यताकरि जे दुर्जन हैं तिनिका चित्त महत पुरुषनिविषैंहू द्वेषरूप होय है ॥ २१ ॥ अर जे महतपुरुष हैं तिनिके चित्त परकी वृद्धिविषैं अदेखसक नांही, पराई वृद्धिविषैं हर्ष करै हैं अर जे दुष्ट हैं ते परकी वृद्धिविषैं अदेखसका भाव धरै हैं ॥ २२ ॥ अथवा कोऊ हमारा कुटुंबी खोटे मदकरि उन्मत्त

न सोहै जैसें सिंहके होतें मृगेंद्रपद कहा और मृगादि वनके पशु धरैं ? मृगेंद्रपद सिंहहीकूं सोहै तैसें नरेंद्रपद तुमहीकूं सोहै ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! ए भाई मत्सर तजि तिहारी आज्ञारूप रहो, तुम सबनिमैं बडे अर राजनिमैं मुख्य चतुर्थकालकी आदितैं हौ तिहारी आज्ञारूप रहना शास्त्रोक्त है ॥४९॥ तातैं तिहारे दूत जायकरि तिनि भाईनिकूं उपायसहित समझाय तिहारी आज्ञाके वशि करैं अर जो कदाचि वे आज्ञामैं न आवैं तौ उनकूं दबायकरि कहैं ॥ ५० ॥ जो कोई मिथ्यामदकरि उद्धत तिहारी आज्ञाके वशि न होय सो आपही अपनी बुद्धिकरि आपकूं अर अपने आधीन जे राजपुत्र तिनिकूं नाशकूं प्राप्त करैगा ॥ ५१ ॥ राजाकी इह रीति है जो आप काहूके वशि न होय अर सबनिकूं वशिकरि अपनी आज्ञामैं राखै दूजे काहूके मन चलि न सकै, राज्य अर कुलवधू इनिका भोक्ता एकही होय जो राज्यमैं अर स्त्रीमैं सीर करै सो मनुष्य नांही पशुही है ॥ ५२ ॥ बहुत कहिबेकरि कहा ? ते भाई आयकरि तुमकूं प्रणाम करौ अथवा श्रीवीतरागदेवके शरण जाऊ, वे भगवान जगतके रक्षक शरणागतप्रतिपाल हैं ॥ ५३ ॥ और उनकूं तीजा उपाय नांही दोयही उपाय हैं, कै तौ तिहारे द्वार आउ, कै मृगनिसहित वनमैं विचरो ॥ ५४ ॥ अपने कुलके जो आज्ञामैं न होंय तौ अंगारेनिकी नांई उरकूं दहैं अर जो आज्ञारूप होंहि तौ नेत्रनिकूं परम आनंद उपजावैं ॥ ५५ ॥ तिहारे सहोदर मत्सर छांडिकरि आज्ञारूप होय नम्रीभूत भए मुकुट जिनिके ते तुमकूं नमस्कार करौ, तिहारी सुदृष्टिके अभिलाषी होय सुखसूं तिष्ठौ ॥ ५६ ॥ या भांति शास्त्रका वेत्ता पुरोहित महाबुद्धिवान न्यायरूप वचन नृपेंद्रके निकट कहता भया सो पुरोहितका कह्या उरमैं धारिकरि चक्रधर ता समय भाईनिपरि क्रोध कीया ॥ ५७ ॥ रोसकरि कलुषदृष्टि दिशानिविषैं खेपता क्रोधरूप अग्निकी शिखासमान भौंहैं टेढी करता कठोर वचन कहता भया ॥ ५८ ॥ मूलपूंजीसमान भाई तिनिपरि कीया है क्रोध सोई भया विषका वेग ताहि उगलता संता अर क्रोधथकी जलता संता पृथ्वीका पति कहता भया ॥ ५९ ॥ हे पुरोहित ! तुम कहा कहो हौ ? वे भाई दुरात्मा मोहि अबतक न नए सो अब मेरा दंडरत्न

जो चक्रका विश्राम परिपूर्ण दिशा जीते विनु नांही ॥३७॥ तातैं इह देदीप्यमान क्रांतिका धारक तिहारा विकराल शस्त्र नगरकै द्वारविषैं अटक्या है मानूं काहूनैं प्रच्छन्न स्तंभन कीया है ॥ ३७ ॥ हे देव, तुमकूं प्रजाकी रक्षा करतैं संतैं ए बात प्रगट दीखै नाही, सुनिबेहीमैं है—अरि, मित्र, अरिका मित्र, मित्रका मित्र, तुम सर्व भूमिके स्वामी सबनिके नाथ तिहारे शत्रु मित्र नांही, सब तिहारी प्रजा हैं ॥ ३८ ॥ तथापि अब कोइक तुमकूं जीतना रह्या है जैसे उदरका क्रूर रोग उठै तैसैं घरका उपद्रव उठ्या है ॥३९॥ बाह्यमंडल तौ तुम दिग्विजयकरि सब वशि कीया परंतु मांहिले मंडलकी शुद्धता अबतक रंचमात्र न भई ॥४०॥ तुम सकलके जीतनहारे पृथ्वीपति तिनिकूं भाई अबतक न नये। भाई तिहारे सजातीय सो घातिबेयोग्य नांही, तातैं आज्ञातैं पराङ्मुख हैं ॥ ४१ ॥ महातेजस्वी भी स्वपक्षकरि पीडित होय है जैसैं सूर्यकांतिमणिके संसर्गतैं अग्नि प्रज्वलित होय है ॥ ४२ ॥ अपनां स्वजातीय निर्वलहू परकी सहाय पाय राजाकूं हलै है जैसैं काष्ठका दंड करसीका संयोग पाय वृक्षकूं काटै है, पार्थिव नाम राजाका है अर वृक्ष-हूका है ॥ ४३ ॥ तिहारे भाई महाबलवान महामानकरि युक्त महादुर्जय हैं देवनिकरि मनुष्यनिकरि जीते न जांहि तिनिमैं बाहुबलि धीरनिमैं धोरी तरुणवय सबनिमें प्रबल हैं ॥४४॥ आपतैं छोटे सौ भाई तिनिमैं वृषभसेन तौ भगवानके गणधर भए अर बाहुबली सुधैं (सहित) निन्याणवै भाई गृहस्थपदमैं है ते सबही महावीर्यके धारी ऐसी प्रतिज्ञा धारि तिष्ठै हैं जो ऋषभदेव टारि काहूकूं प्रणाम न करैं अर तुम चक्रेश्वर तिहारी इह रीति जो सबनिकूं आज्ञामैं प्रवर्त्तावो ॥ ४५ ॥ तातैं हे चक्रेश्वर ! या बातका यत्न तुमकूं शीघ्र करना, ऋण अर रोग अर शत्रु इनिका उपाय प्रवीण पुरुष शीघ्र करै इनिके उपायमैं प्रमाद न करै ॥४६॥ हे राजेंद्र ! इह पृथ्वी तुमही करि राजन्वती होहू। राजन्वती कहिये जाकै सिरपरि न्यायवंत धर्मात्मा बलवान राजा होय तो तुमहीकरि राजन्वती है, तिनिकरि राजन्वती मति होहु—जहां दोय राजा होंहि तहां प्रजा खेदखिन्न होय सो पृथ्वीविषैं कबहू दुराज मति होहु ॥५७॥ हे देव ! राजपदवी तुमही विषैं सोहै है और ठौर

कहे तब पुरोहित समाधान करता या भांति कहता भया ॥ ७१ ॥ हे देव ! तुमकूं लोग सर्वजित् कहै हैं सो इह विरद तुम वृथा करौ हौ तुम क्रोधके वशि होय गए सो सबनिके वशि करणहारे पहली क्रोधकूं जीतैं क्रोधके जीतैं विन सर्वजित् काहेका ? ए अंतरंगके शत्रु हैं सो पहली इनिकूं जीतना ॥ ७२ ॥ वे भाई तौ बालक हैं सो अपथविषैं प्रवर्त्तैं ताको कहा अचिरज ? आप अंतरंगके काम क्रोधादि छह वैरीनिके जीतनहारे क्रोधमैं क्यौं आवैं ? तिहारे घटमैं अज्ञान क्यौं प्रवेश करै ? ॥ ७३ ॥ जो पुरुष क्रोधरूप अंधतमविषैं बूडते आत्माकूं न थांभै सो कार्यके संदेहकी दुविधातैं कार्यसिद्धिके पार कैसैं जाय ? ॥ ७४ ॥ सो ज्ञानरहित कार्य अकार्यकूं कहा जानैं ? जो अंतरंगनिषैं उपजे काम क्रोधादि वैरी तिनिके जीतिवेकूं समर्थ न होय ॥ ७५ ॥ हे नाथ ! इह विघ्नका कर्त्ता क्रोध तातैं विरक्त होय जे जीतिके अभिलाषी क्षमाकरि क्रोधकूं जीतैं, विवेककरि कामकूं जीतैं, संतोषकरि लोभकूं जीतैं, मार्दवकरि मानकूं जीतैं, निर्मदताकरि मदकूं जीतैं, समभावकरि हर्ष विषादकूं जीतैं तेई पृथ्वीकूं जीतैं, राजानिकूं अर योगीश्वरनिकूं इनि षटका जीतना प्रथम उपाय है ॥ ७६ ॥ जे इंद्रियनिके जीतन-हारे हैं अर सुनी है शास्त्रकी चर्चा जिनि अर परलोक सुधारचा चाहै हैं तिनिकूं क्षमाका साधन श्रेष्ठ है ॥ ७७ ॥ कागदके लिखिबेहीकरि इह कार्यसिद्धि होय ताविषैं एता परिश्रम करना विफल है, तृणनिके अंकुर नखहीकरि भेदे जांहि तिनिपरि फरसी कोन उठावै ? ॥ ७८ ॥ तातैं सहनशील होय भाईनिके समूहकूं वशि करौ भले विवेकी दूत भेजो अर तिनिकूं भली भली वस्तु मया (उपहार) करौ अर प्रीतिके वचन कहि भेजो ॥ ७९ ॥ अबारही पत्र लिखि दूत पठावौ सो जायकरि तिनिसूं कहै—जो तुम आवहू चक्रवर्त्ती राजनिका राजा तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता ताहि भजहू ॥ ८० ॥ कल्पवृक्षकी सेवासमान ताकी सेवा मनवंछित फलकी देनहारी है वह चक्री तिहारा बडा भाई पितासमान है सो सर्वथा तुमकूं मानिबेयोग्य है ॥ ८१ ॥ दूरि तिष्ठिबेकरि चक्रीका ऐश्वर्य सोहै नांही जैसैं चंद्रमाका बिंब तारानिके समूहके दूरि तिष्ठतैं न सोहै

सोई भया प्रचंड उल्कापात ताथकी तिनिकूं खंड खंड भए देखहु ॥ ६० ॥ इह निष्कारण वैर अबतक काहूनैं न देख्या न सुन्या न कीया, तिनिकै इह बुद्धि है जो—हम कुलविषैं उपजे भूपेंद्रके भाई हैं सो अवध्य हैं हमकूं ज्येष्ठभ्राता हते नांही ऐसा जानि मदोन्मत्त हैं ॥ ६१ ॥ एक तौ, उनकै यौवनका उन्माद है अर दूजा सुभटवात दुर्निवार है उनकै ऐसी धारणा है जो—हम महाभट हैं हमसमान पृथ्वीविषैं जोधा नांही जैसा चक्रेश्वर जिनेश्वरका नंदन है तैसैंही हम हैं सो वृथा समझे, भूपनिकै भ्रातृपद स्नेहका कारण नांही, आज्ञारूप रहना स्नेहका कारण है, सो तिनिका इही उपाय है—जब वे चक्रके तापकरि खेदखिन्न हौंहिगे तबही आज्ञाविषैं प्रवर्त्तैंगे ॥ ६२ ॥ वे या पृथ्वीकूं अकरभोग कीया चाहै हैं, इह भूमि हमकूं गुरुकी दई है अर हम महाभट हैं सो ऐसा कौन है जो हमपैं धरती छुडावै, सो या सामंतपणेंका गर्वकरि कहा ? कै तौ वे मेरी आज्ञारूप रहि भूमिकूं भोगवौ कै वेही पृथ्वीका राज करो, अथवा—॥ ६३ ॥ तीक्ष्ण शस्त्ररूप कंटक तिनिके प्रहारकरि रणांगणविषैं घायल भए शरशय्याविषैं आरूढ होय परलोकका साधन करौ ॥६४॥ कहां मैं सर्वजित् सकलभूमिका भूप अर कहां वे अल्पक्षेत्रके अधिपति ? तथापि जो मेरी आज्ञामैं प्रवर्त्तैं तौ मैं तिनिकूं अपनी विभूतिमैं विभाग द्यूं, जो उनके घरा है तिनतैं बहुगुणी द्यूं ॥ ६५ ॥ आज्ञा विना भूमि जो भोग्या चाहैं तो मैं न भोगिवे द्यूं। मैं कहा करूं इह चक्र सबनिकूं वशि कीए विनि विश्राम न पावै ॥ ६६ ॥ अर इह बडा अन्याय है—कहिवेमैं न आवै, जो बाहुबलि सारिखे बुद्धिवान विनयवान बंधु सकलवेत्ता महाप्रवीण सोऊ विकारकूं भजैं ?॥ ६७ ॥ एक बाहुबलि विना और राजानिके समूहकरि मेरे कहा ? अर एक पोदनापुर नगर विना और नगरनिकरि कहा ? ता विना सब विषतुल्य हैं ॥ ६८ ॥ विकराल शस्त्रनिकरि शत्रुनिके जीतनहारे और किंकरनिकरि कहा ? जो अपूर्व विक्रमका धरणहारा बाहुबलि मेरी आज्ञाके वशि न भया ॥ ६९ ॥ अर मोतैं वह भाई गर्वित भया स्पर्द्धाकूं धरै सो इनि देव-भटनिकरि कहा ? ए अधिक भयानक रसकूं धरै हैं ॥ ७० ॥ या भांति क्रोधथकी चक्रधर कठोर वचन

या भांति मनोहर वचन कहि दूतनिका बहोत सन्मान करि पत्रका पाछा जवाब लिखि दूत विदा कीए अर ज्यूं पृथ्वीनाथनैं नानाप्रकारकी वस्तु पठाई हुती त्यूं इनिहूनैं अपने दिशनिकी नाना प्रकारकी वस्तु पठाई ॥ ९६ ॥ दूतनिका सन्मानकरि दूतनिकूं मुखजवानी समाचार कहि पाछा पत्र देय भरतके कागदका रहस्य उरमैं धारि प्रभुके निकट कैलास गए ॥ ९७ ॥ जायकरि गुरुकूं देखते भए अल्प अर उचित है परिकर जिनिकै, कैलासके शिखरपरि बिराजते भगवान महागिरि समान उत्तुंग ॥ ९८ ॥ तिनिकूं प्रणाम करि विधिपूर्वक पूजाकरि ए कुमार कामका बैरी जो ऋषभदेव तासूं बीनती करते भए ॥ ९९ ॥ हे देव ! तुमही तैं हम जन्म पाया अर तुमहीतैं परमलक्ष्मी पाई अर तिहारीही सुदृष्टिकी अभिलाषा हमारैं अर तुम टारि और न आराधैं ॥ १०० ॥ सब लोक केवल इही कहै हैं—जो गुरुकी कृपा सोही सर्व अर्थकी साधनहारी है सो हम या रसके जाननहारे तिहारे प्रसादतैं पाई है लक्ष्मी जिनि ॥ १०१ ॥ तिहारैं प्रणामविषैं अनुरक्त, तिहारे प्रसादके अभिलाषी, तिहारे वचनके किंकर सो हमारे जो कछु होनां है सो होहु, और विचार नांही ॥ १०२ ॥ ऐसी धारणाकरि हम अपने धामबिषैं तिष्ठते हुते सो प्रणामकै अर्थि हमकूं भरत बुलावै है सो इह कारण जान्या—वाकै मद है कि मत्सर है ॥ १०३ ॥ तिहारे प्रणामके अभ्यासके रसकरि गर्वित होय रह्या है सिर हमारा सो औरके प्रणामनविषैं कदाचि प्रीतिकूं नांही धारै ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! कमलनिकी रजके पुंजकरि सुगंध है जल जाका ऐसा मानसरोवर ताहि सेयकरि राजहंस कहा और सरोवरके जलमैं रमै ? कदाचि न रमै ॥ ५ ॥ अर भंवर देवांगनानिके सिरके केशनिकै मध्य जो पुष्प तिनिके सुगंधकरि तृप्त सो प्राणांतविषैंहू कहा तूंबीनिके वनविषैं जाय ? कदाचि न जाय ॥ ६ ॥ अर पपीहा मुक्ताफलसमान मेघका नवीन निर्मल जल ताहि पीयकरि कहा तलावके जलकूं वांछै ? कदाचि न बांछै । जो तृषाकरि अत्यंत पीडित है तौऊ वाकै अन्यजलकी अभिलाषा नांही ॥ ७ ॥ या भाति तिहारे चरणकमल तिनिके मकरंदकरि रंजित हैं मस्तक जिनिके ऐसे हम सो—और देव तथा और मनुष्यनिके प्रणाम करि-

है अर जो कदाचि वे मृदुताकरि वशि न हौंहि तौ और उपाय विचारना ॥ ८४ ॥ आप लोकापवादतैं
जो भाईनिसहित भोगिए ॥ ८३ ॥ ए वचन तौ दूत मुखजवानो कहैं अर इह कहैं और सब समाचार
पत्रमैं हैं सो बांचोहीगे, या भांति लेखसहित बुद्धिवान पुरुषनिकूं भेजकरि भाईनिकूं प्रतीति उपजावनी
अर भली भली वस्तु भाईनिकूं मया करनी ॥ ८४ ॥ हे नाथ ! इही कार्य यशकारी है अर कल्याणकारी
॥ ८२ ॥ तुम विना चक्रीकूं चक्रवर्त्तीपद हर्षके निमित्त नांही, सत्पुरुषनिकूं सोई राज्य हर्षके निमित्त है
डरो हौ तातैं इही कार्य करना यश है सो स्थिरीभूत है अर संपदा है सो विनश्वर है ॥ ८६ ॥ या प्रकार
पुरोहितके वचनतैं चक्रवर्त्ती क्रोधकी वृत्ति तजी, महतपुरुषनिके चित्तकी वृत्ति बुद्धिवंत पुरुषनिके विवे-
करूप वचनकरि उद्धतपनेतैं शांततामैं आय जाय है ॥ ८७ ॥ तब इह विचार कीया—बाहुबलिकी बात
तौ हाल दूरिही रहौ, वह महाबाहु यत्नसाध्य नांही और भाईनिकरि वाकी सरलता वक्रता परखमैं
आवैगी ॥ ८८ ॥ ऐसा निर्धारकरि कार्यके वेत्ता कार्यकी युक्तिविषैं पवित्र है बुद्धि जिनिकी तिनिकूं
बारंबार समझाय भाईनिके निकट भरतेश्वर भेजता भया ॥ ८९ ॥ ते आज्ञाप्रमाण जायकरि तिनिसूं
मिले यथायोग्य नानाप्रकारकी वस्तु वसुधाके पतिनैं पठाई हुतीं सो देयकरि दूत नृपेश्वरका संदेशा तिनिकूं
यथोक्त कहते भए ॥ ९० ॥ तब वे सब अठ्याणवै भाई भेले होय दूतनिसूं कहते भए, कैसे हैं भाई—
क्षात्रवृत्तिके तेजकरि महाप्रतापरूप हैं ॥ ९१ ॥ अहो ! जो राजेंद्रनैं आज्ञाकरी सो सत्य है हमकूं प्रिय
है, बडा भाई पितासमान इह सूत्रकी आज्ञा प्रमाण है परंतु पिता न होय तब छोटे भाईनिके बडा भाई
पूज्य है ॥ ९२ ॥ हमारा पिता तौ विश्वका नाथ प्रत्यक्ष तिष्ठै है सो हमकूं पिताका दीया ऐश्वर्य प्रमाण है
॥ ९३ ॥ हम पिताकी आज्ञाके आधीन हैं स्वइच्छाचारी नांही, तातैं न तौ हमकूं भरतेश्वरतैं कछु लेना
न कछु देना ॥ ९४ ॥ अर हमकूं वहोत विभूति देवेकै अर्थि भरतेश्वरनैं बुलाए सो हम बहुत प्रसन्न भए
उनकी कृपातैं तृप्ति है जैसें कोऊ हारकरि कंठपर्यंत पूर्ण होय तैसैं हम उनकी प्रीतिकरि पूर्ण हैं ॥ ९५ ॥

भरतक्षेत्रकी भूमिकूं भोगवैगा, तुम क्षमा करहु ॥ २० ॥ अर वह क्षणभंगुर राज वहहू तजैगा तातैं तुम विनाशीक राजकै अर्थि वृथा युद्ध मत करो ॥२१॥ या स्पर्द्धाकरि कहा ? तुम धर्मरूप वृक्षका सेवन करहु, दयारूप है प्रफुल्लित पुष्प जाकैं अर मुक्तिफलका दाता है ॥ २२ ॥ परकी आराधनारूप दीनता ताकरि रहित सबनिकरि आराधिवेयोग्य ऐसा तप सोई तिहारे मानकी रक्षा करणहारा है, तुम महातेजस्वी योद्धानिमैं अग्रेसर हौ, सो कौंनकी सेवा करौ ? अर युद्धहू कौन अर्थि ? राज कहा पदार्थ ? जाकै अर्थि बडे भाईसूं लडिए ॥ २३ ॥ इह तपरूप राज्य सबनिमैं श्रेष्ठ है जाकै ऐसी प्रशंसायोग्य सामग्री, जिनदीक्षा तौ रक्षाकी करणहारी अर मूलगुण उत्तरगुण सेवक अर जीवदया प्राणवल्लभा ॥२४॥ ऐसे प्रभुके वचन सुनिकरि ते कुमार परमवैराग्यकूं प्राप्त भए जिनदीक्षा धरिकरि ते घरतैं वनकूं गए ॥ २५ ॥ वह दीक्षा गुरुकी उपदेशी नवोढा स्त्री की तुल्य ताहि ग्रहिकरि वे तरुण राजपुत्र नवीन वर समान सोहते भए ॥ २६ ॥ जो जिनदीक्षारूप स्त्री उत्कृष्ट अलौकिक स्नेहकी हद्द ताहि अंगीकार करि ते राजकुमार संतोषकूं प्राप्त भए ॥ २७ ॥ वे राजर्षि तीव्र तपकूं पाय करि अधिक देदीप्यमान होते भए अपने तेजकरि रोकी हैं समस्त दिशा जिनि जैसैं ग्रीष्मके रविकी किरण समस्त दिशामैं विस्तरै हैं तैसैं इनिकी कीर्त्ति सर्वत्र विस्तरी ॥ २८ ॥ अतितीव्र तपोयोगकरि क्षीण भये हैं तनु जिनिके सो कैसे सोहते भये मानूं तपोगुणकरि दीप्त जो तपोलक्ष्मी ताविषैं उकीर काढे हैं ॥ २९ ॥ ते जिनकल्परूप सामायिक-चारित्रविषैं तिष्ठे तीव्रतपकूं तपते भए वह तप ज्ञानकी शुद्धि करि वृद्धिकूं प्राप्त भया है ॥३०॥ वैराग्यकी परम हद्द विषैं आरूढ भए ते तरुण तपोलक्ष्मीकूं अंगीकार करते भए, राज्यलक्ष्मीविषैं अभिलाषारहित ॥ १३१ ॥ तपोलक्ष्मीसूं आलिंगित मुक्तिलक्ष्मीके अभिलाषी ज्ञानलक्ष्मीविषैं आसक्त राज्यलक्ष्मीकूं भूलि-गए ॥ ३२ ॥ ते महाबुद्धि द्वादशांग सूत्रकूं पढिकरि उत्कृष्ट तपकी भावनाकरि आपकूं शोभित करते भए ॥ ३३ ॥ स्वाध्यायकरि मनका निरोध होय अर मनके निरोधकरि इंद्रिय जीती जांहि ऐसा विचारकरि

वेकूं समर्थ नाही ॥ ८ ॥ तातैं परके प्रणामतैं विमुख भयके प्रसंगतैं रहित तिहारी वीरदीक्षा ताहि धारिबे हम तिहारे पासि आए हैं ॥ ९ तातैं हे देव ! जो हितकारी कल्याणका मार्ग है सो हमकूं कहौ जाकरि इहलोक परलोकविषैं तिहारी भक्तिविषैं हमारी दृष्टिवासना होहु ॥ १० ॥ परके प्रणामकरि उपज्या जो मानभंगका भय तासूं रहित तिहारी जिनदीक्षाही सर्वोत्कृष्ट है ॥ ११ ॥ मानखंडनकरि उपजा जो पराभवका भय तातैं रहित योगीश्वर सुख भोगवै हैं वनविषैं सिंहनिसहित विचरै हैं ॥ १२ ॥ या भांति वैराग्यकी वांछासहित वीनती करते आपके पुत्र तिनिकूं भगवान अविनाशी पंथविषैं थापते थके भले प्रकार उपदेश देते भए, कैसे हैं भगवान—सबनिके उपदेशक हैं ॥ १३ ॥ भगवानकी दिव्यध्वनिमैं ऐसी आज्ञा भई—अहो तुम महानुभाव महावीराधिवीर हौ, तिहारेसे शरीर औरनिके नांही, तरुणवय, महापराक्रमी, गुणनिकरि मंडित हौ तुम कैसैं औरनिके आधीन हो ? हे भव्यजीव हौ ! तुम भद्रजातिके हाथीनिकी नांई परग्राह्य नांही ॥ ११४ ॥ या क्षण भंगुर राज्यकरि कहा ? अर चंचल जीवितव्य ताकरि कहा ? अर लेशमात्र ऐश्वर्यकरि दूषित ए यौवनके उन्माद तिनिकरि कहा ? ॥ १५ ॥ अर या देहके बलकरि कहा ? एकसूं एक अधिक बलवान है अर ए आभूषण तथा वस्तु वाहन तिनिकरि कहा ? ए सब परकरि हरे जांहि हैं अर इनि धननि करि कहा ? ए धन तृष्णारूप अग्निके प्रज्वलित करिबेकूं ईंधनसमान हैं ॥ १६ ॥ अर इनि विषयनिकरि कहा ? ए विषय चिरकाल भोगए तथापि इनिकरि तृप्ति नांही, अभिलाषारूप व्याधिहीकी वृद्धि है, ए विषय ग्लानिकूं उपजावै हैं इनिकै भोगबेतैं उदासीन होहु, ए विषमिश्रित भोजन समान हैं ॥ १७ ॥ अर ऐसा कौनसा भोग है जो तिहारे भोगिबेमैं न आया जब भोगौ तब वही स्वाद तातैं तिनिकरि कहा ? ते अतृप्तताके मूल हैं ॥ १८ ॥ अर या राज्यकूं धिक्कार होहु जहां मित्र शत्रु होय जाय, पुत्र बांधव वैरी होय जांहि अर इह बहुतनिके भोगिबेयोग्य वेश्या समान वसुंधरा सो राजाकी वल्लभा तातैं इह राज्य त्याज्यही है ॥ ११९ ॥ भरतचक्री सब राजानिमैं श्रेष्ठ जौलग वाकै राज्यका उदय है तौलग

क्रमसें पढिकरि समस्त श्रुतके रहस्यका अवधारण करते भए ॥ ४७ ॥ ए ऋषभके पुत्र चौदह पूर्वनिके
पाठतें समस्त श्रुतके अर्थके पारगामी पूत्रही हैं नेत्र जिनिके ऐसे होते भए श्रुतार्थकी भावनाके बलतैं
तपकी विधिविषैं परम शुद्धता धारते भए ॥ १४८ ॥ मानूं तपक्रिया ऐसी ईर्षा धरती संती इनिके
तनविषैं ताप विस्तारती भई, तपक्रियाकै इह ईर्षा—जो सरस्वतीसूं तौ इनिका वचनालाप अर मोसूं
निरंतर मौन ॥ ४९ ॥ ते विवेकी असह्य जो शरीरका ताप ताहि सहते संते छह मांहिले अर छह बारले
जो उग्र तप तिनिकूं चिरकाल आचरते भए ॥ ५० ॥ ग्रीष्मविषैं सूर्यकी किरणनिकै आताप सहते संते
गिरिके शिखरविषैं आरूढ ते दुःसह तप धारते भये ॥ ५१ ॥ पर्वतकी शिला अति तप्तायमान ताविषैं
थापे हैं दोऊ चरन जिनि अर लंबायमान हैं भुजा जिनिकी ते गिरिके अग्रभागके पाषाणनि विषैं तिष्ठते
भये ॥ ५२ ॥ ताती रेत ताकरि संयुक्त भूमि अर दावानल करि दग्ध भई हैं वनस्थली अर सूखि गए
हैं जलके निवाण अर रजकरि अंधकाररूप होय रही हैं दिशा ॥ ५३ ॥ ऐसा अति उग्र ग्रीष्म ताविषैं
भस्म होय गए हैं गिरिके वन ताविषैं ते महातपस्वी आतापनयोगकरि तिष्ठते भए ॥ ५४ ॥ अर वर्षा-
कालविषैं मेघकरि अंधकाररूप होय रहे हैं दिशानिके समूह ताविषैं योगी वृक्षके मूलविषैं रात्रि गमा-
वते भए ॥ ५५ ॥ मेघ मूसलसमान धारानिकरि बरसै है ऐसी वर्षाकी रात्रि ते महामुनि निश्चल निर्भय
व्याकुलतारहित पूर्ण करते भए ॥ ५६ ॥ ध्यानरूप भीतरिका घर तामैं तिष्ठे धैर्यरूप कंवल ताकरि
वेष्टित महासाहसी ते ऋषिराज वर्षाकालकूं मेघाच्छादित दिन तिनिकी परीषह सहते भए ॥ ५७ ॥
बहुरि शीत ऋतुके आगमविषैं हिमका समूह ताकरि पीडित है तनु जिनिका मौनव्रतकूं धरे नदी सरो-
वरादिक तट आकाश हीकी छाया जहां ऐसे स्थानकविषैं तिष्ठते भएं यातैं नग्न मुद्राके धारक, नाहीं है
अग्निका सेवन जिनिकै सो मानूं वस्त्रसहितही हैं, धैर्यरूप वस्त्रनि करि बेढ्या है अंग जिनिका सो मानूं
महानिश्चल निराकुल भए शीतकालकी शीत पवन सहते भए ॥ १५९ ॥ ते धीर दिगंबर शीतकालकी

ते धीर स्वाध्यायकी बुद्धि धरते भए, जिनवाणीका अध्ययन सो स्वाध्याय कहिए ॥३४॥ पहला आचारांगसूत्र ता करि साधुका समस्त आचार जानते भए, अतीचाररहित चारित्रकी शुद्धताकूं धरते भए ॥३५॥ अर दूजा सूत्रकृतांग ताकरि समस्त पदार्थ जानि धर्मक्रियाके समाधानविषैं सूत्रधारत्ता कहिए अग्रेसरता भजते भए ॥ ३६ ॥ अर तीजा स्थानांग अध्यायके सैकडानिकरि समुद्रसमान गंभीर ताहि अवगाहिकरि तत्त्वरूप रत्ननिके भेद निश्चयथकी जानते भए ॥ ३७ ॥ अर चौथा समवायनामा अंग ताहि ते सुबुद्धि पढिकरि द्रव्य गुण पर्यायके समूह यथार्थ जानते भए ॥ ३८ ॥ भलीभांति अभ्यास कीया है पांचमां व्याख्याप्रज्ञप्तिनामा अंग जिनि तांकरि ते धीर नानाप्रकारके प्रश्नार्थ तिनिकूं अवधारते भए ॥३९॥ अर ज्ञातृधर्मकथानामा छठा अंग ताहि ते महामुनि भलीभांति जानिकरि मोहके अभावतैं श्रोतानिकूं धर्मकथा जनावते भए ॥ ४० ॥ अर सातमां उपासकाध्ययननामा अंग अतिसुंदर ताहि पढिकरि समस्त श्रावकका आचार श्रोतानिकूं उपदेशते भये ॥ ४१ ॥ अर अंतकृद्दशनामा आठमां अंग ताथकी तीर्थंकर तीर्थंकरके समैं दश दश मुनि असह्य उपसर्ग सहिकरि अंतकृत् केवली होंहि तिनिका कथन जानते भए, जिनिकूं अंतके समयही केवल उपजै अर केवल निर्वाण दोऊ कल्याणक लारही होंय ते अंतकृत्केवली कहिए ॥ ४२ ॥ अर नवमां अनुत्तरोपपादक नामा अंग ताथकी ते श्रेष्ठ ज्ञानके धारक तीर्थंकर तीर्थंकरकै समय दश दश मुनि उपसर्गसहित अनुत्तर विमाननिविषैं जांहि, तिनिका कथन जानते भए ॥ ४३ ॥ अर प्रश्नव्याकरणनामां दशमां अंग ताथकी जीवनिकै शुभाशुभकरि सुख दुःखादिककी प्राप्ति प्रगट करते भए ॥ ४४ ॥ अर ग्यारमां विपाकसूत्र ताथकी जाण्यां है शुभाशुभकर्मका उदय जिनि, शुभाशुभके नाशनिमित्त कीया है उपाय जिनि सो आलस्यरहित तप करते भए ॥ ४५ ॥ अर बारमां दृष्टिवादनामा अंग ताकरि जाने हैं सम्यक्त्वभेद जिनि सो परमधर्मानुरागकूं धरे संसारतैं विरक्त जिनआगमविषैं परमभक्तिकूं विस्तारते भए ॥ ४६ ॥ अर दृष्टिवादविषैं अंतर्गत हैं चौदह पूर्व तिनिकूं अनु-

संतोप भावनाकरि तृष्णाके निवारणहारे संत विहार करते भये ॥ १७३ ॥ जिनिके घर नाहीं सूर्यके अस्त होयबेका समय आवै तापहली प्रासुक स्थानक देखि बैठि रहैं ते परमनिःसंग दशाकूं आश्रये हैं ॥ ७४ ॥ पवित्र एकांत स्थानकके निवासी ग्रामके वनविषैं एक दिन रहैं अर नगरके वनविषैं पांच दिन सिवाय न रहैं ॥ ७५ ॥ ते सप्तभयकरि वर्जित शून्य आवास श्मशानादिक भयंकर स्थानकविषैं निवास करते भए । इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, रोगभय, अरक्षाभय, चौरभय, अकस्मात् भय ए सात भय ॥ ७६ ॥ ते महापुरुष सिंहादि क्रूरजीवनिकरि युक्त जे गिरिशिखर गिरिकंदरावन तिनिविषैं प्रतिदिन वसते भए । साधुका इही धर्म है जो एक स्थल न रहै, रमता रहै ॥ ७७ ॥ सिंह रींछ स्याली शार्दूल चीता इत्यादि दुष्ट जीवनिकरि भऱ्या जो वन ताविषैं वसैं, कैसा है वन—सिंहादिकके शब्दकरि भयंकर है ॥ ७८ ॥ महाकठोर शार्दूलनिका गाजना ताके प्रतिशब्दकरि गूंजते पर्वतनिके शिखर अथवा तटनिविषैं निर्भय तिष्ठते भए ॥ ७९ ॥ सिंहनिके बच्चा तिनिके कठोरशब्द ताकरि शब्दायमान जो वन ताविषैं भयरहित वसते भये ॥ ८० ॥ नाचै हैं बिना सिरके कबंध जहां अर आसिपासि विचरै हैं डाकिनीनिके समूह अर महाप्रचंड घूघूनिके शब्द तिनिकरि भयंकर जे वन तिनिविषैं निवास करते भए ॥८१॥ अर स्यालनीनिके अमंगलीक शब्द तिनिकरि शब्दायमान होरही है सब दिशा जहां ऐसे मसान तिनिविषैं रात्रि व्यतीत करते भए ॥ ८२ ॥ ते तपोधन सिंह सारिखे निर्भय पुरुषनिमें श्रेष्ठ गिरिनिकी गुफानिमें तिष्ठते भए जिनवाणीके अभ्यासकरि विकल्परहित भया है चित्त जिनिका ताकरि समाधानरूप हैं ॥ ८३ ॥ ते ध्यानारूढ ऋषभके पुत्र कृष्णपक्षकी रात्रिविषैं दुष्टजीवनिके सैंकडानिकरि भरी जो वनभूमि महाभयानक तहां तिष्ठते भए ॥१८४॥ जे वनके स्थानक वनगजनिकरि संयुक्त तिनि गजनिके दांतनिके अग्रभागकरि भेदे गए जे वृक्ष तिनिकरि नीचे ऊंचे हैं विषमस्थल जहां तहां निवास करते भए ॥ १८५ ॥ वननिविषैं वनगजनिके शब्द तिनिकरि शब्दायमान जे गुफा तिनिविषैं

रात्रिविषैं हिमके समूह करि आच्छादित हैं तौऊ वस्त्रमंडित शरीरकी नाईं सुखसूं तिष्ठै हैं ॥ १६० ॥ या भांति त्रिकालगोचर योग तिनिकी प्रतिज्ञाकरि धैर्यके योगतैं चिरकाल दुर्धरतप धारते भये ॥ ६१ ॥ ते धीर अति दुर्लभ तपका ताप धारते अति सोहते भए, कैसा है तपका ताप ? अंतरंगविषैं दीप्तिरूप है अर कैसे हैं वे–तरंगरूप अंगकरि बाहुल्यरूप समुद्रसमान हैं ॥ १६२ ॥ ते विरक्त आप भोगिकरि तजी भोगसामग्री ताहि बहुरि न इच्छते भए, भोगसामग्रीकूं भोगकी जो पुष्पमाला ताकी नांई निःसार मानते संते भोगोपभोगसूं रहित भए ॥ ६३ ॥ प्राणीनिके जीवना फेन कहिए झाग अर जलकी तरंग अर ओसकी बूंद अर सांझके बादरनि सम क्षणभंगुर है ऐसी जानते संते अविनाशी मार्गविषैं अनुराग धारते भए ॥ ६४ ॥ संसारके वासतैं विरक्त गृहवासतैं निकसे मोक्षका मूल जो जैनमार्ग ताविषैं परमप्रीति धारते भए ॥ ६५ ॥ यातैं अधिक और नांही ऐसी दृढ भावनाविषैं आरूढ भये भगवानके भक्त मन वचन काय करि जिन शासनकी श्रद्धा करते भये ॥ ६६ ॥ महासत्य अनादिनिधन करुणामय जिनप्रणीत धर्म ताविषैं अनुरक्त निर्वाणके अभिलाषी भवसागरके तिरिबेको है उद्यम जिनिकै ते परमपदके अर्थि उठते भये ॥ ६७ ॥ संवेग जो जिनधर्मका अनुराग ताविषैं उपजी है श्रद्धा जिनिकै ते सर्वोत्कृष्ट शुद्ध मार्गविषै प्रवर्त्ते संते अतिदुर्लभ–पंच महाव्रतकी पचीस भावना भावते भए ॥ ६८ ॥ अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग ए पंच महाव्रत तिनिकूं भावते भए ॥ ६९ ॥ इनि व्रतनिविषैं यावज्जीव करी है दृढ प्रतिज्ञा जिनि मन वचन काय करि निवृत्त कीये हैं दोष जिनि ते परमशुद्धताकूं धारते भये, मुनिकै पंच महाव्रत अर श्रावककै पंच अणुव्रत त्योंही रात्रि भोजनका त्याग मुख्य है जे निशि भोजी हैं तिनिकै दया धर्म नाहीं ॥ ७० ॥ जे भरतके भाई सर्व आरंभतैं वर्जित निर्ममत्त्व निःपरिग्रह जैनकामार्ग आराधते भए, तज्या है देहका स्नेह जिनि ॥ ७१ ॥ सर्वोपाधिरहित जिनधर्मविषै तिष्ठते अंतर बाहिर परिग्रह बालकी अणीमात्रहू न इच्छते भए ॥ १७२ ॥ शरीरविषै हू निर्ममत्त्व धर्ममार्गविषै सावधान

करी अर क्रयक्रीत कहिए तासमैं क्रय विक्रयकरि ल्याए इत्यादि अयोग्य आहार यतीनिकूं न लेना ॥ १९९ ॥ योग्यकालविषैं भिक्षा लेनी अर घरनिकी पंक्ति न उलंघनी ते धीर शुद्ध भिक्षा लेते भए, मुनि व्रतविषैं महासावधान हैं ॥ २०० ॥ शीत उष्ण रूक्ष स्निग्ध अलौना जैसा आहार मिल्या तैसाही ग्रहते भए, नांही है आहारकी लोलुपता जिनिके ॥ २०१ ॥ जे प्राणधारणनिमित्त गाडेके वांगप्रमाण अल्प आहार लेते भए अर प्राणनिकूं केवल धर्मके अर्थि धारते भए ॥ २०२ ॥ जो आहारका लाभ हूवा तौ हर्ष नांही अर अलाभ हूवा तो विषाद नांही, धोये हैं पापरूप मैल जिनि सो आहारके अलाभविषैं तपका अधिक लाभ मानते भए ॥ ३ ॥ ते महापुरुष सर्वत्र समदर्शी सवनिकूं समभावकरि देखते संते स्तुति अर निंदा सुख अर दुःख तथा मान अपमान समान जानते भए ॥ ४ ॥ मौनकूं धरैं आहारके अर्थि योग्यसमैं गृहस्थके घर जाय, आहारका अलाभ होय तौ उठि आवैं मौनकी प्रतिज्ञा भंग न करैं ॥ ५ ॥ महाउपवास करि खेदखिन्न हैं अंग जिनिके ते तनकी स्थितिके निमित्त वस्तीमैं जांहि तथापि मनहूकरि अयोग्य आहारकी अभिलाषा न करैं ॥ ६ ॥ अंतराय टारे बिन आहार न करैं अर गोचरी बेला योग्य अन्न मिल्या तौ लेकरि प्रत्याख्यान ग्रहिकरि बहुरि वे वीर शीघ्रही तपोवनकूं जांहि ॥ ७ ॥ तपका जो ताप ताकरि छीन होय गया है तनु जिनिका ऐसे वे मुनीश्वर दृढप्रतिज्ञाके धारक धारया जो अखंड तपोयोग तातैं पाछे न होते भए ॥ ८ ॥ तीव्रतपके करणहारे वे तिनिके गात्रविषैं शिथिलता होती भई परंतु प्रतिज्ञाविषैं अर ध्यानकी सिद्धिविषैं शिथिलता न भई ॥ ९ ॥ चिरकाल उपवास कीए तथापि परीषहकरि भंग न भए, परीषहही भंगताकूं प्राप्त भए, इनिकूं जीत्ति न सकैं ॥ १० ॥ तपरूप अग्निके तापतैं तिनिके परमकांति होती भई जैसैं ताए सुवर्णकी दीप्ति न्यून न होय, अधिकही होय ॥ ११ ॥ तपरूप अग्निकरि तप्या दीप्तिरूप है अंग जिनिका ते अंतःकरणकी परमशुद्धताकूं धारते भए. शरीररूप मूसि ताविषैं तपरूप अग्नितैं तपाए निश्चयसेती आत्मा सुवर्णवत्

॥ १८६ ॥ स्वाध्याययोगविषैं आसक्त विराजते भए, कैसी हैं वे गुफा— महाक्रूर सिंह तिनिकरि संयुक्त हैं ॥ ८७ ॥ कबहू पर्यंकासन कबहू सूत्रार्थकी भावनाविषैं उद्यमी रात्रिकूं न सोवते भए, सदाही जागृतरूप हैं ॥ ८८ ॥ तज्या है परिग्रहका भार जिनि वीरासनकूं धरे कबहू एक पखवारे पर्वे रात्रिकूं व्यतीत करते भए ॥ ८८ ॥ महानिर्मल मुक्तिमार्गकूं अवलोकते ते धीर शरीरविषैं ममताके त्यागी दिगंबर सर्वत्यागी अकिंचनधर्मके धारी भए ॥ ८९ ॥ जे निराकुल निर्वांछक निःपरिग्रह या पृथ्वीविषैं विहार करते भए, कैसी है पृथ्वी— अनेक ग्राम नगर खानिकरि संयुक्त है ॥ ९० ॥ पृथ्वीविषैं विहार करते काहू प्राणीकूं पीडा न उपजावते भए, जीव सब पुत्रसमान तिनिविषैं दयालुभावतैं माता पितासमान होते भए ॥ ९१ ॥ जीव अर अजीवका विभाग जाननहारे ज्ञानके उद्योतकरि स्फुरायमान है दृष्टि जिनिकी ते प्रासुक आहारके करणहारे सब पापयोगका त्याग करते भए ॥ ९२ ॥ जो कछु पापकर्म है सो सर्व मन वचन कायकरि रत्नत्रयकी शुद्धताकै अर्थि यावज्जीव तजते भए ॥ ९३ ॥ त्रस कहिए बेंद्री तेंद्री चौइंद्री पंचेंद्री अर हरितकाय बहुरि पृथ्वीकाय अप्काय तेजकाय वायुकाय ए जीवनिके भेद तिनिकी यत्नतैं रक्षा करते भए, काहू प्राणीकूं पीडा न उपजावते भए ॥ ९४ ॥ दीनतातैं रहित हैं मन जिनिके महाशांत परमोपेक्षासंयमकरि मंडित तीन गुप्तिके पालनहारे कामभोगविषैं विरक्त केवल निर्वाणहीका है साधन जिनिकें ॥ ९५ ॥ जिनराजकी आज्ञाके पालक संसारतैं निरंतर उदास है चित्त जिनिका जन्म जरा मरणके दुःखतैं कायर ॥ ९६ ॥ श्रुतज्ञान-ही हैं नेत्र जिनिके परमार्थके द्रष्टा महाविचक्षण ज्ञानरूप दीपककरि अक्षयपदकूं प्रगट करते भए ॥ ९७ ॥ ते चिरकाल भावते भए मुक्तिका साधन रत्नत्रयका मार्ग अर उत्तमकुलके श्रावक तिनिका दीया शुद्ध अन्न भोजन करते भए, करही हैं पात्र जिनिकै ॥ १९८ ॥ जे आहार सूत्रविषैं निषेधे हैं तिनिकूं प्राण जाय तौऊ न इच्छते भए, ते निषिद्ध आहार कैसे—शंकित कहिए जिनिमैं जीवके कलेवरका संशय होय अर अभिहत कहिए मोटे चांवल देय मिंही चावल ल्याया इत्यादि बदलेकी वस्तु अर उद्दिष्ट कहिए जो वस्तु साधुकै अर्थि

माया तजि महाउत्कृष्ट जो जिनदीक्षा ताहि धारते भये ॥२२२॥ महालक्ष्मीवान भरतेश्वर जिनि भाईनिकूं बुद्धिवान मनुष्य भेजि अतिस्नेहतैं बुलायवेका यत्न बहौत कीया सो न गए, जिनिकूं चक्रेश्वर नम्रीभूत न करिसक्या अर ताके मनमैं हुती मेरे पृथिवीकी कमी नांही सो इह पृथिवी भाईनिकूं संविभाग करूं सो ताकी दई पृथ्वीकी अभिलाषा न करी, आदिचक्री जिनिकूं राज्यविभवके भोक्ता करिवेकूं समर्थ न भया, जे निर्वाणके अर्थि ऋषभदेवका आश्रय करते भए, ते मानधनाः कहिए भगवान टारि काहूके सेयबेकी नांही है अभिलापा जिनिके ऐसे विवेकी ते हमकूं कल्याणके अर्थि होहु, हमारे पाप हरो, भस्म कीए हैं कर्मरूप इंधन जिनि ॥ २२३ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिपष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतराजानुजदीक्षावर्णन नाम चोतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३४ ॥



अथ पैंतीसवां पर्व ।

अथानंतर कछुलक चक्रवर्तीका चिंताकरि आकुल मन होता भया, बाहुवलीके वशि करिबेकै अर्थि । कैसे हैं वाहुबली—तरुण हैं अर भुजानिका गर्व ताकरि मंडित हैं महाबाहु हैं ॥ १ ॥ चक्रवर्ती विचारै है—अहो भाइनिका समूह हमारे आनंदकी बढवारी नांही चाहै हैं, एक वंशके अभिमानते आपकूं अवध्य मानै हैं । मेरे भाइनिके समूहके इह श्रद्धा है जो हम सौं, एक बडे भाई करि कैसे पराभवकूं पावैंगे, इह विचार करि मोतैं प्रतिकूल होय प्रणामतैं विमुखताकूं प्राप्त भए हैं ॥ २-३ ॥ और प्रकृति न करै ताका हमकूं एता खेद न होय, ए घरहीमें भ्रातृवर्ग गर्वित भए ॥ ४ ॥ मुखकरि अनिष्टवचनरूप अग्निकूं प्रज्वलित करते कालिमारूप धूम ताकरि संयुक्त ए बांधव प्रतिकूलतारूप पवनथकी प्रेरे आलातचक्रकी नांई मेरे अंतरंगकूं दहै हैं ॥ ५ ॥ सो और कुमार प्रतिकूलवृत्ति होहु तौ होहु, बालस्वभाव हैं; ए सबही बाल्यावस्थासूं लेकरि मैं अपनी इच्छाकरि अति लडाए हैं ॥ ६ ॥ बाहुबली तरुण अर बुद्धि-

शुद्ध होय ॥ १२ ॥ त्वचा अर अस्थिमात्र है देह जिनिका ते अतिशयपनैंकरि ध्यानकी शुद्धताकूं धारते भए, इह सब उपवासादि वाह्य तपका साधन अध्यात्मकी शुद्धताके अर्थि है ॥२१३॥ तिनि महा-मुनिनिके योगके प्रभावतैं अणिमादि ऋद्धि प्रगट होती भई, निर्मल तप महाफलकूं फलै ॥ १४ ॥ तपरूप प्रणीताग्नि कहिए तीर्थंकर गणधर केवलीनिके निर्वाण कल्याणककी अग्नि अर होमिवेकी सामग्री अष्ट-कर्म अर वे महापुरुष विधिके वेत्ता कर्मनिके होमनहारे अर जिनराजका वचन महामंत्र ॥ १५ ॥ अर देव ऋषभदेव, दया दक्षिणा अर फल परिणामकी शुद्धता अर क्रिया अंतमुक्ति, भावार्थ—मुक्तिपर्यंत सब क्रिया हैं ॥ १६ ॥ या भांति इह ऋषभ संबंधिनी तपोयोगकी विधि ताहि करिकैं ते धीर निश्चयसेती सर्वोत्कृष्ट तपरूप यज्ञके कर्ता भए ॥ १७ ॥ ते भरतके भाई मुनिकी परम भावना ताकी प्रतिज्ञा लेकरि ऐसीही निबाहते भए, महापुरुषनिका इह सहज स्वभाव है ॥ १८ ॥ बहुत कहिवेकरि कहा ? जेती मुनिधर्मकी क्रिया अनादिकालतैं अतीचार रहित हैं ते समस्त ऋषभके नंदन अंगीकार करते भए, तजी है राजकी विक्रिया जिनि ॥ १९ ॥ या भांति पुराणपुरुष थकी ज्ञान पायकरि राज्य विभूतिकूं तजिकरि जिनदीक्षा धारते भए, भरतेश्वरकूं नयवेकी नांही है अभिलाषा जिनिकै अर हत्या है मोह जिनि, ऋषभका धर्मरूप मानसरोवर तासूं है प्रीति जिनिकी ऐसे वे राजहंस विषयवासनारूप मलिन सरोवर तिनिविषैं न रमते भए ॥ २२० ॥ ऋषभके पुत्र मुनिवर सारभूत धर्मविषैं अग्रेसर महाधीर मुनिनिके आचरणविषैं सावधान योगीश्वरनिके मार्गकूं प्राप्त भए ते तुम भव्यजीवनिकूं अविनाशी सुखके दाता होहु, ते समस्त प्राणीनिके हितविषैं सावधान महाकरुणानिधि जिनिकी महिमा कहिवेमैं न आवै ॥ २२१ ॥ ते ऋषभके नंदन हमकूं कल्याणके अर्थि होहु—जे महा योग्य तपकी विभूति ताहि अंगीकार करि मुक्ति लक्ष्मीविषैं अभिलाषी भए ते मुनिराज जिनराजके भक्तनिमैं अग्रेसर हैं, जिनि ऐसी विचारी—जो विश्वका ईश्वर स्थावर जंग-मका गुरु आदिदेव इंद्रनिकरि पूज्य ताहि नमस्कारकरि औरकूं नमस्कार न करै इह विचारि जगतकी

मंत्रविषैं प्रवीण जो दूत ताहि बारंबार समझाय बाहुबलीके समीप भेजता भया ॥ २० ॥ सो दूत योग्य वाहनपरि चढ्या वयकरि सुंदर अतिबाल नांही अतिजवान नांही अतिवृद्ध नांही मध्यवय है अर उद्धत-वेषतैं रहित है सो बाहुबलीपै चाल्या ॥ २१ ॥ और सेवक लोक साथ बहुत हैं सो मानूं अपना दूसरा रूपही है अतिस्नेहकरि युक्त विश्वासके भाजन तिनहि लार लेय शीघ्र चाल्या मानूं वे लारकी हथखर्ची ही हैं ॥ २२ ॥ दूत विचार करै है–जो बाहुबली सूधी वात करैगा तौ मैंहू वाकी प्रसन्नतारूप बात करूंगा अर जो वह विग्रहकी बात करेगा तौ मैंहू विग्रहकी बात करूंगा ॥ २३ ॥ कैंतौ संधि कहिये मिलाप कै पणबंध कहिए युद्ध इनि दोऊनिमैं एक ठहरैगी, जो संधि न भई तौ मैं अपना पराक्रमकरि शीघ्रही पाछा आऊंगा ॥ २४ ॥ अपने मनमैं स्वचक्र परचक्रका जय पराजय विचारता मंत्रका गोप्य राखणहारा और मंत्रनिकरि अभेद्य ॥ २५ ॥ मंत्रादिके भयतैं प्रयाणविषैं अकेला सोवै, मति कदाचि शयनविषैं मेरे मुखतैं कछु नीसरि जाय, युद्ध करनेकी भूमि अर निकसवेके मार्ग स्वचक्र परचक्रके निरखता भया ॥ २६ ॥ अनुक्रमकरि देशनिकूं उलंघता नगर ग्रामनिकी सीम उलंघता कोइकादिनमैं पोदनापुर जाय पहोंच्या ॥ २७ ॥ नगरकी बाहरी शोभा देखता भया, पृथ्वी धान्यकरि संयुक्त अतिरमणीक सोहै है, सालिके वन देखता संता आनंदकूं प्राप्त भया ॥ २८ ॥ याकी सालिके गुच्छा प्रचुर फलकरि शोभित तिनिकी लोक यत्नसूं रक्षा करै हैं सो देखिकरि लोकनिकूं अर्थी जानता भया, ए कणकी भरी हैं तातैं लोक रक्षा करै हैं रिक्त होय तौ कौन रक्षा करै? लोक सब स्वार्थी हैं ॥ २९ ॥ अर कुटुंबसहित किसान आनंदकरि नृत्य करै हैं, खेतनिकी लावणी करते वादित्र वजावै हैं तिनिके मनोहर शब्द सुनता भया ॥ ३० ॥ अर कहूंइक सुवानिके मुखकरि खैंचे हैं कण जिनिके ऐसी सालिकी मंजरी सालिके खेतविषैं देखि दूत ऐसी जानता भया जो मानूं ए कामी पुरुषनिकी भोगी कामिनी ही हैं ॥ ३१ ॥ अर वह दूत किसाणनिकी स्त्रीनिकूं देखता भया, कैसी हैं वे–सुगंध जे चावल तिनिकी सुगंधताकी स्पर्द्धा करैं ऐसे सुगंध जे मुखके

वान अनुक्रमका ज्ञाता विनयवान प्रवीण है अर महासज्जन है वह बहुत गुणका धारक हमसूं विक्रिया क्यूं धारै ? ॥ ७ ॥ वह महाबली मानधन कैसैं अपना करिए ? जाकी भुजानिका पराक्रम जीतिका अंग रणकेसरी सावंतनि प्रशंसायोग्य है ॥८॥ सो बाहुबली बाहुबलका धरणहारा मदकरि उद्धत महागजकी नांई कोमल वचन बिना ग्रह्या न जाय ॥ ९ ॥ अर वह महामदका धारक सामान्य संदेशेनिकरि नम्रीभूत न होय जैसें काहूके तनविषैं दुष्ट पिशाचनैं प्रवेश कीया होय सो मंत्रविद्याके प्रवीण पुरुष विना निर्विकार न होय ॥ १० ॥ अर और तरुण क्षत्रीनिमैं अर वामैं वडा अंतर है जैसें सामान्य मृगनिके पकडिबेका जाल ताकरि कहा सिंह पकड्या जाय ? ॥ ११ ॥ सो महापराक्रमी नीतिकी प्रवीणताकरि अभेद्य है अर साम कहिए मृदुवचन तिनिहूके प्रयोगकरि असाध्य है अर दंडसाध्यहू नांही, वाहि दंड देवे समर्थ कौन? अत्यंत वक्रस्वभाव है ॥ १२ ॥ वह तेजस्वी स्नेहकरि सींच्या थकाहू प्रज्वलित होय है जैसें होमकी अग्नि घृतकी आहुतिके सींचिवेकरि अत्यंत प्रज्वलित होय है ॥ १३ ॥ स्वभावहीकरि कठोर वह तरुण ताविषैं साम कहिए नरमीके उपाय सोहू कार्यकारी नांही जैसें हाथीके शरीरविषैं त्वचा कोमल करनेकै अर्थि औषध लगाइए सो कार्यकारी नांही ॥ १४ ॥ बाहुल्यताकरि याका भाव और भाईनि जनाया मेरी आज्ञातैं विमुख होय राज्यके भोग तजि वनकूं सन्मुख भए ॥१५॥ अब प्रथमही कोमल वचनकरि सुनंदाके नंदनका अभिप्राय परखूंगा जो मृदुताकरि वह आज्ञारूप न होयगा तौ और उपाय विचारूंगा ॥ १६ ॥ इह कुटुंबका विरोध अंतर्गत विक्रिया है जैसें घरके भीतरि लागी आग समस्त घरकूं भस्म करै तैसें बंधुनिका विरोध कुलका क्षय करै ॥ १७ ॥ स्ववर्गविषैं उपज्या कोप राजाके घातका कारण है जैसें तरुनिकी शाखाके अग्रभागके संघट्टकरि उपजी आग समस्त गिरिके वननिके भस्म करिबेका कारण है ॥१८॥ तातैं शीघ्रही बाहुबलिका उपाय करना, वक्रताकूं प्राप्त भया है सो आज्ञारूप करना, वह क्रूरग्रह समान है वाके शांत कीए विना मोहि शांतता नांही ॥ १९ ॥ ऐसैं निश्चयकरि चक्रवर्ती कार्यका वेत्ता

सो जयलक्ष्मीके विवाहका पट्ट ही है ॥ ४६ ॥ अर धरया है पृथ्वीका भार जिनि ऐसे भुजदंड कुलाचल दंड समान तिनिकूं धरै है, तौल्या है समस्त राजानिका यशरूप धन जानैं ॥ ४७ ॥ अर मुखकरि कमलकी शोभा नेत्रनिकरि नीलकमलकी शोभा धारै है। भावार्थ—कमलनिकूं सरोवर धारै है सो जलाशय है, जलाशय नाम जडबुद्धिका है अर सरोवरके समीप विजाति कहिए पंखी रहै हैं, अर इह नृप मुखकमल नेत्रकमलकूं धरै है तथापि जडाशय कहिए मंदबुद्धि नांही अर नांही रहै हैं विजाति कहिए वर्णसंकर समीप जाकै ऐसा अद्भुत सरोवर है ॥ ४८ ॥ अर जाका मन अतिउदार, वक्षःस्थल अतिविस्तीर्ण, मन अर वक्षःस्थल सरस्वती अर लक्ष्मीरूप जे स्त्री तिनिकूं सदा अवकाशदायक है, भावार्थ—मनविषैं तौ सरस्वतीका निवास है अर वक्षःस्थलविषैं लक्ष्मीका आवास है ॥४९॥ प्रजाकी रक्षावृत्ति सोई है कोट जाकै ऐसा महाफलरूप गुणग्राम ताहि अपने अंगविषैं धारै है अर बडे पुरुषनिके मनविषैं धरै है, भावार्थ-गुण याकै अंगविषैं हैं अर भले पुरुषनिके मनविषैं याके गुण बसै हैं॥ ५०॥ देदीप्यमान जो आभरण ताके उद्योतके मिसतैं समस्त दिशानिकूं महाप्रतापरूप अग्निकरि प्रकाशरूप करै है ॥ ५१ ॥ चंद्रकांतमणिसमान मुख अर पद्मरागमणिसमान अरुण चरण अर वज्रवत् स्थिर हैं अवयव जाके ऐसे वज्रसार शरीरकरि सोहै है ॥ ५२ ॥ मानूं आदि विधाता जो श्रीऋषभदेव तिनि लोकके आधारनिमित्त इह हरितमणिमई एक महा थंभही निरमाप्या है, हरित है क्रांति जाकी ॥ ५३ ॥ सर्वांग कहिए राज्यके सप्त अंग स्वामी, मंत्री, मित्र, भंडार, देश, गढ अर कटक इनि अंगनिकरि पूर्ण अथवा सर्व अंगविषैं प्रबल क्षत्रिय तेजकूं धरै है निश्चयसेती तेजोमय परमाणुनिकरि रच्या है शरीर जाका ॥ ५४ ॥ ताहि इह दूत दूरितैं देखता संता अचिरजकूं प्राप्त भया मानूं तेजका पुंजही है ऊंची है शिखा जाकी सो दूत चक्रीके आदेशतैं कछुइक आघा आया ॥ ५५ ॥ बाहुबलीके चरणनिकूं प्रणाम करता भया दूरिहीतैं नय गया है शरीर जाका। तब बाहुबली कुमारनैं सत्कारसहित अतिदूर न बैठाया, कछुइक नीरा (नजदीक) बैठाया ॥ ५६ ॥ वह नृपेंद्रका

श्वास तिनिकरि मानूं मोतिनिके गहनेकी शोभाकूं निज उरःस्थलविषैं रचै हैं ॥ ३३ ॥ अर सरोवरानितैं अपनी इच्छाकरि गूंथी है कमलनिकी माला, जिनिकरि चोटी बांधे हैं, कमलनिके मकरंद तिनिकी सुगंधताकरि संयुक्त सुंदर हैं केश जिनिके ॥३४॥ अर आतापकरि व्यात जो मुख ताथकी उपज्या खेद ताकरि पसेवकी बूंद परै हैं सो मानूं लावण्यताकी कणिकाही हैं ॥ ३५ ॥ अर मनोहर हैं अंग जिनिके सो सूवाकी पांख समान तनके वस्त्र तिनिकरि सूवांनिकूं उडावै हैं, मिष्ट हैं शब्द जिनिके ॥३६॥ अर भ्रमै हैं साठानिके घाणे तिनिका शब्द होय रह्या है सो मानूं साठानिके बाडे अतिपीडाके भयकरि पुकारही करै हैं ॥ ३७ ॥ अर खेतनिके समीप नई व्याई गाय दूधके भरे थन तिनिकरि मंद गमन करती वछरानिका है ममत्व जिनिकै सो दूध झरती तिनिकूं दूत देखता भया ॥३८॥ या भांति महामनोहर नगरकी सीम ताहि देखता संता दूत अपने नेत्रनिकूं सफल जानता भया, नगर बारिली शोभा देखि ऐसा प्रसन्न भया मानूं पाया है वाहुवलीके दर्शनका उच्छव जानैं ॥३९॥ अर नगरके निकटकी भूमि धोरानिकी प्रणालिका ताका फलि रह्या है जल अर सालि सांठे जीर इत्यादि खेतनिकरि मंडित या दूतका मन हरती भई॥ ४० ॥ अर या दूतनें नगरके वाह्यस्थानके वापी कूप तलाव बाग वाडी, कमलनिके समूह तिनिकरि युक्त अति मनोहर देखे ॥ ४१ ॥ बहुरि दरवाजेकूं उलंघिकरि वणिक्पथ कहिए बाजार देख्या तहां रत्ननिकी राशिके ढेर होय रहे हैं तिनिकूं देखिकरि ऐसी मानता भया मानूं ए निधिके समूहही हैं ॥ ४२ ॥ अर अनेक राजानिके भेट आए हैं हाथी घोडे तिनिके मद अर लालके जलकरि कीच होय रह्या है जहां ऐसा राजद्वारका आंगण देखि दूत हर्षित भया ॥ ३३ ॥ अर द्वार ऊभा रहि द्वारपालनिकूं अपना वृत्तांत कहता भया तब द्वारपाल याहि राज्यासन बैठा जो राजा बाहुवली ताके निकट प्राप्त करते भये ॥ ४४ ॥ कैसा है बाहुवली नृप—विस्तीर्ण हैं वक्षःस्थलरूप तट जाके अर महाउत्तुंग है मनोहर है मुकुटरूप शिखर जाके मानूं जयलक्ष्मीरूप स्त्रीके क्रीडा करिवेका एक पर्वतही है ॥ ४५ ॥ ललाटविषैं बांध्या है पट्टबंध जानें महाविस्तीर्ण

आवासकूं निशाना करता भया, समुद्रविषैं गंगाद्वारतैं बारह योजन गये मागधका आवास है ॥ ७१ ॥ अर विजयार्द्धगिरिविषैं जाकी जीतिके जस देवनि गाए जानैं अमोघ कहिए विफल नांही परना जाका ऐसे बाणकरि विजयार्द्धगिरिके अधिपति विजयार्द्धदेवकूं जीत्या ॥ ७२ ॥ कृतमाली देव जाके आज्ञाकारी भए अर दोऊ श्रेणीके विद्याधरनि जाकी जीतिका वर्णन कीया ॥ ७३ ॥ अर विजयार्द्धकी गुफाका द्वार खोलि भीतरका अंधकार दूरिकरि गुफाकूं उलंघि गिरिकी उत्तर भूमि जीती ॥ ७४ ॥ अर म्लेच्छखंडके राजा आज्ञा न मानते हुते सो जीतिकी सेनाकरि तिनिकूं बेढि सेनापतिनैं वशि कीए बलात्कारैं तिनिपै भेट लई ते सब पायनि आय परे, सेवक भए ॥ ७५ ॥ दूरतैं आयकरि उत्तम देवनि जाका राज्याभिषेक कीया अर गीरींद्रके शिखरविषै आकाश स्थलके भावकूं प्राप्त होता भया ॥ ७६ ॥ अर रत्ननिके अर्घकरि जाहि पूजती भई गंगादेवी अर सिंधुदेवी अर वृषभाचलके तटपरि जानैं अपना जस गाढा कीया ॥ ७७ ॥ जानैं लक्ष्मी जल भरै ऐसी दासी करी अर देव जाके किंकर भए अर स्वाधीन हैं रत्न जाकै अर नवनिधि अटूटधनकूं उपजावै हैं ॥ ७८ ॥ जाकी जीतिरूप सेना समस्त दिशाकूं वशिकरि समुद्रके समस्त तटांत वनभूमिविषैं भ्रमती भई ॥ ७९ ॥ सो जगतमान्य चक्रेश्वर चक्रकरि शोभित जो राजाधिराजपद ताहि विस्तारता संता दीर्घायु कुशल आशिखाकरि तुमकूं मानता संता आज्ञाकरै है ॥ ८० ॥ जो मेरा राज समस्त भरतक्षेत्रविषैं समुद्र पर्यंत विस्तरि रह्या है परंतु प्यारे भाई बाहुबलीबिना सोहै नांही ॥ ८१ ॥ संपदा सोई अर ऐश्वर्य सोई अर भोग सोई अर सामग्री सोई जो भाईनिसहित भोगिए, कैसे हैं भाई सुखके उदयविषैं विभाग है जिनिका ॥ ८२ ॥ और नम्रीभूत भए समस्त मनुष्य सुर असुर विद्याधर परंतु तुमकूं प्रणामतैं विमुख होतैं राज न सोहै ॥ ८३ ॥ जो रिपु प्रणाम न करै तौ मनकूं ऐसी पीडा न उपजावै जैसी बंधुजन गर्ववंत्त प्रवीणतारहित प्रणाम न करता संता मनकूं पीडा उपजावै ॥ ८४ ॥ तातैं ज्येष्ठ भ्रातापै जायकरि प्रणाम करहु, पूजहु, जौलग समीप न जावहु तौलग वे तुम-

दूत अपने योग्य स्थान बैठा तब बाहुबली कुमार मुलकनिरूप किरण चौगिरद विस्तारते बोले ॥ ५७ ॥ हे भद्र ! छह खंडके स्वामी बहुतनिकी है चिंता जिनिकों ऐसे चक्रवर्त्ती तिनिकै कुशल है ? चिरकालमैं हम चक्रधरकी चितारणीमैं आए ॥ ५८ ॥ समस्त क्षेत्रके जीतिवेका उद्यम अद्यापि परिपूर्ण न भया सो भूपेंद्रकी दाहिनी भुजा कुशलरूप है ? ॥ ५९ ॥ हम सुनी सब दिशा जीती अर सब देशपति जीते अबहू चक्रेश्वरके कछु कर्त्तव्य रह्या है कि नांही ? सो कहो ॥ ६० ॥ या भांति शांतरूप प्रतापरूप साररूप प्रतापरूप सारभूत प्रमाणाक्षर मर्यादरूप कहताथका कुमार दूतके बोलिवेका अवसर करता भया, भावार्थ—जिनिपै जाइए अर वे कछु पूछैं तब बोलना आवै ॥ ६१ ॥ अथानंतर मनोहर वचन दूत कहता भया मानूं शब्द अर अर्थकूं मिलायकरि दांतनिकी किरणनिकरि दिखावता भया ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! तिहारे वचनरूप दर्पणविषैं कार्य प्रत्यक्ष देखिए है जहां हमसारिखे अल्पज्ञहू अर्थकूं प्रत्यक्ष देखै हैं ॥ ६३ ॥ हम वचोहर कहावै हैं स्वामीकी आज्ञाप्रमाण वचनविज्ञप्ति करैं, गुणदोषविचारविषैं मंद हैं, धनीके छांदे (अनुकूल) चाले हैं ॥ ६४ ॥ तातैं हे राजन् ! चक्रधरनैं जो आज्ञा धरी है प्रिय अर उचित सो समीचीन तुमकूं अंगीकार करना जो सबनिमैं गरिष्ठ कुलमैं बडे तिनिकी आज्ञाप्रमाणही कर्त्तव्य है ॥ ६५ ॥ गुरुका वचन अंगीकार करना वामैं कछु विकल्प न करना इह श्रुतिकी आज्ञा है सो श्रुतिकी प्रमाणतातैं चक्रीकी आज्ञा तुमकूं कर्त्तव्य है ॥ ६६ ॥ वह तिहारा ज्येष्ठ भ्राता भरत राजानिमैं प्रथम इक्ष्वाकुवंशका तिलक जानैं समस्त पृथ्वी वशिकरि देवनिकूं नवाए ॥ ६७ ॥ गंगाद्वारकूं उलंघिकरि रथमैं आरूढ होय असहाय पराक्रमी समुद्रकूं वशि करता भया, कैसा है समुद्र—चंचल अर वक्र हैं लहरि जाविषैं ॥ ६८ ॥ जाका प्रतापरूप अग्नि शरके मिसकरि समुद्रके जलविषैं प्रज्वलित होता भया केवल समुद्रहीका पान न कीया देवनिका मान हरि लीया ॥ ६९ ॥ जाके शररूप फांसिकरि बलात्कारैं कंठ पकरिकरि खैंच थके देव आय पायनि परे सीस नवाय प्रणाम करते भए ॥ ७० ॥ महोदधिविषैं जाके शरका परना बलात्कारैं मागधके

खलता दुखलताकी समान लोककूं आतापकारी संतनिकूं प्रिय नांही अर सब वोर विरस फलकरि मंडित है ॥ ९७ ॥ सामादिकविषैं दानसहित युक्तिहू भेद अर दंडकरि विकारकूं प्राप्त होत संते न्यायवान पुरुषविषैं बाधा उपजावे हैं ॥९८॥ साम दाम भेद दंड ए च्यारि उपाय हैं सो इनिका यथास्थानक लगावना सिद्धिका कारण है अर बिना ठिकानैं विपर्यय लगावना पराभवकूं फलैगा ॥ ९९ ॥ जे प्रतापी पुरुष उष्णताकूं प्राप्त भए हैं तिनिविषैं सामका उपायहू सर्वथा शांतताका कारण नांही स्नेहयुक्तहू पुरुष जो तप्तायमान भया तो ताविषैं नरमीके वचन ऐसे जानहु जैसैं उष्णजलविषैं जलका सींचना चिडचिडाटही उपजावै ॥ १०० ॥ अर ऐसे ही मैं महातेजवंतविषैं बाहुल्यताकरि दामहू शांतताका कारण नांही मानूंहू जैसे देदीप्यमान अग्निविषैं इंधनका समूह डारिये तौ प्रज्वलित ही होय, इंधनके प्रदानकरि अग्निकूं शांतता कहां ? ॥ १०१ ॥ जैसे तप्तायमान लोहकूं मृदुता होय है तैसे तप्तायमान सांवतके मृदुता नांही अर दंडहू सत्कार वचन करि गजविषैं ग्राह्य है सिंह विषैं नांही ॥ १०२ ॥ तातैं तू ए उपाय विपरीत करि लगावे है सो जानिये है उपायका वेत्ता नांहीं तो सारिखे पुरुष प्रयोगके अज्ञानतैं खेद खिन्नही होय ॥ १०३ ॥ हम मृदुताहूकरि दुःसाध्य, हमारा वशि करना नरमीहूकरि कठिन तहां तू गर्वकी बात करै जोर जतावे सो प्रगट मूर्ख है ॥ १०४ ॥ भरतेश्वर वयकरि अधिक है तौ हु प्रशंसायोग्य नांहीं, गज वृद्ध है तऊ कहा सिंहके बालक की बराबरी करै ? कदापि न करै ॥ १०५ ॥ छोटनिके विनय अर बडेनिके स्नेह ए दोऊ बात कुटुम्बके मिलापतैं सोहैं, सो हे भद्र ! जब मिलाप न भया तब हमारा विनय अर उनका स्नेह ए दोऊ बात हती गई ॥ ६ ॥ बडा भाई नमस्कार करिबे योग्य है इह अनुक्रम है यामैं दूषण नांही परंतु सिरपर खड्ग आरोपण करै ताकूं प्रणाम करना काहेका अनुक्रम है ? ॥ ७ ॥ हे दूत ! हमारा चित्त अन्यके गर्व वचन सुनि पीडित होय है, हम काहूकी आज्ञारूप प्रवर्त्तैं ऐसे नांही, सूर्यही एक तेजस्वी है ताथकी और तेजस्वी कौन है ? ॥ १०८ ॥ राज्यपद उनकूं अर हमकूं ऋषभदेवने दीया वे अब राजराजा भए दोय

धरि क्षमावान नांही, कोपमैं हैं, सबनिके नाथ हैं उनकी प्रणतिही इष्ट है, सर्वसंपदाकी जननी है ॥ ८५ ॥ वह अवंध्यशासन है जाकी आज्ञा कोऊ लोपिबे समर्थ नांही अर जे आज्ञातैं विमुख होंहि तिनिकूं चक्र शिक्षादायक है कैसा है चक्र—अतिशासन कहिए जाकै ऊपरि और प्रवल नांही, वहही सवपरि प्रवल है ॥ ८६ ॥ ताकी आज्ञातैं विमुख ए मंडलेश्वर तिनिकूं प्रचंड दंड रत्नरूप वज्रपातके घातकरि खंडित देखहु ॥ ८७ ॥ तातैं हे दीर्घायु ! शीघ्रही जायकरि ताका मनोरथ पूरहु, तिहारे दोऊ भाईनिके मिलापतैं समस्त जगत आनंदरूप होहु ॥ ८८ ॥ ए वचन दूत कहि चूक्या तव वाहुवली मंदहास्य करता महाविच-क्षण गंभीर अर्थरूप धीर वचन कहता भया ॥ ८९ ॥ तैं स्वामीका उत्तम आचरण निरूपण करते नीकी कही जो—अपने स्वामीके मतको पोषना सोही दूतपना प्रधान है ॥ ९० ॥ तैं साम कहिए नरमी दिखावतैं विशेषताथकी भेद अर दंड प्ररूपे, साधिवेयोग्य प्रयोजनविषैं स्वामीकी स्वतंत्रता दिखाई ॥ ९१ ॥ तू स्वतंत्र कहिए स्वाधीन जो स्वामी ताके रहस्यका वेत्ता भर्मी दूत है इह वात सांच है जो मर्मी न होय तौ कैसे अंतरंगकी बात प्रगट करै ॥ ९२ ॥ तोहि निधिके स्वामीनैं बहुत समझता जानि हमपै पठाया परंतु पराए मर्मकी छेदनहारी इह तेरी प्रवीणता हमारे चित्तमैं न आई तू समझदार कहावै है परंतु तोमैं समझि नांही ॥ ९३ ॥ निश्चयसेती इह दुष्टनिकी रीति है जो अपना जोर दिखावना अपने गुण गावना पराए दोष प्रगट करना ॥ ९४ ॥ दुष्ट पराए दोष वर्णन करै अर अपने गुण वर्णन करै अर सज्जन अपने औगुण प्रकाशै पराये गुण प्रकाशै ॥ ९५ ॥ अज्ञानी जीव हैं ते खलता कहिए दुष्टता ताहि अंगीकार करै हैं सो दुष्टता खलता कहिए आकाशकी वेलिसमान निष्फल है, दुष्टताहु फलरहित अर आकाशकी वेलिहू फलरहित बहुरि दुष्टता संतापहारी नांही अर आकाशकी वेलिहू संतापहारी नांही अर दुष्टता सुमन जे सज्जन तिनिकरि रहित है अर आकाशकी वेलि सुमन जो पुष्प तिनिकरि रहित है या भांति खलता कहिए दुष्टता ख—लता कहिए आकाशकी वेलिसमान वर्णनकरी ॥ ९६ ॥ अर मैं ऐसी मानूंहूं—इह

की परमहदपरि आरोपित किया ॥ १२३ ॥ चक्री दिग्विजयविषैं देवनिकूं जीतता भया इह बात
सत्य है परंतु यामैं कछु और ही कारण है सो तू विचारि ॥ २४ ॥ वह उपवास करि डाभकी सेजपरि
कहा न तिष्ठया अर जलस्तंभन विद्याकरि कहा समुद्रका पानी न थांभ्या ए उपायकरि जलविषैं
वाण चलावता भया ॥ २५ ॥ सो चक्रवर्ती कुंभकारके भावकूं आचरै है वह चक्र कहिए चाककूं नमावै
इह चक्रकूं नमावै अर वह लंबायमान दंडकरि पार्थिव कहिये मृत्तिकाके वासण वनावै अर इह
पार्थिव कहिए राजा तिनिकूं दंडरत्नकरि सूधे करै ॥ २६ ॥ आग कहिये अपराध सोही भया पराग
कहिये रज ताहि विस्तारतासंता आप कलंककरि युक्त भया अर कुलकरनिके कुलकूं कलंकी करै है
॥ २७ ॥ मंत्र कहिये मसलिहत (नीति) अर तंत्र कहिये सेना ताकरि दूरतें रिपुनिकूं बुलाए सो
कहा वाका पुरुषार्थ, लज्जा विना (निर्लज्ज) प्रशंसायोग्य कदाचि नांही, भावार्थ—मंत्र तंत्रकरि राजानिकूं
वशि कीये यामें कहा पुरुषार्थ है ? ॥१२८॥ हे दूत ! जब चक्रीके पुरुषार्थकी कोऊ प्रशंसा करै तब हमकूं
अत्यंत अप्रिय लागै जाका कटक म्लेच्छनिकी सेनाकरि चलाचल भया ॥ २९ ॥ यशरूप धन काहूकरि
हरया न जाय सो क्षत्रीके पुत्रकूं यशही संचय करना अर निधिनिका संग्रह करते बहुत नृप नाशकूं प्राप्त
भये ॥ ३० ॥ रत्ननिकरि कहा कार्य ? जे एक हस्तप्रमाणहू भूमि लार न जाय अर केवल रत्ननिके अर्थि
राजा नाशकूं प्राप्त होय हैं ॥ ३१ ॥ इह चक्री तुलापुरुषही है जो समस्त राजनिकरि रत्ननिके पुंजकरि
तोल्या, इह ऐश्वर्य नांही ॥ ३२ ॥ सो निश्चयसेती पिताकी दत्तभूमि बलात्कारैं हरया चाहै है तजिबेयोग्य
वस्तु ताकी प्रतिज्ञा उलंघिकरि लुब्ध भया है सो ताकी औषध कहा ? ॥ ३३ ॥ हे दूत ! ताततैं दई हमकूं
पृथ्वी सो वाकै छोटे भाईकी स्त्री समान ताहि ग्रह्या चाहै है सो तेरे स्वामीकै लज्जा नांही ॥१३४॥ स्वतंत्र
कहिए स्वाधीन जो शूरवीर पुरुष परचक्रका जीतनहारा सो यथेष्ट सर्व दान करै जो मांगै सो दे परंतु
निजिभार्या अर भुजानिकरि उपार्जी भूमि कदापि न देय, और दान करै ए दोय वस्तु देबेयोग्य नांही

आंक अधिक बंधे सो ए आंक कंठमाल रोगकी नांई बधे ॥ ९ ॥ जानूं वे यथेष्ट राजराजा होय रत्ननिकरि अति गृद्ध भये हैं अर हम राजाही हैं अपने राजविषैं तिष्ठे हैं ॥ १० ॥ ज्यों बालकनिकूं छल करि बुलावै त्यों हमकूं छलकरि बुलाय प्रणाम कराय राज दीया चाहै है सो ताका दीया मंडल हमारे खलके टूक समान है ॥ ११ ॥ तेजस्विनीके जो अपने भुजरूप वृक्षका फल होय सोई प्रशंसा योग्य है अर परकी भौंहभंगरूप बेलिका फल जो चारू दिशाका राज्य मिलै तौऊ प्रशंसा योग्य नांही ॥१२॥ जो राजा हुवा थका पराई आज्ञाकरि उपहत जो लक्ष्मी ताहि बांछे सो राजा काहेका ? ताहि राजा कहना निरर्थक है जैसे गिंडोला सर्प कहावे सो सर्प कहावना व्यर्थ है ॥ १३ ॥ परकृत अपमान ताकरि मलिन जो लक्ष्मी ताहि राजा कहाय जो धारै है सो मनुष्य पशुसमान है राजकी सामग्री वाकै भार समान है ॥ १४ ॥ मानभंग करि उपार्जे भोग तिनिकरि जो प्राणनिकूं धाऱ्या चाहै है सो टूटे दांतके हाथीमें अर वामें कहा भेद ? ॥ १६ ॥ जे मानभंगके भारकरि सिरकूं नम्रीभूत करै हैं सो छत्र भंग विना ही तेजरहित देखिये है ॥१६॥ जे मुनि भोग सामग्रीरहित हैं तेऊ संज्वलन मानकरि युक्त हैं, राजभोगका अर्थी पुरुष जो मान तजै सो काहेका राजा ॥ १७ ॥ भला है वनका वास अर भला है प्राणनिका त्याग परंतु कुलाभिमानी पुरुषकूं पराई आज्ञाकी आधीनता भली नांही ॥ १८ ॥ जे धीर वीर क्षत्रिय हैं ते प्राणनिकूं तज करि मानकूं राखै हैं, प्राण तो विनाशीक हैं अर मानकरि उपाज्र्या यश निरंतर विश्वविषैं शोभाकूं करै है ॥ १९ ॥ तैं चक्रवर्त्तीका पराक्रम अत्यन्त कह्या है सो वृथा कह्या इह सब असत्यका आरोपण है इह स्तुति निंदाविषै तत्पर है ॥ १२० ॥ पंडित अति असार वस्तुहूकूं वचन करि पोषै हैं जैसे कोऊ श्वानको सिंहकरि वर्णन करै ॥ २१ ॥ इह समस्त तेरी कही रचना ही शोभै है, कहां उनका दिग्विजयका आरंभ अर कहां धनकरि उपजी अति तृष्णा ? ॥ २२ ॥ जैसे भिखारी चक्रकूं धरै घरघरतें भीख अंगीकार करै है तैसे चक्री चक्रकूं धरै घर घरतैं कर लेता भया सो यामें कहा बडाई ? तैं अपना स्वामी दीनता

प्रवलताकरि स्खलित हैं वचन जिनिके ऐसे हम सो जयलक्ष्मीके कटाक्षनिके कब निशाने होंयगे
॥ ४८ ॥ गजके दांतनिके मध्य लूंबिरही है आंतनिकी माला सोई भये रस्सा तिनिपरि आरूढ होय
कब हीदेंगे जयलक्ष्मीकूं तोलेंगे ॥ १४९ ॥ या भांति वचनालाप करते संग्रामके रसिक महा प्रचंड जोधा
शस्त्र अर सिरके टोप सजते भये, सावंतनिकी सेना सेनाविषें ॥ ५० ॥ तब सुभटनिकी भृकुटीकरी
तिरस्कार कीया मानूं दिन भय मांनि कहूं पलायबेकूं उद्यमी भया। भावार्थ—दिन छिपिबेकूं सन्मुख भया
॥५१॥ अथानंतर क्रोधायमान सुभटनिकी सेना तिनिके नेत्रनिकी आरक्त क्रांति ताकरि मानूं रविमंडल
आरक्त होय गया ॥ ५२ ॥ क्षणेक अस्ताचलके तटके वन ताके वृक्षनिकी कूंपल तिनिसमान लाल
दीखता भया सूर्यकी किरणनिका समूह ॥ ५३ ॥ अस्ताचलके अग्रभाग लगे हैं किरण तिनिकरि तासैं
सूर्य ऐसा भासता भया मानूं पडिबेके भयकरि करनिसूं गिरिका अवलंवनही करै है ॥ ५४ ॥ वारुणी
कहिए पश्चिम दिशा अर वारुणी कहिए मदिरा सो वारुणीके संगतैं लोपी गई है क्रांति जाकी सो अस्ता-
चलहू मानूं भानुकूं पातके भयतैं न थांभता भया, भावार्थ—जो वारुणीका संग करै सो ढवै सूर्यतैं वारुणीका संग
कीया सो अस्त भया, अस्ताचलहू न थांभिसक्या।५५। मानूं दिन गया सो दिनके ढूंढिबेकूं रविनैं रसातलमैं
प्रवेश कीया, अस्ताचलके शिखरनिके अग्रभागकरि भानु छिपि गया सो न दीखता भया ॥ ५६ ॥ अहो
भव्यजीव हो! सूर्यने निशासंबंधी तिमिरकूं मेटि अर भूभृत् जे पर्वत तिनिकूं कर कहिए किरण तिनि
थकी दाबिकरि पृथ्वीविषें उद्योत किया हुता सो दिनके अंतविषें क्रांतिरहित होय अस्त भया तैसें बडे
वडे राजा महामंडलेश्वर तिनि या पृथ्वीविषें अन्यायरूप तिमिरकूं मेटि अपने करथकी भूभृत् जे राजा
तिनिकूं दाबि उद्योत कीया हुता ते दिन जो भाग्य ताके अंतविषें क्रांतिरहित होय अस्त भए, पुण्य पूरा
होय गया तब वस्त्रहू न मिले या भांति या असार संसारविषें अनंत भए अर अनंत होंहिंगे ॥ १५७ ॥
सूर्य तौ मेरुप्रदक्षिणारूप तिरछे गमनकरि निरंतर भ्रमै है सो दूरतैं मूढ लोकनि ऐसा जान्या मानूं इह

॥ १३५ ॥ तातैं बहुत वोलिवेकरि कहा? या पृथ्वीतलकूं चिरकाल इकक्षत्र वही भोगवो अथवा मैं भुजबली भोगऊं ॥ ३६ ॥ अर्थकी सिद्धितैं रहित वृथा भटालापकरि कहा? संग्रामरूप कसोटीविषैं मेरे अर वाके पुरुषार्थकी प्रगटता होयगी ॥ १३७ ॥ तातैं रणसंग्रामविषैं जो कछु होना होय सो हम दोऊनिका होहु, इह निःसंदेह हमारा वचन हे दूत! चक्रवर्तीसूं जाय कहो ॥ ३८ ॥ या भांति प्रगट है क्षत्रीपनका गर्व जामैं ऐसा वाहुवली कुमार तानैं दूतकूं शीघ्रही विदा कीया अर कही—जाहु, अपने पतिकूं रणसन्मुखकरि युद्धका साज सजौ और दूजी वात नांही ॥ ३९ ॥ या भांति दूतसूं कुमार वातकरि पठाया अर आप वाहुवली राजानिसहित राजसभातैं उठे, कैसे हैं राजा—मुकुटनिके संघट्टतैं देदीप्यमान भासैं है रत्ननिकी ज्योति जिनिकै मानूं कीया है आलातचक्रके सैंकडानिका परिभ्रमण जिनि ॥ ४० ॥ क्षणेक रणसंग्रामके संघट्टका प्रकाशके योद्धनिके समूहकरि सामंतपनेका आलाप होता भया सो लोक सुनते भये ॥ १४१ ॥ सावंत परस्पर वात करैं हैं—जो बहुत कालमैं स्वामीकूं रणका काम पर्‍या है अव हम स्वामीके सत्काररूप ऋणतैं निवृत्त होवेकूं समर्थ हौंहिगे कि न हौंहिगे? ॥ ४२ ॥ पोषे हैं राजा राजभृत्यनिकूं अवसरके अर्थि, सो अवसर जो न सरै तो इनि तृणसमान मनुष्यनिकरि कहा? ॥ ४३ ॥ इह कलेवर त्याज्य है सो यशरूप धन उपार्जना, विजयविषैं जयलक्ष्मी प्राप्त होय है, रणका उच्छव अल्पफल नांही ॥ ४४ ॥ हम रणरूप मंडपविषैं कव विश्राम पावैंगे अंगअंगप्रति घावनिकरि जर्जर हौंहिगे, कैसा है रणमंडप—वाणनिकी छायाकरि मंद भया है सूर्यका आताप जहां ॥ ४५ ॥ ऐसा दिन कव होयगा जो हम शत्रुनिकी सेनाके रचे व्यूह तिनिकूं भेदिकरि निरावाध शरशय्यापरि सोवैंगे ॥ ४६ ॥ ऐसा दिन कव होयगा जो हम गजके स्कंधविषैं जाय क्षणेक मूर्छित भये तिष्ठैंगे, गजके कर्णरूप ताल वीजणे तिनिके हालनकरि दूरि कीया है रणका खेद जिनि ॥ १४७ ॥ हाथीके दांत तेई भए अर्गल तिनिमैं पिरोए स्थिरै हैं रक्त जिनिक अर घावनिकी

न देखै ॥ ७१ ॥ बलात्कार तिमिरकरि व्याप्त भया लोक अंतरंगविषैं व्याकुल होता संता नेत्रनिकी सफ-
लता जानिकरि सोवनेकूं समीचीन जानता भया ॥ १७२ ॥ देदीप्यमान है क्रांति जिनिकी ऐसे दीपक
घर घरमैं प्रज्वलित भए ते सोहते भए मानूं सघन अंधकार भेदिवेकूं ए सूईही रची हैं ॥ ७३ ॥ अथानं-
तर जगतकूं आनंद उपजावनहारी किरण तिनिकरि तिमिरकूं मेटिकरि मानूं चंद्रमा लोककूं दग्धकरि
पखालता संताही मानूं उदय भया ॥ ७४ ॥ अनुरागकरि अपने मंडलकूं अखंड धारतासंता भले राजाकी
नांई आनंदकूं बढावता चंद्रमा उद्योत करता भया ॥ ७५ ॥ मृगका है आकर्षण जाकै ऐसा सिंह ता
समान शशिकूं देखिकरि तिमिरका समूह गजनिके समूहकी नांई भागता भया ॥ ७६ ॥ चंद्रमाकी
चांदिनीका प्रवाह ताविषैं तारानिकी पंक्ति बुदबुदानिकी नांई सोहती भई ॥ ७७ ॥ चंद्रमारूप हंसका
बालक तिमिररूप सिवालकूं खूंदता संता ताराररूप सहचरी तिनिकरि संयुक्त आकाशरूप सरोवरकूं अव-
गाहता भया ॥ ७८ ॥ चंद्रमा समस्त अंधकारकूं अपनी किरणनितैं हरिकरि समस्त जगतकूं उज्ज्वल
करता संता मानूं अमृतमयीही करता भया ॥ ७९ ॥ अंधकारकूं दूर कीया तोऊ चंद्रमा कलंकवान ही
रह्या सो निश्चयसेती सहजका कलंक महत पुरुषनिहू करि तजना कठिन है ॥ ८० ॥ तिमिरकी भेदन-
हारी चंद्रमाकी किरण तिनिकरि स्पर्शी दिशा प्रकाशकूं विस्तारती भई जैसैं तिमिररोगके हरणहारे
वैद्यके कर तिनिकरि स्पर्शी दृष्टि प्रकाशकूं विस्तारै ॥ ८१ ॥ या भांति प्रगट हैं तारा जाविषैं ऐसे रात्रिके
समयकूं प्रगट होतैं नारी नरसहित रंगमहलमैं प्रवेश करती भई ॥ ८२ ॥ चंदनके द्रवकरि सींच्या है
अंग जिनिका पुष्पनिकी मालाकरि मंडित नाना प्रकारके आभूषण पहरे देदीप्यमान हैं आभरण
जिनिके महासुंदर ऐसी सोहती भई मानूं कल्पलताही है ॥ १८३ ॥ तासमैं कामी जननिकी मनोवृत्ति-
विषैं चंद्रमाकी किरणनिकरि काम वृद्धिकूं प्राप्त होता भया जैसैं समुद्रविषैं चंद्रमाकी किरणनिकरि लहरि-
निकी वृद्धि होय ॥ ८४ ॥ रमण कहिये वल्लभ अर महारमणीय चंद्रमाकी किरण अर चंदन आदि सुगंध

अधःपतन करै है ॥ ५८ ॥ दिशारूप स्त्री तिमिरकरि व्याप्त भई मानूं सूर्यके अस्त होयबेविषैं शोककरि पीडित भई विलखे वदनकूं धरै है ॥ ५९ ॥ कमलरूप वदनकी धरणहारी कमलिनीरूप स्त्री भ्रमरनिके शब्द तिनिकरि मानूं सूर्यके वियोगतें विलाप करती संकोचकूं प्राप्त भई ॥ १६० ॥ अर अस्ताचलके वन संध्याकी ललाईकरि व्याप्त भए ऐसे भासते भए मानूं अतिविकराल दावानलकी, शिखाकरि मंडित हैं ॥ ६१ ॥ अनुरागकी भरीहू इह संध्या सूर्यनें तजी सो आकाशविषैं आरक्त विंबकूं धरे ऐसी लखिए है— मानूं अग्निविषैं प्रवेश करै है ॥ ६२ ॥ पश्चिमदिशाविषैं संध्या सिंदूरकी छविकूं धरे क्षणेक ऐसी भासती भई मानूं आकाशरूप समुद्रविषैं मूंगानिके वनकी पंक्तिही है ॥ ६३ ॥ पश्चिमदिशाविषैं सांझकी ललाई जपाके पुष्पसमान अरुण ऐसी विस्तरी मानूं चकवीके मनकूं आतापकी उद्दीपनहारी अग्निकी ज्वालाही है ॥ ६४ ॥ संध्याकी ललाई क्षणेक दिशाविषैं स्फुरायमान होती ऐसी दृष्टि परी मानूं प्रियके आगमविषैं मानिनी नायिकानिके मनका अनुराग समस्त एक ठौर भेला भया है ॥ ६५ ॥ धरे हैं आरक्त वस्त्र जानैं ऐसी संध्या सूर्यके पीछैंही गमन करती लोकनि ऐसी जानी मानूं इह पतिके पीछैं मरण आरंभती भई सतीही है ॥ ६६ ॥ धरी है अभिलाषा जानैं ऐसी चकवी विलाप करती चकवेके पीछैं गमन करती ताहि चकवा तजता भया, भवितव्यताकूं कोऊ उलंघि न सकै ॥ ६७ ॥ चकवा चकवीका रात्रिविषैं वियोग होय सो इह कहा रविका अपराध है कि कहा कालमर्यादाका अपराध है ॥ ६८ ॥ सूर्य विना महासघन तिमिर समस्त दिशाविषैं व्याप्त होता भया, तेजस्वीविना बाहुल्यताकरि तिमिर निरंतर व्याप्त होय जैसैं तेजस्वी राजा विना बाहुल्यताकरि अन्यायकी प्रवृत्ति होय ॥ १६९ ॥ रात्रि अंधकारकरि आच्छादित तारानिके समूहकरि सोहती भई जैसी नील वस्त्र पहरे देदीप्यमान मोतीनिके आभूषणकरि मंडित अभिसारिका नायिका सोहै। जो नायकपै चला करि जाय सो अभिसारिका कहिए ॥७०॥ लोकविषैं फैलि गया तिमिर सो आगैं तिष्ठती वस्तुकूं लोक न देखते भए नेत्रनिकरि सूझे नांही जैसैं मिथ्यात्वकरि दूषित जीव तत्त्वकूं

जब मैं वह नायकका नाम लिया तब वह विलख वदन होय गया तातैं मैं जान्या ॥ ९६ ॥ अर कोइक खंडिता नायिका नायकसूं कहती भई—हे निर्लज्ज ! जानै तेरा चित्त हरा तानै कहा लज्जाहू हरी ? जो तू बहुरि भी हमसूं स्नेह विस्तारै है ॥ ८७ ॥ वह ही तेरी वल्लभा है तासूं तोहि अनुराग करना वह आपकूं सौभाग्यवती मानै है, अनुचित स्थानविषैं बांधी प्रीति तोहि पश्चात्तापके निमित्त होयगी ॥९८॥ या भांति प्राणप्रिया सखी हाथि संदेशा भेजती ताहि तरुण पुरुष कहा न मनावता भया ? अतिआदरसूं मानिनी नायिकाकूं अवश्य मनावता भया ॥ १९९ ॥ अर कोइक नायिका सखीसूं कहती भई—हे आली ! चंद्रमाकी किरण मानूं अतितपै हैं अर चंदन मोहि दाह उपजावै है अर पंखानिकी पवनकरि कामाग्नि प्रज्वलित होय है ॥ २०० ॥ तातैं हे सखी ! मेरैं प्राणनाथकूं मनायकरि मेरै ढिंग ल्याव अथवा मोहि ताकै निकट ले चालि, मेरे प्राण तेरे आधीन हैं, पतिके तो प्रिया बहुत हैं अर मेरे पति एक वोही हैं ॥ २०१ ॥ या भांति कोइक कामातुर सखीसूं एकांतविषैं वचनालाप करती भई सो नवीन वियोगिनी पतिने तत्काल आयकरि उरसूं लगाय लई ॥ २ ॥ कामिनीनिके कांचीदामके मनोहर शब्द तिनिकरि मानूं इह घोषणाही होय है जो इह रात्रिका समय ताविषैं मदनका राज है सो निशंक भये यथेष्ट रमहु ॥ ३ ॥ पहुपनिके कर्णपूर तिनिविषैं लीन भ्रमरनिके समूह तिनिके गुंजारशब्दकरि मानूं स्त्रीनिके कर्ण-विषैं काम कछुइक मंत्र कहता भया ॥ ४ ॥ शरीरविषैं सुगंधादिकका लेप ताका मर्दनहारा कामीनिके कामिनीनिका आलिंगन अतिदृढ होता भया ॥ ५ ॥ आरक्त अर कलुष है दृष्टि जिनकी अर मुख कछुइक आरक्त तथा श्वेतताकूं धरै पाटल रंग रतिके अंतविषैं कामी पुरुषनिका होता भया अर अव्यक्त शब्द होता भया ॥ ६ ॥ भोगके अंतविषैं दंपति अतिसुगंध पहुपनिकी सेज ताविषैं शयन करते भये खुलकरि पडिगये हैं अधोवस्त्र जाविषैं ॥ ७ ॥ बाहुबलीके कैयक महासावंत होणहार युद्धका है उच्छव जिनिके सो वीररसके भरे शृंगाररसविषैं मंद है इच्छा जिनिकी तथापि प्रियाके प्रेमतैं अनुरागरसविषैं

द्रव्य रमणीजन जे स्त्रीजन तिनिविषैं मद अर मदन विस्तारते भये ॥ ८५ ॥ चंद्रमाकी किरण तेई भए जीतिके शस्त्र तिनिकरि काम समस्त जगतकूं जीतता संता नृपकी वल्लभा तिनिके आवास तहां सेनासहित गमन करता भया ॥ ८७ ॥ नारी जननि यद्यपि अमलकी वस्तुका आस्वादन न कीया आघ्राण कहिए सूंघना सोहू न कीया करविषैं ग्रहण हु न कीया तथापि मदनके आवेशतैं तरुणी उन्मत्तताकूं भजती भई ॥ ८७ ॥ कोइक मदनके मदकरि उन्मत्त कामिनी कामनैं मोहनास्त्रकरि वेधी सो पतिके उरसूं लगी तिष्ठती भई ॥ ८८ ॥ अर कोइक रमणी सखीका वचन उलंघि मानकूं छांडिकरि प्रतिबंधरहित भई रमणके निवास गमन करती भई ॥ ८९ ॥ अर काहूनैं वल्लभके बुलायबेकूं दूती पठाई हुती सो वल्लभ न आया दूती पाछी आई ताके वचननिकरि चकवीकी नांई आतापकूं प्राप्त भई अश्रुपात डारती भई ॥ १९० ॥ चित्तकूं मोहनके कारण स्त्रीनिके गीत तिनिकरि अर भ्रमरनिके नाद तेई भए धनुषकी फिडचिके टंकार तिनिकरि मदन है सो कामी जननिके हृदयक्षेत्रविषैं रंगभूमि रचता भया ॥ ९१ ॥ काम जोहै सो नवोढा स्त्रीनिहूकूं पतिके निकट ल्यावता भया, कैसी है नवोढा—पतिनाम, लीए उपजै है क्रोध जिनिकूं। भावार्थ-नवोढा कहिए नवी परनी बालावय भोगकी अभिलाषा जिनिके नांही तिनिहूकूं पापी मदन न छांडता भया ।९२। अर कोइक खंडिता कहिए जाका पति और प्रियापै गया अंतःकरणविषैं प्रबल है ताप जाकै सो चंद्रमाकी किरणनिकरि तथा खस कर्पूर चंदनादिकरि तथा जलकरि आला जो वस्त्र ताकरि तथा निर्मल सरोवरकी तरंगनिकरि सुख न लहती भई ॥ ९३ ॥ अर कोइक स्त्री धैर्यकी अवलंबनहारी कामके बाणकरि आतापकूं प्राप्त भई ताकै विषयकी सामग्री न इच्छती भई, ये विषय महा अनर्थके मूल नरक निगोदके कारण अनंत भवभ्रमणकूं करणहारे विवेकीनिकूं त्याज्य हैं ॥९४॥ अर कोइक नारी विषयकी अनुरागिणी ताहि प्रीतमपै संकेतके निवास दूर ले गई सो प्रियके कटुक बोल सहती भई। भावार्थ—बहुत वेरकरि क्यों आई? ॥९५॥ कोइक सखी नायिकासूं कहै है—हे आली ! तू ऐसे अलीक वचन मति कहै जो वह नायक सापराध है

कार विलै गया दिनका आरंभ भया सूर्य अपनी किरणनिके समूहकरि पूर्व दिशाकूं अरुण करिबेकूं उद्यमी भया ॥ २२१ ॥ सूर्यकी बालकिरणनिहीकरि रात्रिका तिमिर विलै गया दिनकर दिनश्रीसूं आलिंगन करता भया ॥ २२२ ॥ भानु चकवीके अनुराग सहित कमलनिके वनविषै शोभा विस्तारता भया अर कुमुदके वनकी शोभा तथा चांदिनीकी शोभा हरता भया ॥ २२३ ॥ उष्ण है किरण जाकी ऐसा दिनकर तिमिरके कपाट उघारिकरि दशूं दिशानिकूं प्रकाशता संता जगतकी आंखि उघाडता भया ॥ २२४ ॥ सूर्य भातही उठिकरि पद्माकर जो सरोवर कमलनिकी खानि ताविषैं शोभा विस्तारता संता प्रतापकरि जीतिबेवारेनिका आचरण अंगीकार करता भया। भावार्थ—जीतिबेवारा पुरुषहू प्रात उठै अर पद्मा कहिये लक्ष्मी ताका कर ग्रहणकरि अपने प्रतापतैं पृथ्वीकूं जीतै ॥ २२५ ॥ जब प्रातसमै हूवा तब बाहुवली तौ आप जागृतरूपही हुते तथापि जगायबेकी है इच्छा जिनिकै ऐसे जगावनहारे सुकंठ या भांति उच्चस्वरकरि पाठ पढते भये ॥ २६ ॥ हे नृपवर ! लोककूं आनंदका उपजावनहारा लोकनिकरि प्रशंसायोग्य दिनकर तेजकूं विस्तारता संता अब उदय होयगा तातैं तुमहू ताके हर्षनिमित्त सेजका संग तजहु ॥ २७ ॥ हे नृपेंद्र ! तिहारे बलकरि कौन वशि न भये, सर्वही वशि भये तुम महाबली तिहारी भुजनिका बल सब जानैं हैं कोऊ तुच्छ लोक न जानते होंगे, भरतेश्वरकूं जीतिबेनिमित्त कीया है युद्धका उद्यम जिनि सो हे महावीर ! तुम जयलक्ष्मीके भर्तार होहु ॥ २८ ॥ नगरके वृक्ष तिनिपरि परे हिमकण तेई भए अश्रु तिनिकूं कर कहिये किरण तिनिके समूहतैं पूछिकरि इह सूर्य अब उदय होय है, कैसा है भानु—उदय समय प्रफुल्लित भए हैं कमलिनीके वन तिनिपरि भंवर गुंजार करै हैं सो तिनिके आनंद शब्दकरि अर प्रफुल्लित कमलनिकरि मानूं अर्घ धारणकरि पडगाह्याही है ॥ २९ ॥ इह चकवा दूजे तट तिष्ठती चकवी ताकी तरफ गमन करै है, चकवीके अश्रुकी बूंद परै हैं सो मानूं वियोगके शोककूं तजती कमलिनीके पत्रनिकरि आच्छादित पद्मसरोवरका तट ताविषै प्रवेश करै है कमलनिके मकरंदकरि मंडित हैं पांख जाकी तिनिकूं

प्रवर्तते भये ॥ २०८॥ अर कैयक महाभट कीर्तिरूप कामिनीके संगविषैं है कामना जिनिकी ते प्राणवल्लभाके संगविषैं न प्रवर्त्ते ॥ ९ ॥ कैयक जोधा ऐसी विचारते भये जो शत्रुनिकूं जीतै सो हर्षित भये स्त्री हूकूं सेवै सो हम शत्रुनिकूं जीतेंगे तब स्त्री सेवन करेगें अन्यथा नांही इह विचारि सेजपरि न पौढे, स्त्रीतैं न्यारे भूमिशयनही करते भये ॥ १० ॥ अर कैयक उत्तम सुभट शरशय्याके सुखके अभिलाषी प्रियाकी सेजकी इच्छा न करते भये बडी है इच्छा जिनिके । भावार्थ—वीररसके रसिया श्रृंगाररसके अनुरागी न भये ॥ ११॥ अर कैयक शूरवीर अपनी स्त्रीनिसूं वीररसकी ही चर्चा करिबो कीये रणविषैं है उत्कंठा जिनिकी, रात्रि पूरी होय गई सो न जानी ॥ १२ ॥ अर कैयक रणरसविषैं आसक्त है मन जिनिका तौऊ अग्र तिष्ठती अंगना तिनिहूके संगका रस सेवते भए ।१३। जोधानिनैं युद्धके समानही भोगका प्रारंभ कीया युद्धहू परस्पर कठिन प्रहारकरि होय है अर संभोगहू परस्पर कठिन प्रहारकरि होय है युद्धहूमैं ओठ चाबे जाय हैं अर संभोगहूमैं चबाये जाय हैं ॥ २१४ ॥ कामसे पीडित मुखमैं मुख देय ते कामिनी कामातुर रतिके प्रवर्त्तन करि कामीनिका मन हरती भई ॥ १५ ॥ नेत्रनिकी वक्र विलोकन अंतरंगके हास्यसहित अर अव्यक्त भाषण अर रसका भर्या प्रेमका रोस भौंहनिका टेढा करना तिनि स्त्रीनिका अकृत्रिम स्नेहका भर्या कृत्रिम कपट ताकरि कामीनिकै रतिका आरंभ भोगांतविषैं रसका उपजावनहारा होता भया ॥ १६-१७ ॥ संसारविषैं स्त्रीका सेवन महा अयोग्य पशुकर्म है सो रात्रिविषैं अत्यंत भया ताहि निशि मानूं देखि न सकी सो व्यतीत भई ।१९। पश्चिमादिशारूप स्त्री अस्त होवेकूं सन्मुख भया चंद्रमा सोई है मुख जाके सो मानूं ऐसे कहै है—अहो दंपति हो ! बहुत रमे अब विषयभोगतैं निवृत्त होहु या विषयभोगतैं खेदखिन्न न होहु । भावार्थ—विषयवासना दुखका कारण है सो सदा ही त्याज्य है रागी पुरुषहू अब तौ तजहु निशि पूर्ण भई है ॥ १९ ॥ अर सूर्य अपने अस्त होनेकै समैं चकवा चकवीके जुगलकूं वियोगका कारण भया हुता सो तिनिके तापकरि व्याप्त भया अब तिनिके मिलापके निमित्त उदय होवेकूं सन्मुख भया ॥ २२० ॥ निशिका अंध-

मूढताकूं धिक्कार ॥ २५ ॥ चहुंदिशि ए प्रभातकी पवन बागनिके वृक्षनिकूं हलावती भमरनिकूं उडावती कमलनिकरि मंडित सरोवर तिनिकी तरंगनिके समूह तिनिसूं मिलाप करती रतिसमैं स्त्री पुरुषनि अंगीकार कीए नाना प्रकारके सुगंध तिनिकूं खेंचती कमलनिके मकरंदकूं हरती मंद मंद बाजे है, भावार्थ—प्रभातकी शीतल मंद सुगंध पवन प्रगट भई है ॥ ३६ ॥ हे नृपनाथ! ए जिनेश्वर देवके इष्ट मंगल तिनिकरि तुम जागृतरूप होहु, कैसे हैं जिनराजके मंगल—प्रगट है जै जैकार शब्द जिनिमैं जिनितैं सकल विघ्नकी शांति होय, कैसे हौ तुम—त्रिभुवनकरि पूज्य हौ, जो जयलक्ष्मी सोई भई कामिनी ताके कांत हौ ॥३७॥ वे भगवान अरहंतदेव जयवंत होहु, कैसे हैं प्रभु—पाई है इंद्रादिक देवनिकरि पूजाकी ऋद्धि जिनि अर धूत कहिए दूर करी है पापरूप रज जिनि असे वीतरागदेव द्वेषरहित हैं। नमस्कार करता जो इंद्र ताका देदीप्यमान मुकुट ताके रत्न तिनिकी फैलिरही सुंदर क्रांतिरूप मंजरी ताकरि ज्योतिरूप हैं चरण जाके ॥ ३८ ॥ सो वह आदि जिनेंद्र जयवंत होहु जाकी जीतिका विलास प्रगट देखिए है पहौपवृष्टिकरि, कैसे हैं पहौप—भंवरनिके समूह तिनिकरि शब्दायमान हैं, ए पुष्प कामके वाण हैं सो काम प्रभुनैं जीत्या तातैं मानूं तानैं अपने शस्त्र प्रभुके चरणयुगलके समीप डारि दीए हैं अर ए भंवर नाद नांही करै हैं भंगके शोकतैं मानूं काम दीनताके शब्द करै है ॥ ३९ ॥ बहुरि ऋषभदेव स्वयम् जिनपति जयवंत होहु, कैसा है प्रभु—जीत्या है काम जानैं अर अनंत है तेज जाका अर रागरहित है अर पखाली है पापरूप रज जानैं अर देवनिके मुकुट तेई भए गिरिके शिखर तिनिपरि धारी है चरणारविंदकी लक्ष्मी जानैं अर लोकालोकरूप मंदिर ताके अंतविषैं पाया है विश्राम जाके ज्ञाननैं ॥ ४० ॥ वह भगवान अरहंत जयवंत होहु, मदनके बाणकरि अखंडित है आत्मा जाका तौभी वह भगवान भुवनकी विजयलक्ष्मी सोई भई कामिनी ताहि अपने वक्षस्थलविषैं धारता भया अर मुक्तिरूप स्त्री परणता भया, कैसी है मुक्तिप्रिया विरूपा कहिए रूपरहित अमूर्त्तीक है तथापि अनुपम अनंत सुखकी पंक्ति

मंद मंद हलायकरि ॥ ३० ॥ शीतल है किरण जाकी असा चंद्र सो सब दिशातैं अपनी किरण संकोचता कमोदनीके वनकी वोर किरणनिकूं विस्तारता मानूं वियोगके भयतैं दृढ आलिंगन करै है। कैसा है चंद्र? कमोदनीकूं प्रफुल्लित करणहारा अर कमलनिकूं मुद्रित करणहारा सो अब कमोदनीसूं आलिंगनकरि अस्त हूवा चाहै है ॥ ३१ ॥ निशाकर जो चंद्र सोई भया सिंह सो तिमिररूपी हाथीनिके समूहकूं भेदिकरि मानूं तिनिके रुधिरकरि आरक्त भया है तन जाका सो आकाशरूप वन ताविषै भ्रमणकरि अस्ताचलकी गुफाका आश्रय करै है, निद्राके प्रसंगतैं वक्रित हैं तारारूप नेत्रनिकी कनीनिका जाकी, भावार्थ— चंद्र अस्त होय है अर ताराहू अदृश्य होय हैं कोइक रहै हैं सोऊ विलय होवेकूं सन्मुख हैं प्रभात भया है ॥ ३२ ॥ सारसनिके शब्दकरि शब्दायमान जो सरोवरीका नीर ताविषै हंस गमन करै हैं अर अब चकवा चकवीका युगल अति शीघ्रतासूं मिलिवेकूं सन्मुख भए हैं अर पंखीनिके समूह शब्द करते चहूं वोर वृक्षनिका आश्रय करै हैं सूर्य उदयकूं सन्मुख भया है सो विवेकी जन सामायिक प्रतिक्रमणादिविषै प्रवर्तै हैं अर जगतजन अपने अपने धंधे लागे हैं ॥ २३३ ॥ प्रात संध्याकी दीप्ति दिशाके मुखका मंडल उदयाचलके पाषाणकी पंक्ति तिनिकूं कमलके रंग करणहारी आकाशरूप समुद्रविषै मूंगानिके वनकी शोभा विस्तारती दिशारूप हाथीके वदनविषै सिंदूरकी प्रभा प्रकाशती पाटलरंगकूं धरै अतिशयपनैं विस्तरै है ॥ ३४ ॥ बालभानुकी फैलती किरण तिनिकरि कमल असा होय गया है मानूं प्रगट होते अग्निज्वालाके कण तिनिकरि व्याप्त है सो भंवरी कमलके समीप आयबेकूं समर्थ नांही होय है, कैसा है कमल—अति देदीप्यमान अरुणताके भावकूं प्राप्त भया है सो भमरी दूरि भागै है सो या मूढताकूं धिकार। कैसी है मूढता—विवेकतैं पराङ्मुख अर निश्चय आपदाका कारण, भावार्थ— सूर्यकी किरणकरि अत्यंत आरक्त होय गया है कमल ताहि भमरी अग्निमयी जानै है सो या मूढताकूं धिकार, जैसैं बहिरात्मा अजीवके संयोगतैं जीवकूं जड जानै परकूं आप मानै औरका और जानै या

करि राजानिमें श्रेष्ठ बाहुबली निद्राके अभावते सेजकूं तजत भए जैसे सुरगज गंगाकूं तजिकरि धीरें तीरां आवै तैसैं नृप सेजकूं तजिकरि रंगमहलतैं बाहरि आए ॥ २४८ ॥ तब केइक राजा आयकरि बाहुबलीकूं देखि दूरतैं प्रणाम करते भये, बाहुबली तरुण सेनासहित रणसंग्रामकूं उचित जो भूमि तहां आय डेरा कीए, कैसी है बाहुबलीकी सेना—जीतिके गज तिनिकी घटानिके समूह मदकरि विह्वल तिनिकरि रोकी है सर्वदिशा जिनि अर सेनाके बडे बडे नृप प्रसिद्ध है पराक्रम जिनिके तिनिकरि प्रगट है शोभा जाविषें ॥ २४९ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे कुमारबाहुबलीरणोद्योगवर्णन नाम पैंतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३५ ॥



अथ छत्तीसवां पर्व ।

अथानंतर दूतके वचनरूप प्रचंड पवनके योगकरि घूमता भरतेश्वरका कटक सोई भया समुद्र सो धरती आकाशकूं रोकिकरि चाल्या ॥ १ ॥ तासमैं संग्रामका कारण महाभेरी गंभीर नाद करती भई, आयुधनिके अभ्यासविषें तत्पर है चित्त जिनिका ऐसे विद्याधर युद्धकार्यविषें भयकूं तजते भए ॥ २ ॥ नवनिधिका स्वामी चक्रवर्त्ती ताके कटकविषें सेनाका विभाग होता भया, आगें आगें पयादे जिनिके पीछैं तुरंगनिके असवार अर न अतिदूरे न अतिनीरे या भांति हाथीनिके समूह चाले ॥ ३ ॥ अर रथनिका समूह कटकके दोऊ उर चाल्या अर आगें तथा पाछैं आकाशविषें देव विद्याधार चाले ॥ ४ ॥ या भांति हाथी घोडे रथ पयादे देव विद्याधर इह षडंग सेना ताकरि मंडित अनेक राजानिसहित भरतेश्वर भाईके जीतिवेकी इच्छाकरि प्रयाण कीया ॥ ५ ॥ महागजनिकी घटाका समूह जीतिकी ध्वजासहित चाल्या सो ऐसा सोहता भया मानूं चालते पहाडनिका समूह वृक्षनिसहित चाल्या, भावार्थ—गज तौ चालते गिरि भए अर ध्वजानिके समूह वृक्षकी शोभाकूं धारते भये ॥६॥ झरै है मद जिनिका सोई भया प्रचंड मेघकी

ताहि विस्तारै है ॥ ४१ ॥ सो वह आदि जिनेंद्र जयवंत होहु जानै कामरूपके घातविषैं युद्धकी भेरीका भयानक शब्द ताकरि भीम कहिए महाडरावना शब्दायमान हैं प्रचंड धनुषवाणके शब्द जाविषैं ऐसा कटकहू न रच्या अर भृकुटीकरि वक्रमुख न कीया अर काम सारिखा प्रबल बैरी ताका घात हू कीया ॥ ४२ ॥ सो जिनराज जयवंत होहु, अचिंत्य है प्रभाव जाका जा प्रभुसूं कामरूप जोधा युद्धकरिबेकूं समर्थ न भया, कैसा है काम—सुभटदेवनिके जीतिवेकरि अत्यंत वध्या है गर्व जाके, तोभी ऐसा मनोभव कहिए काम सो प्रभावकरि निगर्वताकूं धारता भया जा भगवानविषैं मंद होय गया शस्त्रका वीर्य जाका ॥४३॥ जयवंत होहु अशोकवृक्ष जाका अर दुंदुभि वादित्र अर पुष्पनिकी वृष्टि अर चंवरनिका समूह अर सिंहासन महाप्रशस्त अर दिव्यध्वनि अर छत्र अर भामंडल ए तीन भुवनके जीतिवेके चिह्न जाके सो सर्वका हितू सर्वका वेत्ता जिनराज जयवंत होहु ॥ ४४ ॥ सो तीर्थंकरदेव तिहारी रक्षा करहु, जाके चरणकमल जीवनिके आताप छेदनहारे महाफलके दाता दूरितैं नम्रीभूत भया इंद्रस्वरूप भंवर जिनिपरि अर नमस्कार करते प्राणी तिनिकूं पोषिबेकूं कल्पवृक्षसमान स्थितिकूं धरै अर तुल्य है जिनिकी (?) ॥२४५॥ या भांति बाहुबलीके प्रातसमैं जगावणहारे जिनराजकी स्तुतिकरि बाहुबलीकी स्तुति करै हैं—हे नृपवर! भरतेश्वरहू महाप्रबल तिहारी भुजरूप आगल युगल ताकी तुल्यता न पावै सो तिहारी भुजाका बल तौ दूरिही रहै जब तुम रणभूमिरूप कसोटी ताविषैं प्राप्त भए तब तिहारी दृष्टिमात्रही ऐसा कौन राजा है जो रणविषैं तिष्ठिबेकूं समर्थ होय, कोईही कदापि न होय ॥ २४६ ॥ तातैं हे अधिपति! पूर्णता होहु कालक्षेपके योग करि, अब निद्राकूं शीघ्रही तजहु, तुम मोटे कार्यविषैं सदाही जागृतरूप हौ तत्काल जयलक्ष्मीकूं पायकरि महाभक्तितैं जिनदेवकूं अंतरंगके शत्रु तिनिके जीतिबे आर्थि वारंवार नमस्कार करहु, वे प्रभु सदा रक्षाके करणहारे हैं ॥ २४७ ॥ या भांति भलैप्रकार नानाप्रकारके जयमंगलरूप वचन तिनिकरि इनि मंगलपाठकनि जीतिके आर्थि बाहुबलीकूं जगाया, कैसे हैं इनिके वचन—सुंदर हैं पद जिनिविषैं सो इनि वचननि-

स्वामीके सत्कारमैं तौ कमी नांही अब देखिए हमसूं सेवा कहा बनै ? ॥१७॥ महामुकुटबद्ध राजा तिनिके कटक हाथी घोडे रथ पयादेनिके समूहकरि प्रयाण करते भए ॥ १८ ॥ ते मुकुटबद्ध राजा रत्ननिकी किरणनिकरि देदीप्यमान है मुकुट जिनिके सो मानूं लीलासहित लोकपालनिके अंशही पृथ्वीविषैं आए हैं ॥ बडे बडे राजा पृथ्वीका पति जो चक्रवर्त्ती ताहि वेढिकरि निकले दूरितैं अपनी सेनाकी सामग्री जैसी है तैसी नरेंद्रकूं दिखावते भए ॥ २० ॥ नवीन रणका आरंभ ताके श्रवणकरि उद्भ्रांत भया है चित्त जिनिका ऐसी सुभटनिकी स्त्री तिनिकूं सुभट धीर वचननितैं विश्वास उपजायकरि धैर्य बंधावते भए ॥ २१ ॥ ता समैं घोडेनिके खुरतैं उपजी आकाशकूं उलंघनहारी जो पृथ्वीकी रेणु सो क्षणेक देवांगनानिके अवलोकनमैं विघ्न करती भई । भावार्थ—इनि जोधानिकूं देवांगना देखै हैं सो क्षणेक रजकरि दृष्टि न परे ॥ २२ ॥ रजके समूहकरि रुकिगया दिशानिका समूह अर आकाश आच्छादित होयगया सो चक्रका उद्योत मनुष्यनिके दृष्टिके विषयकूं सन्मुख करता भया तब कछुइक भासता भया ॥ २३ ॥ जोधानिके वचनालाप महा वीररसके भरे तिनिकरि राजा प्रयाणविषैं हर्ष धारते भये अर गमनका खेद न जानते भए अर कटकके लोकनिके या भांति वचनालाप होते भए ॥ २४ ॥ लोक परस्पर बात करै हैं जो रणभूमिकूं सिंगारकरि बाहुबली तिष्ठ्या है अर इह राजनिमैं मुख्य भरतेश्वर निरंकुश भया तापरि चल्याही जाय है ॥ २५ ॥ सो न जानिए—दोऊ भाईनिमैं कहा होय इनिका युद्ध बाहुल्यताकरि सेवकनिकूं कल्याणकारी नांही ॥ २६ ॥ भरतेश्वरनैं इह युद्धवृथा विचार्‌या है ए पृथ्वीपति ऐश्वर्यके मदकरि उन्मत्त स्वइच्छाचारी हैं ॥ २७ ॥ ए बडे बडे मुकुटबद्ध राजा इनिकूं उनिकूं युद्धतैं क्यों न निवारैं ? ए हू समर्थ नांही तौ और कौन ? ए सबही समस्त सामग्री ले करि युद्ध करिबेकूं आए हैं ॥ २८ ॥ अहो इह बाहुबली कुमार महानुभाव है, देखौ चक्रवर्त्ती कुपित भया है तौऊ वह युद्धकूं सन्मुख भया तिष्ठ्या है ॥ २९ ॥ अहो ! काहूकै कटक बहुत भया तौ कहा ? सेनाकी बाहुल्यता महाभटनिकूं जीतिबेका कारण नांही,

धाराका पतन ऐसे मदोन्मत्त गज मानूं नीझरनां सहित पर्वतही हैं, रोक्या है दिशानिका समूह जिनि ऐसे हाथीनिकरि भरतेश्वर गमन करता भया ॥७॥ वे जीतिके गज महा उत्तुंग सिंगाऱ्या है अंग जिनिका सो ऐसे सोहते भए मानूं महासघन संध्याका रंग ताकरि शोभित चालते पर्वतही हैं, भावार्थ—गज तौ गिरि भए अर शृंगार संध्याका रंग भया ॥ ८ ॥ ए सेनाके भारे गज शस्त्रनिकरि सजे नानाप्रकार रंगकरि ध्वजानिसहित सोहते भये मानूं कुलाचलही पृथ्वीके स्वामीकूं अपना बल दिखायवेकै अर्थि आए हैं ॥ ९ ॥ हस्तिपाल अंकुश हाथमैं गहे हाथीनिके कांधे चढे सोहते भए महा देदीप्यमान वीररसके गहणे पहरे मानूं गर्वही एक ठौर भेले भए हैं ॥ १० ॥ अर घोडेनिके असवार तीक्ष्ण है धारा जिनिकी ऐसी खड्ग बांधे सोहते भए मानूं इनिके पराक्रमही मूर्त्तिवंत भुजानिसूं लागिरहे हैं ॥ ११ ॥ अर धनुषके धरणहारे जोधा शर कहिए बाण अर नाराच कहिए छोटे बाण तिनिसूं भरे तर्कश तिनिकूं बांधे सोहते भए मानूं वनके वृक्ष महाशाखाके धरणहारे कोटरविषें तिष्ठते सर्प तिनिकरि सोहै हैं ॥१२॥ अर रथनिके असवार रथनिमैं भरे हैं उचित आयुध जिनिकै सो ऐसे सोहते भये मानूं संग्रामरूप समुद्रके तरिवेकूं नावही हैं ॥ १३ ॥ कैयक जोधा बगतर पहरे टोप धरे हाथीनिकी सूंडिकी रक्षा करते भए अर कैयक नागे तीक्ष्ण शस्त्र हाथमैं धरे हाथीनिके पायनिकी रक्षाविषें सावधान होते भये ॥ १४ ॥ अर कैयक जोधा बगतर पहरे देदीप्यमान शस्त्रनिके समूह धरे स्फुरायमान होते सोहते भए सो मानूं उत्पातके कारण नीलमेघही विजुरीसहित उठे हैं ॥ १५ ॥ अर कैइक जोधा महाविकराल खड्ग हाथविषें ग्रहिकरि ताविषें अपने मुखकी आरक्तता देखिकरि अपना शूरवीरपना जानते भये ॥ १६ ॥ अर कोइक सामंत करके अग्रभागविषें धरी खड्ग ताहि तोलते संते सोहते भए मानूं स्वामीके सत्कारका बोझ अर अपनी शूरवीरताका बोझ तोल्या चाहै हैं, भावार्थ—सावंत ऐसी विचारे हैं—जो स्वामीके सत्कारका बोझ भारी कि हमारी सावंतताका बोझ भारी, हमारी सावंतता स्वामीके सत्कारकै जोडै तुलै कि न तुलै,

बडे बडे राजा हैं तिनि अर मंत्रिनि बीनती करी तब दोऊनि इनिकी विनती मानी, दोऊही महा उद्धत सो जलयुद्ध नेत्रयुद्ध मल्लयुद्ध ए तीन प्रकारके युद्ध नीठि नीठि माने शस्त्रनिसूं युद्ध करिवेकी इनि दोऊनिकी अभिलाषा सो सबनि मन कीए जब ए तीन युद्ध अंगीकृत कीए ॥४४॥ जलयुद्ध नेत्रयुद्ध मल्लयुद्ध इनि तीनमें जो जीतै सो जयलक्ष्मीरूप विलासिनीका स्वयंवरपति ॥ ४५ ॥ या भांति आनंदभेरी करि दोऊ सेनानिमैं गंभीर ध्वनि भई तब या भेरीकी ध्वनि करि सेनाविषैं जे सावंत मुख्य हैं ते युद्ध करिवेकूं आगे पीछे अगल बगल हुते ते एक ठौर आय खरे भए ॥ ४६ ॥ जे भरतके पक्षी नृप हुते ते तौ भरतकी पूठि खडे रहे अर बाहुबलिके सुभट ताकी पूठि खरे रहे ॥ ४७ ॥ सब राजनिके मध्य ए दोऊ वीर युद्ध करिवेकूं तिष्ठे मानूं निषधाचल अर नीलाचल ए ही दोऊ परस्पर आय भिरे हैं ॥ ४८ ॥ इनि दोऊनिमें बाहुबली हरितमणिकी छविकूं धरे जंबूवृक्ष समान उत्तम सोहता भया भंवरसमान है श्यामकेश जाके ॥ ४९ ॥ अर राजनिका राजा भरतेश्वर ताए सुवर्णसमान छविकूं धरे मुकुटकरि मंडित है सीस जाका सो चूलिकासहित सुमेरुसमान सोहता भया ॥ ५० ॥ बाहुबली महाधीर शांतदृष्टिकूं धारता जाकी दृष्टिके पलक न लागे सो नेत्रयुद्धविषैं जीतिकूं प्राप्त होता भया ॥ ५१ ॥ तब बाहुबलीका कटक समुद्रसमान क्षोभकूं प्राप्त भया अर जीतिके नगारे बजावने लागे तब उनकूं मनैंकरि बडे बडे नृप मर्यादाकरि बडे भाईहीकी जीति घोषते भए ॥ ५१ ॥ बहुरि जलयुद्ध करिवेकूं ए दोऊ मदकरि उद्धत सरोवरीके जलतैं प्रवेश करते भए मानूं ए दोऊ दिग्गजही हैं सो परस्पर दीर्घभुजनिकरि जलयुद्ध करते भए ॥५३॥ सो जलयुद्धविषैं भरतेश्वरके वक्षःस्थलरूप तटविषैं निर्मलजलके छटा सोहते भए मानूं सुमेरुके शिखरतैं जलके प्रवाहही चाले हैं ॥५४॥ जलका समूह भरतेश्वरने बाहुबलीकी उर चलाया सो बाहुबलीकी अति उच्चतातैं तिनिके मुख तक जल न पहोंच्या अर बाहुबलीका प्रेर्या जल भरतेश्वरके मुखपरि आय पर्या ॥ ५५ ॥ सो जलयुद्धविषैहू भरतेश्वर विजय न पाई बाहुबलीकी जीति है तब बाहुबलीके योद्धा

सिंह अकेला हाथीनिके समूहकूं जीतै है ॥ ३० ॥ अर इह चक्रवर्त्ती देव है सामान्य मनुष्य नांही जाकी हजारूं देव रक्षा करै हैं अनेक देव चक्रीके चरणनिकूं नवै हैं ॥३१॥ तातैं मति होहु इनिका युद्ध, इनिका युद्ध अनेक जीवनिके क्षयका कारण है जो ए देव इनिकै समीप हैं तौ शांति करौ ॥३२॥ या भांति मध्यस्थवृत्ति धरे कैइक लोक ऐसे प्रशंसायोग्य वचन कहते भए अर कैइक पक्षपातकरि हते अपनी पक्षकी उत्कृष्टता कहते भए ॥ ३३ ॥ या भांति लोकनिके वचनालापकरि राजा विनोदरूप भए तहां आय पहौंचे जहां वह जोधनिमैं अग्रेश्वर बाहुबली तिष्ठै है ॥ ३४ ॥ जब बाहुबलीका कटक अति निकट आया तब भरतेश्वरके सुभट बाहुबलीके भुजनिका बल शत्रुनिकरि अलंघ्य जानि कछुयक भय मानते भए ॥३५॥ या भांति दोऊनिके कटक निकट भए तब समुद्रके शब्द समान सेनाके शब्दनिकरि दिशा रुकि गईं ॥ ३६ ॥ अथानंतर दोऊ कटकनिविषैं योद्धा हाथी घोडेनिकूं सजिकरि चक्रव्यूह गरुडव्यूह आदि सेनाके अनेक व्यूह रचते भये परस्पर युद्धकी है अभिलाषा जिनिकै ॥ ३७ ॥ तब दोऊ भाईनिके मुख्य-मंत्री विचारिकरि या भांति कहते भए—इनका युद्ध क्रूरग्रहोंकी नांई शांतताके अर्थि नांही ॥ ३८ ॥ ए दोऊ चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी हैं इनि दोऊनिमैं काहूका मरण नांही दोऊ पक्षके सुभटनिका नाश होयगा ॥ ३९ ॥ ऐसा निश्चयकरि मंत्रके वेत्ता मंत्री अनेकजनके क्षयतैं भय मांनि दोऊनिकी आज्ञा लेकरि धर्मयुद्ध ठहरावते भये ॥ ४० ॥ दोऊ कटकनिमैं इह घोषणा भई—जो दोऊ अधिपति ही आपस-में संग्राम करेंगे, सेनाका कार्य नांही, असंख्य प्राणीनिके संहारका कारण इह आवरण ताकरि पूर्णता होहु, या युद्धमें महा अधर्म है अर बडा अपजस है ॥ ४१ ॥ इह विचारकरि दोऊ पक्षके मंत्रिनि दोऊ नृपनिसूं कही—जो परस्पर तिहारा ही युद्ध तीन प्रकार होहु, तिहारे परस्पर युद्धमें बलकी अधिकताकरि परख होयगी अन्यथा बलकी परीक्षा नांही ॥ ४२ ॥ जो दोऊ भाईनिमैं काहूकी हारि होय तो क्रोध न करना अर काहूकी विजय होय तौ गर्व न करना इह कुटुम्बका धर्म है ॥ ४३ ॥ या भांति दोऊनिसूं

अति प्रशंसा करते भए अर बाहुबलीके लोक अति प्रसन्न भए ॥ ६९ ॥ अर बाहुबली मनमैं चिंतवता भया जो क्षणभंगुर राजके अर्थि बडे भाईनैं कहा काम कीया ? जाकरि जगतविषैं लज्जावान होय ॥ ७० ॥ कटुक है विपाक जाका ऐसा क्षणभंगुर राज्य ताहि धिकार होहु, इह राजसंपदा खोटी स्त्रीकी नांई अनेकनिकूं ग्रहै है अर अनेकनिकूं तजै है परंतु अविवेकी जीवनिपै इह राजसंपदा न तजी जाय है, याका तजना कठिन है ॥ ७१ ॥ अहो ! इनि विषयसुखनिकी विरूपता दुष्टता क्षणभंगुरता ए प्राणी आसक्त भए नांही देखै हैं ॥७२॥ ऐसा कौन बुद्धिमान है जो विषसमान ए दारुण विषय तिनिकूं वांछै ? जिनिके वशि भया प्राणी अनर्थकी परंपराकूं प्राप्त होय है ॥ ७३ ॥ इनि विषयनितैं विष भला जो एक भवविषैं हणै वा न हणै ए विषय जीवनिकूं अनंतभवविषैं हणै हैं ॥ ७४ ॥ वर्त्तमान भोगवते मनोज्ञ अर फल जिनिका कटुक ऐसे विषय तिनिके अर्थि अज्ञानी जीव वृथाही अनर्थकूं प्राप्त होय है ॥ ७५ ॥ ए विषय आदिविषैं अतिरमणीक अर अंतविषैं प्राणनिके हरणहारे इंद्रायणके फलसमान तिनिकूं प्रवीण पुरुष कौन अंगीकार करै ? ॥ ७६ ॥ जीवनिकूं शस्त्रका प्रहार देदीप्यमान अग्नि अर वज्रपात अशनिपात महासर्प ए ऐसे भयंकर नांही जैसे ए विषयवैरी भयंकर हैं ॥ ७७ ॥ भोगके अर्थी अज्ञानी जीव धनकी वांछाकरि महासागर अर रौद्रसंग्राम अर भयंकर वन अर नदी पर्वत तिनिविषैं विचरै ॥ ७८ ॥ विषयके अर्थी समुद्रविषैं प्रवेश करै सो कैसा है दीर्घ है भुजा जिनिकी ऐसे जलचर तिनिकी भुजानिके घात वज्रपातसमान तिनिके शब्दकरि महाविषम है ॥ ७९ ॥ अर भोगानिके लोभी निर्भय भए रणमैं प्रवेश करैं, कैसा है रणांगण—बरसते बाण तिनिके समूहकरि रुकि रह्या है आकाशरूप अंगण जहां ॥ ८० ॥ बहुरि भोगनिकी आशाकरि हते गए मूढ जीव वनविषैं भ्रमण करै हैं, कैसे हैं वन—जहां वनमानुष विचरै हैं, भयसहित हैं लोचन जिनिके ॥ ८१ ॥ अर महाविषम ए विषयरूप ग्राह तिनिकरि ग्रसे ए अविवेकी नदीनिकूं तिर्‍या चाहै हैं, कैसी है नदी—विषम जे भंवर अर भयंकर जो ग्राह तिनिकरि भरी है ॥८२॥

जीतिकी घोषणा करते भए ॥ ५६ ॥ तिनिकूं मनै करि दोऊ वीर मल्लयुद्धविषैं प्रवर्तते दोऊ वीर नरसिंह महापराक्रमी धीर प्रगट भई है स्पर्धा जिनिमैं सो रंगभूमिमैं उतरे ॥ ५७ ॥ भुजानिका आस्फालन अर नाना प्रकारके करण तरण अर भुजानिका व्यायाम तिनिकरि इनि दोऊ महाबाहुनिकै बाहुयुद्ध होता भया दोऊही भुजानिके गर्वकरि युक्त ॥ ५८ ॥ सो बाहुयुद्धविषैं बाहुबलीनैं चक्रीकूं लीलामात्रमैं उठायकरि क्षणेक भ्रमाया सो चक्री आलात चक्रकी तुल्यताकूं भजता भया, कैसा है चक्री—देदीप्यमान है मुकुटकी प्रभाका समूह जाकै ॥ ५९ ॥ सब नृपनिमैं ज्येष्ठ जो बडा भाई भरतक्षेत्रका जीतनहारा ताहि छोटा भाई जीतिहू करि भूमिविषै न प्राप्त भया, मनमैं विचारी—इह छह खंडका पति है सबमैं बडा है अविनय योग्य नांही ॥ ६० ॥ नीलाचल समान बाहुबली हिमाचल समान पृथ्वीपतिकूं उठायकरि स्कंध विषैं आरोपण करता भया, हिमाचल तौ महाकटक कहिए तट ताकरि देदीप्यमान है अर चक्री महा कटककरि देदीप्यमान है ॥ ६१ ॥ तासमैं बाहुबलीकी पक्षविषैं जीतिका सोर भया अर भरतकी पक्षके नृप लज्जाकरि सिर नीचा करते भए ॥ ६२ ॥ तब चक्रवर्त्ती दोऊ सेनाके राजानिके देखते अपमानकूं प्राप्त होय विलख्या होय गया ॥ ६३ ॥ क्षणेक क्रोधकरि भृकुटी चढि गई अर लोचन रुधिरसमान अरुण होय गए क्रोधकरि ऐसा प्रज्वलित भया जो देख्या न जाय ॥ ६४ ॥ सो नवनिधिका स्वामी क्रोधकरि अंधा होय बाहुबलीके मारिवे निमित्त चक्रका चिंतवन करता भया सो चक्र समस्त वैरीनिके चक्रकूं चूरणहारा ॥ ६५ ॥ स्मरण करणमात्रही आया चक्रीनैं बाहुबलिपरि प्रेर्या सो बाहुबली अवध्य तातैं ताकूं प्रदक्षिणा देय ताके समीप तिष्ठ्या मंद होय गया आताप जाका ॥ ६६ ॥ बडे बडे नृपति भरत नरेंद्रकूं उलाहना दीया अर कही—या साहसकरि पूर्णता होहु, तब चक्रवर्त्ती अधिक पश्चात्तापकूं प्राप्त भया ॥६७॥ बाहुबली नृपेंद्रकूं हाथनिकरि तोलतासंता स्कंधतैं उतारि उच्चस्थलविषैं पधराय कहता भया —तुम बडे पराक्रमी हौ सो चक्रवर्त्ती अतिनिकृष्ट अवस्थाकूं प्राप्त भया ॥ ६८ ॥ अर बडे बडे नृप बाहुबलीपै आय

हे दीर्घायु ! इह राजलक्ष्मी तुम आदरी सो तिहारैही प्रिय होहु मेरै इह उचित नांही सत्पुरुषनिकूं बंधका कारण हर्षके निमित्त नांही ॥ ९७ ॥ इह राज्यलक्ष्मी फलित है तौऊ कंटकनिकरि दूषित है सो कटीली बेलिकी नांई परसिबेयोग्य नांही ऐसा कौन बुद्धिवान है जो याहि परसै ॥ ९८ ॥ विषके कांटेनिकी जालकी नांई इह राज्यलक्ष्मी हमारे सर्वथा त्याज्य है, निःकंटक तपोलक्ष्मी अंगीकार कीया चाहै हैं ॥ ९९ ॥ तातैं हम जो अपराध कीया सो क्षमा करहु ऐसा अपराध विवेकीसूं न बनै, विनयकरि मैं च्युत भया सो मेरी इह चपलता तुम बडे हौ सर्व या क्षमा करहू ॥ १०० ॥ बाहुबलीके मुखतैं ऐसा वचनका समूह निकस्या सो चक्रवर्त्तीका मन तप्तायमान हुता ताहि मेहकी ध्वनिकी नांई आह्लाद उपजावता भया ॥ १०१ ॥ चक्रवर्त्ती मनमैं अति पछिताया, जो हाय ! मैं दुष्ट कार्य कीया, या भांति आपकूं निंदता संता चक्रवर्त्ती अपने अन्यायकरि नीचा होय गया ॥ १०२ ॥ अर बाहुबली अतिविनयकरि अतंका कुलकर जो आदिचक्री ताहि अत्यंत हर्ष उपजावता संता संसारतैं निवृत्त भया, विवेकीनिका धैर्य निज-प्रतिज्ञातैं न डिगै, बाहुबलीके मनमैं जो विचार था सोही कीया ॥ ३ ॥ अपना पुत्र महाबली ताहि राज-ऋद्धि देकरि गुरुके चरणारबिंदकूं आराधता संता जैनकी दीक्षा धारता भया ॥ ४ ॥ दीक्षारूप बेलिकरि बेढ्या तज्या है समस्त परिग्रह जानैं सो ऐसा सोहता भया मानूं महावृक्ष पत्ररहित बेलिसहित है ॥ ५ ॥ गुरुकी आज्ञाकरि पढ्या है जिनसूत्र जानैं सो महानुभाव एकविहारी होता भया, एकवर्षका कायोत्सर्ग धार्‍या ॥ ६ ॥ सकल विकल्पनितैं रहित प्रशंसायोग्य व्रतका धारी निराहारी महाशांत वनकी बेलिकरि बेढ्या है अंग जाका अर बांवीरूप छिद्रतैं निकसते सर्प तिनिकरि भयंकर भासता भया ॥ ७ ॥ उच्छ्वास लेते प्रगट दीखै हैं फण जिनिके ऐसे भुजंगनिके बालकिनिके चहुउर समूहकरि ऐसा सोहता भया मानूं चरणनिके समीप विषके अंकुरेही ऊगे हैं ॥८॥ स्कंधपर्यंत लंबायमान केशरूप वल्लरी ताहि धरता संता ऐसा सोहता भया मानूं नागनिके मंडलकूं धरे मलयागिरि चंदनही है ॥ ९ ॥ प्रफुलित जो वसंतकी बेलि तिनि

अर विषयके अभिलाषी बडे गिरिनिपरि चढै हैं, विषम है चढना जिनिपरि, कैसे हैं विषयाभिलाषी—रसायनरसके जानिबेका जो उद्यम ताकरि मोहित हैं ॥ ८३ ॥ अर जरा अनिष्ट वनिताकी नांई वलात्कारें आलिंगन करै है सफेद केशनिके छलकरि शीघ्रही केशनिका ग्रहण करै है ॥ ८४ ॥ भोगिबेयोग्य जो वस्तु तिनिविषैं अतिअभिलाषी भया प्राणी विशेषताकरि हित अहितकूं नांही जानैं है, जराकरि ग्रस्त जो प्राणी ताविषैं अर मृतकविषैं भेद कहा ?॥ ८५ ॥ मनुष्यनिकूं जराकी प्राप्ति अति कष्ट उपजावै है जैसें शीतज्वरकी उत्पत्ति वलात्कारें भूमिविषैं पारै अर गात्रविषैं कांपणी उपजावै ॥ ८६ ॥ इह जरा सुराकी नांई प्राणीनिके शरीरका खेद अर बुद्धिकी विकलता अर वचनकी स्फुटताका अभाव शीघ्रही करै है ॥ ८७ ॥ कालरूप दुष्ट गज आयुरूप गजवंधनकूं वलात्कारें चलायमान करै है जा आयुधका वलकरि मनुष्यनिका जीवितव्य है ॥ ८८ ॥ इह शरीरका बल हाथीके कानकी नांई चंचल है अर जराकरि जीर्ण देहरूप कुटी रोगरूप मूसनिकरि छिद्ररूप है ॥ ८९ ॥ इह अशाश्वता राज्यादि ताहि भरतेश्वर सासता मानै है सो बडा अचिरज है मोहकरि हती है चेतना जाकी ॥ ९० ॥ बाहुवली चिरकाल बडे भाईकी चूकि विचरता संता कटुकाक्षरकरि भरतकूं कहता भया ॥ ९१ ॥ हो नृपशार्दूल ! क्षणेक विलखापना तजहु अर मेरी बात सुनहु, मोहकूं प्राप्त भए तुम सो न करिबेयोग्य अतिसाहस कीया ॥ ९२ ॥ अभेद्य मेरा देहरूप पर्वत ताविषैं तुम चक्र चलाया सो कछुही न करिसका जैसें वज्रके पर्वतविषैं वज्र परै तौ कहा करि सकै ॥ ९३ ॥ और भाईनिके दश भांजिकरि तुम राज चाह्या सो अधर्म अर अपयश विशेष उपार्ज्या ॥ ९४ ॥ भरतचक्रवर्त्ती आदितीर्थंकरका पुत्र कुलका उद्धारक भया, इह कीर्त्ति तुम थापी ॥ ९५ ॥ हे नृप ! इह राजलक्ष्मी पापकरि हती ताहि तुम ऐसी मानौ हौ जो याका भोक्ता अन्य नांही मैंहीहूं अर इह सासती है सो शाश्वती नांही याके भोक्ता तुमही नाहीं अनंत भए अर अनंत होंहिगे जैसें अब तुम जीती तैसेही अनेक जीतते आए हैं अर जीतेंगे इह काहूके न रही ॥ ९६ ॥

संबंधमें आनंद न मान्या ॥ २१ ॥ याचनारहित जो भोजन ताकरि और मुनि शरीरकी थिरता करे है अर यानैं तौ तप धरचा तबतैं भोजन श्रद्धा ही नांही तातैं मौनावलंवी सकल परीषह सहता भया ॥ २२॥ अर इह उत्तमक्षमाका धरणहारा जलपरीषह मलपरीषह तथा तृणस्पर्श आदिपरीषह सहता भया तज्या है शरीरका संस्कार जानैं अर समान है सुख दुख जाकै ॥ २३ ॥ वह धीर देहकूं रोगका गेह जानता संता नानाप्रकार दुःसह रोगकी बाधा सहता भया ॥ २४ ॥ सर्वज्ञ वीतरागदेवही पूर्णबुद्धि हैं और सवनिमें बुद्धिकी न्यूनाधिकता है इह जानि बुद्धिका गर्व न करता भया ॥ २५ ॥ अर सत्कारपुरस्कारविषैं जाकै अभिलाष न उपज्या काहूनैं पुरस्कार कीया तौ हर्ष न मान्यां अर काहूनैं सत्कार कीया तौ आनंद न मान्या, सत्कार कहिए पूजास्तुति अर पुरस्कार कहिए आवतैं सन्मुख जावना अर गमन करतैं पहौंचावे जाना ऊंचेपै बैठावनां इत्यादि सत्कार पुरस्कारविषैं जाका अनुराग नांही ॥२६॥ अर वह संतोषी अलाभपरीषह जीतता भया अर वा योगीश्वरकै अज्ञानपरीषह अर दर्शनपरीषहकी बाधा न होती भई, अज्ञान परीषह कहा कहिये—तप करते बहुत दिन भए पर अवधिज्ञान मनपर्यय ज्ञान न उपजे अर सकलश्रुत का ज्ञान न भया तौ कछु खेद नांही अथवा कोऊ अज्ञानी जीव मुनिकूं कटुक वचन कहै जो तू अज्ञानी है अर पंडित है तो कछु खेद न मानैं अर अदर्शन परिषह कहा कहिए—मुनिका ऐसा विकल्प न होय जो मोहि मुनिव्रत पालतैं बहुत दिन भए परंतु मैं कछु चमत्कार न देख्या, तपका माहात्म्य है कि नांही ऐसा विकल्प मुनिराज कदेही न करे ॥ २७ ॥ ए बाइस परिषह तिनिके जीतिवेतैं बहुबलीकै विस्तीर्ण निर्जरा भई, बाईस परीषहनिकूं जीतना कर्मनिर्जराकूं बडा उपाय है ॥२८॥ क्षमा करि क्रोधकूं जीतता भया अर निर्गर्वताकरि मानकूं जीतता भया अर सरलताकरि मायाकूं जीतता भया अर संतोषकरि लोभकूं जीतता भया ॥ २९ ॥ सो कामका जीतनहारा विनाही खेद पांचू इंद्रियनिकूं जीतता भया, विषयरूप इंधनकरि देदीप्यमान कामरूप अग्नि ताके बुझायवेका कारण तपही है॥ ३० ॥अर वह महाबली कामके

करि अतिशय पणेंकरि वेढ्या ऐसा सोहता भया मानूं हास्यसंयुक्त सखी ताकी शाखारूप बाहुकरि वेढ्या है, भावार्थ—बेलि तौ शाखा भई अर शाखा कर भए अर फूल हास्यका स्वरूप भया ॥ १० ॥ विद्याधरीनिके कर तिनिकरि चूंटै हैं पल्लव जाके सो वसंतकी लता सूकि करि इनके पायनि परी है, कैसी सोहै है—मानूं अति आधीनता करती कछुइक नम्रीभूत कामिनीही कांतके पायनि परी है ॥ ११ ॥ सो महादुर्धर तप करता अतिक्षीण अवस्थाकूं प्राप्त भया तौऊ ऐसा सोहता भया मानूं मुक्तिरूप कामिनीका वांछित कामी पुरुषही कृश होय रह्या है ॥ १२ ॥ तपरूप अग्निके तापतैं याका कायोत्सर्ग शरीरही केवल शोषकूं प्राप्त न भया, दुखदाई कर्महू शोषकूं प्राप्त भए ॥ ११३ ॥ महातीव्र तपकूं करै है तौऊ याके कछु उपद्रव न भया, महत्पुरुषनिका धैर्य अचिंत्य है जाकरि विक्रियाकूं न प्राप्त होंहि ॥ १४ ॥ सकल परीषह उपसर्गका सहनहारा अपनी सहनशीलताकरि पृथ्वीकी सहनशीलताकूं जीतता भया अर अपनी प्रशांतताकरि जलकी शीतलताकूं जीतता भया अर अपनी दीप्तिकरि अग्निकूं जीतता भया अर अपनी निसंगताकरि पवनकूं जीतता भया ॥ १५ ॥ क्षुधा तृषा शीत उष्ण दंशमशक ए परीषह मार्गसूं च्युत न होनेकी सिद्धिकै अर्थि सहता भया ॥ १६ ॥ अर परमनग्नताकूं धरता इंद्रियरूप धूर्त्तनिकरि भेद्या न गया इह नग्नतानामा परमतप ब्रह्मचर्यकी रक्षा है ॥ १७ ॥ रति अर अरति ए दोऊ परीषह सहता भया जे विषयकी बांछातैं रहित हैं तिनिकै रति अरति बाधा नांही ॥ १८ ॥ अर इह भोगनितैं वैराग्यकूं प्राप्त भया ताकैं स्त्रीकृत बाधा न होती भई, स्त्रीनिका शरीर महा-अपवित्र ताहि चर्मकी पूतलीसमान मानता भया ॥ १९ ॥ अर चर्यापरीषह तथा निषद्यापरीषह अर शय्या परीषह तिनिकूं लीलामात्र सहता भया मनहूकरि पादत्राण अर शयन न इच्छता भया ॥ २० ॥ अर वह परमार्थका वेत्ता वधपरीषह आक्रोशपरीषह सहता भया, इह शरीर स्वयमेव जाता रहैगा तातैं शरीरके विषैं निःस्पृह भया परीषह आनंदसूं सहता भया, शरीरका अनुराग न करता भया, शरीरके

अवधि मन:पर्यय इनि च्यारि भेद ज्ञाननिविषैं जाकै अतिउत्कर्षता भई मतिज्ञानावरणी श्रुतज्ञानावरणी अवधिज्ञानावरणी मन:पर्ययज्ञानावरणी तिनिके क्षयोपशमतैं ॥ ४५ ॥ मतिज्ञानकी उत्कृष्टतातैं कोष्ठ बुद्ध्यादि ऋद्धि याकै होती भई अर श्रुतज्ञानविषैं समस्त अंगपूर्वनिका ज्ञान होता भया ॥ ४६ ॥ अर परमावधिकूं उलंघिकरि सर्वावधिकूं प्राप्त भया अर मन:पर्ययज्ञानविषैं विपुलमति मन:पर्ययज्ञान प्रगट भया ॥ ४७ ॥ ज्ञानकी शुद्धिकरि तपकी शुद्धि अधिक होती भई ज्ञानही तपका मूल है जैसैं मंदिरकै नींव अर वृक्षके जड ॥ ४८ ॥ तपकी उग्रताकरि महा उग्रोग्र तपतैं शरीर अतिकृश भया तथापि तपोदीप्तिकरि सूर्यकी नांई अत्यंत दिपता भया ॥ ४९ ॥ सो महामुनि ऐसा तपऋद्धिके प्रभावकरि मलमूत्रादिरहित निर्मल शरीर भया अर घोरतप तथा घोरपराक्रम तथा अंतरंगके तप तिनिकरि अनुक्रमतैं उत्कृष्टताकूं प्राप्त होता भया ॥ ५० ॥ इनि प्रचंड तपनिकरि सो उत्तम मुनि ऐसा सोहता भया जैसैं मेघपटलतैं रहित किरणनिकरि सूर्य सोहै ॥ ५१ ॥ अर तपके बलतैं अष्टप्रकार विक्रियाऋद्धि याकै प्रगट होती भई सो इह बडा अचिरज है—जो समस्त विक्रियाकूं तजिकरि इह तीव्रतप करै ताकै विक्रियाऋद्धि क्यूं होय ? ताका समाधान—जो समस्त विक्रियातैं रहित होय ताहीकै अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राकाम्य ईशित्व वशित्व ······ ए अष्ट सिद्धि होंय इनिके प्रभावकरि चाहै सो करै परंतु चाहै नांही तातैं कछुही न करै ॥ ५२ ॥ अर पाई है औषधिरूप ऋद्धि जानैं ताके समीपतैं जगतका कल्याण होता भया—आमर्श जल-स्पर्शी सर्वौषधि इत्यादिक औषध ऋद्धिके भेद तिनिकरि प्राणीनिकूं उपकारी होता भया, भावार्थ—याके पसेव मूत्र मलादिकरि जीवनिके अनेक रोग जाते भए ॥ ५३ ॥ अर इह अनशन व्रतका धारक ताकै शक्ति-मात्र अमृतस्रवा आदि रसऋद्धि प्रगट होती भई अर तपके बलकरि बलऋद्धि विस्तारी ॥ ५४ ॥ अर अक्षीणमहानस अक्षीणमहालय ए क्षेत्रके ऋद्धिके दोय भेद प्रगट होते भए, इह तप पूर्ण सेया थका महा-मोटे फलकूं फलै, इनि ऋद्धिनिके भेद आगें कहि आए हैं तातैं अब न कहे ॥ ५५ ॥ जो विकल्परहित

जीतिबेतैं आहार भय मैथुन परिग्रह ए च्यारि संज्ञा खिपावता भया ॥ ३१ ॥ वह सकल पदार्थनिका वेत्ता या भांति अंतरंगके शत्रुनिके समूहकूं जीततासंता आपकरि आपविषैं आपकूं ध्यावता भया ॥ ३२ ॥ अर पंचमहाव्रत पंचसमिति पंचइंद्रियनिका निरोध वस्त्रनिका त्याग केशनिका लौंच ॥ ३३ ॥ अर समता वंदन स्तुतिकरण प्रतिक्रमण स्वाध्याय कायोत्सर्ग ए छह आवश्यक तिनिकूं आचरता भया अर स्नानका त्याग अर दंतधोवनका त्याग, एक बार भोजन ॥१३४॥ अर खडा रहि भोजन करना ए अठाईस मूलगुण ताके चौरासी लाख उत्तरगुण तिनिके आराधनाविषैं यत्न विस्तारता भया ॥ ३५ ॥ इनिविषैं किंचिन्मात्र हानि न करता व्रतकी परमशुद्धताकूं प्राप्त भया सो मुनि देदीप्यमान तपकी किरणनिकरि ऐसा दिपता भया जैसा किरणनिकरि सूर्य दिपै ॥ ३६ ॥ अर रसगौरव ऋद्धिगौरव सातगौरव इनि तीनूंकरि रहित परम निःशल्यताकूं प्राप्त भया, उत्तमक्षमादि दशप्रकार धर्मकरि मुक्तिके मार्गविषैं अतिदृढ आरूढ भया ॥ ३७ ॥ तीन गुप्तिमई गढ ताहि आश्रय ज्ञानरूप खड्गकरि देदीप्यमान समितिरूप बगतरकूं पहरै सो बाहुबली जीतिके भावकूं प्राप्त भया ॥ ३८ ॥ याका रत्नत्रयधर्म कषायरूप चौरनि न हर्‌या इह निरंतर जागृतरूप सदा प्रमादरहित ताकै चौरनिका प्रवेश कैसैं होय ? ॥३९॥ इह मौनव्रती याकै कदाचि विकथाका आदर न होता भया अर याका मनरूप गढ अत्यंत दृढ सो इंद्रीनिकरि न भेद्या गया ॥४०॥ याकै मनरूप मोटे महलविषैं ज्ञानरूप दीपिका प्रज्वलित भई सो सकल पदार्थ ज्ञानदीपिकाके प्रकाशतैं प्रतिभासते भए ॥ ४१ ॥ मति श्रुतिकरि समस्त वस्तुका स्वरूप चिंतवन करता वह मुनींद्र ताकै समस्त पदार्थनिका परिज्ञान यथार्थ होता भया ॥ ४२ ॥ परीषहनिके जीतिवेकरि महाप्रबल भया, जीते हैं इंद्रिय रूप शत्रु जानें, कषायरूप शत्रुनिके उच्छेदिवेतैं तपरूप राज्य सुखसूं भोगवता भया ॥ ४३ ॥ ताके तपके बलतैं योगकरि उत्पन्न ऋद्धि प्रगट होती भई जिनि ऋद्धिनिकरि ऐसी शक्ति प्रगट भई जो त्रैलोक्यकूं आनंद उपजावै अर चाहै तो त्रैलोक्यकूं उठाय ले परंतु ऐसी चाहि कदाचि न होय ॥ ४४ ॥ मति श्रुत

हथिनी कमलनीके पत्रनिका पुट ताकरि पानी ल्यावती संती स्वामीके विराजिवेकी भूमि ताहि सींचती भई
।६९। अर हाथी अपनी सूंडि कमल ल्याय चरणयुगलकमलकी पूजा करते भए, अहो तपस्वीनिका तप समस्त
जीवनिकूं शांतताका कारण है ॥ ७० ॥ मुनिके चरणनिके निकट महाश्याम सर्पनिके फण कैसे सोहते भये
मानूं पूजाके अर्थि नीलकमलकी मालाही चढाई है ॥७१॥ अर बाबईके विलतें फणमात्रही निकलिरखा है
जिनिका ऐसे काले नाग कैसे सोहते भए मानूं मुनिके चरणनिके समीप नीलकमलनिके अर्घही दे हैं
॥ ७२ ॥ अर नम्रीभूत जे शाखाके अग्रभाग तिनिविषैं फूलिरहे हैं फूल तिनिकरि वनकी लता कैसी सो-
हती भई मानूं नमस्कारपूर्वक महाभक्तिकरि पुष्पनिके अर्घ देती मुनिकी सेवाही करे है ॥ ७३ ॥ अर
पवनकरि हाले हैं फूले फूलनिकरि शाखाके अग्रभाग जिनिके ऐसे वनके वृक्ष सो मानूं हर्षतें वारंवार
नृत्यही कीया चाहै हैं ॥ ७४ ॥ महामिष्ट भंवरनिके शब्द तेई भए गान तिनिसहित मानूं सर्प नृत्यही करे
हैं ऊंचे हैं फण जिनिके अर फणनिके रत्न तिनिकी किरणनिकरि देदीप्यमान हैं शरीर जिनिके अर इत
उत चलायमान हैं ए सब नृत्यके भाव हैं ॥७५॥ अर कोयलनिके मिष्ट आलाप तेई भए वादित्र तिनिकी
मिलती लयकरि सर्पनिके देखतें मयूर वारंवार नृत्य करे हैं ॥ ७६ ॥ मुनिके विराजिवेकी महिमाकरि वह
वन शांत होय गया सो इह उचितही है—महत पुरुषनिका संयोग क्रूरजीवनिविषैं हू शांतताकूं धरे है ॥७७॥
ता वनविषैं पंछी शांत शब्दकरि ध्वनि करते भए सो मानूं घोषणाही करे हैं जो इह तपोवन महाशांत है
॥ ७८ ॥ मुनिके तपके प्रभावतें वह वनाश्रम महाशांत होयगया सो काहु ही प्रकारकरि काहू ही जीवका
काहूहीकरि घात न होता भया ॥ ७९ ॥ याके तपोयोगकरि विस्तर्या महातेज ताकरि तिर्यंचहू दयाल
होय गये हर्‍यागया है हृदयका तिमिर जिनिका ॥ ८० ॥ विमानके गमनके निरोधतें देव विद्याधर मुनिकूं
योगारूढ जानिकरि आकाशतें उतरिकरि वारंवार पूजा करते भए ॥ ८१ ॥ अर याके तपो वीर्यकरि
जी अतुल महिमा ताकरि देवनिके आसन वारंवार कंपायमान होते भए, कैसे हैं देव—नय गए हैं सीस

चितकी वृत्ति सोही अध्यात्म ऐसा जानि वह जितेंद्रिय मनकूं जीतिकरि ध्यानाभ्यासविषैं लगावता भया वह योगी योगके वेत्तानिमें श्रेष्ठ ॥ ५६ ॥ उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ए दशलक्षण धर्म तिनिकूं धारता भया ए ही धर्मध्यानकी भावनाके मूल कारण हैं अर मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ ए धर्मध्यानकी च्यारि भावना भावता भया, ध्यानकी सिद्धि होतैं मुक्तिकी सिद्धि होय है, योगीश्वर ऐसा मानै हैं ॥ ५७–५८ ॥ अर अनित्य अशरण संसार एकत्व अन्यत्व अशुचित्व आस्रव संवर निर्जरा अर लोकके स्वरूपका चिंतवन अर धर्मका आचरण अर ज्ञानकी दुर्लभता ए बारह अनुपेक्षा तिनिका चिंतवन निरंतर करता भया, ए बारह अनुप्रेक्षा विशुद्धताकी उपजावनहारी हैं ॥ ५९–६० ॥ अर वह ध्यानी आज्ञाविचय अपायविचय विपाकविचय संस्थानविचय ए धर्मध्यानके च्यारि पाए तिनिकूं चिंतवता संता कर्मनिके अंशनिकूं क्षीण करता संता धर्मध्यानकूं ध्यावता भया ॥ ६१ ॥ जैसें दीपिकाविषैं कज्जलके अंश दृष्टि परैं तैसें याकी ध्यानदीप्तिविषैं भस्म भए कर्मनिके अंश कज्जलांस सारिखे निरखिबेमें आए ॥ ६२ ॥ ताके देहकी दीप्तिका विस्तार दसूं दिशाविषैं देदीप्यमान भासता भया याके विराजिबेकरि वह वन मरकतमणिकी शोभाकूं विस्तारता भया ॥ ६३ ॥ अर ताके चरणानके समीप विश्रामकूं प्राप्त भये मृगजाति निश्चल तिष्ठते भए, दुष्ट जीवनिकरि बाधारहित भए वनविषैं क्रूरजीव हुते ते शांतताकूं प्राप्त भए ॥ ६४ ॥ सिंहादिक अनादितैं मृगादिके विरोधी हैं ते अविरोधी होय स्वइच्छासूं ताके चरणनिके समीप तिष्ठते भए, मुनिके योगका विभव ताहि प्रशंसते भए ॥ ६५ ॥ नवी व्याई नाहरी भैंसेका मस्तक चूंबि अपने पुत्रतुल्य जानि स्तनका दूध स्नेहसूं पावती भई ॥ ६६ ॥ अर हाथी अपने समूहसहित सिंहनिके समीप तिष्ठते भए अर सिंहनिके बच्चा स्तनपानके अभिलाषी होय हथनीकूं चूंखते भए ॥ ६७ ॥ अर हाथीनिके छावा मनोग्य ध्वनि करते वाचाल तिनिकूं सिंह हाथनिसूं स्पर्शते आनंद उपजावते भये तिनिके हाथनिके नख अतिकठोर हैं सो हाथिनिके छावानिकूं अतिकोमल लागते भए ॥ ६८ ॥ अर

अर देवदुंदुभि आकाशविषैं मधुरध्वनि करते भए अर आकाशतैं कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा भई ॥१९७॥ अर देव दुंदुभि आकाशविषैं मधुरध्वनि करते भए अर आकाशतैं कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा भई अर देवनि बाहुबलीके सिरपरि रत्ननिका छत्र फेर्‍या अर मणिनिका निरमाप्या दिव्यसिंहासन केवलीकूं पधराए ॥ १९९ ॥ अर इनिके दोऊ तरफ देवनि चमर ढारे तीन लोकविषैं प्रभाव विस्तर्‍या सामान्य केवलीयोग्य गंधकुटी रची ॥ २०० ॥ देवनि या भांति योगींद्रकी केवलपूजा करी सो केवली भगवान महामुनिनिकरि सेयबेयोग्य जैसें चंद्रमा नक्षत्रनिकरि मंडित सोहै तैसें जितेंद्रियनिकरि युक्त बाहुबली केवली सोहते भए ॥ २०१ ॥ घातिया कर्मनिके क्षयकरि उपज्या अरहंतपद ताहि धरते आर्यखंडविषैं विहार करते भए देवनिकरि आराधिबेयोग्य ॥ २ ॥ या प्रकार वह विश्वका वेत्ता अपने वचनरूप अमृतकरि विश्वकूं पोषतासंता कैलासपर्वतकूं प्राप्त भया जहां श्रीऋषभदेव बिराजे हैं ॥ ३ ॥ वह श्रीबाहुबली चरम-शरीरीनिमैं अग्रणी भव्यजीवनिकी रक्षा करहु सकल राजानिके समूहविषैं दृष्टियुद्ध जलयुद्ध मल्लयुद्ध तिनि-करि जीती है भरतकी कीर्त्ति जानैं अर राज्यलक्ष्मीकूं तृणवत् निरादरकरि मुक्तिके अर्थि जिनदीक्षा धारता भया ॥ ४ ॥ अर भरतनैं सकल पृथ्वी जीतीहुती सो ताकी जयलक्ष्मी देदीप्यमान चक्रकी मूर्त्तिकरि सर्व राजानिके समीप बाहुबलीकूं प्रदक्षिणा देती भई अर बाहुबलीने विजयलक्ष्मी तिरस्कार करी सो लज्जाका भाजन भई, बाहुबली ऋषभके मार्गकूं अनुसरे सो तिहारी रक्षा करहु ॥ ५ ॥ सो आदितीर्थेश्वरका पुत्र जयवंत होहु जीतिकी लक्ष्मी सकल राजानिके समीप जाके अंगकी बांछाकरि निकट आई हुती सो निरादरी सकल जगतविषैं व्यापि रही है कीर्त्ति जाकी सो तपोलक्ष्मीकूं धारता भया ॥ ६ ॥ वह बाहुबली जयवंत होहु, जाकी बाहुका बल भरतनृपतिसूं मल्लयुद्धविषैं समस्त क्षत्रियनिके आगें विस्तारकूं प्राप्त भया, जाके नामके अक्षर स्मरण कीए संते प्राणीनिके समूहकूं पवित्र करै हैं ॥ ७ ॥ अर बाहुबली जयवंत होहु, सर्पनिके मुखतैं निकसी विषरूप अग्नि सो जाके चरणनिकूं पायकरि शांत-ताकूं प्राप्त भई अर विद्याधरनिकी स्त्री तिनिके करके अग्रभाग तिनिकरि दूरि कीया है विस्तीर्ण वेलिका

जिनिके ॥ ८२ ॥ अर कबहुक सर्व अंगके लिपटि गई है वेलि ताहि विद्याधरी वनविषैं क्रीडाके कारण आई संती अंगतैं दूरि करती भई ॥८३॥ या भांति ध्यानके बलकरि उपज्या है तपोबल जाकै सो लेश्याकी शुद्धताकूं प्राप्त होता संता शुक्लध्यानकूं सन्मुख भया ॥ ८४ ॥ एक वर्षके उपवास होय चुके ता दिन भरतेश्वरनैं आय पूजा करी ताही समैं सो मुनींद्र केवलपरमज्योतिकूं धारता भया, नांही है अंत जाका ॥ ८५ ॥ बाहुवलीके हृदयविषैं कछुइक रंचमात्र ऐसा विचार हुता जो मोथकी भरतेश्वरकूं क्लेश उपज्या ऐसा स्नेहरूप परिणाम हुता तातैं भरतेश्वरके पूजिवेकरि केवल प्राप्त भया॥ ८६ ॥ केवलज्ञानके उपजिवे पहली अर पीछैं भरतेश्वरनैं विधिपूर्वक योगींद्रकी पूजा करी, प्रसन्न है बुद्धि जाकी ॥ ८७ ॥ केवलज्ञान उपजिवे पहली तौ भरतेश्वरनैं अपने अपराध निवारिवे अर्थि पूजा करी अर केवल उपजे पीछैं आत्मकल्याणके अर्थि अधिक पूजा करी ॥ ८८॥ जो अपने छोटे भाई केवलीकी भरतेश्वरनैं महापूजा करी ताके वर्णन करिवेकूं कौन समर्थ ? ॥ ८९ ॥ एक तौ भाईपनेंका अनुराग दूजा धर्मका अनुराग तीजा जन्मांतरका स्नेह चौथा केवलपदकी भक्ति सो भरतेश्वरके प्रेमका प्रवंध अतिपूर्ण होता भया ॥ ९० ॥ इनि वातनिमैं एक हू होय तौ भक्तिकी उत्कृष्टताका कारण है ए सर्व ही सामग्री मिलै ताकी कहा कहनौं ? ॥९१॥ पृथ्वीका अधिपति बाहुबली योगींद्रकूं अपने मंत्री पुरोहितादि सहित अर मुकुटवद्ध राजा तिनिसहित अर राजलोकसहित नमस्कार अतिहर्षकरि करता भया ॥ ९२ ॥ बहुत कहिवेकरि कहा, रत्ननिकरि अर्घ कीए अर गंगाजलकरि जलधारा दई अर रत्ननिके दीपक कीए अर मोतीनिके अक्षत कीए ॥ ९३ ॥ अमृतपिंडके नैवेद्य कीए अर कृष्णागरु अर मलयागिरिका धूप खेया अर पारिजात आदि कल्पवृक्षनिके पुष्प समूहकरि पूजा करी ॥ ९४ ॥ अर रत्न फलकी ठौर चढाए या भांति रत्नमयी पूजा भरतेश्वरनैं सर्वेश्वरकी करी ॥९५॥ आसन कंप होबेकरि देवनि बाहुवलीके केवलज्ञानका उदय जान्या तब इंद्र आदि सर्वदेव पूजा करिवेकूं आए ॥९६॥ ता समैं कल्पवृक्षनिके वनकूं हलावती सुगंधपवन गंगाकी तरंगनिकूं हरती बाजती भई

ताही विधि देवनि सहित नृपनि अभिषेक कीया ताही भांति आभूषण पहराए अर जयकार शब्द भए ॥ ५ ॥ ताही प्रकार भरतनैं सब राजनिका सन्मान कीया अर कुटुंबका सन्मान कीया उत्कृष्ट दान संपदाकरि लोक तृप्त कीए ॥ ६ ॥ ताही विधि महाशब्द भए अर मंगलके प्रगट करणहारे वादित्र बाजे जिनिकी ध्वनिकरि समुद्रके गाजिबेकी ध्वनि दबि जाय ॥ ७ ॥ ताही विधि आनंदभेरी बाजी अर आनंदमंडपविषैं संगीतकी विधि आरंभी ॥ ८ ॥ जैसा उत्सव आदिजिनिका इंद्रनि जन्मकल्याणविषैं सुमेरुपरि कीया हुता अर प्रभुकी ज्योति प्रगटी हुती तैसी चक्रेश्वरकी ज्योति प्रगटी अर तैसाही राज्याभिषेकविषैं उत्सव भया ॥ ९ ॥ गंगा अर सिंधुदेवी आयकरि अक्षतसहित तीर्थनिके जल रत्ननिकी झारीमैं भरि अभिषेक करती भई ॥ १० ॥ जब चक्री स्नानकरि नृपासनविषैं विराज्या तब अंगरक्षकदेव मणिमई मुकुटनिके धारक नम्रीभूत होय आराधते भए ॥ ११ ॥ अर हिमवानदेव तथा विजयार्द्धदेव अर मागधदेव रत्नप्रभासादिक सबही देव तथा दोऊ श्रेणीके विद्याधर नम्रीभूत हैं मुकुट जिनिके सो नमस्कार करते भए ॥ १२ ॥ सो भरतेश्वर बडे बडे राजानिकरि देवनि अभिषेककूं प्राप्त भया तथापि गर्व न उपज्या, महत्पुरुषनिके मनकी वृत्ति गर्वकी धारणहारी नांहीं ॥ १३ ॥ चमर सिरपरि ढरते भए अर छत्र फिरता भया तथापि आप सुख न मान्या, अपनी लक्ष्मी भाईनिकूं संविभाग न करी इह पश्चात्ताप रह्या ॥ १४ ॥ अर बाहुबली भाईतैं विजय न पाई सो भरतेश्वरका तेज न घट्या अधिक तेज भया जैसैं सुवर्णकूं कसोटीपरि घसिए तौ अधिक प्रभा होय ॥ १५ ॥ निःकंटकराज्य पायकरि भरतेश्वर सूर्यकी नांई अधिक प्रतापकरि सोहता भया, शुद्ध है मंडल जाका ॥१६॥ ता भरतेश्वरके सुंदर राजविषैं प्रजा कुशल क्षेमकूं प्राप्त भई, कैसा है भरतेश्वर—योग अर क्षेमका विस्तारणहारा सो प्रजा याके राजविषैं आपकूं सनाथ जानती भई, योग कहिए अलब्धका नाम अर क्षेम कहिए लब्धकी रक्षा ॥१७॥ अर या चक्रेश्वरनैं नवनिधि यथायोग्य विभागकरि भोगई, संभोग अर संविभाग—अर्थउपार्जनके

बेढना जाका सकल त्रिभुवनकरि मानिवेयोग्य बाहुवली तिहारी रक्षा करहू ॥ ८ ॥ सो आदीश्वरका पुत्र जयवंत होहु भरतेश्वरका उच्च मुकुट ताके अग्रभागविषैं महामणि तिनिकरि शोभित है नखरूप चंद्रमा जाका अर सर्पनिके समूह अतिचंचल तिनिकरि व्याकुलताकूं भजता भया, कैसा है बाहुवली योगका धारक धैर्यके बलकरि मंडित ॥ ९ ॥ सो बाहुवली हमारी रक्षा करहु—भंवरनिके समूहसमान महाश्याम सिरके केश भुजपर्यंत लंबायमान तिनिकरि ऐसा सोहता भया जैसा काली घटा है सिरपरि जाके ऐसा पर्वत सोहै ॥ १० ॥ सो बाहुवली जयवंत होहु जो शीतकालविषैं बरफके समूहकरि वेढ्या अंग ताहि पर्वतकी नांई धारता सोहता भया अर वर्षाकालविषैं नवीन मेघके जलके समूहकरि पखाल्या गया है अंग जाका अर उष्णकालविषैं सूर्यकी किरणनिका आताप सहता भया ॥ ११ ॥ जो शांतचित्त भया अपने हृदयविषैं बाहुवलीका स्मरण करै सो अतिशयपणैंकरि शीघ्रही जिनराजसंबंधी विजयलक्ष्मी जो काहूकरि कदेही जीती न जाय ताहि प्राप्त होय, कैसा है बाहुवली—जगविषैं जीतिरूप है अर महा योगीश्वरनिकरि गाइये है महिमा जाकी अर माननीक पुरुषनिकरि मानिवेयोग्य है ॥ १२ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भुजबलीविजयवर्णन नाम छत्तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३६ ॥

अथ सैंतीसवां पर्व ।

अथानंतर निवृत्त करी है समस्त दिग्विजय जानैं ऐसा भरतेश्वर महालक्ष्मीकरि मंडित अयोध्यापुरविषैं प्रवेश करता भया ॥ १ ॥ तहां बडे बडे राजा याका हर्षकरि अभिषेक करते भये जो च्यारू दिशिकी विजयलक्ष्मी तिहारे विस्तरौ ॥२॥ अर मंत्री पुरोहित तथा अंतःपुरके लोक अर पुरजन अभिषेक करते भए अर असीस देते भए जो चिरकाल पृथ्वीका राज्य आप करहु ॥ ३ ॥ राज्याभिषेककी विधि श्रीभगवान ऋषभदेवकी भई हुती सोही सर्वविधि समस्ततीर्थनिके जलकरि भरतकी भई ॥ ४ ॥

बद्ध राजा तिनिकरि सोहता भया जैसैं कुलाचलनिकरि सुमेरुपर्वत सोहै ॥ ३२ ॥ तिनिकरि शोभित चक्रवर्तीका क्षेत्र अति दीर्घ अत्यंत मनोहर भासता भया ॥ ३३ ॥ अर छिनवै हजार रानी तिनिमैं बत्तीस हजार तौ महामुकुटबद्ध राजानिकी पुत्री उत्तम कुल अर जातिकरि शोभित, रूपसंपदाकी शुद्ध खान ॥ ३४ ॥ अर बत्तीस हजारही म्लेच्छ राजानिकी प्राप्त भई अपसरानि सारिखी पृथ्वीविषैं अवतरी हैं जिनिकै देवांगना सारिखे रूप अर तिनिही सारिखे चरित्र जिनिकै देखे लोकविषैं अप्सरा जानी गई ॥ ३५ ॥ अर बत्तीस हजारही विद्याधरनिकी पुत्री जिनिकै नेत्ररूपी बाण मदनके उद्दीपक तिनिकरि जगत जीत्या, भावार्थ—जगतमैं तिनि सारिखी स्त्री नांही ॥ ३६ ॥ ते छिनवै हजार रानी अपनी भुजरूप शाखानिकरि कल्पवेलिकी शोभाकूं विस्तारती भई, कैसी है भुजरूप शाखा जिनिकी—आरक्त हैं हाथरूप कमल जिनिकै अर नखनिकी किरण सोई भए फूल सो खिलि रहे हैं, स्तन कमलही है मुद्रित कमल जिनिकै अर विकसि रहे हैं मुखकमल जिनिकै अर कामदेवके निवासकी भूमि ॥ ३८ ॥ अर मैं ऐसा मानूंहूं इनि रानीनिके गात्र कामरूप पिशाचकी उन्नतताके पात्र हैं जिनिकै गात्रके प्रवेशतैं इह काहूपै लंघ्या न जाय ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया है ऐसी रानी अर ऐसा सुख और नृपनिकै नांही ॥ ३९ ॥ बहुरि मैं ऐसा मानूंहूं इनिकै नख शस्त्र तीक्ष्ण करिबेके पाषाण तुल्य हैं तिनिकरि कामरूप सिकनीगर अपने बाण पैनै करि चक्रीकूं बेधै है ॥ ४० ॥ अर इह सत्य है जो इनिकी जंघा कामरूप धनुषधारीके तर्कश हैं अर इनिकै ऊरुदंड कामके चढिबेकै निसेनीके दृढथंभ ही हैं ॥ ४१ ॥ अर इनिकी कटि मदनकी कुटी समान कांचीदामकरि वेढी अर नाभि गंभीर मानूं मन्मथकी ए रसकूपिकाही हैं ॥ ४२ ॥ अर इनिकी रोमराजी मानूं अतिवृद्ध जो मदन ताकी आधारकी लाठी है अर इनिके स्तन मानूं कामरूप रत्नके पिटारे ही हैं ॥ ४३ ॥ अर इनिकी बाहु मिझन्याके फूल समान कोमल मानूं कामकी पांसि ही है अर ए महासुकंठी तिनिके मनोहर कंठ मानूं कामके श्वास ही हैं ॥ ४४ ॥

एही दोय फल। संभोग कहिए आप भोगवना अर संविभाग कहिए बंधु मित्रादिककूं बांटना ॥ १८ ॥ रत्न जो हैं ते निधिके ईश्वरनैं काम लगाए, चौदह रत्नमैं सात चेतन अर सात अचेतन सो निज निज कार्यविषैं लगाए, रत्न वेही जिनितैं कार्यकी सिद्धि होय ॥ १९ ॥ लोक भरतेश्वरके एते नाम कहि यश गावते भए—आदिचक्री, मनु, षट्खंड भरतक्षेत्रका अधिपति, राजराजेश्वर, राजाधिराज सम्राट् इत्यादि नामनिकरि प्रजाके लोक बखानते भए ॥ २० ॥ वृषभेश्वरका पुत्र भरत जाकी माताकै सौ पुत्र—या भांति उज्ज्वल अखंडकीर्ति दशूं दिशाविषैं व्यापती भई धरती आकाशविषैं देव तथा मनुष्य याहीके गुण गावैं ॥ २१ ॥ चक्रवर्त्तीका विभव केता? ऐसा प्रश्न राजा श्रेणिकनैं गौतमस्वामीसूं कीया तब गौतमस्वामी विभवका वर्णन करै हैं—॥ २२ ॥ झरै हैं मदजल जिनिकै ऐसे सुरगज सारिखे गज चौरासी लाख सुंदर हैं दांत जिनिकै ॥ २३ ॥ अर महामनोज्ञ रत्ननिके निरमापे चौरासी लाखही रथ, मन अर पवन समान शीघ्रगामी सूर्यके रथकी स्पर्द्धा करै वेग जिनिका ॥ २४ ॥ अर जलथल आकाश-विषैं गमन करनहारे अठारह कोडि तुरंग जिनिके खुरके अग्रभाग धोए हैं पवित्र गंगाजलकरि ॥ २५ ॥ अर चौरासी कोडि चक्रेश्वरके पयादे सुभटनिके मर्दनविषैं प्रसिद्ध है पुरुषार्थ जिनिका ॥ २६ ॥ अर वज्र-वृषभनाराचसंहनन वज्रमई हाड अर वज्रमई कील वज्रमई पलेटने ऐसे संहननकूं धरे प्रबल है शरीर नृपेंद्रका वज्रमई वाणनिकरि अभेद्य पृथ्वीपतिका शरीर होता भया ॥२७॥ अर समचतुरस्रसंस्थान शरीर सर्वांगसुंदर अति मनोहर जैसा चाहिए तैसा, इनि बडे पुरुषनिके प्रथम संस्थान अर प्रथम संहननही होय ॥ ८८ ॥ ताए सोनेसमान सुंदरवर्ण सत् समीचीन चौसठि लक्षण अर अनेक शुभव्यंजन तिनिकरि तन सहज सुंदर होता भया ॥ २९ ॥ अर शरीरका बल जेते षटखंडके राजा हैं तिनि सबनिका बल भेला करिए तातैं अत्यंत अधिक चक्रवर्त्तीका बल है ॥ ३० ॥ अर जाकी आज्ञा आसमुद्रपर्यंत महापरा-क्रमके धारक पृथ्वीपति सिरपरि धारैं कोऊ आज्ञा निवारि न सकै ॥ ३१ ॥ अर बत्तीस हजार महामुकुट-

नवसंगमविषैं उन्मत्त होता भया अर प्रारंभविषैं अतिरसिक होता भया अर अंतविषैं करुणारसकरि कायर होता भया ॥ ५५ ॥ या भांति मन्मथ दीसिताकूं प्राप्त भया संता नानाप्रकार चेष्टाकूं भजता भया, बाहुल्यताकरि इह पापी काम नाना रंग है याविषैं एक अवस्था नांही, कामी पुरुषनिकूं तौ इह मनोहर भासै है अर विरक्तपुरुषनिकूं महामलिन सुगावणा भासै है ॥ ५६ ॥ सो चक्रवर्त्ती इनि छिनिवै हजार राणीनि सहित मूर्तिवंत मन्मथ भया नानाप्रकार भोगनिकूं भोगवता सुखसूं रमता भया अभिलाषाकी पूर्ण करनहारी सकल है सामग्री जाकै। सो या प्रकार मनोरथकी सिद्धिके करणहारे चक्रवर्त्तीपदके भोग भूपेंद्र भजता भया ॥ ५७ ॥ वे चित्तकी हरणहारी तरुणी प्रेमकी भरी रतिके उच्छवकी लक्ष्मी मानूं याकै राजलक्ष्मीका मूलही होती भई ॥ ५८ ॥ अर बत्तीसहजार नाट्यशाला गीत नृत्य वादित्रके स्थानक जिनिमैं महा सुंदर भेषकूं धरैं नृत्यकारिणी अर नृत्यकारी नृत्य करैं गीत गावैं वादित्र बजावैं ॥५९॥ अर इंद्रके पुरकीसी शोभाकूं धरैं बहत्तर हजार नगर जिनिकरि मंडित इह मनुष्यलोक देवलोक समान सोहै ॥ ६० ॥ अर छिनिवै कोडि गांव जिनिके उपवन नंदनवनकी जीतनहारी जो शोभा ताहि धरैं ॥ ६१ ॥ जाकै च्यारि दरवाजे अर कोट खाई अर पडकोटा सो नगर कहिए जामैं चतुर्वर्ण बसै अर वाडिकरि मंडित सो गांव कहिए अर निन्याणवै हजार द्रोणमुख धन धान्य समृद्धिकरि भरे जो समुद्रके समीप बसैं सो द्रोणमुख कहिए ॥ ६२ ॥ अर जहां रत्ननिकी खानि सो पट्टण कहिए ते अडतालीस हजार जिनिविषैं बाजार समुद्रसारिखे प्रशंसायोग्य सोहैं ॥ ६३ ॥ नदी अर पहाडकरि वेष्टित पीछैं पहाड अर आगैं नदी सो खेट कहिए ते सोला हजार अतिरमणीक जिनिमैं कोट दरवाजे अटारी खाई पडकोट अतिशोभायमान ॥ ६४ ॥ अर छप्पन अतर्द्वीप ते अंतर्द्वीप समुद्रके मध्य अतिदुर्गम स्थानक ॥ ६५ ॥ अर पर्वतके ऊपरि बसैं सो संवाहन कहिए ते चौदहहजार, लोकानिके योग अर क्षेमकी विधिकूं धरैं ॥ ६६ ॥ अर जिनिमैं चावल आदि रांधिये ते रांधिवेके पात्र कोडि एक ॥ ६७ ॥ अर लाख कोडि हल घरके किसाणानि सहित

अर इनिका मुख रतिसुखरूप मंदिर ताका सुंदर द्वारही हैं अर इनिके अधर वैराग्य रस संगके मानूं मुखवंधन ही हैं ॥ ४५ ॥ अर इनिके नेत्रनिके विलास कर्णपर्यंत लक्ष्यताकूं प्राप्त भए मानूं कामके बाण ही हैं अर इनिकी भौंहरूप वल्लरीका विभ्रम जगतका जीतनहारा जो मदन ताके मानूं धनुष ही हैं ॥ ४६ ॥ अर इनिके ललाटका विस्तार मानूं कामरूप राजा महाक्रीडावान कंदुककी क्रीडाका करणहारा ताके रमिवेका स्थल ही है मानूं इह ललाट भोगरूप गेंदकी अवधि ही हे ॥ ४७ ॥ अर इनि रानीनिके अलकैं कामरूप कालेनागके वालक मानूं एकत्र हो रहे हैं अलकरूप वल्लरी लंवायमान अतिश्याम अतिस्निग्ध महासुगंध वक्रताकूं लीए अतिसघन अतिसूक्ष्म महामनोहर मानूं मदनरूप पारधीकी पांसि ही है ॥ ४८ ॥ या भांति छिनवे हजार रानी अतिसुंदर काममई सृष्टिकूं विस्तारती अंग अंग विषै रमणीक अपनी काम चेष्टाकरि राजेंद्रका मन मोहती भई ॥ ४९ ॥ तिनिके कोमल कर तिनिके स्पर्श करि प्रेमकी भरी अतिस्निग्ध विलोकनकरि अर इनिकी महामधुरमानकी अव्यक्त वाणी ताके श्रवणकरि चक्रवर्तीकूं अति अनुराग उपजावता भया ॥ ५० ॥ रतिरूप वृक्ष इनिकी मुलकानेविषैं कछुइक विकसता भया अर हंसिवे विषैं अत्यन्त विकसता भया अर आलिंगनविषैं फलता भया अर रसका भऱ्या सुरत तरु या प्रकार इनिकी चेष्टाविषैं रमणीक भासता भया ॥ ५१ ॥ गढके युद्ध समान युद्ध काम राजेन्द्रसूं करता भया इनिकी भौंहनिके उत्क्षेप सोई भए गोफियानिके पाषाण अर इनिके नेत्रनिके कटाक्ष तेई भए गिलोला तिनिके वाहिवेकार मदनरूप योधा महापतिसूं गढ वांधि लडता भया ॥ ५२ ॥ स्नेह हैं जाके गर्भविषैं असा प्रेमका भऱ्या मानरूप कोप ताविषैं काम कठोरताकूं भजता भया, मान छुडायवेविषैं मनायवेविषैं मदन मृदुताकूं भजता भया अर झूठे मानविषैं स्तब्धताकूं भजता भया अर स्नेहरूप मायाचारविषैं मदन मुग्धताकूं प्राप्त होता भया ॥ ५३ ॥ अर दृढालिंगनविषैं निर्दयताकूं भजता भया अर प्रतिपत्तिविषैं मूढताकूं भजता भया अर नाना प्रकार शृंगार चेष्टाविषैं मन्मथ प्रवीणताकूं प्राप्त होता भया ॥ ५४ ॥ संकलपविषैं आरोप्या है उत्कर्ष जानैं अर

सुवर्णका समूह उपजै जेता सुवर्ण चाहिए तेताही तैयार सो शंखनामा निधि उछलती जे सुवर्ण कांति तिनिथकी सूर्यकी कांतिकूं जीती है ॥८१॥ अर नवमी सर्वरत्ननामा निधि ताथकी इंद्रनीलमणि वैडूर्यमणि स्फटिकमणि वज्रमणि इत्यादि सर्वरत्न प्रगट होंय जेते रत्न चाहिए तेते तैयार मणिनिकी कांतिकरि रच्या है इंद्रधनुष जहां ॥८२॥ ए नवनिधि चक्रेश्वरके कल्पवृक्ष समान हैं अर रत्न चौदह तिनिमैं सात चेतन अर सात अचेतन पृथ्वीकी रक्षा अर भोगके साधन है।८३। सात अचेतन रत्ननिके नाम—चक्र छत्र दंड खड्ग मणि चर्म काकिणी अर सात चेतन रत्न तिनिके नाम—सेनापति गृहपति पुरोहित सिलावट अश्व गज अर पटरानी ए चौदह रत्न ॥ ८४ ॥ तिनिमैं चक्र दंड खड्ग अर छत्र ए तौ आयुधशालामैं उपजैं अर मणि चर्म काकिणी ए श्रीगृहविषैं उपजैं ॥ ८५ ॥ अर स्त्री रत्न तथा गज तुरंग ए विजयार्द्ध गिरिविषैं उपजैं अर सेनापति गृहपति सिलापट अर पुरोहित ए अयोध्याविषै उपजैं ॥ ८६ ॥ नव निधि अर चौदह रत्न इनिके गुण कौन वर्णन करि सकै ? जिनिकरि चक्रवर्तीका हृदय अतिप्रसन्न आनंदरूप प्रतापरूप होता भया ॥ ८७ ॥ चक्रवर्तीकै छिनिवै हजार रानी पूर्वै कहीं तिनिमैं पट्टरानी स्त्री रत्न तासहित पृथ्वीका नाथ पंच इंद्रियनिके उचित भोग भोगवता भया, छहू ऋतुके इष्ट भोग चक्रवर्तीके सो और राजानिकै नांही, चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुखसंपदाका निधान है ॥ ८८ ॥ राजानिके इंद्रके वह स्त्री रत्न सुभद्रा नामा महामनोहर जाकै रोगादि बाधा नांही प्रकृतिही करि कल्याणकी मूर्त्ति सदामंगलाचाररूप विद्याधरनिके वंशविषैं उपजी सकलविद्याविषैं प्रवीण ॥ ८९ ॥ सिरसके फूलसमान कोमल है अंग जाका अर चंपाके पुष्पसमान छवि जाकी अर चौंसलीके पुष्पसमान सुगंध श्वास जाकै अर किंचित् अरुणताकूं धरे सुंदर हैं अधर जाके ॥ ९० ॥ अर फूले कमलसमान सौम्य है वदन जाका अर नीलकमलके दलसमान नेत्र जाके अर महारमणीक मदनके धनुपसमान भौंह जाकी अर भंवरनिके समूह समान श्याम महास्निग्ध वक्रताकूं धरे कोमल केश जाके ॥९१॥ अर अतिसुंदर महाक्षीण कटि जाकी अर श्रेष्ठ है नितंब जाके अर कठोर स्तन जाके अर कोमल

जिनिका निरंतर धरती वाहिवेका नियोग ॥ ६८ ॥ अर तीन गायानिके स्थानक निरंतर गायानिसूं भरे जहां दही विलोवणके शब्दकरि क्षणेक पंखी खडे होय रहैं ॥ ६९ ॥ अर रत्ननिके क्रय विक्रयके स्थानक ते कुक्षिनिवास सो सातसै पंडितानि कहे जहां म्लेच्छखंडके व्यापारी वसैं ॥ ७० ॥ अर अठाईस हजार विषम वनी तिनिकी गहनता कथनमैं न आवै, मरुस्थलसमान विषम ॥ ७१ ॥ अर अठारह हजार म्लेच्छ राजानिके क्षेत्र रत्ननिकी खानि तहांके रत्न रत्ननिके क्रय विक्रय स्थानकमैं आय विकैं ।७२। अर नव निधिके नाम सुनहु—काल महाकाल नैसर्प पांडुक पद्म पिंगल माणव शंख अर सर्वरत्न ए नवनिधि चक्रवर्तीके होती भई जिनिकरि गृहवार्ताविषैं निश्चित होता भया ॥७३-७४॥ या पुण्याधिकारीके पहली कालनामा निधि जातै व्याकरणादि लौकिक अनेक शास्त्रनिकी उत्पत्ति, भावार्थ—व्याकरण नाममाला छंद अलंकार तर्क शृंगारादि लौकिक शास्त्रनिके पुस्तक जो चाहिए सो निकसै ॥ ७५ ॥ अर याही कालनिधितैं मनोज्ञ वीण वांसुरी मृदंग ढोल नगारे आदि अनेक वादित्र निकसैं ॥ ७६ ॥ अर दूजी महाकालनामा निधि तातैं असि कहिए खड्ग, असि कहिए स्याही, कृषि कहिए खेती, वाणिज्य कहिए व्यापार, शिल्प कहिए सिलावट आदि अनेक कर्म अर पशुपालन तिनिकी साधनकी वस्तु निरंतर निकसैं, भावार्थ षट्कर्मके साधनकी सकल सामग्री महाकाल निधिथकी विस्तरै ॥ ७७ ॥ अर तीजी नैसर्पनामा निधि ताथकी शय्या आसन आदि सकल वस्तु पाइये अर चौथी पांडुकनामा निधि ताथकी तंडुल गोधूम यव मुद्गादि सकल धान्यकी उत्पत्ति होय अर याही निधितैं षटरसकी उत्पत्ति होय ॥ ७८ ॥ अर पांचम पद्मनामा निधि ताथकी रेशमी रोमी सूतरू इत्यादि सकल वस्त्रनिकी उत्पत्ति इह पद्मनामा निधि मानूं पद्म जो लक्ष्मी ताका स्थानही है ॥ ७९ ॥ अर छठी पिंगलनामा निधि ताथकी जेती जातिके आभरण हैं स्त्रीनिके अर पुरुषनिके तिनि सबनिकी उत्पत्ति अर सातवीं माणवनामा निधि ताथकी राजनीतिके शास्त्र अर खड्ग कटारी छुरी धनुष वाण बरछी आदि सकल शस्त्रनिकी उत्पत्ति ॥८०॥ अर आठमी दक्षिणावर्त शंखनामा निधि ताथकी

अवस्था देखिवेकी है इच्छा जाकै, ते दश अवस्था कौन—चिंता, देखिवेकी इच्छा, निःश्वास, ज्वर, दाह, अरुचि, मूर्च्छा, उन्मत्तता, प्राणसंदेह अर प्राणत्याग ए दश ॥ १०४ ॥ अर दोऊ नेत्रनिके मध्य नासिका मुखके सन्मुख कैसी सोहती भई मानूं कौतूहलतैं मुखकी सुगंधताके सूंघनेका यत्न कीया है ॥ १०५ ॥ ताके दोऊ नेत्र कानननिकूं श्रोताकरि परस्पर विभ्रमकरि स्पर्द्धा करते सोहै हैं मानूं कामरूप सेनापतिके वाणही हैं ॥ ६ ॥ वह चकोरनेत्र ताके ललाटविषैं अद्भुत क्रांति होती भई, सोहै हैं अलक जाकै समीप मानूं सुवर्णके पट्टसूं लागि रहे लंवायमान नीलकमलही हैं ॥ ७ ॥ अर चोटीका प्रबंध अतिमनोहर गूथ्या महाश्याम केशपाशकूं धरे सोहता भया। मैं ऐसा मानूं हूं—कामकी पासिही फैलि रही है ॥ ८ ॥ या भांति याका रूप तीन जगतका जीतनहारा अतिसुंदरताका धरणहारा जानिकरि अनंग जो काम है सो याके अंगविषैं स्थानक करता भया ॥ १०९ ॥ ताके रूपके अवलोकनविषैं अनुरागरूप हैं नेत्र जाकै अर ताके गात्रके स्पर्शविषैं है अभिलाषा जाकी ऐसा पृथ्वीपति याके मुखकी सुगंधता सूंघता बारंबार मुखके रसका आस्वादन करता ॥ ११० ॥ ताके मधुरशब्द श्रवण करता ताके गानविषैं आसक्त हैं कर्ण जाके या भांति आसक्त भया ताके गात्ररूप मनोहरवनविषैं भूपेंद्र सुखसूं रमता भया ॥ १११ ॥ या सुभद्राके स्पर्श गंध रूप शब्दादिक कामके तीव्र पंच बाण हैं अर कामके पुष्पवाण कहिए है सो लौकिक कहावत है ॥ ११२ ॥ लोक कामका धनुष पुष्पमई कहै हैं सो वृथा है—स्त्रीनिका अति सुकुमार तन सोही कामधनुष है ॥ ११३ ॥ अर लोक कामके पंच बाण शोषण संतापन उच्चाटन वशीकरण मोहन वृथा कहै हैं, सुंदर स्त्रीनिकी जैती मनोहर चेष्टा ते सब कामोद्दीपन शस्त्र ही हैं ॥ ११४ ॥ मुलकनि, अवलोकन, हास्य, बतरावन, मदकरि प्रकट भाषण एही कामके अंग हैं अर और कामके अंग पोपै हैं सो कपट है ॥ ११५ ॥ शीत ऋतुके आगमविषैं सुभद्राके कुच यौवन अवस्था ताकरि उष्ण सो चक्रवर्तीके अंगविषैं शीतकरि उत्पन्न जे रोमांच तिनिकूं हरते भए

७०२

है बाहु जाकी मानूं इह सुभद्रा भरतकी पटरानी कामरूप अग्निके उपजायवेकूं अरण्यांकी लकडीही है ॥ ९२ ॥ अर ताके चरण नूपुरनिके मनोहर शब्द तिनिकरि वाचाल मानूं मदनरूप मतंगजके जीतिके वादित्रही हैं॥९३॥ काम जो है सो ताकी जंघारूप निसैणीकरि ऊरूरूप द्वारकरि बसिवेके घरकी बुद्धिकरि नितंबविषैं निवास करता भया ॥ ९४ ॥ कामरूप काला नाग बंबीतैं निकसिकरि रोमावलीके छलकरि मानूं याके कुचरूप करंडविषैं प्रवेश करता भया ॥ ९५ ॥ अर कामरूप सर्पकी कांचुरीसमान जो कंचुकी वस्त्र महारमणीक ताहि वह धरे अति सोहती भई अर कामरूप भुजंगके तृप्त करिवे अर्थि वह एकावलीरूप भुजंगनीकूं धारती भई ॥ ९६ ॥ अर मोतीनिके हारकी लता कंठविषैं लग्न नाभिपर्यंत लंबायमान ताहि धारती भई मानूं मदनकी गूंथी मंत्ररक्षाही है ॥ ९७ ॥ अर हारकरि शोभित कुचमंडल तिनिकूं धारती वह महाशोभाकूं प्राप्त होती भई मानूं सीतानामा नदी यमकाचलकूं स्पर्शती प्रवाहरूप वहै है, भावार्थ— मानूं हारकी लडी तौ सीतानामा नदी भई अर दोऊ कुच यमकाचल भए तिनिके वीचि प्रवाहरूप वहै है ॥ ९८ ॥ अर ताके बाहुयुगल काम महापांसिके जीतनहारे महाशोभाकूं धारते भए मानूं कामरूप कल्पवृक्षके अंकुरही हैं, देदीप्यमान आभूषणनिकरि युक्त ॥ ९९ ॥ अर ताके करतल सूक्ष्मरेखानिकरि मंडित सोहते भए मानूं और स्त्रीनिके जीतिवेकरि उपजी जो जयरेखा ताहि धरैं हैं, भावार्थ—मनुष्यणीमैं यासमान रूप नांही सो सब स्त्रीनिकूं जीतिकरि जय रेखाकूं धरै है ॥ १०० ॥ अर याका मुख भौंहनिकी वक्रता अर नेत्रनिकी चंचल कटाक्षकूं धरता सोहता भया मानूं धनुषबाणसहित कामकी आयुधशालाही है ॥ १०१ ॥ याका वदन अपनी शोभाकरि चंद्रमाकी क्रांतिकूं जीति भौंहरूप ध्वजा खडी करता भया अर काननिमैं कर्णपूर हैं ते मानूं जयपत्रही हैं ॥ १०२ ॥ ताके कर्ण कर्णाभरणकरि मंडित शोभाकूं धारते भए मानूं देवांगनानिके जीतिबे अर्थि कीया है पत्रका अवलंबन जिनि ॥ १०३ ॥ अर कपोल महामनोहर दर्पणकी शोभाकूं धारते भए मानूं ए कपोल कानके दर्पणही हैं, कैसा है काम—अपनी दश प्रकार

भुजानिकरि प्रियाकूं उरसूं लगाय दृढ आलिंगनकरि शरीरकूं सुख उपजावता भया, कैसी है प्रिया— महासुगंध द्रव्यके द्रवकरि लिप्त है अंगरूप लता जाकी ॥ १२७ ॥ वह भूपेंद्र अपने अंगके स्पर्शका सुख सोई भया शीतल जल ताकरि प्राणप्रियाकूं तापतैं रहित करता भया, मदनज्वरके तापकरि तप्तायमान है अंग जाका सो महातीव्र जो ग्रीष्मकी ऊष्मा ताहि नांही सहि सकै है ॥ २८ ॥ फूली जे मालती ताकी सुगंधकूं खैंचनहारी जो सांझ सकारेकी शीतल मंद सुगंध पवन ताकरि हर्षकूं प्राप्त होता भया ॥ २९ ॥ सो भूपनिका भूप प्रेमतैं प्रियाका आलिंगनकरि ग्रीष्मकी रात व्यतीत करता भया सो प्रिया फूली जो पाटल अर महासुगंध मालती ताकी माला धरे महारमणीक है ॥ ३० ॥ अर वर्षाकालविषैं वह पटरानी मेहकी गर्जनाके मिसकरि मानूं मदननैं डराई सो अपनी भुजानितैं कंतसूं लिपटिकरि शयन करती भई ॥ ३१ ॥ वर्षाकालविषैं नवीनजलके मलिन प्रवाह अर मदोन्मत्त मयूरनिकी ध्वनि अर कदंबनिकी सुगंध पवन सो कामी जीवनिकूं अनुराग उपजावती भई ॥ ३२ ॥ या वर्षाऋतुविषैं पथिक जन मेघकी माला देखते थके अश्रुपातकरि दिशानिकूं अंधकाररूप मानते भए, कैसी है मेघमाला—आरूढ है श्यामता जाविषैं अर बुगलानिकी पंक्ति सोही भई माला ताहि धरै है ॥ ३३ ॥ पथिकरूप जे मृग तिनिके रोकिबे अर्थि मानूं कामरूप पारधीने मेहकी धारारूप रस्सीनिकरि गूंथि पांसिही फैलाय राखी है ॥ ३४ ॥ कोइक विरहिणी नायिका जिनिके नायक विदेश गए हैं अर आयबेकी अवधिकरि गए हुते सो न आए अर वर्षाका आगम भया सो मेघमालाकूं देखिकरि कामिनी शून्यहृदय होती भई ॥ ३५ ॥ वर्षाऋतुविषैं केतकी फूली सो मानूं सूईसमान विरहीनिका उर भेदती भई अर पवन केतकीकी मकरंदरूप रज बखेरती भई सो मानूं पंथीनिकी दृष्टि रोकिबे अर्थि धूलिही डारै है ॥ ३६ ॥ या भांति मेघऋतुका समय निकट आया, फैलि रही है काली घटा आकाशविषैं तासमैं सो भरतक्षेत्रका भूप महामनोहर सुगंधमंदिर विषैं प्रियाकूं अत्यंत रमावता भया ॥१३७॥ सो मनुष्यनिका इंद्र वर्षाकी रात ताके स्तनरूप गिरिके तट

॥ ११६ ॥ अर वह सुभद्रा उष्णताकी हरणहारी जो हिमऋतुकी पवन ताकरि कुचनिका जो कंपन ताहि वल्लभके करतलकूं स्पर्शकरि निवारती भई, पतिके अंक विषै है शयन जाका ॥ ११७ ॥ अर वसंत ऋतु विषैं अशोककी कलिका सहित जो आम्रकी मंजरी ताहि कर्णविषैं धरे अर चंपाके फूल गूंथे हैं केशनिमैं तिनिकरि चोटी बांधती अति सोहती भई ॥ ११८ ॥ वसंत ऋतुविषैं महामनोहर मदनके उपजावनहारे रस तिनिकरि आरक्त हैं लोचन जाके अर डिगती है चाल जाकी ताहि प्रीतम अतिअनुरागकरि रमावता भया। कैसी है वो कांता—मानूं मूर्तिवंत वसंत लक्ष्मी ही है ॥११९॥ महामधुर जे भंवरनिकै गुंजार कोयलनिके मधुर शब्दसूं मिले तिनिकरि मानूं वसंतसमय हर्षकरि पृथ्वीपतिकी स्तुति करता भया ॥ १२० ॥ कोकिलानिके मिष्ट शब्द भंवरनिके गुंजारकरि मिले तेई भए वादित्र सो कामके वोडेका आगम प्रकट करते भए ॥ १२१ ॥ फूले जे आमनिके वन तिनिकी सुगंधता अर फूले कमलनिके वन तिनिकरि दशूं दिशाकूं सुगंध करता पवन वसंतसमय विस्तारता भया ॥ २२ ॥ महामनोहर जे भंवरनिके समूहके गुंजार तिनिकरि युक्त मलयागिरिकी पवन सो कामरूप राजाकी आज्ञा जगतविषैं प्रगट करती भई ॥ २३ ॥ चंद्रमाकी कला संध्याविषैं अरुण तिनिकूं लोक मदनरूप राक्षसकी डाढही मानता भया सो मदनरूप जगतका भक्षक है अर वाकी डाढ महाविकराल है अर रक्तकरि लिप्त है ॥ २४ ॥ उन्मत्त भए हैं कोकिला जाविषैं अर उन्मत्त भए हैं भंवर जाविषैं ऐसा वसंत समय ताविषैं जे कामके शत्रु मुनिराज हैं तिनि टारि वह कौन है जो उन्मत्त न भया? सबही उन्मत्त भए हैं, भावार्थ— मुनि निर्विकार हैं तिनिकै उन्मत्तता न उपजी और सब लोक उन्मत्त भया ॥ १२५ ॥ अर ग्रीष्मऋतु विषैं वह पटरानी मदनके तापकरि तप्तायमान जो पतिका अंग ताहि अपने अंगकरि महाशीतल करती भई, पटरानीका अंग संध्यासमय जलमैं प्रवेश करै ताहूतैं अधिक शीतल है ॥ २६ ॥ चंदन चंद्रमा कर्पूर हिम मुक्ताफल उशीर इत्यादि शीतल वस्तु तिनि सबनितैं अधिक शीतल है सो राजानिका राजा अपनी

१५१ ॥ अर वसुधारकनामा अटूट कोठार अर जीमूतनामा महासुंदर स्नान करिवेका स्थानक ॥ १५२ ॥ अर अवतंसिकानामा रत्नमाला अति देदीप्यमान अर देवरम्यानामा अतिमनोज्ञ वस्त्रका गृह विस्तीर्ण ॥ ५३ ॥ अर सिंहवाहिनीनामा सेज जाके च्यारू पायानिके महाभयानक रत्नमई सिंहनिकी मूर्त्ति अर अनुत्तरनामा सिंहासन ॥ ५४ ॥ अर अनुपमनामा चंवर जिनिकूं उपमा देवेकूं और वस्तु नांही ते चंवर विजयार्द्धदेवने निधिपतिकी भेट कीए ॥ ५५ ॥ अर सूर्यप्रभनामा छत्र अमोलिकरत्ननिकरि निरमाप्या, जीती है सैकडा सूर्यकी प्रभा जानें ॥ ५६ ॥ अर विद्युत्प्रभानामा महामनोज्ञ मणिनिके कुंडल विजुलीकी ज्योतिकूं जीतिकरि सोहते भए अतिदेदीप्यमान है क्रांति जिनिकी ॥ ५७ ॥ अर विषमोचिकानामा पावरी रत्ननिकी किरणनिकरि जटित चक्रवर्त्तीके चरणारविंदके स्पर्शतैं परप्राणीनिका दारुणविष हरैं अर और कोऊ जिनिकूं पहिरबे समर्थ नांही ॥ ५ ॥ अर अभेद्यनामा देदीप्यमान बगतर जो महारणविषैं वैरीनिके वाणनिकरि अभेद्य ॥ ५९ ॥ अर अजितंजय नामा रथ जयलक्ष्मीकूं धरैं जाविषैं दिव्य शस्त्र जीतिके कारण अनेक ॥ ६० ॥ अर देव दैत्यनिका जीतनहारा वज्रकांडनामा धनुष महाप्रचंड वज्रपातके समान है शब्द जाका ॥ ६१ ॥ अर अमोघनामा बाण वृथा नांही है प्रहार जिनिका, जिनिकरि चक्री असाध्य रणविषैं रणसंग्रामविषैं प्रशंसायोग्य होता भया ॥ ६२ ॥ अर सत्रुनिकी खंडनहारी वज्रतुंडा नामा प्रचंडशक्ति वज्रमणिकी निरमापी सो वज्रीहूके जीतिवेविषैं प्रशंसायोग्य ॥ ६३ ॥ अर सिंहाटकनामा बरछी तीक्ष्ण है अग्रभाग जाका मणिमई दंडकरि शोभित सिंहनिके नखनिहूतैं अतितीक्ष्ण ॥ ६४ ॥ अर जाकै लोकवाहिनीनामा छुरी महादेदीप्यमान रत्ननिकरि मंडित है मूंठि जाकी मानूं जीतिकी लक्ष्मीका स्वरूपही है ॥१६५॥ अर कणवनामा आयुध जीतिकी लक्ष्मीसूं स्नेह करणहारा वैरीनिके वर्ग तेई भए पहाड तिनिके चूरिवेकूं वज्रसमान मनोवेग है नाम जाका ॥१६६॥ अर सुनंदानामा खड्गरत्न देदीप्यमान है ज्योत्स्ना जाकी जाहि हाथमैं लीए जगतके

ताके मुखके सुगंध श्वास आघ्राण करता पूर्ण करता भया, कैसा है मुखका श्वास—खैंच्या है कमलनिका सुगंध जानैं ॥ ३८ ॥ अर वह धराका धनी शरदऋतुके आरंभविषैं स्त्रीसहित वनविषैं विहार करता रमता भया सो वन नवीन फूल्या सप्तच्छद ताकरि महासुगंध है ॥ ३९ ॥ शरदकी चांदिनीकी शोभा विस्तारता मनोहर मंदिरका उच्चस्थल ताविषैं कांताकूं रमावता भया, मोतिनिके हार तिनिकी चांदिनी-करि शोभित हैं स्तन जाके ॥ १४० ॥ पतिके उरविषैं तिष्ठती माला ताहि वह पटरानी अनुरागसूं आघ्राण करती भई सो माला कमलनिसूं युक्त कुब्जकके पुष्प तिनिकरि गूंथी लंबायमान अतिशोभायमान महा सुगंधकी भरी चक्रवर्त्तीके उरकी माला, ताका कहा वर्णन करिए? ॥ १४१ ॥ सो पृथ्वीका नाथ या पट-रानीविषैं स्नेहके आधीन भया सरागभावकी उत्कर्षता विस्तारता भोगनिके कारण दश प्रकार तिनिकरि रतिक्रीडाविषैं कौतूहली इंद्रकी नांई रमता भया ॥ ४२ ॥ दशप्रकार भोगके कारण कहे ते कौन? रत्न निधि रानी नगर सेज आसन सेना नाट्य भोजन भाजन वाहन ॥ ४३ ॥ ए दशप्रकारके भोगके कारण हर्षके उपजावनहारे तिनिकूं भोगवतासंता पृथ्वीका इकछत्र राज करता संता चिरकाल प्रजाकूं पालता भया ॥ ४४ ॥ सोलह हजार गणबद्ध देव तीक्ष्ण आयुधनिकूं धरे याके शरीरकी रक्षा करैं अर निधि रत्ननिकी रक्षा करैं ॥ ४५ ॥ अर क्षितिसारनामा महल कोट अर सर्वतोभद्रनामा राजद्वार देदीप्यमान हैं रत्ननिके तोरण जाके ॥ ४६ ॥ अर नंद्यावर्त्तनामा अतिविस्ताररूप कटकका क्षेत्र जहां चक्रवर्त्तीके डेरे खडे होंहि अर छहूं ऋतुके सुखका उपजावनहारा वैजयंतनामा महल ॥ ४७ ॥ अर दिक्स्वस्तिका-नामा सभाविलास अमोलिक मणिनिकी है रचना जहां अर महामणिनिकी निरमापी सुविधिनामा लाठी ॥ १४८ ॥ अर गिरिकूटकनामा दिशावलोकनमंदिर अर वर्द्धमानकनामा नृत्य देखिवेका अर घमांतिकनामा धारागृह ग्रीष्मसमय मध्याह्नमें रहिवेका निवास अर गृहकूटक-नामा वर्षाऋतुका निवास ॥ १५० ॥ अर पुष्करावर्त्तनामा चांदिनीका महल अर कुबेरकांतनामा

जिनिके शब्द सुनि मोर ऊंची नाडि करै जानें मेह गाज्या ॥ १८३ ॥ अर गंभीरावर्त नामा चौवीसशंख गंभीर हैं शब्द जिनिके महामनोहर पुण्यरूप समुद्रके उपजे ॥ १८४ ॥ अर रत्ननिकरि निरमापे वीरां-गदनामा कडे सोहते भए मानूं बिजुरीके वलयके विभ्रमकूंही धरै हैं ॥ १८५ ॥ अर अडतालीस कोडि पताका पवनकरि हालै हैं वस्त्र जिनिके तिनिकरि आकाशके अंगणकूं बुहाऱ्या है ॥ १८६ ॥ अर महाक-ल्याणकनामा दिव्य भोजन जाकरि याके कल्याण अंगविषैं तृप्ति पुष्टि बल विस्तारता भया ॥ १८७ ॥ अर अमृतगर्भनामा भक्ष्य महारुचिकारी अतिसुगंध अतिस्वादुरूप जाहि पचायवेकूं और पुरुष समर्थ नांही अतिगरिष्ठ उत्कृष्टरसकरि भऱ्या ॥ १८८ ॥ अर अमृतकल्पनामा स्वाद्य कहिए तांबूलादिक सो महामनोज्ञ स्वादकरि युक्त अर अमृतनामा पानक पीवेकी वस्तु सो अमृतरसहूतैं अधिक ॥ १८९ ॥ चक्रवर्त्तीके ए पुण्यरूप कल्पवृक्षके फल होते भए जे भोगके कारण अतुल्य औरके भोगिबेमैं न आवैं ॥ १९० ॥ पुण्य बिना कहां इह अनुपमरूपकी संपदा ? अर पुण्यबिना कहां ऐसा अभेद्य शरीरका बंधन ? ॥ १९१ ॥ अर पुण्यबिना कहां ऐसी रत्नरूप ऋद्धि अर पुण्यबिना कहां ऐसा गजतुरंगादि परिकर ? ॥ १९२ ॥ अर पुण्यबिना कहां ऐसा महाउदयरूप राजलोक ? अर पुण्यबिना कहां ऐसी दशांगभोगकी उत्पत्ति ? ॥ १९३ ॥ अर पुण्यबिना कहां ऐसी द्वीप समुद्रकी लंघनहारी आज्ञा ? अर पुण्यबिना कहां दशूं दिशाकी जीतनहारी लक्ष्मी ? ॥ १९४ ॥ अर पुण्यबिना कहां ऐसा प्रताप ? नमस्कार करै हैं देव जाकूं अर पुण्य-बिना कहां ऐसा उद्यम समुद्रका लंघनहारा ? ॥ १९५ ॥ अर पुण्यबिना कहां ऐसा प्रभाव तीन जगत-विषैं यशका विस्तारण हारा अर पुण्यबिना कहां ऐसा हिमवानगिरिके जीतिबेका उद्यमी ॥ १९६ ॥ अर पुण्यबिनां कहां ऐसा हिमवानदेवकरि कीया अत्यंत उच्छव ? अर पुण्यबिना कहां ऐसा गंगा सिंधु-देवीनिकरि कीया राज्याभिषेक ? ॥ १९७ ॥ अर पुण्यबिना कहां विजयार्द्धगिरिका जीतनां अर पुण्य-बिना कहां ऐसा दुर्लभ रत्ननिका लाभ ? ॥ १९८ ॥ अर पुण्यबिना कहां ऐसा धनका आगम जाकै

दुष्ट जन जीवनेके संशयरूप हिंडोरेविषैं आरूढ होय ॥ १६७ ॥ अर भूतमुखनामा खेट आयुध सो देदीप्यमान रणसंग्रामविषैं वैरीनिकूं मृत्युके मुख समान भयानक ॥ ६८ ॥ अर सुदर्शननामा चक्ररत्न दशूं दिशाके दाबिबेकूं समर्थ भयानक है वैरीनिकूं विलोकन जाका ॥ ६९ ॥ अर चंडवेगनामा महाप्रचंड चंडरत्न निश्चयसेती कंटक निवारिवेका है नियोग जाकै ॥ ७० ॥ अर वज्रमयनामा महामनोज्ञ चर्मरत्न जाके बलतैं चक्रीका कंटक जलके उपद्रवतैं वच्या ॥ ७१ ॥ अर चूडामणिनामा चिंतामणि यह जगतका चूडामणि ताके चित्तका हर्षित करणहारा होता भया ॥ ७२ ॥ अर महादेदीप्यमान चिंतामणि नामा काकिणी रत्न होता भया जो वैताढ्यकी गुफाके अंधकार निवारिवेकूं दीपिका समान ॥ ७३ ॥ अर पृथ्वीपतिके अयोध्यनामा सेनापति रत्न जाका यश रणविषैं अरिनिके जीतिवेतैं धरती आकाशविषैं व्याप्त है ॥ ७४ ॥ अर बुद्धिसागरनामा पुरोहितरत्न महाबुद्धिवान धर्मक्रियाविषैं जाका अधिकार अर देवनिके जीतिबेके उपायविषैं तत्पर ॥ ७५ ॥ अर महासुबुद्धि कामवृष्टिनामा गृहपतिरत्न मनवंछित दानका दायक सो चक्रवर्तीनैं व्यय कहिए खर्च अर उपचय कहिए जमा ताकी चिंताविषैं अधिकारी कीया ॥ ७६ ॥ अर भद्रमुखनामा सिलावटरत्न अनेक मंदिरनिकी रचनाविषैं प्रवीण शिल्पशास्त्रका पारगामी तत्काल मनवंछित महल वणाय ले ॥ ७७ ॥ अर विजयपर्वतनामा पाटहस्ती झरै है मद जाकै सो भद्रजाति उज्ज्वलवर्ण सुंदर हैं शब्द जाके अर गिरिसमान उत्तुंग ॥ ७८ ॥ अर पवनंजयनामा अश्वरत्न पर्वतहूके वेगकूं जीतै जो लीलामात्रमैं विजयार्द्धकी गुफाके द्वारकूं उघाटि तत्काल पाछा आवता भया ॥ ७९ ॥ अर पहला जाका वर्णनकरि आए वह सुभद्रानामा स्त्रीरत्न मधुरस्वभाव महामनोहर मानूं अद्वितीय रसायनही है ॥ १८० ॥ ए महामनोज्ञ रत्न चक्रवर्तीके होते भये देवनिकरि करी है रक्षा जिनिकी जे वैरीनिकरि अलंघ्य ॥ १८१ ॥ अर समुद्रसारिखा है शब्द जितिका ऐसी आनंदिनीनामा द्वादश भेरी बारह योजनमैं पूरि रही है ध्वनि जिनिकी ॥ १८२ ॥ अर विजयघोषनामा बारह ढोल

आ.. थ न लें, सुबुद्धि जाके चरणारविंदका आराधनकरि बहुरि काहूका आराधन न करैं ॥ २०५ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतेश्वराभ्युदयवर्णन नाम सैंतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३७ ॥

अथ अड़तीसवां पर्व।

अथानंतर सर्वभाषारूप वीतरागदेवकी वाणी जयवंत होहु जो वाणी सूर्यकी किरण समान अंधकारकी दूर करणहारी महादेदीप्यमान है ॥ १ ॥ सो जयवंत होहु वृषभनाथ जाकी विद्या मोहविषकरि सूता इह जगत ताहि गारुडी विद्याकी नांई तत्काल विष रहित करि सचेत करती भई ॥ २ ॥ सो परम ज्योतिरूप वृषभ ताहि नमस्कारकरि बहुरि महावीर स्वामीकूं नमस्कारकरि विप्रनिकी उत्पत्ति कहूंहूं, हे श्रेणिक ! तू सुनि, ऐसा गौतम स्वामी कहते भये ॥ ३ ॥ भरतचक्रवर्त्ती अनेक राजनिसहित साठि हजार वर्षमें सकल भरतक्षेत्रकूं जीति करि पाछा निजपुरी आया ॥ ४ ॥ करिबे योग्य सब काम करि चुक्या तब उरमें ऐसी चिंता उपजी जो हमारी संपदा परकै अर्थि होय कैसे सफल होय ? ॥ ५ ॥ मैं महाउदयरूप जिनेंद्रदेवकी महापूजाकरि समस्त जगतकूं अपने धनकरि पोषूं, अपना धन सकलकूं द्यूं ॥ ६ ॥ मुनिराज तौ महानिःस्पृह सो हमारा धनका ग्रहण न करैं तातैं व्रती श्रावक धनधान्यसमृद्धि करि पूजनें ॥ ७ ॥ जे अणुव्रतके धारणहारे गृहस्थनिमैं धोरी हैं ते मनवंछित वस्तुकरि तृप्ति करने ॥ ८ ॥ ऐसा निश्चयकरि वह राजनिका राजा उत्तम श्रावकनिके परिखिवे अर्थि सकल राजनिकूं भोजन निमित्त न्योतता भया ॥ ८ ॥ इह आज्ञा करी आजि हमारे उत्सव है सो सबही राजा अपने सदाचारी वल्लभ सेवकनि सहित भोजनके अर्थि आवहू ॥ १० ॥ इह आज्ञाकरि व्रतीनिकी परीक्षा निमित्त हरित अंकुर अर पुष्पफलनिकरि अंगण आच्छादित करता भया ॥ ११ ॥ तिनिमैं जे अव्रती हुते ते ते बिना विचारे नृपमंदिरमें पैठि आए हरितकायकी दया न करी तिनिकूं चक्रवर्त्ती मंदिर बाहरि काढि दिये अर जे

सकल भरतक्षेत्रका हासिल आवै अर पुण्यविना कहां ऐसी कीर्ति दशूं दिशाकी लंघनहारी ॥ १९९ ॥ तातैं पुण्यके उदयकरि उपजी इह चक्रवर्त्तिपदकी लक्ष्मी जानिकरि हो पंडित हो! पुण्यकूं उपार्जौ जो पुण्य सुखसंपदाकी हाटि है ॥ २०० ॥ या भांति प्रगटभई है संपदा जाकै सो समस्त राजनिका जीतनहारा अपनी अखंड आज्ञा पृथ्वीविषैं विस्तारता भया जापरि काहूकी आज्ञा नांही ऐसा इकछत्र छहखंड पृथ्वीका राज्य करता बहुत काल एक क्षणकी नांई व्यतीत करता भया, पूर्वले पुण्यकर्मके उदयकरि उपजे आनंदके उपजावनहारे छहूं ऋतुके अतिसुंदर भोग तिनिकरि बहुत काल व्यतीत होता न जान्या ॥ २०१ ॥ नाना प्रकारके रत्न निधि देश तिनिकरि विलासरूप ऐसी इह चक्रवर्त्तिपदकी लक्ष्मी ताका एक भोक्ता होयकरि या पृथ्वीकूं पालता इकछत्र राज करता भया जैसैं समीप तिष्ठती एक कुलवधू ताहि भोगवता पति व्याकुल न होय तैसे समस्त पृथ्वीकूं भोगता व्याकुल न भया ॥ २०२ ॥ जाके नामकरि षट्खंड पृथ्वी भरतक्षेत्रकी भूमि ऐसा नाम पावती भई अर जाकी रक्षाकरि दक्षिणसमुद्रसूं लेकरि हिमवानगिरि पर्यंत इह क्षेत्र सुखरूप भया जाकै मुख्य लक्ष्मी निधि रत्न संपदारूप्र वक्षःस्थलविषैं निवास करती भई सो शोभायमान भरतेश्वर नवनिधिके धारकनिमें अग्रेसर पृथ्वीका पति होता भया ॥ २०३ ॥ जा प्रभुकी भक्तिके प्रसादतैं भरतभूप ऐसा भया सो प्रभु अविनाशी लक्ष्मीका नाथ तीन जगतका गुरु देवाधिदेव परमपवित्र सकलमैं आदि ऋषभनाथ जयवंत होहु जो तीन जगतके जीवनिकरि स्तुति करिबे योग्य है अर आप काहूकी स्तुति करै नांही योगीश्वरनिकरि ध्यायबे योग्य है आप काहूका ध्यान करै नांही अर नमस्कार करणहारे तिनिकूं उच्चपद देवै समर्थ है आप काहूकूं नमस्कार करै नांही सदा सबनिकरि नमस्कार करिबे योग्य है ॥ २०४ ॥ वह भगवान महाशोभायमान वृषभ जिन आदितीर्थेश्वर भवभ्रमण करिबेके भयतैं हमारी रक्षा करहु, भव्यजीव जाहि नमस्कार करिकै बहुरि काहूकूं नमस्कार न करैं जाकी स्तुति करिकै काहूकी स्तुति न करैं अर कल्याणके अर्थि जाका आश्रय लेकरि काहूका

पूजादिक इनिका कुलधर्म ताका वर्णन भरतराजर्षि अनुक्रमतैं तिनिकूं कहता भया ॥ २५ ॥ अरहंतकी पूजा सो इज्या कहिए, ताके च्यारि भेद—प्रथम नित्यमह कहिए सदा पूजन अर दूजा भेद चतुर्मुख अर तीजा भेद कल्पवृक्ष अर चौथा भेद अष्टाह्निकाकी पूजा ॥ २६ ॥ जो निरंतर अपने घरतैं गंध पुष्प अक्षतादि पूजाकी सामग्री लेकरि जिनमंदिर जाय सदा विधिपूर्वक पूजा करे सो नित्यमह कहिए ॥२७॥ भक्तिकरि जिनमंदिर जिनप्रतिमादिकका निर्मापण ग्रामादिकके मध्य कराय अर दानकी मुख्यताकरि जो सदा भगवानकी पूजा करै ताका नाम भी सदार्चन कहिए ॥ २८ ॥ अर जो मुनींद्रनिकी पूजा अर सदा विधिपूर्वक मुनिकूं आहार देना सोऊ नित्यमह जानूं, दान अपनी शक्तिप्रमाण करना योग्य है ॥२९॥ अर दूजा भेद पूजाका चतुर्मुख सो इह पूजा महामुकुटबद्ध राजानितैं होय याहि सर्वतोभद्र हू कहिए ॥ ३० ॥ अर तीजा भेद कल्पवृक्षनामा पूजा सो चक्रवर्त्तीनिसूं बणै और सूं न बणै, किमिच्छिक दान देकरि जगतकी आशा पूरै ॥ ३१ ॥ अर चौथी अष्टाह्निकी पूजा सो सर्वलोकाविषैं प्रसिद्ध है जो इंद्रनिकरि करिए अष्टाह्निकी महापूजा सो इंद्रध्वज कहिए ॥३२॥ ए पूजाके च्यारि भेद कहे, तीनूं संध्याविषैं पवित्र सामग्री लेकरि जिनपूजा करनी अर स्नानकरि पवित्र होय प्रतिमा प्रक्षाल करना, ए पूजाके भेद कहे अर औरहू अनेक भेद हैं ते सूत्रप्रमाण जानने ॥३३॥ या भांति विधि विधानपूर्वक जो जिनेश्वरकी पूजा करनी ताकूं विधिके वेत्ता इज्या कहैं हैं, इह षट्कर्मविषैं प्रथम भेद कह्या ॥ ३४ ॥ दूजा भेद वार्त्ता, सो निष्कपटवृत्तिकरि न्यायके आचरणकरि आजीविकाका उपाय करना, असि कहिए खड्ग अर मषि कहिए स्यायी अर कृषि कहिए खेती अर वाणिज्य कहिए व्यापार शिल्प कहिए शिलावट आदि कर्म अर पशुपालन कहिए पशुनिकी रक्षा ए षट्कर्म इनिका न्यायरूप आचरण सो वार्त्ता कहिए, इनि षट्कर्मनिमैं क्षत्रीके तौ न्यायरूप खड्गका धारणही मुख्य है अर वैश्यके न्यायरूप स्याहीका लिखन अर व्यापार अर शूद्रकै कृषि अर शिल्प पशुपालनादिकर्म ते न्यायरूप कर्त्तव्य हैं अन्यायरूप कोऊ कार्य न करना अर ब्राह्मणके

विवेकी दयावान हरितकायकूं बिराधिकरि न आए तिनिकूं पृथ्वीपति आदरतैं बुलावता भया ॥ १२ ॥ ते महावंशके उपजे अपने व्रतकी सिद्धिके अर्थि करुणरूप चेष्टाकूं धरे भीतरि पैठिबेकी इच्छा न करते भए, पंथविषें हरे अंकुर तिनिकूं खूंदिकरि कैसें आवें ? ॥ १३ ॥ केई हरितधान्यके अंकुरानिकरि आच्छादित राजेश्वरका अंगण तहां न पैठे, पाछे फिरे, महादयालुभाव पापकाहै भय जिनिकूं ॥ १४ ॥ तब चक्रवर्ती दूजा निर्दोष मार्ग ताकरि अति आदरसूं बुलाए तब निर्दोष मार्ग होय महीपतिके निकट आये ॥ १५ ॥ चक्रवर्त्ती पूंछी तुम पहली कौन कारण न आये बहुरि अब कैसे आए ? तब वे कहते भए ॥ १६ ॥ कोमल कूंपल अर पुष्प अंकुर इत्यादि हरितका विराधन योग्य नांही, हम अहिंसा अणुव्रतके धारक हैं सो हरितकायके जीवनिका विराधन योग्य नांही ॥ १७ ॥ अर अंकुरादिविषें निगोद राशि है तिनि विषें अनंतजीव हैं इह सर्वज्ञ देवका वचन हम भली भांति सुन्या है तातैं हम न आए ॥१८॥ बहुरि फल पुष्प अंकुरादिकरि रहित जो प्रासुकमार्ग ताकरि तिहारे सेवक हमकूं ल्याए तब आए ॥ १९ ॥ इनि वचननिथकी तिनिकूं दृढव्रत जानि चक्रवर्त्ती लक्ष्मीवान तिनिकी अतिप्रशंसाकरि वस्त्रादिदान अर सत्कारकरि मानता भया ॥ २० ॥ पद्मनामा निधि ता थकी सूत्र लेकरि तिनिके चिह्न कीए एक आदि एकादशपर्यंत ब्रह्मसूत्र तिनि धारे ॥ २१ ॥ दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुण तिनिके स्थानक तिनिके भेद-करि कीए यज्ञोपवीतके धारक, राजेश्वरनैं अतिसत्कार कीया अर अव्रती लोक बाहरि कीए ॥ २२॥ तब वे चक्रवर्त्तीका किया सन्मान पाय व्रतधारणविषें अतिदृढता भजते भए अर लोक इनिकूं बहोत पूजते भए ॥ २३ ॥ अर चक्रवर्त्ती उपासकाध्ययन जो सातमां अंग ता थकी इज्या कहिए पूजा वार्त्ता कहिए आजीविकाकी विधि अर दत्त कहिए दान अर स्वाध्याय कहिए जिनशास्त्रका पठन अर संयम कहिए मन इंद्रियनिका निरोध तथा छह कायके जीवनिकी दया अर तप कहिए इच्छाका निरोध अर अनशनादि बारह तप इह षट्कर्मरूप श्रावकका धर्म तिनिकूं चक्रेश्वर उपदेशता भया ॥ २४ ॥ अरहंत-

कर्मके उदयकरि मनुष्यनिकी जाति एकही है आचरणके भेदतैं वर्णके च्यार भेद भए हैं ॥ ४५ ॥ व्रतके संस्कारतैं ब्राह्मण अर शस्त्रके धारणतैं क्षत्रिय अर न्यायकरि अर्थके उपार्जनतैं वैश्य अर हीनवृत्तिके आश्रयतैं शूद्र ॥ ४६ ॥ तातैं तप अर श्रुत इनिहीतैं विप्रजातिका संस्कार है अर जो तप अर श्रुतकरि रहित हैं सो जातिमात्र ब्राह्मण हैं ॥ ४७ ॥ दोय प्रकार जन्म धरे सो द्विज एक तौ गर्भतैं जन्म, दूजा क्रियातैं जन्म, जो क्रिया अर मंत्रकरि रहित हैं सो केवल नामधारक द्विज हैं शास्त्रोक्त द्विज नांही ॥४८॥ तातैं राजानिका राजा इनिके जाति संस्कारकूं दृढ करता संता समस्त क्रियाके भेद विप्रनिके ताईं कहता भया ॥ ४९ ॥ जो क्रिया श्रावकाध्यायसंग्रहविषैं तीनप्रकार कही हैं ते क्रिया महाउत्तम फलकी देनहारी शुभाचाररूप सम्यग्दृष्टिनिकूं आचरनी ॥ ५० ॥ गर्भान्वय क्रिया अर दीक्षान्वय क्रिया अर कर्त्रन्वय क्रिया ए तीन प्रकार क्रिया पंडितनि कहीं ॥ ५१ ॥ तिनिमैं गर्भान्वय क्रियाके आधानादि तरेपन भेद हैं अर दीक्षान्वयक्रियाके अडतालीस भेद हैं ॥ ५२ ॥ अर कर्त्रन्वयक्रिया सज्जात्यादि सप्त प्रकार तत्त्वके वेत्तानि कही अब तिनिका यथाक्रम वर्णन करिये है ॥ ५३ ॥ सातमां अंग उपासकाध्ययन समुद्रहूतैं अतिदुस्तर ताके अष्ट श्लोकनिकरि अनुक्रमतैं क्रियानिके नाम निरूपण करूहूं, पाया है लेशमात्र ज्ञान मैं ॥ ५४ ॥ प्रथमही गर्भान्वयक्रियाके तरेपन भेद सुनहु—आधान १ प्रीतिर २ सुप्रीति ३ धृति ४ मोद ५ प्रियोद्भव ६ नामकर्म ७ बहिर्यान ८ निषद्या ९ प्राशन १० ॥ ५५ ॥ व्युष्टि ११ केशवाप १२ लिपिसंख्या १३ उपनीति १४ ब्रह्मचर्य १५ व्रतावतरण १६ ॥ ५६ ॥ विवाह १७ वर्णलाभ १८ कुलचर्या १९ गृहीशिता २० प्रशांति २१ गृहत्याग २२ दीक्षाद्य २३ जिनरूपता २४ ॥ ५७ ॥ मौनाध्ययनवृत्ति २५ तीर्थंकरभावना २६ गुरुस्थानाभ्युपगमन २७ गणोपग्रहण २८ ॥ ५८ ॥ स्वगुरुस्थानसंक्रांति २९ निःसंगत्वात्मभावना ३० योगनिर्वाणसंप्राप्ति ३१ योगनिर्वाण साधन ३२ ॥ ५९ ॥ इंद्रोपपाद ३३ अभिषेक ३४ विधिदान ३५ सुखोदय ३६ इंद्रत्याग ३७ गर्भावतार ३८ हिरण्योत्कृष्टजन्मता ३९ ॥ ६० ॥

जिनपूजा तथा जिनसूत्रका अध्ययन अध्यापन एही कार्य मुख्य हैं और नांही अर तीजा कर्म षट्कर्मविषैं दान सो दान च्यारि प्रकार—दयादान पात्रदान समदान अन्वयदान। इनिके भेद सुनहु ॥ ३५ ॥ दयासहित जीवनिके समूहविषैं अनुग्रह करना मनवचनकायकी शुद्धताकरि सकलका उपकार करना काहूकूं भय न उपजावना दुखित भुखित जीवनिकूं पोषना सो पंडितनि दयादत्ति कही ॥ ३६ ॥ अर महातपोधन महामुनिकी अर्चा करनी पडगाहना आदि नवधाभक्तिकरि तिनिकूं आहारादिक देने सो पात्रदान कहिए ॥ ३७ ॥ अर क्रिया मंत्र व्रतादिकरि जे आपसमान अणुव्रती संसारसागरके तारक उत्तम श्रावक तिनिकूं आहारदान औषधिदान शास्त्रदान अभयदान तथा भूमिदान सुवर्ण रत्नादिक देना सो समदान कहिए ॥ ३८ ॥ समदान मध्यम पात्र जे व्रती श्रावक तिनिकूं श्रद्धापूर्वक विनयकरि देना ॥ ३९ ॥ अर चौथा अन्वयदान अपने वंशकी रक्षाके अर्थि धर्मात्मा विवेकी जो पुत्र ताकूं घरका सकल द्रव्य देना अर धर्मका उपदेश देना अर सकल कुटुंबका बोझा देना अर आपकूं सकलसूं निवृत्त होय मुनिव्रत लेने अथवा उत्कृष्ट श्रावकके व्रत धारने, इह अन्वयदान कह्या ॥ ४० ॥ अथवा याको नाम सकलदत्ति कहिए अर षट्कर्मविषैं चौथा भेद स्वाध्याय निरंतर शास्त्रका भावना शास्त्रका रहस्य समझना जिनवाणीका पढना पढावना अर पांचवां भेद तप अनशनादि बारह तप धारने अर छठा भेद संयम सो जीवनिकी दया अर मन इंद्रियनिका निरोध ए षट्कर्म निःकपट व्रतीकरि करने ॥ ४१ ॥ ए षट्कर्मकी रीति पृथ्वीनाथनैं सूत्रप्रमाण विप्रनिकूं कही जो सूत्रकी आज्ञा उलंघै सो अज्ञानी सो नाममात्र द्विज है गुणनिकरि नांही ॥ ४२ ॥ तप श्रुत अर जाति ए तीन ब्राह्मणपनेके कारण हैं जो तप अर श्रुतकरि रहित हैं सो जातिमात्र द्विज हैं गुणरूप नांही ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणकी पापरहित वृत्ति है सोई जातिकी उत्तमता है, पाप सेवै सो ब्राह्मण नांही, दान पूजा अर स्वाध्याय इनिकी मुख्यतातैं व्रतकी शुद्धिकरि संस्कारकूं पाय विप्रनिकी जाति उत्तम है ॥ ४४ ॥ नाम

पवीतधारणका नियोग हैं, बहुरि देवपूजाकरि योग्य अन्नका आहार करै ॥ ७-८ ॥ इह उपनीतिनामा चौदमी क्रिया कही (१४) अथानंतर पंद्रमी व्रतचर्या कहूंहूं—इह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका बालक यज्ञोपवीत धारणकरि विवाह न करै जेतैं कौन रीतिसूं रहै सो सुनहु—या यज्ञोपवीतके धारककै ब्रह्मचर्यव्रत उचित ताके चिह्न हैं—कटिका चिह्न ऊरूका चिह्न अर सिरका चिह्न ॥ ९ ॥ कटिका चिह्न तौ याकै त्रिगुणनिकरि संयुक्त मौंजीवंधन है इह रत्नत्रयकी शुद्धताका चिह्न सो ही उत्तमकुलका चिह्न है ॥११०॥ अर उरू कहिए जंघा ताका चिह्न उज्ज्वल धोई धोवती, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यानिके कुलमैं अनेक अरहंत भए हैं तातैं इह आर्हत्यकुल पवित्र है अर विस्तीर्ण है ऐसा प्रगट दिखायबेकूं उज्ज्वल धोई धोवती धारै हैं ॥ ११ ॥ अर गलेका चिह्न इनिकै यज्ञोपवीत सप्त तारनिकरि गूंथी होय है सो सप्त परमस्थानका सूचक है सप्त परमस्थानकका वर्णन पहली करि आए अर अबहू, आगिली अध्यायबिषैं कहैंगे ॥१२॥ अर शिरका चिह्न इनिकै केशनिका मुंडन सो केशही मूंढै हैं, मन वचन कायके मूंडिबेकी है इच्छा जिनिकै सो इच्छाकूं वृद्धि करै हैं ॥ १३ ॥ या भांति इनि चिह्ननिकूं धारता विशुद्धव्रतकूं धारै। स्थूलहिंसा, स्थूलमृषा, परधनहरण, परदारसेवन, परिग्रहतृष्णा इनिका निवारण ए व्रत धारै जबलग विवाह न करै तब लग वह विवेकी यज्ञोपवीतका धारी ब्रह्मचारी दंतधावन न करै, तांबूलका ग्रहण न करै, आंखिनिमैं अंजन न घालै, अर हरिद्रादिक मिश्रित उबटना न लगावै, शुद्ध छानेजलकरि प्रतिदिन स्नान करै ॥ १५॥ बहुरि वह ब्रह्मचारी जनेऊका धारी खाटपरि न सोवै अर अन्यके अंगसूं अपना अंग न छिवावै, काहूका स्पर्श न करै अर भूमिविषैं अकेला सोवै व्रतकी शुद्धताकै अर्थि ॥ १६ ॥ जौलग विद्याकी पूर्णता न होय तौलग याकै इह व्रत होय तापीछैं उत्कृष्ट शक्ति होय तौ मुनिव्रत धारै अथवा उत्कृष्ट श्रावकके व्रत धारै अर अल्पशक्ति होय तौ याकै गृहस्थके व्रत होंय ॥ १७ ॥ सातवां उपासकाध्ययन सूत्र ताका अध्ययन गुरुके मुखतैं याकै होय बहुरि महाविनयकरि और शास्त्र अध्यात्मगोचर भणै (पढै) ॥ १८ ॥ तथा शब्दशास्त्र कहिए व्याकरण

मंदरेंद्राभिषेक ४० गुरुपूजोपलंभन ४१ यौवराज्य ४२ स्वराज्य ४३ चक्रलाभ ४४ दिशांजय ४५ ॥ ६१ ॥ चक्राभिषेक ४६ साम्राज्य ४७ निष्क्रांति ४८ योगसंग्रह ४९ आर्हंत्य ५० तद्विहार ५१ योगत्याग ५२ निर्वृति ५३ ॥६२॥ ए गर्भान्वय क्रिया गभाधान आदि निर्वाण पर्यंत परमागमविषैं तरेपन कहीं ॥६३॥ अर दीक्षान्वय क्रियाके भेद अडतालीस ते सुनहु—अवतार १ वृत्तिलाभ २ स्थान लाभ ३ गणग्रह ४ पूज्याराध्य ५ पुण्ययज्ञ ६ दृढचर्या ७ उपयोगिता ए आठ क्रिया उपनीत्यादि चालीस क्रिया सहित वखानिये तब अडतालीस भेद दीक्षान्वय क्रियाके होंय, भावार्थ—गर्भान्वय क्रियाके भेद तरेपन तिनिमें आदिकी तेरा (१३) इनिमें न लेनी आदि ए आठ क्रिया कहना अर वाकी उपनीति क्रिया आदि चालीस क्रिया इनिमें मिलावनी तव अडतालीस भेद होंहि ॥ ६४–६५ ॥ अर कर्त्रन्वय क्रियाके भेद सात, कर्त्रन्वय क्रिया जिनमार्गके आराधनरूप प्रवर्त्ते हैं, पुण्याधिकारी इनिकूं पावै हैं ॥ ६६ ॥ तिनिके नाम—सज्जाति १ सद्गृहीशित्व २ पारिव्राज्य ३ सुरेंद्रता ४ साम्राज्य ५ परमार्हंत्य ६ परम निर्वाण ७ ॥ ६७ ॥ ए सप्त जगतविषैं परमस्थानक कहिए, अरहंतके वचनरूप अमृतके आस्वाद ते प्राणी पावै हैं ॥६८॥ इह क्रियाकल्प वहुत भेदरूप मुनिनि कह्या सो मैं संक्षेपथकी नाममात्र कहे अव इनि क्रियानिके लक्षण विस्तारथकी कहूंहूं, सो सुनहु ॥ ६८ ॥ प्रथमही तरेपन क्रियानिविषैं आधाननाम क्रिया सो गर्भकी आदिविषैं मंत्रपूर्वक स्नानकरि स्त्री ऋतुमती छठेदिन स्नानकरि शुद्ध भई तासहित अरहंतकी पूजा करै ॥ ७० ॥ तहां आधान क्रियाकी पूजाविधिविषैं तीन छत्र सहित तीन चक्र भगवानकी प्रतिमाके दाहिनी बांई तरफ स्थापिकरि पवित्र तीन अग्निके कुंड स्थापै ॥ ७१ ॥ ते तीन प्रणीताग्नि तीर्थंकर गणधर अर सामान्य केवलीनिके निर्वाणककी कहीं सो भगवंतकी प्रतिमा बिराजिबेकी वेदीके समीप ए अग्नि स्थापै ॥ ७२ ॥ तिनि तीनौं अग्किे कुंडविषैं भगवानकी पूजाकरि चुके पीछें जो सामग्री बाकी रहै सो पवित्र द्रव्य ताकरि मंत्रपूर्वक होम करै महाविवेकी पुत्रकी है अभिलाषा जाकै ॥ ७३ ॥ या आधान क्रियाकी विधिकी विधिके मंत्र आम्नायपूर्वक कहिएंगे

अनुसार वर्षवर्द्धन क्रिया करनी ॥ ९६ ॥ क्रियाविषैं पूर्ववत् दान अर जिनराजकी पूजा पूर्वरीति विधिपूर्वक करनी अर बंधुजन मित्रजन तिनिकूं बुलावना अर भोजन करावनां ॥ ९७ ॥ इह व्युष्टिनामा ग्यारमी क्रिया कही (११) बहुरि शुभदिनविषैं केशवापनामा क्रिया केशनिका मुंडन करावना देव गुरुकी विधिपूर्वक पूजाकरि ॥ ९८ ॥ गंधोदकसूं केश आले करि अर आसिका अक्षत बालकके सिरपरि मेलि मुंडन करना ता दिनतैं चोटीसहित मुंडन करना ॥ ९९ ॥ बहुरि बालककूं गंधोदकसूं संपराय (स्नान कराकर) चंदनादि सुगंध रचि आभूषण पहराय मुनिनिपैं लेजाय प्रणाम कराय सकल बंधुजन असीस दे बालककै चोटी रखावै ॥ १०० ॥ इह चौलनामा क्रिया प्रसिद्ध मंगलाचारकरि शुभदिनविषैं करनीं, या क्रियाविषैं लोक हर्षकरि यत्नतैं प्रवर्तैं ॥ १०१ ॥ इह केशवापनामा बारमीं क्रिया कही (१२) बहुरि बालक पंच वर्षका होय तब याहि प्रथमाक्षर जो ओंकार सो पढावै अर याके हाथतैं लिखावै अर पढिवेकूं बैठावै सो लिपिसंख्यानसंग्रह क्रियाकी विधि ॥ १०२ ॥ अपने विभवप्रमाण या क्रियाविषैं दान-पूजादिककी प्रवृत्ति है उपाध्यायकै समीप विद्याका अध्ययन करै ॥ १०३ ॥ इह तेरही लिपिसंख्यानसंग्रह-नामा क्रिया कही (१३) बहुरि चौदमीं उपनीतिनामा क्रिया—जब इह बालक गर्भके दिनतैं आठ वर्षका होय तब केशनिका मुंडनकरि कटिकै मूंजके डोराका बंधन करै ॥१०४॥ अरहंतदेवकी पूजाकरि जिनमंदिरविषैं मौंजीबंधन गुरुकी साखि करना व्रतके ग्रहणपूर्वक, भावार्थ—गृहस्थाचार्य जनेऊ देवै पहली याहि श्रावकके अणुव्रत दे ॥५॥ ब्राह्मणादि उत्तमकुल श्रावकका पुत्र गुरुकी आज्ञा अनुसार चोटीके गांठ दीए सफेद धोवती पहरै अंत वस्त्र जो दुवट्टा तासहित विक्रियाके भेषतैं रहित व्रतका चिह्न जो सूत्र कहिए जनेऊ ताहि धरै ता समैं याहि ब्रह्मचारी कहिये ॥ ६ ॥ तासमैं याकै औरही आचरण उचित हैं जो ब्राह्मणका अर वैश्यका पुत्र होय सो तो वाहिर पात्रविषैं मित्र बंधुजनपै भिक्षा आचरै अर राजाका पुत्र होय ताहि भिक्षावृत्ति नांहीं सो राजपुत्र जनेऊ लेकरि अंतःपुरविषैं पात्र लेकरि जाय तहां माता दादी आदिपै भिक्षा आचरै, इह केवल यज्ञो-

वैश्य तिनिकूं ए क्रिया कर्त्तव्य हैं ॥ ८४ ॥ इह पांचवी मोदक्रिया कही (५) बहुरि प्रसूतिके होतसंतैं प्रियोद्भवनामा छठी क्रिया जन्मके कर्मकी विधि कही जो क्रिया यथाविधि जिनराजके जन्मविषैं प्रवर्ती सो अपने विभव प्रमाण करनी ॥ ८५ ॥ और अवांतर विशेष क्रिया मंत्रादि लक्षण सो सब उपासकाध्ययन सूत्रतैं जानना ॥ ८६ ॥ इह छठी प्रियोद्भवनामा क्रिया कही (६) अथानंतर सातमी नामकर्म क्रिया कहै हैं—जन्मके दिनतैं बारहदिन पीछैं पुत्रकूं अर मातापिताकूं दिन अर चंद्र मुहूर्त्तादिक प्रशस्त देखिकरि नाम ठहरावे ॥ ८७ ॥ अपने विभवप्रमाण क्रियाविषैं देव गुरु शास्त्रका अर गृहस्थाचार्यका पूजन करै, वंशकी वृद्धिका करणहारा प्रशस्त नाम बालकका स्थापना ॥ ८८ ॥ एकहजार आठ भगवानके नाम हैं अथवा और शुभ नाम ते न्यारे न्यारे पत्रनिमैं लिखिकरि घटमैं वे पत्र नांखिकरि बालक हाथि एक पत्र कढावनां जो पत्रसैं लिख्या नाम नीसरै सो नाम बालकका धरना ॥ ८९ ॥ इह नामकर्मनामा सातमी क्रिया कही (७) अथानंतर आठमी वहिर्यान क्रिया दूजे तीजे मास अथवा चौथे मास शुभ दिन देखि वादित्रादि मंगलाचार करि ॥ ९० ॥ बालकका प्रसूतिगृहतैं वाह्यगमन करना माता अथवा धाय गोदमैं लेकरि बाहर निकसै ॥ ९१ ॥ तहां बंधुजनथकी अर्थलाभ होय, भावार्थ— बालकके हाथमैं सब बंधुजन यथाशक्ति हर्षथकी द्रव्य दें, ताका इह अभिप्राय जो आगामी कालविषैं इह पिताका धन पावै ॥ ९२ ॥ इह वहिर्याननामा आठमी क्रिया कही (८) बहुरि बालककी निषद्यानामा क्रिया कहिए हैं—बालकयोग्य शय्या विस्तीर्ण ताविषैं ताहि बैठावै, कीए हैं मंगलाचार जहां ॥ ९३ ॥ सिद्धनिकी अर्चादिक सर्व विधिपूर्वक रीतिप्रमाण या क्रियाविषैंहु करनी, या क्रियाका इह अभिप्राय—जो दिव्यसिंहासनका योग्यपना याके उत्तरोत्तर होय ॥ ९४ ॥ इह निषद्यानामा क्रिया कही (९) बहुरि जन्मके दिनतैं सातवैं तथा आठवैं महीनैं अनुक्रमसेती पूजा विधिपूर्वक बालककूं अन्नका आहार करावना ॥ ९५ ॥ इह अन्नप्राशननामा दशमी क्रिया कही (१०) बहुरि वर्ष पूर्ण भए ग्यारमी व्युष्टिनामा क्रिया ताका अर्थ शास्त्रके

जिनरूपता कहिए ॥ ५९ ॥ इह जिनमुद्राका धारण कायरजीवनितैं न बनै, जैनका भेष निर्ग्रंथरूपधारी पुरुषही धारै सकलपरिग्रहका त्याग है मुख्य जाविषैं ॥ ६० ॥ इह जिनेंद्ररूपतानामा चौवीसमीं क्रिया कही (२४)। कीया है दीक्षाकै दिन उपवास जानैं बहुरि पारणाकी विधिविषैं प्रवर्तैं शास्त्रकी समाप्ति पर्यंत मौनसहित पठन करै ॥ ६१ ॥ वह मुनि मौनका धारक विनयवान निर्मल हैं मन वचन जाकै सो गुरुके समीप सकल श्रुत पढै ॥६२॥ या विधिसेती भव्यजीवनि निश्चयकरि सेया श्रुत सो या भवविषैं योग्यताकूं पोषै अर परभवविषैं आनंदकूं विस्तारै ॥ ६३ ॥ इह मौनाध्ययनवृत्तित्व पचीसमीं क्रिया कही (२५)। पढ्या है आचारांगसूत्र आदि समस्त शास्त्रका विस्तार जानैं सो विशुद्ध आचरणका धारक तीर्थंकरपदका कारण जे भावना तिनिका अभ्यास करै ॥ ६४ ॥ ते भावना महाकल्याणकी साधनहारी दर्शनविशुद्धि आदि सोलह तिनिके लक्षण पहिली कहि आए तातैं अब न कहे ॥ ६५ ॥ इह तीर्थकृद्भावना छव्वीसमीं क्रिया कही (२६)। बहुरि इंद्रीनिका जीतनहारा समस्त विद्याका वेत्ता ताकै गुरुके अनुग्रहतैं गुरुके स्थानकका अंगीकार होय आप छतांही आचार्यपदका सकल भार याहि सौंपै ॥ १६६ ॥ इह महामुनि ज्ञानविज्ञानकरि मंडित अपने गुरुका आज्ञाकारी महाविनयवान धर्मात्मा गुरुकी पदवीकूं योग्य होय ॥ ६७ ॥ इह सत्ताईसवीं गुरुस्थानाभ्युपगम क्रिया कही (२७)। महा आचारवंत पंच आचारका आचरण करणहारा गणके पोषणविषैं योग्य ताकै गणोपग्रहणनामा क्रिया महामुनि कहे हैं ॥६८॥ इह विवेकी मुनि आर्जिका श्रावक श्राविका ए चतुर्विधसंघ तिनिकूं आचरै ॥ १६९ ॥ जे शास्त्रके अर्थी हैं तिनिकूं शास्त्र पढावै जिनवाणीका व्याख्यान करै अर जे दीक्षाके अर्थी हैं तिनिकूं दीक्षा दे अर जे धर्मके अर्थी हैं तिनिकूं निरंतर धर्मोपदेश दे ॥ १७० ॥ जे उत्तमव्रत हैं तिनिकी वह आचार्य प्ररूपणाकरि अव्रत हैं तिनिकूं निवारै अर जिनिकूं दोष लाग्या है तिनिकूं प्रायश्चित्त दे शुद्धता उपजावै, या भांति चतुर्विधसंघका पोषण करै ॥ ७१ ॥ इह अट्ठाईसमीं गणोपग्रहणनामा क्रिया कही (२८)। या भांति यह उत्तम

पवीतधारणका नियोग है, बहुरि देवपूजाकरि योग्य अन्नका आहार करै ॥ ७-८ ॥ इह उपनीतिनामा चौदमी क्रिया कही (१४) अथानंतर पंद्रमी व्रतचर्या कहूंहूं—इह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका बालक यज्ञोपवीत धारणकरि विवाह न करै जेतैं कौन रीतिसूं रहै सो सुनहु—या यज्ञोपवीतके धारककै ब्रह्मचर्यव्रत उचित ताके चिह्न हैं—कटिका चिह्न ऊरूका चिह्न अर सिरका चिह्न ॥ ९ ॥ कटिका चिह्न तौ याकै त्रिगुणनिकरि संयुक्त मौंजीवंधन है इह रत्नत्रयकी शुद्धताका चिह्न सो ही उत्तमकुलका चिह्न है ॥११०॥ अर उरू कहिए जंघा ताका चिह्न उज्ज्वल धोई धोवती, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यानिके कुलमैं अनेक अरहंत भए हैं तातैं इह आर्हत्यकुल पवित्र है अर विस्तीर्ण है ऐसा प्रगट दिखायबेकूं उज्ज्वल धोई धोवती धारै हैं ॥ ११ ॥ अर गलेका चिह्न इनिकै यज्ञोपवीत सप्त तारनिकरि गूंथी होय है सो सप्त परमस्थानका सूचक है सप्त परमस्थानकका वर्णन पहली करि आए अर अबहू, आगिली अध्यायविषैं कहैंगे ॥१२॥ अर शिरका चिह्न इनिकै केशनिका मुंडन सो केशही मूंढै हैं, मन वचन कायके मूंडिबेकी है इच्छा जिनिकै सो इच्छाकूं वृद्धि करै हैं ॥ १३ ॥ या भांति इनि चिह्ननिकूं धारता विशुद्धव्रतकूं धारै । स्थूलहिंसा, स्थूलमृषा, परधनहरण, परदारसेवन, परिग्रहतृष्णा इनिका निवारण ए व्रत धारै जबलग विवाह न करै तब लग वह विवेकी यज्ञोपवीतका धारी ब्रह्मचारी दंतधावन न करै, तांबूलका ग्रहण न करै, आंखिनिमैं अंजन न घालै, अर हरिद्रादिक मिश्रित उबटना न लगावै, शुद्ध छानेजलकरि प्रतिदिन स्नान करै ॥१५॥ बहुरि वह ब्रह्मचारी जनेऊका धारी खाटपरि न सोवै अर अन्यके अंगसूं अपना अंग न छिवावै, काहूका स्पर्श न करै अर भूमिविषैं अकेला सोवै व्रतकी शुद्धताकै अर्थि ॥ १६ ॥ जौलग विद्याकी पूर्णता न होय तौलग याकै इह व्रत होय तापीछैं उत्कृष्ट शक्ति होय तौ मुनिव्रत धारै अथवा उत्कृष्ट श्रावकके व्रत धारै अर अल्पशक्ति होय तौ याकै गृहस्थके व्रत होंय ॥ १७ ॥ सातवां उपासकाध्यायन सूत्र ताका अध्ययन गुरुके मुखतैं याकै होय बहुरि महाविनयकरि और शास्त्र अध्यात्मगोचर भणै (पढै) ॥ १८ ॥ तथा शब्दशास्त्र कहिए व्याकरण

वृत्ति क्रिया तिनिकरि आपकूं उच्चताकूं प्राप्त करता संता गृहीशिताकूं योग्य होय ॥ ४६ ॥ तब सकलधर्मी याके एते नाम कहि प्रशंसा करें—वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपति, मानयोग्य ए नाम कहि याहि अति मानैं ॥ १४७ ॥ इह गृहीशितानामा बीसमीं क्रिया कही (२०) । बहुरि वह ग्रामपति कहिए गृहस्थाचार्यदेव ब्राह्मण जो पुत्र आपसमान अपना भार निवाहिवेकूं समर्थ ताविषें गृहस्थपणेंका भार आरोपणकरि आप शांतताका आश्रय करै ॥ ४८ ॥ विषयनिविषैं विरक्त स्वाध्यायरूप नानाप्रकारके उपवासनिकरि गृहविषैंही प्रशांतताकी वृत्ति आदरै ॥ ४९ ॥ इह प्रशांततानामा इकवीसमीं क्रिया कही (२१) । बहुरि वह गृहाश्रमविषें कृतार्थताकूं प्राप्त भया संता गृहत्यागविषें उद्यम करै, ताकी क्रियाकी विधि सुनों ॥ ५० ॥ भगवानकी विधिपूर्वक पूजाकरि सर्व साधर्मीनिकूं बुलाय तिनिकी साखि पुत्रके तांई सर्ववृत्तांत कहि घरकूं तजै ॥ ५१ ॥ पुत्रसूं या भांति कहै—हे पुत्र ! मेरे पीछें तू कुलक्रम पालियो, मेरा इह द्रव्य ताके तीन विभाग करियो ॥ ५२ ॥ एक विभाग धर्मकार्यविषें लगाइयो अर दूजा विभाग घरके खर्चविषें लगाइयो अर तीजा भाग तेरे भाईनिकूं दीज्यो ॥ ५३ ॥ अर पुत्रनिके विभागमें पुत्रीनिहूका विभाग है तू कुलका ज्येष्ठ होय मेरी संतानकूं पालियो ॥ ५४ ॥ तू प्रमादरहित सावधान जैनशास्त्रका वेत्ता व्रती क्रियावान मंत्रकी विधिका जाननहारा है सो देव गुरु शास्त्रकी पूजा करता संता कुलकी परं... [illegible] ...यो ॥ ५५ ॥ या भांति वडे पुत्रकूं शिक्षा देकरि वह द्विजवर आकुलतारहित होय [illegible] घर तजै ॥ ५६ ॥ इह गृहत्यागनामा बावीसमीं क्रिया कही (२२) इह सम्यग्दृष्टी [illegible] ांतताकै अर्थि ग्यारमी प्रतिमाके दोय भेद, तिनिमैं पहला भेद क्षुल्लक सो इह [illegible] क वस्त्रका है धारण जाकै ॥ ५७ ॥ जो मुनिके व्रत लेवे पहली आचरण करिए [illegible] दीक्षाद्य क्रिया कहिये ॥ १५८ ॥ इह दीक्षाद्यनामा तेईसमीं क्रिया है (२३) । [illegible] का संग जानैं जिनराजकी दीक्षाकूं प्राप्त भया ताकै यथाजातरूपका धारण सो

साखिकरि ॥ १३१ ॥ अर सात दिन पीछैं तीर्थविहार करैं बहुरि अपने गृह महाउच्छवसूं प्रवेश करैं ॥ ३२ ॥ तहां कंकण डोरा खुलैं तब अपने घरविषैं सेजपरि शयनकरि योग्य काल कहिए रात्रिके दूजे तीजे पहरमें भोग सेवन करैं। दिवसविषैं, रात्रिके पहले पहर तथा चौथे पहर सेवन न करैं ॥ ३३ ॥ संतानके अर्थि ऋतुसमैंही कामका सेवन करैं इह महाशक्तिवंतनिकूं कालव्यपेक्षा कही अर जे अशक्त हैं तिनिके यथाशक्ति ब्रह्मचर्यका धारण है ॥ ३४ ॥ इह सत्रहवीं विवाहक्रिया कही (१७)। या भांति कीया है विवाह जानैं सो गृहस्थ क्रियाकूं आचरता संता श्रावकके व्रत पालै अब अठारमी वर्णलाभ क्रिया कहै हैं ॥ १३५ ॥ इह विवाहकरि स्त्री सहित भया तथापि पिताके घरविषैं स्वाधीन नांही ताकी सिद्धिके अर्थि वर्णलाभ क्रियाका वर्णन करै हैं ॥ ३६ ॥ मातापिताकी आज्ञाकरि पाई है धनधान्य संपदा जानैं सो जुदे घरमें रहै ताका नाम वर्णलाभ कहिए ॥ ३७ ॥ तहां पूर्वरीतिमाफिक भगवानकी प्रतिमाका पूजनकरि और श्रावकनिकी साखि पिता याकूं द्रव्य दे ॥ ३८ ॥ अर इह आज्ञा करै—हे पुत्र! तू इह धन लेकरि जुदे घरविषैं रहिकरि गृहस्थका धर्म दानादिलक्षण धारि ॥३९॥ जैसें हमारे पिताके दीए धनकरि हम यश अर धर्म उपार्ज्या तैसें तूहू यश अर धर्मकूं उपार्जि ॥४०॥ या भांति पिताकूंशिक्षा देकरि वर्णलाभविषैं थापै तब वह विवेकी पिताकी आज्ञाप्रमाण जुदे घरमें रहिकरि पिताकी रीतिप्रमाण गृस्थका धर्म पालिवेकूं योग्य होय ॥४१॥ इह अठारमी वर्णलाभनामा क्रिया कही (१८)। पाया है वर्णलाभ जानैं ताकै अब कुलचर्या कहिए है सो कुलचर्या इज्या वार्त्तादि लक्षण पहली कही ॥ ४२ ॥ सो विशुद्धवृत्तिसूं करै याकै देवपूजा गुरुसेवा स्वाध्याय संयम तप दान ए षट्कर्म प्रवर्त्तन इही कुलचर्या अर इही कुलधर्म ॥४३॥ इह कुलचर्या उगणीसवीं क्रिया कही (१९)। अब इह कुलचर्याकूं प्राप्त भया तब धर्मविषैं दृढता धारता संता गृहस्थाचार्यके भावकरि गृहीशितानामा क्रियाकूं अंगीकार करै ॥ १४४ ॥ तब वर्णकी उत्तमताकरि गृहीशिता होय शुभवृत्ति क्रिया मंत्रादिकरि इह सर्वमैं उत्कृष्ट होय ॥ ४५ ॥ औरमें न पाइए ऐसी शुद्ध-

आचार्य गणपोषण करता अपने गुरुके स्थानककूं प्राप्त हूवा संता धर्मोपदेशविषैं यत्नवान होय ॥ १७२ ॥ कैइक दिनतौ गुरुके समीपही गुरुकी आज्ञातैं चतुर्विधसंघकूं धर्मोपदेश दे बहुरि श्रीगुरु याहि सकल श्रुतका पाठी अर तत्त्वज्ञानी महामुनि तिनिकरि आदरयोग्य उत्तम जानि संघकै समीप याहि बुलाय अपना आचार्यपद देकरि आप एक विहारी होय ॥ ७३ ॥ तब वह गुरुकी आज्ञातैं गुरुके स्थानककूं प्राप्त भया गुरुके आचरणविषैं तिष्ठै, सकलसंघकूं धर्मविषैं प्रवर्त्तावै ॥ १७४ ॥ इह गुणतीसमीं गुरुस्थानकप्राप्ति-नामा क्रिया कही (२९) बहुरि कोइक कालविषैं आपसारिखा अपना शिष्य ताहि समस्त संघका भार सौंपि आप निराकुल भया एकविहारी होय आप निःसंगत्वात्मभावना करै ॥ ७५ ॥ सो महातपस्वी असंगवृत्ति अकेला विहरता संता आत्मकल्याण करिवेकी है इच्छा जाकै सो और संस्कारतैं रहित होय ॥ ७६ ॥ शिष्य अर शास्त्रादिक तिनिविषैं राग तजि निर्ममत्व एकताकूं प्राप्त भया परमचारित्रकी शुद्ध-ताकूं आचरै ॥ ७७ ॥ इह तीसमीं निःसंगत्वात्मभावना क्रिया कही (३०)। या भांति आत्मसंस्कार-करि अतिसल्लेखनाविषैं उद्यमी भया करी है आत्मशुद्धता जानैं सो अध्यात्मरूप योगनिर्वाणकूं प्राप्त होय ॥ ७८ ॥ योग कहिए ध्यान सोही है संवेगपूर्वक प्रयोजन जाकै सो योगनिर्वाण संप्राप्तिनामा परमतत्त्व ताहि धारता ॥ १७९ ॥ तनुशोधनपूर्वक योग्यआचरणकरि रागादिक दोषनिसहित शरीरकूं कृश करै ॥ ८० ॥ इह योगनिर्वाण सन्यासविषैं अपूर्व भावना जीवने मरिनेकी आशा छोडिकरि केवल स्वरूपकी प्राप्तिकै अर्थि निर्विकल्प अवस्था धारै ॥ ८१ ॥ राग द्वेष दोऊ तजिकरि कल्याणकी प्राप्तिविषैं सकल संशय तजि परपदार्थनिविषैं आत्मबुद्धि तजै, सर्व संकल्प विकल्पतैं रहित होय ॥ १८२ ॥ ऐसी भावना भावै मैं देह नांही, मन नांही, वाणी नांही अर इनिका कारण नांही ऐसा विरक्तभया अन्यत्व भावना भावै ॥ ८३ ॥ मैं एक, मेरा कोऊ न, मैं काहुका न, ऐसा निःस्पृह होय दीनतारहित है मन जाका सो सम्यक् एकत्वभावना भावै ॥ ८४ ॥ वह योगी योगकी सिद्धिके

जिनरूपता कहिए ॥ ५९ ॥ इह जिनमुद्राका धारण कायरजीवनितैं न बनै, जैनका भेष निर्ग्रंथरूपधारी पुरुषही धारै सकलपरिग्रहका त्याग है मुख्य जाविषैं ॥ ६० ॥ इह जिनेंद्ररूपतानामा चौवीसमीं क्रिया कही (२४)। कीया है दीक्षाकै दिन उपवास जानैं बहुरि पारणाकी विधिविषैं प्रवर्त्तै शास्त्रकी समाप्ति पर्यंत मौनसहित पठन करै ॥ ६१ ॥ वह मुनि मौनका धारक विनयवान निर्मल हैं मन वचन जाके सो गुरुके समीप सकल श्रुत पढै ॥६२॥ या विधिसेती भव्यजीवनि निश्चयकरि सेया श्रुत सो या भवविषैं योग्यताकूं पोषै अर परभवविषैं आनंदकूं विस्तारै ॥ ६३ ॥ इह मौनाध्ययनवृत्तित्व पचीसमीं क्रिया कही (२५)। पढ्या है आचारांगसूत्र आदि समस्त शास्त्रका विस्तार जानैं सो विशुद्ध आचरणका धारक तीर्थंकरपदका कारण जे भावना तिनिका अभ्यास करै ॥ ६४ ॥ ते भावना महाकल्याणकी साधनहारी दर्शनविशुद्धि आदि सोलह तिनिके लक्षण पहिली कहि आए तातैं अब न कहे ॥ ६५ ॥ इह तीर्थकृद्भावना छव्वीसमीं क्रिया कही (२६)। बहुरि इंद्रीनिका जीतनहारा समस्त विद्याका वेत्ता ताकै गुरुके अनुग्रहतैं गुरुके स्थानकका अंगीकार होय आप छतांही आचार्यपदका सकल भार याहि सौंपे ॥ १६६ ॥ इह महामुनि ज्ञानविज्ञानकरि मंडित अपने गुरुका आज्ञाकारी महाविनयवान धर्मात्मा गुरुकी पदवीकूं योग्य होय ॥ ६७ ॥ इह सत्ताईसवीं गुरुस्थानाभ्युपगम क्रिया कही (२७)। महा आचारवंत पंच आचारका आचरण करणहारा गणके पोषणविषैं योग्य ताकै गणोपग्रहणनामा क्रिया महामुनि कहै हैं ॥६८॥ इह विवेकी मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका ए चतुर्विधसंघ तिनिकूं आचरै ॥ १६९ ॥ जे शास्त्रके अर्थी हैं तिनिकूं शास्त्र पढावै जिनवाणीका व्याख्यान करै अर जे दीक्षाके अर्थी हैं तिनिकूं दीक्षा दे अर जे धर्मके अर्थी हैं तिनिकूं निरंतर धर्मोपदेश दे ॥ १७० ॥ जे उत्तमव्रत हैं तिनिकी वह आचार्य प्ररूपणाकरि अव्रत हैं तिनिकूं निवारै अर जिनिकूं दोप लाग्या है तिनिकूं प्रायश्चित्त दे शुद्धता उपजावै, या भांति चतुर्विधसंघका पोषण करै ॥ ७१ ॥ इह अट्ठाईसमीं गणोपग्रहणनामा क्रिया कही (२८)। या भांति यह उत्तम

पुष्पमाला अर समीचीन वस्त्र अर देदीप्यमान दिव्य आभूषण तिनिकरि मंडित इंद्रासनविषैं आरूढ वह देवनिका महंत देवनिकरि पूज्य होय है ॥१९८॥ इह इंद्राभिषेकनामा चौतीसमीं क्रिया कही (३४) बहुरि वह इंद्र नम्रीभूत जे बडे देव तिनिका सत्कारकरि तिनिकूं तिनिके पदविषैं स्थापता संता विधिदान क्रियाविषैं प्रवर्त्ते ॥१९९॥ उनके विमान ऋद्धि उनकूं दे, ताकरि प्रसन्न भए वे देव तिनिकरि मंडित चिरकाल वह सुकृती इंद्रपदका सुख भोगवै स्वर्गलोकके विभवयोग्य, इह विधिदाननामा पैंतीसमी क्रिया कही अर सुखोदयनामा छत्तीसमी क्रिया कही ॥ २००–२०१ (३५–३६)। इंद्रोपपाद इंद्राभिषेक विधिदान सुखोदय इंद्रपदकी च्यारि क्रिया कही, अब इंद्रत्याग नामा क्रिया कहूंहूं ॥ २०२ ॥ जब इंद्रका अल्प आयु बाकी रहै तब वह अपना मरण निकट जानिकरि देवनिकूं या भांति शिक्षादे ॥ २०३ ॥ हो देवहो ! मैं चिरकाल तिहारा प्रतिपालन कीया कैइकनिकूं गुरुजन जाने कैयकनिकूं पुत्र समान माने अर प्रीतिकरि लडाए ॥ २०४ ॥ कैइकनिकूं पुरोहित मंत्री अर कैयकनिकूं मित्रसमान माने, कैयकनिकूं कामविद्याके उपदेष्टा माने ॥ २०५ ॥ कैयकनिकूं अपने प्राणसमान प्यारे जाने कैयकनिकूं अंगरक्षक समान जाने, कैयक लोकपाल तिनिकूं मानिबेयोग्य पदविषैं देखे ॥ २०६ ॥ कैइकनिकूं सेना समान अर कैयकनिकूं सेनापति समान जाने अर कैयकनिकूं स्वजनपनेकी बुद्धिकरि देखे अर कैयकनिकूं सामान्यप्रजासमान अर कैयकनिकूं सेवकसमान या भांति जुदी जुदी रीतिकरि जाने २०७ ॥ कैयकनिकूं परिवारसमान जानै, कैयकनिकूं अंतःपुरके निवासी जानै कैइक देवी वल्लभिका कैइक पट्टरानी ॥ २०८ ॥ या भांति अद्भुत प्रीति दिखाई अर तुम अद्वितीय स्वामिभक्ति मोविषैं धारी ॥ २०९ ॥ अबमैं स्वर्गलोकतैं गमन करूंगा, निकटवर्त्ती भई है मेरै मध्यलोककी लक्ष्मी ॥ २१० ॥ मैं तुम सबनिकी साखि इह इंद्रपदका शरीर तजूंहूं जो कोई और मोसारिखा इहां आय इंद्र होय ताहि सर्वसंपदा सौंपी ॥ २११ ॥ या भांति उनकूं उपदेश दे सबनिसूं निर्ममत्त्व होय श्रीवीतराग देवका ध्यान करता संता इंद्र अपना शरीर तजै वह धीरबुद्धि मरणसमैं व्याकुलताकूं न

अर्थि अखंड अनंत सुखका स्थानक जो लोकका शिखर ताविषैं अपनी बुद्धि लगायकरि योगनिर्वाणकूं ध्यावै ॥ ८५ ॥ इह योगनिर्वाणसंप्राप्तिनामा इकतीसमीं क्रिया कही (३१)। बहुरि वह योगींद्र योगनिर्वाण साधनके अर्थि उद्यमी भया समस्त आहार अर शरीरका त्याग ॥ ८६ ॥ उत्तम अर्थ जो सन्यास ताविषैं कीया है आदर जानैं वह उत्तम बुद्धिकाधारी तज्या है शरीरका ममत्व जानैं सो आपथकी मनवचन कायकूं भिन्न जानता केवल परमात्मस्वरूपका ध्यान करै ॥८७॥ अपने चित्तकी वृत्ति अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधुविषैं लगायकरि आयुके अंतविषैं योगनिर्वाणसाधनकूं अंगीकार करै ॥१८८॥ योग कहिए समाधि निर्वाण ताकरि भया है चित्तका आनंद जाकै ताकरि जो इष्टका साधन सो योगनिर्वाणसाधन कहिए ॥ ८९ ॥ इह योगनिर्वाणसाधननामा वत्तीसवीं क्रिया कही (३२)। मनवचनकायकी समाधानताकरि कीया है प्राणत्याग जानैं सो पुण्यकूं अग्रेसर होतैं इंद्रोपपादुनामा क्रिया ताहि पावै ॥ ९० ॥ इंद्र देवतानिके अधीश्वर हैं तिनिविषैं जो उपजना तपके वलतैं सो इंद्रोपपाद नामा क्रिया जिनमार्गके सेवनहारेनिके होय है ॥ ९१ ॥ वह ज्ञानी दिव्यशय्याविषैं क्षणेकमैं पूर्णयौवन होय परम आनंदका भर्‍या दिव्यतेजकरि देदीप्यमान ॥ ९२ ॥ अणिमादिक अष्ट असाधारण गुण तिनिकरि युक्त सहजके वस्त्र दिव्य माला मणिनिके आभूषण तिनिकरि शोभित होय ॥ ९३ ॥ दिव्य अनुभावकरि उपज्या परमप्रभाव ताहि धारता संता अवधिज्ञानके वलकरि आपकूं इंद्रहूवा जाणें। भावार्थ—केवल शुद्धोपयोगके प्रभाव करि तौ साक्षात् मुक्तिही पावै अर जो शुभोपयोगका शुद्धोपयोगमैं मिलाप होय तौ इंद्र अहमिंद्रादिपद पावै ॥१९४॥ इह इंद्रोपपादनामा तैतीसमी क्रिया कही (३३)। भावार्थ—पर्याप्त पूरे होतही पाया है जन्मका ज्ञान जानैं बहुरि देवनिकरि अभिषेक क्रिया होय है ॥ ९५ ॥ दिव्य संगीत वादित्र मंगल गीतनिके शब्द अर नानाप्रकार अपसरानिके नृत्यसहित रच्या है अभिषेक जाका ॥ ९६ ॥ अपने राज्यका ए चिह्न देदीप्यमान मुकुट ताहि धारै, हर्षके भरे जो कोटिक देव तिनि कीया है जय जयकार शब्द जाका ॥ ९७ ॥

धारै—विश्वेश्वरा, जगन्माता, महादेवी, महासती, पूज्या, सुमंगला ॥ २५ ॥ अर पद् कुलाचलानिकी निवासिनी पट्कुमारिका श्री ही धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी माताकी निरंतर सेवा करैं ॥ २६ ॥ बहुरि जिनराजका जन्म होतैंही इंद्र सुमेरुके सिरपरि क्षीरसागरके पवित्र जलकरि जन्माभिषेककी क्रिया करे सो पूर्वै वर्णन करि आए तातैं बहुरि विस्तार न कीया ॥ २२७–२८ ॥ इह चालीसमीं मंदरेंद्राभिषेकनामा क्रिया कही (४०)। बहुरि शिष्यभावतैं रहित जगतके गुरु तीर्थंकरदेव स्वयमेव विद्याके पारगामी आपके आपही गुरु ॥ २९ ॥ सो इंद्र पूजा करे अर या भांति स्तुति करे। हे देव! तुम जगतके गुरु, सवनिके रक्षक बिना पढाए सब पढे हो अर बिना सिखाएही सब सीखे हो, नमस्कार तुमकूं ॥ ३० ॥ इह इकतालीसमीं गुरुपूजननामा क्रिया कही (४१)। बहुरि कुमारकालविषैं जिनिकूं युवराजकी प्राप्ति होय ए महातेजस्वी पराक्रमी तिनिके पट्टबंध अभिषेक क्रिया होय ॥ ३१ ॥ इह यौवराज्यनामा वियालीसमीं क्रिया कही (४२)। बहुरि कैयक दिन पीछैं समस्त राजा जिनराजका राज्याभिषेक करैं आप राज्यासन विराजैं, समुद्रांत पृथ्वीकी रक्षा करैं, जिनिके राजमैं दूजेकी आण नांही निःकंटक इकछत्र राज करै ॥ ३२ ॥ इह तियालीसमीं स्वराज्यनामा क्रिया कही (४३)। अर कोइक तीर्थंकरकूं चक्रवर्त्तिपदवी भी होय, सो कैसे चक्रवर्त्तिपदवी होय? ताके चक्रका लाभ होय नवनिधि चौदहरत्नकी उत्पत्ति होय तब सब राजा अर प्रजा मिलिकरि पूजाभिषेक करैं ॥ ३३ ॥ इह चक्रलाभनामा चवालीसमीं क्रिया कही (४४)। सो आप चक्रकूं आगैं धरि छह खंड पृथ्वीकूं जीतैं सो दिशांजयनामा पैंतालीसमीं क्रिया कही ॥ ३४ ॥ (४५) बहुरि दिग्विजय सिद्धिकरि नगरमैं प्रवेश करै तहां चक्राभिषेकनामा क्रिया होय है सो कहै हैं ॥३५॥ चक्ररत्नकूं आगैं धरि आप मंदिरमैं प्रवेश करैं सो मंदिर महाऋद्धिरूप विभवकरि मंडित देवनिके विमानकूं हंसै है ॥ २३६ ॥ तहां मनोज्ञ आनंदमंडपविषैं क्षणेक विराजै सिरपरि चंवर ढरैं सो तिनिकरि आप ऐसे सोहैं मानूं नीझरनेसहित सुमेरुही है ॥ ३७॥ तहां निधि रत्ननिका आदरकरि कीया है चक्रका

प्राप्त होय ॥ २१२ ॥ इह इंद्र त्यागनामा क्रिया इंद्रपदतैं छूटना सो धीर विना खेद देहत्याग करै ऐसा देवनिके पतिका पद ताहि तजै, आर्त न होय ॥ २१३ ॥ इह सैंतीसमीं इंद्रत्यागनामा क्रिया कही (३७) अथानंतर तहांतैं चयकरि वह मनुष्यदेहविषैं अवतरैगा सो मरणसमय प्रभुकी पूजा करता पूजाके अंत स्वर्गतैं चवै ॥ १४ ॥ वह देवनिका राजा शीघ्र सिद्धपद पायबेका है अभिलाष जाके सो अपना चित्त सिद्धनिके नमस्कारविषैं धरै, या प्रकार इंद्रदेह तजै ॥ १५ ॥ सो कोइक इंद्र तहांतैं चयकरि तीर्थंकर होय ताकी माता शुभ सोलह स्वप्न देखै सो सोलह सपने देखिबेकरि उपज्या है माताकूं परम आनंद तासमैं सो देवनिका पति स्वर्गतैं चयकरि माताके गर्भमैं आवै सो गर्भावतारनामा कल्याणकारी क्रिया ताहि प्राप्त होय ॥२१६॥ इह गर्भावतारनामा अडतीसमीं क्रिया ताहि प्राप्त होय ॥ ३८ ॥ इह गर्भावतारनामा अडतीसमीं क्रिया है (३८)। वह प्रभु रत्ननिके मंदिरसमान माताका गर्भ ताविषैं आय उपजै सो गर्भ श्री ह्री धृति कीर्त्ति बुद्धि लक्ष्मी ए षट्कुमारिका तिनि भलीभांति सोध्या है सो गर्भमैं आवै ते पहली छह महीनेसूं कुवेर रत्नकी वर्षा करै सो पंद्रहमासलग रत्नवृष्टि होय मानूं आनंदतैं स्वर्गकी संपत्तिही मध्यलोकमैं आपके साथि आई है ॥ १७–१८ ॥ अमृतसमान आह्लादकी करणहारी शीतल मंद सुगंध पवन भवनवासीनिमैं पवनकुमारदेव तिनिकरि प्रवर्त्तै मानूं पृथ्वीरूप देवीका श्वासही है ॥ १९ ॥ अर आकाशविषैं दुंदुभि बाजे तिनिकी गंभीरध्वनि होय वर्षासमैं मयूरनिकूं ऐसी आशंका उपजी जो मेह गाज्या ॥ २० ॥ अर देव मंदार आदिक कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वृष्टि करैं जिनिकी सुगंधताकरि भंवर आय गुंजार करै ॥ २१ ॥ श्री ह्री धृति कीर्त्ति बुद्धि लक्ष्मी ए षट्कुमारिका माताकी सेवा करै ॥ २२ ॥ कोइक महापवित्र स्थानक राजऋषिका मंदिर तहां तीर्थंकरदेव अवतरैं ॥ २२६ ॥ हिरण्य कहिए रत्न तिनिकी वृष्टिकरि प्रगट भया है प्रभाव जाका सो हिरण्यगर्भ असा नाम धारता माताके गर्भविषैं तिष्ठताही तीन ज्ञानकूं धरै ॥ २४ ॥ इह हिरण्यगर्भनामा गुणतालीसमीं क्रिया कही (३९) तीर्थंकरकी माता एते नाम

ए समस्त देवनिमैं मुख्य हैं ते आयकरि चक्रनाथकी सेवा करैं ॥ २५२ ॥ इह चक्राभिषेकनामा छियालीसमीं क्रिया कही (४६)। बहुरि साम्राज्यनामा क्रियाका व्याख्यान करै हैं, औरैं दिनके आरंभविषैं धरे हैं पवित्र आभूषण जानें सो राजसभामैं सकल राजानिके मध्य सिंहासन ऊपरि विराजे ॥ ५३–५४ ॥ महादेदीप्यमान गंगाकी तरंगसमान उज्वल चमर चहुं उर सुंदर नारी ढारैं ॥ २५५ ॥ आप पृथ्वी आदि तत्व सारिखा धैर्य धरे अर जलसमान शांतता अर अग्निसमान दीप्तिता अर पवनसमान बल अर आकाशसमान निर्लेपता धारे कैसा सोहै मानूं पृथ्वी आदि तत्त्व तिनिके देवतानिके अंशकरि शोभित है देवही सेवा करिवेकूं आए हैं ॥ २५६ ॥ सो आप सर्वगुणपूर्ण प्रजाके अनुग्रहविषैं प्रवीण राजानिकूं प्रजाके समाधान निमित्त थापता थका सन्मान दान स्नेहकरि प्रजाकूं अनुराग उपजावे ॥ २५७ ॥ नमस्कार करते राजा तिनिकूं आज्ञा करै–अहो ! तुम प्रजाकूं न्यायतें पालौ, जो कदाचि अन्यायविषैं प्रवर्त्तौगे तो तिहारे राजका लोप होयगा ॥ २५८ ॥ जो अन्यायमार्गी होयकरि प्रजाकूं पीडा उपजावैगा सो राजविभूतितें रहित होयगा, क्षत्रिनिका इह अनादिधर्म है–जो दुष्ट परदारा परधन परप्राणका हारक होय ताका निग्रहकरै ताहि देशमें रहने न दे अर जो शिष्ट कहिए भला मनुष्य निजदारा निजधनविषैं संतोषी होय अर काहू प्राणीकी पीडा न करै ताका प्रतिपालन करै तासूं अतिस्नेह करै इह राजधर्म है सो राजनिकूं या धर्मकी रक्षा करनी ॥ २५९ ॥ राजा सोही जो धर्मका आराधन करै चतुर्विधसंघकी सेवा करै देशविषैं दया प्रवर्त्तावे देव गुरु शास्त्रका भक्त होय अर अग्निवाण जलवाण गिरिवाण वज्रवाण तिमिरवाण अर्कवाण इत्यादि अनेक दिव्यास्त्र हैं तिनिके अधिष्ठाता जे देव तिनिका आदर करै अर सेनाकी सावधानी राखै सुभटनिका सत्कार करै, जो राजातें रैयत प्रसन्न होयतौ राजा अवश्य पृथ्वीका भोक्ता होय, अरिनिकूं जीते ॥ २६० ॥ इह राजनिकी वृत्ति है सो तुम सावधान होयकरि पालियो अर प्रजाकूं न्यायमार्गकरि प्रवर्त्तियो जो प्रजाका विरोधी होयगा तातैं मैं प्रसन्न नांही ॥ २६१ ॥ जो क्षत्री यह क्षात्र-

उच्छव जानें बहुरि किमिच्छकदान जो इच्छापूर्णदान सो देयकरि अर मानिबेयोग्य जे राजा तिनिकूं मानिकरि ॥ ३८ ॥ आपसमान सकल राजानिकरि अभिषेककूं प्राप्त होय वे राजा महावंशविषैं उपजे हैं अर अभिषेक समैं हजारां महागंभीर आनंदके बाजे बाजैं ॥ ३९ ॥ बहुरि यथावत् अभिषेककरि राजानिमैं मुख्य च्यारि बडे राजा प्रसिद्ध हैं वंश जिनिका सो प्रभुके शिरपरि मुकुट पधरावैं ॥ ४० ॥ महा अभिषेककी सामग्रीकरि भया है चक्राभिषेक बहुरि मंगल गहने पहरे राजनिकरि सवउर नमस्कार करनेयोग्य ॥ ४१ ॥ रत्ननिकी किरणनिकरि ज्योतिरूप करी हैं सब दिशा जानें ऐसा मुकुट सो चक्रवर्त्तिपदका मुख्य चिह्न है ॥ ४२ ॥ अर रत्ननिकी किरणनिकरि मिश्रित ऐसे कुंडल काननिमैं धरे मानूं वे कुंडल सरस्वतीकी क्रीडाका रथ ताके दोऊ पहिये हैं ॥ ४३ ॥ अर उरःस्थलरूप गृहविषैं महाकांतिरूप स्थूल मोतीनिका हार ऐसा सोहै मानूं मंगलाकार तोरणही है ॥ ४४ ॥ अर लहलहाट करता ब्रह्मसूत्र जो यज्ञोपवीत ताकरि ऐसा सोहै मानूं तटविषैं झरै हैं नीझरने जाके ऐसा महारमणीक मूर्त्तिवंत सुमेरुही है ॥ ४५ ॥ अर रत्ननिके कडे पहरे अर भुजबंध बांधते तथा भुजशिखर जे कांधे तिनिपरि आभूषण पहरे अत्यंत सोहैं, ए दोऊ कांधे मस्तकके समीप ऐसे सोहैं मानूं सुमेरुके समीप निषधाचल नीलाचलही हैं ॥ ४६ ॥ अर कटिमंडलविषैं देदीप्यमान कांचीदाम ताहि धरे ऐसा सोहै जैसा रत्नवेदीकरि वेढ्या महाद्वीप सोहै ॥ ४७ ॥ अर मंदारजातिके पुष्प तिनिका सेहरा ताहि धरे है ताकी सुगंधताकरि भंवरानिके समूह गुंजार करै हैं सो मानूं संगीतही आरंभ्या है ॥ २४८ ॥ अर तासमय योग्य औरहू जे मंगल आभूषण तिनिकूं धरे ऐसा सोहता भया मानूं शिखासहित साक्षात लक्ष्मीका पुंजही है ॥ २४९ ॥ ता समैं ए सकल राजा प्रीतिकूं प्राप्त भए पृथ्वीनाथकी स्तुति करै हैं—हे नाथ ! आप विश्वंजय दिशानिके जीतनहारे महादिव्यमूर्त्ति सबनिके अधिपति हो ॥ २५० ॥ अर नगरके लोक प्रजाविषैं मुख्य ते चरणारविंदका अभिषेक करैं अर चरणोदक लेकरि सिरपरि धरैं ॥ २५१ ॥ अर श्रीदेवी अर गंगासिंधुदेवी

ताविषैं यत्न करै जो राजा क्षात्रकुलकी रीति न जानैं तौ अधर्मी होय तब दुराचारी याके कुलकूं दूषित करै, क्षात्रकुलकी वही रीति है जो दीननिविषैं दया अर उद्धतविषैं तेज ॥ २७२-२७३-२७४ ॥ बहुरि जैसैं आत्माका पालन अर कुलका पालन कीया तैसैं आत्मरक्षाविषैं सदा यत्न करै, राजा आपकी रक्षा करै तौ सर्वकी रक्षा करै ॥ २७५ ॥ जे दावादार शत्रु हैं स्ववर्गके अथवा परवर्गके तिनिथकी राजाका विनाश होय है जो राजा आपकी रक्षा न करै तौ शत्रुनितैं दगा खाय, अपनेही सेवक तिनिमैं कोऊ क्रोधी अर कोऊ लोभी काहूका आपनैं अवज्ञाकरी तिनितैं दगा उपजै ॥ २७६ ॥ कैइक मुंहमीठे हैं अर परिणामविषैं खोटे हैं तिनिकूं जाने रहै अर कैइक दबायकरि एकांतविषैं कडवे वचन कहै हैं तिनिकूं जानैं जो इनितैं दगा नांही-खरे हैं, या भांति राजा अपने सेवकनिकूं जानि जे दुष्ट हैं तिनिका त्यागकरि यत्नथकी आपकूं पालै ॥ ७७ ॥ बहुरि राजा समंजसवृत्ति कहिए विपरीतवृत्तिका धारक न होय शुद्धवृत्तिका धारी होय ऐसा न होय जो-कबहूं सांचेकूं झूठा करै अर झूठकूं सांचा करै जो अपना पुत्र दुराचारी होय तौ वाहीकूं यथायोग्य दंड दे जो राजा विपरीतवृत्ति होय अर अन्यायीकी पक्ष करै तौ अपने सेवकनिकरिही तजिबेयोग्य होय ॥७८॥ तातैं राजा अन्यायमार्गी न चाहिए प्रजाविषैं समदर्शीपना इह राजाका समंजसनामा गुण राज्यका मूल है प्रजाविषैं विषम दृष्टि न धारै, वचन ऐसा बोलै जामैं पाप नांही काहूकी घात नांही सदा शुभवचन कहै दंडरहित कठोरतारहित न्यायरूप प्रमाणवचन बोलै ॥७९॥ सो राजा मांहिले षट् वेरी जे काम क्रोध लोभ मोह मद हर्ष तिनिका जीतनहारा अपने परिणामनिकी वृत्तिकूं पालै अपने राजविषैं तिष्ठता इहलोक परलोकविषैं आनंदरूप होय ॥ ८० ॥ इह समंजस कहिए प्रजाविषैं समदर्शीभाव ता सहित कुलपालन मतिपालन आत्मपालन प्रजापालन भलीभांति करै इह क्षात्रधर्म शास्त्रोक्त पालता संता राज्य करता यश, धर्म अर विजयकूं पावैगा ॥ ८२ ॥ प्रशांत है बुद्धि जाकी ऐसा भगवान तीर्थेश्वर चक्रनाथ उपज्या है वैराग्य जाकूं सो पुत्रकूं या भांति शिक्षा देकरि तपका

धर्म पाले सो धर्मके प्रसादकरि रणविषैं जय पावे पृथ्वीकूं जीतै सो राजा इंद्रीनिका जीतनहारा कामक्रोधादिकका वशि करणहारा न्यायमार्गी होय ॥ २६२ ॥ सो याही लोकविषैं ताके यशका लाभ होय पृथ्वीका लाभ होय महाउदय होय अर परभवविषैं इंद्रादिपद पावे अनुक्रमतैं त्रैलोक्यकूं जीतै सिद्धपद पावे ॥ २६३ ॥ या भांति वह नरेंद्रनिका नाथ राजानिकूं प्रजाके पालनकी विधि बारंबार आज्ञाकरि आप प्रजाकूं योगक्षेमके चिंतवनकरि पालता भया, अलभ्यका लाभ सो योग अर लब्धकी रक्षा सो क्षेम ॥६४ ॥ या भांति साम्राज्य क्रियाके पालिवेकरि राजा इह लोक परलोकविषैं आनंदकूं पावे ॥ २६५ ॥ इह साम्राज्यनामा सैंतालीसमीं क्रिया कही (४७) या भांति वह तीर्थनाथ चक्रनाथ पदवीका धारक चिरकाल राजा अर प्रजानिकूं पाले बहुरि काहूसमैं उपज्या है वैराग्य जाकूं तब जिनदीक्षाविषैं उद्यमी होय ॥ २६६ ॥ जो चक्रीही होय अर तीर्थेश्वर पद न होय तौ महामुनिनिपै जाय जिनेंद्रकी दीक्षा आदरे अर तीर्थेश्वर चक्री होयतौ वैराग्यके भाव भये लौकांतिक देव आप बारंबार स्तुतिकरि वैराग्य दृढ करे, तीर्थेश्वर आपही स्वयंगुरु हैं सो सिद्धनिकूं नमस्कार करि स्वयमेव चारित्र धारैं ॥ २६७॥ वैराग्य समैं ज्येष्ठपुत्रकूं समस्त राजानिकी साखि राज्यका अर्पण करै ता समैं पुत्रकूं या भांति आज्ञा करै ॥ २६८ ॥ हे पुत्र ! तू न्यायरूप धनकरि प्रजाके आनंद निमित्त यत्न करियो, इह प्रजा न्यायकरि पाली थकी कामधेनु समान है ॥ २६९ ॥ राजानिका इही धर्म है जो न्यायकरि धनका उपार्जन करै अर न्यायहीकरि बढावे रक्षा करे अर पात्रदान करै अर करुणादान करै ॥ २७० ॥ प्रजाके पालिबे अर्थि राजा अपनी बुद्धि थिर राखै जो राजाकी बुद्धि हित अर अहितकूं जानैं तौ इह लोक परलोकका अर्थ सिद्ध करै तातैं राजा जितेंद्री होय अर बडे पुरुषनिका संग करै, धर्मशास्त्र अर नीतिशास्त्र तिनिके ज्ञानतैं बुद्धिकूं निर्मल करिवेयोग्य होय ॥ २७१ ॥ अर जो राजा योग्य अयोग्यकूं न जानैं तौ विमती होय जे मिथ्याज्ञानके लेशकरि उद्धत हैं तिनिके वशि होय सो राजाकूं प्रथमतौ बुद्धिका पालन बहुरि कुलमर्यादाका पालन इह बडा पदार्थ है

लोकालोकका प्रकाशक केवलनामा परमज्ञान ॥ ९८ ॥ जब समस्त घातियाकर्मके नाशतैं प्रगट होय होनी है सिद्धदशा जाकै तब योगसंमह नामा क्रिया ताहि धारै ॥ ९९ ॥ इह केवली परमज्ञानकूं प्राप्त भया ज्ञान अर ध्यानका संयोग सो योग कहिए ताकरि कीया महिमाका अतिशय सो योगसंमह कहिए ॥ ३०० ॥ इह योगसंमहनामा गुणचासमीं क्रिया कही (४९) याकै केवलकी उत्पत्तिविषैं बारिली विभूति अष्टप्रातिहार्यादिरूप प्रगट होय, कैसा है भगवान केवली—इंद्रनिकरि करी है पूजा जाकी ॥ ३०१ ॥ प्रातिहार्य आठ महामनोहर अर बारह सभा अर रत्ननिके स्तूप अर मंदिरनिकी पंक्ति अर कोट बहुरि ध्वजानिकी पंक्ति इत्यादि समवसरणकी विभूति विस्तरै सो आर्हंत्यनामा क्रिया कहिये ॥ २-३ ॥ इह पचासमीं आर्हंत्यनामा क्रिया कहिए (५०) बहुरि अरहंतदेवका विहार प्रसिद्ध है धर्मचक्र आगें आगैं चालै सो ऋषभदेवके विहारविषैं व्याख्यान पहलीही कीया तातैं अब न कीया ॥ ४ ॥ इह विहारनामा इक्यावनमीं क्रिया कही (५१) परमार्थकी सिद्धिके अर्थि कीया है धर्मका उपदेश जानें बहुरि तीर्थ-विहारके पीछैं योगत्यागनामा परिक्रम क्रिया होय है ॥ ५ ॥ विहारका परिहार अर समवसरणका विघटना योगके रोकिबे अर्थि परिणामनिकी वृत्ति सो योगत्याग कहिए ॥ ६ ॥ दंडकपाटादि प्रसिद्ध क्रिया सो योगत्याग मांहि आयगई तातैं जुदी न कहा ॥ ७ ॥ इह योगत्यागनामा बावनमी क्रिया कही (५२) रोके हैं समस्त मन वचन कायके योग जानैं ऐसा जिनेश्वर प्राप्त हुवा है अठारह हजार शीलके भेदनिकूं अर क्षीण कीये हैं च्यारि अघातिया कर्म जानैं ॥ ८ ॥ परमनिर्वाणकूं प्राप्त भया ताकै अग्र-निर्वृतिक्रिया होय है सो इह क्रिया स्वभावजनित है ऊर्द्ध्वगमनस्वभावकरि एक समयमैं सिद्धलोककूं प्राप्त होय ॥ ३०९ ॥ इह अग्रनिर्वृतिनामा तरेपनमीं क्रिया कही (५३) ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय ए च्यारितो घातियाकर्म तिनिके क्षयतैं केवली होय अर वेदनीय नाम गोत्र आयु ए च्यारि अघातिया कर्म इनिके क्षयतैं मुक्त होय । ए गर्भ आदि निर्वाणपर्यंत तरेपन क्रिया कहीं सो

उद्यमी होय तब इंद्रादि तपकल्याणककी विधि करैं ॥ ८३ ॥ सो राजनिका राजा राजऋषि तीर्थाधिपति महादान देकरि चक्रवर्त्तीपदकूं तजता संता घरथकी वनकूं गमन करै ॥ ८४ ॥ कैइक दूर तौ वह पालिकी राजानिमैं बडे धोरी महामुकुटबद्ध राजा पृथ्वीतैं उठाय कांधै धरि ले चालैं बहुरि भक्तिके भरे इंद्र पालिकी कांधै धरि लेजांहि ॥ ८५ ॥ वह पालिकी देदीप्यमान रत्ननिकी निर्मापी मानूं सूर्यका विमान पृथ्वीविषैं आया है तापरि भगवान आरूढ होय वनकूं जांय ॥ ८६ ॥ समस्त आकाशकूं रोकते अनेक सूर्यनिकी प्रभा विस्तारते देव आगैं पीछैं तथा दाहिने बांवे ले जांहिं, देवनिके तेजकरि मंद होय गई है सूर्यकी प्रभा ॥ ८७ ॥ अर सकल राजा कुमारकूं आगैंकरि पीछैं पीछैं चले आवैं, कैसा है कुमार पाया है राज्यका नवीन उदय जानैं ॥ ८८ ॥ अर नवनिधि चौदह रत्न पीछैं पीछैं आवैं आपनैं त्याग कीए तातैं मंद होय गई है कांति जिनिकी ॥ ८९ ॥ अर समस्त सेनाके लोक धीरे धीरे चले आवैं पवनकरि हालती जे ध्वजा तिनिके समूहकरि रुकि गया है आकाश जहां ॥ ९० ॥ अर बाजे हैं देवनिके वादित्र अर नृत्य करै हैं अपसरानिके समूह अर गावैं हैं मंगलीक गीत मधुरस्वरकरि किंनरी देवी ॥ ९१ ॥ वह भगवान तपकल्याणककूं प्राप्त भया कोइक पवित्र स्थानकविषैं शिलाऊपरि जाय विराजै सो शिला मुनिके चित्तसमान निर्मल अतिविस्तीर्ण है ॥ ९२ ॥ अद्भुत है उदय जाका सो प्रभु आपकूं निर्वाणदीक्षाविषैं प्रवर्त्तावता संता इंद्रादिक देवनिकरि पूज्य होय महाउत्कृष्ट सामग्रीकरि अति आनंदसूं इंद्रादिक पूजा करैं ॥ ९३ ॥ जो इहां समस्त विधि है केशलुंचनादि सो सकल ऋषभके वैराग्यविषैं कही है सो जानि लेनी ॥ ९४ ॥ इह अडतालीसमीं निष्क्रांतिनामा क्रिया कही (४८)। इह क्रिया निर्वाणकी देनहारी ताके पीछैं योगसंमहनामा क्रिया होय ॥ ९५ ॥ जब इह अंतर बाह्य परिग्रहतैं रहित भया निःसंगताकूं आचरै तब याकै जिनकल्पनामा सर्वोत्कृष्ट महादुर्धर तपोयोग होय ॥ ९६ ॥ बहुरि अष्टम गुणस्थानतैं क्षपकश्रेणी चढै, शुक्लध्यानरूप अग्निकरि भस्म करी हैं घातिकर्मरूप विषमवनी जानैं ॥ २९७ ॥ तब

तथा अणुव्रतकूं सन्मुख होय ताकी जो वृत्ति सो दीक्षा कहिए ता दीक्षाकूं दृढ करनहारी जो क्रिया सो दीक्षान्वयाक्रिया कहिए ॥ ५ ॥ ताके भेद अडतालीस पहली निर्णय कीए, तिनिके भेद अर लक्षण अब वर्णन करूंहूं ॥ ६ ॥ तिनि अडतालीस क्रियानिमैं पहली अवतार क्रिया है सो सुनहु—पहली अविधिके मार्गकरि दूषित हुता जो भव्यजीव सो विधिमार्गके ग्रहणकूं सन्मुख भया ॥ ७ ॥ तब वह विचक्षण जायकरि महाबुद्धिवान योग्य आचरणका आचरणहारा योगीश्वर अथवा गृहस्थाचार्य कहिए उत्तम श्रावक ताहि पूछै—॥ ८ ॥ हे महाबुद्धिके धारक ! मोहि निर्दोष धर्मका स्वरूप कहौ वीतरागके मार्ग टारि और-विषैं कषायके प्ररूपणहारे मार्ग मोहि दोषरूप भासै हैं ॥ ९ ॥ वीतराग भगवानके वचननितैं अन्य जे वचन हैं ते उत्तम पुरुषनिके वचन नांही, कही है क्रियाकी विधि हिंसारूप जिनिमैं ॥ १० ॥ या भांति वह भव्यजीव पूछै तब ताहि आचार्य तथा गृहस्थाचार्य महापंडित सांचा मुक्तिका मार्ग जो दयाधर्म महा-विवेकरूप सो दिखावै ॥ ११ ॥ ए वचन कहै—हे भव्य ! तू कल्याणके कारण केवली तथा श्रुतकेवलीके वचन सत्य जानि अर तिनिबिनां और वचन दोषरूप मानि ॥ १२ ॥ वीतराग सर्वकावेत्ता ताके पवित्र वचन सत्य हैं भगवान केवलीही मोक्षमार्गके दिखावनहारे हैं ॥ १३ ॥ रूप तेज गुणस्थान अमृत-रूप ज्ञान ध्यान दृष्टि सुख वीर्य अनेकलक्षण ऋद्धि दान सुंदरता ॥ १४ ॥ इत्यादि गुणनिकरि भगवान इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादि सबनिमैं उत्कृष्ट हैं ते शास्त्रमैं आप्त कहिए सर्वज्ञ कहिए परमेश्वर कहिए ॥ १५ ॥ तातैं कल्याणके अर्थीनिकूं सर्वज्ञका प्ररूप्या मार्ग सोही कल्याणका कारण है सो मार्ग वादीनिकरि अखं-डित है तिनिकरि स्पर्श्या न जाय ॥ १६ ॥ भगवानका वचन युक्त्यागम परमागमरूप अद्वितीय अतिगंभीर प्रमाण है आज्ञा जाकी अल्पाक्षर संशयरहित सो धर्मका मूल जानौं ॥ १७ ॥ ता सर्वज्ञके वचनतैं श्रुत मंत्र क्रियादिक सकलपदार्थ निश्चय करहु ताविषैं सर्व यथार्थ भास्या है ऐसा और ठौर नांही ॥ १८ ॥ सो मैं तुमकूं अनुक्रमतैं ते पदार्थ विस्तारतैं कहूंहूं जिनिकरि भ्रम दूर होय धर्मका स्वरूप

भव्यजीवनिकूं आचरणीं ॥ ३१० ॥ ए गर्भान्वयक्रिया तरेपन यथोक्त विधिकरि द्विज कहिए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तिनिकूं आचरणीं इनिमें जो अंतर्गत भेद हैं, सो अगिले पर्वविषें कहिएगा ॥ ३११ ॥ या भांति भरतक्षेत्रका स्वामी भलै प्रकार द्विजनिकूं वीतरागके मार्गविषें थापता थका कहता भया—ए क्रिया सत्पुरुषनिकूं योग्य है गर्भाधानक्रिया है आदि जिनिकै अर निर्वृतिगमन क्रिया है अंत जिनिकै, ए तरेपन क्रिया चक्रेश्वर कहिकरि अडतालीस उचित दीक्षान्वयक्रिया तिनिका व्याख्यान आरंभता भया ॥ ३१२ ॥ ए गर्भादिके सत्क्रिया उत्तमकुलनिकरि आदरिबेयोग्य तिनिकूं सुनिकरि भलीभांति पढिकरि उचित सामग्रीके लाभतें जिनेश्वरके मार्गविषें लगाई है बुद्धि जानें सो पुरुष महाबुद्धिवान निकटसंसारी आपथकी तथा गुरुके उपदेशथकी तत्त्वबोधकूं पाय इनि क्रियानिकूं धारि तीन जगतका चूडामणि होय ॥ ३१३ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे द्विजोत्पत्तौ गर्भान्वयक्रियावर्णनं नाम अडतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३८ ॥

अथ उनतालीसवां पर्व ।

अथानंतर मनु कहिए सोलवां कुलकर आदिचक्री सो दीक्षान्वयक्रिया अडतालीस महाफलकी देनहारी द्विजनिकूं कहता भया ॥ १ ॥ इहां कोऊ पूछै भरतकूं सोलवां कुलकर कह्या सो कुलकरतौ चौदाही हैं, ताका समाधान—प्रथम जिनेश्वर अर प्रथम चक्रेश्वर तिनिहूंकूं सिद्धांतविषें कुलकर संज्ञा है सो पंद्रमा कुलकर आदीश्वरस्वामी अर सोलहवां कुलकर भरत इह जाननी। भरत कहै है—भो ब्राह्मणो ! मैं तुमकूं अवतारादि निर्वाण पर्यंत अडतालीस दीक्षान्वय क्रिया कहूंहूं, ए क्रिया मोक्षका कारण हैं ॥ २ ॥ व्रतका धारण सो दीक्षा, ताके दोय भेद एक महाव्रतीदीक्षा दूजी अणुव्रतीदीक्षा, जो सकल दोषनिकी सर्वथा निवृत्ति सो महाव्रतदीक्षा अर एकदेशनिवृत्ति सो अणुव्रतदीक्षा ॥ ३ ॥ हिंसादि सकल पापनिका त्याग सो महाव्रत अर त्रसकायकी हिंसा आदि स्थूल पापनिका त्याग सो अणुव्रत कह्या ॥ ४ ॥ जो भव्यजीव महाव्रत

धारक भया श्रीगुरुतौ धर्मके उपजावनहारे पिता भए अर तत्त्वज्ञान गर्भ भया ताथकी नवीन अवतार धर्या ॥ ३४ ॥ इह अवतारक्रिया गर्भादानक्रियावत् जाननीं जातें जन्मकी प्राप्ति दोन्यूंही क्रियानिविषें है ॥ ३५ ॥ इह प्रथम अवतारक्रिया कही (१)। बहुरि याकैं व्रतका लाभ होय गुरुके चरणनिकूं कीया है प्रणाम जानैं अर शास्त्रोक्त विधिकरि व्रतके समूहकूं प्राप्त भया ॥ ३६ ॥ इह दूजी वृतलाभनामा क्रिया कही (२) पूजाकी विधिपूर्वक कीया है उपवास जानैं ताके स्थान लाभ होय तब इह विधि उचित है ॥३७॥ भगवानका पवित्र मंदिर तहां अष्टदलकमलका मांडला मांडै अथवा समवसरणका मंडला मांडै ॥ ३८ ॥ महासूक्ष्म पीस्या चून जलकरि मिश्रित ताकरि अथवा चंदनिकरि मांडला मांडै ॥ ३९ ॥ सो वह अष्टदलकमलका मंडल अथवा समवसरणका मंडल प्रवीणपुरुष विधिपूर्वक मांडै तहां करी है सब उर विधिपूर्वक जिनेश्वरकी पूजा ॥ ४० ॥ गृहस्थाचार्य भव्यजीवकूं जिनप्रतिमाके सन्मुख बैठावै अर वाके सिरपरि हाथ धरै अर कहै जो–तोहि श्रावककी दीक्षा भई ॥ ४१ ॥ पंचमुष्टि विधानकरि अथवा पंचगुरुमुद्राके विधानकरि थाका मस्तक स्पर्शो अर इह कहै—याही दीक्षाकरि पवित्र भया ऐसा कहिकरि आसिका याके सिरपरि मेलै ॥ ४२ ॥ बहुरि पंचणमोकार मंत्रका याहि उपदेश करै अर कहै–इह मंत्र तोहि सकल पापानितैं निवृत्तकरि पवित्र करौ ॥ ४३ ॥ इह विधिकरि बहुरि याहि पारणकूं पठावै सो गुरुके अनुग्रहतैं प्रसन्न भया अपने घर जाय ॥ ४४ ॥ इह तीजी स्थानलाभक्रिया कही (३)। दिखाया है स्थानलाभ जाकूं बहुरि याकैं चौथी गणग्रहनामा क्रिया कहै हैं–जे भगवान टारि और देवता हैं जिनिकूं अज्ञानतैं पूजे था तिनिकूं अपने घरतैं और ठौर मेलै ॥ ४५ ॥ उनकूं ऐसे वचन कहै एतेकाल मैं तुमकूं आदरसूं पूजे अब मैं वीतरागदेवकी पूजा करूंगा ॥ ४६ ॥ तातैं क्रोधकरि कछु प्रयोजन नांही अब और ठौर तिष्ठो ऐसा प्रगट कहि उनकूं जहां बाधा न होय और सेवा भी न होय ऐसी ठौर मेलै ॥ ४७ ॥ इह चौथी क्रिया जो रागी देवनिकूं अपने घरतैं विदाकरि वीतरागदेवकूं पधरावै ॥ ४८ ॥ इह गणग्रहनामा चौथी क्रिया कही (४)। बहुरि पांचमी पूजा-

यथार्थ भासै ॥ १९ ॥ वेद पुराण स्मृति चारित्र क्रियाकीविधि मंत्र देवता भेष अर शुद्धआहारादिक ए पदार्थ जहां यथार्थ प्ररूपे सो धर्म सो उत्तममार्ग तातैं और सकल मार्गाभास कहिए मार्गसे दीसैं परंतु मार्ग नांही ॥ २०–२१ ॥ सर्वज्ञके प्ररूपे द्वादशांग पापरहित सोही श्रुत सोही वेद जिनिमें हिंसाका उपदेश नांही ॥ २२ ॥ अर पुराण धर्मशास्त्र स्मृति तेई जिनिमें हिंसाका निषेध अर जिनिमें हिंसाका उपदेश है ते सदोष जानहु ॥ २३ ॥ जहां पापका त्याग सोही व्रत सोही षट्कर्म कहिए देवपूजा गुरुसेवा स्वाध्याय संयम तप दान अर ब्रह्मचर्य आदि चारूं आश्रम जे सिद्धांतमें कहे सोही सत्य अर जे मनुष्यनि बुद्धिकरि कल्पे ते यथार्थ नांही ॥ २४ ॥ अर गर्भादि निर्वाणपर्यंत जे क्रिया परमागमविषें कहीं तेही सत्य अर जे क्रिया गर्भादिक स्मशानपर्यंत लोकनि कही ते नांही ॥२५॥ अर मंत्र तेही जे आधानादि क्रियानिविषें कहे अर जे प्राणहिंसाविषें प्रवर्त्तैं ते मंत्र नांही ॥ २६ ॥ अर देव वीतराग भगवानही हैं जो सकल सुर असुरनिका ईश्वर जीवनिकूं शांतिका कारण अर जे महाक्रूर आमिषके आहारी देव नांही देवनिकैं मांसका आहार न होय ॥२७॥ अर जो जिनभाषित मुक्तिका साधन मुनि अर्जिका उत्कृष्ट श्रावकका भेष सोही जिनलिंग और रोमचर्मादिकका धारण सो सूत्रोक्त लिंग नांही ॥ २८ ॥ अर मांसरहित भोजन सो आहारकी शुद्धता अर जे मांसाहारी हैं ते सर्व जीवनिके शत्रु जानहु, मांसका भोजन महापाप है ॥ २९ ॥ अर जे मुनि दयालु पुरुष हैं तिनिहीकैं अहिंसाकी शुद्धता जानहु अर जे पशुबधविषें रत हैं तिनिकै कदापि शुद्धि नांही ॥ ३० ॥ अर कामकी शुद्धि तिनिहीकै है जे मुनि मन इंद्रियनिके जीतनहारे स्त्रीसंगतैं पराङ्गमुख हैं अथवा जे श्रावक निजस्त्रीविषें संतोपके धारक परदाराके सहोदर हैं तिनिहीकै कामशुद्धि जानहु, और सब विडबना है ॥ ३१ ॥ या भांति जाका मन विचारपूर्वक शुद्ध सो सर्वज्ञ ताका उपदेश्याधर्म सोही हितके अर्थीनिकूं कल्याणरूप है ॥ ३२ ॥ या भांति वह भव्यजीव उत्तम वक्तायकी धर्मका श्रवणकरि दयाके मार्गविषें बुद्धि धरै अर हिंसामार्गतैं प्रीति तजे ॥ ३३ ॥ तब वह भव्यजीव धर्मरूप जन्मका

क्रियाविषैं विवाहकी क्रियां कही ताही रीति भगवानकी पूजा विधिपूर्वककरि स्त्रीको स्वीकार करै। जो वह श्राविकाके व्रतमैं विमुख होय तौ अंगीगार न करै ॥ ६० ॥ इह विवाहनामा बारमीं क्रिया कही (१२)। बहुरि तेरमीं वर्णलाभ किया होय और जे व्रतके धारक उत्तम श्रावक हैं षट्कर्मके पालक तिनिसूं कन्या प्रदानादि संबंध करिबेकी है इच्छा जाकै ॥ ६१॥ सो च्यारि बडे श्रावक महाक्रियाके धारक तिनिकूं बुलायकरि इह कहै जो मोहि तुम आप समान कीया ॥ ६२ ॥ तुम संसार तारक देव ब्राह्मण हो लोकविषैं पूज्य अर मैं श्रावकके व्रतका धारक भया, अंगीकार करी है अणुव्रत दीक्षा मैं ॥ ६३ ॥ जो श्रावकका आचार था सो मैं आचर्या देव गुरुकी पूजा करी पात्रनिकूं भक्तिकरि दान दीए दीननिकूं दयाकरि दीए ॥ ६४ ॥ गुरुके अनुग्रहथकी अयोनिसंभव जन्म मैं पाया चिरकालके अज्ञानरूप अव्रत तिनिकूं तजिकरि जे पूर्वै नहीं अंगीकार कीए थे सम्यक् सहित श्रावकके व्रत ते मैं आदरे ॥ ६५ ॥ अर व्रतकी शुद्धताकै अर्थि मैं जनेऊका धारण किया अर उपासकाध्ययनसूत्र भलीभांति भण्या ॥ ६६ ॥ जौलग उपासकाध्ययनका अध्ययन कीया तौलग ब्रह्मचारीके रूप रह्या बहुरि व्रतावतरणकै अंति आभरणादि अंगीकार कीए अर मेरी पहली अव्रत अवस्थाकी स्त्री ताहि श्रावकके व्रत दिवाय ताका ग्रहण बहुरि व्रतावतरणकै अंति आभरणादि कीया ॥ ६७ ॥ या भांति कीया है श्रावकका अंगीकार मैं सो अब तुम सारिखे साधर्मीनिकी क्रियातैं मोहि वर्णलाभक्रिया योग्य है ॥ ६८ ॥ या भांति उनकूं कहै तब कहै तुम सत्य कहौ हौ तुम्हारै कोऊ क्रिया जिनधर्मसूं विपरीत नांही तिहारे वचन प्रसंसायोग्य हैं तुम सारिखा और उत्तम ब्राह्मण कौन ? ॥ ६९ ॥ तुम सारिखे सम्यग्दृष्टीनिकै अलाभविषैं बाह्यदृष्टीनिसूं संबंध होय है ॥ ७० ॥ ऐसा कहिकरि वे उत्तम श्रावक ब्राह्मण याकी प्रसंसाकरि वर्णलाभ क्रिया करि याहि युक्त करै पुत्रपुत्रीनिका संबंध यासूं करै उनकी आज्ञातैं वर्णलाभक्रियाकूं पायकरि उनकी समान होय ॥ ७१ ॥ इह वर्णलाभनामा तेरमी क्रिया कही (१३) अथानंतर कुलचर्या कहिए है—आर्य षट्कर्मकी वृत्ति सोही याकै

राध्य नामा क्रिया जो भगवानकी पूजाकरि उपवासकरि द्वादशांगके अर्थ सुनै जिनवाणीका धारण करै ॥ ४९ ॥ इह पूजाराध्यनामा पांचमीं क्रिया कही (५)। बहुरि पुण्यकी करणहारी पुण्ययज्ञनामा क्रिया भव्यजीव अंगपूर्वका अर्थ साधर्मीसहित सुनै ॥ ५० ॥ इह छठी क्रिया कही (६) बहुरि याके जिनसूत्रके श्रवणतैं व्रतविषैं दृढचर्या होय अंगपूर्वनिकूं भलीभांति सुनि चौदह प्रकीर्णकनिका श्रवण करै ॥ ५१ ॥ इह दृढचर्यानामा सातमी क्रिया कही (७) अर या दृढव्रतके पर्वोपवासविषैं कायोत्सर्गका धारण होय, सबही पर्वनिके उपवासविषैं रात्रिकूं कायोत्सर्ग धारै ॥५२॥ इह आठमीं उपयोगिता नामा क्रिया कही (८)। जिन भाषित क्रियाके समूहकरि याके अंतरंगकी शुद्धता होय तव इह यज्ञोपवीत धारै ॥ ५३ ॥ भलीभांति भण्या (पढ्या) है जिनसूत्र जानै यज्ञोपवीत धारणका जो भेष अर व्रत दीक्षा ताका देव गुरुकी साखि विधिवत् प्रतिपालक होय ॥ ५४ ॥ शुक्लवस्त्र अर यज्ञोपवीतका धारण भेष कहिए अर देवपूजा गुरुसेवा स्वाध्याय संयम तप दान ए षट्कर्म इनिका व्रत है ॥ ५५ ॥ अर शास्त्रोक्त श्रावकके व्रतकी दीक्षा सो समय कहिए जब इह जिनमार्गी होय तव गोत्रजात्यादि नामा मार्ग धारै ॥५६॥ इह उपनीतिनामा नवमीं क्रिया कही (९) बहुरि इह जनेऊका धारक होयकरि व्रतचर्याका आश्रय करै सातमां अंग उपासकाध्ययननामा सूत्र भली भांति गुरुके निकट अर्थसंयुक्त भणै ॥ ५७ ॥ इह दशमी व्रतचर्यानामा क्रिया कही (१०) जौलग उपासकाध्यायनका पठन करै तौलग ब्रह्मचारीके रूप रहै, चोटीके गांठि अर सिर नंगे अर गलेमैं जनेऊ अर कटिविषैं त्रिगुणरूप मूंजके डोरेका बंध अर पवित्र उज्ज्वल धोवती पहर पायनिमैं पादत्राण नांही अर धोवती दुपटा सिवाय और वस्त्र नांही आभूषण नांही अर उपासकाध्ययन भणि चुकै तव गृहस्थाचार्यके निकट ब्रह्मचारीका भेष उतारि आभूषणादि अंगीकार करै ॥ ५८ ॥ इह व्रतावतरणनामा ग्यारमीं क्रिया कही (११) बहुरि याकै विवाह क्रिया होय, जिनधर्मके अंगीकार बिना पहली स्त्री परणी हुती ताकूं गुरुके निकट श्रावकके व्रत लिवाय ताका ग्रहणकरै ॥ ५९ ॥ जो गर्भान्वय

शुद्धता जातिकी शुद्धता कहिये ॥८५॥ दोऊ शुद्धता होय ताकै सज्जाति कहिए सो सज्जातिकी प्राप्ति होतैं उत्तमगुणनिकरि रत्नत्रयकी प्राप्ति होय है ॥ ८६ ॥ आर्यखंडविषैं सज्जातिकी प्राप्तितैं देहादि उत्तम सामग्रीकरि जीवनिकूं कल्याणकी प्राप्ति होय है ॥ ८७ ॥ उत्तम शरीरके जन्मकरि इह सज्जाति कही इह सज्जाति है मूलकारण जिनिका ऐसी सर्व इष्टअर्थकी सिद्धि पुरुषनिकै होय है ॥ ८८ ॥ इह तौ शरीरके जन्मकी शुद्धता कही बहुरि संस्कार जन्मकी शुद्धता करि सज्जाति कहिए है जाहि पायकरि भव्यजीव ब्राह्मणपनैंको प्राप्त होय ॥ ८९ ॥ जैसे निर्मल खानिका उपज्या रत्न संस्कारके योगतैं उत्कृष्टताकूं प्राप्त होय तैसें उत्तमकुलका उपज्या क्रिया मंत्रादिकरि संस्कारी भया उत्कृष्टताकूं प्राप्त होय ॥ ९० ॥ बहुरि जैसें सुवर्ण अग्नि संस्कारकूं पायकर अत्यंत शुद्ध होय तैसैं भव्य जीव इनि क्रियानिकूं पायकरि अत्यंत शुद्ध होय ॥ ९१ ॥ सो संस्कार ज्ञानकरि उत्पन्न है सम्यज्ञान समान और उत्कृष्ट नाहीं जब यह उत्तम जीव महासुकती सर्वज्ञके मुखतैं उपदेशसुनि साक्षात् सम्यज्ञानकूं प्राप्त होय ॥ ९२ ॥ परमज्ञान गरभथकी संस्कार जन्म पावे तब याहि द्विज कहिए। व्रत कहिये पंच अणुव्रत अर शील कहिए तीन गुणव्रत च्यारि शिक्षाव्रत तिनिकरि शोभित होय ॥ ९३ ॥ व्रतका चिन्ह या भांति याकै मंत्र पूर्वक सूत्रकी जनेऊका धारण होय सर्वज्ञकी आज्ञा है मुख्य जाकै सो सूत्रका धारण द्रव्य और भावके भेदतैं दोय प्रकार है बाह्य तौ याके त्रिगुणात्मक सूत्रकी जनेऊ होय अर भावथकी रत्नत्रयरूप उपासकाध्ययनसूत्रका धारण होय ॥ ९५ ॥ जब इह संस्कारकूं पाय परमज्ञान परमतपकूं प्राप्त होय तब गृहस्थाचार्य याकी प्रशंसा करि याकूं आशीर्वाद दे ॥ ९६ ॥ भगवानकी आसिका याके सिरपरि धरै इह स्थितिकरण-धर्मविषैं प्रवर्तावन है ॥ ९७ ॥ विना योनि जो दिव्यज्ञानरूप गर्भ तातैं इह परम जन्म पावै तब सज्जातिका धारी कहिए ॥ ९९ ॥ इहां सज्जातिनाम क्रिया कर्तृन्वयविषैं प्रथम कही बहुरि इह सज्जातिकूं पायकरि भला गृहस्थ होय आर्य षट्कर्मकूं पालतासंता समीचीन गृहस्थ कहावै ॥ १०० ॥ देवपूजा, गुरु-

विस्तीर्ण कुलचर्या ॥ ७२ ॥ इह चौदमी कुलचर्या नामा क्रिया कही (१४) बहुरि वह व्रतके आचरण करि शुद्ध भया ग्रहीसिता नामा क्रियाकूं प्राप्त होय व्रताध्ययनकी संपत्ति करि परजीवनिके अनुग्रह करिवेकूं समर्थ होय ॥ ७३ ॥ प्रायश्चित्तकी विधिका वेत्ता श्रुति कहिए केवलीकी दिव्यध्वनि अर स्मृति कहिए धर्मशास्त्र श्रुतकेवलीके वचन अर पुराण कहिए महापुरुषनिके चरित्र तिनिका ज्ञाता होय गृहस्थाचार्यपनेंकूं पावै ॥ ७४ ॥ इह ग्रहीसिता नाम पंद्रमी क्रिया कही (१५) बहुरि पूर्वे गर्भान्वयक्रिया-विषैं प्रसांतता नामा क्रिया कही ताही विधि नानाप्रकारके उपवासादि तपोभावनाकूं प्राप्त भया ताकै यह प्रशांतता नामा सोलमी क्रिया कही (१६) बहुरि याकै ग्रहत्याग नामा सतरमी क्रिया होय घरके वासतैं विरक्त भया योग्यपुत्रकूं न्यायपूर्वक शिक्षा देकरि गृह त्याग करै ॥ ७५ ॥ यह गृहत्याग नामा सतरहमी क्रिया जानहु (१७) तज्या है घर जानैं ताकै एक साडिका धारण पूर्वे कहा ताही रीति होय सो प्रथम दीक्षा नामा अठारमी क्रिया कही (१८) ॥ ७८ ॥ बहुरि वह सर्वथा वस्त्रका त्यागी दिगंबर यथाजात-रूपका धारण करै युक्ताचारी आचार्यके समीप मुनिव्रत धरै सो जिनरूपता नामा उनीसमी क्रिया कही (१९) और बाकीकी सकल क्रिया जा विधि गर्भान्वयविषैं कही है ताही विधि जानूं कछु भेद नहीं ॥ ७९ ॥ जो भव्यजीव ए क्रिया कही निश्चयथकी आचरै सो शीघ्र ही निर्वाणकूं प्राप्त होय अनंतसुखसूं अनुभवै ए दीक्षान्वय क्रिया कही। अथानंतर भरतेश्वर कहे है भो विप्र ! मैं तुमकूं कर्तृन्वय क्रिया कहूं हूं जा भव्यजीवकै मुक्त होना निकट भया ताहीकै ए क्रिया होय ॥ ८१ ॥ तहां प्रथम ही सज्जाति नामा आदि क्रिया कल्याणकी करणहारी सो भव्य जीवकै नरदेहीविषैं होय ॥ ८२ ॥ सत-समीचीनमनुष्य जन्म पाया अर मुनिकी दीक्षायोग्य ब्राह्मणादि उत्तमवंशविषैं निरमल जन्म पाया सो सज्जाति नामा क्रिया कहिये ॥ ८३ ॥ विशुद्धकुल जात्यादिककी प्राप्ति सो सज्जाति जाथकी उत्कृष्ट तीर्थंकरदेवकी विभूति ताहि सुकृति प्राप्ति होय ॥ ८४ ॥ जो पिताके वंशकी शुद्धि सो कुलकी शुद्धता अर जो माताके वंशकी

अब है नवा तो न भया तथापि तू आपकूं देवब्राह्मण मानै है सो देवपद कहांतैं आया ॥ ९ ॥ देवता अतिथि पित्र अर अग्निहोत्रादिका ए सर्व कार्य तजै अर ब्राह्मण अर देवनिके प्रणामतैं पराङ्मुख है ॥ १० ॥ तू सर्वज्ञदेवकी दीक्षाकूं प्राप्त भया सो तोंविषैं अतिशय कहा अद्यापि तू मनुष्य ही है पायनि चाले पृथ्वीकूं सपरसै है ॥ ११ ॥ या भांति अंगीकार कीया है क्रोध जिनि ऐसा कोईक नाममात्र द्विज सो याहि उलाहना दे तब यह युक्तिकरि प्रवीण जे वचन तिनिकरि ताहि उत्तर दे ॥ १२ ॥ ज्ञान अति निर्मल गर्भ है ॥ १३ ॥ जा ज्ञानगर्भविषैं अर्हंतदेव संबंधी दर्शन ज्ञान चारित्र त्रिगुणमई त्रिधाशक्ति है ताहि अंगीकार करि हम संस्कार जन्मकरि उपजे हैं ॥ १४ ॥ सो विना योनि ज्ञान-गर्भकरि उपजे तातैं मनुष्य नांही देवही हैं अर हम सारिखे अयोनिसंभव औरहू घने हैं ॥ १५ ॥ स्वयंभू जो सर्वज्ञ वीतराग तिनिके मुखतैं उपज्या ज्ञान हमारै तातैं हम देवब्राह्मण हैं अर जिनसूत्रका उपदेश्या पवित्रसूत्रमई जनेऊ हमारे व्रतका चिह्न है ॥ १६ ॥ अर तुम पापके मार्ग प्रवर्त्तौ हो तातैं द्विज नाहीं, वृथा ही कंठविषैं सूत्र धारै हौ उत्तम मार्गके तीक्ष्ण कंटक हौ रागादिक मलकरि दूषित हो ॥१७॥ जिन आगम विषैं जन्म दोय प्रकार कह्या है—एक शरीर जन्म, दूजा संस्कार जन्म अर मरणहू दोय प्रकार है ॥ १८ ॥ एक शरीरमरण दूजा संस्कारमरण सो प्रथम जन्मके दोय भेद सुनहु—पहले शरीरके विनासतैं नये शरीरकी उत्पत्ति सो प्राणीके शरीरका जन्म कहिए ॥१९॥ बहुरि व्रतसंस्कारके योगतैं पाया है आत्मलाभ सो संस्कारजन्म कहिए ॥ २० ॥ शरीरजन्म अर संस्कारजन्म तिनिकरि द्विजपनेकी प्राप्ति है ए जन्मके दोय भेद कहे, अब मरणके दोय भेद सुनहु—आयुके अंतविषैं देहका त्याग सो शरीरमरण कहिए ॥ २१ ॥ अर पाया है व्रत जानैं ताकै पापका त्याग सो संस्कारमरण कहिए जातैं इह संस्कारका प्राप्त होनहारा मिथ्यादर्शनरूप पहली अवस्था तजै सो मिथ्यादर्शनरूप पर्यायका तजना संस्कारमरण कहिए ॥ २२ ॥ सो हमारे गुरुकी आज्ञाकरि पापरहित संस्कारजन्म भया तातैं हम देव ब्राह्मण

सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ए गृहस्थके षट्कर्म हैं श्रावकाचारविषैं आचार कह्या है महानिरमल वीतरागदेवका भाष्या सो समस्त निःप्रमाद होय करि आचरै ॥ १०१ ॥ जिनेंद्रथकी पाया है संस्कार जन्म जानैं अर गणधर देवनिकी धारी है शिक्षा जानैं सो उत्तम ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस कहिए व्रताध्ययनकी रिद्धि ताहि धारै । जब यह साक्षात् धर्मरूप भया तब धर्मात्मा पुरुष याकी प्रशंसा करै जो तू या पृथ्वीविषैं ज्ञान संबंधी उत्कृष्ट प्रकाशका धारक भया पृथ्वीविषैं ब्रह्मतेजका धारक है ॥ २ ॥ सो देव ब्राह्मण सर्वज्ञदेवकी पूजा करता औरनिपै करावता पूजाका उपदेष्टा पूजाके करणहारे करि आराधिवेयोग्य आप जिनसूत्रका अध्ययन करै औरनिकूं अध्ययन करावै देव कहिए केवलीकी दिव्यध्वनि अर वेदांग कहिए जिनआगमके द्वादशअंग तिनिका रहसि जानैं ॥ ३ ॥ सो ब्राह्मण पृथ्वीकूं सपरसताहुता पृथ्वीके दोष काम क्रोधादि कलंक तिनिकूं सपरसै इन पूज्य गुणानिकरि वह ब्राह्मण याही भवविषैं देवपना आचरै देवनिकै अणिमादि अष्ट रिद्धि होय है अर इनिकै अणिमा कहिए न्यूनता नाहीं गरिमा कहिए महंतताही है अर लघिमा कहिए लघुता नाहीं गुरुताही है अर प्राप्ति कहिये रत्नत्रयकी प्राप्ति ही है अर प्राकाम्य कहिए सकलकौ वल्लभही है अर ईशत्व कहिए गृहस्थिनिमें बडे हैं अर वाशित्व कहिए सब गृहस्थ इनके आज्ञाकारी हैं इनि गुणानिकरि प्रगट भई है महिमाजाकी सो देव नाम पावै ताहि लोक देवब्राह्मण कहैं लोककूं उलंघै ऐसा धाम कहि ज्ञान प्रकाश ताहि धारता पृथ्वीविषैं पूज्य होय ॥२०५॥ सत्य शौच क्षमा दया दम कहिए इंद्रीनिका निरोध इत्यादि उत्तमधर्म तिनिके आचरणकरि अति प्रशंसा पावै लोक याहि देवब्राह्मण कहै ॥ ६ ॥ अथानंतर कोऊ कहिबेका द्विज सो जातिमदके आवेशतैं या देवब्राह्मण होकैं ऐसैं कहै तूं आजिही देवब्राह्मण होय गया ॥ ७ ॥ तूं फलानैंके कुलविषैं उपज्या तेरे माता पिताकूं हम जानैं प्रत्यक्ष मनुष्य है अब तू देवब्राह्मण होय गया ऊंचा सिर करि चल्या जाय है, हम सारिखे विप्रनिका आदर न करै ॥२०९॥ जो पूर्वे तेरी जाति थी अर कुल था सोही

जे निर्मल व्रतकूं धरै हैं ते शुक्लवर्ण जानूं अर जे शुद्धतातैं विमुख हैं ते शुक्ल नांही, श्याम हैं ते शुद्धता अर अशुद्धता न्यायकी वृत्तितैं जाननी जो दयाकी प्रवृत्ति सो न्याय है अर जो प्राणीनिका मारना सो अन्याय ॥ ४० ॥ तातैं जिनकी निर्मल वृत्ति है ते द्विज वर्णात्मा कहिए अर जे मनमें ऐसी जानै हैं हम जगत मान्य हैं ते उत्तम नांही ॥ ४१ ॥ इहां कोऊ आशंका करै जे जिनमार्गी द्विज हैं तिनिकूं भी गृहस्थके षट्कर्मनिकरि हिंसारूप दोषकी प्राप्ति होय है ॥ ४२ ॥ ताका समाधान—तुम कही सो सत्य है, तिनिके यद्यपि जिनपूजादिविषैं थावरकायकी अल्प हिंसाका लेश है तथापि शास्त्रोक्त शुद्धता है ॥ ४३ ॥ तिनिके विशुद्धताका कारण पक्ष चर्या अर साधन ए तीन हैं सो कहिए है ॥ ४४ ॥ तहां जिनमार्गीनिकी पक्ष समस्त हिंसाका त्याग ही है। मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ इनि च्यारि भावनानिकरि दयाकी पक्ष अति दृढ है, इह तौ पक्ष कही ॥ ४५ ॥ अर चर्या कहिए देवताके अर्थि मंत्रकी सिद्धिके अर्थि औषधिके अर्थि आहारके अर्थि हिंसा न करूं इह चेष्टा है ॥ ४६ ॥ जिनशासनविषैं गृहस्थनिके त्रसकायकी स्थूल हिंसा नांही ॥ ४७ ॥ जिनपूजादिविषैं थावरकायकी विराधना है ताकी प्रायश्चित्तकरि शुद्धता कीजिए है ॥ ४८ ॥ बहुरि अपने पुत्रकूं गृहस्थपद दे घरका त्याग करना तब रंचमात्र हिंसा नांही ॥ ४९ ॥ इह गृहस्थनिकी चर्या कही अर आयुके अंतविषैं देहका ममत्व तजि आहारादिकका त्याग करना ध्यानकी शुद्धताकरि आत्माका शोधन करना सो साधन है ॥ ५० ॥ ए पक्ष चर्या अर साधन तीन कहे तिनिविषैं जैनी द्विजानिके हिंसाका रंचमात्रकूं सपरस नांही ॥ ५१ ॥ या भांति अपनी पक्षकरि दोषनिका निराकरण करै च्यारि आश्रम तिनिकी जिनमतविषैं शुद्धता है अन्यत्र नाहीं। ब्रह्मचारी गृहस्थ वाणप्रस्थ अर भिक्षुक ए च्यारि आश्रम उत्तरोत्तर शुद्ध हैं ॥ ५२ ॥ ब्रह्मचारी अर गृहस्थका तौ निर्णय करिही आए हैं अर वाणप्रस्थ कहिए वनोवासी उत्कृष्ट श्रावक अर भिक्षु कहिए मुनि इनके भेद नाना प्रकार हैं सो इहां ग्रंथके विस्तारके भयतैं विशेष कथन न किया ॥ ५३ ॥ इह सद्गृहीत्वनामा दूजी

हैं ॥ २३ ॥ या भांति देवब्राह्मणपना न्याय मारग कहि प्रगट करता भले गृहित्व पनेकूं पायकरि उत्तम गृहस्थ होय ॥ २४ ॥ बहुरि मैं जो ब्राह्मण सत्क्रियाकरि योग्य हैं तिनिकूं जातिवादका गर्व दूरि करिबेके अर्थि अगिले श्लोकविषें कहूं हूं ॥ २५ ॥ जो ब्रह्माका पुत्र होय ताहि ब्राह्मण कहिए सो ब्रह्मा स्वयंभू भगवान परमेष्ठी जिनेश्वरदेव ॥ २६ ॥ सो जिनेंद्रदेव गुणनिकी वृद्धिकरि परम सिद्धपदकी प्राप्तिका मूल है ऐसा महामुनि कहै हैं ॥२७॥ दिव्य है मूर्त्ति जाकी ऐसा जिनेंद्र ताके निर्मल ज्ञानगर्भतें जिनेंद्रगुणनिकरि पाया है संस्कारजन्म जिनि ते द्विजन्मा कहिए ॥ २८ ॥ अर जे कुलमात्र ही गर्व करै हैं ते उत्तम ब्राह्मण नाहीं, व्रत मंत्रादि संस्कार करि द्विजकुलकी बडाई है ॥ २९ ॥ जे ब्राह्मण क्षमा सत्य शौचविषें तत्पर हैं तिनिकूं हम वर्णोत्तम जानै हैं, जे संतोषी उत्तम आचारी हैं आचरणही है आभूषण जिनिके विशिष्टताकूं प्राप्त भए हैं ते ब्राह्मण हैं अर जिनिके पापाचारी हैं ते ब्राह्मण नाहीं ॥ १३०–१३१ ॥ आपकूं वृथा द्विज मानै हैं जो पापारंभविषें रत पशुनिके घाती हैं वे काहेके द्विज ? जे धर्म जानि जीवनिकूं हतें हैं ॥ ३२ ॥ अर पापका उपदेश करै हैं तिनिकूं न जानिए कौनसी दुर्गति होय ॥ ३३ ॥ हिंसारूप पापशास्त्रकरि है आजीविका जिनिकी, जे अधर्मकूं धर्म जानि आप आचरै हैं अर औरनिकूं उपदेश करै हैं तिनि समान और कर्मचांडाल नांही ॥ ३४ ॥ जे निरदई पशुनिकूं हतें हैं ते पापमंडित धर्मरूप रतनके लुटेरे हैं ते धर्मात्मा पुरुषनितें बाह्य हैं ॥ ३५ ॥ राजनि करि दंडयोग्य हैं जे पशुहिंसाका अरंभ करै हैं ते राक्षसनिहूतें अति निरदई हैं जो हिंसकनिहूकूं उच्च जानिए तौ नीच कौनकूं मानिए ॥ ३६ ॥ जे दुराचारी हैं ते महामलिन हैं कहिबेके उत्तमकुल हैं तिनिमैं उत्तमता नाहीं अर जे दयावान निर्मल आचारी हैं तिनिकूं पंडित शुक्ल कहिए उज्वल कहै हैं ॥ ३७ ॥ श्रुत कहिए सिद्धांत, स्मृति कहिए धर्मशास्त्र अर पुराण कहिए सत्पुरुषनिके चरित्र तिनि सबनिमैं जीवदया ही मुख्य है। व्रत मंत्र क्रिया देवता लिंग काम इनिकी शुद्धताकरि द्विजनिके कुलकी शुद्धता है ॥ ३८–३९ ॥

च्यारि भेद करै हैं। अर काहू एक भेदविषैं तीनही भेद जानू, ता भेदमें सिद्ध नाहीं ॥ ६८ ॥ जे मुनि अपने शरीरकूं क्षीणकरता संता छह कायके जीवनिकी रक्षा करै सो तपविषैं तिष्ठता दिव्यादि मूर्ति पावै। दिव्यमूर्ति इंद्रकी विजयमूर्ति चक्रवर्तिकी अर परममूर्ति तीर्थंकरकी अर आत्ममूर्ति सिद्धकी ॥ ६९ ॥ अर अपने लक्षणनिकी कीर्तिका कथन श्रवण अयोग्य जानि जिनेश्वर देवके लक्षणनिकूं ध्याय तप करै पूर्ण है लक्षण जाके सो दिव्यलक्षण इंद्रके, विजयलक्षण चक्रवर्तिके, परमलक्षण अरहंतदेवके अर आत्मलक्षण सिद्धनिके पावै ॥ ७० ॥ अर जो मुनि अपने अंगकी सुंदरताकूं असुंदरता करता उग्र तपश्चरण करि क्षीण करै सो दिव्यसुंदरता इंद्रकी, विजयसुंदरता चक्रवर्तिकी, परमसुंदरता अरहंतदेवकी अर आत्मसुंदरता सिद्धनिकी पावै ॥ ७१ ॥ अर जो साधु धूरिकरि धूसरा है अंग जाका तजी है कायकी प्रभा जानै केवल प्रभुकी प्रभाकूं ध्यावै सो दिव्यप्रभा विजयप्रभा परमप्रभा आत्मप्रभा तिनिकूं पावै शीघ्रही देदीप्यमान होय ॥ ७२ ॥ अर आप मणिनिके दीपक अर तैलादिकके दीपकका उद्योत तजिकरि प्रकाशका पुंज जो जिनराज महातेजोमय ताहि भजै सो योगी उज्वलप्रभामंडलका धारक होय ॥ ७३ ॥ बहुरि जो मुनि अस्त्र कहिए दिव्यास्त्र अग्नि वाणादिक अर शस्त्र कहिये तरवारि आदि सामान्य शस्त्र जे पूर्वै गृहस्थ अवस्थाविषैं धारेहुते तिनिकूं तजिकरि शांतताकूं भजै सो योगींद्र जिनेश्वर देवकूं आराधिकरि धर्मचक्रका स्वामी होय ॥ ७४ ॥ अर तजे हैं स्नानादिक संस्कार जानैं ऐसा मुनि सो पूर्णज्ञानके अतिशयकूं धरैं जे जिनिराज तिनिका आश्रय लेकरि तिनिही सारिखा होय सुमेरुविषैं जन्माभिषेककूं पावै ॥७५॥ अर या लोकसंबंधी अपना स्वामित्व तजिकरि जो मुनि परमस्वामी जिनवर ताहि भजै सो जिनपतिके प्रसादतैं तीनलोकके प्राणीनिकरि सेवनीक होय ॥ ७६ ॥ अर जो मुनिराज आपका सिंहासनादि तजिकरि जिनराजका सेवक होय सो परम सिंहासनका धारक तीर्थनाथ होय ॥७७॥ अर आप वस्त्रादिक तजिकरि निष्परिग्रह होय अर ककरैली विषमभूमिविषैं अपनी बाहु सिरनीचै मेल्हिकरि

क्रिया कही (२) अथानंतर तीजी परिव्राजी नामा क्रिया महा निरमल कहूं हूं ॥ ५४ ॥ इह महाभाग भव्यजीव गृहस्थाचारकूं पालिकरि गृहवासतैं विरक्त होय जिनदीक्षाका ग्रहण करै सो याहि पारिव्राज्य-नामा क्रिया कहिए ॥ ५५ ॥ मुनिका जो भाव सो पारिव्राज्य कहिए निर्वाणकी दीक्षा सो निरमलता, वृत्तिकरि यथाजातरूपका धारण ॥ ५६ ॥ शुभतिथि शुभनक्षत्र शुभयोग शुभमुहूर्त शुभग्रह तिनिविषैं निर्ग्रंथाचार्यपै जायकरि मुक्तिका अभिलाषी जिनदीक्षा ग्रहै ॥ ५७ ॥ विशुद्धकुल विशुद्ध-गोत्र सद्वृत्त अर शरीर सांगोपांग महासुमुख महाबुद्धिवान सो दीक्षायोग्य कह्या ॥ ५८ ॥ ग्रहो-पराग तथा ग्रहण अर चंद्रमाका परिवेष तथा इंद्रधनुप चढि रह्या होय अथवा वक्र ग्रह कहिए ग्रह उलटा आया होय अर मेघपटलकरि आकाश दबि रह्या होय ॥ ५९ ॥ बहुरि नष्ट मास अधिक मास संक्रांति तथा अपूर्ण तिथि इनिविषैं महाबुद्धिवान आचार्य शिष्यनिकूं जिनदीक्षा न दे ए दिन टारि दीक्षा दे अर जो कोई मंदबुद्धि संप्रदायकूं तजिकरि इनि दिननिविषैं दीक्षा दे सो संघ बाहरि करना वह आचार्यनिका उलंघन करै है आज्ञा लोपै है ॥ ६० ॥ तहां प्रव्रज्याविषैं योगींद्र सत्ताईस सूत्र पद कहै हैं जिनिके निश्चयकरि साक्षात् दीक्षा धारक होंहि ॥ ६१ ॥ तिनिके लक्षण कहै हैं— जाति मूर्ति लक्षण सुद-रांगता प्रभा प्रभामंडल चक्र अभिषेक नाथता ॥६२॥ सिंहासन वस्त्र छत्र चामर घोषणा अशोकवृक्ष निधि गृहशोभा अवगाहन ॥ ६३ ॥ क्षेत्र आज्ञा सभा कीर्ति वंदिता वाहण भाषा आहार सुख ए सत्ताईस भए ॥६४॥ ए जात्यादि सत्ताईस परमेष्ठीके गुण तिनिकूं भजै अर अपनै जात्यादिविषैं आदर न करै ॥६५॥ आप महाजातिवंत है तौऊ तज्या है जातिका गर्व जानैं अरहंतदेवके चरणारविंदकूं भजै सो जन्मांतर-विषैं दिव्य जाति विजयजाति परमजाति आत्मजाति ए च्यारि जाति पावै ॥ ६६ ॥ इद्रसंबंधी दिव्य जाति अर चक्रवर्तिकी विजयजाति अर तीर्थंकरकी परमजाति अर सिद्धनिकी आत्मजाति ॥ ६७ ॥ याही भांति मूर्त्यादिविषैं च्यारि प्रकार रचनाकौं जानना, जे पुराणके वेत्ता हैं ते मोहरहितपनैंथकी

ऐसा होय अरहंतदेवके गुणनिका ध्यान करै सो बारंवार इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादि करि बांदिवेयोग्य होय ॥ ९१ ॥ अर जो आपके नमस्कारादिकका राग तजि त्रैलोक्यकरि बांदिवेयोग्य अरहंत तिनिकूं वंदिकरि तिनिकी आज्ञा प्रमाण तप आचरै सो गणधरादि करि बंदिवेयोग्य होय स्तुतिकरिवे योग्य जे गुणनिके समूह तिनिकूं पावै ॥ ९२ ॥ अर जो पादत्राणादि तजि सकल वाहण तजि तप करै ईर्यासमिति पालता नंगेपांव विहार करै सो जन्मांतर विषैं जैन पद पावै ताके चरणनिकै तलि देव सुवर्णमई कमलरचैं तिनिके ऊपरि आकासविषैं विहार करिबेकूं योग्य होय ॥ ९३ ॥ अर जो मुनि वचन-गुप्ति धारता मौनी होय तप-विषैं तिष्ठै सो जन्मांतरविषैं तीर्थेश्वर होय ताकी दिव्यध्वनि देव देवी मनुष्य मनुष्यनी तथा तिरजंच सकल सभाकूं पोखै जाकी ध्वनि सुनि सब जीव अपनी अपनी भाषामैं अर्थ समझैं सभा एक मुनियोंकी अर सभा एक आर्जिका अर श्राविकानिकी, अर सभा च्यारि च्यारि जातिके देवनिकी अर सभा च्यारि च्यारि जातिकी देवांगनानिकी अर सभा एक मनुष्यनिकी अर सभा एक तिर्यंचनिकी ए बारह सभा सो सब सभानिकूं अपनी दिव्यध्वनि करि पोषै ॥ ९४ ॥ अर जो अनशनव्रती अनेक उपवासनिका करणहारा नियमरूप है आहार पानी जाकै, सदा परम तपकरै ताकै दिव्य तृप्ति इंद्रसंबंधी अर विजयतृप्ति चक्रवर्तिसंबंधी अर परमतृप्ति तीर्थंकरसंबंधी अर अमृततृप्ति सिद्धनिसंबंधी होय ॥ ९५ ॥ अर जो कामादिक विषयके सुख तजि चिरकाल तप करता शांतभावविषैं तिष्ठै सो अनंत सुखमई परम आनंदकूं प्राप्त होय ॥ ९६ ॥ बहुत कहिवेकरि कहा जे अपने इष्ट पदार्थ हैं ते समस्त विधिसहित तजै सो मुनि चिंतवनमैं न आवै ऐसी अनंत अविनाशी लक्ष्मी पावै जिनभाषित महातप अद्भुत विभूतिकूं उपजावै तपकी महिमा कहिवेमैं न आवै ॥ ९७ ॥ तपरूप चिन्तामणि या जीवके चिंतवनमैं न आवै ऐसी उत्कृष्ट पद सो निपजावै अरहंतकी जाति, अर मूर्त्यादिक पावै ॥ ९८ ॥ जिने-श्वरदेवकी परमआज्ञा सूत्रोक्त प्रमाण करता संता जो जिनदीक्षा धारै ताकै निश्चयसेती पारिव्राज्यनामा

शयन करै ॥७८॥ अर जो अपना सकल परिग्रह तजै सो तीर्थंकर होय देवनिके ल्याए महा देदीप्यमान दिव्य-वस्त्र तिनिकूं धारै गृहस्थपदविषैं ॥७९॥ अर जो अपना सकल परिग्रह छत्रादिक तजिकरि वीतराग देवका आराधन करै सो तीन छत्रनिकरि शोभित होय, कैसे हैं तीनछत्र देदीप्यमान हैं रत्न जिनिविषैं ॥८०॥ अर जो यती नानाप्रकारके चमर बीजनैं तिनिकूं तजिकरि जिनेश्वरका दास होय तप करै सो तीर्थंकर पर्यायपाय तीन जगतकरि सेवनीक होय, जाय चौंसठि चमर ढरैं ॥८१॥ नानाप्रकारके वादित्र संगीतनिके शब्द तिनिकूं तजिकरि जिनआज्ञा प्रमाण तप करै ताकै जन्मांतरविषैं देव दुंदभी बाजै जाकै जयकार उभय देव गावैं ॥८२॥ अर जो गृहादिककी छाया अर रमणीक वन तिनिकी छाया तजिकरि जिनराजकूं भजि तपकरै ताकै तीर्थंकर पदवीविषैं अष्ट प्रातिहार्यनिमैं अशोक वृक्ष होय ॥ ८३ ॥ जो अपना सकल धन तजिकरि निरममताकूं प्राप्त भया सो तीर्थंकर पद पावै ताकै द्वारै स्वयमेव नवनिधि आयकरि दूरि पडी रहै वह अंगीकारही न करै ॥८४॥ बहुरि घरकी शोभा अनेक प्रकार करी है रक्षा जहां ताहि तजिकरि जिनभाषित तप करै ताकै श्रीमंडपादि शोभा स्वयमेव सन्मुख आवै ॥८५॥ अर जो तपके अर्थि गहनवनमैं तिष्ठै सो जन्मांतरविषैं जिनेश्वरपद पावै ताकै समोशरणकी रचना होय। उत्कृष्ट समोशरण बारह योजनका अर जघन्य एक योजनका सो समोशरणमैं त्रैलोक्यके जीव माय जाय ऐसी अवगाहन शक्ति समोशरणमैं होय ॥ ८६ ॥ अर जो क्षेत्र वास्तु आदि सब परिग्रहका त्यागकरि क्षेत्रज्ञ जो आत्मा ताहि आराधै ताकै त्रैलोक्यका ईश्वरपना स्वाधीन है ॥ ८७ ॥ अर जो अपनी आज्ञा अर अभिमान तजिकरि जिनेश्वरकी आज्ञा सिरधरि मौनधारि तिष्ठै ॥ ८८ ॥ ताकी आज्ञा सुर असुर सिरपरि धरैं, सुर कहिए कल्पवासी देव अर असुर कहिए भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ॥ ८९ ॥ अर जो भव्यजीव अपने इष्ट बांधव अर सेवकादिक तिनिकी सभा तजि एकान्तविषैं जिनेंद्रका ध्यान करै ताकै परमात्मपदकी प्राप्तिविषैं त्रिलोक्यकी सभा आय मिलै ॥ ९० ॥ अर जे अपने गुणनिका कथन तजि काम क्रोधादिकका त्यागी होय महातप करै, समान है निंदा स्तुति जाकै

पन अर दीक्षान्वय क्रिया अडतालीस अर कर्त्रन्वय क्रिया सात, मूल भेद तीन, उत्तर भेद, एक सौ आठ जिन शासनविषैं कहे तिनिकूं प्रमादरहित होय आचरै सो परम धामकूं प्राप्त होय जाकी प्राप्तिविषैं अनंत सुख है ॥ ८ ॥ जो भव्य क्रियानिकरि युक्त जिनमतविषैं कह्या पुराणका धर्म ताहि भलीभांति जानै, अर आचरै सो पवित्रबुद्धि शीघ्रही भवभयके बंधन दूरिकरै ॥ २०९ ॥ परम जिनेश्वरके चरणारबिंदविषैं आशक्त है बुद्धि जाकी इह क्रियाकी विधि धारै सो समस्त कर्मबंधनकूं काटिकरि जनम, जरा, मरणका नाश करै ॥ १० ॥ जो भव्यजीव उत्तमकुल पाय अर व्रतके संस्कारपूर्वक सज्जातिका धारक होय, उत्तम गृहस्थका धर्म पालै, बहुरि गुरुकी आज्ञातैं पाया है सर्वोत्कृष्ट यतीका धर्म जानै ताकै प्रभावकरि सुरगकूं जाय तहां इंद्रपदकी विभूति पावै, बहुरि स्वर्गतैं चयकरि चक्रवर्तिपद पावै, अर तपधरि अर अरहंत पद पायकरि पूर्ण है महिमा जाकी ऐसी निरवृत्ति कहिए, सिद्धपदवी सो पावै ॥ २११ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे दीक्षान्वयकर्त्रन्वयक्रियानुवर्णन नाम उनतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३९ ॥

अथ चालीसवां पर्व ।

अथानंतर इनि क्रियानिकी उत्तरचूलिका कहूं हूं जाविषैं तीनूंही क्रियानिका विशेष निरणय है ॥ १ ॥ तहां आदिही क्रिया कल्पकी सिद्धिकै अर्थि मंत्रोद्धार कहूं हूं इनि क्रियानिकी सिद्धी मंत्रनिकै आधीन है अर ए मंत्र मुनिनिकै आधीन है इनिके वक्ता मुनि हैं ॥ २ ॥ गर्भाधानादि क्रियाके आरंभविषैं प्रथमही तीन छत्र तीन चक्र अर तीन अग्नि थापै। तीन अग्निके नाम—प्रथम गार्हपत्य नामा अग्नि ताका कुंड चौखूंटा अर दूजी आहवनीय नामा अग्नि ताका कुंड तिखूंटा सिंघारेके आकार अर तीजा दक्षिणावर्त्त नामा अग्नि ताका कुंड अर्द्धचंद्राकार ए तीनूं प्रणीताग्नि कहिए ॥ ३ ॥ विवेकी उत्तमकुलका श्रावक अपने घरकै मध्य जिनमन्दिर तहां वेदीकै मध्य विधिपूर्वक जिनप्रतिमा स्थापै तहां पूजाकी

क्रिया होय ॥ ९९ ॥ जिनआज्ञा सिवाय युक्तिकरि रहित वागजालरूप पारिव्राज्य सो तजनी अर जिनराजसंबंधी सर्वोत्कृष्ट प्रव्रज्यानामा क्रिया होय सो ग्रहणी ॥ २०० ॥ इह पारिव्राज्यनामा तीजी क्रिया कही अर या पारिव्रज्याका फल जो इंद्रपदकी प्राप्ति सो सुरेंद्रतानामा क्रिया पहली वरणि आए, इह सुरेंद्रतानामा चौथी क्रिया कही अर साम्राज्य कहिए राजानिका राजा चक्रवर्त्ति जाकै चक्ररत्न अग्रगामी अर नवनिधि चौदहरत्नकरि उपजी भोगसंपदाकी परंपराय ॥ ३ ॥ इह साम्राज्यनामा पांचमीं क्रिया कही साम्राज्य चक्रवर्तिपदवीका नाम है ॥ ४ ॥ अर अरहंत देवकी भाव अथवा अरहंतदेवकी क्रिया सो अरहंत कहिए जहां स्वर्गावतारादि महाकल्याणकी संपदा तीर्थेश्वरनिके पंचकल्याण संपदाकी प्राप्ति त्रैलोक्यकूं आनंदका कारण सो आर्हंतिनामा क्रिया कहिए इह आर्हंतनामा छठी क्रिया कही ॥ ६ ॥ अर संसारके बंधनतैं रहित जो सिद्धपरमात्मा ताकी अवस्था सो परिनिवृत्ति कहिए परम निर्वाण कहिए ॥ ५ ॥ समस्त कर्मरूपमल तिनके अभावतैं जो आत्माकी अंतरंग शुद्धता सो शुद्धि कहिए आत्मलब्धि कहिए इइ निरवृत्ति अर कैइक कहै हैं वस्तुका अभाव सो मुक्ति अर गुणनिका उच्छेद सो मुक्ति सो यह सर्वथा नांही न वस्तुका अभाव है न गुणनिका अभाव है आत्मा अनन्तगुणात्मक है ॥ ६ ॥ इह परिनिरवृत्तिनामा सातमीं क्रिया कही ॥ ७ ॥ कैइक मतवारे ऐसी माने हैं जो दीपकका बुझना वैसे जीवका अभाव सो मुक्ति. अर कैयक ऐसा मानै हैं बुद्धि सुख, दुख. इच्छा, प्रयत्न धर्म, अधर्म, संस्कार इत्यादि गुणनिका अभाव सो मुक्ति सो जीवका अभाव नांही अर जीवके स्वभाव गुण ज्ञान, दरसन आनंदादिक तिनिका अभाव नांही, इंद्रीजनित बुद्धि, इंद्री जनित सुख, दुख, इच्छा, राग, द्वेष, पुण्य, पाप, इत्यादि विभाव भावनिका अभाव है ऐसा निश्चय जान। जो वस्तुहीका अभाव होय अर स्वभाव भावनिका अभाव होय तौ मुक्ति काहेकी या भांति आगमके अनुसारि ए सात कर्त्रन्वय क्रिया कही। अर एइ सप्त परमस्थानक कहिए जिनिविषैं योगीश्वरनिकी प्रवृत्ति है ॥ ७ ॥ ए गर्भाधानादि क्रिया तरे-

याय नमः' ताका अर्थ—अक्षय अविनश्वर परमेश्वर तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥ १३ ॥ बहुरि 'अव्याबाधाय नमः' ताका अर्थ बाधारहित विश्वके ईश्वर तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अनंतज्ञानाय नमः' ताका अर्थ—अनंतज्ञानरूप चिद्रूप तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अनंतदर्शनाय नमः' ताका अर्थ—अनंतदर्शनरूप सर्वदर्शी तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अनंतवीर्याय नमः' ताका अर्थ—अनंतवीर्यरूप अरहंतदेव तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥ १५ ॥ बहुरि 'अनंतसुखाय नमः' ताका अर्थ—अनंतसुखरूप आनंदघन तिनिकूं नमस्कार। बहुरि 'नीरजसे नमः' ताका अर्थ—मोहरजरहित निरमोह वीतराग तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'निर्मलाय नमः' ताका अर्थ—द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म मलरहित विमलदेव विश्वंभर तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अच्छेदाय नमः' ताका अर्थ—काहूकरि छेदे न जांहि ऐसे परमात्मा तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अभेद्याय नमः' ताका अर्थ काहू करि भेद्या न जाय ऐसे त्रिभुवनके स्वामी तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अजराय नमः' ताका अर्थ जरा रहित भगवंत तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥ १६ ॥ बहुरि 'अमराय नमः' याका अर्थ मरणरहित अविनाशी ऐसे देवाधिदेव तिनिकूं हमारा नमस्कार बहुरि 'अप्रमेयाय नमः' ताका अर्थ जिनिकी महिमा कथनमैं न आवै अनंतवीर्यके धारी त्रैलोक्यनाथ तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'गर्भावासाय नमः' ताका अर्थ कबहू गर्भै न आवैं जन्म न धरैं तिनिकूं नमस्कार। बहुरि 'अक्षोभ्याय नमः' ताका अर्थ व्याकुलता रहित परमानंदरूप परम ज्योति तिनिकूं हमारा नमस्कार। बहुरि 'अविलीनाय नमः' ताका अर्थ जिनिका कबहू विलय नाहीं सदा एकरस ऐसे निर्विकार तिनिकूं नमस्कार। बहुरि 'परमधनाय नमः' ताका अर्थ परम धन कहिये उत्कृष्ट ज्ञानरूप तिनिकूं नमस्कार ॥ १७ ॥ बहुरि 'परमकाष्ठयोगरूपाय नमः' ताका अर्थ परमहद्दयोगरूप ऐसे योगींद्र तिनिकूं नमस्कार ॥ १८ ॥ बहुरि 'लोकाग्रवासिने नमो नमः' ताका अर्थ लोकके शिखर है निवास जिनिका ऐसे निरंजन तिनिकूं बारं-

विधिविषैं इह मंत्रकल्प कह्या ॥ ४ ॥ जलकरि भूमि पवित्र करिवेके अर्थि इह मंत्र पढै 'नीरजसे नमः' ताका अर्थ कर्मरज रहित भगवान तिनिकूं हमारा नमस्कार या मंत्रका फल परम शांति है ॥ ५ ॥ वहुरि भूमि शुद्ध करि डाभका आसन विछावे, तव आसन विछावतें विघ्न शांतिके अर्थि इह मंत्र भणे 'दर्पमथनाय नमः' याका अर्थ गर्वके दूरकरन हारे भगवान तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥६॥ वहुरि चंदनादि सुगंध द्रव्य करि भूमिकूं छांडे (छींटे) तव यह मंत्र पढै शीलगंधाय नमः' याका अर्थ शील है सुगंधता जिनिकी ऐसे भगवान तिनिकूं नमस्कार वहुरि पुष्पांजली चढावे तव यह मंत्र पढै 'विमलाय नमः' ताका अर्थ रागादि मलरहित प्रभू तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥७॥ वहुरि अक्षत पूजाकै अर्थि इह मंत्र पढै 'अक्षताय नमः' ताका अर्थ अखंडनीय भगवान तिनिकूं हमारा नमस्कार वहुरि धूपार्चनविषें इह मंत्र पढै 'श्रुतधूपाय नमः' ॥ ८ ॥ ताका अर्थ फैलि रही है त्रैलोक्यविषैं वासना जिनकी तिनकूं हमारा नमस्कार। वहुरि दीपदानविषैं यह मंत्र भणे 'ज्ञानोद्योताय नमः' ताका अर्थ केवलज्ञानका है उद्योत जिनिकै ऐसे जिनेंद्र तिनिकूं हमारा नमस्कार। वहुरि अमृत कहिये नैवेद्य ताके समर्पणविषैं यह मंत्र पढै 'परमसिद्धाय नमः' ॥ ९ ॥ याका अर्थ सर्वोत्कृष्ट सिद्धपरमेष्ठी तिनिकूं हमारा नमस्कार इनि मंत्रनिकरि यथावत् भूमिकूं शुद्ध करै वहुरि प्रभुके पधरायवेकूं सिंहासन थापै तव द्विजोत्तम ए मंत्र भणे ते सुनहु ॥ १० ॥ 'सत्यजाताय नमः' ताका अर्थ सत्यरूप है जन्म जिनिका ऐसे जिनराज तिनिकूं हमारा नमस्कार वहुरि 'अर्हज्जाताय नमः' ताका अर्थ पूज्य है जन्म जिनिका ऐसे अरहंतदेव तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥ ११ ॥ वहुरि 'परमजाताय नमः' ताका अर्थ उत्कृष्ट है जन्म जिनिका ऐसे जिननाथ तिनिकूं हमारा नमस्कार वहुरि 'अनुपमजाताय नमः' ताका अर्थ अनूपम है जन्म जिनिका ऐसे जगदीश तिनिकूं हमारा नमस्कार ॥ १२ ॥ वहुरि 'प्रधाना नमः' ताका अर्थ आपही प्रधान सवनिमैं मुख्य स्वाधीन ऐसे सर्वज्ञ तिनिकूं हमारा नमस्कार वहुरि 'अचलाय नमः' ताका अर्थ–परम निश्चल वीतरागदेव तिनिकूं हमारा नमस्कार। वहुरि 'अक्ष-

गामी चरमशरीरी तिनिका शरण धारूं हूं ॥ २९ ॥ बहुरि 'रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ए रत्नत्रय तिनिका शरण धारूं हूं। बहुरि 'सम्यग्दृष्टेः ज्ञानमूर्तेः सरस्वत्यै स्वाहा' ताका अर्थ सम्यग्रूप है दृष्टि जाकी अर ज्ञानरूप है मूर्ति जाकी ऐसी सरस्वती कहिए जिनवाणी ताहि पूज्यै है सो स्वाहा कहिए कल्याणकै अर्थि होहु ॥ ३० ॥ बहुरि 'सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु' ताका अर्थ सेवाका फल षट् परमस्थान होहु तिनिका वर्णन पूर्वै करि आए हैं अर कुमरणका नाश होउ समाधिमरण होउ इह जातिसंस्कारका कारण जानि मंत्र कह्या आगैं निस्तारक मंत्र कहूं हूं ॥ ३१ ॥ 'सत्यजाताय स्वाहा' ताका अर्थ—सत्यरूप है जन्म जिनिका ऐसे सर्वज्ञदेव तिनिकै ताईं पूजूं हूं। बहुरि 'अर्हज्जाताय स्वाहा' ताका अर्थ अर्हंतरूप है जन्म जिनिका ऐसे तीर्थेश्वर तिनिकै ताईं पूजूं हूं। बहुरि 'षट् कर्मणे स्वाहा' ताका अर्थ देवपूजादि षट्कर्म तिनिकै ताईं पूजूं हूं बहुरि 'ग्रामपतये स्वाहा' ताका अर्थ देवब्राह्मण तिनिकै ताईं पूजूं हूं जिनिकूं ग्रामपती कहिए ॥ ३२ ॥ बहुरि 'अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा' ताका अर्थ—अनादिश्रुतके धारक गृहस्थाचार्य तिनिकै ताईं पूजूं हूं 'स्नातकाय स्वाहा' ताका अर्थ—केवली भगवानके ताईं पूजूं हूं। बहुरि 'श्रावकाय स्वाहा' ताका अर्थ—श्रावकके आचारविषैं प्रवीण उत्तमश्रावक तिनिकै ताईं पूजूं हूं ॥ ३३ ॥ बहुरि 'देवब्राह्मणाय स्वाहा' ताका अर्थ व्रत संस्कारकरि शुद्ध भए हैं ऐसे देवब्राह्मण तिनिकै ताईं पूजूं हूं। बहुरि 'सुब्राह्मणाय स्वाहा' ताका अर्थ भले उपासकाध्ययन अंगके पाठी ब्राह्मण तिनिकै ताईं पूजूं हूं बहुरि 'अनुपमाय स्वाहा' ताका अर्थ जे अनुपम विवेकी जन तिनिकै ताईं पूजूं हूं ॥ ३४ ॥ बहुरि 'सम्यग्दृष्टिनिधिपतिवैश्रवणाय स्वाहा' ताका अर्थ सम्यग्दृष्टि निधिका पति कुबेरनामा लोकपाल ताकी सुश्रूषा करूं हूं ॥ ३५ ॥ बहुरि 'सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु' ताका अर्थ पहले मंत्रमैं ऊपरि लिखि आए सोही जानहु इह निस्तारक मंत्र कह्या। आगैं ऋषिमंत्र कहैं हैं—'सत्य-

बार नमस्कार। बहुरि 'परमसिद्धेभ्यो नमो नमः' ताका अर्थ महा उत्कृष्ट सिद्ध भगवान तिनिकूं वारंवार नमस्कार बहुरि 'अर्हंतसिद्धेभ्यो नमो नमः' ताका अर्थ अर्हंत सिद्धनिकूं वारंवार नमस्कार ॥ १९ ॥ बहुरि 'केवलसिद्धेभ्यो नमो नमः' ताका अर्थ केवलरूप सिद्ध तिनिकूं वारंवार नमस्कार 'अंतकृतसिद्धेभ्यो नमः' ताका अर्थ अंतकृतकेवली सिद्ध भए तिनिकूं वारंवार नमस्कार बहुरि केवल कल्याणक अर निर्वाण कल्याणक लारही होंय ते अंतकृतकेवली कहिए बहुरि 'परंपरासिद्धेभ्यो नमः' ताका अर्थ परंपरायतैं सिद्ध होय हैं तिनिकूं वारंवार हमारा नमस्कार जिनिकै ताका अर्थ अनादिकालतैं परपाटीरूप सिद्ध होय हैं तिनिकूं वारंवार नमस्कार ॥ २० ॥ बहुरि 'अनादिपरंपरसिद्धेभ्यो नमः' 'सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्यनिर्वाणपूजा—अग्नींद्राय स्वाहा' ताका अर्थ सम्यग्दृष्टि निकट संसारी निर्वाण-कल्याणककी पूजा करिवेयोग्य ऐसा अग्निकुमारनिका इंद्र ताकी प्रसन्नताकै अर्थि स्वाहा कहिए पवित्र द्रव्यनिकरि होम करै है, बहुरि 'सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु' ॥ २२ ॥ 'अपमृत्युविनाशनं भवतु' 'समाधिमरणं भवतु' ताका अर्थ हमकूं सेवाका फल षट्परमस्थान कहिए सज्जाति सद्गृहस्थता मुनिव्रत सुरेंद्रता चक्रेश्वरता अरहंतपद होहु अर अपमृत्यु कहिए कुमरण ताका विनाश होहु अर समाधिमरण होहु इह पीठिका मंत्र कह्या ॥ २६ ॥ अब जातिमंत्र कहै हैं, आगमके प्रमाण सो अनुक्रमतैं सुनहु— 'सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ सत्यरूप है जन्म जिनिका ऐसे जिनेंद्रदेव तिनिका शरण धारूं हूं बहुरि 'अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ अर्हंतपदरूप है जन्म जिनिका ऐसे भगवंत तिनिका शरण धारूं हूं ॥ २७ ॥ बहुरि 'अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ तीर्थंकरदेवकी माताका शरण धारूं हूं बहुरि 'अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ—तीर्थंकरदेवके पुत्रका शरण धारूं हूं। बहुरि 'अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ अनादिकालका वीतरागका मार्ग ताका शरण धारूं हूं। बहुरि अनोपमजन्मनः शरणं प्रपद्यामि' ताका अर्थ अनोपम है जन्म जिनिका ऐसे तद्भव मोक्ष-

आदिपुराण

गामी चरमशरीरी तिनिका शरण धारूं हूं ॥ २९ ॥ बहुरि
ग्दर्शन सम्य

हूं—'सत्यजाताय स्वाहा ताका' अर्थ सत्यरूप है प्रगटपणा जिनिका ऐसे भगवान तिनिके ताईं पूजूं हूं ॥ ४४ ॥ बहुरि 'दिव्यजाताय स्वाहा' ताका अर्थ दिव्यरूप हैं जन्म जिनका ऐसे देवनिके पति तिनिके सत्कार करूं हूं। बहुरि 'दिव्यार्चजाताय स्वाहा' ताका अर्थ दिव्यरूप है देह जाका ऐसा सुरेंद्र ताका आदर करूं हूं ॥४५॥ बहुरि 'नेमिनाथाय स्वाहा' ताका अर्थ धर्मरूप रथकी धुर जे मुनि तिनिके नाथ जे जिनेंद्र तिनिकूं पूजूं हूं। बहुरि 'सौधर्माय स्वाहा' ताका अर्थ सौधर्म स्वर्गका इंद्र ताके गुणवर्णन करूं हूं ॥ ४६ ॥ बहुरि 'कल्पाधिपतये स्वाहा' ताका अर्थ देवलोकका अधिपति पहले स्वर्गका इंद्र ताकी सुश्रूषा करूं हूं। बहुरि 'अनुचराय स्वाहा' ताका अर्थ श्रीतीर्थंकर देवका परम सेवक शचीका पति ताका यश वर्णन करूं हूं ॥४७॥ बहुरि परंपरेंद्राय स्वाहा ताका अर्थ परंपराय इंद्र भए अर हौहिगे तिनिका आदर करूं हूं। बहुरि अहमिंद्राय स्वाहा ताका अर्थ स्वर्गतैं परै जे सम्यद्दष्टी अहमिंद्र तिनिके गुण वर्णऊं हूं ॥ ४८ ॥ बहुरि परमार्हताय स्वाहा ताका अर्थ बडे जिनधर्मी अर्हंतदेवके उपासक देवनिमैं उत्कृष्ट देवेंद्र तिनिके यश वर्णन करूं हूं बहुरि अनुपमाय स्वाहा ताका अर्थ तिनिकी तुल्य और देव नाहीं ऐसे देवेश्वर तिनितैं अनुराग करूं हूं ॥ ४९ ॥ बहुरि सम्यकद्दष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रिणे स्वाहा ताका अर्थ महासम्यक्दृष्टि स्वर्गका पति सर्व देवनिकूं धर्मोपदेशका देनहारा देवनिका गुरु देवेंद्र ताकी कीर्ति करूंहूं ॥ ५० ॥ बहुरि सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु याका अर्थ पूर्वै कह्या सो जानूं ॥ ५१ ॥ इह सुरेंद्रंमंत्र सुरेंद्रका मन तुष्ट करणहारा सिद्धांतविषैं कह्या अब परमराजादि मंत्र श्रुति अनुसार कहूं हूं अरंहतरूप है जन्म जिनिका ऐसे चरमशरीर तद्भव मोक्षगामी तिनिकै ताईं पूजूं हूं ॥ ५२ ॥ बहुरि अनुपमेंद्राय स्वाहा ताका अर्थ जाकी तुल्य इंद्र नाहीं ऐसा नृपेंद्र चक्रेश्वर ताकूं स्तुति करूं हूं। भावार्थ—इंद्र तौ ताभवविषैं भोगरूपही है योगके परणाम है परंतु योग धारि न सकै अर चक्रवर्ति इंद्रकेसे भोग भोगवै भोग तजि योग धारै तातैं अनुपम इंद्र कहिए। बहुरि विजयार्द्ध जाताय स्वाहा ताका अर्थ विजयरूप है तेज-

जाताय नमः' ताका अर्थ यथार्थ है जन्म जिनिका ऐसे जिनेश्वरदेव तिनिकै ताई नमस्कार वहुरि 'अर्हज्जाताय नमः' ताका अर्थ अरहंतपदरूप है जन्म जिनिका ऐसे सर्वेश्वर तिनिकै ताई नमस्कार ॥ ३७ ॥ वहुरि 'निर्ग्रंथाय नमः' ताका अर्थ सर्व परिग्रहरहित निर्ग्रंथगुरु तिनिकै ताई नमस्कार वहुरि 'वीतरागाय नमः' ताका अर्थ राग द्वेष रहित परम स्वभावके धारक वीतराग तिनिकै ताई नमस्कार । वहुरि 'महाव्रताय नमः' ताका अर्थ अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग ए पंच महाव्रत तिनिके धारक महामुनि तिनिकै अर्थि नमस्कार ॥३८॥ वहुरि 'त्रिगुप्ताय नमः' ताका अर्थ मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति तिनिके धारक यतीश्वर तिनिकै ताई नमस्कार वहुरि 'महायोगाय नमः' ताका अर्थ महायोगके धारक परमध्यानी योगींद्र तिनिकै ताई नमस्कार वहुरि 'विविधयोगाय नमः' ताका अर्थ नानाप्रकार योगके धारक परम ऋषि तिनिकै ताई नमस्कार ॥ ३९ ॥ वहुरि 'विवर्द्धये नमः' ताका अर्थ नानाप्रकार रिद्धिके धारक ऐसे महासंयमी तिनिके ताई नमस्कार वहुरि 'अंगधराय नमः' ताका अर्थ ग्यारह अंगके धारक जे वहुश्रुत महासाधु तिनिके ताई नमस्कार ॥ ४० ॥ वहुरि 'पूर्वधराय नमः' ताका अर्थ चौदह पूर्वके पाठी वडे आचार्य तिनिकै ताई नमस्कार वहुरि 'गणधराय नमः' ताका अर्थ वीतरागकी वाणीके उपदेष्टा सकल मुनिनके गुरु गणधरदेव तिनिके ताई नमस्कार ॥ ४१ ॥ वहुरि 'परमऋषिभ्यो नमो नमः' ताका अर्थ परम ऋषि जो शुद्धोपयोगी जिनकल्पी यतेंद्री तिनिके ताई वारंवार नमस्कार वहुरि 'अनुपमजाताय नमो नमः' ताका अर्थ अनुपम है उत्पत्ति जिनिकी ऐसे मन इंद्रीनिके जीतनहारे ऋषिनाथ तिनिकी ताई वारंवार नमस्कार ॥ ४२ ॥ वहुरि 'सम्यग्दृष्टे, भूपते, नगरपते, कालश्रवणाय स्वाहा' ताका अर्थ सम्यग्दृष्टी पृथ्वीके पति नगरके पति जिनमार्गके अधिष्ठाता मनुष्यनिके स्वामी तिनिका सत्कार करूं हूं ॥ ४३ ॥ वहुरि 'सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु, ताका अर्थ पूर्ववत् जानूं इह ऋषि मंत्र कह्या तत्त्वके दर्शी महामुनिनि दिखाया । आगैं सुरेंद्रमंत्र श्रुतिप्रमाण कहूं

ऐसे मुनिराज तिनिकै ताईं नमस्कार। भावार्थ—मुनिकासा मान्य इंद्र चक्रवर्त्यादिककै नांही ॥ ६६ ॥ बहुरि परमर्द्धये नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट रिद्धिके धारक तिनिकै ताईं नमस्कार। बहुरि परमप्रशादाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है स्वरूपानंदकी वांछा जिनिकै तिनिकै ताईं नमस्कार बहुरि परमविजयाय नमः ताका अर्थ पाई है परमविजय कहिए कर्म शत्रुनितैं विजय जिनि तिनिकै ताईं नमस्कार। बहुरि परमज्ञानाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट ज्ञानके धारक तिनिकै ताईं नमस्कार बहुरि परमदर्शनाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट सम्यक्दर्शनके धारक तिनिकै ताईं नमस्कार ॥ ६७ ॥ बहुरि परमवीर्याय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट वीर्यके धारक तिनिकै ताईं नमस्कार बहुरि परमसुखाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्टसुखके धारक तिनिकै ताईं नमस्कार। बहुरि सर्वज्ञाय नमः ताका अर्थ सर्वके वेत्ता तिनिकै ताईं नमस्कार ॥ ६८ ॥ बहुरि अर्हते नमः ताका अर्थ अर्हंतदेवकै ताईं नमस्कार बहुरि परमेष्ठिने नमो नमः ताका अर्थ पंचपरमेष्ठीकै ताईं बारंबार नमस्कार ॥ ६९ ॥ बहुरि परमनेत्रे नमो नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है ज्ञानरूप नेत्र जिनिकै तिनिकै ताईं बारंबार नमस्कार। बहुरि सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजयधर्ममूर्तिधर्मनेमिस्वाहा ताका अर्थ सम्यक्दृष्टि त्रैलोक्यके जीतनहारे धर्ममूर्तिरूप रथकी धुराके धोरी तिनिकी स्तुति करूं हूं ॥७०॥ बहुरि सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशं भवतु समाधिमरणं भवतु ताका अर्थ पूर्वै कहि आए सो जानूं ॥ ७१ ॥ इह परमेष्ठीमंत्र कह्या पीठिकामंत्र जातिमंत्र निस्तारकमंत्र ऋषिमंत्र सुरेंद्रमंत्र परमराजादिमंत्र परमेष्ठीमंत्र ए सप्त पीठिका मंत्र जानहु। जे उत्तम द्विज हैं ते इनि मंत्रनिकरि आधानादि क्रियाकी विधिविषैं सिद्धनिकी अर्चा करैं ॥ ७२ ॥ गर्भाधानादि क्रियाकी विधिविषैं गणधरनिकरि भाषे सूत्र तिनिमैं ए साधन मंत्र कहे हैं ॥ ७३ ॥ ए मंत्र विधिकरि साधे संते तीनूं संध्या देवपूजाविषैं तथा नित्यकर्मविषैं तीनूं अग्निविषैं होमके मंत्र हैं ॥ ७८ ॥ भगवानकी प्रतिमाकै समीप एकसौ आठ मंत्र जपै। गंध पुष्प अक्षत अर्घादि समर्पणपूर्वक ए मंत्र जपै ॥ ८० ॥ सिद्ध भई है विद्या जाकूं सो इनि मंत्रनिकरि पूजादि क्रिया आचरै

मई जन्म जिनिका ऐसे चक्राधिपतिनिका यश गाऊं हूं ॥ ५४ ॥ वहुरि नेमिनाथाय स्वाहा ताका अर्थ धर्मरूप रथके चलावनेकूं धुर समान जे धर्मात्मा नृप तिनिके नाथ तिनिके गुण वर्णन करूं हूं। वहुरि परमराजाय स्वाहा ताका अर्थ राजनिमैं जाकी तुल्य नांही ऐसा राजेंद्र चक्रधर ताकी स्तुति करूं हूं ॥ ५५ ॥ वहुरि परमार्हताय स्वाहा ताका अर्थ श्रीअरहंत देवका उपासक राजनिमैं जा समान और नांही परमजैनी जिनधर्मका उद्योत करणहारा ताके यश गाऊं हूं । वहुरि अनुपमाय स्वाहा ताका अर्थ जाकी तुल्य और नांही जिनराजका महाभक्त ताकी स्तुति करूं हूं ॥ ५६ ॥ वहुरि सम्यक्दृष्टे उग्रतेजदिशां विजयने मविजय स्वाहा ताका अर्थ महा सम्यक्दृष्टि उग्र है तेज जाका दीननिका रक्षक दुष्टनिका निग्रह करणहारा दयाधर्मकी प्रवर्त्ति करणहारा दिशानिका जीतनहारा धर्मरूप रथकी धुर धर्मके प्रसादकरि माहिले वैरी काम लोभादिक अर बारिले वैरी प्रजाकूं दुःख देनहारे अनीति तिनिका निग्रह करणहारा जाकै राजमैं कोऊ दुष्ट दीननिकूं दुःख न दे सकै ऐसा राजेंद्र ताका स्तवन करूं हूं ॥ ५७ ॥ वहुरि सेवाफलं पट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु याका अर्थ पूर्वै लिख्या सो जानूं ॥ ५८ ॥ ए परम राजादि मंत्र आगमके अनुसारि कह्या। आगैं परमेष्ठी मंत्रका कथन करै हैं ॥ ५९ ॥ सत्यजाताय नमः, अर्हज्जाताय नमः इनि दोऊ मंत्रनिका अर्थ आगैं कहि आए हैं सो जानूं वहुरि परमजाताय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है जन्म जिनिका तिनिकै ताईं नमस्कार। वहुरि परमार्हताय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट जिनधर्मी तिनिकै ताईं नमस्कार ॥६०-६१॥ वहुरि परमरूपाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है तपरूप तेज जिनिका तिनिकै ताईं नमस्कार ॥ ६२ ॥ वहुरि परमगुणाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है गुण जिनिकै तिनिकै ताईं नमस्कार। वहुरि परमस्थानाय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है भावरूप स्थान जिनिका तिनिकै ताईं नमस्कार ॥ ६३ ॥ वहुरि परमयोगिने नमः ताका अर्थ परम योगके धारक तिनिकै ताईं नमस्कार। वहुरि परमभाग्याय नमः ताका अर्थ उत्कृष्ट है भाग्य जिनिका

हूज्यौ बहुरि परमराज्यभागी भव ताका अर्थ परमराज्य जो चक्रवर्त्तिपद ताका भोक्ता हूज्यौ ॥ ९३ ॥ बहुरि आर्हंतभागी भव ताका अर्थ अर्हंत पदका धारक हूज्यौ बहुरि परमनिर्वाणभागी भव ताका अर्थ परम निर्वाणका नायक हूज्यौ इह गर्भाधान क्रियाका मंत्र कह्या ॥ ९४॥ बहुरि बालक गर्भमें आवै तब तीजे महीने प्रीतिनामा क्रिया ताका मंत्र कहै हैं॥ ९५ ॥ त्रैलोक्यनाथो भव ताका अर्थ तू तीनूं लोकका नाथ हूज्यौ बहुरि त्रैकाल्यज्ञानी भव ताका अर्थ अतीत अनागत वर्तमान तीनूं कालका ज्ञायक हूज्यौ बहुरि त्रिरत्नस्वामी भव ताका अर्थ सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र ए तीनूं रत्न तिनिका स्वामी हूज्यौ ॥ ९७ ॥ यह दूजी प्रीतिक्रियाका मंत्र कह्या अब तीजी सुप्रीतिक्रिया गर्भके पांचमें महीने करनी ताका मंत्र कहै हैं—अवतारकल्याणभागी भव ताका अर्थ हे पुत्र ! तू जन्मांतरविषैं गर्भकल्याणका धारी हूज्यौ बहुरि मंदरेंद्राभिषककल्याणभागी भव ताका अर्थ सुमेरु पवतविषैं इन्द्रकरि कीया जन्माभिषेक कल्याण ताका धारक हूज्यौ ॥९८॥ बहुरि निःक्रांतिकल्याणभागी भव ताका अर्थ निःक्रांतिकल्याणकका धारक हूज्यौ बहुरि परमनिर्वाणकल्याणभागी भव ताका अर्थ परमनिर्वाण कल्याणका धारक हूज्यौ ॥९९-१००॥ ए सुप्रीति क्रियाके मंत्र कहे अब गर्भके सातवें महीनैं धृतिनामा क्रिया ताके मंत्र कहैं हैं॥१॥ सज्जातिदातृभागी भव ताका अर्थ तू ऐसा हूज्यौ जो तेरे उपदेशतैं और भव्यजीव सज्जाति कहिए संस्कार करि शुद्ध जाति पावैं। बहुरि सद्गृहदातृभागी भव ताका अर्थ तू ऐसा हूज्यौ जो तेरे उपदेशतैं भव्यजीव इंद्रपद पावै बहुरि परमराज्यदातृभागी भव ताका अर्थ ऐसा हूज्यौ तेरे प्रसादतैं भव्यजीव चक्रवर्तिपद पावै बहुरि आर्हंत्यदातृभागी भव ताका अर्थ तू ऐसा हूज्यौ जो तेरे उपदेशतैं भव्यजीव मुनिपद धारि केवलपद पावै बहुरि परमनिर्वाणदातृभागी भव ताका अर्थ तू ऐसा हूज्यौ जो तेरे उपदेशतैं महामुक्ति पावै ॥ २ ॥ ए चौथी धृतिक्रियाके मंत्र कहे अब गर्भके नवमे मास पांचमी मोद नामा क्रिया ताके मंत्र कहै हैं सज्जातिकल्याणभागी भव ताका अर्थ संस्कार शुद्ध जो सज्जाति ताके कल्याणका धारी हूज्यौ ॥ ३ ॥ बहुरि सद्गृह-

शुक्ल है वस्त्र जाकै महापवित्र यज्ञोपवीतका धारक निश्चल है चित्त जाका ॥८१॥ क्रियानिके आरंभविषैं उत्तम मध्यम जघन्य तीनूं अग्निकुमारनिके इंद्रके मुकुटतैं उपजी सो रत्नत्रयका स्वरूप जानि अंगीकार करनी ॥ ८२ ॥ इनिमैं एक तीर्थंकरके निर्वाणकी अग्नि दूजी गणधर देवनिके निर्वाणकी अग्नि तीजी और केवलीनिके निर्वाणकी अग्नि ए तीनूं अग्नि निर्वाणकल्याणककी पूजाका कारण पाय पवित्रताकूं प्राप्त भई हैं ॥ ८३ ॥ तीनूं कुंडनिविषैं ए तीनूं महा अग्नि थापनी, गार्हपत्य आहवनीय दक्षिणाग्नि ए तीनूं अग्नि प्रसिद्ध हैं ॥ ८४ ॥ इनिविषैं उत्तम द्विज मंत्रनिकरि होमरूप पूजा करतासंता अग्निहोत्र कहिए, नित्ति है पूजा जाके घरविषैं ॥ ८५ ॥ इनि तीनूं अग्निका हव्य यजनविषैं अर धूप खेयवेविषैं दीप उद्योतविषैं नियोग है, इनि अग्निनिके नित्य पूजनविषैं पवित्र द्रव्यनि करि होम करना ॥ ८६ ॥ ए तीनूं अग्नि घर विषैं यत्नसूं राखनी बुझिवा न देनी । अर जे क्रियाके संस्कारतैं रहित हैं तिनिकूं न देनी ॥ ८७ ॥ अग्निकूं आपतैं पवित्रपना नाहीं अर देवपना नाहीं अरहंतदेवकी दिव्य मूर्ति ताके निर्वाणपूजाके संबंधतैं अग्नि पवित्र है ॥ ८८ ॥ जैसें निर्वाणक्षेत्र भगवानके निर्वाणके योगतैं पूज्य भया तैसें ए अग्नि निर्वाण कल्याणककी पूजाके योगतैं पवित्र भई तातैं निर्वाणक्षेत्रकी पूजाकी नाईं तीनूं अग्निकी पूजा दूषित नाहीं ऐसा जानि वे द्विजोत्तम तीनूं संध्याविषैं अग्निका अर्चन करैं पवित्र द्रव्यनिकरि होम करै है ॥ ८९ ॥ व्यवहारनयकी अपेक्षा निर्वाणक्षेत्रकूं अर इनि अग्निनिकूं विवेकी द्विज पूजै निश्चयनयकरि परम पदार्थका पूजन नाहीं आत्माहीका पूजन है जिनधर्मीनिकूं प्रथम अवस्थाविषैं व्यवहारनयका आदर योग्य है ॥ ९० ॥ ए पीठिकादि सप्त मंत्र सबही क्रियानिकी विधिविषैं साधारण हैं अब क्रियानिके विशेष मंत्र कहूं हूं ॥९१॥ प्रथम ही आधान क्रियाके मंत्र सुनहु सज्जातिभागी भव ताका अर्थ हे पुत्र तू सज्जातिका धारक हूज्यो बहुरि सद्गृहभागी भव ताका अर्थ उत्तम गृहस्थ पदका धारक हूज्यौ ॥९२॥ बहुरि मुनींद्रभागी भव ताका अर्थ मुनिपदका धारक हूज्यौ । बहुरि सुरेंद्रभागी भव ताका अर्थ इन्द्र पदका भोक्ता

महासौम्यमूर्ति ॥ १११ ॥ सम्यक्दर्शनकी धारक अणुव्रत पालनहारी महायोग्य अर हे पुत्र तूहू दिव्यचक्र
जो इंद्रपदका अर विजयचक्र जो चक्रवर्तिपदका अर परमचक्र जो तीर्थेश्वरपदका इनि तीन चक्रनिका
अनुक्रमतैं धारक हूज्यौ ॥ १२ ॥ या भांति पिता पुत्रकूं आशीर्वाद दे पुत्रके अंग सपरसै ताविषैं अपना
साक्षात् रूप देखता बालकविषैं स्नेह धारि इह कहै ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! तू मेरे अंगतैं उपज्या है हृदयथकी
उपज्या है मानूं मेरा आत्माही है सो घनै वर्ष जीयै ॥ १४ ॥ बहुरि दूध घीरूप अमृत ताकरि बालककी
नाभि सींचि नाभि नाल काटै तासमय यह मंत्र पढै 'घातिजयो भव' ताका अर्थ तू घातिया कर्मका जीतन-
हारा हूज्यौ जन्मांतरविषैं जिनराज हूज्यौ श्रीदेव्य स्तेजातिक्रियाः कुर्वन्तु' ताका अर्थ श्री ह्री देवी आदि
तेरा जातकर्म कीज्यौ इह मंत्र पढिकरि अतियत्नतैं बालकके शरीरकूं सुगंधचूर्णकरि शोभित करै
॥ १५ ॥ बहुरि सुगंध जलकरि स्नान करावै स्नान करावतैं यह मंत्र पढै 'मंदराभिषेकार्हो भव' ताका
अर्थ तू सुमेरु पर्वत परि स्नानयोग्य हूज्यौ बहुरि इह आशीष दे बालकके सिरपरि अक्षत डारै, सो
आशीष कहा ? 'चिरं जीव्यात्' ताका अर्थ तू चिरकाल जीवौ ॥१६॥ बहुरि यह मंत्र पढै 'नश्यात् कर्ममलं
कृत्स्नं' ताका अर्थ तेरे समस्त कर्ममल नाशकूं प्राप्त हूज्यौ इह मंत्र पढि बालककी माता अर कुटुम्ब
सहित वह द्विज बालकके मुखविषैं औषधिनि करि संसिद्ध जो घृत सो लगावै ॥ १७ ॥ बहुरि बालकका
मुख माताके आंचल लगावै सो आंचल लगावता इह मंत्र पढै 'विश्वेश्वरास्तन्यभागी भूयात्' ताका अर्थ तू
जन्मांतरविषैं विश्वेश्वरा जो जिनमाता ताके स्तनका पान करणहारा हूज्यौ ॥ १८ ॥ बहुरि पहली वर्णन
करि आए ता भांति पुत्रके जन्मका अति उच्छव करै आनन्दसूं अतिप्रीतिकरि महादान दे विधि-
पूर्वक ए क्रियाकरि युक्त पुत्रका जातिकर्म करै ॥ १९ ॥ बहुरि बालकका जरापटल नाभि नालसहित
पवित्र भूमिकूं खोदिकरि गाढै तब यह मंत्र पढै ॥ २० ॥ 'सम्यग्दृष्टे सर्वमातवसुंधरे स्वाहा' ताका अर्थ
सकल परि समान है दृष्टि जाकी सबकी माता हे वसुंधरा तू मंगलकारिणी हूज्यौ ॥ २१ ॥ या मंत्रकरि

कल्याणभागी भव ताका अर्थ उत्तम श्रावकके व्रतरूप गृहस्थपद ताके कल्याणका भोक्ता हूज्यो । बहुरि वैवाह—कल्याणभागी भव ताका अर्थ सूत्रोक्त विवाह कल्याणका भोक्ता हूज्यो ॥ ४ ॥ बहुरि मुनींद्र-कल्याणभागी भव ताका अर्थ मुनिपदरूप कल्याणका धारक हूज्यो बहुरि सुरेंद्रकल्याणभागी भव ताका अर्थ तू इंद्रपदरूप कल्याणका भोक्ता हूज्यो ॥ ५ ॥ बहुरि मंदराभिषेककल्याणभागी भव ताका सुमेरु पर्वत परि जन्माभिषेक कल्याणका भोक्ता हूज्यो बहुरि यौवराज्यकल्याणभागी भव ताका अर्थ युवराज पदका कल्याण ताका भोक्ता हूज्यो ॥ ६ ॥ बहुरि महाराज्यकल्याणभागी भव ताका अर्थ तू महाराज्य पदका कल्याण ताका भोक्ता हूज्यो ॥ ७ ॥ बहुरि परमराज्यकल्याणभागी भव ताका अर्थ तू चक्रेश्वर पदका कल्याणका भोक्ता हूज्यो बहुरि आर्हन्त्यकल्याणभागी भव ताका अर्थ अर्हंत पदके कल्याणका भोक्ता हूज्यो ॥ ८ ॥ ए पांचमी मोद क्रियाके मंत्र कहे । अब छठी जन्म क्रियाके मंत्र कहे हैं—भगवंतकी पूजाविषै ए मंत्र पढै दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा ताका अर्थ दिव्य कहिए महामनोहर नेमि कहिये धर्मरूप रथकी धुरा जो सम्यक्दर्शन ताकरि पाई है अज्ञानरूप मिथ्यादर्शनतें जीति जिनि ऐसे सम्यक्दृष्टि तिनिकै ताईं पूजूं हूं. सम्यक्दर्शनीकी स्तुति करूं हूं बहुरि परमनेमिविजयाय स्वाहा ताका अर्थ परम कहिए उत्कृष्ट जो शुद्धभाव ताकी नेमि कहिये धुर जो धर्मध्यान ताकरि पाई है आर्त रौद्रतें विजय जिनि भावार्थ आर्त रौद्र कुध्यानके वटरूप मंदिरतें काढे ऐसे विवेकी तिनिके ताईं नमस्कार करूं हूं बहुरि आर्हंतिनेमिविजयाय स्वाहा ताका अर्थ आर्हन्त्य कहिए केवलज्ञान ताकी धुर ज्यो शुक्लध्यान ताकरि पाई है घातिकर्मरूप शत्रुनितें जीति जिनि ऐसे परम योगींद्र तिनिके ताईं प्रणाम करूं हूं ए छठी प्रीतोद्भव नामा क्रिया ताका अर्थ ॥ ९ ॥ ए जन्म संस्कार मंत्र ताकरि बालकके भगवानके गंधोदककूं छांटि बालकका सिर सपरसे ॥ ११० ॥ अर ए वचन कहै तेरी माता कुलशुद्ध जातिशुद्ध वय रूप शील इत्यादि गुणनिकरि बालककूं भगवानके मंदिर उत्तम संतानकी उपजावनहारी भाग्यवती सौभाग्यवती विधिमार्गकी प्रवृत्तिकरणहारी

अर्थ सर्वोत्कृष्ट जे एक हजार आठ नाम तिनिका धारक हूज्यौ ऐ नामक्रियाके मंत्र कहे ॥३२॥ और सकलविधि पहली वरनि आए तातैं अब न कही। बहुरि बालक दोय महीना तथा तीन महीना तथा च्यारि महीना होय तब गृहके बाहरि ल्याये सो वहिर्यान क्रिया कहिए ताके मंत्र जानहु ॥३४॥ 'उपनयनक्रांतिभागी भव' ताका अर्थ हे पुत्र! तू यग्यापवीतका धारक हूज्यौ बहुरि 'वैवाहनिष्ठनिक्रांतभागी भव' ताका अर्थ विवाहक्रिया-रूप जे व्रत तिनिका धारी हूज्यौ ॥३५॥ बहुरि 'मुनिनिक्रांतिभागी भव' ताका अर्थ मुनिराजकी क्रिया-रूप जे व्रत तिनिका धारी हूज्यौ बहुरि 'सुरेंद्रजन्मनिक्रांतभागी भव' ताका अर्थ सुरेंद्रके जन्मरूप जो क्रिया ताका भोक्ता हूज्यौ ॥ ३६ ॥ बहुरि 'मंदिराभिषेकनिक्रांतिभागी भव' ताका अर्थ जिनेंद्रका पद पाय सुमेरु पर्वतपर स्नानक्रियाका धारक हूज्यौ बहुरि 'यौवराज्यनिक्रांतिभागी भव' ताका अर्थ युवराजपदकी क्रिया तिनिका धारक हूज्यौ बहुरि 'महाराज्यनिक्रांतिभागी भव' ताका अर्थ महामंडलीक पदकी क्रिया तिनिका धारक हूज्यौ ॥३७॥ बहुरि 'परमराज्यनिक्रांतभागी भव' ताका अर्थ चक्रेश्वरके राज्यकी क्रियाका भोक्ता हूज्यौ बहुरि आर्हंत्यिराज्यनिक्रांतभागी भव' ताका अर्थ अर्हंतदेवके पदरूप त्रैलोक्यका राज ताका भोक्ता हूज्यौ ए वहिर्यान क्रियाके मंत्र कहे ॥ ३८ ॥ आगें पलिंगपरि रूईके विछावणैं विछाय तापरि बालककूं बैठावै ताका नाम निषद्या कहिए ताके मंत्र कहे हैं ॥ ३९ ॥ 'दिव्यसिंहासनभागी भव' ताका अर्थ दिव्य सिंहासन जो इंद्र ताका स्वामी हूज्यौ बहुरि 'विजयसिंहासनभागी भव' ताका अर्थ विजय-सिंहासन जो चक्रवर्त्तिका ताका स्वामी हूज्यौ बहुरि 'परमसिंहासनभागी भव' ताका अर्थ परमसिंहासन जो तीर्थंश्वर ताका अधिपति हूज्यौ ॥ ४० ॥ ए निषद्या क्रियाके मंत्र कहे। आगें अन्नप्रासन कहिए है—बालककूं अन्न आहार करावनां छठे महीनेसूं ले नवमैं महीने पर्यन्त ताके मंत्र 'दिव्यामृतभागी भव' ताका अर्थ दिव्यामृत जे इंद्रपदसंबंधी ताका भोक्ता हूज्यौ बहुरि 'अक्षीणामृतभागी भव' ताका अर्थ अक्षीण अमृत जो जिनपदसंबंधी ताका भोक्ता हूज्यौ ॥४१॥ ए अन्नप्रासन क्रियाके मंत्र कहे। आगें व्युष्टिक्रिया जो वर्षवर्द्धन

पृथ्वीविषैं जलसहित अक्षत डारि जरायुपटल अर नाभि नाल माझै, पांचू वर्णके रत्न तिनिके तलैं धरै ॥ २२ ॥ जो धरती धान्य उपजवेयोग्य होय तहां गाडै वहुरि मंत्र पढै—'त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयासुः चिरंजीविनः' ताका अर्थ हे वसुंधरे ! तेरे पुत्र जो कुलाचल तिनि समान मेरा पुत्र चिरंजीव हूज्यो । इहां कोऊ प्रश्न करै जो पृथ्वी तौ जडपदार्थ है ताकी पहले मंत्रमें स्तुति अर दूजे मंत्रमें प्रार्थना करी सो कौन कारण ? ताका समाधान—क्षेत्रके अधिष्ठाता जे सम्यग्दृष्टि देव हैं तिनिके प्रसन्न करिवेके अर्थि इह मंत्र पढै ॥ २४ ॥ वहुरि क्षीर वृक्षकी शाखा तिनिकरि भूतलकूं शोभित करि मंत्र्या जो सुखदाई उष्ण-जल ताकरि वालककी माताकूं स्नान करावै सो जल मंत्रिवेका मंत्र सुनहु ॥ २५ ॥ 'सम्यग्दृष्टे आसन्न-भव्ये विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्ये जिनमाता स्वाहा' ताका अर्थ महासम्यक्त्ववती निकटसंसारिणी विश्वकी ईश्वरी प्रवल है पुण्य जाका ऐसी जिनेश्वरकी माता सो कल्याणकारिणी हूज्यो ॥ २६ ॥ जैसें जिनवरकी माता पुत्रके कल्याण देखै है तैसें यह वालककी माता पुत्रके कल्याण देखियो इह वुद्धि धारि वह उत्तम द्विज ऐसी विधि करै ॥ २७ ॥ वहुरि तीसरे दिन रात्रिविषैं वालक उठायकरि तारानिकरि मंडित जो आकाश सो दिखावै ता समय यह मंत्र पढै 'अनंतज्ञानदर्शी भव' ताका अर्थ हे पुत्र ! तू अनंतज्ञानका दर्शी हूज्यो ॥ २८ ॥ वहुरि शुभ दिनविषैं घोषणापूर्वक अपनी शक्तिप्रमाण योग्य दान करै अर सर्व जीवकी अभय घोषणा करावै इह दुहाई फेरे जो कोऊ काहू जीवकी वाधा न करै ॥ २९ ॥ इह जाति-कर्मकी विधिपूर्वक आचार्यन करी ही सो अवहू यथायोग्य उत्तमद्विजनिकूं कर्तव्य है ॥ ३० ॥ जहां द्विज शब्द आवै तहां ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीनू जानने वहुरि वारह दिन पीछें वालकका नाम धरै सो नामकर्मके विधानमैं भगवानकी पूजा विधिविषैं पूर्व पीठिकाके सप्तमंत्र कहे ते पढै ॥३१॥ वहुरि यह मंत्र पढै 'दिव्याष्ट-सहस्रनामभागी भव' ताका अर्थ दिव्य जो एक हजार आठ नाम तिनिका तू धारक हूज्यो वहुरि 'विजयनामा-ष्टसहस्रभागी भव' विजयरूप एक हजार आठ नाम तिनिका धारक हूज्यो परमनामाष्टसहस्रभागी भव ताका

॥ १५१ ॥ 'शब्दपारगामी भव' ताका अर्थ तू शब्दका पारगामी हूज्यौ बहुरि 'अर्थपारगामी भव' ताका अर्थ तू शब्दनिके अर्थका पारगामी हूज्यौ बहुरि 'शब्दार्थसंबंधपारगामी भव' ताका अर्थ शब्दार्थका संबंध ताका पारगामी हूज्यौ ॥ ५२ ॥ इह लिपिसंख्यानुसंग्रहके मंत्र कहे। आगैं उपनीति क्रिया जो यज्ञोपवीत ताका धारण ताके मंत्र कहै हैं 'परमनिस्तारकलिंगभागी भव' ताका अर्थ तू परम निस्तारक भेषका धारक हूज्यौ ॥ ५३ ॥ बहुरि 'परमर्षिलिंगभेषभागी भव' ताका अर्थ परम ऋषि जे महामुनि तिनिके भेषका भागी हूज्यौ। बहुरि 'परमेंद्रलिंगभागी भव' ताका अर्थ परम इंद्रपद ताके चिन्हका भागी हूज्यौ ॥ १५४ ॥ बहुरि 'परमराज्यलिंगधारी भव' ताका अर्थ परमराज्य जो चक्रवर्तिपद ताके चिन्हका भागी हूज्यौ बहुरि परमार्हंत्यलिंगभागी भव' ताका अर्थ परम अरहंतपदका जो चिन्ह ताका भागी हूज्यौ बहुरि 'परमनिर्वाणलिंगभागी भव' ताका अर्थ परमनिर्वाणके चिन्हका भागी हूज्यौ ॥ १५५ ॥ ए उपनीति क्रियाके मंत्र कहे। यज्ञोपवीत क्रिया गर्भतैं आठमें वर्ष होय है या मंत्र करि गुरु शिष्यका संस्कार करि शिष्यकूं निर्विकार वस्त्र करि संयुक्त करै ॥ १५६ ॥ कोपीन करि आच्छादन करै अर दुपटा कांधे परि डारैं अर मूंजका बंधन तीन डोरेका याकी कटिविषै बांधै ॥ ५७॥ अर गणधरोंका उपदेश्या व्रतका चिन्ह जो ब्रह्मसूत्र सो याके गरेमैं डारै तब यह मंत्रकरि पवित्र यज्ञोपवीतका धारक होय ॥ १५८ ॥ पहली जाति मात्र हुता अब व्रतके संस्कारतें दूसरा जन्म पाया तब द्विज कहाया, गुणनिकरि द्विजपनेकूं प्राप्त भया ॥ १५९ ॥ ता समै याहि गुरुकी साखि अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहप्रमाण ए पंच अणुव्रत अर दिग्व्रत देशव्रत अनर्थदंडपरिहार ए तीनूं गुणव्रत अर सामायिकप्रोषधोपवास अतिथिसंविभाग भोगोपभोगपरिमाण ए च्यारि शिक्षाव्रत अंगीकार करने या भांति व्रतनिके समूहकरि याका संस्कार करूं तब इह सांचा द्विज होय ॥ १६० ॥ बहुरि गुरु अतिबालविद्या आदि दश अधिकार विप्रनिके जे आगैं कहियेंगे ते उपदेसै अर उपासकाध्ययन सातमा अंग सो याहि पढावै

क्रिया ताके मंत्र कहे हैं ॥ १४२ ॥ 'उपनयनजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ जनेऊ धारणका जन्म ताके वर्द्धनका धारक हूज्यौ ॥४३॥ बहुरि 'वैवाहनिष्ठवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ विवाहक्रियाका वर्षवर्द्धनका धारक हूज्यौ बहुरि मुनींद्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव ताका अर्थ मुनींद्रजन्मवर्षवर्द्धनका धारक हूज्यौ ।४४। बहुरि 'सुरेंद्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ सुरेंद्रका जन्म ताके वर्षवर्द्धनका धारक हूज्यौ बहुरि 'मंदराभिषेकवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ जिनपदविषैं सुमेरुपर्वतपरि जन्माभिषेकवर्द्धनकाधारक हूज्यौ बहुरि 'यौवराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ युवराजपदके वर्षवर्द्धनका धारक हूज्यौ बहुरि 'महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ महामंडलेश्वरपदके वर्षवर्द्धनका धारक हूज्यौ बहुरि 'परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ चक्रेश्वरके राज्यके वर्षवर्द्धन ताका धारक हूज्यौ ॥ ४५ ॥ बहुरि 'आर्हन्त्यवर्षवर्द्धनभागी भव' ताका अर्थ अर्हंतपदका राज्य ताके वर्षवर्द्धनका धारक हूज्यौ ए व्युष्टिक्रियाके मंत्र कहे ॥ ४६ ॥ आगैं चौलक्रियाके मंत्र कहे हैं—केश मुंडन करि चोटी राखना ताका नाम चौलक्रिया कहिए। 'उपनयनमुंडनभागी भव' ताका अर्थ हे पुत्र! तू जनेऊकी क्रियाके मुंडनका धारक हूज्यौ ॥ ४७ ॥ बहुरि 'निर्ग्रंथमुंडभागी भव' ताका अर्थ निर्ग्रंथ जो मुनिपद ताविषैं लोचक्रियाका धारक हूज्यौ बहुरि 'निष्क्रांतिमुंडभागी भव' ताका अर्थ वैराग्य दशाविषैं विषय कषायका मुंडनहारा हूज्यौ ॥ ४८ ॥ बहुरि 'परमनिस्तारककेशभागी भव' ताका अर्थ संसारसागरका तारणहारा परम निस्तारकपद ताके केशनिका भागी हूज्यौ बहुरि 'सुरेंद्रकेशभागी भव' ताका अर्थ सुरेंद्रपदके केश तिनिका भागी हूज्यौ ॥ ४९ ॥ बहुरि 'परमराज्यकेशभागी भव' ताका अर्थ चक्रेश्वरपदके केशनिका धारक हूज्यौ बहुरि 'आर्हन्त्यराज्यकेशभागी भव' ताका अर्थ अर्हंतपदविषैं केश न घटैं न वधैं ऐसे पदका धारक हूज्यौ या मंत्र करि वह द्विज बालकके सिरका मुंडनकरि चोटी राखै ॥ १५० ॥ ए लोचक्रियाके मंत्र कहे। आगैं बालक पांच वर्षका होय जब लिपिसंख्यानुसंग्रह कहिए बालककूं अक्षर लिखना सिखावना ताके मंत्र कहे हैं

धारण योग्य है । श्रावकके व्रतके ग्यारह भेद हैं तिनिमैं दश प्रतिमा लग तौ शूद्र हू धारै अर ग्यारमी प्रतिमाके दोय भेद हैं—एक क्षुल्लक दूजा ऐलक सो क्षुल्लकके एक साडा है अर कोपीन अर ऐलककै कौपीनमात्र है सो मुनिव्रत अर ऐलक श्रावकके व्रत अर आर्जिकाके व्रत ए तौ त्रिकुल विना न होंय अर शूद्रका चौथा कुल है सो ग्यारही प्रतिमाके क्षुल्लक लग होय ऐलक न होय अर शूद्रनिकी स्त्री अर्जिका न होय शूद्रनिकूं श्रावक अर श्राविका हीके व्रत हैं अर उच्चकुलिनिकूं महाव्रत अणुव्रत सबही व्रत हैं, शूद्र क्षुल्लकलग व्रत धारै अर संन्यासमरण करै जन्मांतरविषैं उत्तमकुल पाय मोक्ष जाय ॥ ७१ ॥ अर मांसभक्षण काहूके कुलविषैं योग्य नाही जो मांसभक्षी हैं सो महापापी हैं अर परस्त्रीका सेवन काहूही कुलकूं योग्य नांही, निजदाराका सेवन अथवा निजदाराहूका त्याग सवनिकूं योग्य है अर आरंभ तजना हिंसा तजिनी अभक्षका भक्षण न करना, न पीवेयोग्य वस्तु न पीवनी ए क्रिया सबही कुलनिकूं कर्तव्य हैं। मद्य मांस मधु ए महा अभक्ष्य हैं ॥ ७२ ॥ या भांति व्रतकरि पवित्र जो अत्यंत शुद्धवृत्ति ताहि जो प्राप्त भया द्विज ताके संपूर्ण व्रतचर्याकी विधि कही ॥ ७३ ॥ आगै दश अधिकार उत्तम द्विजके उपासकाध्ययन सूत्रमैं कहे हैं सो संक्षेपमात्र—अनुक्रमतैं कहूं हूं ॥ ७४ ॥ अति बालविद्या, कुलावधि, वर्णोत्तम, पात्रत्व, सृष्टिअधिकारिता ॥ ७५ ॥ व्यवहारेशिता, अवध्यत्व, अदंडिता मानार्हता, प्रजासंबंधांतर ॥ ७६ ॥ ए दश अधिकार इनिका वर्णन अनुक्रमकरि आगै कहूंहूं ॥ ७७ ॥ बालक अवस्थाहीतैं द्विजकै विद्या सीखिवेका उद्यम होय ताका नाम अतिबालकविद्या कहिए जो यह न होय तौ अज्ञानी है तजिबेयोग्य अर आदरिबेयोग्य वस्तुकूं न जानै दुष्टनिकरि प्रेर्‍या मिथ्याशास्त्रकूं प्राप्त होय ॥ ७८ ॥ तातैं ब्राह्मण बाल्यअवस्थाहीतैं उपासकाध्ययन सूत्रका अभ्यास करै ताकरि पाया है संस्कार जानैं सो निजका अर परका तारक होय ॥ ७९ ॥ इह अतिबालकविद्या नामा प्रथम अधिकार कह्या, दूजा कुलावधि कहैं हैं ॥ ८० ॥ ब्राह्मणका कुल सर्वोत्तम सो सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मणका आचार है जो इह

॥ १६१ ॥ जब यह संस्कारी भया भगवानकी पूजापूर्वक यथाविधि गृहस्थाचार्यकी पूजा करै ॥ १६२ ॥ जा दिन यज्ञोपवीत ले तादिन भिक्षाके अर्थि माताके कुलके नाना मामा आदि तिनिके घरविषैं प्रवेश करै सो याहि अर्थका लाभ होय सो आदरसूं पढावनवारेकूं दे ॥ ६३ ॥ यह यज्ञोपवीतकी विधि कही और सारी विधि पूर्वे कहि आए ता प्रमाण पूर्ण आचरै जौलग शास्त्रका पाठ पूर्ण न होय तौलग ब्रह्मचर्यव्रत धारै सो याकी व्रतचर्य्या अनुक्रमतैं कहूं हूं जो उपासकाध्ययन अंगका रहस्य है सो संक्षेपता करि संग्रह करै ॥ ६४ ॥ शिरोलिंग उरोलिंग कटिलिंग ऊरूलिंग ए च्यारि लिंग जनेऊवारेके पहली वरनए सो अंगीकार करै। शिरोलिंग चोटीके गांठि अर उरोलिंग जनेऊ अर कटिलिंग मूजीबंधन अर ऊरूलिंग धोवती ऊरू नाम जंघाका है ॥ ६६ ॥ यह जनेऊकी विधि तीनही कुलकूं योग्य है विप्रादि तीन कुलमैं केवली होंहि तातैं इनकूं आर्हत कुल कहिए, ए तीन कुल मुनिव्रतके धारण योग्य हैं सो ए ही कुल अणुव्रतदशाविषैं जनेऊ धरैं सो इनि कुलनिमैं ब्राह्मण तौ अल्पारंभी अल्पपरिग्रही संतोषवृत्तिकरि कालक्षेप करै हैं अर क्षत्रीके खड्गवृत्ति है, वैश्यके वणिज है इनि उद्यमनिकरि सम्यग्दृष्टी श्रावक आजीविका करै है ॥ ६७ ॥ अर काहू कारणतैं काहूकै उत्तमकुलकूं दूषण लागा सो राजादिककी आज्ञाकरि अपना कुल शुद्ध करै ॥ ६८ ॥ तब याके जनेऊ धारणयोग्य है जो कैइक पीढीनितैं जनेऊकी क्रिया जाती रही होय तौऊ पुत्र पौत्रादि संतानविषैं जनेऊका धारण निषिद्ध नांहीं विधिपूर्वक जनेऊ धारै, काहेतैं जो याका कुल दीक्षायोग्य है याके आगिले बडे मुनि भए हैं बडे श्रावक भए हैं तातैं जो सुरझै सोही सुरझै कुल निषिद्ध नांही ॥ ६९ ॥ इनि उत्तम कुलनिमैं कोऊ कदाचि भ्रष्ट भया श्रावकके आचारतैं रहित भया अर वाके पुत्र पौत्रादि संतानविषैं कोऊ जिनदीक्षा धारक होय तौ योग्य है अर जे त्रिकुल विना शूद्र कुलके हैं अनेक धंधा अनेक शिल्पि आदि उद्यमकरि उदरपूरणा करै हैं तिनिका कुल मुनिव्रत योग्य नांहीं तिनिकूं जनेऊका संस्कार नांही ॥ ७० ॥ तिनिकूं अणुव्रतका

ऐश्वर्य न रहै जे वीतरागके मार्गविषैं प्रवर्तैं हैं तिन नृपनिका ऐश्वर्य दिन दिन अधिक होय है ॥९०॥ इह सृष्टिअधिकारता पांचमां अधिकार कह्या आगैं व्यवहारेशिता छठा अधिकार कहै हैं—जो विप्र परमागमका आश्रय करै तौ प्रायश्चित्तादि कर्मविषैं प्रवीण होय। जाकूं दूषण लागै ताहि दोष माफिक प्रायश्चित्त देकरि शुद्ध करै अर जो आप काम लोभादि कलंककरि अशुद्ध होय तौ आपकूं अर परकूं शुद्ध न करिसकै आप अशुद्ध भया औरनितैं शुद्धता चाहता संता प्रायश्चित्त करि शुद्ध होय ॥ ९३ ॥ इह छठा व्यवहारेशिता नामा अधिकार कह्या। आगैं सातमा अवध्याधिकार कहै हैं—वह स्थिरात्मा उत्तम द्विज गुणानिके उत्कर्षतैं राजादिकथकी हनिवेयोग्य नाहीं, सवही प्राणी न हनने सबकी दया पालनी कोऊ ही प्राणी हनिवेयोग्य नाहीं तौ ब्रह्मण कैसैं हनिवेयोग्य होय यद्यपि सब जीव समान हैं अर सबनिकी हिंसा-वर्जित है तथापि गुणनिकी न्यूनता अर अधिकतातैं हिंसाकी न्यूनता है। अधिक हिंसा मुनिकी है अर मुनितैं उतरती अणुव्रती श्रावककी है इनितैं और सब हिंसा उतरती जानूं ॥९४॥ तातैं इह व्रती ब्राह्मण लोकविषैं अवध्य, धर्मका अैसा माहात्म्य है जो धर्मविषैं तिष्ठ्या इह धर्मज्ञ काहू करि पीडिबे योग्य नाहीं ॥ १९५ ॥ अर जो इह धर्मरहित होय तो सर्वथकी पीडिवेयोग्य होय अैसैं होतैं मार्गकी महिमा लोप होय ॥ ९६ ॥ तातैं सर्व यत्न करि धर्मकी रक्षा करनी धर्मकी रक्षा होतैं आपकी रक्षा होय ॥९७॥ इह सातमां अवध्य नामा अधिकार कह्या, आगैं आठमा अदंडित्व नामा अधिकार कहै हैं—अर परमधर्मविषैं स्थिर है आत्मा जाका अैसा व्रती ब्राह्मण सो दंडयोग्य नाहीं जो धर्मात्मा जन हैं सो औरनिकूं प्रायश्चित्तादि दंड देवेयोग्य हैं ॥ १९८ ॥ तातैं धर्मशास्त्रकूं प्रगट करता आप धर्मी हुआ औरनिकूं उपदेश दायक है, जे धर्मज्ञ हैं ते धर्माचार्यके उपदेशतैं प्रायश्चित्तादि दंड धारै हैं ॥ १९९ ॥ धर्मात्मा पुरुष राजनिकरि अदंड्य है अर जे अधर्मीजन हैं तिनिकूं धर्मात्मा राजा तिनके अपराध प्रमाण दंडका द.ता है ॥ २०० ॥ जैसें आत्मकल्याणके अर्थीनिकूं देवद्रव्य गुरुद्रव्य महा अग्राह्य है तैसैं व्रतीहूका द्रव्य सर्वथा अग्राह्य है

न होय तौ क्रिय भ्रष्ट भया उत्तमकुलतें रहित होय हीनताकूं प्राप्त होय ॥ ८१ ॥ इह कुलावधि नाम दूजा अधिकार कह्या अब तीजा वर्णोत्तमत्व नामा अधिकार कहै हैं—सर्व वर्णनिविषैं विप्रकुलकी अधिकता है सो ऊंचाही आचरण करै सर्वजीवकी दया पालै मृषावाद तजै परधन अर परदाराका परिहार करै बहु आरंभ बहु परिग्रह तजै अनाचारता तजै ताकरि पृथ्वीविषैं प्रशंसा पावै आप परके उद्धारिवेकूं समर्थ होय ॥८२॥ जो याकै वर्णोत्तमपना न होय तौ जगतविषैं श्रेष्ठता न होय अर श्रेष्ठता न भई न्यूनता भई तब न आपकूं शुद्ध करै न औरनिकूं शुद्ध करै ॥ ८३ ॥ तातैं इह विशुद्धताका अभिलाषी कुलिंगीनिकूं न सेवै तथा कुत्सित ब्राह्मणकूं न सेवै जो सेवै तौ ताके दोष निःसंदेह यामैं आवै क्रियाभ्रष्टका सेवन न करै ॥ ८४ ॥ इह वर्णोत्तमत्व नामा तीजा अधिकार कह्या, अब चौथा पात्रत्व नामा अधिकार कहै हैं—गुणनिके गौरवतैं व्रती ब्राह्मणकूं पात्रपना है उत्कृष्टपात्र मुनि अर मध्यमपात्र अणुव्रती अर जघन्यपात्र अव्रत सम्यग्दृष्टी सो विनयकरि दान देवेयोग्य है, या लोकमैं ब्राह्मण अणुव्रतके गुणनिकरि अधिक भया राजानिकरि मान्य होय ॥८५॥ आपविषैं गुणनिकूं दृढता करै तब पात्र कहिए, जो याविषैं गुणाधिकता न होय तौ मान्यता न होय जब मान्यता न भई तब राजा याका धन हरिलेय तातैं ब्राह्मणकूं गुणाधिकता कही ॥ ८६ ॥ इह पात्रत्व नामा चौथा अधिकार कह्या आगैं सृष्टि अधिकारता पांचमा अधिकार कहै हैं—जे उत्तम द्विज हैं तिनिकूं दूरहीतैं मिथ्यादृष्टीनिकरि कल्पित जो कथन ताकी श्रद्धा तजिकरि जिनभाषित श्रद्धा करनी ॥८७॥ जो यथार्थ श्रद्धान होय तौ सृष्टिका कथन औरसूं और कल्पकरि कुदृष्टि भया अविचारित आगमकरि राजा प्रजाकूं मोहितकरि अयोग्य मार्गविषैं प्रवर्तावै ॥ ८८ ॥ तातैं नयका वेत्ता अयथार्थ श्रद्धाकूं दूरितैं वर्जिकरि अनादिकालतैं जो जिनभाषित धर्मकी रचना ताका प्रभाव करै ॥ ८९ ॥ इह धर्मकी रचना तीर्थंकर देवनि अनादितैं प्ररूपी सो उत्तम ब्राह्मण अपने शिष्य जे राजा तिनिकूं प्रकाशै जो विप्रनिके सांची श्रद्धा न होय तो अविधिका कथनकरि नृपनिकूं अश्रद्धारूप करै ताके उपदेशतैं भूप अश्रद्धारूप भये अशुभ क्रियाकौं प्रवर्तै तब राजाका

धारै हैं ॥ १४ ॥ क्रियानिके मंत्र जो पूर्वै कहे ते जानने अर वे सात पीठिका मंत्र प्रसिद्ध सर्वही क्रियाविषैं विशेष मंत्र कहे ते आपने जानने ॥ २१५ ॥ साधारण हैं सबही क्रियानिमैं इनिका नियोग है ए प्रधान-मंत्र हैं सब क्रियानिविषैं पढै सो युक्ताचारी द्विजोत्तम लोकविषैं प्रशंसायोग्य होय ॥ १७ ॥ जे मंत्रहीन क्रिया हैं ते करनहारेनिकूं सिद्धिके अर्थि नाहीं जैसें नायक विना सेनाके लोग बगतर पहरे साजि रहे हैं परन्तु कार्यकारी नाहीं शस्त्र धारे हैं तौऊ निरायुध ही हैं नायकसहितसेना कार्यकारी है ॥ १८ ॥ तातैं या विधिकूं भली भांति जानिकरि जे आगमविषैं निपुण हैं उत्तमपुरुषनिकूं ए क्रिया मंत्रपूर्वक करनीयोग्य हैं ॥ १९ ॥ या प्रकार वह भरताधिप धर्मके प्रसादकरि विजयकूं पावनहारा धर्मक्रियाविषैं प्रवीण सब नृपनिकी साखि ये व्रती द्विजवर तिनिकूं विशेषता करि यथार्थ धर्मकी क्रिया कहता भया अर द्विजलोक-निकी सृष्टि रचता भया ॥ २२० ॥ या भांति भरतनरेंद्रथकी पाया है व्रत संस्कार जिनि ऐसे वे विप्र ते व्रताभ्यासविषैं परिचय करते भए सुन्या है श्रुतका अर्थ जिनि अर सुंदर है अर उदार है चरित्र जिनिके ते श्रीऋषभदेवके मतके सेवन करि जगतविषैं पूज्य भए जगतमैं बहुत मानैं ते ब्राह्मण प्रसिद्धताकूं प्राप्त भए ॥ २१ ॥ वह इक्ष्वाकुवंशका चूडामणि जिनेंद्रका पुत्र नरेंद्र ब्राह्मणनिकूं व्रतविषैं आरूढ करि तिनि-का सन्मान करता भया, कैसे हैं वे ब्राह्मण जिनमार्गविषैं दृढ है बुद्धि जिनकी सो ऐसे ब्राह्मण आपके थापे तिनिकूं देखतासंता आपकूं कृतकृत्य मानता भया वे ब्राह्मण संतोषकरि मंडित तिनकूं निरखि हर्षित भया अपनी करी वस्तुकूं शोभायमान देखि कौन हर्षित न होय, अपनी करी वस्तुकूं उच्च देखि ऐसा कौन है जो आपकूं कृतकृत्य न मानै ॥ २२३ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे द्विजोत्पत्तौ क्रियामंत्रानुवर्णन नाम चालीसवां पर्व समाप्त भया ॥४०॥



॥ १ ॥ या युक्ति करि गुणनिकी अधिकता धरता संता वह जितेंद्री विप्रोत्तम आपकूं अदंडपक्षविषैं धारै है भूपनिकूं दंडिवेयोग्य नाहीं या अधिकारके न होतैं संतैं इह विप्र पापिनिकी नाई दंडिवेयोग्य है तव निर्धनताकूं प्राप्त भया लोकविषैं क्लेशरूप होय आर्तध्यान करि परलोकविषैं दुर्गति जाय ॥ २ ॥ इह आठमा अदंडित्व नामा अधिकार कह्या आगैं नवमां मानित्व नामा अधिकार कहैं हैं या ब्राह्मणकूं सब लोक मानैं जो गुणनिकरि अधिक होय सो ही उत्तमपुरुषनिकरि मानिवे योग्य पूजिवेयोग्य है ॥ ३ ॥ अर जो विप्रविषैं गुणाधिकता न होय तौ उत्तम जननिकरि मानिवेयोग्य न होय अर अमानि भया तव स्थान मानादि लाभके अभावतैं पदभ्रष्ट होय ॥ ४ ॥ तातैं गुणाधिक्यपना अति यत्नकरि द्विज आपविषैं धारै परमज्ञान परमचारित्रादि विभूतिका यत्न करै ज्ञान संपदा भव्यनिकूं कदाचि न तजनी ॥ २०५ ॥ इह नवमा मानित्व नामा अधिकार कह्या आगैं दशमा प्रजासंवंधांतर नामा अधिकार कहैं हैं—अपने उच्च-गुणनितैं च्युत न होना सोही प्रजांतरसंवंध । भावार्थ सकल प्रजातैं उच्च गुणरूप रहना जो याकै सर्वोत्तम गुणनिका धारण सोई प्रजासंवंधतैं अंतर जानना ॥२०६॥ जैसैं लोहकरि मिल्या सुवर्ण विवर्ण होय जाय तैसैं न्यून पुरुषनिके संगतैं विप्रके उत्कृष्ट गुणनिका अभाव होय । अपने गुणनिकरि इह व्रती ब्राह्मण और लोकनिकूं गुणरूप करै पृथ्वीविषैं क्षमा दया शील संतोपादि गुणनिका विस्तार करै जैसैं पारस पाषाण शीघ्र ही लोहकूं सुवर्ण करै तैसैं यह गृहस्थाचार्य देवब्राह्मण अविवेकीनिकूं विवेकरूप करै ॥९॥ तातैं यह प्रजां-तरसंबंध नामा गुण मोटा धर्म है जाकरि इह अपने गुणनिकरि औरनिकूं गुणरूप करै ॥१०॥ अर जो इह गुण न होय तौ औरनिके संगतैं आप गुणरहित होय ऐसे होतैं ब्राह्मणकी गुणाधिकता न रहै ॥२११॥ तातैं अतिबालविद्या आदि प्रजांतरसंवंधपर्यंत दश अधिकार जो उत्तम द्विज अंगीकार करै सो लोक पूज्य होय ए दश अधिकार पूर्ण भए इनि गुणनिविषैं और विशेषरूप विस्तार है सो उपासकाध्ययनसूत्रतैं जानना ॥१३॥ क्रिया अर मंत्र इनिके प्रसंगकरि व्रतचर्याकी विधिविषैं ए दश अधिकार कहे ते भले व्रतके धारक ब्राह्मण

खंड पृथ्वीका नाथ त्रैलोक्यनाथकी वंदना भक्तिके अर्थि गमन करिवेकूं उद्यमी भया ॥ १४ ॥ कई इक मुकुटबंध राजा निकटवर्ती तिनिकरि मंडित महाविभूतिकरि युक्त प्रभूकी वंदना अर्थी गमन कीया ॥ १५ ॥ अति शीघ्र ही अल्प सेनाकरि युक्त चक्रवर्ती तहां जाय पहोंच्या जहां जगतका गुरु विराजै है ॥ १६ ॥ दूरिहीतैं जिनराजके समोसरणकूं देखि नवनिधिका स्वामी नमस्कार करता भया, चलायमान है मुकुट जाका अर रची करकमलकी अंजुलि जानै ॥ १७ ॥ सो नरेंद्र समोसरणकी भूमिकूं प्रदक्षिणा देय नाना प्रकारकी रचना देखि मांहि प्रवेश करता भया ॥ १८ ॥ मानस्तंभ महा चैत्यवृक्ष सिद्धार्थवृक्ष तिनिकूं देखता आगैं गया। पूजाके द्रव्यकरि पूजिवे योग्य जे रतन तिनिके भूपतिनिकूं प्रजापति पूजता भया ॥ १९ ॥ अशोकवन अर सप्तच्छदवन चंपकवन आम्रवन इनिकी पंक्ति अर ध्वजा अर मंदिरनिकी पंक्ति तिनिकूं देखता भूमिकूं उलंघता भया ॥ २० ॥ ठौर ठौर ऊंचे दरवाजे तिनिके मार्ग करि देवांगनानिके गीत अर नृत्य मनके हरनहारे तिनिकरि अनुरागरूप है मनकी वृत्ति जाकी सो अति संतुष्ट होता भया ॥ २१ ॥ बहुरि ऊंचे दरवाजे तिनिके मारगकरि श्री मंडपकरि शोभित बारह सभाकी भूमि तहां गया ॥ २२ ॥ तीन है कटनी जाकै ऐसा पीठ ताकी पहिली कटनी तहां प्रदक्षिणा करि धर्मचक्रनिकूं पूजता भया ॥ २४ ॥ बहुरि दूजी कटनीविषैं अष्ट महाध्वजानिकूं पूजता संता गंधकुटीकूं देखता भया। कैसी है गंधकुटी—तिरस्कार करी है तीन जगतकी लछिमी जानै ॥ २५ ॥ ता विषैं सिंहासन परि विराजते देव दानव गंधर्व विद्याधर तिनिकरि पूजित भगवान तिनिकूं देखिकरि भक्तिका भऱ्या भरत प्रणाम करता भया ॥ २६ ॥ महास्तुतिकरि जगदीश्वरकी विधिपूर्वक पूजा करि धर्मरूप अमृतका तिसाया मनुष्यनिकी सभाविषैं बैठा ॥ २७ ॥ भगवानके चरणकमलकूं भक्तिकरि प्रणति करतैं परिणामनिकी विशुद्धताकरि चक्रेश्वरकूं अवधिज्ञान प्राप्त भया ॥ २८ ॥ धर्मरूप अमृतकूं पीयकरि अतितृप्त भया बहुरि अपने मनकी वार्ता भगवानसूं पूछता भया ॥ २९ ॥ हे नाथ! मैं ए ब्राह्मण श्रावकाचार-

अथ इकतालीसवां पर्व ।

अथानंतर कछु इक काल व्यतीत भए एक समय चक्रवर्ती स्वप्न देखता भया, अचिरजकारी है दर्शन जिनिका ॥ १ ॥ सो स्वप्नके देखवेतैं कछु इक भयरूप भया । बहुरि जागृत होयकरि तत्काल तिनिका फल प्रगट वीचारता भया ॥ २ ॥ चक्रवर्ती विचारै है—ए स्वप्न असत् फलके दाता मोहि भासै हैं मैं ऐसा जानूं हूं इनिका फल बुरा है । आगे पंचम कालविषैं इनिका फल प्रगट होयगा । अवार तौ भगवान आदीश्वर प्रकाशरूप हैं । सो भगवानके विराजतैं प्रजाकूं ऐसे उपद्रवकी उत्पत्ति कैसैं होय ॥३॥ तातैं चतुर्थकालके व्यतीत भए पंचमकालविषैं पापका अतिविस्तार होयगा तब ए लोककूं फल देंगे ॥४॥ आगामी कालविषैं उपद्रवरूप है फल जिनिका ऐसे अनिष्टके सूचक ए स्वप्न सो प्रजाकूं अर प्रजापालककूं अशुभ फल उपजावेंगे ॥ ५ ॥ जैसैं चांद अर सूर्यके विंबकरि उपजी विक्रिया ताका फल सकल जगतकूं होय है तैसैं मेरे देखे स्वप्न तिनिका फल सकलकूं होयगा ॥ ६ ॥ या भांति स्वप्ननिका स्थूल अर्थ तो मोहि भासै है अर सूक्ष्म अर्थ केवलज्ञानागोचर है ॥ ७ ॥ केवलरूप सूर्य विना और संशयरूप अज्ञानका भेदनहारा नाहीं, जैसैं सूर्यविना रात्रिसंबंधी तिमिरकूं कौन हरै ॥ ८ ॥ सकल तत्त्वके प्रकाशक जगतके दर्पण ऋषभ देव तिनिके विराजते मोहि संदेह काहेका ? जैसैं दर्पण विद्यमान होते हाथके सपरसतैं मुखकी सुष्ठुता कौन देखै ? ॥ ९ ॥ तातैं भगवानका मुख सोई भया दर्पण ताके दर्शनतैं मेरे तत्त्वका निश्चय होयगा अर अशुभ स्वप्न देखे हैं तिनिकी शांति होयगी ॥ १० ॥ अर मैं द्विज लोककी रचना करी है सोहू भगवानके चरण कमलके निकट जायकरि विज्ञप्ति करनी ॥ ११ ॥ दर्शन करना अर सदा गुरुकूं हितकी वार्ता पूछनी अर महापूजाकी सामग्रीकरि पूजना भले पुरुषनिकूं यही योग्य है ॥ १२ ॥ या भांति मनमैं विचारिकरि राजानिकरि मंडित छहखंड पृथ्वीका नाथ इंद्र महाशोभायमान सेजतैं प्रातः ही उठि प्राभातिकी क्रियाकरि बहुरि क्षणेक राजासिंहासनविषैं बैठिकरि अनेक राजानिकरि मंडित छह

नाईं कीया तो यामैं कछुइक दोषका प्रसंग है, सो सुनि ॥ ४४ ॥ तैं ए गृहस्थअणुव्रती निरमापे ते अब तौ अति उचित आचारके धारक हैं जौ लग धर्ममार्गकी स्थिति है तौ लग शुभाचारी हैं ॥ ४५ ॥ बहुरि पंचमकाल आवैगा तौ पहिली ए जातिवादके गर्वतैं अनाचारी होय वीतरागके मार्गतैं पराङ्मुख होंहिगे ॥ ४६ ॥ जातिमदके आवेशकरि ऐसा विचारैंगे जो हम लोकपूज्य हैं इह गर्व धरि धनकी आशाकरि लोकनिकूं पापकी प्रवृत्तिकरि मोहित करैंगे ॥४७॥ सत्कारके लाभकरि बध्या है गर्व जिनिकै सो महामदकरि उद्धत भए अपनी बुद्धितैं लौकिक शास्त्र उपजायकरि लोकनिकूं ठगैंगे ॥ ४८ ॥ सीतलनाथके अंतरालविषैं विक्रियाकूं पायकरि हती है चेतना जिनिकी सो दयाधर्मके द्रोही होंहिगे ॥ ४९ ॥ जीवहिंसाविषैं रत, मद्यमांसका भोजन है प्रिय जिनिकै सो हिंसाका मार्ग जीवनिकूं उपदेसैंगे ॥ ५० ॥ अहिंसालक्षण धर्मकूं दूषिकरि हिंसामैं धर्म उपदेसैंगे ॥५१॥ पापक्रियाके धरणहारे जीवहिंसाविषैं तत्पर आगामीकालविषैं मुनिमार्गतैं विमुख होंहिगे ॥ ५२ ॥ तातैं द्विजनिकी रचना यद्यपि अवार तौ दोषकृत नांही तथापि हार करै, आगामीकालविषैं दोषकी वीज है कुविद्याकी प्रवृत्तितैं ॥५३॥ कालांतरविषैं अविधिका मूल है तथापि अब परिहारयोग्य नांही जो अब परिहार करै तो धर्मसृष्टिका उलंघन होय अब तौ ए धर्मरूप हैं ॥ ५४ ॥ जैसैं अन्न भोजन कीया संता कबहुंक काहूकूं दोषकारी होय है तथापि अन्नका परिहार न करना। अन्नमैं गुण बहुत हैं तैसैं अवार इनिमैं गुण बहुत हैं ॥ ५५ ॥ अर आगामी कालविषैं पुरुषनिके चित्तकी विषमतातैं दोषीक होंहिगे ॥ ५६ ॥ अर जेतैं स्वप्न देखे तेऊ आगामीकालविषैं धर्मकीही हीनताके सूचक हैं ॥ ५७ ॥ स्वप्न दोय प्रकार हैं। जहां वात पित्त कफकी समानता होय सो स्वस्थ अवस्था कहिए अर जे वात पित्त कफनिमैं काहूकी प्रवलता होय सो विषम अवस्था कहिए ॥५८॥ जे स्वस्थ अवस्थाके देखे ते सत्य अर जे विषम दशाके देखे ते मिथ्या। इह स्वप्नका विचार जगतविषैं प्रसिद्ध है ॥ ५९ ॥ एक दोष अवस्था, एक दैव अवस्था। जो रोगादि दोषनिके प्रकोपकरि उपजे विषम ते

विषैं प्रवीण निरमापे हैं तिहारा भाष्या उपासकाध्ययननामा सूत्र ताके मार्ग गमनकरनहारे हैं ॥ ३० ॥ एकादेश भेद श्रावकके मैं इनिकूं भणाए हैं अर व्रतके चिह्न ब्रह्मसूत्र गुणभूमिके विभागतैं इनिके गलेमैं डारे हैं ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! समस्त धर्मसृष्टिके तुम साक्षात् प्ररूपणहारे तिनिके विराजते मैं अविचार इह रचना करी है ॥ ३२ ॥ यामैं कहा गुण दोष है सो मेरा मन संदेहके हिंडोरेमैं झूलै है सो निश्चयविषैं स्थापौ ॥ ३३ ॥ अर मैं निशाके अंतविषैं सोलह सुपने देखे सो ए बाहुल्यताकरि अनिष्टफलके सूचक हैं ॥३४॥ जैसे देखे तैसैं वीनती करूं हूं । हे परमेश्वर ! इनिका जैसा फल है तैसा मोहि कहौ ॥ २५ ॥ प्रथम तौ तेईस सिंह देखे । बहुरि एक सिंह तरुण देख्या बहुरि हाथीके भारकूं धरे तुरंग देख्या बहुरि बकरे सूखे पत्र चरते देखे ॥ ३६ ॥ बहुरि बंदर हाथीके कांधे चढे देखे । कागनिकरि श्वेत पंखी उपद्रवरूप देखे बहुरि भूत नाचते देखे ॥३७॥ बहुरि तडाग मध्यमैं सूका अर तीरां प्रचुर जल देख्या । बहुरि रत्नन्किी राशि धूरिकरि धूसरी देखी बहुरि श्वान पूजाके नैवेद्य खाते देखे ॥३८॥ बहुरि तरुण वृषभ शब्द करता देख्या बहुरि चंद्रमाकूं ज्यालासहित देख्या बहुरि दोय वृषभ भेले होय गमन करते देखे बहुरि दिशारूप स्त्री तिनिका आभूषण सूर्य सो मेघकरि आच्छादित देख्या बहुरि सूका वृक्ष छायारहित देख्या अर जीर्ण पत्रका समूह देख्या ॥ ३९ ॥ हे देव ! ए सोलह स्वप्न निशिके अंत देखे सो इनिके फलविषैं मेरे संदेह है सो दूरि करो ॥ ४० ॥ या भांति चक्रेश्वर जिनेश्वरसूं प्रश्न करता भया । भरत यद्यपि अवधिज्ञानकरि आप इनिके फल जानिवेविषैं निपुण है तथापि सभाके लोकनिके प्रबोधके अर्थि भूपति जिनपतिसूं पूछता भया ॥ ४१ ॥ भरतने ए प्रश्न कीए तब जगत् गुरु अपने वचनरूप अमृतके सींचिवेकरि सकल सभाकूं पोषते संते कहते भए ॥ ४२ ॥ भगवानकी दिव्यध्वनिके अर्थ सुनिवेकी है अभिलाषा जिनिकै सो सबही सभाके लोग एकाग्रचित्त होते भए मानूं सबही ध्यानारूढ भए हैं अथवा चित्रामके होय गए हैं ॥ ४३ ॥ भगवान कहे हैं—हे भव्य ! ते धार्मिक द्विजनिका पूजन साधूनिका पूजन साधूनिकी

नाईं अव्रती सत्कार पावैंगे ॥ ७४ ॥ बहुरि शब्द करता तरुण वृषभ ताके विलोकनतैं तरुण अवस्थाही विषैं मुनिव्रत धारैंगे, वृद्ध अवस्थाविषैं नाहीं ॥ ७५ ॥ बहुरि चंद्रमा कुंड्यला युक्त देख्या ताका फल मुन्याविषैं मनःपर्ययज्ञान अर अवधिज्ञान न उपजैगा ॥ ७६ ॥ बहुरि वृषभ परस्पर मिलिकरि गमन करते देखे ताका फल पंचमकालविषै यती संगमैं रहैंगे एकविहारी न होंहिगे ॥ ७७ ॥ अर सूर्य मेघकरि आच्छादित देख्या ताका फल पंचमकालविषैं केवलज्ञानरूप सूर्यका उदय सर्वथा न होयगा ॥ ७८ ॥ अर सूका वृक्ष देख्या ताका फल—पंचमकालविषै पुरुष अर स्त्री शीलरहित दुराचारी होंहिगे अर सूके पान देखे ताका फल—महा औषधीनिका गुण जाता रहेगा औषधी नीरस होइ जाइंगी ॥ ७९ ॥ इन सुपनिनिके फल अवार नांहीं, बहुत काल पीछैं पंचम कालविषैं ए फल होंहिगे ॥ ८० ॥ भगवान कहै हैं—हे वत्स! मोतैं स्वपननिका फल जानि करि समस्त विघ्नकी शांतिके अर्थि धर्मविषैं दृढ बुद्धि धरि ॥८१॥ या भांति प्रभूके वचन सुनिकरि वह वर्णाश्रमका पालक संदेहरूप कीचके अभावतैं अपना मन निर्मल करता भया ॥ ८२ ॥ बारंबार प्रणाम करि बारंबार धर्मके प्रश्नकरि गुरुके अनुग्रहतैं प्रीतिरूप भया पाछा अयोध्यापुरमैं प्रवेश करता भया, बंधे हैं तोरण जहां अर फरहरैं हैं धुजानिकी पंक्ति जहां नगरके सब लोक सन्मुख आय आनंदसहित शीस नमावते भये ॥ ८३ ॥ अथानंतर चक्रधर खोटे सुपनानिकी अनिष्टताकी शांतिके अर्थि जिनराजका अभिषेक अर सत्पात्रदानादि पवित्र चेष्टा करि शांति क्रिया करता भया ॥ ८४ ॥ गायनिके दूधकरि धरती पखाली अर महामुनिनिकी पूजा करी अर लोकनिकूं महादान दीए अर मित्रजन पोखे ॥ ८५ ॥ अर जिनबिंबनिकरि शोभित अमोलिक रत्ननिकरि मंडित घंटा निरमापी सुवर्णकी सांकलनिकरि बांधी ॥ ८६ ॥ नगरकै द्वार चौईस घंटा लंबायमान करी अर राजमहलका महाद्वार ताविषैं भी बांधी ॥ ८७ ॥ जब इह पृथ्वीका पति निकसै अर पैठे तब वे घंटा मुकुटके अग्रभाग लागैं तिनिकरि अरहंतदेवके चरणारविंदका स्मरण होय तब इह स्मरण करि भगवंतकी प्रतिमा तिनिकी

मिथ्या अर दैवदशा जो नीरोगता ताविषैं देखे तिनिके फल अवश्य होंहि ॥ ६० ॥ हे कल्याणांग ! रोगरहित अर देवनिकरि पूज्य सो तेरे देखे स्वप्न मिथ्या नांही तातैं इनिका फल मैं कहूंहू सो जानि ॥ ६१ ॥ तैं स्वप्नविषैं तेईस मृगराज देखे जो निष्कंटक या पृथ्वीविषैं विहार करि गिरिके शिखर चढे ॥ ६२ ॥ तिनिका फल—पार्श्वनाथ स्वामीपर्यंत तेईस तीर्थंकरनिके समय जतीनिमैं खोटी नयनिकी उत्पत्ति नांही ॥ ६३ ॥ बहुरि एक सिंह तरुण देख्या जाके पीछै मृगनिके समूह गमन करते देखे ताका फल वर्धमानस्वामीके पीछै जतीनिमैं परिग्रहधारी कुलिंगी होंहिगे ॥ ६४ ॥ बहुरि हाथीके भारकरि भग्न होय रही है पीठ जाकी ऐसा अश्व ताके अवलोकनतैं पांचमां कालके मुनि तपके समस्त गुण धारिवेकूं समर्थ न होंहिगे ॥ ६५ ॥ मूलोत्तर गुणनिविषैं धारी है प्रतिज्ञा जिनि सो कैइक तो प्रमादके योगकरि मूलतैं भ्रष्ट होंहिगे अर कैइक मूल गुणनिविषैं मंदता धारेंगे ॥ ६६ ॥ बहुरि बकरानिके समूह सूके पत्र चरते देखे तिनिके अवलोकनितैं इह फल होयगा जो मनुष्य उत्तम आचरणकूं तजि दुराचारी होंहिगे ॥ ६७ ॥ बहुरि मरकट हाथीके कांधे चढे देखे ताका इह फल जो आदि क्षत्रीनिके वंशकी व्युच्छित्ति होयगी अर अकुलीन पृथ्वीका राज करेंगे ॥ ६८ ॥ बहुरि कागनिकरि श्वेत पक्षीनिकूं बाधा देखी ताका फल—लोक धर्मकी वांछाकरि मुनिनिकूं तजि दुराचारीनिकूं सेवेंगे । भावार्थ—काक स्याम होय हैं अर दुराचारीहू श्याम है । अर श्वेत पक्षी उज्ज्वल होय है अर मुनिराजहू उज्ज्वल हैं सो कागनिकरि श्वेत पक्षीनिकूं बाधा देखिबेकरि इह फल जानि जो अव्रतीनिकरि व्रतीनिका पराभव होयगा ॥ ७० ॥ बहुरि भूत नाचते देखे तिनिके अवलोकनतैं लोक बुद्धिकरि व्यंतरादि नीच देवनिकूं भजेंगे ॥ ७१ ॥ बहुरि तडाग मध्यविषैं सूका देख्या अर तीरां अगाध जल देख्या ताके देखिवेतैं उत्तम तीर्थस्थानक तजिकरि धर्म न्यून देवनिमैं रहेगा ॥ ७२ ॥ अर रत्ननिकी राशि धूरकरि धूसरी देखी ताके देखिवेकरि पंचमकालविषैं मुनि शुक्लध्यानी न होंहिगे, कोइक धर्मध्यानी होयगा ॥ ७३ ॥ बहुरि श्वान पूजाका नैवेद्य खाते देखे, ताका फल गुणवान पात्रकी

है अर्थ काम जाके सो इनिविषैं तौ रुचि ही न धारता भया केवल धर्मविषैं एकाग्रचित्त होता भया ॥ २॥ दान पूजा शील अर परवीके दिन प्रोषध संयुक्त उपवास इह च्यारि प्रकार गृहस्थनिका धर्म कह्या है ॥३॥ सो चक्रधर महत्पुरुष जे मुनि तिनिकूं नवधा भक्तिकरि सप्तगुण दातानिके तिनिकरि मंडित होय अति आदरसूं दान देता भया ॥ ४ ॥ निर्मल आहार देता भया अर यथायोग्य औषधि देता भया अर सर्व प्राणीनिकूं अभयदान देता भया ॥ ५ ॥ जा समान और नांही जाकै राजमैं कोऊ जीव हत्या न जाय अर कोऊ भूखा न रहै किमिच्छकदान वटवौही करै इह दानकी हद्द है ॥ ६ ॥ अर जिनराजविषैं भक्ति विस्तारतासंता जिनपूजाविषैं अनुराग धरता भया, पूज्य पुरुषनिके पूजनतैं लोकविषैं पूज्य होय है इह विचारता संता जिनेश्वरकी पूजाविषैं सदा तत्पर होता भया ।७। भगवानकी प्रतिमा अर भगवानके मंदिर तिनिका निरमापण करता भया अर जिनराजकी कल्पवृक्ष नामा महापूजा जो चक्रवर्तिनिहीसूं बनै सो विधिपूर्वक करता भया ॥ ८ ॥ ठौर ठौर चैत्यालयादि निर्मापण कीये अर याकै मनविषैं शीलपालनका अति अनुराग होता भया, जो भव्य जीव शीलकी रक्षा करै तौ इह शील आत्माकी रक्षा करै ॥ ९ ॥ व्रतनिका पालन सो शील कहिए सो श्रावकके व्रत त्रसाहिंसाका त्याग आदि वारह हैं सो राजेश्वर धारता भया अर मैत्री प्रमोद करुणा मध्यस्थधर्म ए ध्यानकी च्यारि भावना भावता भया गृहस्थके व्रत यथायोग्य पालता संता प्रजाका पालक श्रावकनिमैं धोरी होता भया ॥ १११ ॥ दोऊ आठैं दोऊ चौदस ए च्यारि परवी तिनिविषैं प्रोषध संयुक्त उपवास धारि समाधानरूप चैत्यालयविषैं तिष्ठता भया अर त्रिकाल सामायिक करता संता सामायिकके काल पर्यंत मुनि समान निश्चल होय तिष्ठता भया ॥ १२ ॥ भगवानके समोशरणविषैं समाधानकूं प्राप्त भया है मन जाका सो गात्रके बंधकी शिथिलतातैं आभरण गिरि परे ॥ ११३ ॥ यद्यपि चक्रवर्तीकूं सकल भरत क्षेत्रकी चिंता है तथापि धर्मकी चिंता अति दृढ होती भई, एक धर्मकी चिंतामें सकलचिंता मिटै मनवांछित सर्व कार्यकी सिद्धि होय ॥ ११४ ॥ तातैं ताकै धर्मकी चिंतापूर्वक सकल

भक्तिकरि बंदना करै महा पवित्रबुद्धि निकसता पैठता पूजा करै ॥८९॥ हेमके सूत्रविषैं पोई वे घंटा सोहती भई मानूं समीचीन अर्थ करि सोभित ग्रंथनिकी मनोहर टीकाही है । वह लोकका चूणामणि ताके मुकुटविषैं लागी वे घंटा शोभित भई मानूं जिनराजके चरणारविंदकी छाया याके सिरपरि लगि रही है वे घंटा लोकनिकरि प्रशंसायोग्य है ॥ ९० ॥ रतननिके तोरण तिनिकी रचनाविषैं थापी वे घंटा नवनिधिके स्वामीनैं अरहंतकी बंदनाके कारण तिनिकूं देखि करि लोकहू भक्तिविषैं आदरसहित होते भए ॥ ९१ ॥ नगरके लोकनि अपने महलनिके तोरणनिकी पंक्तिविषैं अपने विभव प्रमाण घंटा बांधी ॥ ९२ ॥ सब राजानिकी आदि पहला चक्रवर्ति ताकी करी रचना ताहि प्रजालोक बहुत मानता भया ॥ ९३ ॥ घर घर बंदनमाला बांधी सो अद्यापि चली जाय हैं, बंदनाके कारण थापी घंटानिकी पंक्ति भरतेश्वरनैं सो बंदनमाला ऐसा नाम पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध भया ॥ ९४ ॥ राजा धर्मात्मा होय तब प्रजाहू धर्मात्मा होय अर राजा अधर्मी होय तब प्रजाहू अधर्मके मार्ग प्रवर्तैं 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा तैसी प्रजा तासमैं कालके प्रभावकरि मनुष्यधर्मके रोचक स्वतः स्वभाव ते साधु जन हुते॥ ९५ ॥प्रजाका स्वामी उत्तम आचरणका आचरवेवाला ताहि देखिकरि सबही लोक भावतैं धर्मके आचरणहारे भए जगतकूं धर्मकी रुचि आत्मकल्याणविषैं अधिक रत भए ॥ ९६ ॥ ऐसाही तौ उत्तमकाल अर ऐसाही उत्तम राजा दोऊही योग आछे मिले तातैं प्रजाके लोक इनिके प्रभावतैं धर्मके आचरनहारे भए जगतकूं धर्मकी रुचि उपजी ॥ ९८ ॥ इहां राजा धर्मप्रिय सो धर्मात्मा जीवनिसूं अनुराग करै ऐसा जानिकरि सकल लोक धर्मविषैं प्रीति धारते भए ॥ ९९ ॥ सो राजा धर्मविजयी धर्मके प्रसादकरि पाई है जीति जानैं भले व्रतका धारक महा अनुपम पवित्र महाप्रबल सो प्रजाके लोक अर परवारके लोक अपने अनुरागी मुकुटवद्ध राजा तिनिकूं धर्मक्रियाविषैं आदररूप करता भया ॥ १०० ॥ भरत धर्ममें रत भया अर हम ताके सेवक ऐसा जानि महा मुकुटबद्धराजा स्वामीका आचरन धारते भए ॥ १ ॥ वह पृथ्वीका नाथ चक्रके प्रभावकरि स्वाधीन

बहुरि मध्याह्न समय स्नानकरि पात्रदानकरि पीछै आप भोजनकरि सुगंधादिका लेपन वस्त्र माल्याभरणादि अंगीकार करै ॥ २८ ॥ अर महासुंदर स्त्रीजन चमर ढारैं तांबूलप्रदान पादमर्दनादि सेवा करि स्वयमेव आराधैं ॥ १२९ ॥ बहुरि भोजनकरि जहां विराजिए है तहां तिष्ठे, कैइक निकटवर्ती नृप तिनिसहित पंडितानिके समूहसूं विद्याकी गोष्ठी करै ॥ १३० ॥ बहुरि विलासिनीजन नृपवल्लभिका प्राप्त भया है जौवनका मद जिनिकूं ते महामानकी भरी चक्रवर्तीकूं आय बेढैं ॥३१॥ तिनिसूं वचनालाप अर उनके प्रश्नका उत्तर अर परिहासकथा आदिकरि एक मुहूर्त कौतूहलकी अवस्था भोगवै तिनिकी परिहासकथा कौतूहलका मूल कारण है ॥ १३२ ॥ बहुरि दिनके चौथे पहरैं मणिनिका चौक ताविषै परिभ्रमण करता राजमंदिरकी परमशोभा निरखै ॥ ३३ ॥ अपने बल्लभ क्रीडाके सहाई लीलाके स्वरूप तिनिके कांधै हाथ धरै, इत उत भ्रमण करता सुरकुमार समान सोहै ॥ १३४ ॥ ए दिनकी सकल रीति कही अर रात्रिविषैं जे कार्य चक्रवर्तीनिकूं उचित हैं ते आचरतासंता सुखसूं रात्रि पूर्ण करै है ॥३५॥ कबहूंक महामंत्रके वेत्ता मंत्री तिनिसूं मंत्र करै । यद्यपि चक्रवर्ती, सब कार्यनिसूं निश्चिंत है, काहू कार्यकी चिंता नाहीं, तथापि राजानिका इह नियोग है जो मंत्रीनिसूं मंत्र करैं तातैं कबहूंक मंत्रहू करते भए । सकल पृथ्वीका जीतनहारा चक्रवर्ती ताकै स्वचक्र परचक्रकी चिंता नाहीं, सदा स्वतंत्र है, सकल भरतक्षेत्रका पति है, काहू कार्यका सोच याकै नाहीं, प्रजाके प्रतिपालनका ही मंत्र है ॥ ३७ ॥ षट्गुणकी कथा याकैं राजानिके उपदेश निमित्त हैं, याका कोऊ विपक्षी नाहीं, सब याके सेवक हैं संधि विग्रह यान आसन संस्थान द्वैधीभाव ए राजानिके षड्गुण हैं सो इनिकरि याके कार्य नाहीं, संधि कहिये मिलाप अर विग्रह कहिए युद्ध, यान कहिये असवारी, असन कहिये मुकाम, अर संस्थान कहिए वचनका निश्चय अर द्वैधीभाव कहिए सबलका आश्रय लेना अर निबलकूं आश्रय राखना सो यातैं सबही निबल हैं सब याके आश्रय हैं सब याकी प्रजा हैं ॥ १३८ ॥ अर राजविद्या च्यारि आन्वेषिकी कहिए

क्रियाका आरंभ होता भया, उपज्या है महापुण्यका उदय जाकै, ताकरि संपूर्ण संपदा होती भई ॥ १५ ॥ प्रभात ही जागृत हुआ संता संध्याकी ललाई करि दिसाकी अरुणता देखि मनमैं ऐसी मानै मानूं अरहंत देवके चरणारविंदकी ललाई ही करि दिशा आरक्त होय रही हैं ॥ १६ ॥ अर प्रातः समय निशिके अंधकारकूं हरता ऐसा सूर्य ताहि निरखि करि ऐसा मानै मानूं प्रभूके केवल ज्ञानरूप रविका इह प्रतिबिंबही है ॥ १७ ॥ अर प्रभातकी पवनकरि विकसते कमल तिनिकूं निरखिकरि हृदयविषैं ऐसा धारै मानूं महासीतल जिनराजके आलाप तिनकरि प्रतिबुद्ध भये भव्यजीवनिके चित्तही हैं ॥११८॥ या धर्मात्माके कामकी अर अर्थकी चिंता तौ गौणरूप होती भई, मुख्यरूप नाहीं अर समस्त कल्याणका कारण धर्म ताहिविषैं तात्पर्य होता भया ॥ १९ ॥ प्रातही उठिकरि जे धर्मात्मा पुरुष हैं तिनिसहित धर्मका चिंतवन करै प्रथमही प्रात संध्याकरि प्रभूकी पूजा करै बहुरि मंत्रीनिसहित अर्थ कामकी सिद्धिका मंत्र करता भया, पहरे हैं महामंगलरूप आभूषण जानै सो पूजाकरि न्यायके आसन आय बैठे ॥१२०॥ तहां प्रजाके शुभ अशुभकर्म तिनिका विचार कर यथायोग्य न्याय करै बहुरि राज्यके अधिकारीनिकूं अपने अपने काम लगावै ॥ २१ ॥ बहुरि राजासिंहासनविषैं बैठिकरि सुंदर है अवलोकन जिनिका ऐसे महाराजा तिनिकूं कृपाकी दृष्टि करि हर्षित करै। कैसे हैं राजा? चक्रधरकी सेवाके अवसरकी है अभिलाषा जिनिकै ॥ २२ ॥ कैयक राजानिकूं दृष्टिही करि अर कैयकनिसूं मुलकनिही करि अर कैयकनिकूं वचनालापकरि केइकनिकूं सन्मान दानकरि तृप्ति करै। या भांति अनेक राजानिकूं पोषता भया ॥ २३ ॥ तहां राजसभाविषैं भेट लेले आए हैं देश देशके बडे बडे मनुष्य तिनिकूं कृपाकी दृष्टि करि तिनिके कार्य सिद्धिकरि विदा करता भया ॥ २४ ॥ अर अनेक कलानिके वेत्ता गुनीजन सभामैं आवैं तिनिके नृत्यादि देखि बडी रीझ देखिकरि तृप्ति करै ॥ २५-२६ ॥ बहुरि सभाके लोकनिकूं विदाकरि राजासिंहासनतैं उठिकरि महासुकुमार मिष्टवादी अतिविनोदके करणहारे परमसखा तिनसहित इच्छाविहार करै ॥१२७॥

दर्पणसमान देखिकरि संदेहतैं रहित होते भए ॥ १५१ ॥ याकी स्वतः स्वभाव बुद्धि पूर्व जन्मके प्रसंगकूं लीए सकलविद्याविषैं परमनिपुण होती भई ॥ १५२ ॥ या भांति सर्व शास्त्र अर सर्व कला तिनिविषैं यह प्रजापति महाबुद्धिकूं पायकरि तिनि विद्यानिका गुरु होता भया ॥ १५३ ॥ बहुत कहिबेकरि कहा ? इह कुलकर चक्रधर बुद्धिका पारगामी भया । समस्त लोकके आचरण तिनिका सिखावनहारा होता भया । यातैं सबही सीख्या चाहैं, जैसैं सूत्रधारके सूत्रप्रमाण शिल्पवेत्ता चुणै तैसैं सकल शास्त्रनिके पाठी याकी शिक्षाप्रमाण विद्याका धारण करैं। राजविद्यासिद्धांत ताके तत्त्वका वेत्ता अर धर्मशास्त्रके तत्त्वका वेत्ता अर कलाज्ञानविषैं प्रसिद्ध सो बुद्धिवंतनिका शिरोमणि होता भया ॥ १५४ ॥ आदिराजा चक्रवर्ती राजर्षिनिका नायक सार्वभौम कहिए सर्वभूमिका रक्षक या भांति याका यश पृथ्वीविषैं विस्तरता भया । वह चक्री सकल कलानिका एक मंदिर प्रवीणपुरुषनिकूं अविनाशीपदकी चरचा करता पंडितनिकी सभाविषैं विवेकीनिकूं संबोधता समस्त विद्याका वर्णन करता भया । पंडितजन याहि बुधचक्री कहते भए जो यह महापंडित चक्रवर्ती है याकी कीर्तिरूप ध्वजा फरहरती भई ॥१५५॥ वीतरागका भाष्या पूर्ण धर्मका मार्ग ताहि भर्मता संता आप पाया है तत्त्व जानैं अर औरनिकूं मार्ग प्रकाशता पूर्णबुद्धि समस्त पृथ्वीकूं कंटकरहित पालता भया सो चक्रेश्वर सारभूत प्रचुर भोग तिनिकरि चिरकाल रमता भया ॥ १५६ ॥ लक्ष्मी अर सरस्वतीके मिलापका सुख ताका अद्वितीय अधिपतिपणा धारतासंता दूरि टारी है दुर्णय जानैं अर महाशांतरूप तेजस्वीपनेकूं धरता संता न्यायकरि अर्थकामका उपार्जन करणहारा सकल शास्त्र अर शस्त्रनिविषैं प्रवीण वह राजर्षि परम उदयका धारक जिनेश्वरके सेवकनिमैं अग्रेश्वर होता भया ॥ १५८ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतराजस्वप्नदर्शनतत्फलोपवर्णन नाम इकतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४१॥



धर्मकी परख, मनुष्यकी परख अर त्रयी कहिए शास्त्रकी चर्चा अर वार्ता कहिए देशदेशनिकी वार्ता अर दंडनीति कहिए दुष्टका निग्रह अर भले पुरुषका परिपालन ॥१३९॥ ए च्यारि राजानिकी विद्या विचक्षण राजपुत्रनिकूं कहता भया । राजानिकूं राजनीतिविषैं दृढ करता भया॥ ४० ॥ अर कबहूंक नवनिधि अर चौदह रत्न तिनिका अवलोकन करता भया ताकै ए निधि रत्नभंडारविषैं अर सेनाविषैं सार हैं ॥ ४१ ॥ अर कबहूंक काहूकूं धर्मशास्त्रविषैं संदेह उपजै सो सर्वज्ञके मतकूं प्रगट करता लोकनिका सकल संदेह निवारै ॥ ४२ ॥ वीतरागके भाषे नव तत्त्व तिनिविषैं काहूकूं संशय उपज्या सो संशय मेटिकरि तत्त्वका निर्णय करै ॥ ४३ ॥ तथा नीतिशास्त्रके अर्थविषैं अर कामशास्त्रविषैं महाप्रवीण ऐसी प्रवीणता औरनिमैं नांही ॥ ४४ ॥ अर गजशास्त्र जिनिमैं हाथीनिके गुण दोष अर हाथिनिके यत्न अर अश्वशास्त्र, जिनिमैं अश्वनिके गुण दोष अर अश्वनिकी औषधादिक इत्यादि शास्त्रनिविषैं भरतेश्वरकी निपुणता देखिकरि तिनि शास्त्रनिके पीठीनिके ऐसी प्रतीति आवती भई जो इन शास्त्रनिका मूलकर्ताही है ॥ ४५ ॥ अर वैद्यशास्त्रविषैं वह दीर्घायु साक्षात् आयुर्वेदकी मूर्ति होता भया या भांति निःसंदेह सब लोक पृथ्वीपतिकी प्रशंसा करते भए ॥ ४६ ॥ सो प्रवीण व्याकरण विद्याका पारगामी अर शब्दालंकार शास्त्रविषैं अतिकुशल अर छंद शास्त्रनिकूं प्रतिनिधि सत्पुरुषनिके अतिमानिवे योग्य होता भया ॥ ४७ ॥ अर निमित्तशास्त्र, शकुनशास्त्र ताहीके भाषे अर ताहीका भाष्या ज्योतिष शास्त्र । ये तीनूं शास्त्र याहीके प्ररूपे सो सब शास्त्रनिके पाठी याहि गुरु जानि आराधते भए ॥ ४८ ॥ सो राजेंद्र निमित्तशास्त्रका अर शकुनशास्त्रका मूल अर ज्योतिषशास्त्रका अधिष्ठाता देव सो सबनिकरि मान्य होता भया ॥४९ ॥ अर जब इह चक्रेश्वर उपज्या तब पुरुषके सकललक्षण याके अंगविषैं उत्पन्न होते भए तातैं औरनिकी उपमा याकै शरीरकूं नांही । याका शरीर अतिसुंदर अनुपम संपूर्ण लक्षणशास्त्रका उदाहरण है ॥ १५० ॥ अर औरहू कलाशास्त्रनिके संग्रह तिनिविषैं संपूर्ण शास्त्रके पाठी याहि

न्यायके आचरणकरि धर्मरूप अर्थ उपार्जना ताकरि सुभटनिके समूह राखि प्रजाकी रक्षा करनी अर धरतीकी वृद्धिकरि धनकी वृद्धि करनी, अर भक्तिभावकरि पात्रविषैं दान करना, करुणा भावकरि दुखी दरिद्रीनिकूं देना ॥ १३ ॥ इह धनकी चतुर्धावृत्ति सत्पुरुषनि कही है न्यायकरि धनका उपार्जन प्रजाकी रक्षा सो न्याय अर जिनधर्म प्रवृत्तिकरि पापकी प्रवृत्ति मेटनी सो उत्कृष्ट न्याय है ॥ १४ ॥ महा दिव्यमूर्ति जिनिकी ऐसे जिनराज तिनिके कुलविषैं क्षत्री उपजे हैं अर जिनेश्वरकी उत्पत्तिका मूल रत्नत्रय है सो कल्याणका स्थानक है तातैं नृप अयोनिसंभव है प्रभुका न्याति है ॥ १५ ॥ महावंशविषैं उपजे लोकोत्तम आप मार्गविषैं प्रवर्तैं औरनिकूं धर्म मार्गविषैं प्रवर्तावै है ॥ १६ ॥ सर्व यत्नकरि क्षत्रीनिकूं कुलपालन करना सो कुलपालन कैसैं होय इह कहिए है ॥ १७ ॥ आपही ए क्षत्री मोटे कुलकरि बडी महिमाविषैं तिष्ठैं हैं सो धर्मकी बुद्धिकरि विना मुनिराज और भेषधारीनिकूं न सेवैं ॥ १८ ॥ तिनिकी आसिकाके अक्षत न ले अर तिनिके स्नानका उदक न स्पर्शैं ॥ १९ ॥ तिनिकी आसिकादि ग्रहणमें बडा दोष है क्षत्री कुलकी महिमाका भंग होय अर कदाचि वह मोहनवशीकरणादि मंत्रकरि आसिका दे तौ बहुत विघ्न उपजै तातैं तिनिकी आसिका तजनी ॥ २० ॥ प्रथम तौ अकुलीन भेषधारीनिकूं सिर नवायबेमैं महात्म न रहै बहुरि आसिकादि ग्रहणमैं अतिक्लिष्टता होय ॥ २१ ॥ कदाचि पाखंडी द्वेषरूप बुद्धि करता आसिकाविषैं विषके पुष्प मेलि याके मस्तक परि डारै तौ राजाकूं महाविघ्न होय ।२२। जो कदाचि पाखंडी वशीकरण मंत्रकरि मोहवे अर्थि पुष्प डारै तो इह राजा मूढवत् वशी होय ॥ २३ ॥ तातैं नीचकुलके भेषधारी तिनिकी आसिका अर उनकी असीसके वचन न धारने जो उनकी आसिकादि अंगीकार करै तौ कुलकी न्यूनता होय अर विघ्न होय ॥ २४ ॥ जे जिनधर्मी राजा अरहंतके चरणारविंदके उपासक हैं तिनिकूं जिनिराजहीकी आसिका ग्रहणी जातैं पापका नाश होय ॥ २५ ॥ भगवान जिनेश्वर रत्नत्रयमूर्ति हैं अर सब क्षत्रीनिकी आदि हैं क्षत्री उनके कुलविषैं उपजे हैं तातैं उनहीकी आसिका धारनी ॥२६॥ जैसैं कुल-

अथ बियालीसवां पर्व ।

अथानंतर एकदिन सभाके मध्य सिंहासन परि बैठा सब राजा आय मैले भए तिनिकूं क्षत्रिनिके चारित्र उपदेशता भया चक्रनाथ कहै है ॥ १ ॥ भो भव्यात्मा हो ! तुम सकल राजा सुनो तुम श्रीऋषभदेवनैं कर्मभूमिकी आदिविषै प्रजाकी पीडा निवारिवेकूं थापे हौ ॥ २ ॥ प्रजाकी रक्षाविषैं उद्यमी तुम सो तिहारे पंचप्रकार आचरण कहे हैं सो आम्नायपूर्वक मुनिकरि प्रजाके हितविषैं प्रवर्तौ ॥ ३ ॥ सो पांच प्रकार आचरण या भांति हैं—प्रथम कुलपालन दूजा बुद्धिपालन तीजा आत्मपालन चौथा प्रजापालन पांचमा समंजसत्व ए पांच भेद कहे तिनिका वर्णन सुनहु । कुलानुपालन कहिए कुलाम्नायका रक्षण क्षत्रीके कुलकूं उचित जो आचार ताका रक्षण है सो है लक्षण जाका ॥ ५ ॥ क्षत्रीनिके कुलकी आम्नाय कहा सो सुनहु—आदि जिनेश्वरनें इह क्षत्रीनिकी सृष्टि सकल सृष्टिकी रक्षाकूं रची है ॥ ६ ॥ सो भगवान आदीश्वर पूर्व भवविषैं उत्कृष्ट रत्नत्रयकूं आराधिकरि सर्वार्थसिद्धितैं या भरतक्षेत्रविषैं अवतरे हैं ॥ ७ ॥ सोलह कारणकी भावना तीर्थंकर पदकी उपार्जनहारी वज्रनाभके भवमैं भायकरि सर्वार्थसिद्धि गये ॥ ८ ॥ तहांतैं या भरतक्षेत्रविषै धर्मतीर्थके प्रवर्तनकूं अवतरे हैं तिनि इह क्षत्रीनिकी सृष्टि प्रजाकी रक्षाके अर्थि रची है ॥ ९ ॥ पहली भोगभूमिविषै कोऊ सबल निर्बल न हुता सब समान हुते अर अब कर्मभूमिविषैं कोई सबल भए केई निर्बल भए सो निबलनिकूं सबल न पीडे तातें क्षत्री थापे अर प्रजा तौ रक्षायोग्य है अर क्षत्री रक्षक हैं ॥ १० ॥ प्रजाकी रक्षाविषैं कोई सबल भए केइक उद्यमी तातें क्षत्री कहिए सो इह क्षत्रीका वंश अनादिकालतैं बटके बीजकी नाईं विस्तरि रह्या है ॥ ११ ॥ महाविदेह क्षेत्रविषैं अनादिकालसूं अखंड रूप चल्या जाय है कबहूं विच्छेद नाहीं अर भरतादि दश क्षेत्रविषैं अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल प्रवर्तै हैं सो पहले दूजे तीजे कालविषैं तौ भोगभूमि हैं सो भोगभूमिविषैं वर्णाश्रम नाहीं अर कर्मभूमिविषैं वर्णाश्रम होय हैं सो सबनिके रक्षक क्षत्री हैं तिनिके उचित आचार प्रजाके पालिबे अर्थि न्यायवृत्ति हैं ॥ १२ ॥

कहिवेके देव हैं तिनि कहिवेके धर्म ही है ॥ ४० ॥ सर्व दोषरहित वीतराग ही देव है और सब भाग्यका अतिशय नाही ॥ ४१ ॥ ये देवनिविषैं वचनका अतिशय अर आत्माका अतिशय अर जिनराज ही है ताहि आप्त वचनादि अतिशय करि मंडित सब जीवनिका हितू सब पदार्थनिका द्रष्टा कहिए अर परमेष्ठी कहिए परमात्मा कहिए सनातन कहिए ॥ ४२ ॥ वचन अतिशय सो जानूं जो वह प्रभू विना अनुक्रम एकही वार दिव्य वचनकरि सकल सभाकूं पोखै है जाकी दिव्य आवरणके क्षयतैं अनंतज्ञान अनंतदर्शन दिव्यध्वनि सकलकी भाषारूप होय परणवै है ॥ ४३ ॥ इह तौ वचन अतिशय कह्या अर भगवानविषैं समस्त रागादि दोषके अभावतैं तथा समस्त आवरणके क्षयतैं अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्यरूप अतिशय प्रगट होय है सो आत्मा अतिशय कह्या ॥ ४४ ॥ बहुरि अष्ट प्रातिहार्यमई विभूतिकी उत्पत्ति समोशरणकी रचना बारह सभा इह भाग्यातिशय कहिए ॥ ४५ ॥ ए वचनादि अतिशय औरनिमैं न पाइए इनिकरि मंडित भगवान पूर्णार्थ अरहंत परमेष्ठी जगतका गुरु है ॥ ४६ ॥ भगवान समान और कोऊ देव जगतमैं नाहीं तातैं वचनादि अतिशयके अभावतैं और कोऊ आप्त नाहीं, आप्तपना निश्चयकरि अरहंतही विषैं है ॥ ४७ ॥ या भांति भगवानका प्ररूप्या यह क्षत्रीका धर्म ताहि चिंतवन करता मतांतरतैं अपनी बुद्धिकूं निवृत्त करै ॥ ४८ ॥ जो आत्महितरहित अनाचार है तिनिमैं अपनी बुद्धि न जानै दे जब यह क्षत्री दुराचारतैं अपनी बुद्धिकूं निवृत्तकरि दृढ राखै तब पृथ्वीकी रक्षा करिबे समर्थ होय पृथ्वीकूं निर्बाधपनैं पालै ॥ ४९ ॥ जाकै राजमैं काहूकूं काहीकी बाधा न होय इह मतिपालन दूजा भेद ताका रहस्य प्रगट करिवेकै अर्थि तीन दृष्टांत कहूंहू सो सुनहु ॥ ५० ॥ पुरुषार्थकी प्रगटताकै अर्थि पुरुषका दृष्टांत बहुरि बेडीका दृष्टांत अर संसारीका दृष्टांत ॥ ५१ ॥ प्रथमही पुरुषका दृष्टांत सुनहु—पुरुष नाम जीवका है सो जीवके दोय भेद संसारी अर सिद्ध जे संसारी हैं ते बंधरूप चतुर्गतिविषैं दुःख भोगिवै हैं ॥ ५२ ॥ संसारी जीवनिके इंद्रीजनितज्ञान इंद्रीजनितदर्शन इंद्री-

पुत्रानिकूं गुरुजनोंके शिरपरि धारी माला मानिवे योग्य है तैसें जिनेंद्रके चरणानिके स्पर्शतें पवित्र भई आसिका धारनी ॥२७॥ औरनिकी आसिकाग्रहण राजानिकूं नाहीं। मुनिराज परमराज ऋषि हैं नृपनिके सजातीय हैं तातें उनकी आसिका धारनी ॥ २८ ॥ जे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य टारि और कुलके हैं तिनिकूं श्रावकके व्रत धारने अर मुनिके व्रत क्षत्रीयादि उत्तम कुलहीकूं हैं मुनि हैं ते रत्नत्रयरूप जन्मकूं धरैं हैं तातैं मुनिहू जिनराजके गुणरूपही हैं ॥ २९ ॥ तातैं यह निश्चय भया मुनिराज टारि और भेषधारी क्षत्रीनिकूं आराधिवे योग्य नाहीं ॥३०॥ तातें जे राजा हैं ते कुलकी मर्यादाके पालनविषैं यत्न करुहु नातरि अन्य भेषधारीनिकरि ठगे जाउगे। वे कल्पना जालका उपदेश देय कुमतिविषैं प्रवर्तावेंगे ॥ ३१ ॥ यह कुलानुपालन कह्या अब बुद्धिपालन कहूं हूं—हित अर आहितकूं जाने सो मति जाकरि इह लोक अर परलोककी अर्थसिद्धि होती ॥ ३२ ॥ मतिका पालन कैंसे कैसें होय सो सुनहु—समस्त अविद्याका त्याग, जो मिथ्याज्ञान अतत्त्वकी भावना सो अविद्या जानहु ॥३३॥ वीतरागका भाष्या सो तत्त्व जाके आचरण भए सकल दोष निवृत्त भये सो वीतरागताका नाम आप्त कहिए तातैं भगवत्‌का मत मनके मल धोयवेकूं अभ्यास करना, राजविद्याके परिज्ञानतें या लोकके अर्थविषैं दृढमति होय अर धर्मशास्त्रके ज्ञानतैं दोऊ लोक सुधारिवेकी बुद्धि होय ॥३४॥ सिद्धांतका श्रद्धानकरि जे क्षत्री राजरिषवरा ते महादेव कहिए ॥ ३५ ॥ जे राजा महावंशविषैं उपजे भगवानके मार्गकूं पाय उत्तम आचरणविषैं प्रवर्ते ते महत्ताके योगतें पृथ्वीविषैं महादेव कहाए ॥३६॥ अर उन राजानिकी रानी महाकुलविषैं उपजी अर महाराजानि परणी अर महापुरुषनिकूं उपजावैं तातैं महादेवी कहिए ॥ ३७ ॥ जिनधर्मी राजा महादेव अर तिनकी रानी महादेवी जो कदाचि कौऊ मिथ्याशास्त्री उनकूं आयकरि कहै ॥ ३८ ॥ जो मैं महापूज्य जगतके निस्तारक हौं हमारे देव सिवाय और देव नांहीं अर हमारे मत सिवाय और मत नांही ॥ ३९ ॥ या भांति कोऊ नष्टबुद्धि कहै तो ए काहूकी श्रद्धा न करैं इही दृढ निश्चय करैं जो संसारसमुद्र तिरिवेका उपाय एक जिनभाषित

नाहीं जीवनिकरि बाधा नाहीं अर पुद्गलीक बंधनकरि बाधा नाहीं ॥ ९७ ॥ अर सिद्धनिका अनंत ज्ञान सकल पदार्थनिकूं एकही समयमैं जानै है काहूकूं आगैं काहूकूं पीछैं ऐसैं ना जानैं सदा सबनिकूं एक समयमैं जानैं ॥ ९८ ॥ अर सिद्धनिका अनंतदर्शन सब पदार्थनिकूं एक समयमैं देखै अर काहूकरि सिद्धनिका घात नाहीं सदा अविनाशी हैं इह अनंतवीर्यता कही ॥ ९९ ॥ अर भोगिवे योग्य पदार्थनिविषैं अभिलाष नाहीं इहां अनंतसुख अवस्था कही अर पुण्य पापका विनाश इह नीरजपना कह्या ॥ १०० ॥ अर अंतर बाह्य मलका अभाव इह निर्मलपना कह्या अर स्वभावही करि विमल अनादिसिद्ध ऐसा कोऊ नाहीं सब कर्म काटि सिद्ध भये हैं ॥ १०१ ॥ अर जो जीवका कर्ममलके क्षयतैं घनाकार परिणमन सो अछेद्यापना कह्या अर ताहिकरि अभेद्यपना कह्या ॥ २ ॥ अर मरणके अभावतैं अक्षयपना कह्या अर प्रशंसायोग्य आत्मीक गुणनिकरि अप्रेमयपना कह्या जाकी महिमा प्रमाणमैं न आवै अतुल्य है ॥ ३ ॥ अर अंतर बाह्य मलके अभावतैं अगर्भवास कह्या अर कर्म नोकर्मके अभावतैं अगुरुलघुपना कह्या, न गुरु न लघु कर्म कहिए ज्ञानावरणादि अष्टकर्म अर नोकर्म कहिए औदारिकादि शरीर ॥ ४ ॥ अर सिद्धनिकै निज गुणनिकरि निजस्वरूपविषैं निवास अविचल है अर अक्षोभपना है कबहूं उद्वेग नाहीं अर आत्मीक गुणनिकरि अविनश्वरपना है ज्ञान आनंदादि निजगुण निजभाव वस्तुतैं न्यारे नाहीं गुण अर गुणीका एकीभाव है ॥ ५ ॥ जा देहतैं सिद्ध भए ताकै आकार पुरुषाकारपना है सो कबहू छूटै नाहीं अखंड है अविनाशी सो परमहद ज्ञानरूप परमात्मा कह्या ॥ ६ ॥ लोककै अग्रभाग त्रैलोक्यके शिखरविषैं शास्वती स्थिति है, समस्त पुरुषार्थकी पूर्णता सो परमसिद्धता कही ॥ १०७ ॥ जो इनि ज्ञानादि संपूर्ण गुणनिकरि संयुक्त है सो कृतकृत्य है ताकै परद्रव्यके अंगीकार करि कहा ? ॥ ८ ॥ इह संसारीका दृष्टांत भिन्नताकरि परमात्मस्वरूपकूं साधै है जो संसारदशातैं भिन्नदशा सो सिद्ध अवस्था जीवही सिद्ध होय है सिद्धनिकूं परमात्मा कहिए प्रभु कहिए जिनपरि काहूकी आज्ञा नाहीं सबनिके स्वामी हैं पुरुष निगड अर सांसारिक इन तीन

जनितसुख है सो संसारी जीव देहरूप गृहविषैं तिष्ठता सुखकी वांछा करि सुख भोगवनेका यत्न करै है परंतु देहके संबंधतैं सुख नांही ॥ ५३ ॥ अर जे सिद्ध हैं ते अतींद्रिय गुणनिकरि स्वात्माधीन परमसुख निरंतर भोगवै हैं अर संसारी जीवनिके इंद्रीजनित ज्ञान महास्वल्प है सो स्वल्पज्ञानकरि शास्त्रके पठनके अर्थि आपतैं और कोऊ ज्ञानाधिकताका आश्रय करै हैं ॥ ५५ ॥ अर इंद्रीजनितदर्शन अल्पशक्तिरूप है ताकरि संसारी जीव निकटवर्ती स्थूलपदार्थनिकूं देखै है अर जे दूरवर्ती पदार्थ हैं तिनिके देखिवेके अभिलाषी हैं ॥ ५६ ॥ अर इंद्रियजनित बल महा स्वल्प है परके सहायकी अपेक्षा करि वांछित कार्य करिवेकी इच्छा करै है आप करिवेकूं असमर्थ है परका सहाय चाहै ॥ ५७ ॥ अर इंद्रीजनित सुख दुखरूपही है काम भोगरूप विषयनिकी वांछाकरि पराधीन सुखकूं इच्छै है ॥ ५८ ॥ बहुरि इंद्रीनिकी सुंदरता अत्यंत पराधीन है महा तुच्छ है स्नान अर सुगंधादिकका लेपन तथा पुष्पमाला अर नाना प्रकारके आभूषणनिकरि सुंदरता वढायवेकी अभिलाषा करै है ॥ ५९ ॥ इह जीवनिका देह इंद्रियमई दोष धातुमलका स्थान है अर इह संसारी जीव नानाप्रकारके भोजन अर औषधादिकरि देहकी रक्षाविषैं व्याकुल होय है अनेक यत्न करै है परंतु देहकी रक्षा न होय ॥ ६० ॥ शरीरके धारण करि पीडित भया संसारी जीव जन्म जरा मरणादिक दोष तिनिकौं देखता दूरि करिवेके अर्थि तप करिवेकूं उद्यमी होय है तपकरि दुःख निवारिवेका यत्न करै है सो तपके प्रभावकरि इंद्रियसुखके कारण देवलोकके सुंदरमंदिरादिक तिनिकूं पावै है तहां इंद्रीजनित सुख भोगवै है तपके प्रभावकरि देवनिकी दीर्घायु पावै है बहुरि तिनि सुखनि विनश्वर विचारता मोक्षस्थानकूं इच्छै है ॥ ६१ ॥ अर सिद्ध परमेष्ठी अतींद्रिय ज्ञान अतींद्रियदर्शन अतींद्रियसुख अतींद्रिय वीर्यकरि संयुक्त है आत्मस्वरूप अविनाशी ज्ञान शरीर अनंतसुंदरता निजक्षेत्रका निवास तिनिकूं आश्रयै है ॥ ६२ ॥ तिनिके पूर्वोक्त दोषनिका स्पर्श कदाचि न होय तातैं यह निश्चय भया जाकै इंद्रियरहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंत-

दृष्टांतनिकरि प्रगट दिखाया है महाउदय जाका सो भगवान है ताके मतविषैं धीर पुरुषनिकूं अपनी बुद्धि धारणी ॥ ९ ॥ या भांति जाकी है परंपराय जानैं सो मतांतरविषैं दृष्टांतनिकरि नयरहितपना जानता संता क्षत्री सबमैं उत्कृष्ट होय है जो मतांतर थकी अपनी बुद्धि छुडायकरि वीतरागके मार्गविषैं दृढबुद्धि धरै सो मतिपालन कहिए जिनमार्गविषैं बुद्धिकूं लगावता संता मतिपालन करे इह पांच भेदनिमैं दूजा मतिपालन कह्या। पहला कुलपालन दूजा मतिपालन ए दोय भेद कहिकरि तीजा आत्मपालन कहै हैं ॥ १० ॥ आत्माकूं इहलोक परलोकके कष्टतैं बचावना सो आत्मपालन कहिए ताका वर्णन अव करिए है सो सुनहु ॥ ११ ॥ या लोकके विघ्नतैं रक्षा सो तो बुद्धिवंतनिके प्रसिद्धही है विष शस्त्रादिकके विघ्नतैं आपकूं बचावना सो तो इहां लोककी रक्षा है जो राजके दावादार हैं पुत्र भ्रातृ आदि अथवा शत्रु जन तिनतैं राजा सदा सावधान रहै कदे काहूतैं दगा न खाय ॥ १२ ॥ अर परलोकके कष्टतैं बचावना ताकी विधि कहै हैं—परलोकविषैं विघ्नका अभाव आत्माकी रक्षा सो धर्मकरि होय है धर्मही आपदा बचायवेका उपाय है ॥ १३ ॥ धर्म कष्ट थकी रक्षा करै धर्म मनवंछित फल दे धर्मकल्याणका कर्ता है, परलोकविषैं आनंद धर्मही करि होय है तातैं धर्मविषैं सावधान भयासंता परलोकविषैं आपकूं बचायवेका उपाय करै जो धर्मकी रक्षा करै तौ आपकी रक्षा होय धर्मका साधन भवांतरविषैं रक्षाका यत्न करै ॥ १५ ॥ महाकष्टरूप इह राज्य विवेकीनिकूं त्याज्यही है जा राजविषैं पुत्र बांधव निरंतर वैरकूं प्राप्त होंय ॥ १६ ॥ राज्यविषैं मनकूं सदा खेदही रहै अर बहुतकाल परभवविषैं दुख अवस्था भोगवै जो विचक्षण पुरुष हैं ते मनकी निराकुलता सोही सुख कहै हैं ॥ १७ ॥ इह पापका मूल दुखकर है अंत जाका ऐसा राज्य ताविषैं सुखका लेशहू नांही सदा सर्वदा सर्वथकी शंकाही रहै याविषैं सुख काहेका ॥ १८ ॥ तातैं अपथ्यभोजनकी नाईं इह राज्य त्याज्यही है अर पथ्यभोजनकी नाईं विवेकीनिकूं तप सदा उपादेय है ॥ २१ ॥ या भांति वैराग्यविषैं तत्पर भया सुबुद्धी पहली ही राज्यकूं तजै अर जो न तजि सकै तौ अंतकाल अवश्य

सुख अनंतवीर्य सो परमेश्वर ताहि आप्त कहिए अर जिनिमें ए गुण नाहीं ते संसारी तिनिमें सर्वज्ञता नांही ॥ ६३ ॥ याही अर्थके दृढ करिवेके अर्थि बहुरि कहिए है जातें वस्तुका स्वरूप प्रगट करिए तौ निश्चयकरि तत्त्व जान्या जाय ॥ ६४ ॥ जो अतींद्रियज्ञान है सो परका आश्रय न करै वह केवल रूप निर्मल नेत्रका धारक तीनकालका ज्ञाता आप सबकूं शिक्षादायक आप कौनकी शिक्षा ग्रहै ? ॥ ६५ ॥ तथा अतींद्रियदर्शनका धारक अपूर्वअर्थके देखिवेविषैं अभिलाषी न होय वह विश्वदर्शी है वानैं एक समयमें सब देखे वातैं अपूर्व कहा ऐसा कोऊ पदार्थ नाहीं जो वाके देखिवेमैं न आया केवलदृष्टिकरि सब देखे ॥ ६६ ॥ अर वह क्षायक अनंतवीर्यका धारक औरका सहाय न चाहै आपही महासमर्थ अनंतशक्तिका धारक कृतकृत्य लोकके शिखरकूं प्राप्त भया ॥६७॥ अर अतींद्रिय अनंतसुखका धारक आत्मा भोगनिका अभिलाषी न होय ताकैं कदाचि काहू वस्तुकी चिंता न होय ॥ ६८ ॥ पाया है इंद्रियरहित अनंतसौंदर्य जानै सो स्नानादि संस्कारकूं न इच्छै वह माहिले बारिले मलके क्षयतैं सदा निर्मल शुद्धात्मा है ॥ ६९ ॥ अर इंद्रियरहित अमूर्तिक मूर्तिका धारक आहारादिककूं न चाहै सिद्धनिका अमूर्त पुरुषाकार ज्ञानशरीर ॥ क्षुधा तृषा व्याधि विष शस्त्रादिककी बाधातैं रहित है ॥ ७० ॥ अर वह वीतराग जन्म जरा मरणतैं रहित तपहूका अभिलाषी न होय जाहि कछू करना नाहीं अर अपने आत्मक्षेत्रविषैं तिष्ठता और आवासकूं न इच्छै ॥ ७१ ॥ या भांति सो भगवान सकल दोषनितैं रहित सकलगुणनिकरि युक्त परमात्मा परमज्योति परमेष्ठी परमेश्वर इत्यादि अनंतनामनि करि गाईए है ॥ ७२ ॥ भगवानका लक्षण कामरूपी नाहीं जो रागसहित होय सो कामरूपी होय जो कामरूप है सो निश्चयकरि कृतार्थ नाहीं ॥ ७३ ॥ जो अपने प्रकृतिजनित रूपकरि मनवांछित पायवेकूं समर्थ नाहीं सो विकार जनित रूपकरि कामरूपी होय, वह सुखी काहेका ? भगवान सदा स्वभावरूप हैं विभावरूप नाहीं तातैं निर्विकारताकरि कामरूप नाहीं जो कामरूपी है सो सुखी नाहीं ॥७४॥ इह तीन दृष्टांतनिमें पुरुषका दृष्टांत कह्या। पुरुषनाम

कह्या आगैं प्रजापालन कहै हैं ॥ ३७ ॥ करी है आत्मरक्षा जानैं सो राजा प्रजाके पालनविषैं यत्न कर इह प्रजापालन नामा गुण राजनिके गुणनिका शिरोमणि है ॥३८॥ सो प्रजा कैसै पालनी इह बात विस्तारकी स्पष्ट जो ग्वालका दृष्टांत ताहि अंगीकारकरि वर्णन करू हूं ॥ ३९ ॥ जैसैं गायनिका पालक प्रमादरहित भया गायनिकी रक्षा करै तैसैं राजा यत्नकरि अपनी प्रजाकी रक्षा करै ॥ १४० ॥ जौ कदाचि अपने गोकुलविषैं कोऊ गाय भैंसा बलध अपराधी होय तौ अंगच्छेदनादि तीव्र दंडकरि ताहि अधिक पीडा न करै ॥ ४१ ॥ अल्पमात्र दंडकरि ताहि वशीभूत करतासंता पालन करै ग्वालके चरित्र आदरै जैसैं ग्वाल गो-कुलकूं पालै तैसैं राजा अपनी प्रजाकूं पालै ॥ ४२ ॥ तीक्ष्णदंडका करनहारा प्रजाकूं अति व्याकुल करै तब प्रजा या राजाकूं प्रजापालक न जानि तजै याका बास तजि और ठौर जायं वसै ॥४३॥ बहुरि जैसैं ग्वाल अपने गो-कुल विषैं बहु मोला पशुजनि ताहि अति पोखै तैसैं राजा गुणवंत पुरुषनिकूं अति पोखै जैसैं ग्वाल पशूनिकै यत्न करता बहु गो-धन करि पुष्ट होय बहुत लोक अपने पशू ताहि सौंपैं ॥ ४४ ॥ तैसैं राजा प्रजाके यत्न करता धन करि पुष्ट होय बहुत देशनिके लोक किसान अर व्यापारी ताकै वशि आय बसै अर ग्वाल कामके पशुनिका आदर करता मानिवेयोग्य होय तैसैं राजा अपने अतिकामके सुभट तिनिका आदर करतासंता स्वचक्र परचक्रविषैं महिमा पावै सब लोक कीर्त्ति करैं अनेक सावंत सेवामैं आवैं ॥ १४५ ॥ सो राजेश्वर महासुभटनिके बलकरि पुष्ट भया विनाहीं यत्न समुद्रांत पृथ्वी जीतै ॥ ४६ ॥ बहुरि जैसैं समझना ग्वाल जो कदाचि प्रमादथकी अपने गोकुलविषैं काहू पशुका पग भंग भया तौ वह बंधादि उपायकरि ताका पग जोडै संधान करै ॥ ४७ ॥ बंधेहीकूं तृणादिक देकरि ताका पग दृढ करै अर उपद्रवरहित स्थानविषैं ताहि राखि वाका यत्न करै और उपद्रव सुनि परि-आई परै तौ भली भांति यत्न करै ॥ ४८ ॥ तैसैं राजा भी अपने कटकविषैं घावनिकरि युक्त भया जो सावंत ताका यत्न करै महा श्रेष्ठ वैद्य तिनिथकी योग्य औषधि दिवाय ताहि नीका करै ॥ १४९ ॥ अर

राज्यकूं तजि संन्यासमरण करै ॥ २२ ॥ काल ज्ञानके जाननहारे निमित्तज्ञानी तिनिकरि निश्चय करै अथवा आपही समझवार होय तौ आपही जानि जाय जो मेरा आयु अल्प है तव जीवनिके अंत सुबुद्धी तनुके त्यागविषैं बुद्धि धरै ॥ २३ ॥ त्यागही परमधर्म है अर त्याग ही परमतप है त्यागथकी या लोकविषैं यशका लाभ होय अर परभवविषैं इंद्रादिपदकी प्राप्ति होय ऐसा जानिकरि अंतकालविषैं पूजाकी विधि पूर्वक पवित्र स्थानकविषैं तिष्ठिकरि शरीर आहार सकल विभव सहित राज्यकूं तजै ॥ २५ ॥ गुरुनिकी साखि तज्या है देह अर आहार जानैं ता महात्माकै परीषहके जीतिवेतैं मनवंछितकार्य सिद्ध होय ॥२६॥ वहुरि वह प्रवीण क्षुधादि वाईस परीषहानिके जीतिवेकूं वारह अनुप्रेक्षाका चिंतवन करै विना अनुप्रेक्षाके चिंतवन चित्तका समाधान दुर्लभ है ॥ २७ ॥ ऐसा विचार करै जो मैं पहली न भाये सम्यक्त्वादिक निजभाव तिनिकूं भावहूं अर जे अनादितैं भाए मिथ्यात्व अव्रतादिक तिनिकूं तजूं हूं या भावकरि तत्त्व भावनाकूं भावै ॥ २९ ॥ जे जडस्वरूप शरीरादि परिग्रह हैं तिनिकूं तजै अर जे आत्मारूप रत्नत्रय सर्वोत्कृष्ट तिनिकूं अंगीकार करै ॥ ३० ॥ मनके विकल्प तिनिके दूर करवेके अर्थि वह धीरवुद्धि पंचपरमेष्ठीका ध्यान करता संता अंतविषैं प्राणनिकूं तजै ॥ ३१ ॥ एकाग्रताकूं प्राप्त भया संता तजे हैं प्राण जानैं सो अशुभकर्मनिकूं शिथलिकरि शुभगतिकूं प्राप्त होय ॥ ३२ ॥ जो महासमर्थ होय तद्भव मोक्षगामी होय तौ मुनिव्रत धारि कर्मनिका नाशकरि मोक्ष पावै अर जो असमर्थ होय तौ उत्कृष्ट देवपद पावै ॥ ३३ ॥ तहांसूं चयकरि पाया है मनुष्यभव जानैं परम तपकरि आठूं कर्म हरि मोक्षकूं प्राप्त होय ॥३४॥ अर जो क्षत्रिय जडबुद्धि आत्माकूं न जानैं अंतर वाह्य शत्रुनितैं आपकी रक्षा न करै सो विष शस्त्रादिकरि कुमरण पावै ॥ ३५ ॥ कुमरणकरि कठिन है उतरना जाका ऐसा संसाररूप भंवर ताकरि परभव विषैं दुर्गतिमैं दुखका भाजन होय ॥ ३६ ॥ तातैं जे बुद्धिमान हैं तिनिकूं आत्माके घातकी रक्षा करनी दोऊ लोकविषैं कल्याणका कारण आत्मरक्षण ताका यत्न करना इहां आत्मपालन पंच भेदनमैं तीजा भेद

राज्यकूं तजि संन्यासमरण करै ॥ २२ ॥ काल ज्ञानके जाननहारे निमित्तज्ञानी तिनिकरि निश्चय करै अथवा आपही समझवार होय तौ आपही जानि जाय जो मेरा आयु अल्प है तब जीवनिके अंत सुबुद्धी तनुके त्यागविषैं बुद्धि धरै ॥ २३ ॥ त्यागही परमधर्म है अर त्याग ही परमतप है त्यागथकी या लोकविषैं यशका लाभ होय अर परभवविषैं इंद्रादिपदकी प्राप्ति होय ऐसा जानिकरि अंतकालविषैं पूजाकी विधि पूर्वक पवित्र स्थानकविषैं तिष्ठिकरि शरीर आहार सकल विभव सहित राज्यकूं तजै ॥ २५ ॥ गुरुनिकी साखि तज्या है देह अर आहार जानैं ता महात्माकै परीषहके जीतिवेतैं मनवंछितकार्य सिद्ध होय ॥२६॥ वहुरि वह प्रवीण क्षुधादि बाईस परीषहानिके जीतिवेकूं बारह अनुप्रेक्षाका चिंतवन करै विना अनुप्रेक्षाके चिंतवन चित्तका समाधान दुर्लभ है ॥ २७ ॥ ऐसा विचार करै जो मैं पहली न भाये सम्यक्त्वादिक निजभाव तिनिकूं भावहूं अर जे अनादितैं भाए मिथ्यात्व अव्रतादिक तिनिकूं तजूं हूं या भावकरि तत्त्व भावनाकूं भावै ॥ २९ ॥ जे जडस्वरूप शरीरादि परिग्रह हैं तिनिकूं तजै अर जे आत्मारूप रत्नत्रय सर्वोत्कृष्ट तिनिकूं अंगीकार करै ॥ ३० ॥ मनके विकल्प तिनिके दूर करवेके अर्थि वह धीरबुद्धि पंचपरमेष्ठीका ध्यान करता संता अंतविषैं प्राणनिकूं तजै ॥ ३१ ॥ एकाग्रताकूं प्राप्त भया संता तजे हैं प्राण जानैं सो अशुभकर्मनिकूं शिथलिकरि शुभगतिकूं प्राप्त होय ॥ ३२ ॥ जो महासमर्थ होय तद्भव मोक्षगामी होय तौ मुनिव्रत धारि कर्मनिका नाशकरि मोक्ष पावै अर जो असमर्थ होय तौ उत्कृष्ट देवपद पावै ॥ ३३ ॥ तहांसूं चयकरि पाया है मनुष्यभव जानैं परम तपकरि आठूं कर्म हरि मोक्षकूं प्राप्त होय ॥३४॥ अर जो क्षत्रिय जडबुद्धि आत्माकूं न जानैं अंतर बाह्य शत्रुनितैं आपकी रक्षा न करै सो विष शस्त्रादिकरि कुमरण पावै ॥ ३५ ॥ कुमरणकरि कठिन है उतरना जाका ऐसा संसाररूप भंवर ताकरि परभव विषैं दुर्गतिमैं दुखका भाजन होय ॥ ३६ ॥ तातैं जे बुद्धिमान हैं तिनिकूं आत्माके घातकी रक्षा करनी दोऊ लोकविषैं कल्याणका कारण आत्मरक्षण ताका यत्न करना इहां आत्मपालन पंच भेदनमैं तीजा भेद

कहा आगैं प्रजापालन कहै हैं ॥ ३७ ॥ करी है आत्मरक्षा जानैं सो राजा प्रजाके पालनविषैं यत्न कर इह प्रजापालन नामा गुण राजनिके गुणनिका शिरोमणि है ॥३८॥ सो प्रजा कैसै पालनी इह बात विस्तारकी स्पष्ट जो ग्वालका दृष्टांत ताहि अंगीकारकरि वर्णन करू हूं ॥ ३९ ॥ जैसें गायनिका पालक प्रमादरहित भया गायनिकी रक्षा करे तैसें राजा यत्नकरि अपनी प्रजाकी रक्षा करै ॥ १४० ॥ जो कदाचि अपने गोकुलविषैं कोऊ गाय भैंसा बलध अपराधी होय तौ अंगच्छेदनादि तीव्र दंडकरि ताहि अधिक पीडा न करै ॥ ४१ ॥ अल्पमात्र दंडकरि ताहि वशीभूत करतासंता पालन करै ग्वालके चरित्र आदरै जैसें ग्वाल गो-कुलकूं पालै तैसें राजा अपनी प्रजाकूं पालै ॥ ४२ ॥ तीक्ष्णदंडका करनहारा प्रजाकूं अति व्याकुल करै तब प्रजा या राजाकूं प्रजापालक न जानि तजै याका वास तजि और ठौर जायं वसै ॥४३॥ बहुरि जैसें ग्वाल अपने गो-कुल विषैं बहु मोला पशुजनि ताहि अति पोखै तैसें राजा गुणवंत पुरुषनिकूं अति पोखै जैसें ग्वाल पशूनिके यत्न करता बहु गो-धन करि पुष्ट होय बहुत लोक अपने पशू ताहि सौंपें ॥ ४४ ॥ तैसें राजा प्रजाके यत्न करता धन करि पुष्ट होय बहुत देशनिके लोक किसान अर व्यापारी ताकै वशि आय बसै अर ग्वाल कामके पशुनिका आदर करता मानिवेयोग्य होय तैसें राजा अपने अतिकामके सुभट तिनिका आदर करतासंता स्वचक्र परचक्रविषैं महिमा पावै सब लोक कीर्त्ति करैं अनेक सावंत सेवामैं आवैं ॥ १४५ ॥ सो राजेश्वर महासुभटनिके बलकरि पुष्ट भया विनाहीं यत्न समुद्रांत पृथ्वी जीतै ॥ ४६ ॥ बहुरि जैसें समझना ग्वाल जो कदाचि प्रमादथकी अपने गोकुलविषैं काहू पशुका पग भंग भया तौ वह बंधादि उपायकरि ताका पग जोडै संधान करै ॥ ४७ ॥ बंधेहीकूं तृणादिक देकरि ताका पग दृढ करै अर उपद्रवरहित स्थानविषैं ताहि राखि वाका यत्न करै और उपद्रव सुनि परि-आई परै तौ भली भांति यत्न करै ॥ ४८ ॥ तैसें राजा भी अपने कटकविषैं घावनिकरि युक्त भया जो सावंत ताका यत्न करै महा श्रेष्ठ वैद्य तिनिथकी योग्य औषधि दिवाय ताहि नीका करै ॥ १४९ ॥ अर

ताहि अधिक आजीविका दे अति सन्मान करै या भांति करते सकल सावंत लोक राजासूं आनन्दकूं प्राप्त होंहि तब मनकरि सेवा करैं ॥ ५० ॥ बहुरि जैसें ग्वाल पशुनिकी संधिका अस्थि चलायमान होय गया तौ वाकूं ठिकाणै ल्यावै अर यत्न करै ॥ ५१ ॥ तैसें राजाहू कोऊ सुभट संग्रामविषें मरणकूं प्राप्त भया ताके पदविषें ताके पुत्रकूं तथा भाईकूं थापै अर बहुत यत्न करै ॥ ५२ ॥ ऐसें करतें याका बडा यश होय लोक कहैं यह राजा कृतज्ञ है कृतघ्नी नाहीं ऐसा जानि सुभट लोक यासूं अनुरागी होय याकी सेनाके योद्धा युद्धतें पराङ्मुख न होंहि ॥५३॥ बहुरि जैसें ग्वाल कोऊ पशु कृमिकरि पीडित होय ताहि योग्य औषधि देकर यत्न करै ॥ ५४ ॥ तैसें पृथ्वीपाल अपना सेवक ताहि दरिद्री देखि विमना जानि ताका समाधान करै ताकी चिंता निवारै ॥ ५५ ॥ जो सेवक यथायोग्य आजीविका न पावै तौ चिंतावान होय अथवा स्वामी अनादर करै तौ रूखा होय तातैं राजा सेवकनिकूं रूखा न करै ॥ ५६ ॥ सेवकनिका दारिद्र व्रणसमान अर चिंता कृमि समान उपजी ताहि जानिकरि शीघ्रही उपाय करै ॥ ५७ ॥ बहुत देबेहू करि सेवक ऐसे प्रसन्न न होंहि जैसें स्वामीके उचित सन्मानतैं प्रसन्न होंय, स्वामीके सन्मानतैं अति संतोष उपजै है ॥ ५८ ॥ बहुरि जैसें ग्वाल अपने पशुनिके समूहविषें महाभारके खैंचिबेकूं समर्थ ऐसा बडा बडा वृषभ जानिकरि ताके शरीरकी पुष्टताकै अर्थि अन्न तृण आदि विशेष योग्य वस्तु दे ॥ ५९ ॥ तैसें राजा अपनी सेनाविषें युद्धका करणहारा महा उत्कृष्ट भट जानि अधिक आजीविका देकरि ताका सन्मान करै ॥ ६० ॥ अर कीया है पराक्रम जानैं ऐसा महासावंत ताहि योग्य सत्कार करि पोषतासंता राजा कबहू सुभटनि करि रहित न होय, सावंत लोक ताहि कबहू न तजैं निरंतर अनुरागीही रहैं ॥ ६१ ॥ बहुरि जैसें अपने पशुगणकूं कंटक अर पाषाण तथा शीत आतपादि बाधाकरि वर्जित स्थानकविषें चरावै जा बनविषै कोऊबाधा न होय तहां पशुनिकूं रमावै अति यत्नकरि पोखै ॥६२॥ तैसें राजाहू निरुपद्रव देशविषें लोककूं बसायकरि रक्षा करै ॥६३॥ जौ यूं न करै तौ राज्यमें चोर तथा धाडीयत

...करै तो राज्यमें चोर तथा धाडीयत

तथा म्लेच्छनिके नायक तिनिकरि प्रजा पीडित होय अर जो कोऊ अपने देशमैं प्रजाका बाधक होय
ताहि देशतैं निकासि दे कंटकादि दूरिकरि प्रजाकी रक्षा करै प्रजाकूं दुःख न उपजने दे ॥ ६४ ॥ बहुरि
जैसैं ग्वाल जनम्यां बच्छा ताहि माता सहित यत्नसूं राखिकरि वह दयापाल बछेरेके चरण बांधि नाभि
नाल अर जरायुपटल यत्नसूं दूरिकरि कृमि परिबेकी शंकातैं महा यत्न करै अर निरंतर दुग्ध पानादिक
करि ताहि वृद्धिकूं प्राप्त करै ॥ ६५—६७ ॥ तैसैं राजा कोऊ मनुष्य आजीवकाकै अर्थि सेवा करिबेकूं
आया ताहि यथायोग्य सन्मानकरि अंगीकार करै ॥ ६८ ॥ सेवकनिमैं राखि यथायोग्य आजीवकाकी
चिंताकरि आदरसहित क्षेमकूं प्राप्त करै, कीया है देशांतरतैं आयबेका क्लेश जानैं सो बाके सब क्लेश
निवारै अर शरणै आवै ताहि शरण राखै काहूका हाथ तापरि परने न दे ॥ ६९ ॥ बहुरि जैसैं ग्वाल
पशूनिके खरीदिबेकूं उद्यमी भया सो दूधका अवलोकनादि कर गुणवंत पशूनिकूं खरीदै ॥ ७० ॥ ग्वाल
पशूनिके देश कुलादिक अवधारणविषैं तत्पर है जो इह पशु अमुकके देशका अर अमुककी जातिका है
पशूनिके गुण दोष सब जानैं तैसैं राजा बडे कुलके पुत्रनिकूं परखि कर चाकर राखै आजीवकारूप
मोलकरि खरीदै अर यथा अवसर कार्यविषैं प्रेरै सेवकनिकरि कार्यसिद्धिका फल साधिए है ॥ ७१–७२॥
बहुरि जैसैं पशुपाल पशुके खरीदिवेविषैं ताका बेचनहारा ठिकाणदार देखै तैसैं सेवकनिके संग्रहविषैं राजा
उनके कुल देश पित्रादिक तथा अगले स्वामी प्रमाणीक देखै ॥ ७३ ॥ बहुरि जैसैं ग्वाल पिछली पहर
राति रहै तबहीसूं उठिकरि यत्नसैं पशूनिकूं जहां बहुत तृण अर जल होय तहां पर चरावै ॥ ७४ ॥
बहुरि प्रातसमय पशूनिकूं ल्याकरि बछरानिकूं उनकी माताका दुग्ध पावै बछरानिकूं पीये पीछैं घृतादि-
ककी अभिलाषाकरि आप दोहै ॥१७५॥ तैसैं राजा प्रमादरहित होय जे अपने गांव हैं तिनिविषैं किसा-
ननिकूं पुष्ट करै उनकी दिलासा करै नाजके अर्थि खेती कराय पालतीनितैं न्यायरूप हांसिल लै॥ १७७ ॥
ऐसैं करते राजाकै संपदा बढै भंडार भर्‍या ही रहै प्रजा पुष्ट होय तृप्तिके करनहारे अन्नादिक तिनिकरि

देश द्रव्यवान होय ॥ ७८ ॥ अर अपने देशविषैं प्रजाके बाधा करणहारे अक्षरम्लेच्छ कहिए हिंसाके उपदेशक दुष्ट पंडित हैं तिनिकूं समझाय धर्मकी श्रद्धामैं ल्याय दानादि उपायकरि बशीभूति करै ॥ ७९ ॥ तथा जे दुष्ट भीलादिक प्रजाकी बाधा करनहारे तिनिकूं आजीवका देयकरि अपने सेवक करै ते नृपका सत्कार पाय विक्रियाकूं न भजैं जो नृपतैं सन्मान न पावे तौ निरंतर विक्रिया करै ॥ १८० ॥ अर जे केई अक्षरम्लेच्छ हिंसाके उपदेशक दयाधर्मकी श्रद्धामें न आवैं तिनिका अधिकार देशमैं होंने न दे तिनिकूं किसान समान करदेबा करै तिनिका सत्कार न करै ॥ ८१ ॥ अधर्मके अक्षर पढिकरि लोकनिकूं अज्ञान उपजावैं ते अक्षरम्लेच्छ जानूं ॥ ८२ ॥ अक्षरका जो गर्व ताहि अज्ञानके बलतैं धारैं पापसूत्रके पाठी ते अक्षरम्लेच्छ ॥ ८३ ॥ हिंसाविषैं म्लेच्छाचार है अर मांसभक्षणविषैं म्लेच्छाचार है अर बलात्कार परधनहरण सो म्लेच्छाचार है जहां व्रतका अभाव अव्रतदशा सोही म्लेच्छाचार है ॥ ८४ ॥ जिन पापिनिकै वह है ते अक्षरम्लेक्ष कहिए वे पापाचारी अविद्याके गर्वतैं हिंसाचरणहीकूं भला मानै हैं ॥ ८५ ॥ तिनिकूं सामान्य प्रजाहूतें निकृष्ट जानें तिनिका सत्कार न करै अर जे भगवानके दास दयानिधि हैं तिनिहीका आदर करै ॥ ८६ ॥ अर कदाचि कुपंडित पापाचारी वृथा गर्व करै, कहै—हम विद्यावान हैं पंडित हैं राजाकूं धान्यका वट न दें तो उनसूं ऐसैं कहै—गुणथकी उत्तमता है तुममैं गुण कहा ? हिंसक मृषावादी अव्रती दोषरूप हो, जे अव्रती निर्दयी जीवहिंसाके करणहारे ते आदरयोग्य नाहीं जे धर्मात्मा हैं ते सत्कारयोग्य हैं बहुत कहिवेकरि कहा ? जे विवेकी व्रतधारी उत्तम पंडित हैं तेई नृपनिके मान्य हैं और सामान्य प्रजातुल्य हैं ॥ १८७–१९२ ॥ बहुरि जैसैं ग्वाल व्याघ्र चौरादिकके उपद्रवतैं सावधान भया गो-धनकी रक्षा करै तैसैं राजा सावधान भया प्रजाकी रक्षा करै चौरादिकका उपद्रव न होने दे ॥ ९३ ॥ बहुरि जैसैं ग्वाल जब गायनिका स्वामी देखिबेकूं आवे तव सन्मुख जाय करि ताहि दधि दुग्ध घृतादि करि प्रसन्न करै अर बहुत स्तुति करै ॥ ९४ ॥

...दुग्ध घृतादि करि प्रसन्न करै अर बहुत स्तुति करै ॥ १४ ॥ तैसैं राजा जब कोऊ महामंडलेश्वर देशके निकट आवै तब बडे पुरुषनि सूत्रकरि वासूं मिलाप करै ॥ १५ ॥ प्रबलसूं युद्ध करना सेनाके क्षयहीका कारण है तासूं जीतना कठिन तातैं उचित वस्तु वाहनादि देकरि बलवानसूं मिलाप करै ॥ १९६ ॥ या भांति ग्वालका दृष्टांत अंगीकार करि राजा न्यायमार्गतैं प्रजाके पालनविषैं यत्न करै ॥ १९७ ॥ जो राजा यतेंद्री होय काम क्रोधादिकका वशीकरणहारा होय ताहीकै प्रजापालन होय। अब समंजसत्व नामा पांचमां गुण कहै हैं ॥ १९८ ॥ राजा चित्तकूं समाधान करि दुष्टका निग्रह करै अर शिष्ट कहिए भले मनुष्य तिनपरि कृपा करै सोही समंजसत्व कहिये, कहा बैरी अर कहा अपना पुत्र जो दंडयोग्य होय ताहि यथापराध दंड दे अर जो अपराधरहित होय तासूं कृपा करै अर पक्षपातरहित न्याय करै ॥ १९९–२०० ॥ जो मध्यस्थवृत्ति होय काहुका पक्षपात न करै सो समदर्शी कहिए राजाके समदृष्टिपना ताका नाम समंजस है प्रजाविषैं विषमदृष्टि नाहीं सबविषैं समभाव। ॥ २०१ ॥ समंजस नामा गुण करि जे न्यायवंत शिष्ट पुरुष हैं तिनिका पालन करै अर जे अन्यायवंत अपराधी दुष्ट जीव हैं तिनिका निग्रह करै ॥ २०२ ॥ जे पापी हिंसादि दोषविषैं प्रवर्त्तैं ते दुष्ट अर जे क्षमा दया सत्य शौचादि गुण तिनिकरि धर्मविषैं तत्पर ते शिष्ट ॥ २०३ ॥ या भांति वह सोलमा कुलकर प्रथम चक्रवर्ती तिनिकूं उत्तममार्गविषैं लगावतासंता वीतरागके भाषे नाना प्रकारके उचित वचन तिनि करि राजानिके समस्त व्रत नृपनिकूं उपदेशता भया ॥ ४ ॥ या भांति भले प्रकार भरतेश्वर कह्या सब जीवनिकूं हितकारी क्षत्रीनिका धर्म ताहि भली भांति धारिकरि ते राजा हर्षित भए अर अपनी क्षात्र-वृत्तिकूं प्राप्त होते भए तिनि राजानि सहित योग अर क्षेमका मार्ग ताविषैं सर्वही वर्णाश्रम अपने आचार-विषैं तिष्ठते संतै निरंतर धर्मके उच्छव करि संतोष धारते भए ॥ २०५ ॥ एक जाति क्षत्रियव्रत अर दूजा महाप्रबल रत्नत्रयकी प्रगटतारूपतीर्थ क्षत्रीव्रत ज्ञानवान आदिचक्री कहता भया सो सर्व ज्ञानवान गौतम-स्वामी जिनवाणीकूं प्रगट करते राजा श्रेणिककूं कहते भये, कैसी है जिनवाणी समस्त पदार्थनिका रहस्य

जाविषै गोचर है,—वह भरतक्षेत्रका अधिपति भगवानका भक्त, सर्व विधिके वक्ता जगतके स्वामी श्री आदिजिन तिनके गुणनिका स्मरण करता प्रमाण करता ताही आदिजिनकी भक्ति करि बारंबार पूजा करता सुखसूं बहुतकाल व्यतीत करता भया, कैसे हैं भगवान आदिजिनेश्वर सुर कहिए कल्पवासी देव अर असुर कहिए भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी तिनिके गुरु हैं अर कैसा है भरत सदा उच्छव करि भरया है ॥ ७ ॥ वह भरतेश्वर समुद्रतैं लेकरि हिमवान पर्वत पर्यंत समस्त पृथ्वीकूं निःकंटक पालता इकछत्र राज करता निरंतर जिनराजकी पूजा विस्तारतासंता अर अर्थीनिके समूहकूं पोषतासंता धरै है देदीप्यमान मुकुट जिनि ऐसे महाराजा मुकुटबंध तिनिकरि सेवनीक इच्छा विनोद करि राजानिका इंद्र सारभूत जे दशांग भोग तिनिकूं भोगवता भया । दशांगभोगके नाम महारानी, दिव्यनगर, रत्ननिधि, सेना, भाजन, भोजन, शयन, आसन, वाहन, नाट्य ए दशांग भोग जानहु ॥ २०८ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे भरतराजवर्णाश्रमस्थितिपालनं नाम बियालीसवां पर्व समाप्त भया ॥४२॥

अथ तेतालीसवां पर्व ।

अथानंतर समस्त मर्यादकी उत्पत्तिके कारण श्रीऋषभदेव तिनके ताईं नमस्कार । कैसे हैं श्रीऋषभ त्रिकाल गोचर अनंत ज्ञेय पदार्थ, तिनिविषैं व्याप रही है केवल ज्ञानरूपी मूर्त्ति जिनकी ॥ १ ॥ संसार-सागरके तारिबेकूं सेतुसमान श्री आदिदेव सकल कल्याणका मार्ग ताके निर्मापणके कारण तिनिके ताईं नमस्कार ॥ २ ॥ अनंतवीर्यके भाजन श्रीजिनेश्वरदेव मृत्युके जीतनहारे जयवंत होहु, जगतकूं आनंदके कारण आपदाकी दृढ जडकूं छेदनहारे अर सुर असुरनिके सिरविषैं देदीप्यमान महामनोहर रत्ननिकी पंक्ति तिनिकूं शोभित करणहारे अति मनोज्ञ अरुण हैं सुंदर चरणयुगल जिनिके तिनिकूं नमस्कार ॥ ३ ॥ इहां तक श्रीजिनसेनाचार्यकृत पुराणका कथन भया । दश हजार श्लोक इहां पूर्ण भए । महापुराणविषैं

...पुराणका कथन भया। दश हजार श्लोक इहां पूर्ण भए। महापुराण वे...

धर्म है, मुक्तिपद है, कविता है, तीर्थेश्वरके चरित्र हैं। जो महा कवींद्र जिनसेनाचार्य तिनिके मुखार-विंदतैं निकसे वचन, ते कौनका चित्त न हरैं ॥ ४ ॥

इत्यार्षे महापुराणस्याद्यं खंडं समाप्तं।

अथ श्रीमहापुराणका उत्तरखंड।

श्रीऋषभदेव, वृषभकी है ध्वजा जाकै, सो लक्ष्मीवान कल्याणकूं विस्तारौ। जाके वचनतैं भरतक्षेत्र थकी मुक्तिका मार्ग विस्ताररूप होता भया। भावार्थ—अठारह कोडाकोडी सागर लग भरतक्षेत्रतैं मुक्तिका मार्ग न चल्या जब श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकर भये तब या क्षेत्रतैं मुक्तिका मार्ग प्रवर्त्या ॥ १ ॥ अर महा विदेह क्षेत्रनितैं सदा ही मुक्तिका मार्ग प्रवर्तै है। जो जिनेंद्र सकल इंद्रनिकरि पूजित हैं चरण जाके सो धर्मचक्रतैं कर्मचक्रका पराक्रम जीतिकरि त्रैलोक्यका चक्रेश्वर पद भोगवता भया ॥ २ ॥ जो या चतुर्थकालकी आदिविषैं फैलती वचनरूप किरण तिनिकरि जगतकूं उद्योत करता भया जैसैं दिनकी आदिविषैं दिवाकर उद्योत करै ॥ ३ ॥ अठारह कोडाकोडी सागरलौं भरतक्षेत्रतैं निर्वाणका मार्ग नष्ट भया हुता ताहि दिखायकरि जानैं सिद्धलोकविषैं सिद्धनिकी वृद्धि करी ॥ ४ ॥ अजित आदि सकल तीर्थंकरनिविषैं जो स्वतःस्वभाव आदि भया तातैं नामादानपराभव कहिए नामग्रहणका पराभव जाहि न परसता भया। भावार्थ—काहूके नीचै नाम आवै तो नामका पराभव होय सो तीर्थंकरनिहूके नीचै जाका नाम न आया जैसैं चक्रवर्तीनिविषैं भरतका नाम नीचैं न आवता भया। एक तौ इह अर्थ जानूं। दूजा अर्थ—छह महीने लग आहारका लाभका अंतराय सोही भया पराभव सो जाहि न सपरसता भया। भावार्थ—आहारके अलाभकरि पराभव न भया तपकी अधिकताकरि महिमाकी अधिकता भई। अर पाठांतर एक और अर्थ—सामादानपराभव कहिये साम अर दानका पराभव सो जाहि न सपरसता भया साम कहिए स्तुतिके वचन जानैं काहू सौं न कहे अर दान कहिए 'देना' सो दविकरि काहूकौं न दीया दया-

भावकरि सबको दीया। अर चक्रवर्तीकी पक्ष—एक तौ इह अर्थ—काहू चक्रीके नीचे नाम न आया सबकी आदि भरत भया अर दूजा अर्थ—वाहुवलितैं विजयका अभाव सोही भया पराभव सो जाहि न सपरसता भया, संसारविषैं अधिक कीर्ति वढी। अर तीजा अर्थ—भरतकूं काहूसूं साम दान न करना पर्‍या साम-दानरूप पराभव जाहि न सपरसता भया ॥ ५ ॥ अर ऋषभकरि प्रकास्या मुक्तिका मार्ग चतुर्थ-कालकी आदिविषैं सो और तीर्थंकरनिकूं मुक्तिका मार्ग प्रकासेका प्रकास होता भया। भावार्थ—जो मार्ग इनि प्रकास्या हुता सो ही उन प्रकास्या इनिके प्रकाश वेऊ करते भए ॥ ६ ॥ जो भगवान ऋषभ युगका भार चिरकाल लग अकेले धारते भए वहुरि व्रत सील गुणनिकरि पूर्ण जो धर्मरूप विस्तीर्ण रथ ताहि चलावते भए यह बडा अचिरज है। भावार्थ-अकेला वृषभ युग नाम जूडेका ताके भारकूं वहता भारी रथकूं चलावे इह बडा अचिरज ॥ ७ ॥ सो एक—अक्षर कहिए अविनश्वर आदिदेव ताहि एकाक्षर जो ओंकार ताकी नाई ध्यायकरि अर पूर्वोक्त शास्त्रनिकूं अवलोकि करि ऋषभ नाथके पुराणकी चूलिका कहूं हूं ॥ ८ ॥ श्रीजिनसेनाचार्यने आप प्ररूप्या पुराण सो सर्व रस अर सर्व अलंकार तामें धरे, ऐसा कोऊ रस नांही, जो उनतैं रहि गया। अर हम नवा धरे तातैं जिनसेनाचार्यने न (?) छांडे रस तिनिहीकूं स्नेहतैं या उत्तरपुराणविषैं हम वर्णन करै हैं भावार्थ—उनके भोगए रसका हमहू अंगीकार करै हैं ॥ ९ ॥ पुराणके कारक शुद्ध बोधके धारक केवल मोक्षाभिलाषी शृंगारादि रसरूप रागादिककूं दूरितैं तजिकरि केवल वीत-रागभावका वर्णन करते भए ॥१०॥ या पुराणका सर्वसार महात्मा पुरुष जे जिनसेनाचार्य तिनि निर्माण्या अब वाकी रह्या ताविषैं उद्यम करणहारे हम, सो हमकूं खेद नांही जैसे काहूनै मंदिर निर्माण्या अर ताविषैं जो काम वाकी रह्या ताके यत्न करणहारेनिकूं विशेष खेद नांहीं ॥ ११ ॥ यह पुराणरूप महावृक्ष शब्दार्थरूप सुंदरपत्र फलनिकरि शोभित ताविषैं मेरे वचन कूंपल समान ते पंडितजन कर्णविषैं धरौ ॥ १२ ॥ या पुराणका पूर्व अर्धभाग गुरु जे जिनसेनाचार्य तिनि रच्या अर पछिला अर्धभाग हम सारिखेनिकरि रचिए है सो छंदभेदकी

नाईं सुंदरही है। जैसें छंद कैइक गुरु अक्षरनिकरि रच्या बहुरि वामें लघु अक्षरहू आवें तो कहा सुंदर नांही ॥१३॥ सांठेकी नाईं या पुराणका पूर्वार्ध ही मिष्टतासहित है उत्तरार्ध नांही अैसा विचारिकरि आरंभिए है ॥ १४ ॥ मोविषैं गुरुसमान पूर्णबुद्धि नाहीं तातैं कवितामैं न्यूनता होय तो होहु परंतु धर्मकर्म उपदेश विषैं न्यूनता नाहीं इह विचारि विवेकीजन धर्मकूं ग्रहो जैसें भोजन करणहारे स्वादरूप भोजनकूं इच्छै हैं, प्रिय वचननिकूं नाहीं इच्छै हैं जो मिष्ट भोजनसूं कार्य है. मिष्ट वचननिसूं प्रयोजन नाहीं ॥१५॥ या पुराणका उत्तर भाग ईखके उत्तरभागकी नाईं विरस नाहीं इह निश्चय है। अहो ! धर्मका अग्रभाग काहूने कहूं विरस देख्या? कदापि विरस नाहीं ॥ १६ ॥ अर मेरे वचनहू जो रसरूप हैं सो गुरुकाही माहात्म्य है जैसें फल स्वादरूप है सो वृक्षकाही प्रभाव है ॥ १७ ॥ अर वचन मेरे हृदयतें निकसे हैं सो हृदयमैं गुरु विराजै हैं ते गुरु तिनवचननिकूं सुधार लेंगे, मोहि परिश्रम नाहीं ॥ १८ ॥ या ग्रंथके श्रवणहारे भव्यजीव अर जिनेश्वरदेवनि अर्थ कह्या, अर्थके मूल शब्द, तातैं याविषैं मेरी निंदा नाहीं ॥१९॥ जे गुणी पुरुष हैं तिनिकूं पराए दोष गुणरूप भासैं अर जे निर्गुणी हैं तिनिकूं पराए गुणही दोषरूप भासैं हैं अैसा सम्यक्ज्ञान अर मिथ्याज्ञानका विचित्ररूप माहात्म्य है। सम्यग्ज्ञानीकूं गुणही भासै अर मिथ्याज्ञानीकूं दोषही भासै ॥२०॥ सज्जनपुरुष हैं सो गुणवंतनिके गुण ग्रहण करि गुणी होहु या वातको अचिरज कहा ? अर इहां बडा अचिरज है जो दुर्जन सत्पुरुषनिके झूठे दोष लेकरि दोषवान होय है। भावार्थ—सांचे रतनकूं अंगीकार करणहारा धनवान होय ताको अचिरज कहा? अर झूंठी वस्तुका ग्रहणकरि संपत्तिवान होय ताका अचिरज है ॥ २१ ॥ दुर्जन है सो सज्जनविषैं कोप करै ताका अचिरज नाहीं, काहेतैं ? जो दुर्जनके बैरी गुण तिनिका सज्जन आधार सो अपने वैरीका आधार होय तासूं अरुचि उपजै है जैसें भले कवीश्वर मोहि अपना अनुसारी जानि अनुराग करै हैं, मेरे वचननिकी प्रशंसा करै हैं तैसें कुकवि हैं ते मोहि आपतैं विमुख जानि निंदा करौ या बातको अचिरज नाहीं ॥२२-२३॥ कविजन हैं सोही कविकी काव्यका परि-

श्रम जानैं अर कुकवि न जानैं जैसें व्यावरीकी वेदना बांझ न जानै ॥ २४ ॥ जो या काव्यविषें दोष हैं ते कोऊ निःशंक ग्रहो, मैं मना न करूं, दुर्जनसूं प्रार्थना करूं हूं जो तू मेरे गुण मति ग्रहै, दोषही ग्रहै ॥ २५ ॥ जो गुण अर ओगुणकूं न जानै अज्ञानी पुरुष सो निंदा वा स्तुति करै तौ वाकीही हास्य होय जैसें जन्मका अंधा धीठपुरुष रूपकी निंदा करै अथवा स्तुति करै सो केवल अपनी हास्यके अर्थि करै है। लोक कहैं—इह कहा देखि स्तुति निंदा करै है याहि कछु सूझै नाहीं सो विन देखे स्तुति निंदा कैसें करै है ॥ २६ ॥ तैसें अज्ञानी काव्यकी निंदा करौ अथवा स्तुति करौ वाकी करी स्तुति होय, न निंदा होय अर जो वह स्तुति अर निंदा न करै तो पंडितनिके परिहासका धाम कैसें होय ? अज्ञानहीकरि पंडितनिमें हास्य होय है ॥२७॥ जे महंत पुरुष हैं ते क्षुद्रका उपद्रव कहा गिनैं उनकूं ताका उपद्रव अल्पही भासै जैसें तृणानिकी अग्निकरि रूई जलै, समुद्रकूं कहा आताप होय ? ॥ २८ ॥ काष्ठही करि उपजी अग्नि दुर्जनस्वभावकूं धारै है सो काष्ठकूं जलावै अर काष्ठ अग्निकूं बढावै सो सज्जन दुर्जनके स्वभाव प्रगट करनेकूं अग्नि अर काष्ठका दृष्टांत दीपसमान है। अग्नि दुर्जनस्वभावकूं धारै है अर काष्ठ सज्जनस्वभावकूं धारै है। दुर्जनका एही स्वभाव जो गुणपरि ओगुण करै अर सज्जनका एही स्वभाव जो ओगुणपरि गुण करै ॥ २९ ॥ पंडित पुरुष मेरी काव्यनिकूं सुनिकरि मेरे गुणनिकी स्तुति करौ, दोषनिकी निंदा करौ ते स्तुति अर निंदा कीर्त्तिकूं करै हैं । विवेकीजन जानैं—इह सांची स्तुति निंदा करै हैं जो इह आप काव्यकी रचना नाहीं करै हैं तौऊ पराई काव्यकी यथार्थ स्तुति निंदा करिबेकरि याकी कीर्त्तिही है ॥ ३० ॥ भले कविके शब्द अर्जुनके बाणसमान हैं जैसें अर्जुनके वाण कर्णकूं पाय अत्यर्थपणें ताका हृदय भेदै हैं तैसें महाकविके शब्द कर्ण कहिए कान तिनिकूं पायकरि हृदय वेधै हैं ॥ ३१ ॥ पूर्वले कवीश्वर तिनिकूं गुरुकरि इहां काव्य प्रवर्ती है अर होनहार महाकवि ते या काव्यकी शुद्धताके अर्थि अनुग्रह करौ ॥ ३२ ॥ मेरी बुद्धि रानीकी नाईं काव्यरूप पुत्रीकूं उपजावै है । अर महाकविनिकी

बुद्धि धायरूप होयकरि याका प्रतिपाल करहु ॥ ३३ ॥ या काव्यकी रचनाकूं पंडितजन ग्रहेंगे मूढ जन ग्रहिवेयोग्य नाहीं। कहा अमोलिक रत्ननिकूं हीनपुण्यी खरीदै कदापि न खरीदै पुण्याधिकारी खरीदै ॥ ३४ ॥ इह धर्मरूप महारत्न जिन आगमरूप समुद्रतैं उपज्या ताहि कृष्णसमान पुरुषोत्तम कौस्तुभ मणिहूतैं अधिक जानिकरि हृदयविषैं धारौ ॥ ३५ ॥ जे पंडित जन हैं ते या धर्मरूप अमृतकूं कानरूप आंजुलिकरि पीवौ अर ताके पीवेकरि अजरामर पद पायवेका यत्न करहु ॥ ३६ ॥ निश्चयसेती मैं या पवित्र पुराणरूप समुद्रकी मध्य अवगाहा है अर ताविषैं सुभाषित रत्न ते निश्चयसेती संचय कीए हैं। यह पुराणरूप समुद्र अतिगंभीर है अर याका पार अतिदूर है ऐसा मोहि भय नाहीं। काहेतैं ? जो गुरु सर्वत्र दुर्लभ सो मेरे आगैं आगैं हैं सब उनके पीछैं हैं, वे सबनिमैं मुख्य हैं ॥३७-३८॥ या पुराणकी महिमा याके नामही करि प्रगट है, याका नाम महापुराण है सो महापुराणमैं महा रचना होय तातैं मैं आकुलताकूं नाहीं प्राप्त हूहूं, जो मैं याकी पूर्णता करूंगा कि न करसकूंगा ॥ ३९ ॥ याकी पूर्णता वेही करै हैं जे भव्यजीव जिनसेना कहिये मुनियोंकी मंडली ताके पीछैं गमन करै हैं ते प्राचीन वीतरागका मार्ग ताहि पायकरि संसार समुद्रके पार पहुचे हैं तौ पुराणके पार क्यौं न होंहि। ते संसार सागरके पार होंहि तौं पुराणके पार होयवेका कहा कहना ? ॥ ४० ॥ अर्थ तो मनविषैं, शब्द जिह्वाके अग्रभाग अर अलंकार दोउनिके मध्य तातैं पुराणकी रचनाविषैं कालका विलंब न करना ॥ ४१ ॥ खानिविषैं रत्ननिकी नांई मनविषैं युक्तिका क्षय नाहीं तातैं विचित्र अलंकार रूप काव्यके कर्ता कवि तिनिकैं शब्दार्थका दारिद्र कहा ? ॥ ४२ ॥ विचित्र पदनिकी है रचना जाविषैं अर महारसकी भरी सर्वांग सुंदर अलंकारसहित ऐसी काव्यरूप कामिनी कौनके मनकूं न हरै ॥ ४३ ॥ भव भवके संचे पाप तिनकी नासनहारी आगामी पापनकी रोकनहारी ऐसी महाशुभ इह काव्य सो ध्यावने योग्य है ॥ ४४ ॥ संस्कृत कहिये उत्तम पुरुष

तिनकूं प्रणामनविषैं सुखकी उपजावनहारी, आत्मकल्याणरूप हितकी करनहारी है तातैं उनकूं प्रिय है अर प्राकृत कहिये जे साधारण लोक हैं तिनकूं याकी कथा प्रिय है। इह पुराण हितरूप महाप्रिय सर्वही जीवनकूं संतोष उपजावै है। इह पुराण महाहितकारी महाप्रिय है ॥ ४५ ॥ निष्पन्न भया है अब, अर रहैगा युगांतर तक ऐसा जानकर प्रगट भया है उच्छाह मेरै सो याकूं आरंभू हूं। याकी कथा वक्ता अर श्रोतानकूं अति सुदंर है ॥ ४६ ॥ अथानंतर राजा श्रेणिक श्रीऋषभदेवका पुराणरूप अमृत ताहि पीय-करि बहुरि आस्वादनकी है इच्छा जाकै, जैसें कोऊ महा स्वादिष्ट वस्तु आस्वादकर हाथकी अंगुरी चाटै है तैसें राजा बहुर हू कछु इक कथा रही है ताके श्रवणकी इच्छा करता भया ॥ ४७ ॥ राजा श्रेणिक सभाके मध्य उठकरि हाथनकी अंगुरी जोर बहुरि गौतम गणधरसूं बीनती करता भया ॥४८॥ हे प्रभो ! तिहारे प्रसादतैं मैं रिषभदेवका पावन पुराण भलीभांति सुन्या। ज्यूं भगवान निर्वाण भये ज्यूं मैं भी पुराण श्रवण करि निश्चयसेती अतिसुखी भया ॥ ४९ ॥ भगवानके समयविषै जयकुमार नामा नृपनिमें अग्रणी भया, जीत्या है चक्रेश्वरका पुत्र अर्ककीर्ति जानै सो अद्यापि जयकुमारकी जीतका जस अर प्रताप पृथिवी विषै विस्तर रह्या है ॥ ५० ॥ दिग्विजयविषै मेघकुमार देव जीते जब भरतेश्वरने जाकर आप वीरपट्ट बांध्या ॥५१॥ जैसें तीर्थेश्वरनिमैं आदि रिषभ अर चक्रेश्वरनिमैं आदि भरतेश्वर अर दानेश्वरनिमैं आदि श्रेयांस राजा तैसें स्वयंवरविषै माला पहिरनेमैं आदि जयकुमार ॥ ५२ ॥ अर्ककीर्ति भरतका ज्येष्ठ पुत्र अर ऋषभका पोता ताहि रणसंग्रामविषै अकेला लीलामात्रमैं जीतकर बांधता भया ॥ ५३ ॥ युद्धविषै तौ ऐसा सावंत बहुरि राज तजिकरि भगवानके चौरासी गणधर तिनमैं इकहत्तिरमा गणधर होता भया। चौरासी गणधरनिके नाम—वृषभसेन १ कुंभ २ दृढरथ ३ शतधनु ४ देवशर्मा ५ देवभाव ६ नंदन ७ सोमदत्त ८ सूरवृत ९ वायुशर्मा १० यशोबाहु ११ देवाग्नि १२ अग्निदेव १३ अग्नि-गुप्त १४ मित्राग्नि १५ हलभृत १६ महीश्वर १७ महेंद्र १८ वसुदेव १९ वसुंधर २० अचल २१

मेरु २२ मेरुधन २३ मेरुभूति २४ सर्वयश २५ सर्वज्ञ २६ सर्वगुप्त २७ सर्वप्रिय २८ सर्वदेव २९ सर्वविजय ३० विजयगुप्त ३१ विजयमित्र ३२ विजयबल ३३ अपराजित ३४ वसुमित्र ३५ विश्वसेन ३६ साधुसेन ३७ सत्यदेव ३८ देवसत्य ३९ सत्यगुप्त ४० सत्यमित्र ४१ निर्मल ४२ विनीत ४३ संवर ४४ मुनिगुप्त ४५ मुनिदत्त ४६ मुनियज्ञ ४७ मुनिदेव ४८ गुप्तयज्ञ ४९ मित्रयज्ञ ५० स्वयंभू ५१ भगदेव ५२ भगदत्त ५३ भगफल्गु ५४ गुप्तफल्गु ५५ मित्रफल्गु ५६ प्रजापति ५७ सर्वसंग ५८ वरुण ५९ धनपालक ६० मघवान ६१ तेजोराशि ६२ महावीर ६३ महारथ ६४ विशालाक्ष ६५, महाबाल ६६ सुचिसाल ६७ वज्र ६८ वज्रसार ६९ चद्रंचूल ७० जय ७१ महारस ७२ कच्छ ७३ महाकच्छ ७४ नमि ७५ विनमि ७६ बल ७७ अतिबल ७८ भद्रबल ७९ नंदी ८० महाभागी ८१ नंदीमित्र ८२ कामदेव ८३ अनुपत ८४ ए आदीश्वरके चौरासी गणधर सप्तऋद्धिकरि संयुक्त सर्वज्ञतुल्य होते भए ॥ ५४–६७ ॥ सो जयकुमार गृहका त्याग कर इन गणधरनमें इकहत्तरिमा गणधर होता भया ॥ ६८ ॥ ताका चरित्र मोहि कहो जामें अतिकौतुक है। हे भगवान्! आप भव्यजीवरूपी पपिहा तिनिके पोषवेकूं मेघसमान हो ॥ ६९ ॥ या भांति वीनती करी तब गणधर यापैं कृपारूप भए इह गणधरका अनुग्रह जानिकर कथा सुनवेकूं सावधान होय अपने स्थानकूं शोभित करता भया। जे बुद्धिमान हैं ते चेष्टाहीमें जाने जांहि ॥ ७० ॥ जब इह कथा सुनिवेकूं उद्यमी भया तब सब सभाके लोक याकी स्तुति करते भए। हे भव्योत्तम! जो हमारे पूछिवेका अभिलाष हुता सो तैं पूछ्या, तातें हमारा चित्त अर जिह्वा तूही है ॥७१॥ श्रेणिकनै गणधरसूं प्रश्न किया तब गणधर याके अनुग्रहविषैं प्रवर्त्ते। जे संत हैं ते अर्थीनिकूं विमुख न करैं। इह संतनका निश्चयसेती मूल व्रत है ॥ ७२ ॥ गणधर कहते भए—हे श्रेणिक! सुन, तैं यह प्रश्न भले अवसर किया जे भले पुरुष हैं ते अवसर चूकै नाहीं ॥ ७३ ॥ आगें कथा कहै हैं—या जंबूद्वीपविषैं दक्षिणमें भरतक्षेत्र ताविषैं वर्णाश्रमकरि पूर्ण

कुरुजांगलनामा बडा देश है ॥ ७४ ॥ सो देश धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी खानि है। जैसा सुरगलोकविषैं सुरपतिका विमान सोहै तैसा सोहै ॥ ७५ ॥ ता कुरुजांगलदेशविषैं हस्तिनापुरनामा नगर सर्वसंपदाकर भऱ्या सुखरूप है। लक्ष्मीकी उत्पत्ति लोक समुद्रविषैं कहै हैं सो या बातकूं मिथ्या करतासंता मानो वह पुर लक्ष्मीका कुलगृहही है ॥ ७६ ॥ तहां राजा सोमप्रभ राजानिका पति जो चंद्र तासमान आह्लादकारी सोहता भया। चंद्र तौ अपनी कर कहिए किरण तिनकरि कमोदिनीकूं प्रफुल्लित करै अर इह अपने कर कहिए हाथ तिनकर पृथिवीमंडलकूं प्रफुल्लित करै। अर चंद्रमा तो बुधका आश्रय अर इह बुध जे पंडित तिनका आश्रय ॥ ७७ ॥ ताके लक्ष्मीवतीनामा महाराणी पतिव्रता दर्शन करवेयोग्य होती भई। राजाके वक्षस्थलविषैं निवास करती जो राजलक्ष्मी ताका तिरस्कार न करती इह दूजी लक्ष्मी राजाके मंदिरविषैं आई। भावार्थ—लक्ष्मी तौ कुलाचलविषैं निपजी अर इह रानी बडे कुलविषैं उपजी तातैं याके अर लक्ष्मीके अप्रीति नाहीं ॥ ७८ ॥ वह राजा सोमप्रभ अर रानी लक्ष्मीवतीके जयकुमारनामा पुत्र होता भया। जैसैं जगतके जैसैं बुद्धि अर पराक्रमतैं जय होय सो कुमार जन्महीतैं अपणे गुणनिकर उपार्जी जो कीर्ति ताहि विस्तारता बुद्धिकूं प्राप्त होता भया। जैसैं जगतके जीव लक्ष्मी उपार्जिवेके अभिलाषी होंहि तैसैं यह कीर्तिके विस्तारवेकूं अभिलाषी भया ॥ ७९ ॥ अर राजा सोमप्रभके जयकुमारतैं छोटे विजय आदि चौदह पुत्र ते संख्याकरि तौ कुलकरनिसमान अर गुणनिकरि तिनिहूतैं अधिक ॥ ८० ॥ वह राजानिका राजा सोमप्रभ बध्या है प्रकाश जिनिका ऐसे ए सुंदर पंद्रह पुत्र तिनकरि ऐसा सोहता भया जैसैं कलानिके समूहकरि चंद्रमा सोहै ॥ ८१ ॥ वह राजा सोमप्रभ ताके लक्ष्मीवती सारखी पटरानी अर अतिप्रिय श्रेयांसनामा ल्होडा भाई (छोटा भाई) अर ज्येष्ठ पुत्र जयकुमार सो राजानिका राजा कौनकरि पूज्य न होय ॥ ८२ ॥ राजा सोमप्रभ कल्पवृक्षसमान पुत्ररूप शाखानिका है विस्तार जाकै सो आपकी संपदाका फल चिरकाल आप भोगवता भया। अर औरनिकूं अपनी संपदाका फल देता भया इह बडा अचिरज है।

भावार्थ—कल्पवृक्ष औरनिकूं मनवांछित फलदे है परंतु आप भोगवता नाहीं। कल्पवृक्षमैं दातापनेका गुण है अर भोक्तापनेका गुण नाहीं अर इहां राजा दाता है अर भोक्ता है तातैं अद्भुत कल्पवृक्ष है ॥ ८३ ॥ एकदिन सोमप्रभ यथार्थ स्वरूपका देखनहारा संसारकूं तो अनित्य जानता भया अर भोगनिकूं दुःख रूप जानता भया अर बंधूनिकूं पर जानता भया, संसारतैं विरक्त होयकरि हस्तिनापुरका राज्य अपना ज्येष्ठपुत्र महाधुरंधर महासूरवीर प्रबल पराक्रमी ऐसा जयकुमार ताहि देकरि आप अक्षय अविनाशी अनंतवीर्यरूप महाउत्कृष्ट जो निर्वाणका राज्य ताका अभिलाषी होता भया ॥८४-८५॥ अर ऋषभदेवके निकट जायकरि दीक्षा धरि श्रेयांस भाईसहित मोक्ष सुखका भोक्ता भये, जैसैं पाहिली राज्य पद भाई सहित भोगवै था तैसैं शिवसुख हू भाईसहित भोगवता भया ॥ ८६ ॥ अथानंतर जयकुमार पिताके पाटि बैठिकरि पृथ्वीकूं पालता भया अर भाईनिकूं संविभागकरि महासुख भोगवता भया ॥ ८७ ॥ एकदिन इह जयकुमार विहारके अर्थि वाह्य उद्यानविषैं गया तहां तिष्ठते शीलगुप्तनामा महामुनि तिनिकूं देखिकरि तीन प्रदक्षिणा देय भक्तिके भारकरि शीस नवाय नमस्कारकरि धर्मोपदेश सुनि पाछा पुरीमैं आवता भया ॥ ८८—८९ ॥ ता वनकेविषैं जासमैं राजाने धर्मोपदेश सुन्या तासमै राजाके साथ नाग नागिनीहू धर्म श्रवण करि दयारूप रसकूं पीवते भये ॥ ९० ॥ एक दिना मेहके आरंभविषैं प्रचंड अशनिपातका पीड्या सर्प शांतभाव होय प्राण त्यागि नागकुमार नामा देव भया ॥ ९१ ॥ औरे दिन राजा हाथी चढिकरि बहुरि वा वनमैं आया, वा नागकी नागिनी एक काकोदर जातिका सर्प विजाति तासहित कामसेवन करती हुती सो राजा नागिनीकूं दूजे नागसहित देखि कोपायमान भया। मनमैं विचारी—जो इह पापिनी अन्य जातिके सर्पसूं संसर्ग करै है सो कोपकरि लीलाका नीलकमल ताकरि दोऊनिकूं तिरस्कार करता भया अर धिक्कार कहता भया ॥ ९२—९३ ॥ वे दोऊ भागे सो दुष्ट लोकनि काष्ठ पाषाणादि करि हते। जो परदारा अंगीकार करै तासूं कौंन कोप न करै ? ॥ ९४ ॥ वह सर्प वेदनाकरि आकुल है बुद्धि जाकी

सो मरिकरि गंगाविषैं काली नामा जलदेवी भया ॥९५॥ अर वह नागिनी पश्चात्ताप करि धर्मकूं हृदयविषै धरि मूई सो अपना निजभरतार नागकुमार देव भया हुता ताकै स्त्री नागकुमारी देवी भई अर अपना सकल वृत्तांत पतिसूं कहती भई ॥९६॥ सो वह नागकुमार देव कोपथकी अैसा मानता भया जो वा दुष्टनै यह गरीबिनी वृथा मारी ॥९७॥ याहि विधवा जानी, परि इह न जानी जो याकै पति नागकुमार देव है सो अब वा दुष्टके प्राण न हरूं तौ मैं देव काहेका? ॥९८॥ अैसा विचारि जयकुमारके हतिवेकी है इच्छा जाकै सो रात्रिकूं जयकुमारके मंदिर आया। स्त्रीका अपमान तिरजंचहू न सहिसकै ॥९९॥ महासुगंध मंदिरविषै जयकुमार रात्रिकूं श्रीमती आपकी रानी तासौं कौतुकी कथा करते हुते—हे प्रिये! तू एक नागिनीकी चेष्टा सुनि। अपने पतिके वियोगमैं दूजा विजाति सर्प ताका संसर्ग कीया ॥१००॥ पापिनी स्त्री अपना कुल वय रूप विद्या व्रत जस लक्ष्मी प्रभुता पराक्रम कांति इहलोक परलोक अप्रीति प्रीति दया लज्जा अर तजिवे योग्य ग्रहवे योग्य पदार्थ तथा हानि वृद्धि गुण दोप इनिकूं नाहीं गनै है ॥ १०१ ॥ लोक धर्म अर कामकूं धनकरि संचय करै हैं इह तो मार्ग है अर ए स्त्री धर्म अर कामकूं खोय करि धनका संचय करै हैं सो धिकार इनिकी चेष्टाकूं ॥ ३ ॥ सर्पके तौ मुखविषै विष अर वीछीकै पश्चिम भागविषै विष अर ए स्त्री दुष्ट वांछाकरि युक्त तिनिके सर्वांगविषै विषम विषही भन्या है ॥ ४ ॥ इनि स्त्रीनिके वचन खोटी श्रुतिकी नाईं सत्यसे भासैं अर सत्य नाही तिनिकरि जे ठगे न गये तेही बुद्धिमान, अर इनितैं जे छूटे तेई मुक्तिके वल्लभ भए ॥ ५ ॥ इनि स्त्रीनिका प्रेमही भयंकर, तौ कोपका कहा कहना? जैसें अगाध नदी आप विषै प्रवेश कराय कुबुद्धिनिकूं हणै है तैसें स्त्री अपना राग उपजाय विषयनिकूं हनै है ॥ ६ ॥ जे ठग हैं ते इंद्रजालविद्याकरि गांवानिके मूढ लोगनिकूं ठगै है अर ए स्त्री ऐसी ठगिनी हैं जो इंद्रसहित वृहस्पतिकूं ठगै है। ए स्त्री मायाचारकी माता हैं ॥ ७ ॥ गुण जु हैं ते नाशके भयकरि स्त्रीनिका आश्रय न करै हैं अर कदाचित् इनिविषैं आवैं तो चिरकाल न ठहरैं, जाते रहैं ॥ ८ ॥ ए सकल दोषमयी स्त्री हैं अक दोष स्त्रीमयी हैं, दोष स्त्रीनितैं उपजे

हैं अरु स्त्री इनितैं उपजी है इह काहूके निश्चय भया नाहीं ॥ १०९ ॥ जे निर्गुणी हैं तिनिकूं गुणवंत अर जे गुणी हैं तिनिकूं गुणरहित करिवेकूं अथवा करायवेकूं परम समर्थहू समर्थ नाहीं अर ए स्त्री लीलामात्रमैं निर्गुणकूं गुणी जानैं अर गुणीकूं निर्गुण जानैं ॥ ११० ॥ मोक्ष तौ सदा गुणमयी अर निश्चल, स्त्री दोषमयी तातैं मुक्ति इनिकूं न वांछै इह जिनसूत्रविषैं कह्या है ॥ ११ ॥ जयकुमार श्रीमती रानीसूं कहै है—प्रिये ! जैसैं वेलनिविषैं कल्पवेलि दुर्लभ है तैसैं स्त्रीनिविषैं लक्ष्मी सरस्वती कीर्ति मुक्ति अर तू ए दुर्लभ हैं ॥ १२ ॥ ए वचन जयकुमारके सुनिकरि वह नागकुमार हणिवेकी इच्छा करै था सो मनमैं विचारता भया—हाय ! मैं पापी कहा चिंतया ? पापिनी स्त्रीके मिथ्या आलापतैं ऐसे पुरुषनिका विघ्न विचार्‍या ॥ १३ ॥ जे कार्यके वेत्ता हैं ते सत्पुरुषनिहूके वचनविषैं विचार करै हैं तौ तजिवेयोग्य ए नारी तिनिके वचनका कहा विश्वास ? इनि कामिनीनिके वचन कामी पुरुष प्रमाण करै तिनिकै कहा विचार ? ॥ १४ ॥ अर इह भव्य कर्मनिका अंत करणहारा याही भवविषैं मुक्त होयगा तातैं याकै औरनितैं भय कैसैं होय, जे दुष्ट हैं तिनिकूं यातैं भय है ॥ १५ ॥ मैं सर्पका जीव मोहि धर्मका लाभ भया याके संसर्गतैं, मुनिके सुख मोक्षदाई धर्म सुन्या तातैं मेरे मुक्तिपर्यंत सत्संग सिवाय और हित नाहीं ॥ १६ ॥ वह नागकुमारदेव पराए गुणका जाननहारा ऐसा विचारि क्रोधरहित होय अपना प्रपंच जयकुमारसूं कहि निःशल्य होय अमोलिक रत्ननिसूं जयकुमारकूं पूजता भया ॥ १७ ॥ अर कही—अपने कार्यविषैं मोहि चितारि । सो इह विनती करि अपने थानक गया । जो पुण्याधिकारी हैं तिनिकूं घात करणहारेहू सुखके दायक होय हैं ॥१८॥ सो जयकुमार प्रगट है पराक्रम जाका चक्रवर्तीकी साथि सब दिशानिकूं जीतिकरि सकल परिश्रम निवारि संयमोकी नाईं थिर होय तिष्ठ्या । जयकुमार महासौम्य है तौऊ देदीप्यमान प्रतापकूं धरै है अर निर्गुण है तौऊ गुणनिकी खानि है । इहां निर्गुणका अर्थ निर्बंधन लेना । गुण नाम बंधनका है अर वह जयकुमार सर्वांगसुंदर अनंग कहिए कामदेवसमान है । भावार्थ—काम तौ अनंग कहिए अंगतैं

रहित है ताहि कविजन वृथा सुंदर कहै हैं अर इह सर्वांगसुंदर महामनोहर है सो सुखसूं अपने नगर तिष्ठता भया ॥ ११९–२० ॥ अथानंतर एक काशीनामा देश अति विस्तीर्ण महाप्रसिद्ध या भरतक्षेत्रविषैं अतिशोभायमान मानूं कालरूप लुटेराके भयतैं भोगभूमि तहां आय वसी है ॥ २१ ॥ तादेशविषैं कल्पवृक्षसमान रमणीक वृक्ष हैं, अर कल्पवेलिसमान वेलि हैं। जैसैं कल्पवृक्ष कल्पवेलिकरि वेष्टित सोहै तैसैं वे वृक्ष वेलिकरि वेष्टित सोहै हैं ॥२२॥ मैं ऐसी आशंका करूं हूं जो वह देश मानूं स्वर्गादिकहूका जीतनहारा है, काहेतैं ? जो स्वर्गादिविषैं तौ परभवके पुण्यका फल भोगिए है अर या कासीदेशविषैं ऐसा पुण्य उपार्जिये है जाका फल तत्काल भोगिए है ॥ २३ ॥ तहां वाराणसी नामा पुरी, जीती है सूर्यपुरी जाने सो नगरी अपने विस्ताररूप मंदिर तिनकरि स्वर्गके विमाननिकूं हंसै है ॥ २४ ॥ जे महापुण्याधिकारी हैं तेई वा नगरीमें उपजे हैं अर जिनि पूर्वभवविषैं पापकर्म उपार्ज्या ते वा नगरीविषैं उपजिवे योग्य नांही। अर तहांका उपज्या कोऊ प्रमादके योगतैं मनहूविषैं पापी नांही ॥ २५ ॥ या भांति तीन भव कल्याणकी सूचनहारी भव्य जीवनिकूं जिनवाणीसमान धर्मके मार्गविषैं प्रवर्तावती भई, जे और देशनिके हैं तेऊ या पुरीविषैं आय विद्याका अभ्यासकरि धर्ममें प्रवर्तते भए ॥ २६ ॥ जहां राजा अकंपन नाथवंशीनिका नाथ, जाके नामहीकरि शत्रु कंपायमान होंहि ऐसा प्रतापी सो राज करता भया जैसैं विनयवान पुरुष विद्याका पति होय तैसैं अकंपन काशीका पति होता भया। मनवांछित अर्थकी भरी संपत्तिरूप वह पुरी ताहि सुखसूं पालता भया ॥ २७ ॥ इह राजा पूर्वोपार्जित पुण्यकरि युक्त ताकै लक्ष्मीके बढायवेकी अर राखिवेकी नीति न होती भई, केवल धर्मके मार्ग लगायवेकी ही रीति होती भई ॥२८॥ इह राजा काहूकी संपदाका हर्त्ता नांही केवल दाता ही है, अर काहूका हतिबेवारा नांही, केवल रक्षक ही है सो धर्मविजयी सर्व प्रजाकूं पालता भया ॥ २९ ॥ अर याकी महिमा कहालग कहैं परमात्मपदविषैं पूज्य भगवान त्रैलोक्यनाथ रिषभदेव तिनिकी तुल्य भरत चक्रेश्वर याकूं मानै, इह गृहाश्रमविषैं, तोऊ याहि पृथ्वीका नाथ

सब प्रजाकू पा- ... इह गृहाश्रमविषें, तोऊ याहि पृथ्वीका नाथ
स्यनाथ रिषभदेव तिनिकी तुल्य भरत चक्रेश्वर याकूं मानै, इह

चक्राधिप पिता तुल्य गिनै ऐसी याकी कुलवृद्धता है ॥ ३० ॥ ताके पटरानी सुप्रभा जैसैं चंद्रके प्रभा तैसैं काशीश्वरके सुप्रभा होती भई जैसैं कलाकी आश्रय चंद्रमा प्रभासहित कुमुदानिकूं प्रफुलित करै तैसैं इह सकलाश्रय कहिए सकलका आश्रय राजा रानीसहित राज्य करता पृथ्वीमंडलविषैं आनंद प्रगट करता प्रकाशरूप भासता भया ॥ ३१ ॥ राजा अकंपनकै जैसी इह सुप्रभा जीतिके अर्थि होती भई, तैसी लक्ष्मी नांही जैसे फलसहित वेलि प्रिय लागै तैसैं पुत्रवती स्त्री पतिकूं प्रिय लागै ॥ ३२ ॥ वह नाथ वंशका अग्रणी ताके सुप्रभा रानीविषैं हजार पुत्र होते भए, अपनी दीप्तिकरि प्रकास कीया है दिशामंडलविषैं जिनि जैसैं सूर्यके पूर्व दिशाविषैं सहस्र किरण प्रगट होंय तैसैं राजाके रानीविषैं हजार पुत्र प्रगट होते भए ॥ ३३ ॥ हेमांगद, सुकेतु, श्रीकांत आदि सहस्रसुत भए सो राजा तिनिकरि वेष्टित ऐसा सोहै जैसा सामानिक देवनिकरि इंद्र सोहै ॥ ३४ ॥ बहुरि जैसैं हिमवान पर्वतविषैं पद्मद्रहतैं गंगा अर सिंधु ए दोय महानदी प्रगटीं तैसैं अकंपन अर सुप्रभाकैं सुलोचना अर लक्ष्मीवती ए दोय पुत्री सुलक्ष्मीकी नाईं महामनोहर कला अर गुणनिकरि अतिसुंदर भासती भई। जैसैं द्वितीयाके चंद्रमाकी कला दिन दिन बढै तैसैं सुलोचना दिन दिन बढती भई ॥ ३५-३६ ॥ सुमति नामा धाय निर्मल शुक्लपक्षकी निशाकी नाईं सुलोचनारूप चंद्ररेखाकी कला बढावती भई सो धाय सुलोचनाके माता समान अति वल्लभ ॥ ३७ ॥ राग कहिए आरक्तगुण सो सुलोचनाके चरण कमलका आश्रयकरि आप रागी होता भया, अपने उचित स्थानकका आश्रय कौनकौं रागके अर्थि न होय ? सवहीकूं होय ॥ १३८ ॥ अर ताके नखरूप चंद्रकी चंद्रिका निरंतर समस्त कुवलय कहिए पृथ्वीमंडल ताकूं चरणरूप कमलनिकी अनुकूल वृत्तिकरि प्रफुलित करती भई सो इह बडा अचिरज है। भावार्थ—चंद्रमाकी चंद्रकांति कुवलय कहिए कुमुद तिनिकूं प्रफुलित करै है सो कमलनिकूं मुद्रित करै है सदा कमलनिसूं विमुख है। अर याके नखरूपचंद्रकी चंद्रिका चरणकमलकी अनुकूलवृत्तिकरि कुवलय कहिए भूमंडलकूं प्रफुलित करै है इहां बडा अचिरज है कुव-

विषे ॥ ५९ ॥ नामकर्मरूप विधाताने वाके शरीर निर्मापणविषे जे परमाणू कारणरूप करीं ते परमाणु अनुपम हैं जिन परमाणुनिकूं देखतें औरनिके शरीरकी परमाणु तृणवत् भासे हैं। भावार्थ—ऐसा रूप औरका नाहिं ॥ ६० ॥ अर चंद्रमा ताके मुखकी तुल्य नाहीं, जो पूर्णमासीके चंद्रमाकी उपमा दीजै तो पूर्ण चंद्र अतिवृद्ध अर आगै क्षयरूप अर जामैं कलंक प्रगट अर राहुगोचर सो पूर्णचंद्र उपमा योग्य नाहीं अर बाल चंद्रकी उपमा दीजै तौ वह संपूर्ण प्रकाशरहित तातैं चंद्रमाकी उपमा मुखकूं नाहीं ? ॥६१॥ अर जो कमलकी उपमा दीजै तौ कमलविषैं याके मुखसमान शोभा नाहीं पहिली मुद्रित था तब तौ विकास थाही नाहीं, अर विकस्या तबहीसूं खिण खिण कुम्हलावै है तातैं कमलकी उपमा कहा दीजै, याका मुख सदा प्रफुल्लित अर सदा सुगंध। चंद्रमाविषै सोभा है सो सूर्यकरि हती जाय है अर कमलविषै सोभा है सो चंद्रकरि हती जाय है तातैं याका मुख अनुपम अर अद्भुत है। भावार्थ—चंद्र तौ निशिविषै शोभित है अर दिनविषै सूर्यकी कर जो किरण तिनितैं सोभारहित है अर कमलकी दिनविषैं शोभा है अर रात्रिविषैं चंद्रमाकी कर कहिए किरण तिनिकरि कमलकी शोभा हती जय है अर याका मुख सदा ही शोभित है बाल्यावस्थाहूविषै शोभित अर कुमार अवस्थाहूविषै शोभित अर विवाह भए पीछे जय-कुमारके करग्रहतैं अति शोभा होयगी तातैं याका मुख अनुपम है ॥१६२॥ चंद्रमाकी शोभा तौ रात्रिविषै है अर कमलकी शोभा दिनहीविषै है, चंद्रमा तौ दिन दिन छयी भावकूं लीए है अर कमल कुम्हलावनेके भावकूं लीए है अर याका मुख सदा पूर्ण सदा प्रफुल्लित कबहू कुम्हलावै नाहीं, निशिदिन प्रकासरूप विका-सरूप तातैं कौनकी उपमा दें। कमलविषै अर चंद्रमाविषै ऐसा कहा गुण जो याके मुखकी उपमा पावै ॥ ६४–६५ ॥ तीन जगतका जीतनहारा काम सो या कुमारीने जीत्या, भावार्थ—यह महाधर्मरूपिणी है, याकूं कामका दबाव नाहीं, जानै कामसारिखा जीत्या तौ ऐसा और कौन सुभट है जो याकरि जीत्या न जाय ? ॥ ६६ ॥ कुमारीहीनै काम जीत्या अर पीछे जयकुमार जीत्या ऐसे जोधा जीते तौ स्त्रीनिकी

कहा सृष्टि ? जिनिकूं इह न जीतै, शोभासहित सर्व स्त्री जीतीं ॥ ६७ ॥ मैं ऐसी मानू हूं—चंद्रमा याकी क्रांतिकरि हारथा तातैं कलंकी है अर चंद्रमाकै यही चिंता है जो मैं याके मुखकी समानता कैसैं पाऊँ सो याही चिंताकरि क्षयी रोगकूं धारै है। भावार्थ—जाकै चिंता रोग होय ताकै क्षयी रोग उपजै ॥ १६८ ॥ सुलोचनाने मुखकरि कुवलय कहिए कमोद अर कुवलय कहिए पृथ्वीमंडल तिनिसहित चंद्रमा जीत्या अर लक्ष्मीसहित कमल जीत्या ॥ १६९ ॥ मैं ऐसा मानू हूं—जो जलका कमल तौ जलका निवासकरि याके मुखकी शोभा पायवेकूं अद्यापि तप करै है, स्थलकमल सूर्यकी किरणकरि अद्यापि तप करै है जो याके मुखकमलकी शोभाकूं पाऊँ सो अनेक युग तप करते भए तथापि सुलोचनाके मुखकी शोभाकूं न पावते भए ॥ १७० ॥ सो वह कन्या द्वितीयाके चंद्रमाकी रेखाकी नाईं कलानिकरि बढती भई ज्यूं ज्यूं याका शरीर वृद्धिकूं प्राप्त भया त्यूं त्यूं चंद्रमाकी उज्ज्वलताकूं जीतैं ऐसे निर्मल गुण वृद्धिकूं प्राप्त भए ॥१७१॥ या भांति संपूर्ण सर्व अंगकी शोभाकूं धरै वह शुद्ध वंशकी उपजी तापरि जयकुमारके भयतैं काम हाथ न डारता भया। भावार्थ—यौवन अवस्था प्राप्त भई तथापि कामविकार न उपज्या, निरंतर धर्मध्यानका आराधन करै, नाना प्रकार मणिमई अनेक जिनप्रतिमा करावे अर तिनिकी पूजाके अर्थि मणि हेममई उपकरण करावै ॥७२–७३॥ अर अनेक जिनमंदिर बणावै, जिनप्रतिमाकी अभिषेकके अंतमैं महापूजा करै अर वारंवार अर्थयुक्त स्तवनकरि अरंहत देवकी स्तुति करै ॥७४॥ अर निरंतर पात्रदान अर करुणादान करै, महामुनिनिकी अतिस्तुति करै, धर्मका व्याख्यान सुनै, वारंवार चित्तविषैं धर्मकूं धारै ॥७५॥ देवगुरु शास्त्रकी जाकै अतिभक्ति अर नवपदार्थकी यथार्थ श्रद्धा करै, अथानंतर फागुनकी अष्टाह्निका आई सो भक्तिकरि जिनेश्वरकी यथाविधि अष्टाह्निकाकी पूजा कराय कीया है उपवास जानै, वह सुंदर शरीरकी धरणहारी पिताकूं आसिका देवे आई ॥ ७७ ॥ पिता सिंहासन बैठा हुता सो उठिकरि हाथ जोरि पुत्रीकी दई आसिका अपने सिरपरि धरी ॥ ७८ ॥ अर पुत्रीसूं कही—हे पुत्री ! तू उपवासकरि खेदखिन्न है सो

पारणाकी वेला है मंदिरविषैं जायकरि पारणाकरि इह आज्ञा देइ कन्याकूं सीख दई ॥ ७९ ॥ अर कन्याकूं पूर्ण यौवनविषैं निर्विकार देखि याके परिणायवेकेविषैं चिंतावान भया, मनमैं विचारी—यह बाई विवाह योग्य भई सो बराबरकी ठौर परिणावनी ॥ १८० ॥ शुभदिनविषैं मंत्री च्यारि तिनिकूं बुलाय कहता भया—अहो प्रधान पुरुष हो ! बाई विवाह योग्य भई सो कहां परिणावनी । मंत्रीनिके नाम—श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ, अर सुमति । ए च्यारू मंत्री मानूं बीजबुद्धि कोष्ठबुद्धि, पादानुसारिणी बुद्धि, संभिन्नश्रोतृबुद्धि इनि च्यारि भेदनि समानही हैं ॥ ८१ ॥ राजा कही—अहो मेरी पुत्री सुलोचनाकूं सवही भूपाल जाचैं हैं सो तुम विचारकरि कहौ-कौनकूं परिणावैं ? ॥ ८२ ॥ तब श्रुतका सागर श्रुतार्थनामा मंत्री कहता भया जो याका संबंध बडी जायगा करना । सो बडे वंशका पुत्र होय सो याका पति होय । याके विवाहविषैं वरका सर्वधन खर्च करैं, जन्मका अर राज्यका यही फल है तातैं नयविषैं प्रवीण बुद्धिमान पुरुष मनमैं विचारो । सब ही राजा अपने संबंधी हैं परंतु जो चक्रवर्तीके पुत्रसौं संबंध करैं तो अपना वंश इक्ष्वाकु वंशवत् पूज्य होय ॥ ८३-८५ ॥ कुल रूप वय विद्या वृत्त लक्ष्मी पुरुषार्थ इत्यादि जे वरविषैं गुण चाहिये ते सर्व चक्रवर्तीके ज्येष्ठपुत्र अर्ककीर्तिमैं हैं ॥ ८६ ॥ तातैं कछू विचार न करना, दशूं दिशाविषैं व्यापि रही है कीर्ति जाकी, अर जीत्या है सूर्यका प्रताप जानैं ऐसा अर्ककीर्ति ताहि इह कन्या देनी ॥ ८७ ॥ इह बात सुनिकरि दूजा मंत्री सिद्धार्थ कहता भया—तुम कही सो सब सत्य है, परंतु पूर्वले पुरुष, तिनि ऐसी कही है जो छोटे मनुष्य बडे मनुष्यनिसूं संबंध न करैं, संबंध अपने बराबरकेनिसूं करिए ॥ ८८ ॥ तातैं प्रसिद्ध राजपुत्र श्रेष्ठ गुणनिकरि मंडित प्रभंजन रथवर बलि वज्रायुध, अर मेघस्वर कहिए जयकुमार तथा भीमभुज इत्यादि अनेक राजपुत्र प्रवीण हैं, तिनिविषैं इच्छा होय जहां परिणाइए । चित्त प्रसन्न होय तहां संबंध करिए ? जे ज्योतिष शास्त्रके पाठी शिष्ट पुरुष हैं तिनिकूं पूछिकरि भले शकुन देखि बराबरकेनिविषैं कन्या देनी ॥ १८९-९१ ॥ इह सुनिकरि तीजा मंत्री सर्वार्थ—सर्व अर्थका वेत्ता सो कहता

भया—भूमिगोचरीनिसूं अपना संबंध आगें भी है, अर विद्याधरूंका संबंध अपूर्व लाभ है, प्रशंसायोग्य है, तातैं विचारिकरि विद्याधरनिमैं बडे घर देनी ॥ १९२—९३ ॥ यह बात सुनिकरि चौथा मंत्री सुमति युक्तिका वेत्ता कहता भया —इह बात कहनी योग्य नाहीं, इह बात सर्वसूं वैरका कारण है ॥ ९४ ॥ कहा भूमिगोचरीनिविषैं याका वर न हुता जो विद्याधरनिमैं दीन्ही, इह बात कछुइक चक्रवर्तीहूकूं असुहावणी लागै ॥ ९५ ॥ तातैं एक भला उपाय मेरे मनमैं आया है, जामें कोई विरोध नाहीं, सुनी है पूर्वपुराणनिविषैं स्वयंवरकी विधि श्रेष्ठ ॥ ९६ ॥ सो इह मार्ग अनादिकालका है, परंतु भोगभूमिमैं अठारह कोडाकोडी सागर लगाय भरतादि दश क्षेत्रनिविषैं न भया, महा विदेहक्षेत्रनिमैं सदा है, तहां शाश्वती कर्मभूमिही है। अर भरतादि दश क्षेत्रनिविषैं कर्मभूमि प्रगट होय तब ए मार्ग चालै, सो महाराजसूं इह मार्ग चलै तौ युगके अंतलग श्रीऋषभदेव अर भरतेश्वरकी नाईं महाराजका जस रहै ॥ १९७ ॥ तातैं स्वयंवर मंडपविषैं जाके कंठविषैं कन्या वरमाला घालै ताहि परिणाय देनी, या बातमैं कोऊ बेराजी नाहीं ॥ १९८ ॥ इह बात सुनि सबनि प्रमाण करी अर राजा राजी भए। जे सत्पुरुष न्यायमार्गके गमन करणहारे हैं तिनिके अदेखसका भाव नहीं, जो नीकी बात कहै ताकी प्रमाण करैं ॥ १९९ ॥ मंत्रीनिकी बात सुनि स्वयंवर निश्चय करि च्यारूं मंत्रीनिकूं सीख दे राजा कार्यविषैं तत्पर आप घरविषैं जायकरि सकल वृत्तांत रानी सुप्रभासूं अर बडा पुत्र हेमांगद तासूं कहिकरि और बंधुजन कुलक्रममैं बडे तिनिसूं मंत्र करि सब राजानिके निकट दूत भेजे तिनिहाथ पत्र पठाए ॥ २००—१ ॥ कैयकनिकूं तौ पत्रमैं पूर्ण समाचार लिखे अर कैयकनिकूं संक्षेपार्थ अर कैयकनिकूं पूर्ण समाचार लिखे अर भेट भेजी। दूतनिकूं दान सन्मानकरि संतोषि सब प्रयोजन कहि राजकुमारनिकूं लेवेकूं सर्व दिशि विदा किए ॥ २०२—३ ॥ इह वृत्तांत जानिकरि राजाका भाई चित्रांगद जो पहले स्वर्ग देव भया हुता सो अवधिनेत्रका धारक सौधर्मस्वर्गतैं आयकरि राजा अकंपनसूं मिल्या अर कही—हम सुलोचनाका स्वयंवर देखिबे आए हैं ॥२०४-५॥

ऐसा कहिकरि नगरके समीप महारमणीक योग्यस्थानविषैं उत्तरदिशाकी उर विवाहमंडप बहुखंडा महल रच्या ॥ ६-७ ॥ महलका मुख पूर्व कीए अर महलका नाम सर्वतोभद्र मंगलद्रव्यनिकरि भऱ्या। चित्रामरूप द्वार जाका अर कोटकरि मंडित महादेदीप्यमान मणि हेममई विधिवत् वह सुबुद्धि निरमापता भया ॥ ८ ॥ जाकी चौगिरद कोट अर च्यारि दरवाजे तिनिकरि संयुक्त अर रत्ननिके तोरण अर ध्वजानिकी पंक्तिकरि शोभित जाके शिखरके अग्रभाग सुवर्णके कलश अर महास्थूल नीलमणि तिनिकरि पृथ्वीपरि फरस बांधी अर नाना प्रकारके रत्न नेत्रनिकूं प्रिय तिनिके समूहकरि वह महल शोभायमान। अर भोगोपभोगरूप अपूर्व वस्तुनिकरि भऱ्या जा ठौर जैसे रत्न चाहिए तिनिही रत्ननिकरि निरमाप्या वह देव हर्षकरि स्वयंवर महागृह रचता भया, पुरुषनिके पुण्यके विपाकतैं मनवंछित अर्थ कौन न सधै? ॥ २०९-२१३ ॥ ताहि देखिकरि राजा ऐसा हर्षित भया जो अंगमैं न समाया, भले मित्रतैं कहा न होय? वह महल मानूं लक्ष्मीका लीलागृहही है ॥ १४ ॥ अथानंतर—प्रगट भया वसंत समय उन्मत्त भया है मन्मथ जाविषैं सो वसंत कामी जीवनिविषैं हर्ष अर भंवरनिविषैं मद विस्तारता भया प्रगटा ॥१५॥ मलयागिरिकी पवन मंदमंद वाजती भई सो पवन गजनि अपने अंगकरि रगडे जे चंदन तिनिकी सार सुगंधता लीए अर लवंग इलायची तिनिके संगकरि महासुंदर प्रशंसायोग्य सुहावती शीतल सो पवनके सपरसिवेकूं लता अर वृक्ष अपनी शाखानिकूं मानूं फैलावते भए ॥ १६-१७ ॥ अर वसंतऋतुविषैं सूर्य दक्षिणायनतैं उत्तरायण आवता भया मानूं दक्षिणदिशाकूं यमसंबंधी जानि भयकरि तजी। भावार्थ—पूर्वदिशाका दिग्पाल सोम पश्चिमका वरुण उत्तरका कुवेर अर दक्षिणदिशाका दिग्पाल यम है सो यमका भय कौन न करै? अर बसंतके समैं कोकिल निरंकुश सुंदर शब्द करते भए ॥ १८ ॥ अर रज कहिए मकरंद ताकरि युक्त जे पुष्प तिनिकूं मानूं शाखा न सपरसती भई अर रजके आस्वादी जे भ्रमर तिनिकूं चंपक अपनी चंचल पल्लवकरि मानूं दूरिहीतैं निवारते भए। भावार्थ—जैसैं रजस्वला

स्त्री सपरसिवेयोग्य नाहीं तैसें रजयुक्त वस्तु सपरसिवेयोग्य नाहीं ॥ १९ ॥ अर बसंतकी लक्ष्मीके वियोगकरि शोकसहित होय रह्या था अशोक वृक्ष सो वसंतके प्रभावकरि पुष्प अर पल्लवसंयुक्त भया अपना अशोक नाम सार्थक कीया ॥ २२० ॥ अर वसंत है सो सुगंध पुष्पनिकूं आम्रादि वृक्षनिकी स्पर्धाही करि धारती भई आम्रनिकी मंजरी आई अर वनविषैं मौलसिरी फूली ॥ २२१ ॥ दिग्गजनिके कुंभस्थल तिनिपरि भमर भ्रमते हुते सो मौलसरीनि परि आए, गुणाधिक्यका आश्रय कौन न करै ? यद्यपि भ्रमर मकरंदका पान करै हैं सो पुष्पनिकी हानि है तथापि या हानिही विषैं गुणनिकी वृद्धि होती भई ॥ २२ ॥ अर क्रीडाविषैं आसक्त अैसी जे स्त्री तिनि ठौर ठौर हिंडोले रचे तिनि हिंडोरानिके थंभ (खंभ) शब्द करै हैं सो मानूं गीतसहित स्त्री तिनिके हींदिबेकरि बाधाकूं प्राप्त भए पुकारही करै हैं ॥ २३ ॥ अर कुंदके पुष्प सुंदर तिनिहूविषैं भंवर तृप्त न भए सो मानूं धूरी लतानिका मकरंद ताके पानकरि अतिहर्षसूं मधुर शब्द करते भए ॥ २४ ॥ और रतिविषैं तौ कामका साधन सुंदररूप अर धन है अर वसंतविषैं इह समयही कामका साधन है सो या विषैं काम पृथ्वीविषैं विस्तरता भया ॥ २५ ॥ जो दूत ठौर ठौर गए हुते ते जायकरि भूमिगोचरी अर विद्याधर सकल राजनिकूं स्वयंवरका वृत्तांत कहते भए ॥ २६ ॥ सो सुनिकरि बडे राजानिके पुत्र नानाप्रकारके वादित्र तिनिकी ध्वनिकरि दिग्गजनिकूं उन्मत्त करते अपनी पहली स्त्री तिनिकूं मुद्रित करते प्रयाण करिबेकूं उद्यमी भए। विद्याधरनिके अधीश दसूंदिशाविषैं उद्योत करते अपने विस्तीर्ण विमान तिनिकरि आकाशकूं आच्छादित करते तत्काल सुलोचना नामा जो आकर्षण विद्या ताके खैंचे काशीपुरी आए, कामी जीवनिके खैंचिबेकूं सुंदर स्त्री टारि और कोऊ आकर्षण विद्या नांही ॥ २७-२९ ॥ प्रगट कीया है उच्छव जानैं अैसा राजा अकंपन सो राजकुमारनिकूं सन्मुख जायकरि नगरविषैं प्रवेश करावता भया, कैसें हैं वे कुमार ? सुलोचनाविषैं प्रीतियुक्त है चित्त जिनिका, बहुरि अर्ककीर्ति अपने छोटे भाईनिसहित उद्योत करता आया मानूं

किरणसहित सूर्य ही है सो राजा अकंपन अपने गेहादिविषैं ध्वजा खडी कराय नगर उछालि अति प्रीतिसूं सकल पुत्र परिवार सहित सन्मुख जायकरि चक्रीके पुत्रकूं नगरमैं ल्याया ॥ ३०-३२ ॥ बहुरि मेघेस्वर कहिए जयकुमार सो आए तिनिकूं राजा अकंपन नाथवंशका अग्रणी सन्मुख जाय अति आदरसूं ल्याया अपने भावके आदरकरि मानूं उनके होनहार कार्यकी सिद्धि प्रगट करी ॥ ३३ ॥ बहुरि सर्वही राजा पूर्व पश्चिम दक्षिण समुद्रपर्यंतके आए जैसैं नदीनिके प्रवाह समुद्रकी उर आवै, विस्तारी है अतिशोभा जिनि ॥३४ ॥ सो कैइकनिकूं तौ राजा बहुत दूरि तक साम्हां गया अर कैइकनिकै सन्मुख हेमांगदादि पुत्र भेजे ॥ ३५ ॥ तिनिका जैसा सन्मान है तैसा कीया वे राजा जो अपनी विभूति है ता सहित आए सो वह पुरी अपनी हालती ऊंची ध्वजा तिनिकरि मानूं उनकूं बुलावै ही है ॥ ३६ ॥ सुलोचना अपने पिताकूं मानूं चक्रवर्ती समान करती भई जैसैं चक्रवर्तिके निकट सकल भूमिगोचरी विद्याधर आवैं तैसैं राजा अकंपनके निकट सब आए ॥ ३७ ॥ तासमैं वाराणसी अयोध्याहूतैं अति सोहती भई, सब लोक इह कहते भए जो कन्यारत्न समान और रत्न नाहीं ॥ ३८ ॥ बहुरि राजा अकंपन जे अर्ककीर्ति आदि राजकुमार आए हुते तिनिकी पाहुण गतिकरि अति प्रीतिसौं पोषता भया अर सबनिकूं स्वयंवरशालामैं बैठावता भया ॥ ३९ ॥ पूर्वले उपार्जे धर्मके प्रसादतैं इह सब होय है इह विचारकरि जे विवेकी हैं तिनिकूं प्रथम धर्महीका सेवन करना, जिनेश्वरदेवकी पूजाकरि दीन अनाथ याचक तिनिकूं उनकी इच्छातैं अधिक धन देता भया तासमैं कोऊ अर्थी न रह्या। राजा या उच्छवविषैं सर्वत्यागकूं उद्यमी भया। सकल पृथ्वीका एक आश्रय होता भया सकल लोग याका धन भोगवते भए, लक्ष्मीकूं दानकरि सफल करी अर अक्षयकरी ॥ ४०–४२ ॥ या भांति दानसहित प्रभूकी पूजाकरि राजा विवाहकार्यकूं आरंभता भया, पूज्य पुरुषनिकी पूजाकरि सर्व प्रारंभ सिद्ध होय हैं ॥ २४३ ॥
विवाहके उच्छवकी प्रगट करणहारी भेरी बाजी प्रथम तौ लोकनिके चित्तविषैं हर्ष विस्तऱ्या पश्चात् कानन-

विषैं वादित्रनिकी धुनी सुनी ॥ ४४ ॥ ता समैं वह नगरी अपनी सुंदरता थकी देवपुरीकूं जीतै ऐसी सोहती भई पुष्पनिके समूहकरि शोभित है भूमि जाकी अर आकाशविषैं फरहरै हैं ध्वजा जाकी समुद्रकी ध्वनिकूं जीतैं ऐसे वादित्रनिके शब्द तिनिकरि दसूंदिशा पूरित भई, शुद्ध कीए राजमार्ग अर गली जाकी अर बंधे हैं ठौर ठौर तोरण अर नवीन सुफेदीके रसकरि उज्वल किए हैं मंदिर जाके ॥ ४५–४६ ॥ वाणारसी पुरी सुंदर स्त्री समान सोहती भई पद्मराग मणिनिकी ललाई अर इंद्रनील मणिनिकी श्यामता तेई ही समीचीन वस्त्र जाकै अर मालानिके समूह तेई हैं सिरके केश जाके अर महासुंदर लता तेई भए भौंह तिनिकरि मंडित है अर तिलक जातिके वृक्ष तेई हैं तिलकसहित ललाट जाके ॥ ४७ ॥ अर लंबायमान मणिनिके आभरण तेई हैं मणिकुंडल सहित मनोहर कर्ण जाके अर महारमणीक चित्राम तेई हैं सुंदरवर्ण कपोल जाके ॥ ४८ ॥ अर सुंदर स्त्रीके अधर आरक्त तौ होय ही हैं अर ताबूंल रसके संसर्गतैं द्विगुणित आरक्तता धरै हैं अर नगरीके तांबूल रसका संसर्ग सोई महा आरक्त अधर है अर मोतिनिके आभरण तिनिकी क्रांतिके समूह सोई है कंठाभरण सहित सुंदरकंठ जाका ॥ ४९ ॥ अर समीचीन चंदनका रस सोई है विस्तीर्ण हारसहित वक्षःस्थल जाका अर मंदरनिपरि महामनोहर कलश तेई हैं कुच जिनिके अर महामणिनिकी किरण तिनिकी प्रभा सोई है दैदीप्यमान भुजलता जाकी ॥ ५० ॥ अर हींदिवेके रेशमके रस्से तेई हैं कांचीदामसहित महासुंदर कटितटी जाकी अर फूलि रहै हैं आरक्त कमल भ्रमरके शब्दकरि शोभित तेई हैं मणिनिके नूपुर सहित चरण कमल जाके ॥२५१॥ कथनैंमें न आवै मनके विचारमैं न आवै ऐसी विभूतिकूं धरै राजा अकंपनिकी पुरी बाराणसी इंद्रपुरीकूं जीतै ऐसी है शोभा-जाकी सुंदरताथकी वह पुरी तामैं अधिक सोहती भई आभूषणमई कायाकूं धरती चिंतवनमैं न आवै ऐसे विभवकरि युक्त वह नगरी रमणीक नारी समान भासती भई ॥५२॥ नगरके उत्सवहीकरि राजगेहका उत्सव वरणया, जो समुद्र छेहडै (किनारे) ही अगाध है तौ मध्यकौं कहा कहनौं ।५३। ता नगरीविषैं चेतनपदार्थ अंतर

बाह्य उच्छवरूप भए ताकौ कहा अचिरज ? जा नगरीकी अचेतन भींति हैं तेऊ आभूषणनिकरि शोभित होती भईं ॥५४॥ पुष्पमाला आस्वादनादिक जेते भोगके कारण हैं ते भोक्तानिकरि वर्जित न होते भए अर भोक्ता भोगनिकरि वर्जित न होते भए। भावार्थ—भोग सामग्री तो भोगी पुरुषनिविना न रही अर भोगी पुरुष भोगसामग्री विना न रहे। ता नगरीविषैं मदन है सो सबके घटमें व्यापि गया अर लक्ष्मी उदय प्रगट भई ॥ ५५ ॥ देखहु पुण्यका माहात्म्य। यह पुण्य नामा पदार्थ या जन्मविषैं अर परभवविषैं हू सदा उच्छवही प्रगट करै है, जे पुण्याधिकारी हैं ते ऐसा नगरका उच्छव देखिकरि पुण्यके प्रभावविषैं अधिक अनुरागी होते भए ॥ २५६ ॥ इह सकल उच्छव धर्मका फल हैं ऐसा जानिकरि जे विवेकी जीव हैं ते धर्मविषैं प्रीति करहु, महामुनि हैं ते धर्मकी प्रशंसा करैं हैं धर्म अर अधर्मका फल लोकविषैं प्रगट है धर्मका फल मंगल, अधर्मका फल अमंगल ॥ २५७ ॥ अथानंतर—कन्याके गृहतैं कन्याकूं स्त्रीजन आगैं धरि स्नान कराइबेकूं ले चालीं कन्या मानूं दूजी लक्ष्मीही है अर महा लज्जाकरि मंडित किंचित् भयरूप, विवाहके विधिकी जाननहारी वे नारी, करी है तासमयकी सकल क्रिया जिनि अर ज्योतिष शास्त्रके पाठी बुलाए अर महा वादित्रनिकरि मंडित वे स्त्रीजन माता सुप्रभाकी आज्ञातैं विवाहके उच्छवका मंडप है तहां कन्याकूं ले आईं. सो मंडप सर्व मंगलचरि पूर्ण अर मोतिनकी झालरिकरि शोभित अर कंचनके च्यारि सुंदर हैं खंभ जाकै अर प्रचुर रत्ननिकी देदीप्यमान है क्रांति जहां, ऐसे मंडपविषैं सुवर्णमई पट्ट ताविषैं सुखसूं पूर्वदिशाकी उर बैठाई ॥ २५८-२६१ ॥ अर जिनिके मुखपरि धरी है लाल पल्लव ऐसे शुद्ध जलकरि पूर्ण सुवर्णमई कलश तिनिकरि विधिपूर्वक अभिषेक करि, पहरे हैं मंगलरूप आभूषण जानैं ऐसी सुलोचना ताहि नित्यमनोहरनामा चैत्यालय स्त्रीजन लेगईं, सर्व कल्याणके करणहारे भगवान अरहंतदेव तिनिकी भक्तिसहित पूजाकरि आसिका कन्याके शिरपरि धरी, चैत्यालय-विषैं अति उच्छव भया ॥२६२–६४॥ अर राजाकी आज्ञातैं भूमिगोचरी अर विद्याधरनिके नायक शृंगारकी

विधिके जाननहारे नानाप्रकारके शृंगार करि आभरण पहरि स्वयंवरशालाविषैं अपने अपने योग्य सिंहासनविषैं आय बैठे । प्रसिद्ध जो लक्ष्मी ताकरि शोभित, ढरै हैं चंवर जिनिपरि अर क्रांतिकरि देवनि समान, कुमारीने पूर्वै काम जीत्या हुता सो मानूं विक्रियाकरि अनेक रूप धरि कन्याकूं जीतिवे आया है देखनहारे लोकनिकूं ऐसा संदेह उपजता भया ॥ २६५–६७ ॥ अर इह तौ काहू एकको वरैगी इह सब जानैं हैं परंतु मनुष्यनिके आशा बलवान् सो सबही ताहि बरबेकी इच्छाकरि तिष्ठे ॥६८॥ तहां कामहू समस्त देशनिकूं जीति आया, कैसा है काम ? वसंतरूप जो सेवक ताकरि प्राप्त कीये हैं जे सर्व जातिके पहुप तेही हैं आयुध जाके सो काम तहां कहा करता आया वृक्षनिहूकूं स्त्रीनिके कुरलानिकरि अर घूंघरानिके शब्दकरि जो रमणीक वामपाद ताके सपरस करि उन्मत्त करता संता वाम हस्तकरि पुहुपरूप धनुषकूं धारै अर दाहिने हाथकरि आमके फूलनिकूं अतिशयपनै करि भ्रमावतासंता अनुकूल जो दक्षिण पवन ताहि कोमल अर भमरनिके शब्दकरि वाचाल करता संता । कैसी है पवन ? स्त्रीनिके कठिन उत्तुंग कुच तिनिके अग्रभागका उलंघन ताकरि उपज्या खेद जिनकूं तिनिके खेद हरिवेकी है सामर्थ्य जाकी, बहुरि कैसी है पवन ? दूरि होय है पसेव जातैं, बहुरि कैसी है पवन ? मदोन्मत्त जे मलयागिरिके हस्ती तिनिके कपोलनिके खुजालिवेकरि रगडे गए जे चंदन तिनिका जो द्रव ताकी सुगंधताकरि अतिसुंदर है । बहुरि कैसी है पवन ? नदिनिके जे कवल तिनिके आस्वादकरि हर्षित भए जे हंसादि पंखी तिनिकी क्रीडा करि उछले जे जलके कण सोही है स्थूल मुक्ताफलनिका आभूषण जाकै, बहुरि कैसी है पवन ? विरहीनिकूं तीव्र कामरूप अगनिकी उपजावनहारी है ॥ ६९–७५ ॥ यह सप्त श्लोकनिका कुलक कह्या । अथानंतर नगरतैं राजा अकंपन महाप्रवीण इंद्रहूतै अधिक है शोभा जाकी, प्रगट भई है चक्री समान विभूति जाकै, राज्यके चिन्हकरि संयुक्त अपनी लक्ष्मी करि व्याप्त करी हैं सर्व दिशा जानै, सो सुप्रभा रानीसहित अपने स्थानकतैं निकटवर्ती लोकनिकरि वेष्टित स्वयंवरशालाविषैं आया ॥ ७६–७७ ॥ अर महेंद्रदत्त नामा

खोजा चित्रांगद देवका दीया देवदत्त नाम आश्चर्यकारी रथ ताहि सजिकरि कन्याकूं चढाय स्वयंवर शालाविषैं ले आया ॥२७८॥ अर कन्याका वडा भाई हेमांगद, जीत्या है रूपकरि काम जानै, सो अपने समस्त भाईनिकरि मंडित समस्त सेनाकूं सजिकरि रथकी लार आवता भया ॥ ७९ ॥ वादित्रनिके शब्द तिनिकरि पूरे गये हैं दशूं दिशानिके कर्ण अर छत्रनिकी छाया करि आच्छादित भया है सूर्य जहां ॥८०॥ सो सुलोचना समस्त राजानिके लोचनिकरि अर्थित रथतैं उतरिकरि सर्वतोभद्रनामा महलपरि चढी जैसैं चक्रवर्तीके दिग्विजयकरि आगमके दिन लक्ष्मी अयोध्याविषै आवै तैसै कन्या महलविषैं आई ॥८१॥ सो महलपरि चढी अर खोजाके वचनतैं अपने नीलकमलके पत्रसमान नेत्र तिनिकरि सकल राजकुमारनिकूं निरखती भई ॥ ८२ ॥ जैसैं मेहकी वृष्टिकरि पपीहा हर्षकूं प्राप्त होहि तैसैं ताकी दृष्टिकरि सकल हर्षकूं प्राप्त भये । मनवंछित अर्थके समागमविषैं कौनकूं आल्हाद न होय ॥८३॥ अपने सौभाग्यके प्रभावतैं सबनिकूं अवलोकनिकरि तृप्त करती भई, जैसे जीते हैं शत्रु जिनि ऐसे पुरुष तिनिका सूरवीरपना प्रशंसायोग्य है तैसैं स्त्रीनिका सौभाग्य प्रशंसा योग्य है ॥ ८४ ॥ वहुरि खोजाके कहेतैं वह कन्या अपनी लीलामात्र अवलोकनिकरि तिनिसवनिका हृदय हरिकरि मंदिरतैं उतरी ॥२८५॥ जाकी दृष्टि यापरि आयपरी ताकी दृष्टि कीली गई वहुरि और ठौर न गई अर जव यह मंदिरतैं उतरी तव उनकी दृष्टि न परी तव खेदखिन्न भए ॥ ८६ ॥ सुलोचना मंदिरतैं उतरिकरि रथपरि अरूढ भई सो रथ किंकणी जे क्षुद्र घंटिका तिनिके झंकार शब्द करि महामनोहर है अर जुए हैं महा अमोलिक तुरंग जाके, जिनि घोडेनिके काननिपरि सुवर्णके चमर सोहै हैं ॥ ८७ ॥ रथकी ध्वजा ऊंची जाय अर नीची जाय है सो मानूं कुलहीन रूपहीननिकूं तिरस्कार करै है अर रूपवंत कुलवंतनिकूं बुलावै है वहुरि ऐसे रथपरि चढिकरि वह हृदयप्रिया कामकी विद्यासमान मोतिनिके आभूषण तिनिकी प्रभाके मध्य शरदकी विजुरी समान चिमकती, ढरै हैं चंद्रमासूं स्पर्धा करते हंसकी पांखसमान उज्ज्वल चमर, जापरि मति काहूकी नजरि लगि जाय

सो लोगनिकी दृष्टिके दोषकूं वे चमर दूर ही करै हैं ॥ २९० ॥ पूर्व तिरस्कार कीयाहू काम यानैं स्वीकार कीया सो बुद्धिमान प्रयोजनके वशकरि तिरस्कार कीएहू का आदर करै हैं ॥ २९१ ॥ अनंत कहिए काम सो पिशाचकी नाईं याके अंगमैं प्रवेश करता संता भौंह नेत्र अर मुख तिनिविषैं विकार उपजाता भया ॥ ९२ ॥ मानूं काम अपने मनमैं बिचारै है जो मैं अंगसहित होता तो याके अंगमैं कैसैं प्रवेशकरि सकता, अंगरहित हूं तातैं प्रवेश करिसकूं हूं इह विचारि करि मदन अपना अनंगपना ही भला जानता भया ॥ ९३ ॥ स्त्रीकूं लक्ष्मीकी उपमा अथवा रतिकी उपमा, सो लक्ष्मी तौ चंचल अर सर्वभोग्य वह बडा दोष अर रति है सो अंगरहित काम ताकी प्रिया अर यह कन्या, जे राजा अपने रूपकरि मदनकूं जीतैं तिनिकूं निराकरणकरि जयं कहिए जयकुमार अथवा जयं कहिए जीति ताहि प्राप्त होयगी ॥ ९४ ॥ समुद्रपर्यंत पृथ्वी ताका करग्रह कहिए हांसिल लेवेकरि लक्ष्मीवान होय भी अर न भी होय पर या सुलोचनाका जो करग्रहण करैगा ताके हाथविषैं लक्ष्मी तिष्ठै है ॥ ९५ ॥ पुरुषनिविषै तौ लावण्यता समुद्रविषै है, अर स्त्रीनिविषै लावण्यता या सुलोचनाविषै है। लावण्यता नाम क्षारताका है, अर लावण्यता नाम सुंदरताकाहू है। सो समुद्रकी पक्ष लावण्यता नाम क्षारताका लेना अर याकी पक्ष लावण्यता नाम सुंदरताका जानना। सो समुद्रके समीप तौ सर्व नदी आय प्राप्त होय हैं अर याके समीप सकल राजा आय प्राप्त भए हैं ॥ २९६ ॥ समस्तके नेत्रनि करि पीया तौऊ याका लावण्य अत्यंत बढता भया अर समुद्र लक्ष्मीने तज्या सो कैसैं लावण्यता धारै? केवल क्षारताही धारै है ॥ ९७ ॥ अर समुद्र रत्नाकरपनेका गर्व वृथा धारै है। वे रत्न तौ पाषाण हैं। यह कन्यारूप रत्न, जिनिके उपज्या ऐसे राजा अकंपन अर रानी सुप्रभा ते सांचे रत्नाकर जानहू ॥ २९८ ॥ या भांति सकल लोक करै हैं स्तुति जाकी ऐसी सुलोचना भाग्य अर सौभाग्य अर रूपादिककी भरी लक्ष्मीकी नाईं स्वयंवर मंडपमैं आई ॥ ९९ ॥ सो इह राजकुमारी कौनकी प्रिया होयगी ऐसा विकल्प सब राजानिके होता भया, सबनिके प्रीतिहू उपजी

अर शोकहू उपज्या, सबनिका चित्त द्विविधामैं आवता भया ॥ ३०० ॥ महेंद्रदत्तनामा खोजा, रत्नमाल है जाके नखैं सो सारथी होयकरि रथकूं विद्याधरनिकी उर प्रेरता भया ॥ ३०१ ॥ नमिका पुत्र सुनमि अर विनमिका पुत्र सुविनमि तिनिकूं आदि दक्षिण उत्तर श्रेणीके सकल विद्याधर महाविद्या अर पराक्रमके धारक तिनिके प्रत्येक प्रत्येक नाम अर उनके गुण वर्णन करि खोजा सुलोचनासूं कहता भया—हे राजकन्या ! ए सब विद्याधरनिके राजकुमार तिष्ठे हैं तिनिमैं एककूं वरि, अपनी इच्छा पूर्ण करि ॥ २–३ ॥ ए खोजाके वचन सुनिकरि सबनिकूं उलंघि आगैं चाली, जीवनिकी रुचि नाना प्रकार है ॥ ४ ॥ विद्याधरनि विचारी हुती—सबनिकूं निरखिकरि काहूकूं तौ वरैगी इह विचारी तब तौ जैसैं सूर्यके उदयविषैं कमल प्रफुल्लित होय तैसैं इनिके मुख प्रफुल्लित भए हुते अर रथ आघा (आगैं) चाल्या तब सूर्यके अस्तविषैं कमल कुम्हलावै तैसैं कुम्हलाय गये सो यह संसारकी अवस्था ऐसीही है, विषयकी अभिलाषा दुखदायीही है तातैं विवेकीनिकूं त्याज्य है ॥ ५-६ ॥ विद्याधरनिकूं उलंघि रथ भूमिगोचरीनिकी तरफ आया तब खोजा सब राजकुमारनिके नाम कहता भया ॥७॥ अर्ककीर्तिकूं आदि दे सब कुमारनिके नाम गुण देश वर्णन कीए सो सबनिकूं उलंघिकरि वह सुलोचना अजेया कहिए काहूपै न जीती जाय सो जयकुमारकी ओर गई जैसैं वसंतऋतुविषैं भ्रमरी समस्त वृक्षनिकूं तजिकरि आम्रकी ओर आवै ॥८॥ खोजा कन्याके चित्तकी वृत्तिका वेत्ता रथके घोडेनिकी राशि थांभिकरि जयकुमारके गुणवर्णनविषैं वचनकूं विस्तारता भया ॥ ३०९ ॥ हे राजकन्ये ! यह सोमप्रभका पुत्र सब वातनिसमर्थ महालक्ष्मीवान कुलका दीपक है जैसैं राजा मंत्रशक्ति, उत्साहशक्ति अर प्रभुत्वशक्ति तिनिकरि मंडित सोहै तैसैं छोटे भाईनिकरि मंडित सोहै है ॥१०॥ याके रूपका कहा वर्णन करैं ? मन्मथको उलंघै ऐसा मनोहर है, हाथके कंकणके देखिबेविषैं दर्पणका कहा प्रयोजन ? तुम अपने नेत्रनिकरि देखि लेहु अर सूरवीर ऐसा है जो चक्रीकी दिग्विजयविषैं उत्तर म्लेच्छखंडके मेघकुमारदेव तिनिकूं जीतिकरि मेघके शब्दकूं जीतै ऐसा शब्द करता भया

॥ ३११-१२ ॥ तव नवनिधिका नाथ जो चक्रवर्ती सो हर्षित होय अपनी भुजानितैं याका मेघस्वर नाम धऱ्या ॥ १३ ॥ यह आदरिवेयोग्य है। प्रथम तौ सम्यक्त्वादि आत्मिकगुण तिनिकरि युक्त है बहुरि बुद्धि उत्साह पराक्रम इनिकरि मंडित है तातैं इह सबतैं श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥ बडा अचिरज है जो याके गुण जगत्रयकूं अनुरागी करि अब तेरा चित्त अनुरागी करिवेके अर्थि उद्यमी भए हैं, ॥ १५ ॥ याके गुण तौ अपार हैं सो कहांलग कहिए अर औगुण तौ एकही है जो याके च्यारि स्त्री हैं—लक्ष्मी, कीर्ति, वीरलक्ष्मी अर सरस्वती ॥ १६ ॥ सो या बातका कछू विचार नाहीं, कीर्ति तौ सदा देशांतर भ्रमै है, लक्ष्मी अर सरस्वती अति वृद्धताकूं प्राप्त भई हैं, अर वीरलक्ष्मी कहिए सुभटता सोऊ अब सबनिकूं जीतिकरि शांतताकूं प्राप्त भई है। तातैं याकैं तोहीसूं अधिक प्रीति होयगी, तू नव यौवन वयकरि शोभित, महारूपवती महाशीलवती अनेक गुणनिकी धारक है, तातैं याकी प्रीतिरूप लता अवलोकनरूप पुष्पकरि शोभित तोविषैं अनुरागरूप फलकौं फलैगी अर इह ऐसा सावंत है जो अकेलेने मेघकुमार जीते, यासूं जीतिवेसक और नाहीं अर अब तेरे निकट धैर्यरहित हुवा देखिए है तातैं कामकूं अपना सहायी किया है, अब तक यानैं काहूका सहाय न चाह्या अब तेरे जीतिवे अर्थि कामकूं सहाई कीया है अर तुम दोही बलवान परस्पर जीतिवेकी है इच्छा जिनिकै सो काम षड्गुणविषैं निपुण, तुम दोऊनिके मध्य द्वैधीभावकूं प्राप्त भया है, कबहूं वाका अवलंबन करै है, कबहूं तेरा अवलंबन करै है याकी कीर्तिरूप चांदिनी तौ कुवलय कहिए पृथ्वीमंडल ताकी आह्लाद करणहारी है, अर याकी प्रभा पद्माह्लादी कहिए कमलकी आह्लाद करणहारी है, तातैं यानैं सूर्य अर चंद्रमा दोऊही जीते हैं। भावार्थ—चंद्रमाकी चांदिनी तौ कुवलय कहिए कमोदिनी तिनिकूं प्रफुल्लित करणहारी है, अर सूर्यकी प्रभा पद्म कहिए कमल तिनिकी आह्लाद करणहारी है अर याकी कीर्ति कुवलय आह्लादी अर प्रभा पद्म आह्लादी, तातैं यानैं दोऊही जीते, दोऊनिके गुण यामैं हैं ॥ ३१७–२१ ॥ सो अब काम तिहारे भीतर पैसिकरि तुम दोऊनिके जीतिवेकूं उद्यमी भया है,

वैरीका विश्वास कीजै तौऊ वह अपना नाहीं, वैरी है सो वैरीही है ॥२२॥ यद्यपि इह काम तुम दोऊनिका ही शत्रु है, दोऊनिहीकूं दबावै है तथापि या जयकुमारकूं अतिकठोर भया दबावै है, तोहि स्त्री जानि अधिक कोप न करै है, सुभटहीविषैं सुभटका प्रकोप विशेष होय है। भावार्थ—तोहि देखिकर जयकुमारकूं मदनकी बाधा अधिक भई है ॥ २३ ॥ इह जयकुमार महाशोभायमान, जगतविषैं विख्यात है जीति जाकी, सो तैं आगमनमात्रही जीत्या तातैं न्याय विचारिए तौ तेरीही जीति है, जयकूं तैं जीत्या, याहि जीतिवे समर्थ और कोऊ नाहीं ॥ २४ ॥ इह जयकुमार तैं नेत्ररूप वाणनिकरि जीत्या सो अब याके कंठविषैं वरमालारूप बंधन डारिकरि याहि अपने हाथ करि, जयलक्ष्मी तेरेही होहु ॥ २५ ॥ या भांति ताके वचन सुनिकरि सुलोचना किंचिन्मात्र लज्जातैं रहित होयकरि चपल जो लीलाकी अवलोकनि ताकरि जयकुमारकूं निरख्या, खोजाके वचन सुनिकरि कुरुवंशीनिके अधिपतिविषैं अति अनुराग भई। खोजा नृपतिके षट् गुण ताका वेत्ता है ॥ २६ ॥ षड् गुणका वर्णन—संधि कहिए मिलाप, विग्रह कहिए संग्राम, यांन कहिए प्रयाण, आसन कहिए मुकाम, संस्थान कहिए वचनकी दृढता अर द्वैधीभाव कहिए सबलका आश्रय लेना अर निर्बलकूं आश्रय राखना अथवा आपतैं दोय प्रबल तिनिमैं कबहूं वाका आश्रय अर कबहूं वाका आश्रय। ए राजानिके षड्गुण हैं ॥ सुलोचना जन्मांतरके स्नेहतैं नेत्रनिकरि निरख्या सुंदराकार, अर कुंदपुष्पके समान उज्ज्वल कुमारके गुण याके श्रवणगोचर भए, काननिकूं अति हितकारी, तिनि गुणनि याहि रथतैं तत्काल उतारी। कन्या खोजाके हाथतैं रत्नमाला लेकरि जयकुमारके कंठविषैं डारी, कन्या प्रेमकरि पूर्ण है, अर माला अति सुंदर है, सो माला जयकुमारके वक्षस्थलविषैं अतिसोहती भई मानूं इह माला दूजी लक्ष्मी ही है ॥ २७–२९ ॥ तब तत्काल बादित्रनिकी महाध्वनि होती भई मानूं वे वादित्र या कन्याका उच्छव दिशारूप कन्या तिनिकूं सुनावै हैं ॥ ३० ॥ जेते भूमिगोचरी अर विद्याधर बैठे हुते तिनि सबनिके मुखकमलकी सोभा जयकुमारके मुख-

कमलमें आय प्राप्त भई, तासमयकी जयकुमारके मुखकी शोभा कछू वर्णनमें न आवै ॥ ३१ ॥ और सवनिके मुखकमलकी शोभा जाती रही, जैसे जलरहित सरोवरके कमल कुम्हलाय जांय, तैसें सवनिके मुखकमल, कुम्हलाय गये, विद्याधर भूमिगोचरी सकल राजकुमार सूके सरोवर समान होय गए ॥३२॥ मनवांछित फलकी सिद्धिकरि वढ्या है हर्ष जाके ऐसा नाथवंशका नाथ राजा अकंपन अपनी पुत्रीसहित शीघ्र ही जयकुमारकूं आगे धारि नगरविषैं प्रवेश करावता भया। जैसा कल्पवेलि करि वेढ्या कल्पवृक्ष सोहै तैसा हथिनापुरका राजा काशीपतिकी पुत्रीकरि मंडित सोहता भया ॥ ३३ ॥ इह रत्नमाला स्वयंवरकी विधिविषैं कर्मभूमिकी आदि निर्मल है गुण कहिए डोरा जाकै सो जयकुमारके वक्षःस्थलविषैं मंदार जातिके कल्पवृक्षनिकी मालासमान सोहती भई जातैं भाग्यका सौभाग्य प्रगट देखिवेमैं आवता भया अर सकल राजकुमार भूमिगोचरी अर विद्याधर तिनिके मुखकमलकी सोभा सोई भई वारांगना सो हरी गई, कल्पांतपर्यंत जयकुमारका विस्तीर्ण निर्मल जस जगतविषैं प्रगट भया ॥३४॥ इह जयकुमार अचिंत्य है क्रांति जाकी, सो चांद सूर्यका जीतनहारा सोहता भया, देदीप्यमान अपनी प्रभा, ताके प्रकाशकरि बढाई है पद्मा कहिए लक्ष्मी जानै, अर सूर्यकी पक्ष—विकासरूप ही कीए हैं पद्म कहिए कमल जानै, अर सूर्य उदय होय है तब पर कहिए चंद्र अर नक्षत्रादिक तिनिके प्रभावकूं दूरिकरि उदय होय है अर इह जयकुमाररूप सूर्य, पर कहिए शत्रु तिनिका प्रभाव जो समर्थता ताहि दूरि करि उदय भया बहुरि बंधुजन अर प्रजाके लोक तेई भए कमोद तिनिका प्रफुलित करणहारा जयकुमाररूप चंद्र सो कीर्तिरूप चांदनीकरि सोहता भया। भावार्थ—सूर्य तौ कमलहीकूं प्रफुलित करै अर तीव्रभावकूं धरै अर चंद्रमा कमोदहीकूं प्रफुल्लित करै अर सीतल कांतिकूं धरै उन दोउनिमैं एक एक अंग है अर यामैं बहुगुण, पद्महूकूं प्रफुल्लित करै, अर तीव्रप्रभाकूं धरै, कमोदहूकूं प्रफुल्लित करै, निशिदिन प्रताप अर प्रकाशकूं धरै, अपने प्रताप करि शत्रुनिका तेज हरै, अर अपने प्रकाशकरि बंधुजनकूं प्रफुल्लित करै, नेत्रनिकूं

आल्हादकारी अर महातेजोनिधि तातैं चंद्र सूर्य दोउनिका जीतनहारा होता भया, या समान वे दोऊ नांहीं ॥ ३५ ॥ नाथवंशरूप आकाश ताका चंद्र जो राजा अकंपन ताकी प्यारी पुत्री जो सुलोचना ताहि इह जयकुमार सौभाग्य लक्ष्मीकूं प्राप्त करता भया अर वीरलक्ष्मी जो सुभटता ताहि देदीप्यमान तेजकूं प्राप्त करता भया अर कीर्ति है ताहि अपना प्रताप विस्तारिवेकूं देशदेशविषैं पठावता भया ॥ ३६ ॥ उपज्या है अति उत्सव जिनिके ऐसे नगरके लोक सो परस्पर जयकुमारके जस वर्णन करते भए। लोक परस्पर बतरावै हैं–इह तौ पुण्यस्वरूप महा अनूपम महिमाका धारक, अर इह सौभाग्य लक्ष्मी महापुण्यवती या लोकविषैं धन्य है, राजा सोमप्रभ अर धन्य है लक्ष्मीवती पुत्रवती महापुण्यवती, माता जाके ऐसा पुत्र भया अर धन्य है राजा अकंपन अर रानी सुप्रभा जाके ऐसी पुत्री भई, जिनिकैं ऐसे पुत्र पुत्री होंहि तेई माता पिता प्रशंसायोग्य हैं। इह कुमार सकल पूज्य जगतविषैं एक मंगल दर्पण लक्ष्मीवाननिका चूडामणि, याकी कीर्ति कहां लग कहैं, इह सर्वत्र जीतिका प्राप्त होणहारा महा आनंदकारी है। याभांति लोक कुमारका जस गावते भए ॥ ३७ ॥ इह जयकुमार, विस्तीर्ण कीर्तिकरि वर्धमान, जयवंत होहु, इह अद्भुत चंद्रमा, पृथ्वीमंडलरूप कमोद, तिनिको सदा प्रफुल्लित करता संता, निरंतर विस्तरी है क्रांति जाकी, महा धैर्यवान्, सदा प्रसन्नवदन अर अपने सूरवीरपनके गुणकरि सूर्यकूं उलंघता सर्व दिशाविषैं उद्योत करता है। भावार्थ–सूर्य चंद्रमाके प्रकाशकूं उलंघै है परंतु चंद्रमा सूर्यके प्रकाशकूं उलंघता नाहीं अर इह सोमप्रभका सुत अद्भुत चंद्रमा अर अर्कके उद्योतकूं उलंघै है ॥ ३८ ॥ सर्वकल्याणका भाजन जिनेश्वर देव ताके मतके सेवनहारे पुण्याधिकारी या भांति महालक्ष्मीकूं प्राप्त होय हैं तातैं पंडितजन हो! निष्कपट प्रीतिकरि श्रीजिनेश्वर देवके चरण कमलयुगल तिनिकूं श्रद्धावान होय सेवहु ते चरणकमल महाकृपावान हैं ॥ ३३९ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुलोचनास्वयंवर मालारोपणवर्णन नाम तेतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ४३ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुलोचनास्वयंवर माल्यारोपणवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्व पूर्ण भया ॥ ४३ ॥

अथ चवालीसवां पर्व ।

अथानंतर—दुर्मर्षण नामा एक दुष्ट मनुष्य अर्ककीर्तिका सेवक सो जयकुमारके कंठमैं सुलोचनानैं वरमाला डारी सो सहि न सक्या वह पापी अर्ककीर्तिके साथी सर्व राजा तिनिकै क्रोधाग्नि प्रज्वलित करिबेकूं ऐसे वचन कहता भया ॥१॥ जो यह अकंपन निश्चयकरि दुष्ट है वृथा राज ऐश्वर्यके मदकरि उद्धत अपनी संपदाकी प्रशंसाके निमित्त तुमकूं निरर्थक अपमानके अर्थि बुलाए ॥ २ ॥ यानै तौ अपने घरमैं पहलीही मंत्र करि राख्या था अर पुत्रीकूं समझाय राखी थी जो तू माला जयकुमारके कंठमैं डारियो सो पुत्रीने पिताके कहे प्रमाण जयकुमारके कंठमैं माला डारी अर तिहारा सबनिका अपमान करिबेकी हुती इच्छा जाकै सो ऐसा अपमान किया जो युगके अंतपर्यंत निश्चल रहैगा ॥ ३ ॥ या भांति अर्ककीर्तिकी लारके सकल राजा तिनिकूं कहता लज्जावान जो चक्रीका पुत्र अर्ककीर्ति ताकै समीप आयकरि कहता भया, हे कुमार ! छह खंड पृथ्वीविषैं जे रत्न तिनिके स्वामी तुम अर तिहारा पिता एकही होय है और कोऊ नाहीं ॥ ४ ॥ सो रत्ननिविषैं महारत्न राजानिकी सुंदरकन्या तिनिहूमैं ऐसी कन्या जा समान भरतक्षेत्रमैं नहीं सो तुमैं अपने घर बुलाय अपमान कीया । देखो या दुर्बुद्धिकी दुष्टता ॥ ५ ॥ जयकुमार कहा ? ऐसे तिहारै केई चाकर ताहि पुत्री देता भया सो मृत्यु याकै निकट आई है तातैं मैं तिहारै निकट आया हूं याकी दुष्टता मैं सहि न सक्या ॥ ६ ॥ छोटासा मनुष्यहू अल्पमात्र अपना अपयश सहि न सकै सो तुम सारिखे तेजस्वी ऐसा बडा अपमान कैसैं सहैं जो तुम बैठे औरके कंठमैं वरमाला डारै इह कन्याकी चूक नाहीं अकंपनहीकी चूक है ॥ ७ ॥ तातैं मोहि आज्ञा देउ मैं अबही याहि यमपुरमैं पहुंचाऊं अर मालासहित कन्या तिहारे ढिंग ले आऊं ॥८॥ या भांति वह दुष्ट दुर्मर्षण खोटी वाणी बोलता संता अपना स्वामी अर्ककीर्ति ताहि अपने वचनकरि क्रोधरूप करता भया "पृथ्वीविषैं सज्जन अर दुर्जन दोय ही जातिके पुरुष सो भले कार्यकी प्रवृत्तिविषैं तौ सज्जन समर्थ अर बुरे कार्यकी प्रवृत्तिविषैं दुर्जन

समर्थ इनि दोऊनिविषैं भली बुरी शक्ति है" ॥ ९ ॥ ताके वचनरूप पवनकरि वढी है क्रोधरूप अग्नि जाकै सो अर्ककीर्तिके लोचन अंगारसमान अरुण होय गए जैसा क्रोधायमान अग्निकुमार देव होय तैसा कुमार होय गया आंखनिकी पुतली क्रोधके योगतैं पलटती भई । अर्ककीर्ति अग्निके फुलिंगा सारिखे तेज वचन कहता भया अपनी वचनरूप अग्निकरि समस्त शत्रुनिके जरायवेकी है इच्छा मानूं जाकै ॥ १०–११ ॥ अर्ककीर्ति कहै है–मेरा निरादर करि वा दुरात्मानैं अपनी कन्या औरकूं दई सो वा मूर्खनैं प्रथमही आपकै ताईं पानी (तिलांजलि) दीया ॥ १२ ॥ जा समैं सुलोचनाका रथ मोहि उलंघि आघा (आगे) गया ताही समै मेरे क्रोधरूप अग्नि प्रगट भई हुती परंतु मैं विचारी सबही राजकुमार इहां भेले हैं, न जानिए क्रोधाग्निकरि कौन भस्म होय जाय ऐसी विचारि मैं चुप होय रह्या ॥ १३ ॥ अर यह मूर्ख मनमैं जानै है जो मेरा नाम अकंपन है मैं काहूकरि कंपायमान नाहीं सो इह ठगाया, मेरे क्रोधायमान होवेकरि पर्वतसहित पृथ्वी कांपै तौ याकी कहा वात ? ॥ १४ ॥ मेरे खड्गरूप जलकी धारा सो तौ दूरही रहौ ताका वेग सहारिबे समर्थ कौन ? मेरी सेनारूप तरंग सोही लीलामात्रमैं समस्त शत्रुनिकूं बहाय दे ॥ १५ ॥ बहुत बधी है नाथवंश अर सोमवंशरूप सूकी विस्तीर्ण बनी सो मेरी क्रोधरूप देदीप्यमान अग्नि तत्काल या सूकी वनीकूं भस्म करैगी ॥१६॥ दिग्विजयविषैं पृथ्वीनाथनैं या जयकुमारके सिर वीरपट्ट बांध्या सो तौ मैं सह्या, पिताके भयथकी कछू कहि न सक्या । अर सर्व सौभाग्यकी लोपनहारी जयकुमारके कंठमैं माला मैं कैसे सहि सकूं ॥ १७ ॥ मेरा यशरूप पुष्प ताहि युगके अंतपर्यंत मलिन करनहारी इह माला सो मैं कैसै सहूं, जो जयलक्ष्मीसहित जयकुमारके वक्षःस्थलतैं माला न हरूं तौ मेरी शोभा कहा रहै ? ॥ १८ ॥ पवन मात्रतैं विलाय जांय ऐसे चंचल मेघ तिनिकूं जीतिकरि इह जयकुमार अति सिहाया है, अर मेरे पितातैं मेघस्वर नाम पाया है, आज रणसंग्रामविषैं या गर्वित जयकुमारका पराक्रम देखूं ॥ १९ ॥ या भांति वह कुमार कार्य अकार्यविषैं मूढबुद्धि मर्याद उलंघि कर ऐसे वचन कहता भया

प्रवलकालके मेघकी ध्वनिकूं जीतै ऐसी क्रोधरूप ध्वनि करी, क्रोधमैं ऐसा भरिगया जो काहूका निवाऱ्या न रहै। जैसैं अग्निका सहाई पवन होय तैसैं याके क्रोधाग्नि प्रज्वलित करिवेकूं दुर्मर्षण आदि कैइक राजा सहाई भए, पापक्रियाके आरंभविषैं सहाई घने ॥२०-२१॥ जब अर्ककीर्ति कोपरूप होय युद्धकूं उद्यमी भया तब अनवद्यमति नामा मंत्रीनिके लक्षणनिकरि शोभित धर्म अर्थ काम मोक्ष च्यारूं पुरुषार्थविषैं प्रवीण पराये चित्तका परखनहारा अर्ककीर्तिकूं धर्मरूप यशरूप दुष्टतारहित महासार सज्जनतारूप न्यायरूप पथ्यरूप ऐसे शुभवचन विचार करि कहेबेकूं उद्यमी भया ॥ २२-२३ ॥ अहो कुमार ! पृथ्वी, आकाश, चांद, सूर्य, समुद्र, अग्नि, पवन, मेघ अर तिहारा पिता, तुम जगतकूं कल्याणके कर्त्ता हैं ॥ २४ ॥ तुम जो विकारकूं प्राप्त होउ तौ सकल सृष्टि विकारकूं प्राप्त होय, तिहारे प्रवर्त्तनतैं इह सृष्टि प्रवर्त्तै है या सृष्टिकी प्रवर्ति तिहारे आधीन है ॥ २५ ॥ क्षमाकूं आदि दे सवगुण तुमविषैं अर तिहारे पिताविषैं प्रगट तिष्ठैं हैं जो इनि गुणनिकी तुमविषैं कमी होय तौ सकल लोक विकल होय जाय, जगतविषैं गुणनिकी न्यूनता होय ॥ २६ ॥ कदाचि कोऊ काल पाय पृथ्वी क्षमाकूं तजै, आकाश निर्मलताकूं तजै, चंद्र शीतलताकूं तजै वा सूर्य प्रकाशकूं तजै, समुद्र मर्यादा तजै, पवन निःसंगता तजै, अग्नि तेजकूं तजै, वर्षाकाल वर्षाकूं तजै तौ पनि तिहारा पिता अर तुम न्यायकी मर्यादाकूं न तजौ, तुम मर्यादास्वरूप हौ ॥ २७ ॥ इह कर्मभूमिरूप सृष्टि तिहारे दादाने निरमापी अर तिहारे पिताकूं सौंपी, तिहारा पिता चक्रवर्ति तातैं तुमकूं सबका समाधान करना, पीडाथकी रक्षाकरै सो क्षत्री सो तिहारा पिता सर्वकी पीडा निवारिबेवारा है ताके तनतैं उपजे तुम ज्येष्ठ पुत्र सो आदि क्षत्री हौ ॥ ३० ॥ तुमतैं न्याय प्रवर्तैगा, तुम न्यायके कर्त्ता हौ, जे पुरातन न्याय हैं ते तिहारे पालिबेतैं प्रमाण होंहिगे, तुम प्राचीन न्यायमार्गकूं नवीन करागे ॥ ३१ ॥ यह स्वयंवरका मार्ग विवाहकी विधिके भेदनिविषैं श्रेष्ठ है, इह मार्ग केवलीका प्ररूप्या अनादिकालतैं हैं ॥३२॥ सबही राजकुमार भेले होंहिं तिनिविषैं कन्या एककूं बरै तहां काहूकूं विरोध न करना विधिमार्ग पंडितनि कह्या

है ॥ ३३॥ महाकुलवंत पुरुषनिविषैं कन्या एककूं वरै वह लक्ष्मीवान होहु अथवा निर्धन होहु गुणवान होहु अथवा निर्गुणी होहु ॥ ३४ ॥ रूपवान होहु, अथवा रूपरहित होहु विधिमार्गके वशतैं कन्या जाहि वरै ताहि वरौ, अकुलीनकूं न वरै एक यह मर्याद है और काहूकूं वरो तहां उत्तम पुरुषनिकूं अदेखसका भाव न करना इह न्याय है ॥ ३५ ॥ जो कदाचि कोऊ न्यायकूं उलंघै तौ तुम उलंघने न द्यौ तुम न्यायके रक्षक हौ तुमकूं यह उचित नाहीं जो तुम ऐसी अन्यायरूप वार्ता कहौ कहूं रक्षक भी लुटेरे भए हैं तुम तौ पृथ्वीके रक्षक हौ ॥ ३६ ॥ अर नाथवंश अर सोमवंश तिहारे दादाके कीए हैं जैसें सुमेरुके निषधाचल अर नीलाचल तैसें तिहारे ए हैं इनि समान तिहारैं और नाहीं ॥ ३७ ॥ अर राजा अकंपन सकल क्षत्रीनिमें ज्येष्ठ नाथवंशका शिरोमणि चक्रवर्ति समान पूज्य है जैसें ज्योतिषीनिमें चंद्रमा मुख्य है तैसें तिहारे सेवकनिमें राजा अकंपन मुख्य है ॥ ३९ ॥ अर तिहारे पिता भरतेश्वर याहि ऋषभके समान मानै हैं सो पूज्य पुरुषका उलंघन करना इहभव परभवविषैं अकल्याणका कारण है ॥ ३९ ॥ अर सोमवंशकी महिमा कहांलग कहैं ? धर्म तौ तिहारै वंशतैं प्रगट भया अर दानतीर्थ सोमवंशतैं प्रगट भया ॥ ४० ॥ अर चक्रवर्तिके चक्ररत्न तौ आगैं आगैं गमनमात्रही प्रशंसायोग्य हैं बाहुल्यताकरि जे विषमकार्य हैं तिनिकी सिद्धिके अर्थि जयकुमारहीकी चक्रवर्ति प्रशंसा करै है ॥ ४१ ॥ दिग्विजयविषैं याका पुरुषार्थ सबनिही देख्या यानैं जो पुरुषार्थ कीया सो तुम कहा न जानौ हौ ! चितारि देखहु ॥ ४२ ॥ जे राजा हैं तिनिकरि सामान्य योद्धा हू मानिवेयोग्य है, नहीं देखिवेमें आया शूरपणा जाका ताहूकूं नरपति मानै है अर जाका बल देखिवेमें आया जानैं अनेक अर्थ सिद्ध कीए ताकौ कहा कहना ? ॥ ४३ ॥ विना चक्र अर विना निधिरत्न यह लक्ष्मी जयकुमारथकी तुम भोगउगे जैसें दैवी सिद्धि तिहारे पुण्यके उदयतैं हौं तैसे मानुषी सिद्धि या जयकुमारतैं है ॥ ४४ ॥ अर तिहारी इह नीति है जो एक तृणमात्रहूकी रक्षा करनी तौ ऐसे वचन कैसें कहने जो मैं नाथवंश अर सोमवंशकूं उच्छेदूंगा, ए तौ दोऊ वंश तिहारी राजलक्ष्मीके साक्षात् भुजारूप

है ॥ ४५ ॥ ए तिहारे बंधुसमान सेवक हैं सो इनिके मारिबेतैं तुमपरि चक्रवर्ति भी कोप करेगा अर या अन्यायकी प्रवृत्तिकरि युगके अंतपर्यंत अधर्मकी प्रवृत्ति निश्चय होयगी ॥ ४६ ॥ तुम परदाराकी अभिलाषाके अगिवाणी (अग्रगामी) वृथाही मति होउ अर वह कन्या महासती है जो तुम हरि ल्याउगे तौ भी तिहारी न होयगी ॥ ४७ ॥ जयकुमारका प्रताप अर यश दिनकी नांई दृढ होयगा अर तिहारी कीर्ति अंधेरी रातिकी नाईं स्थिर होयगी ॥ ४८ ॥ अर तुम इह मति जानूं जो ए सकल योद्धा मेरे ही हैं इन राजनिविषैं बहुत याके पक्षपाती हैं ॥ ४९ ॥ धर्म अर्थ काम ए तीनूं पुरुषार्थ पुरुषनिकूं दुर्लभ हैं सो तिहारैं सिद्ध भए हैं तुम न्यायमार्गकूं उलंघि करि वृथा ए पदार्थ क्यों खोओ ॥ ५० ॥ जैसैं चक्रवर्तिके दिग्विजयविषैं जयकुमार आगिवाणी हूवा हुता तैसैं अकंपनिकी सेनाका अगिवाणी हूवा है सो वीरलक्ष्मीकी तुलापरि चढि रह्या है वृथा तुमकूं कछू करैगा ॥ ५१ ॥ अर न्याय विचारिये तौ जयकुमार तिहारा बंधु है बंधुके विवाहके उत्सवविषैं मानकी हानि कहा ? या कार्यविषैं क्रोध करना, सोही अकीर्ति है ॥ ५२ ॥ अर और राजानिके कन्यारत्न बहुत हैं सो सर्व रत्नसहित तिहारैं ढिग ल्याऊं ॥ ५३ ॥ या भांति नीतिरूप लताके वृद्धि करनहारे जल समान वचन अनवद्यमति मंत्रीनैं कहे सो तप्त तैल समान अर्ककीर्तिका चित्त ताकूं अत्यर्थपनैं चडचडाट उपजावते भए ॥ ५४ ॥ अनवद्यमति मंत्रीके सर्व वचन सुनिकरि कछू चित्तमैं न आई 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' है या बातकूं मानूं स्पष्ट करता संता दुर्बुद्धि ऐसे वचन कहता भया ॥ ५५ ॥ विवाह क्रियाविषैं स्वयंवरका मार्ग अनादिकालका है यामैं संदेह नाहीं अर अकंपन वयमैं बडा है ऋषभदेवका मान्या हैं ॥ ५६ ॥ परंतु यामैं यह दोष है स्नेहथकी जयकुमारकी उत्कर्षता चाहै है अर अपनी सुताका सौभाग्य बढायबेकी है इच्छा जाकै ॥ ५७ ॥ सो सर्व राजानिके समूहकूं एकत्र कीए हैं इह मूर्ख आप चक्रवर्त्ति समान हूवा चाहै है अर अपनी सुताका स्वयंवरके मिषकरि कपट कीया है ॥ ५८ ॥ यानैं पहली ही अपने घरमैं मंत्र करि राख्या था अर बेटीकूं समझाय राखी थी जो तू जयकुमारके

कंठमैं वरमाला डारियो सो पिताके वचनकरि पुत्रीनैं वाके कंठमैं वरमाला डारी है ॥ ५९ ॥ या अकंपनने अपने चित्तकरि जयकुमारकूं कन्या दई है स्वयंवरकी विधिकरि न दई अर कन्यानैं अपनी इच्छासूं माला न डारी है मृषा स्वयंवर है जो स्वयंवरकी विधि होय तौ मैं काहेकूं क्रोधकरूं, इह कपटकी रचना है, युगकी आदिविषैं या अकंपनने मायाचार रच्या है जो मैं या बातकूं सहिकरि बैठि रहूं तौ कल्पांत तक कपटकी वृत्ति चलै, कोऊ निवारि न सकै ॥ ६० ॥ तातैं अन्यायके निषेधतैं चक्रवर्तिहू क्रोध न करैं वे तौ अैसे न्याय प्रवर्तक हैं जो मैंहू अन्यायविषैं प्रवर्त्तूं तौ मोकूं भी दंड दैं ॥ ६१ ॥ अर इह जयकुमार पहली तौ वीरपट्टके बांधिवेकरि गर्वाया हुता अर अब या वरमालाकरि अति गर्वरूप भया है सो कदाचि मैं क्षमा न करूं इह अवसर पाय मोहूसूं न टरै तो छिद्र पाय विघ्न करै ॥ ६२ ॥ इह जयकुमार सब राजाका शत्रु है सो याहि युद्धविषैं मूलसहित उच्छेद करि सकल राजानिका मोपर अनुराग उपजावैगा ॥ ६३ ॥ अर तुम कहौ हौ सेनामैं कोऊ वाके भी पक्षमैं सामिल होंहिगे सो सेना इकरूप होउ अथवा द्विधारूप होउ, सेनाकर कहा ? मेरे बाण जयकुमारका उरुस्थल भेदिकरि माला मेरे निकट ल्यावैंगे ॥ ६४ ॥ अर मैं सुलोचनाके अर्थि एता उपद्रव न करूं हूं अन्याय प्रवृत्ति दूर करिवेके अर्थि उपाय करूं हूं, मेरे वाणनिकरि इह जयकुमार अबही प्राणरहित होयगा अर सुलोचना विधवा ताकरि मोहि कहा ? ॥ ६५ ॥ दुराचारके निषेधिवेकरि धर्म अर्थ कामकी वृद्धि होय है कारणके होतैं कार्यकी हानि कहूं न देखिये है ॥ ६६ ॥ मेरे पराक्रमकी हानि तौ दूरही रहौ वाणनिहूकी हानि नाहीं दीखै है, दुष्टके मारिवेविषैं धर्मकी प्रवृत्ति होय है पाप कहांतैं होय ? ॥ ६७ ॥ मैं अर्ककीर्ति, विख्यात है कीर्ति जाकी सो या युद्धविषैं मेरी कीर्तिका विनाश न होयगा अर जो अन्यायका निषेध न करूं तौ निःसंदेह अकीर्ति होय, ता अकीर्तिकूं कोऊ निवारि न सकै ॥ ६८ ॥ अर तुम कही जो ताके मारिवेविषैं तिहारी अकीर्ति होयगी सो दुष्टकूं दंड देवेविषैं अकीर्ति नाहीं, जो मैं या समय शीतलता अंगीकार करूं तौ अकीर्ति है ॥ ६९ ॥ तातैं तुम चुप होय रहो, मैं या ऊपरि तेजरूप

भयाहूं तुम मेरे हितके बांछक हौ सो मोहि मनें मति करौ याके दंड देवेमैं धर्म अर्थ काम अर यश तीनूं हैं ॥ ७० ॥ या भांति मंत्रीके वचनकूं उलंघि करि वह कुबुद्धि खोटे हटकूं अंगीकारतासंता सेनापतिकूं बुलयाकरि युद्धके उद्यमकी आज्ञा करता भया। कैसा है कुबुद्धि अर्ककीर्ति नजीक आया है अपमान जाकै सब राजानिकूं रणका निश्चय कहि करि जगत्रयकूं भयकी उपजावनहारी रणकी भेरी बजावता भया ॥७२॥ सो रणभेरीका शब्द सुनि करि सब राजानिके सावंत हर्षि उठे अपनी भुजानिका आस्फोट कहिए शब्द करना ताकरि युद्धकूं उद्यमी भये अर महाकठोर शब्दकरि सब सावंतनिके डेरै कोलाहल भया ॥७३॥ हाथिनिके कंठविषैं प्रगटपनैं घंटाका भयानक शब्द होता भया अर जीते हैं सिंहनिके शब्द जिनि अैसे तुरंगनिके हींसिवेका भयानक शब्द होता भया ॥७४॥ अर चालते अश्व तिनिके खुरनिकरि उपज्या पूर्ण कठोर शब्द सो ठौर ठौर होता भया अर पयादेनिका पग तिनिके आहट करि भया है पृथ्वीविषैं कर्कश शब्द ॥७५॥ अर चालते रथ तिनिके पहिये तिनि करि उपज्या महा भयंकर विस्तीर्ण चीत्कार शब्द अर धनुषनिका चढावना ताकी फिडचिके खैंचिबे करि भया है करकश शब्द जहां ॥ ७६ ॥ कटकके शब्दकरि दसूं दिशा शब्दायमान भई कटकका कोलाहल मानूं कालके बुलायबेकूं उद्यमी भया ॥ ७७ ॥ इहां पांच श्लोकनिकरि कुलक कह्या ॥ हाथी सब प्रकारै सजे। कैसे हैं ते हाथी महावतनि अतिसिखाए हैं अर महाबलवान हैं महासुखी रहैं अर जिनपरि सावंत चढै हैं अर ध्वजा फरहरै हैं अैसे गज पर्वत सारिखे सबनिकै पहली चाले ॥ ७८ ॥ अर संग्रामरूप समुद्रके तरंगसमान तुरंग जिन परि पाखर परी सो हाथिनिके पीछैं हींसते अर कूदते चाले सब उर तुरंगही तुरंग दीखैं ॥ ७९ ॥ रथनिके सारथी परस्पर कहै हैं रथके पहियानि करि भली भांति सजौ अर धुर दुरुस्त करि ताविषैं पहराबो। अर रथनिके घोडे जोओ या भांति शीघ्र ही रथ संवारे ते रथ ध्वजासहित चाले ॥ ८० ॥ अर महाप्रचंड पयादे धनुष वाण अर बरछी खड्ग सेल चक्र इत्यादि शस्त्र तिनिकरि भयंकर सब दिशिकौं रोकते चाले, रथनिकै आगैं पाछैं पयादे हाथीनिके आगैं

पीछैं पयादे घोडनिके आगें पीछैं पयादे अर पयादेनिकी सेनाही जुदी या भांति चतुरंग सेना चाली ॥ ८१ ॥ हाथीनिके पीछैं हाथी घोडनिकै पीछैं घोडे रथनिकै पीछैं रथ अर पयादेनिकै पीछै पयादे युद्धके अर्थि अति शीघ्रताथकी निकसे ॥ ८२ ॥ चढे हैं हाथीनि परि अनेक राजा तिनि करि वेष्टित अर्ककीर्ति चाल्या नगारे आदि अनेक वादित्रनिका भयंकर शब्द ताकरि भयरूप कीए हैं समस्त दिग्गज जानैं ॥ ८३ ॥ आप अर्ककीर्ति विजयघोष नामा हाथी महापर्वत समान तापरि आरूढ भया अर चक्रके चिन्ह करि शोभित ध्वजा ताहि ऊंची करि युद्धकूं सन्मुख भया भलीभांति प्रगट करी है उन्नतता जानैं ॥ ८४ ॥ जैसैं अर्क ज्योतिषी देवनिके समूहसहित सुमेरुकी उर जाय तैसैं अर्ककीर्ति नंगी तलवारके धारक जे योद्धा तिनिकरि मंडित राजा अकंपन ऊपरि चाल्या ॥ ८५ ॥ इह वार्ता लोकनिके मुख सुनि- करि राजा अकंपन अधिक व्याकुल भया । मनमैं विचारै है—जो उचित कार्य भलीभांति विचारि करिए ताहूकूं पूर्वोपार्जित कर्म और प्रकार करि डारै है ॥ ८६ ॥ राजा अपना मंत्री अर जयकुमारादि मित्र तिनिसूं मंत्रकरि शीघ्रही अर्ककीर्तिके निकट दूत पठावता भया ॥८७॥ दूत हाथि ए समाचार कहि भेजे हे कुमार ! इह मर्याद उलंघना तुमकूं कहा योग्य ? तुम प्रसन्न होउ, तुरत प्रलयकाल तौ दूर है छठेकालके अंत होयगा तुम आगमकूं मिथ्या कहा करो हौ ? भावार्थ—अब ही प्रलयकाल करौ सो इह समय नाहीं ॥ ८८ ॥ या भांति साम कहिये शांतताका वचन दूतनैं राजाकी आज्ञाप्रमाण अर्ककीर्तिसूं विज्ञप्त कीए तथापि वह शांत न भया तब ताहि अशांत जानि दूत शीघ्रही पाछा आया अर बाकी सर्व वार्ता राजाकूं कही अर सावधान कीया जे तुम बाका विश्वास मति करो वह तो तुम परि आयाही अब करना होय सो करो ॥ ८९ ॥ इह वार्ता सुनिकरि काशीका पति विषादकरि चलितचित्त भया मानूं महामूर्च्छा आइ गई, विषमकार्यविषैं कौन चिंतावान न होय ?॥ ९० ॥ तब राजाकूं चिंतावान जानि जयकुमार कहता भया—तुम या कार्यविषैं चिंतावान मति होउ वाहीनैं न्याय उलंघ्या है ॥ ९१ ॥ आप तौ राजमहलहीमैं बिराजे रहौ अर सुलो-

चनाकी यत्नतैं रक्षा करौ, मै अबही वा दुराचारी आततताईकूं बंदरकी नाईं सांकलसूं बांधिकरि ले आऊं हूं। छहप्रकारके दुष्ट—आततताई कहिए अग्नि लगावैं, विष देवैं, परधन अर स्त्री इनिका हरणहारा, अर पिताका हनिबेवारा ए महापापी हैं। या भांति जयकुमार कहिकरि अर्ककीर्तिपरि चढ्या, जादिन मेघकुमार देव जीते तादिन प्राप्त भई हुती मेघघोष नाम भेरी सो रोषकरि जयकुमारकी आज्ञातैं अग्रगामी पुरुषनै बजाई ॥९२-९३॥ प्रलयकालके दिन द्रोण, काल, पुष्करावर्तादि मेघ गाजै हैं तैसी ध्वनि भेरीकी भई दसूं दिशामैं ध्वनि व्यापि गई, वैरीनिके हृदय भेदे गए ॥ ९४ ॥ ता शब्दके सुनिवेतैं घूमता समुद्रसमान जयकुमारके योद्धा घूमने लगे अर जैसा दिग्विजयविषैं जयकुमारके योद्धानिकूं उत्सव भया हुता तैसा उत्सव भया जैसैं समुद्रकी लहरि उछलै तैसैं सुभट क्रोधकरि उछले ॥ ९५ ॥ अथानंतर— झरै है मद जिनिकै मदकरि भीजि रहे हैं कपोल जिनिके अैसे उत्तुंग उन्मत्त गजराज युद्धके अर्थि अग्रगामी भए ॥ ९६ ॥ अर बाहु समान है वेग जिनिका अैसे तुरंग शब्द करते अर आकाशकूं उछालते कीया है उद्यम जिनि रणका है उच्छव जिनिकै ते सोहते भए। तेजस्वीपना वही प्रशंसायोग्य है जो रणविषैं उछाह बढै ॥ ९७ ॥ अर रथ जैसैं दिग्विजयके दिन सजे हुते तैसैं सर्व आयुधनि करि पूर्ण अर जुते हैं बडे तुरंग जिनिकै अर नृत्य करै है ध्वजारूप बाहु जिनिकी ॥ ९८ ॥ संग्राममैं स्त्रीहू सुभटता आचरै हैं तौ सुभटनिकी कहा बात, शत्रुके कटककूं देखिकरि जयकुमारके योद्धानिकै अति हर्ष भया, अगणित पयादे आघे चाले ॥९९॥ वादित्रनिविषैं वर्द्धमान ध्वनि भई मानूं रणरंगविषै वीरलक्ष्मी नृत्य करैगी ताहि नृत्यका अभ्यासही करावै है ॥१००॥ आप जयकुमार विजयार्द्धनामा गजपरि आरूढ भए। कैसा है गज ? बडा है वंश जाका अर वय शिक्षा लक्षण तिनिकरि देखिबेयोग्य है मूर्ति जाकी अर शोभनीक है स्वभाव जाका अर उत्तुंग है शरीर जाका अर असवारके वशवर्ती है गमन जाका मानूं इह विजयार्द्धनामा गज विजयार्द्ध पर्वत बराबरही है। बहुत बार देखे हैं संग्राम जानैं अर गजके चिह्नकी ध्वजा ताकरि शोभायमान है। अैसे गजपरि चढि

करि सर्व फौजसहित अर सर्व छोटे भाईनिसहित प्रलयकालकी लीलाकूं उलंघता युद्धके अर्थि निकस्या ॥ १०१–३ ॥ अर राजा अकंपन पुत्रीसूं कही–जो तू तेरी मातासहित नित्यमनोहरनामा चैत्यालय जाय करि विनयसहित शांतिपूजा करती तिष्ठि ॥ १०४ ॥ पुत्रीकूं इह आज्ञा करि राजा अकंपन अपने हेमांगदादि हजार पुत्रनिसहित समस्त सेन्या लेकरि पृथ्वी चलायमान करता चाल्या काहू प्रकार नांहीं है भय जाकूं अर कंपाए हैं वैरी जानैं ॥ १०५ ॥ अर राजा सुकेतु, सूर्यमित्र, श्रीधर, जयवर्मा, देवकीर्ति ए राजा अपने कटकसहित इनिमैं आय मिले ॥ १०६ ॥ ए पांचू राजा मुकुटबद्धनिमैं प्रसिद्ध हैं, विख्यात है कीर्ति जिनिकी अर जेते सुभट नाथवंशी अर सोमवंशी जिनि राजानिपैं हुते ते उनकूं तजिकरि राजा अकंपन अर जयकुमारपै आए ॥ ७ ॥ अर मेघप्रभनामा विद्याधर विद्याके बलकरि उद्धत प्रचंड जो खड्ग ताकी प्रभाकरि उद्योत किया है आकाशविषैं जानैं सो आधे विद्याधरनिसहित राजा अकंपन अर जयकुमारमैं आय मिल्या ॥ १०८ ॥ ए रणसंग्राम करिवेकूं विस्तीर्ण अर समतल जहां नीचा ऊंचा नाहीं ऐसा क्षेत्र देखि अर अपने कटकका विभागकरि जयकुमार मकरव्यूह कहिए मगर मच्छकी तरह सेनाकी रचना रचता भया। कैसा है जयकुमार शत्रुनिकी सेना ताका विनाशक है। भले प्रकार प्रबल वादित्रनिके समूह, भयंकर हैं शब्द जिनिके ते बाजते भए, जीत्या है मेघका शब्द जानें ऐसा मेघेश्वर कहिए जयकुमार सो मेघसमान शब्द करता गाजता भया ॥ १०९–११० ॥ अर अर्ककीर्ति चक्रव्यूह कहिए चक्रकी नाईं सेनाकी गोल रचना रचता भया प्रचुर सेनाके मध्य अर्ककीर्ति ऐसा सोहता भया जैसा मेघमंडलके मध्य अर्क सोहै ॥ १११ ॥ अर क्रोधकूं प्राप्त भए आकाशविषैं विद्याधरनिके अधीश सुनमि आदि दे गरुडके आकार फौजकी रचना करि अर्ककीर्तिकी आज्ञाप्रमाण तिष्ठे ॥ ११२ ॥ अर अष्ट चंद्र हैं नाम जिनिके ऐसे विद्याधर प्रसिद्ध ते चक्रवर्तिके पुत्रकी चौगिरद विद्याके मदकरि उद्धत अर्ककीर्तिके शरीरके रक्षक हो तिष्ठे ॥ १३ ॥ विना समय प्रलयकालका आरंभ ताविषैं मेहकी गर्जनाकूं जीतैं ऐसे वादित्र दोऊ सेन्याविषैं एकैंकाल

बाजते भए ॥१४॥ अथानंतर रणसंग्रामके अग्रेश्वर धनुषधारी बाणनिके भयानक शब्द करते युद्धका मार्ग प्रवर्त्तायवेकूं आरंभ करते भए ॥ १५ ॥ धनुषके धारी संग्रामरूप नाटक ताके आरंभके सूत्रधरि बाजे हैं बादित्र आगैं जिनिके सो रणरंगविषैं प्रवेश करते भए ॥१६॥ प्रथमही रणरूप रंगभूमिविषैं धनुषके धारक तीक्ष्ण वाण-निके समूह बरसावते भए सो मानूं पुष्पांजलीही बखेरे हैं। भावार्थ—जैसें नृत्यकी रंगभूमिविषैं नृत्यकारिणी फूल बखेरै है तैसें योद्धा रणरंगविषैं वाण बरसावते भए ॥ १७ ॥ मानूं ए वाण दुर्जनसमानही हैं दुर्जनहू तीक्ष्ण अर एऊ तीक्ष्ण अर दुर्जनहू पराया मरम छेदैं अर ए वाणहू पराया मरम छेदैं अर दुर्जनहू पहली कलहकरि पीछैं प्रवेश करै तैसें ए वाणहू पहली भयंकर शब्दकरि पीछैं तनमैं प्रवेश करै तातैं दुर्जनसमानही है ॥१८॥ रण-संग्रामविषैं धनुषधारी जीत्या है खेद जिनि सो पंखीकी नांईं सोहते भए जैसें पंखीकै दोऊतरफ पांख होय तैसें इनकै दोऊ तरफ तरकस बंधे हैं अर पंखीहू शब्द करै है अर एहू शब्द करै हैं अर पंखीनिहूके आकाशमैं उडबेका खेद नांही अर इनिहूके रणभूमिमैं परिबेका खेद नांही ॥ १९ ॥ बहुरि ए वाण मानूं मंत्री ही समान हैं मंत्रीहू सरल है अर एऊ सरल कहिए सीधे हैं मंत्रीहू दूरदर्शी है अर एऊ दूरि जाय परैं हैं मंत्रीहू तत्काल कार्यकूं सिद्ध करै है अर एऊ शीघ्रही कार्यकूं सिद्ध करै हैं मंत्रीहू शास्त्रमार्गके अनुसारि चालै है अर ए वाणहू युद्धशास्त्रके मार्ग चालैं तातैं मंत्री समान ही हैं ॥२०॥ बहुरि ए वाण पंखी समान उडिकरि जाय परैं पंखीहू उडिकरि दूरि जाय परै हैं अर वाणहू शत्रुविषैं दूरि जाय परै हैं, पंखीहू क्रव्य कहिए काचा मांस अर लोहू ताकूं भक्षण करणहारा है अर एऊ मांस लोहूके ग्राहक हैं अर पंखीनिहूके पांख है अर वाणनिके पांख है अर पंखीनिहूके मुख तीक्ष्ण हैं अर इनिहूके मुख तीक्ष्ण हैं तातैं खग कहिए वाण ते खग कहिए पक्षी ताही समान है ॥ २१ ॥ अर वाणनिके समूह शुद्ध परिणाम समान हैं जैसें शुद्ध परिणाम गुणयुक्त धर्मके प्रेरे हृदयविषैं प्राप्त भए गति कहिए शुभगति ताहि उत्तम जीवनिकूं प्राप्त करै हैं तैसें ए वाण गुण कहिए फिडचि ताकरि युक्त यो धर्म कहिए धनुष ताके प्रेरे परचक्रके सूरवीर

तिनिके हृदयविषैं प्राप्त होय करि सूरनिकूं परभवविषैं प्राप्त करै हैं ॥ २२ ॥ बहुरि इह वाणनिकी पंक्ति वेश्याकी नांई पुरुषनिके सपरसमात्र ही हृदयविषैं पाठकरि लोहूही खैंचै है अर शीघ्र तिनिके नेत्र मुद्रित करै है। भावार्थ-जैसैं वेश्या पुरुषनिसूं सपरसकरि हीएमैं प्रवेश करै है अर सारवस्तु खैंचि लेहै अर पुरुषनिके नेत्र मुद्रित करि हरै है तैसैं इह वाणनिकी पंक्तिहू पुरुषनिकूं स्पर्श मात्रकरि हीएमैं प्रवेश करि रुधिरकूं खैंचै है अर तिनिके नेत्र लगा दे है वे मरणकूं प्राप्त होय हैं ॥ २३ ॥ जैसैं व्यभिचारिणी स्त्री अपने धनीकूं तजि वृष्टिसमैं अंधकारमैं परपुरुषकूं वसि करै तैसैं वाणनिकी पंक्ति अपने स्वामीकूं तजिकरि विद्याधरनिके रुधिरकी वृष्टिके होतसंते अंधकारमैं पर जे शत्रु तिनिकूं वसि करते भए ॥ २४ ॥ बहुरि मानूं ए वाण भले चाकर समानही हैं भला चाकरहू सरल होय अर एऊ सरल कहिए सूधे हैं अर भला सेवक हू मुष्टिसंवाह्य कहिए आज्ञावर्ती है धनीकी मूठीमैं है अर ए वाण भी मुष्टिकरि गमन करै हैं अर भले सेवकहू अवलोकनमात्रही दूरि जायकरि स्वामीके मनवांछित कार्यकूं साधै हैं अर ए वाणहू अवलोकन मात्रही दूरि जायकरि स्वामीका कार्य साधै हैं तातैं ए वाण मानूं समीचीन सेवकही हैं ॥ २५ ॥ अर धनुषके धारी सावंत परचक्रके वाण सन्मुख आवत देखकरि अपने तीक्ष्णवाण उन वाणनिपरि चलावै हैं सो उनके वाणनिका पात झारै हैं सो ए पराए वाणका खंडनरूप धनुषधारीनिकी बुद्धि प्रशंसायोग्य है ॥ २६ ॥ परके वाण आपतक न आवने दे बीचिही छेदि नाखै या समान वाणविद्याविषैं और प्रवीणता नांही कैइक धनुषधारी परस्पर वाणनिके खंडनविषैं प्रवर्ते सो प्रथमही रणविषैं प्रशंसायोग्य होत भए मानूं उनके वाण किंकर समानही हैं ॥ २७ ॥ योद्धानिके वाण दृढमुष्टि करि चलाए जहां इनिके परिवेकी जायगा है तहांही हाथी घोडे रथ पयादेनिकूं भेदिकरि जाय परे छूटते अर चालते काहूनैं न देखे कार्य करतेही देखे ॥ २८ ॥ ए योद्धानिके वाण प्रथम तौ कीया है संधान जिनि बहुरि किंचित्काल धनुषके आकाशविषैं गए ते वाण जौलग पाछे न आवैं ता पहली अनेक विद्याधर प्राण रहित होय आय परैं

क्षत्रविषैं तिष्ठि करि चले सो गमनका अभ्यास करि शत्रुनिके मध्य जाय परे सो मानूं द्वैधीभावकूं प्राप्त भए हैं। भावार्थ—क्षत्रीनिके षट् गुण हैं संधि, विग्रह यान, आसन, संस्थान अर द्वैधीभाव। संधि कहिए मिलाप, विग्रह कहिए असवारी, आसन कहिए मुकाम, संस्थान कहिए वचनकी दृढता अर द्वैधीभाव कहिए दोयका आश्रय सो जिनिके द्वैधीभाव है तेऊ पहली तौ कागद पत्रकरि संधान करै हैं बहुरि वांचि किंचित् मुकाम करै हैं बहुरि प्रयाणकरि उनीके मध्य जाय परै हैं तैसैं ए वाण पहिली संधान करि धनुषके क्षेत्रविषैं तिष्ठिकरि पीछैं कूंचकरि शत्रुनिके मध्य जाय परै हैं। ए द्वैधीभावका लक्षण कह्या।२९। कीया है षट्गुणका अभ्यास जिनि तिनिकी नांई सिद्धिकूं प्राप्त होते भए जैसैं षट्गुणका अभ्यासी विग्रह जो रण ताविषैं अशक्तपनैतैं उपायका आश्रय करि सिद्धिकूं प्राप्त होय है तैसैं ए वाण विग्रह जो शत्रुका शरीर ताविषैं हती है शक्ति जिनि सो शीघ्र गमनकरि शत्रुके जाय लागै हैं अर कार्यसिद्धि करै हैं॥ ३० ॥ अर काहू एक योद्धाके रुधिरकी धारा वीररसकी धारा समान परती सोहती भई, महाधैर्यथकी शीघ्रही उपारि डारचा है लागा वाण जिनि ॥ ३१ ॥ अर काहू एक योद्धाका हृदय वाणकरि विदारचा देखि ताकी स्त्री तत्काल मृत्युकूं प्राप्त होती भई मानूं पतिके चित्तविषैं अपनी स्थिति प्रगट करै है। भावार्थ— योद्धानिकी स्त्री ऊंचे महलनिपरि चढी अथवा नगरके कोटपरि खडी युद्धकूं देखै है ॥ ३२ ॥ अर कोऊ एक योद्धनिमैं अग्रणी टूट गया है दंड जाका ऐसा सेलका फल ताकरि विदारचा गया है अंग तौऊ युद्धविषैं चिरकाल निश्चल तिष्ठता भया मानूं याके प्राण कीलि राखे हैं सो निकसने न पावैं हैं॥ ३३ ॥ या भांति दोऊ सेनानिविषैं परस्पर युद्ध होता भया सो प्रलयकालकी अग्निज्वाला समान चंचल है शिखा जिनिकी ऐसे वाण तिनिकरि अपने कटककूं परचक्रके योद्धा तिनिकरि आच्छादित देखि वज्रकांड नामा धनुषकूं चढायकरि आप जयकुमार छोटे भाईनि सहित क्रोधरूप होय परचक्रसूं युद्ध करने लगा॥ ३४-३५ ॥ सो गुण कहिए फिडचि ताकरि युक्त जो धनुष ताके वाण लगाय काननि तक खैंचि वाण चलाए सो वाण अति शीघ्र चाले ते बाण मानूं प्रवीण दूत

समान ही है, कैसा है दूत? जाहि स्वामीनें बारंबार अपने प्रयोजन कहिकरि कार्यका मरमी किया है सो दूत मार्गविषैं सूधा चल्या जाय है अर शत्रुनिके हृदयविषैं प्रवेशकरि पैठिकरि विषम अर्थकूं साधै है तैसैं ए वाणहू मार्गविषैं सूधे जाय हैं अर शत्रुनिके हृदयविषैं प्रवेशकरि असाध्य अर्थकूं साधै हैं ॥ ३६-३१ ॥ अर वे वाण मानूं कपटयुद्धहीकरते भए सो कपटयुद्धवारेकी कहा रीति है कोऊ जानि न सकै अर शीघ्र आय परै घात करै सो ए वाणहू चालते कोऊ जानि न सकै अर शीघ्र शत्रु परि जाय परैं अर ताका घात करैं अर कपट-युद्धवारे पत्र कहिए शीघ्रगामी वाहन तिनिकरि युक्त हैं अर ए वाणहू पत्र कहिए पांख तिनि करि युक्त हैं अर वे कपटयुद्धवारे तीव्र संतापके दायक भयंकर हैं अर ए वाणहू महा संतापके दायक भयंकर हैं अर वे कपटयुद्धवारे समग्रा कहिए समस्त सामग्रीकरि युक्त हैं अर ये वाण समग्रा कहिए सबनिमैं अग्रगामी हैं अर वे कपटयुद्धवारे विग्रह कहिए रण ताविषैं द्रुता कहिये शीघ्रगामी हैं अर एऊ शीघ्रगामी हैं बहुरि वेऊ असावधानका घात करैं एऊ असावधानका घात करैं हैं जैसैं कोऊ वादी पुरुष शीघ्र ही कीर्तिके ग्रहिबेकी है इच्छा जाकै शास्त्रकरि परवादीकूं जीत्या चाहै सो अनेक युक्तिकरि प्रतिपक्षीका निराकरण करै तैसैं जयकुमार कीर्ति कहिए अर्ककीर्ति ताहि शीघ्र पकरिवेकी है इच्छा जाकै सो शस्त्रनिकरि प्रतिपक्षी जे सावंत तिनिका निराकरण करता भया। कैसे हैं शास्त्र अर कैसे हैं शस्त्र स्फुरद्भिः कहिए प्रकाशमान हैं बहुरि फलोपेतैः कहिए शास्त्र तौ स्वर्ग मोक्षके फलकरि मंडित हैं अर शस्त्र फल कहिए भालिताकरि मंडित हैं अर शास्त्र तौ सुप्रमाण कहिए भले प्रमाणकरि युक्त हैं अर शस्त्रहू प्रमाण कहिए मर्यादा ताकरि युक्त हैं अर शास्त्र तौ भली रचनाकरि सोभित हैं अर शस्त्रहू भली रचनाकरि युक्त हैं अर वादी तौ विरोधका प्रगट करणहारा है अर जयकुमारहू परचक्रसूं विरोधका प्रगट करणहारा है अर शास्त्रहू पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध हैं अर शस्त्रहू पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध हैं अर शास्त्रहू जीतिके कारण अर शस्त्रहू जीतिके कारण ॥ १३९-४० ॥ अर जयकुमारनें खग कहिए वाण सो खग जे विद्याधर तिनि ऊपरि चलाए सो

॥ ४१ ॥ अर आकाशतैं विद्याधरनि वाण चलाए सो जयकुमारके सावंतनिके सिरपरि असणिकी नाईं आय परे ते वाण महातीक्ष्ण अर देखिवेमैं भयंकर अर अग्निसमान प्रज्वलित ॥ ४२ ॥ विद्याधर हैं सो आकाशकूं आश्रयकरि योद्धानिकूं घायल करते भए योद्धा वाणनिके समूहकरि आच्छादित हैं अर गृद्ध पंखिनिकी पांख तिनिकरि अंधकार होय रह्या है नाहीं दीखै है मुद्गरादिकका घात जहां ॥ ४३ ॥ महा प्रचंड जे वाण तिनि अकालमृत्यु उपजाई योद्धानिके शस्त्र तेई भए सर्प तिनिकरि कहा कहा अशुभ न होय ? जो युगकी आदिविषैं इह महायुद्ध भया ॥ ४४ ॥ विद्याधरनि वाणनिकूं कर्णपर्यंत खैंचि करि चलाए सो अनेक हाथी घोडे रथ पयादे मारे गए अनेक सुभटनिका संग्रामविषैं संघार भया ॥ ४५ ॥ आकाशतैं विद्याधरके चलाए वाण नीची भूमिविषैं परे जैसैं कोई पापी जीव रुधिरका पान करै अर मांसका भक्षण करै सो पापकरि युक्त भया अधोभूमि जो नरक ताविषैं गमन करै तैसैं ए वाण रक्तके पान करणहारे अर मांसके भक्षण करणहारे अधोमुख होय मानूं नीची भूमिमें परै ॥ ४६ ॥ अर भूमिगोचरीनि लोहयष्टी आकाशकूं चलाई सो शत्रुनिकूं भेदिकरि आकाशविषैं दूरि गई मानूं ए दूती ही देवांगनानिकी उर पठाई हैं ॥ ४७ ॥ अर चक्रवर्तीके तौ चक्र एकही है सो प्रतापका स्वरूप है परंतु ताकरि काहूका नाश नांही ऐसा कौन जो चक्रवर्तिसूं लरै अर तापकरि चक्रवर्ति चक्र चलावै अर ए सावंतनिके सामान्यचक्र अकालचक्र सारिखे तिनिकरि बहुत मारे गए ॥ ४८ ॥ विद्याधरनिके वाण भूमिगोचरीनि परि आए अर भूमिगोचरीनिके वाण विद्याधरनिपरि गए, समान है वेग जिनिका एकही वेर परस्पर चले वाणनिके मुखसूं लागे सो परस्पर भेदे गए। विद्याधर अर भूमिगोचरीनिके वाण परस्पर वे उनकूं रोकैं वे उनकूं रोकैं तिनिकरि आकाश आच्छादित होय गया सो विद्याधरनिकूं भूमिगोचरी न दीखैं अर भूमिगोचरीनिकूं वे न दीखैं तातैं क्षणेक रणका निरोध भया ॥ ४९-५० ॥ परचक्रके भूमिगोचरी तिनिके शस्त्र तथा आकाशतैं विद्याधरनिके वाण आए तिनिकरि अपनी सेनाकूं

पीडित देखि जयकुमारकै क्रोधरूप उग्र अग्नि प्रज्वलित भई ॥ ५१ ॥ तव तत्काल प्रलयकालविषैं जैसा क्रोधरूप होय काल तासमान जयकुमार वज्रकांड धनुषकरि आप युद्ध करता भया जैसैं वज्रकरि इंद्र युद्ध करै ॥५२॥ जीत्या है वज्रपातका शब्द जानैं ऐसा जयकुमारके धनुषकी फिडच्चिका शब्द ताकरि भयभीत होय शत्रुनिके हाथतैं धनुष अर वाण गिरि परे अर उनके मन भी हाथि न रहे, डिग गए ॥५३॥ धनुषकूं कर्णपर्यंत खैंचिकरि फिडचिविषैं लगाया है वाण जानैं सो सांधिवेकी अर चलायवेकी अतिशीघ्रता ताकरि क्षणमात्रमैं अनेक योद्धा वेधे ॥ ५४ ॥ जयकुमारके वाण तौ काहूनैं मार्गके मध्य जाते न देखे, काहूके शरीरविषैं लागते न देखे तत्काल शत्रुनिकूं भेदिकरि वे वाण पृथ्वीमैं परे अर घायल भए शत्रुहू भूमिमैं परे देखे ॥ ५५ ॥ जयकुमारके वाण वडे वडे सुभटनिकी आंखि मुद्रित करते अर उनकूं प्राणरहित करते दसूंदिशाकूं वेढते भए। कैसे हैं वाण ? जैसी आकाशतैं उल्कापातकी पंक्ति निकसै तासमान भयानक हैं ॥ ५६ ॥ अर तिरछे चाले गोफणिके पाषाण तिनिकरि विद्याधर रणसंग्रामके वाहरि जाय परे सो नजरि न आए तिनिकूं मूढलोक कहते भए जो ए शरीरसहित स्वर्ग गए ॥ ५७ ॥ वाणनिकरि भग्न भए विद्याधरनिके मुकुट तिनितैं गिरती भई मणि सो गुणग्राही जे देव तिनि मानूं जयकुमारकी भेट रत्न भेजे हैं ॥ ५८ ॥ प्राणरहित होय विद्याधर भूमिमैं परे तिनिकी स्त्री अश्रुपात डारती भई सो मानूं पतिनिकूं पानी देयकरि जयकुमारकूं दयाके भावकूं प्राप्त करती भई लोक वहुत मारे गए सो उत्तमपुरुषनि दया उपजैही ॥ ५९ ॥ कालको लोक समवर्ती कहै हैं वाल वृद्ध तरुणादिकके हनिवेविषैं समान है वृत्ति जाकी सो इह वार्ता कहिवेरूप है कोऊ यम नामा पदार्थ नाहीं जीवनिकी मृत्यु है सोही काल है चक्रवर्तिके पुत्रका कटक ताऊपरि जयकुमार महाक्रूर होय प्रवर्त्या सो तासमैं वही यम है ॥ ६० ॥ न्यायरूप जो जयकुमार सो अन्यायमार्गीनिका वधकरि महातीक्ष्ण था तौऊ धमरूप होय गया, उपजी है दया जाके जैसैं धीजकी (दिव्य) अग्नि उष्ण है सो शीतल होय जाय है ॥ ६१ ॥ जब जयकुमारनें अर्ककीर्तिके सावंत बहुत मारे तब

अर्ककीर्ति अपने कटककूं धैर्य बंधावतासंता हाथीसूं उतरि तुरंग पर सवार हुवा घोडेनिकी हींसके शब्दकरि शत्रुनिके अश्वनिकूं भय उपजावता जयकुमारपरि आया ॥६२॥ अर्ककीर्तिके अग्रगामी योद्धा तुरंगनिपरि चढे अर महादेदीप्यमान अतितीक्ष्ण जे बरछी तिनिकूं निरंतर फेरते जयकुमारके योद्धानिपरि आए जैसैं यमके अग्रगामी विकराल होंहि तैसैं विकराल हैं ॥६३॥ तब जयकुमार हू अर्ककीर्तिकूं तुरंग चढ्या देखि आप महाजीतिका प्राप्त होनहारा जयतुरंगनामा तुरंग तापरि असवार भया अर महाक्रोधरूप होय बरछी हाथमैं लेय तुरंगसंबंधी युद्ध आरंभता भया ॥ ६४ ॥ बाजे गंभीर वादित्र तिनिकी भंभा आदि भयानक ध्वनि होती भई कटकरूप समुद्र ताके ए तुरंग चालती स्थूल कलोलही हैं ॥ ६५ ॥ तरवारिनिका संघट्ट ताकरि निकसते भयानक रणविषैं अग्निके फुलिंग तिनिकरि भूमिविषैं परे हुते वाणनिके समूह सो भस्म होते भए ॥ १६६ ॥ तुरंग हैं ते पहली चाबुकके घाततैं योद्धानिके सन्मुख दोरे हुते ते मरणकूं प्राप्त भए सो इह उचितही है जे तेजस्वी हैं ते अपमानकूं न सहैं अर मरणकूं प्राप्त होंहि ॥ १६७ ॥ अश्वनिके दोऊ पग आगिले कटि गए अर दोऊ पाछिले पगनिसूं खडे अपने असवारनिकी रक्षा करतेसंते परस्पर बांध्या है क्रोध जिनि सो चिरकाल तुरंग युद्ध करते भए ॥ ६८ ॥ निकस्या है सावंतनिका रुधिर ताकरि संयुक्त देदीप्यमान महाचंचल खडग तिनिकरि आकाश ऐसा सोहता भया मानूं लाल कूंपलनिकरि मंडित महा वृक्षही है ॥ ६९ ॥ तरवारिनिकी घातकरि दूरि जाय परे हैं असवारानिके सिर सो घोडेनिके आसन शून्य होय गये अर घोडे दौडे फिरै हैं सो मानूं अपने स्वामीकूं हेरते फिरै हैं ॥७०॥ अर घोडेनिकूं सींगरहित पशू जानिकरि दयाभावतैं कोऊ न मारता भया ते घोडे ही परस्पर क्रोधरूप भए खुरनिकरि दांतनिकरि युद्ध करते महोंमाहिं मरते मारते भए ॥ ७१ ॥ अर सेलानिके फल तौ टूटि गए अर वांसमात्रही बाकी रह गए तिनिकरि ते धीर युद्ध करते भए सो मानूं अखंड जो लोहदंड तिनिकरि युद्ध करै हैं ॥७२॥ अर कोइक योद्धा खडगके घातसूं सिर पिछली ओर लटक्या सो कछूही न दीखै तब पिछली नसनिके

लटकते सिरकूं पाछा कंठसूं लगायकरि शत्रुकूं देखिकरि युद्ध करते भए ॥ ७३ ॥ अर घोडेनिकूं सहाई करि कपिशीर्ष जातिका धनुष ताकरि युद्ध करते भए सो रण द्विगुण होता भया ॥ १७४ ॥ जयकुमार अपनैं छोटे भाइनि सहित आघा चाल्या अर प्रगट कीया है यमका आकार जानैं नाहर समान तुरंग तापरि चढ्या महाक्रोधायमान नांगा खड्ग है जाके हाथमैं सो अतियुद्ध करता भया ॥ ७५ ॥ प्रलयकालकी अग्निसमान भयंकर ऐसा जयकुमार ताहि युद्धविषैं तुरंग दौडावता देखि शत्रुनिके अश्वनिके समूह तरंगसमान पहली उठे हुते ते पाछे अपने कटकरूप समुद्रमैं पैसि गए ॥ ७६ ॥ चिरकालमैं अवसर पायकरि नृत्य करै हैं ध्वजा जिनिकी ऐसे रथ जुये (जुते) हैं तेज तुरंग जिनिकै तिनिपरि चढे योद्धा शत्रुनिपरि दौडे ॥ ७७ ॥ समस्त आयुधनिसूं भरे रथ तिनिविषैं आरूढ रथनिके नायक ते पींजरेनिमैं तिष्ठते सिंह तिनिसमान गर्जना करते भए ॥ ७८ ॥ रथनिके पहिये तिनिके संघट्टकरि पीसे गए हैं मृतक तिनिके लोहू अर मांसरूप कर्दम (कीचड) विषैं रथनिके समूह ऐसे मंद मंद चालते भए जैसैं समुद्रविषैं पवनके अभावतैं मंद जिहाज चालै ॥ ७९ ॥ बर्छी, खड्ग, सेल, चक्र इत्यादि अनेक अनेक आयुध तिनिकरि भर्‍या जो रण ताविषैं घायल होय गए रथनिके तुरंगनिके पग सो अतिकष्टसूं रथनिकूं खैंचते भए ॥८०॥ सर्व आयुध तिनिकरि भरे रथ तिनिकूं तुरंग धीरे धीरे ऐसैं चलावते भए जैसैं वृषभ सूर्य महातेजस्वी धीरा धीरा चालै। भावार्थ—ज्येष्ठ मासविषैं सूर्य वृषभराशि परि आवै तब दिवस बडा होय है सो सूर्य मंद मंद चालै तैसैं रथ मंद मंद चालते भए ॥ ८१ ॥ ता रणविषैं शत्रुनिका समूह सोही भया अंधकार ताहि भेदता संता जयकुमार ऊगते सूर्यकूं जीतता भया, कैसा है जयकुमार आगैं आगैं दैदीप्यमान प्रगट होता तीक्ष्ण वाणनिका समूह सोई है किरणनिका समूह जाकै ॥ ८२ ॥ खडगकी धारा ताकरि छूट्या है दुष्ट (बिगडा) रुधिर सो मानूं शस्त्रकर्मका वेत्ता जयकुमार वैद्यके भावकूं आचरता संता शत्रुरूप शल्य निकासता भया ॥ ८३ ॥ अर जयकुमारने चलाए बाण सो शत्रुनिकूं ताप उपजाय-

करि तिनिके अशुभकूं सूचते संते धूमकी नाईं ध्वजानिके ऊपर पडते भए ॥ ८४ ॥ वैरीनिके ध्वजदंड तिनिकूं खंडकरि ध्वजानिकूं वंशरहित करता संता अर तिनि शत्रुनिकूं पुरुषार्थरहित करता संता सोमवंशका शिरोमणि ध्वजाके भावकूं आचरता भया । भावार्थ—ध्वजा सर्वोपरि होय है त्यौं इह सबपरि होता भया ॥८५॥ कैइकनिकी ध्वजा उडिगई सो क्षणेक मृतक समान होय तिष्ठे, जे मानी पुरुष हैं, तिनिके मान ही प्राण है । वे प्राणनिकरि न जीवै हैं, केवल मानकरि ही जीवैं हैं ॥८६॥ अर्ककीर्तिके समस्त जोधा जाज्वल्यमान जो जयकुमार सबनिकूं जीतनहारा ताहि सहिवेकूं असमर्थ भए सो सब एक ठौर होय जैसैं पतंग अगनिमैं परैं तैसैं जयकुमारपरि परे ॥ ८७ ॥ तब राजा अकंपनके पुत्र हेमांगद आदि हजार, सजे हैं रथ जिनि महाप्रचंड धनुषके खैंचिवेका शब्द, ताकरि रोकी हैं दशूं दिशा जिनि, ते जयकुमारके बडे भीरी सो शत्रुनिपरि बाणवृष्टि वरषावते भए । मानूं वह बाणवृष्टि अग्निकी वरषा ही है । वे शत्रु जयकुमार तक आय पहुंचै ता पहिली इनि उद्यम कीया ॥ ८८—८९ ॥ अर जयकुमारके भाई अनंतसेन आदि ते शत्रुनिके बाणनिके समूहकूं रोकिकरि रणरूप समुद्रविषैं रथनिकूं प्रेरते भए जैसैं समुद्रविषैं जिहाज प्रेरिए, कैसी है जिहाज ? अर कैसी है इनिके रथ, पवन समान है वेग जिनिका ॥ १० ॥ दोऊ सेनाके शस्त्र तिनिके संघट्टकरि उपजी अग्नि ताविषैं घोडे परते भए तेजस्वी पराया तेज कैसैं सहै ? ॥ ९१ ॥ ता रणविषैं योधानिके शस्त्र जोधा हैं ते परस्पर खंडते भए, एक भी शस्त्र न इनिपरि आया, न उनिपरि गया, शस्त्रविषैं आश्चर्यकारी है प्रवीणता जिनिकी ॥ ९२ ॥ जे बराबरके जोधा हैं, तिनिमैं न कोऊ मूवा अर न कोऊ घायल हुवा, काऊकी जीति अर न काऊकी हार । अहो ! तिनिकूं युद्ध करतैं रणसंग्राम हू क्रीडाके भावकूं आचरता भया ॥ ९३ ॥ या भांति चिरकाल युद्ध करिकैं परस्पर जीतिवेकूं न समर्थ भए, तिनि दोऊ सेनानिविषैं जयकुमार विना औरकूं जीति दुर्लभ है, या रणविषैं जयकुमार ही जीतैगा ॥ ९४ ॥ अंतरंगविषैं है साहस जाकै ऐसा जयकुमार तासैं तिनि सबनिकूं देखिकरि लीलामात्रमैं चक्रवर्तीके पुत्रकी

सेनाकूं वाणनिकरि आच्छादता भया ॥ ९५ ॥ तव चक्रवर्तीका पुत्र अपनी सेनाकूं खेदाखिन्न देखि अपने लालनेत्रानिकी क्रांतिकरि रक्तकमलके रंगकूं जीतता संता महा क्रोधायमान भया। भावार्थ—रक्तकमल हूतैं अधिक लाल नेत्र होयगए ॥९६॥ चक्रवर्तीका पुत्र कहै है—आजि रणविषैं जयकुमारका विध्वंसकरि कल्पपर्यंत पृथ्वीविषैं मेरा निर्मल जस थापूंगा ॥ ९७ ॥ बहुत बढे हैं नाथवंश अर सोमवंश तिनिका आजिही छेदनकरि विजयलक्ष्मीकूं वशिकरि आजही मेरे सुख उपजाऊंगा ॥ ९८ ॥ या भांति अर्ककीर्ति अपने अनिष्टके सूचक शब्द कहता संता क्रोधकरि जयकुमारपरि अपना हाथी प्रेरता भया ॥ ९९ ॥ ता समय प्रतिकूल पवन वाजी, जाकरि अर्ककीर्तिकी ध्वजा पाछी होय गई, अर हाथीनिकी घंटा मंद बाजती भई सो मानूं घंटा मंद न बाजी, सेनाके बलका उत्साह मंद होय गया ॥ २०० ॥ अर हाथिनिका मद सूकि गया अर शस्त्रनिका तेज बुझे आलात समान फीका पडि गया अर हाथी निर्मद होय गये सो ऐसे निर्मद होय गये जो शस्त्रनिका बोझहू नाहीं खैंचि सकैं। कीया है उत्सव जिनि ऐसे महावत तिनि हाथी प्रेरे सो मंद होय गया है कंठ हाथिनिका सो ऐसे गाजैं मानूं कंठ रुकि गया है। अर औरहू अशुभसूचक चिन्ह भए अर हाथी चालते पहाड समान हुते सो तेजरहित चालते भए, जे भद्र जातिके हाथी प्रकृतिहीकरि मंद हैं सो युद्धके भयतैं मृगसमान कायर भए अर और हू अशुभके सूचक अनेक चिन्ह होते भए ॥ ४ ॥ जैसें हीनपुण्यीके दूतके वचन फीके नजरि आवैं अर उन दूतनिका कह्या कोऊ न मानै तैसैं महावतनिका कह्या हाथी न मानते भए ॥ ५ ॥ अर जयकुमार भौंह टेढी कीए अर अपने नेत्रनिकी दीप्तिकरि ऊगते सूर्यकी ज्योतिकूं जीतता अर चढाया है धनुष जानै अर नागेंद्र सारिखा प्रगट है तेज जाका ऐसा भयंकर शत्रुकी उर निरखता अर अपने वाण शत्रुनिकी उर डारता मेघस्वर कहिए जयकुमार, सिंह सारिखा है पराक्रम जाका सो विजयार्ध नामा गजेंद्र तापरि आरूढ भया ॥ २०६-८ ॥ अर जयकुमारकूं पवन अनुकूल होती भई, अनकूल कहिए पीछेसूं पवन आवती भई अर

अर्ककीर्तिके सन्मुख पवन सो प्रतिकूल अर जयकुमारकी ध्वजा भलीभांति फहरती भई अर अर्ककीर्तिकी ध्वजा वांसनिसूं लिपटि गई महामत्त गजराज जिनिपरि ध्वजा फरहरै हैं अर उलंघ्या है सिंहका पराक्रम जिनि ऐसे महा सावंत प्रसिद्ध ते हाथिनिपरि चढे हैं अर देदीप्यमान शस्त्रनिके समूह तिनिकी दीप्ति करि प्रकाशित करी हैं दशूं दिशा जिनि, अर बजाए हैं दुंदुभि वादित्र तिनिके भयानक शब्द, तिनिकरि सब दिशा गाजिरही हैं अर घंटाका मधुर शब्द ताकरि व्याप्त भई हैं सब दिशा बहुरि कैसे हैं गजराज ? प्रगट भया है गर्व जिनिके अर सिंहनिके जीतनहारे, जीतिके प्रगट करणहारे तिनि सहित चक्रीके पुत्रपरि जयकुमार चलायकरि आया, जीतिकी है अभिलाषा जाके, सो प्रलयकालकी पवनकरि उठी समुद्रकी तरंग तिनिकूं उलंघता संता सोमवंशका शिरोमणि, अर्ककीर्तिसूं युद्ध करिवेकूं उद्यमी भया ॥ ९-१२ ॥ महा-विस्तारकूं धरै अतिस्थूल कारी घटा समान गजराज तापरि धरै हैं आयुधनिके समूह तेई भए मयूर, कैसा है जयकुमार ? काढी है खड्गरूप लता सोई अति देदीप्यमान विजुरी है अर नाना प्रकारके वादित्र-निके समूह तिनिका शब्द सोई भई गंभीर मेहकी गर्जना अर नवीन रुधिर तेई भए जलके प्रवाह तिनिकरि पूर्ण कीया है पृथ्वीतल जानै अर अतिशयपणे करि निष्ठुर है निपात जिनिका ऐसे मुदगर सोई अशनिपात भए अर चालती सुफेद पताका तिनिकी पंक्ति तेई भए बुगला तिनिकरि आच्छादित कीया है आकाश जानै ऐसा संग्राम सो वर्षाकालकी शोभाकूं विस्तारता भया ॥ १३-१६ ॥ चिरकाल सर्व योधानिके समूह करि मंडित वह रणांगण ताविषैं दोऊ सेनानिके सर्व शस्त्रनिका बहुप्रकार नाश होता भया ॥२१७॥ गृद्ध पंखीनिके समूह तिनिकरि तौ ऊर्ध्वभाग रुकि गया अर ध्वजानिके वस्त्रकरि मध्यभाग रुकि गया अर दोऊ सेनाके शस्त्र तिनिकरि धरती रुकि गई ॥ १८ ॥ जयलक्ष्मीकूं सुलोचनाकी नई सौकि करि-बेकी है इच्छा जाकै ऐसा जयकुमार सो अर्ककीर्तिकूं अवलोकिकरि अपना हाथी प्रेर्‌या ॥ १९ ॥ सो अर्ककीर्तिके अष्ट चंद्र विद्याधर बडे जोधा हैं अर अर्ककीर्तिके जीवके रक्षक हैं, पूर्वै देख्या है पराक्रम

जिनिका, ते अर्ककीर्तिके अग्रसर होयकरि जयकुमारकूं आगै आयकरि रोकते भए, नाशकूं प्राप्त होयवेकी है इच्छा जिनिकै; जैसैं कर्मनिके समूह क्षपक श्रेणीवारेकूं उद्यमी होंहि रोकिवेकूं, सो ए वाहि कहा रोकैं, एई नाशकूं प्राप्त होंहि तैसैं अष्ट चंद्र जयकुमारके निरोध करिवेकूं उद्यमी भए सो ए वाहि कहा रोकैं, ए ही नाशकूं प्राप्त होंहिगे ॥ २० ॥ अर जयकुमार है सो चिरकालमैं पाया है प्रतिपक्षी जानैं सो अत्यंत दिपता भया, जैसैं अगनि पवनकरि प्रज्वलित भई इंधनकूं पाय करि अतिदिपै तैसैं जयकुमाररूप अगनि उछाहरूप पवनकरि पूर्ण शत्रुरूप इंधनकूं पायकरि अतिदिपता भया ॥ २१ ॥ तासमैं दोऊ सेनानिके प्रसिद्ध बडे बडे राजा राजनिमैं सिंह, ते परस्पर युद्ध आरंभ करते भए ॥ २२ ॥ जोधा तो परस्पर लरैं ही हैं अर हाथी आपसमैं लरते भए सो दांतनिकरि भेदे संते हाथी प्राणरहित भए जैसैं यमक गिरि परस्पर भिरैं तैसैं गजराज परस्पर युद्ध करते भए ॥ २३ ॥ सो रण संग्रामविषैं सव तरफ हाथी वाणानिकरि आच्छादित भए कैसे सोहते भए जैसैं छोटे वांसनिके समूह करि गिरि सोहै मानूं गजराज तौ गिरिराज भए अर वाण छोटे वांसनिके समूह भए ॥ २४ ॥ हाथी क्यों न युद्ध करैं ? दानी कहिए जिनिके मद झरै अर मानी कहिए महामानके भरे अर महा उत्तुंग 'कामवंतो' कहिए चढिवेवारेनिके वशि अर कालसमान क्रूर अर सर्व प्राणीनिमैं वडे ये लक्षण जिनिके ते युद्ध करैं ही करैं ॥ २५ ॥ कैयक मृग जातिके हाथी सो युद्धके आरंभहीविषैं जैसैं मृग भागै तैसैं भयकरि भागे, सो अपनी सेनाहीकूं चूरते भये सो धिक्कार है तिनिकी बडाई अर मोटाईकूं ॥ २२६ ॥ अर कैयक शक्तिकरि समर्थ अथवा शक्ति नामा जो आयुध ताकरि समर्थ ते शक्तिरहित जे असमर्थ तिनिसूं वृथा लरि तिनिकूं हतते भए सो धिक्कार उनकूं अर जे शक्ति करि युक्त तिनिकूं शक्तिरहित असमर्थ मानते भए तिनिहूकूं धिक्कार ॥२७॥ अर कैयक सुभट शस्त्रनिकरि भेदे गये हैं अंग जिनिके अर मुद्रित होय गये हैं नेत्र जिनिके अर भले प्रकार तज्या है क्रोध जिनि अर प्रगट किया है शांतभाव जिनि, अर अपने मनहीकरि बांध्या है पद्मा-

सन जिनि, अर बुद्धिमात्र ही प्रगट करी है आत्मशक्ति जिनि ते सूरवीर श्रीअरहंत देवकूं हृदयविषै धारि करि प्राणनिकूं तजते संते देवलोककूं गये ॥ २८–२९ ॥ अर कैयकनिके आयुके अंत होतैं संतैं क्रोधका त्याग अर पंचपरमेष्ठीका स्मरण होता भया सो अभ्यासतैं कहा न होय ? उनकै जिनशासनका अभ्यास था सो समाधिमरण कीया ॥२३१॥ अर कैयक सांवत वाणनिकरि भेद्या गया है हृदय जिनिका अर मुखतैं स्रवै है रुधिरका प्रवाह जिनिकै अर स्यालिनी खैंचैं हैं आंतनिके समूह जिनिके अर कटि गये हैं हाथ पग जिनिके अर गृद्ध पंखीनिकी पांख तिनिकी पवनकरि दूरिभई है मूर्छा जिनिकी ते कछूक संज्ञा पायकरि समाधानरूप होय शुद्ध जिनशासनकी श्रद्धाकरि इंद्रीनिके जीतनहारे, शूरगतिकूं प्राप्त भये स्वर्गविषै बडी ऋद्धिके धारी देव भए ॥ ३१–३२ ॥ अर सामान्य चक्र जातिके शस्त्र तिनि करि छिदि गये हैं सिर रूप कमल जिनिके महाविकास रूप तिनिकरि अर्च्या संता रण खेत सोहता भया मानूं जयकुमारकी जयलक्ष्मी नृत्य करैगी ताके अर्थि रंगभूमि संवारी है अर कैयक सांवत स्वामीका सन्मान दान महा उपकार ताकरि पूर्ण करिजेवंत होय रहे थे सो अपने प्राण देकरि करज उतान्या, सेवामैं भलीभांति पहोंचे अर कैयक योधा अपने प्राण देवेमें संतुष्ट सो परचक्रके राजा तिनिकरि अपने स्वामीकी प्रशंसा कराय ऋण कहिए करज तातैं रहित भए, धन्य हैं ते जे अपने प्राणहू देकरि धनीका अर्थ सिद्ध करै हैं ॥ ३४–३५ ॥ जयकुमारके चलाए वाण जीतिके स्वरूप सो अष्ट चंद्र विद्याधरनिपरि भलेप्रकार एकै लार परते भए, मानूं देदीप्यमान उल्कापातही है ॥३६॥ जयकुमारकी चलाई वाणनिकी पंक्ति तिनिकूं अष्ट चंद्र विद्याधर करि रोकी सो वाणनिकी पंक्ति अतिप्रज्वलित अष्ट चंद्रनिकी चौगिर्द फिरती परिवेष कहिए कुंड्याला ता समान सोहती भई ॥ ३७ ॥ तासमैं भरतेश्वरका पुत्र जो अर्ककीर्ति सो समस्त विद्याधरनिका अधिपति जो सुनमि ताहि रोषकरि शत्रुनिका विनाश करहु ऐसी कहता भया ॥ ३८ ॥ तब सुनमि महा जोधा तिरस्कार कीया है शत्रुनिका पराक्रम जानै सो समस्त विद्याधरनि सहित आकाशविषैं अगनिवृष्टिकी नाईं वाणनिका समूह

वरषावता भया ॥३९॥ ते सुनामिके वाण परचक्रकूं भयके करणहारे, किंकरकासा है आकार जिनिका, ते शब्द करते सब दिशानिकूं रोकते अतितीक्ष्ण शत्रुनिपरि परते भए, कौन कौनकूं बेधैं इह है अभिप्राय जिनिका ॥४०॥ तब जयकुमारके आदेशतैं मेघप्रभ नामा विद्याधर सुनमि परि ऐसैं चाल्या जैसैं गजराजपरि मृगराज गमन करै वह पराक्रमी अपने शस्त्रनिकरि सुनमिकूं आकाशविषै रोकता भया। सुनमिनें मेघप्रभपरि तिमिर वाण चलाया तब यानैं सूर्य वाण चलाया तिमिर वाणकूं निवारया बहुरि सुनमिने अगनिवाण चलाया तब मेघप्रभनै जल वाणनिकरि अग्निवाण निवारया बहुरि वानै गजवाण चलाया तब यानै सिंहवाण करि गजवाण निवारया बहुरि वानै मेघवाण चलाया तब यानै पवनवाणकरि मेघवाण निवारया इत्यादि जे जे वाण सुनमिने चलाए ते ते मेघप्रभने असार करि छेद डारे ॥४१-४२॥ जयकुमारके पुण्यके उदयतैं तत्काल वह मेघप्रभ विद्याधरनिका अधिपति जो सुनमि ताहि संग्रामविषै जीतता भया, जाकै दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ताका बल होहि सोही रणसंग्रामविषै जीति पावै तहां छोटे मोटेका कारण नाहीं ॥ ४३ ॥ वर्षाकालके मेघ तिनिकी घटासमान हस्तीनिकी सेना ताहि उलंघिकरि अर्ककीर्ति जयकुमारकूं आय वेढता भया ॥ ४४ ॥ तब जयकुमारहू विजयार्ध नामा गजराजकूं सन्मुखकरि अर्ककीर्तिके निकट जाय ऐसे वचन कहता भया कैसा है अर्ककीर्ति ? धीरनिमैं महा उद्धत है अर जयकुमार धीरनिमै उदात्त कहिए उत्कृष्ट है। जयकुमार अर्ककीर्तिसूं कहै है—अहो कुमार ! सर्व न्यायके मार्ग चक्रवर्तिकरि भलीभांति प्रवर्तै हैं, सो तुम दुराचरनिकरि न्यायमार्गके विरोधी मति होहु। तुम बुद्धिमान हो, तिहारी बुद्धि निर्दूषण है, सो पापी जीवनि तिहारी बुद्धि दूषणकूं प्राप्त करी है, सत्पुरुषनिकरि निंदायोग्य जो कामकी दशा ताहि प्राप्त भये हो। पापी जीवनि तिहारा अंतःकरणविषै वृथा कोऊ कलेस उपजायो है, सबनिका स्वामी चक्रवर्ती ताकी इह सब सेना है सो कोपकरि तुम तत्काल सेनाकूं क्षय करौ हौ, मोहि तुमसूं लरना अति अयोग्य है सो इह युद्ध मनैं करौ, तिहारी अर मेरी युद्ध करिबेमैं अकीर्ति कल्पके अंतपर्यंत निश्चल रहैगी, चक्रवर्तीके बहुत पुत्र हैं, तिनिमैं राजयोग्य तुमही हौ,

तिहारे अन्याय मार्गके प्रवर्तनतैं चक्रवर्तीके हू मनकूं पीडा होयगी। ए दुष्ट विद्याधर न्यायमार्गकूं हत्या चाहै हैं सो मोहि आज्ञा करौ इनि सबनिकूं बांधिकरि तुमकूं सौंपूं तुम क्षणमात्र हाथी चढे खडे रहौ, इनि सबनिका अर मेरा युद्ध देखहु, इही मेरी प्रार्थना है अन्यायका करना सोही पराभव है, अर बडे पुरुषनिकूं अन्यायका त्याग सो पराभव नाहीं। हे कुमार! मोसूं संग्रामविषैं तिहारी ही मोटी हानि है, ऐसा कौन बुद्धिमान है, जो तीक्ष्ण खड्गकरि आपकूं आप हणै। या भांति न्यायरूप वचन जयकुमारने कहे सो अर्ककीर्तिने न धारे जैसैं अभव्य धर्मोपदेशकूं न धारै। जयकुमारके वचनकूं उलंघिकरि अर्ककीर्ति अपने गजकरि जयकुमारके गजकूं घातबेकूं उद्यमी भया ॥४५॥ तब जयकुमार गजयुद्धविषैं प्रवीण महाक्रोधरूप होय अपने विजयार्ध गजके दांतनिके घातका घात करता भया ॥५५॥ बहुरि युद्ध करिबेकी इच्छाकरि अर्ककीर्तिकी सेनापरि जयकुमार आवता भया तासमैं सूर्य अस्त होयबेकूं सन्मुख भया। ॥५६॥ अर्क कहिए सूर्य सो जयकुमारके तेजकूं न सहता संता संकोची हैं समस्त किरण जानैं सो क्रांतिरहित भासताभया तासमय सूर्य आरक्त होय गया सो जयकुमारसंबंधी बाण विद्याधरनिपरि आकाशकी उर चाले सो मानूं सूर्यके अंगमैं लागे हैं तिनिहीं करि लाल होय गया, जो लोगनिके नेत्रनिकूं अप्रिय होय, अर क्रूरस्वभाव होय सो प्रतापरहित होय, सूर्यहू प्राणीनिके नेत्रनिकूं आतापकारी है, अर क्रूर है सो प्रतापरहित होय गया, अपने कर कहिए किरण, तिनिकरि अवलंबन कीया है पर्वत जानैं, सो पर्वतपै न राख्या गया, अस्त होय गया ॥२५७–६०॥ मानूं वह सूर्य अर्ककीर्तिकूं अपनी कीर्तिरूप जान ताका पराभव सहि न सक्या सो पीडाकरि अस्त होय गया जयकुमारकी जीतिविषैं कछुइक विलंब करता भया। भावार्थ—बडे योद्धा रात्रिविषैं युद्ध न करैं इही कालका विलंबन ॥६१॥ यद्यपि सूर्य स्फुटालोक कहिए प्रगट उद्योतकूं धरे हुता अर सद्वृत्त कहिए गोल हुता, तो हू अस्तकूं प्राप्त भया सो वारुणीदिशा जो पश्चिम दिशा ताहि आश्रयकरि रक्त होय नीचा गया। भावार्थ—जो स्फुटालोक कहिए प्रगट सम्यक्दर्शनकरि मंडित होय अर सद्वृत्त कहिए उत्तमचारित्रका धारक होय सो अधो-

गतिकूं न जाहि, परंतु वारुणी कहिए मदिरा ताविषैं आसक्त जे पापी जीव तिनिका आश्रय करै तो दर्शन अर चारित्रतैं रहित होय अधोगतिकूं गमन करै सो सूर्य वारुणी जो पश्चिम दिशा ताका आश्रयकरि नीचा गया ॥६२॥ सूर्य है सो उदयविषैं वडाई है कांति जानै अर विश्वविषैं व्यापिकरि प्रतापवान है, तथापि दिनके अंतविषैं अस्तकूं प्राप्त भया सो तीव्र है कर कहिए किरण जाकी अथवा तीव्र है कर कहिए दंड जाका सो कैसैं तिष्ठै? भावार्थ—जो प्रजाकूं तीव्र कर लगावै सो न तिष्ठै। कैसा है तीव्र करका लगावनवारा दुष्ट भूपाल, उदय कहिए अपने उद्योतविषैं वढाया है उपद्रव जानै, अर जगतमैं व्यापिकरि प्रतापवान भया तथापि भाग्यके अंतविषै अस्तकूं प्राप्त होय, जो प्रजाकूं पीडा करै सो कैसें तिष्ठै? ॥ ६३ ॥ आतापके हरणहारे अर महानिर्मल जे सरोवर ते सूर्यकूं कांतिरहित देखिवेकूं न इच्छते भए सो मानूं कमलरूप नेत्रनिकरि शोक धारते भए। भावार्थ—सूर्यके अस्त होयवेकरि कमल मुद्रित भए ॥ ६४ ॥ अर जयकुमारके तीक्ष्ण शस्त्रनिके प्रहार तिनि आकाशतैं डाले खग कहिए विद्याधर तिनिकूं देखिवेकूं असमर्थ भए खग कहिए पंखी सो मानूं अपने घुसालेमैं प्रवेश करते भए। भावार्थ—खग नाम विद्याधरूंका अर खग नाम पंखीनिहूका है सो खगनिहूका खेद खग न सहारि सकै तातैं घुसालेनिमैं पैठे ॥ ६५ ॥ अहो भव्यजीव हो! देखहु सूर्यकी प्रभा प्रतापसहित है, अर सूर्य सबकरि मान्य है तोऊ निरंतर अस्त होय है, सो क्रूर कर्मकी चेष्टा विचारमैं न आवै ॥ ६६ ॥ जव सूर्य अस्त भया तव पंडितनिके समूह ऐसैं कहते भए—जो अर्क कहिए सूर्य सो तौ उपमारूप है, अर अर्ककीर्तिकूं अर्ककी उपमा देहैं इह उपमेय भया सो अर्कही अस्त भया तव अर्ककीर्तिकी कहा वात? इह तौ पराभव पावै ही पावै ॥ ६७ ॥ कैसा था सूर्य? दुर्निरीक्ष्य कहिए नेत्रनिकरि निरख्या न जाय, अर कर कहिए किरण तिनिकरि तीक्ष्ण कहिए महाप्रज्वलित, अर तप्तायमान है मंडल कहिए विंव जाका अर अत्यर्थपणें कुवलय कहिए कमोद तिनिका विध्वंसी कहिए मुद्रित करणहारा अर दुस्तुतो कहिए खेदका उपजावनहारा अर दुर्मतीनिकरि स्तुति करिवेयोग्य दुःसुतो

कहिए खेदका उपजावनहारा अर स्तुति करिवेयोग्य सो ऐसा होय ताका अस्त क्यों न होय अर दूजा अर्थ—जो ऐसा पुरुष होय ताका निपात क्यूं न होय ? अवश्य होय ? कैसा है पुरुष ? जो अतिक्रूर काहूतैं निरख्या न जाय अर प्रजाकूं तीक्ष्ण कर लगावै अर आतापरूप किया है मंडल कहिए देश जानें, अर कुवलय कहिए पृथ्वीमंडल ताका विध्वंस करणहारा अर दुःसुतो कहिए दुष्ट है पुत्र जाकै अर दुर्बुद्धिनिकरि स्तुति करिवेयोग्य ऐसा पुरुष अस्तही होय ॥ २६८ ॥ बहुरि कैसा है सूर्य ? निःसहायो कहिए जाकै कोऊ सहायी नाहीं अकेला है, अर निरालंबो कहिए जाकै अवलंबन नाहीं, आकाशविषै निराधार है, ऐसा है तौऊ नाहीं सहि सकै हैं पर कहिए चंद्र दीप रत्नादिक तिनिका तज, अर सिंहराशि कहिए सिंहराशिका स्वामी है, अर चल कहिए चंचल है अर क्रूर है, अर शीघ्रही ऊंचा चढै है, लोकानिके सिरपरि गमन करै है ऐसा है ताका पतन क्यों न होय ? अर दूजा अर्थ—जो पुरुष निःसहाय होय, निरालंब होय अर औरनिका तेज न सहि सकै अर सिंहराशि कहिए सिंहसमान क्रूरजीव तिनिकी राशि कहिए समूह ताहि धारै अर चंचल होय—चलवचन होय, महाक्रूर होय, महाअभिमानी होय, सवनिके सिर चढ्या रहै ताका निपात क्यों न होय ? अवश्य होय ॥ ६९ ॥ बहुरि कैसा है सूर्य ? पापरोगी कहिए कुष्ठ रोगसमान आरक्त है अथवा पाप कहिए राहु ताका है रोग कहिए अवरोध जाकूं अर परप्रेर्यो कहिए विमानके जुए हैं देवरूप अश्व तिनिकरि चलाइए है, अर विषममार्ग जो आकाश ताविषैं गमन करै है, अर रक्तरुक् कहिए आरक्त है क्रांति जाकी अर सकलद्वेषी कहिए कलासहित जो चंद्रमा ताहि मंद क्रांति करै है, अर वर्धिताशो कहिए प्रकाशी हैं दिशा जानै, अर अक्रमानुग कहिए अरुण सो है अग्रगामी सारथी जाकै, अर दूजा अर्थ—जो ऐसा पुरुष होय ताका पतन क्यों न होय अवश्य होय । पापरोगी कहिए पापरूप है रोग जाकै, परप्रेर्यो कहिए दुष्टनिकी सीख चालै, वे कहैं ज्यों करै आपमैं समझि नांही, अर विषममार्ग जो अन्यायमार्ग ताविषैं गमन करै, अर रक्तरुक् कहिए रुधिर विकारका है रोग जाकै अथवा रक्त कहिए अपने अनुरागी भक्त तिनिकूं पीडाकारी

है, अर सकलद्वेषी कहिए सकल लोकनिका द्वेषी है अर वढाई है आशा कहिए तृष्णा जानै अर अक्रमाग्रग कहिए राजनिकी परिपाटी तजिकरि चालै है अर कुमारगी है जो अैसा होय सो अधोगमन क्यों न करै ? अवश्य करै ॥ २७ ॥ अर सूर्यके विद्यमान बुध मित्र अर गुरु कहिए वृहस्पति सोही है गुरु जाकै अैसा है तोऊ अस्तकूं प्राप्त भया काहेतैं ? जो बहुदोषो कहिए अनेक रत्रिनिका समीपी है, रात्रिही है आगै पीछैं जाकै अर आतापकरि युक्त है, महावैद्यनिकरि जाका जतन न होय एक तौ इह अर्थ भया अर दूजा अर्थ—जाकै विद्यमान बुध कहिए पंडित सो मित्र अर विवेकी गुरु तोऊ अस्तकूं प्राप्त होय, काहेतैं जो बहुदोषो कहिए महादोषनिका भर्‍या अथवा वात पित्त कफ आदि रोगनिकरि पीडित, जाके रोगनिका महावैद्य यत्न न करिसकैं, व्याधिकरि पीडित सो पतनकूं प्राप्त होय ही ॥ ७१ ॥ (यह च्यारि श्लोकनिका कुलक कह्या) जब सूर्य अस्त भया अर रात्रिका समय आया तब दोऊ सेनाके मंत्री दोऊ नृपनिसूं वीनती करि रात्रिका युद्ध मने करावते भए । दोऊ नृप महाक्रोधरूप होय रहे हैं तिनि मंत्रिनि भलीभांति समझाए—जो रात्रिका युद्ध महाअधर्म है, सूरवीर क्षत्रीनिकूं कर्तव्य नांही ॥ ७२ ॥ तब दोऊ राजा मंत्रीनिका कह्या मानि युद्धसूं बैठि रहे, रण क्षेत्रविषैं रात्रि व्यतीत करते भए, कैसा है रणक्षेत्र ? तीव्र घावनिकरि घायल जे पुरुष तिनिकी असह्य वेदना तिनिके शब्दकरि महा भयानक है ॥ ७३ ॥ जब सूर्य अस्त भया तब दिनने विचारी—जाकरि मैं प्रगट भया ताहि इह पश्चिम दिशा निगलती भई अैसा विचारिकरि संध्याके छलकरि पश्चिम दिशापरि मानो महाकोप करता भया । भावार्थ—संध्याकी आरक्तता नांहीं है, दिवस कोपकूं प्राप्त भया है ताकी मानूं ललाई है ॥ ७४ ॥ सूर्यके अस्त भये पीछैं कछु इक वेला संध्या रही, अर संध्याका कछु इक उद्योत रह्या बहुरि मानूं संध्या विचारै है—सूर्य तौ दृष्टिसूं अगोचर भया अर मैं वाके पीछैं रहती अर प्रकाश राखती लाजा न मरूं इह विचारि संध्या हू व्यतीत भई, सूर्यके पीछैं ही गई ॥ ७५ ॥ संध्याने विचारी—जो सूर्य उदयके समैं मोहि अग्रेसर करि दिवस प्रगट करता भया

अर अब अस्तके समै मोहि पीछैं करी अर रात्रिकूं प्रगट करी करी सो अब मेरा रहना कहा? इह विचारि संध्या विलय गई अर जोग्य तौ इह ही है जो उदयविषैं अपनेनिकूं आगै करै अर कष्टविषैं पीछैं करै, सो करी। अब मोहि स्वामीके पीछैं ही गमन करना योग्य है इह धारि अत्यंत शोकथकी संध्या हू तत्काल विलय गई ॥ ७६ ॥ दिनके समय तिमिर गुफादिकविषैं छिप रह्या हुता सो अब सूर्यके अस्त होवेविषैं सर्वत्र फैलि गया याहीतैं जे राजविद्याविषैं प्रवीण हैं ते शत्रुका विश्वास नाहीं करै हैं॥७७॥ अर आकाशके महत्त्वपनेकूं धिक्कार, जो पहिली प्रकाशकूं अवकाश दीया हुता अर संध्या पीछैं तैसे ही तिमिरकूं अवकाश दीया सो बडेनिकूं इह न चाहिए जो विवेकीनिका जैसा सन्मान करै तैसाही अविवेकीनिका करै, अविवेकीनिका सन्मान करना मूढता है, सो आकाश शून्यहृदय है तातैं तिमिरकूं अवकास दीया ॥ ७८ ॥ अथानंतर तिमिरके बलतैं रात्रिविषैं दीपादिकका प्रकाश देदीप्यमान होता भया जैसें पंचम कालविषैं जिनेंद्र अर मुनींद्रके अभावतैं कुलिंगीनिका उद्योत होय। भावार्थ—भगवानरूप सूर्य तिनिकी प्रगटताविना अज्ञानके बलतैं कलिकालविषैं कुलंगी जे मिथ्यादृष्टि तिनिका प्रकाश होय ॥ ७९ ॥ तिमिरकरि अंधरूप होय गया विश्व ताहि उद्योत करिबेकूं अमृतके कुंभसमान जो चंद्रमा सो दैवयोगतैं उद्योत करता भया ॥ ८० ॥ चंद्रमा अपनी किरणनिकी पंक्तिकरि विस्तीर्ण तिमिरकूं निगलता भया जैसें बढ्या जो श्वांस ताके क्षयकरिबेके अर्थि धूम्रपान करै ॥ ८१ ॥ यद्यपि चंद्रमाने तिमिरके नाशका उद्योग कीया तथापि संपूर्ण तिमिरकूं न हरिसक्या, काहेतैं? चंद्रमाका नाम हरिणलांछन है अर अशुद्धमंडल कहिए कलंकयुक्त है मंडल जाका अर प्रतापरहित सीतल है सो सर्वथा तिमिरकूं कैसें हरै भावार्थ—जो राजा मृगसमान कायर होय, अर शत्रुनिकरि सहित है देश जाका अर प्रतापरहित होय सो शत्रुनिकूं कैसें हणै कदाचि न हणसकै ॥ ८२ ॥ जब चंद्रमा उदय भया तब ताके कर कहिए किरण तिनिके प्रकासतैं सरोवरी हैं ते विकासकूं प्राप्त भए कुमुद रूप लोचन, तिनिकरि आल्हादकूं प्राप्त भई।

भावार्थ—जैसैं नायकके करस्पर्शतैं नायिका आल्हादकूं प्राप्त होय अर वाके लोचन हरषित होंय हर्षित नेत्रनिकरि बल्लभकूं देखैं तैसैं चंद्रमाकी किरणके सपरसतैं सरोवरी आल्हादकूं प्राप्त भई अर विकसे कमोदरूप लोचन तिनिकरि मानूं चंद्रमाकूं अवलोकती भई ॥ ८३ ॥ अर जे प्रोषितपतिका नायिका हैं जिनिका पति विदेशविषैं तिनिकूं चंद्रमा बहुत बुरा लागै जैसैं विस्फोटिक बुरा लागै अर कंठमाल कहिए गलेकी गांठि बुरी लागै तैसैं चंद्रमा बुरा लागा। वियोगिनी नायिका विचारै है—बल्लभ विना हमारा जीतव्य कहा ? सो वियोगिनी अतिव्याकुल भई ॥ ८४ ॥ पाया है भलेप्रकार चंद्रमाका बल जानैं ऐसा हर्षरूप जो काम ताकी अतिहास्यरूप जो सघन चांदिनी सो पृथ्वीविषैं व्याप्त होती भई ॥ ८५ ॥ अज्ञानी जीवनिके चित्तविषैं रागरूप अंकुर सूर्यकी उष्ण किरणनिकरि मुरझाय रह्या था सो चंद्रमाकी किरणरूप मेघकी वृष्टिकरि रागरूप अंकुर प्राणीनिके लहलहाट करता बढता भया। भावार्थ—दिवसविषैं काम मुद्रित था सो चांदनी रात्रिविषैं कामका अंकुर वृद्धिकूं प्राप्त भया ॥ ८६ ॥ अर जिनिका पति दूजी नायिकापै गया है ते खंडिता कहिए सो खंडितानिकै चंद्रमाकी किरणनिकरि अति आताप बढता भया जैसा सूर्यकी किरणनिकरि आताप न बढै सो वस्तुनिकी शक्ति विचित्ररूप है ॥ ८८ ॥ अर जे खंडिता नायिका हैं तिनिकैं पतिके वियोगतैं कामरूप अगनि सहजही अतिप्रज्वलित भई है अर मादक वस्तुनितैं तथा सुगंधादिक द्रव्यनितैं कामाग्नि अत्यंत प्रज्वलित होय तातैं खंडिता नायिका सुगंध्यादिक द्रव्यनिकूं तजती भई ॥ ८८ ॥ अर कोई कलहांतरिता कहिए पति अपने महल आया था अर यानैं कलहकरि अपने महलतैं निकासि दीया बहुरि वाके गये पीछैं कामकरि अति व्याकुल भई ताहि सखीजन उपायकरि शांत करती भई ॥ ८९ ॥ अर जे स्वाधीनपतिका कहिए जिनिका पति जिनिके आधीन है अर जिनिके श्राविकाके व्रत हैं ते मनमें विचारै हैं जो हमारै पतिसूं प्रेम कृत्रिम नाहीं, सहज स्वभावही है सो हमारे कहा सुगंधादिके लेपकरि ? अर कहा वस्त्र आभूषणके आडंबरकरि अर कहा कामोद्दीपन चूर्णादिकरि ?

ऐसा विचारिकरि कामोत्पादक वस्तुनिकूं दूरिहीतैं तजती भई ॥ ९० ॥ या भांति प्रगट भया है कामका रस जिनिके ऐसी नानाप्रकारकी नायिका ते प्रीतमके संगसैं वचनतैं अगोचर जो प्रीति ताहि अंगीकार करती भई वक्र हैं विलोकन जिनिके ॥ ९२ ॥ अर रणभूमिविषैं कोइक त्रिया प्रीतमकूं वाणनिकरि प्राण-रहित हुवा देखि आप वाणनिकरि घायल नाहीं हैं, तोऊ प्राणरहित होती भई इह बडा अचिरज है, जो वल्लभ तौ घावनिसूं मूवा अर इह वल्लभा प्रीतमके वियोगतैं विना घावनि मुई ॥ ९३ ॥ अर कोइक नायिका अपने नायककूं घावनिकरि पूर्ण ऐसा देख्या जाके अंग उपांग दृष्टि न परैं तब वह मोहकरि ऐसे जानती भई जो मति कदाचि इह मेरे नखदंतनि ही करि घायल मूर्छित भया है ऐसा जानि आपहू प्राणरहित होय गई ॥ ९४ ॥ अर कोइक प्राणवल्लभा प्रीतमकूं रणभूमिविषैं पर्‍या देखि मोहकी मारी ऐसैं कहती भई-जो मोहि तजिकरि तुम वीरलक्ष्मीकूं वरिवे आये हुते, वह है अति प्यारी तुमकूं सो वाके कठोर प्रहारकरि तुम्हारी यह दशा भई, ऐसैं कहिकरि मरणकूं प्राप्त भई ॥ ९५ ॥ अर कोइक कांता कांतसूं ऐसैं कहती भई-जो मैं तिहारे साथ आवती हुती, सो मोहि तुम न आवने दई पाछी विदा करी, अर कीर्तिके करग्रहणकूं आए वह कीर्ति वाहिर भटकनहारी ताहि तुम जानते थकेहू भूलिगये, देश देश भटकणहारीकूं निर्मलजानी, सो वाने ठगे । भावार्थ-प्राणरहित कीए ॥ २९६ ॥ सो कीर्ति तो इहां रही, अर तुम परलोककूं गमन कीया ऐसे कीर्तिसूं ईर्ष्यारूप वचन कहि करि त्रिया प्रीतमके मार्ग चाली । भावार्थ-प्राण तजे ॥ २८७ ॥ अर कोइक प्राणरहित प्रीतमसूं मोहकी मारी ऐसैं कहती भई-जो मैं ज्ञानरहित अविवेकिनी तुम मनैं करी सो उठिगई, मैं साथकौ न आई जो मैं होती तो मोथतैं वे तुमकौं देवांगना कैसैं ले जातीं, मैं न जाने देती सो मेरी ही भूलि भई ॥ ९८ ॥ सो भई सो भई, अबहू मैं कहा स्वर्गमैं तुमकूं न हरूंगी ? अवश्य हरूंगी ऐसे विलापकरि मिष्ट हैं आलाप जाकै, सो प्रीतमका साथ करती भई, वल्लभकूं मृतक देखि आपहू मृतक भई ॥ ९९ ॥ अर कोइक सुभट

वाणनिकरि भेद्या है शरीर सर्वांग जाका, सो स्त्रीके आगमकूं वांछता थका क्षणेक शरीरविषैं तिष्ठ्या, नेत्रनिविषैं आय रह्या है जीव जाकै, मानूं कीलि राख्ये हैं प्राण जानैं ॥३००॥ क्रोधकरि डसे हैं होठ जानैं ऐसे कांतकूं कांता देखिकरि वीरलक्ष्मीसूं करी है ईर्ष्या जानै, सो क्षणेक कोपकरि प्राणनिकूं तजती भई ॥ ३०१ ॥ अर कोइक सुभट वाणनिकरि भेद्या है हृदय जाका, अर अपने हृदयविषैं प्रियाकूं तिष्ठती जानि चिंता करता भया—जो हाय ! वह गरीबिनी मूई ऐसा पश्चात्तापकरि प्राणनिकूं तजता भया ॥२॥ अर कोइक जोधा शस्त्रनिकरि भेद्या है सर्व अंग जाका, अर कांताकी चिंताविषैं तत्पर है चित्त जाका सो ताहि ग्रहिवेकूं काल आया सो मानूं कालके हाथतैं ताहि काम ग्रहता भया। भावार्थ—कांताके चिंतवनतैं कामातुर होय गया ॥ ३ ॥ अर कोइक योधा खड्गधारी व्रतका धारक कठंगत प्राण हुता सो प्राणवल्लभा प्रेम अर शोककरि ताके कंठसूं आलिंगन करती भई सो तासहित तत्काल मरणकूं प्राप्त भया। भावार्थ—दोऊ अर कोई एक प्राणप्रिया वल्लभसूं ऐसैं कहती भई जो आगामी कालविषैं न जानिए स्वर्गविषैं कहा है ? हमारा तिहारा संगम इहांही होउ स्वर्गविषैं तिहारै बहुत अप्सरा हौंहिंगी तहां मेरा अवकाश कहां ? तातैं मैं तौ अबही रमूंगी या भांति मोहके वचन कहती भई ॥ ३०५ ॥ अर कोईक सावंतिनी सावंतसूं ऐसे वचन कहतीही तृप्ति करती भई सो कहा कहती भई—या लोकविषैं अथवा परलोकविषैं कहूं निवास होउ या चिंताकरि अपने ताईं कहा ? तिहारा हमारा वियोग कहूंभी नाहीं, जगतविषैं तुम जाउगे तहां ही मैं तिहारै लारहूं, तुम देव होउगे तो मैं तिहारी देवांगना हौंहिगी ऐसे वचन कहि अपने कांतकूं प्रसन्न करती भई ॥ ६ ॥ अर कोइक सांवतनी नेम व्रत सहित जो सांवत ताहि ऐसैं कहती भई जो तुम वीरलक्ष्मीकूं वरो अर कीर्ति चिरंजीव होउ अर मोहि यह पापी काम हनै तौ निश्चित हनूं ऐसैं वीरलक्ष्मी अर कीर्तिपरि कोपके वचन कहती भई ॥ ३०७ ॥ अर कोइक पतिव्रता प्रीतमसूं ऐसैं कहती भई जो तिहारे प्राणनिकरि जयकुमारकी जीति होय तौ निश्चिंत होऊ, आपा दोऊही व्रतके धारक हैं सो देवलोककूं गमन

करेंगे । भावार्थ—तिहारा हमारा मरण लार ही होयगा ॥३०८॥ अर कोइक नायका कामसूं अपना अभिप्राय ऐसैं कहै है—हे काम ! जे नर नारी संयोगी हैं तिनिविषैं तौ तेरे पुष्पवाण अतिशयपणैं करि सुखके कारण है संयोगिनिके तू सुखका कर्ता है अर जे महापुरुष रागरहित हैं तिनितैं तू डरै है हमकूं तौ तेरे वाण पुष्परूप नाहीं महा वज्ररूप हैं तू हमारा अंतक है या भांति नायका कायप्रति कहती भई ॥९-१०॥ प्रेमही है प्राण जिनिकै तिनिकै परस्पर आलाप करि रात्रि वितीत भई अर प्रात संध्या राक्षसी समान रण देखिवेकूं रागभावतें आई । भावार्थ—प्रात संध्या प्रगट भई । प्रभातके केईक वादित्रनिके शब्द दोऊ सेनानिविषैं एकैकाल होते भए दसूं दिशाविषैं वादित्रनिके शब्द विस्तरे ॥ ११-१२ ॥ पूर्व दिशा सूर्यके उदय पहलीही मानूं स्नेहतैं सोहती भई जो पश्चिमदिशाविषैं तो चंद्रमा गया है सो अस्त होय गया अर मोविषैं सूर्यका उदय होयगा सो पूर्वदिशा अनुरागकी भरी लाल होय गई ॥ १३ ॥ कमलरूप नेत्रनिकरि प्रबुद्ध भए सरोवर सो भ्रमरनिकी पंक्ति अपना प्रयोजन सिद्ध करि निद्राकी नाईं निकसी ॥ ३१४ ॥ जब सूर्य अस्त भया तब कमलिनी मुद्रित भईहुती सो सूर्य अपनै उदयविषैं अपनी किरणनिकरि कमलनिकूं विकाशरूप करता भया सो मित्रताके एही लक्षण हैं जो अपने उदयविषैं मित्रकूं आनंदरूप करै ॥ १५ ॥ रक्त कहिए अरुण अथवा रागी पुरुष सो अपने कर कहिए किरण अथवा कर कहिए हाथ सूर्यकी पक्ष किरण लेनी अर रागीपुरुषनिकी पक्ष हाथ लेने सो संध्यारूप स्त्रीसूं आलिंगन करि सूर्य तत्काल तजता भया जैसैं रागी-पुरुष स्त्रीसूं आलिंगन करि सेजकूं तजै तैसैं सूर्य संध्यासूं आलिंगन करि तजता भया मानूं सूर्य है सो भोगनिकूं प्रगटपनैं अति विरस दिखावता उदय होय है ॥ १६ ॥ अर पूर्वदिशा संध्याकूं पहलीही तौ अपनी जानि आलिंगन करती हुती प्रेमसूं मिली हुती वहुरि सूर्यकूं संध्याविषैं रक्त देखि विचारी मति याविषैं अनुरागी होय ऐसा जानि ईर्षा करि पूर्वदिशा संध्याकूं क्षणमात्रहू न सह सकती भई । भावार्थ—पूर्वदिशाविषैं पहली प्रातसंध्या फूली हुती पीछे क्षणेकमैं विलय गई ॥१७॥ जे महासावंत नियमके धारक

हैं ते वीर शय्याविषै शयनकरि रात्रिकूं वितीत करते भए, प्रभातही स्नानकरि समस्त दिन अनाथ याचकनिकूं दान देइ तृप्ति करते भए ॥१८॥ बहुरि विधिपूर्वक जिनेंद्रकी पूजा करि स्तुति करि बडे बडे राजा क्षत्रीनिके नायक रणविषैं सन्मुख युद्धभूमिविषैं तिष्ठे, भगवंतका है इष्ट जिनिके। कैसे हैं भगवान ? तीन जगतकरि ध्यायवेयोग्य हैं ॥१९॥ आप जयकुमार जो पहली चक्रवर्तीनें वज्रकांड नामा धनुष दीया हुता ताहि ग्रहिकरि अरिंजय नामा रथपरि आरूढ भए जोए हैं श्वेत अश्व जाकैं ॥ ३२० ॥ बंदीजन अर मागध तिनिके समूह करि स्तुति करिवेयोग्य हैं गुण जाके, जीति लक्ष्मीका अभिलाषी गजके चिह्नकी है ध्वजा जाके सो ध्वजा खडी करी अरंजय नामा रथपरि असवार भया ॥२१॥ जयकुमार है सो धनुषके फिडचि चढावतासंता काल समान विकराल है आकृति जाकी धनुषकी फिडचिके चढावनेंके शब्दकरि दिग्गजनिका मद हरता भया, कैसा है फिडचिके चढावनेका शब्द भीषम कहिए महाभयंकर है ॥२२॥ अर भरतेश्वरका पुत्र अर्ककीर्ति उदय भई है अकीर्ति जाके अर दूरि होय गई है छवि जाकी सो जुए हैं घोडे जाकै ऐसे रथपरि आरूढ भया है मानूं वंदिगृहमैंही बैठा ॥२३॥ अर अष्टचंद्र विद्याधर तिनिकूं आपनैं साथी कीए, कैसे हैं अष्टचंद्र ? युद्धके नष्टचंद्र समान है अर या अर्ककीर्तिके चक्रके चिन्हकी केतु कहिए ध्वजा हैं सो मानूं खोटे स्थानक वैठा जो केतु नामा ग्रह ताही समान हैं ॥२४॥ अर अर्ककीर्तिकूं पवन प्रतिकूल है सो अपनें वाण उल्टे आपहीपरि आवैं जैसैं मध्यान्हके सूर्यके सन्मुख कोऊ वाण चलावै सो चलावनहारेहीके अंगपरि आय परैं तैसैं अर्ककीर्तिकी सेनाके वाण पाछैं याहीकी सेनापरि आय परैं हैं अर जयकुमारकी सेनाके वाण अतिशीघ्र ही इनिकी सेनापरि आय परैं हैं तिनिकरि सेनाके लोक वेधे गए हैं ॥२५॥ जैसैं हाथीका छावा अशुभकर्मकरि प्रेर्या बडे गजराजपरि चलायकरि आवै तैसैं अर्ककीर्ति गर्वथकी जयकुमारपरि आया। कैसा है जयकुमार ? शत्रुनितैं देख्या न जाय अर महातजोमय है देदीप्यमान है प्रकाश जाका ॥३२६॥ जब अर्ककीर्ति चलायकरि आघा आया तब जयकुमारहू वाणनिके समूह तिनिकरि सघन मोहकी रचना करता भया संता अर्ककी-

र्तिकी प्रभाकूं आच्छादता संता सन्मुख आया। भावार्थ—जयकुमारके वाणनिकरि अर्क कहिए सूर्य दवि गया ॥ २७ ॥ अर्ककीर्तिनैं जे वाण चलाए ते जयकुमारनैं आप तक आवे न दीए बीचिही छेदे अर जयकुमारके वाण ऐसे चाले जैसी सूर्यके उदयविषें सूर्यकी किरण चालैं ॥ २८ ॥ अर्ककीर्तिका छत्र अर शस्त्र अर ध्वजा जयकुमार छेदता भया अर्ककीर्तिकी उद्धतता दूरि करिवेकी है इच्छा जाकै ॥ २९ ॥ जब जयकुमार अर्ककीर्ति परि आया तब अष्टचंद्र विद्याधर अर्ककीर्तिके बडे सुभट विद्याबलके विस्तारतें जयकुमारकै सन्मुख आय याके वाण रोकते भए जैसें मेघमाला सूर्यकी किरणनिकूं रोकै ॥३०॥ अर महा क्रोध करि बाहुवलीके पुत्र भुजबली आदि राजा अकंपनके पुत्र हेमांगद आदि हजार तिनपरि आए जैसें सिंहनिके समूह सिंहनिके समूह परि आवैं ॥३१॥ अर अनंतवीर्यका पुत्र अनंतसेन अर्ककीर्तिका पक्षी अपने भाईनिसहित जयकुमारके भाईनिपरि आया जैसें अंगदेशके गजनिका समूह कलिंगदेशके माते हाथीनिपरि आवै ॥ ३२ ॥ औरहू राजा अर्ककीर्तिके पक्षी कोपकरि जयकुमारके पक्षी राजा तिनिपरि आए जैसें कुलाचलनिपरि चलायकरि कुलाचल आवै ॥ ३३ ॥ तब जयकुमार विचारी—ए मेरे पक्षी तिनिमैं ऐसी शक्ति नांही अर ऐसी विद्या नाहीं इह चित्तमैं आनिकरि आप अपनी विद्याकरि युद्धके अर्थि उद्यमी भया ॥ ३४ ॥ तब वह नागकुमारदेव जो धर्मश्रवण करि सर्पके भवसूं नागकुमारदेव भया हुता ताका आसन कंपायमान भया अपनैं मित्र जयकुमारपै आदरसूं आया अर्द्धचंद्रवाण अर नागपासि मित्रकूं देकरि पाछा आपनैं स्थानक गया ॥ ३५ ॥ हजार सूर्यनिकी है ज्योति जाविषैं ऐसा वह अर्द्धचंद्रवाण सो जयकुमारने वज्रकांड धनुषविषैं साध्या ॥ ३६ ॥ तब अर्ककीर्तिके साथी सकल भूचर तथा खेचर तिनिकूं इह भ्रांति उपजी जो या जयकुमारनैं चक्रेश्वरका पुत्र मार्‍या ही ॥ ३७ ॥ जयकुमारनैं वाण चलाया सो वह चंद्रवाण जे दुष्ट अष्टचंद्रविद्याधर तिनिकूं अर तिनिके सारथी अर तुरंग सहित रथ अर शस्त्र सब भस्म कीए जैसें वज्रपातके निपातकरि भस्म होय तैसें अष्टचंद्र तो रथादि सहित भस्म भए

॥ ३८ ॥ अर अर्ककीर्तिका आयु दीर्घ तातें डीलां बच्या अर अर्ककीर्तिका रथ तथा सारथी अर घोडे अर शस्त्र सब भस्म भए. डीला स्वामीका पुत्र तातें याहि मारिवे परि जयकुमारका भावहू न हूवा सो याहि बचाया ॥ ३९ ॥ जैसें हाथीके दांत टूटि जांय अर विना दांत ऊभा होय रहै अथवा वलरहित जैसा काल होय जाय तैसा मान रहित अर्ककीर्ति होय गया धिक्कार कर्मकी चेष्टाकूं जो चक्रेश्वरके जेष्ठ पुत्रका अपमान होय ॥ ४० ॥ अर्ककीर्तिकूं विधिका वेत्ता जयकुमार पकरता भया जैसें हाथीके बांधिवेविषें प्रवीण पुरुष अनेक उपायके जाननहारे विना शस्त्र हाथीकूं पकरैं ॥३४१॥ इह इक्ष्वाकुवंश अर वह भरत याका पिता अर आप युवराज पदविषें आरूढ अर वडी सेनाका समूह जाके लार ताहूकी इह अवस्था भई सो कुमार्गकरि पीडा कौन न पावै ? इह कुमार्ग सवहीकूं पीडै ॥ ४२ ॥ जो अपमान पहली पराक्रम करिए सो तौ सुभटता अर जो अपमान भए पीछें धीठता सो करिए जो अधिक पराभव है जो वीरपट्ट चक्रवर्तिने जयकुमारके सिर बांध्या हुता ताकरि याने अर्ककीर्तिकूं बांध्या सो देखहु कार्यका विपर्यय वह वीरपट्ट व्रण कहिए घाव तिनिकी पाटी (पट्टियों) के पदकूं प्राप्त भया ॥ ४३ ॥ अस्त होते सूर्य समान आयुधरहित जो अर्ककीर्ति ताहि वीरपट्टसूं बांधिकरि जयकुमार अपने रथविषें स्थापता भया अर आप हाथी असवार हूवा ॥ ४४ ॥ अर जे अर्ककीर्तिकी लार विद्याधर राजा हुते ते सब जयकुमारनें नागपासिसूं बांधे मानूं यह नागपासिका धारक वरुणही है, जीते हैं वैरी जानें सिंहरासिके पराक्रम जिनिके ऐसे विद्याधर तिनिकूं चेष्टारहित करि बांधता भया ॥ ४५ ॥ या भांति सुलोचनाके निमित्त युद्ध भया था सो शांत भया तव आकाशतें देव कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा करते भए । मंदारजातिके तथा सुवर्णमेरु पारिजात संतान इत्यादि जातिके कल्पवृक्ष तिनिके पुष्पनिकी वृष्टि भई ॥ ४६ ॥ जयकुमार जीति पाई परंतु या जीतिकरि हर्षित न भया अत्यंत लज्जावान भया काहेतें जो सन्मानयोग्य स्वामीका पुत्र ताके अपमान भया सो या स्वामिधर्मीकूं न सुहाया ॥ ४७ ॥ जयकुमारनें अनुचित स्थान संग्रामकरि जीति पाई है सो

मनमैं न सुहाई अति लज्जावान भया जीतिकी कीर्तिकूं पासि न राखी दूर देशांतर पठाई ॥ ४८ ॥ अर गजनिके यूथका स्वामी गजराज ताहि वनगजानि सहित पकरि अधिकारी राजापै ल्यावै तैसैं अर्ककीर्तिकूं अनेक राजानिसहित पकरि जयकुमार राजा अकंपनपै ल्याय सौंपता भया ॥ ४९ ॥ अर आप विजयार्द्ध नाम महागजराज गंधहस्ती ताके कांधे चढिकरि रणभूमि देखिवा गया, कैसा है जयकुमार ? अपने तेजकरि तिरस्कार कीया है उदयाचलविषैं तिष्ठता जो सूर्य ताका मंडल जानैं ॥ ३५० ॥ रणभूमिकूं देखिकरि अति अचरजकूं प्राप्त भया जे मरणकूं प्राप्त भए हुते तिनिकूं दाग दिवाया अर जे घायल हुते तिनिके घाव बंधाए सब सावंतनिके जतन कीए ॥ ३५१ ॥ अर तिनिकूं आजीविका बढाइ दई अर सब शोभाकी भरी जो काशीपुरी ताविषैं मेघप्रभ विद्याधर आदि जे अपने पक्षी राजा तिनिसहित प्रवेश कीया प्रगट है ऐश्वर्य जाका ॥ ५२ ॥ अर राजा अकंपन अंतःकरणविषैं अति व्याकुल अपने लारके बडे बडे राजा अर राजपुत्र सैंकरा अर मंत्री प्रोहित आदि बडे पुरुष तिनिकरि युक्त अर्ककीर्ति अर ताके लारके सकल राजानिकूं छोडिकरि अति संतोष उपजाय तिनिकूं तिनिके डेरा हुते तहां पहोंचावता भया ॥ ५३-५४ ॥ अर मनमैं विचारी समस्त विघ्नका विनाश अरहंतदेवके प्रसादतैं है ऐसा जानि सबही नित्यमनोहर नामा चैत्यालय तहां बंदनाकूं गए ॥ ५५ ॥ दूरहीतैं अपने वाहनानितैं उतरि करि शांत हैं चित्त जिनिके चैत्यालयकी प्रदक्षिणा देकरि अर्थसंयुक्त जे स्तुति तिनिकरि जिनेश्वरदेवका स्तवन करते भए ॥ ५६ ॥ अर जयकुमार पाया है जीतिका उदय जानैं सो भगवानकी स्तुति करता भया, भक्तिकरि पूर्ण है चित्त जाका, कैसे हैं भगवान ? अस्त कीए हैं कर्म जिनि अर जगतके ईश्वर हैं ॥३५७॥ जयकुमार स्तुति करै है—हे समस्त विघ्नके शांत करणहारे प्रभू ! जो तिहारी स्तुति करै सो तुच्छ मनुष्यहू प्रबलताकूं प्राप्त होय जैसैं पवित्र सीपके पुटविषैं पऱ्या जल मुक्ताफल होय जाय ॥ ५८ ॥ हे नाथ ! जो तिहारे चरणारविंदविषैं निवास करै है तिनिके निकटतैं कोटिक विघ्न महाप्रबल टरि जाहिं जैसैं समुद्रके मध्य तिष्ठैं तिनिकूं कहा

दावानलका भय होय ? कदाच न होय ॥५९॥ हे देव ! तुमकूं हृदयविषैं धारैं संते वैरी पराभव न करि सकैं जैसैं अमृतके आहारी हैं तिनिकूं कहा नाना प्रकारके विष उपद्रव करि सकैं ? कदापि न करि सकैं। जैसैं अमृतके आहारतैं विषका जोर न लागै तैसैं तिहारे दासनिपरि शत्रुका जोर न लागै ॥३६०॥ हे देवाधिदेव ! तिहारे आश्रयतैं समस्त संपदा प्राप्त होय अर आपदाका नाश होय तुम सर्वोत्कृष्ट हौ अर धर्ममार्गके उपदेशक हौ अर कामके शत्रु हौ अर संतनिके तारक हौ ॥६१॥ तुमकूं जे अति भक्ति करि सेवै हैं तिनिके बंध दोष पहलीही प्रलै होय जांय अर पीछैं विनाही जाची अविनाशी संपदा अवश्य प्राप्त होय ॥ ६२ ॥ वह अविनश्वर संपदा देदीप्यमान जे सुंदरगुण तिनिकरि महाकल्याणरूप है या भांति जयकुमार जिनेश्वरदेवकी स्तुति करी। अर अर्ककीर्तिहू भगवानके मंदिर आए हैं सो नवीन परितापके योगतैं शरीरविषैं पसेव आय गया है अर विलख्या होय गया है वदन अर दूरि होय गया है गर्वका भाव जाकै पहली ऐसी जानैं था जो मैं सबका स्वामी हूं अर अब ऐसी जानने लागा जो मैं सबतैं उतरता हूं, विह्वल होय गया है चित्त जाका कर्मनिकी चेष्टाका चिंतवन करतासंता चक्रवर्तिका पुत्र वीरलक्ष्मीके वियोगविषैं अकीर्तिकूं धारता भया ॥३६३॥ अर जयलक्ष्मी शीघ्रही जयकुमारकूं वरती भई कहा विचारिकरि वरती भई ? इह जयकुमार रणविषैं देवनिका जीतनहारा जिनिका सहाई होय तिनिकूं मैं अनुरागकरि सेऊं सो तौ ढीलांही इह सब सावंतनिमैं धोरी याके वरिवेविषैं विलंवन कहा ? इह विचारि जयकुमारकूं शीघ्रही अंगीकार करती भई ॥३६४॥ सो जयकुमार अति अधिक सोहता भया, उठी हुती शत्रुनिकी सेनारूप रज ताहि शीघ्रही वाणनिकी वर्षाकरि शांत करता भया, पाया है इंद्रसमान प्रताप जानै, प्रचुर है प्रभाव जाका, जैसैं सूर्य सिंहराशितैं कन्या राशिपरि आवै तैसैं जयकुमार सिंहराशि समान जो वीररस ताथकी कन्याराशि समान जे शृंगाररस तापरि आया, अकंपनकी कन्या जो सुलोचना ताके संयोगका आभिलाषी भया ॥ ३६५ ॥ साहस है मित्र जाकै अर नाहीं निवाऱ्या जाय निर्मल पराक्रमरूप विभव जाका ऐसा महालक्ष्मीवान महाधीरवीर जयकुमार सो सौभाग्यके उदय-

करि जासमें सुलोचनानें वक्षःस्थलविषें वरमाला डारी ताहीसमें अहंकारकरि समस्त वैरी उठे तिनिका तिरस्कारकरि वीरलक्ष्मीनें धऱ्या सिरविषें महाउज्वल जसरूप सेहरा ताहि धारता भया, पुण्यके उदयतें कहा न होय ? ॥ ३६६ ॥ अहो भव्यजीव हो ! जीति पुण्यके उदयतें होय है अर पुण्यका उदय गुणनितें होय है अर गुणनिके समूह सदाचारतें होय हैं अर आचार शास्त्रके श्रवणतें होय है अर शास्त्र सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि प्ररूप्या है सो वीतरागदेव सर्वका वेत्ता तिनिका विवेकी जन आश्रय करौ जो जयकुमारकी नाईं जीतिकूं इच्छो हौ तौ जिनेश्वरदेवके चरणारविंदके सदा दास होऊ ॥ ३६७ ॥

इति श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे जयविजयवर्णनं नाम चवालीसवां पर्व समाप्त भया ॥ ४४ ॥

अथ पैंतालीसवां पर्व ।

अथानंतर— मेघस्वर कहिए जयकुमार विस्तरि रह्या है पराक्रम जाका दले हैं शत्रुनिके मान जानें सो भगवानके मंदिरतें निकसि अपने निवास आया ॥ १ ॥ अर अकंपन महाराज युद्धविषें आप उपार्जे पाप तिनिके हनिवे अर्थि जिनेश्वरदेवकी स्तुतिकरि जहां अपनी पुत्री सुलोचना नेम धरि बैठी है तहां आय पुत्रीकूं देखी ॥ २ ॥ कैसी है पुत्री ? जानें युद्धके अंतपर्यंत कीया है आहारका परित्याग महानेम धरि कायोत्सर्ग लीए तिष्ठी है सुप्रभा माता करै है रक्षा जाकी ॥ ३ ॥ अर सर्व शांतिका करणहारा धर्मध्यान ताहि एकाग्र चित्तकरि ध्यावती जिनेंद्रकी प्रतिमाके सन्मुख निश्चल खडी ॥ ४ ॥ सो राजा भगवानकी पूजाकरि अर पुत्रीके गुणनिकी अतिप्रशंसाकरि पुत्रीसूं कहता भया—हे पुत्री ! तेरे प्रभावतें हमारे सर्व अमंगल शांत भए हमारे पूर्वले उपार्जे पाप सकल विलाय गए हैं तें आहारका नियम लिया हुता सो अब यह नियम तजि या भांति कायोत्सर्गकी धरणहारी जो पुत्री ताहि कहिकरि अपने पुत्रनिसहित पुत्रीकूं आगैं धरि अति हर्षित भया, सुप्रभा रानीसहित अपनैं घर आया गृहविषें प्रवेश करि पुत्रीकूं

कही—हे पुत्रि ! तू अपने मंदिर जाउ । 'या भांति होय गया' यह विचारि राजा कर्तव्यताविषैं मूढ होय गया सुश्रुत आदि जे मंत्रीनिमैं उत्तम पूर्ण हैं बुद्धि जिनिकी पूर्वजन्मके संस्कारतैं अर व्रत विधानतैं अर बुद्धिवर्धनी औषधनितैं अर तपश्चरणतैं उपज्या है ज्ञान जिनिकूं तिनि सहित मंत्रकरि आप समस्त कार्यका वेत्ता सुनमि तथा सुविनमि अदि विद्याधरनिके अधीश नागपासिमैं जयकुमारनैं बांधे हुते तिनिकूं बंधनतैं रहित करि अर सबनिकूं प्रीतिके वचन कहि अतिप्रसन्न कीए अर स्नान वस्त्र भोजनादिकरि तिनिका अतिसत्कार कीया ॥ ५–१० ॥ वहुरि अर्ककीर्तिकी स्तुति करै हैं—हे कुमार ! हमारा नाथवंश अर जयकुमारका सोमवंश तुमही कीए अर तुमही हमकूं बढाए सो वृक्ष विषमई होयजाय तौऊ लगावनैंबारा पुरुष वृक्षकूं न काटे ॥ ११ ॥ अर पुत्र बंधू तथा सेवक आगैं आगैं दौरनेवाले तिनिके सैकरा अपराधहू मोटे पुरुष क्षमा करैं इही बडे पुरुषनिका आभूषण है ॥ १२ ॥ अर जे दैववशतैं अपने स्वामीसूं अपराध करैं हैं तिनिका अपयश कल्पके अंत पर्यंत रहै है अर कुगतिका कारण पाप तिनिकै बंधै है ॥ १३ ॥ सो हम अविवेकी जीव तिनि मोटा अपराध कीया तुम हमारे स्वामी तिनिसूं युद्ध करिवेकूं सन्मुख भए । हे कुमार ! हम तिहारे भृत्य कहिए सेवक पुत्र बंधूनि समान हैं, तातैं तुम क्षमा करिवेकूं समर्थ हो ॥ १४ ॥ इह हमारी अकीर्ति अर मोटा अपराध तिहारे प्रशादतैं दूरि होय, तुम दंडहू देयवे समर्थ अर कृपाहू करिवे समर्थ तातैं हमारी शुद्धता करहु हमारे दोष निराकरण करहु ॥ १५ ॥ सूर्य है सो अपने प्रकाशकरि जगतका अंधकार हरै है, सो तुम हमारे सूर्य हो, हमारे अंतःकरणका तिमिर हरहु ॥ १६ ॥ जैसैं आंचलका चूषणहारा बालक ताकी जीवनी माताके अंचल है, सो माता विमुख होय तो बालक कैसैं जीवै ? तैसैं हमारी जीवनी तुम हौ, कोऊ जन्मांतरका अशुभ कर्म ताके उदयतैं तिहारी कुकृपा हमपरि भई सो कृपाकरि हमारी चूक माफ करहु ॥ १७ ॥ जैसैं मेह समस्त पृथ्वीकूं आनंदका कर्ता है, अशुभ नाहीं अर कदाचि मेह अशनिपात करै तौ पृथ्वीहीका अभाग्य है, तैसैं तुम हमारे अन्नदाता जीवितव्यके

कारण हो, अर तिहारी कुमया (अकृपा) होय तो हमारा ही अभाग्य है ॥ १८ ॥ अर जैसैं बंड घोडा असवारकूं पारै तोऊ असवार घोडेकूं न मारै, तैसैं यह जयकुमार बेलगाम घोडे समान ताकरि जो अपराध उपज्या तोऊ तुम क्षिमा करिवेयोग्य हो। इह जयकुमार तौ तिहारा किंकर है, सो याकी भूल तुमकूं मनकी मलिनताका कारण नांही ॥१९॥ अर सुलोचनाकी कहा बारता ? सब जीव माल तिहारा ही है अर जो तुम पहिले मनैं करते तो हम स्वयंवर काहेकूं करते ? ॥ २० ॥ तातैं मेरी दूजी पुत्री लक्ष्मीमती, जाका दूजा नाम अक्षमाला है, सो तुम परणों। वह जसकी मालासमान निर्मल है, अर इह पाषाण माला जो रत्ननिकी माला—वरमाला ताकरि कहा ? ॥ २१ ॥ अर जैसैं आहार है सो जीवनिकी जीवनी है, अर आहारहीतैं विकार उपजै तो लोक कैसैं जीवै ? सो तुम तो हमारे अन्नदाता जीविकाके मूल हो, तिहारी कुमयातैं हम कैसैं जीवैं, तातैं हे प्रभो ! हमपरि प्रसन्न होहु ॥ २२ ॥ अर तुम समुद्र समान दुर्निवार अथवा मर्यादारहित भए सो तिहारी कुमयारूप तरंगनिकरि हम बचे सो तिहारे ही पुण्यका प्रभाव है, हम तौ आज्ञाकारी अनुचर हैं, जीव प्राण तिहारे हैं, सो तिहारी कृपाहीने बचाए, नातरि समुद्रतैं कौन बचै ? ॥ २३ ॥ तुम जगतकी जीवनी जलसमान, काहू पापीने अगनिरूप होय उष्ण कीए, अब जलकी नांई सीतल होहु ॥ २४ ॥ अर जो यों न करौ तौ ए पुत्र स्त्री आदिसकल कुटुंब तिहारे हैं तिनिकी प्रतिपालना करहु अर हम श्रीऋषभदेवके चरणारविंदके आश्रय जाय हैं ॥ २५ ॥ या भांति कंवर (अर्ककीर्ति) की स्तुतिकरि अतिप्रसन्न कीया अर संतोष उपजाय गजपरि सवारकरि सब भूचर खेचर लार भया कुमारकूं भगवानके चैत्यालय ल्याये अर सर्व पापकी शांतिके अर्थि आठदिन तक बडी ऋद्धिसूं महा अभिषेक पूर्वक प्रभुकी शांति पूजा करी अर जयकुमारकूं ल्यायकरि कंवरसूं विधिपूर्वक मिलाप कराया, अत्यंत प्रीति उपजाय करि अखंड एकीभाव कीया ॥ २६—२७ ॥ अर महा विभूतिकरि सुलोचनाकी छोटी बहिन अक्षमाला परिणाई अर बहुत संपदा कंवरकी भेंट करी अर कंवरकूं अतिविनयकरि विदा

कीए, केतक दूरि राजा अकंपन जयकुमार कंवरकी लार पहुंचावे गए ॥ २९ ॥ तथा और जे राजा भूमिगोचरी अर विद्याधर जे आए हुते तिनिका अतिसन्मान करि हाथी घोडे रत्न देयकरि विदा कीए ॥ ३० ॥ ते सब अपने अन्यायकरि लज्जावान भए, निर्वैर होय अपने अपने नगर गये, बुद्धि वही जो दैवयोगतैं उपजे अपराधकी निवृत्ति करैं ॥ ३१ ॥ बहुरि वह चित्रांगद नामा देव, जानैं स्वयंवरका मंडप रचा हुता, ताहीने सुलोचनाके विवाहका अति उत्सव कीया ॥ ३२ ॥ अर जयकुमार, बहुत हैं मित्र जाकै, सो मेघप्रभ सुकेतु आदि बडे बडे राजा रणमें आय मिले हुते तिनिका अति सन्मानकरि बहुत प्रसन्न कीए, अपने भाईनिका अत्यंत सन्मान कीया, अति विभूतिसूं जयकुमारका सुलोचनासूं विवाह भया ॥ ३३ ॥ विवाह भए पीछै मेघप्रभ सुकेतादिककूं विदा कीए, बहुरि नाथवंशका अग्रणी राजा अकंपन अपना जमाई जयकुमार तासूं मंत्रकरि एक सुमुख नामा दूत ताहि शीघ्रही चक्रेश्वरपै पठाया अर घरमैं जे सारभूत रत्न हुते ते पृथ्वीनाथकी भेंट भेजे ॥ ३४ ॥ अर सुमुख नामा दूत महा सुबुद्धि है ताहि कही—जो तू सब वृत्तांत जानै है, अर महाप्रवीण है, स्वामीसूं ऐसैं वीनती करियो—जो हमपरि अति प्रसन्न होय। या भांति दूतकूं नीकै समझाय राजेंद्रपै पठाया ॥ ३५ ॥ सो दूत शीघ्र जाय करि भरतेश्वरका दर्शन करता भया। धरतीविषैं अंग लगाय प्रनाम कीया अर अकंपननै भेंट पठाई हुती सो पृथ्वीपतिकी नजरिकरि हाथ जोरि विनती करता भया ॥ ३६ ॥ हे नाथ ! आपका निपट छोटा चाकर अकंपन तानै वारंवार प्रणामकरि अति भयथकी कंपायमान होयकरि वीनती करी है सो कृपा करि सुनौ ॥ ३७ ॥ सुलोचना मेरी कन्या सो आपका कीया मनुष्य, आपही दई विभूति जाकूं ऐसा जयकुमार ताहि स्वयंवर विधानकरि दई ॥ ३८ ॥ तहां महाराज कुमारहू पधारे हुते सो स्वयंवरकी वार्ता प्रमाणकरि विद्याधरनि सहित प्रसन्न होय तिष्ठे ॥ ३९ ॥ पीछैं जैसैं शुभ ग्रहनिमैं कोऊ क्रूर ग्रह परै सो क्लेश उपजावै, तैसैं काऊ दुर्जननैं महाराजकुमारकूं हमपरि वृथा क्रोधरूप कीए ॥ ४० ॥ सो सब वृत्तांत तौ आप जानौही हो और

राजानिके तौ हलकारेनिके मुखतैं कछू वार्ता छानी न रहै, आप तौ अवधिनेत्र हो, जन्मांतरकी जानौ हो सो आपसूं कहा छानी ? ॥ ४१ ॥ कुमार तो कुमार ही है। उनका कहा अपराध ? इह सब अपराध हमारा है। हम प्रमादी भए। उनकूं हम इह न कही जो इह कन्या आप लेहु, हमकूं इही योग्य हुती–जो कन्या महाराजकुमारकी भेंट धरते, सो न करी। देवता कोप करै सो आराधकहीका दोष है, देवतानिका दोष नाहीं, सो महाराजकुमार तौ देव हैं, उनकी कहा भूल ? हम सेवक सो हमारी भूल ॥ ४२–४३ ॥ सो भूल हमारी बहुत भई है तातैं सदोष जानि दंड देहु। आप इह न विचारैं-जो ए मेरे कीए मनुष्य हैं, मैं ही इनिके वंश कीए अर बढाए, मेरे बंधुसमान स्नेही हैं इनिका कैसैं निग्रह करूं, इनिकूं कैसैं दंड देहुं इह न विचारौ ॥ ४४ ॥ आप ऐसे न्यायधुरंधर हो जो पुत्र हु अपराधी होइ तो वाहूका निग्रह करौ, इह ही तिहारे घरकी रीति है तातैं हम तीन दंडयोग्य हैं। इनि तीन दंडनिमैं जो आज्ञा होय सो सही। कै तौ हमारा वध, कै बंधन आदि शरीरका आताप, कै सर्वस्वहरण इनि तीननिमैं जो आज्ञा होय सो प्रमाण। इनि दंडनि विना हमारा अपराध निवृत्त न होय। हे प्रभो ! तिहारी आज्ञाके विधानकरि हम अतिशयपणै या लोकविषैं अर परलोकविषै अपराधरहित होंहिगे, परलोकविषै अपराधका फल न पावैं सो करहु। आप सबनिकूं मार्ग चलावनहारे हो ॥४५-४७॥ या भांति विनयरूप वाणी हृदयकूं प्यारी कहि-करि सुमुख नामा दूत राजराजेंद्रके हाथकी समस्याकरि चुप होय रह्या ॥४८॥ सत्पुरुषनिके वचन कोमल-ताकूं लीए राक्षसनिहूके चित्तकूं हरैं तौ भरतेश्वर सरीखे समदृष्टि तिनिका चित्त तौ हरैं ही ॥४९॥ सुमुख नामा दूतके वचन सुनिकरि राजेंद्र अतिप्रसन्न होय कहते भए–हे सुमुख ! आवा (आगैं) आव। सिंहासनके समीप बुलाय लीया, प्रफुल्लित है वदन कमल जिनिका, ऐसे भरतेश्वर आज्ञा करते भए ॥५०॥ अकंपन महाराजने ऐसे वचन कहिकरि तोहि कहा भेज्या ? मेरे तो वे ऋषभदेवसमान बडे हैं। या समय सबनिमैं मुख्य हैं, वयकरि बडे, कुलकरि बडे, गुणनिकरि बडे, तिनिसमान और कोऊ नाहीं। गृहाश्रमविषैं वेई पूज्य हैं

अर तिनहीकरि मैं शोभायमान हूं जो कदाचि मैं अन्याय मार्गविषैं प्रवर्त्तूं तो मोहि भी मनै करैं। जैसैं श्रीऋषभेश्वर मोक्षमार्गके अग्रेश्वर महागुरु हैं अर दान तीर्थके गुरु सबनिमैं अग्रेसर राजा श्रेयांस हैं अर चक्रवर्तीके आचरणका मैं अग्रणी हूं ॥ ५१-५३ ॥ तैसैं स्वयंवर मार्गके अग्रेसर राजा अकंपन हैं। यद्यपि इह मार्ग तौ अनादि कालका है, अर सदा चल्या जायगा तथापि बडे पुरुषनि विना कर्मभूमिकी आदिविषैं कैसै प्रवर्त्तै? ॥५४॥ ए प्राचीन मार्ग चिरकालके हैं, परंतु भोगभूमिमैं छिपि गए हुते सो कर्मभूमिकी आदिविषैं जे प्रवर्त्तावै तेही उत्तम पुरुषनिकरि पूज्य हैं ॥ ५५ ॥ अर जयकुमारसमान मेरे कहा है, इह छह खंड पृथ्वीका राज्य मेरे केवल अकेले जयकुमारकरि है, न मेरा प्रतापकरि, न और रत्ननिकरि, न नवनिधिकरि तथा हाथी घोडे रथ पयादे देव विद्याधर इह षडंग सेना ताहूकरि नाहीं न पुत्रनिकरि। ए सकल मेरा प्रताप जयकुमारकरि है। सकल सूरवीरताके कार्यनिविषैं मेरी जीति ताहीकरि है। म्लेच्छ राजानिकौं जीतिकरि नाभिगिरिपर मेरा जसमई नाम वाहीने थाप्या और काहूकरि नाहीं ॥ ५६–५८ ॥ अर यह अर्ककीर्ति मेरी अकीर्ति जगतविषैं विस्तारनेवारा है जौलग चांद सूर्य हैं तौलग स्याहीसमान मेरी कीर्ति यानैं मलिन करी ॥ ५९ ॥ इह अर्ककीर्ति केवल अन्यायमार्गके प्रवर्त्तक तिनिहीमैं मुख्य न भया जे दंड देयबेयोग्य तिनिमैं मुख्य भया ॥ ६० ॥ मैं दीपक, तातैं इह अजसरूप अंजन प्रगट भया तातैं इह अर्ककीर्ति नाहीं, प्रगट अजसकीर्ति है! ॥ ६१ ॥ जयकुमारही मेरी आज्ञातैं ऐसे अन्यायमार्गीकूं सूधा न करै तो और कौन करै? तानैं युद्धविषैं वाकूं भलीभांति दंड्या ॥ ६२ ॥ राजानिकी इही रीति है जो बडा पुत्रहू अपराधसहित होय तौ वाहूका निग्रह करै, सो मैं अर्ककीर्तिका निग्रह कीया चाहता हुता सो तुम वा अन्यायमार्गी मदोन्मत्तकूं अक्षमाला पुत्री दई सोई काम विना विचारे अयोग्य कीया ॥ ६३-६४ ॥ वह तिहारी पुत्रीकूं आगै धरि इहां आया सो तातैं मैं आवने दीया, तिहारी पुत्रीके कारण करि वाहि दंड न दीया वह कलंकसहित है परंतु चांदिनीके प्रभावकरि चंद्रमा सबनिकूं प्रियही लागै तैसैं

तिहारी पुत्रीके प्रभावकरि वह कलंकी आदरयोग्य भया ॥ ६५ ॥ पृथ्वीविषैं निश्चल भया लोक कहैंगे, देखो—चक्रवर्तीका बडा पुत्र, दोषसहित हुता सो चक्रवर्तीने कछु दंड न दीया, गई आई करि गया सो इह मेरा अपजस तुम कराया, तुम पुत्री न देते तौ मैं वाहि अवश्य दंड देता ॥६६॥ याभांति राजानिका राजा भरतक्षेत्रका अधिपति सुमुखनामा दूतकूं संतोषिकरि अति प्रसन्न करता भया, बडे पुत्रकूं निरादर करि न्यायहीकूं अपना पुत्र मानता भया ॥ ६७ ॥ सुमुखनामा दूत चक्रेश्वरकी दयाके भारकूं उचाय न सक्या सो वीनती करता भया—हे देव ! जयकुमारसहित अकंपन आपके चरणारविंदका ध्यान करते तिष्ठे है, अर जैसें पपीहा मेहकी बूंदके अभिलाषी अंबरकी उर निरखि रहैं तैसें वे दोऊ तिहारी कृपाके अभिलाषी मेरी उर निरखै हैं, मेरे आयवेकी बांट जोवै हैं सो आज्ञा होय तो मैं जायकरि उनका विकल्प मेटूं याभांति उठि धरतीसूं लगि हाथजोरि प्रणाम करता भया, फूलि गया है मुखकमल जाका ॥६८-७०॥ या भांति वीनतीकरि चक्रेश्वरकी आज्ञा पाय सुमुखनामा दूत शीघ्रही चाल्या सो जयकुमारसहित राजा अकंपन बैठे हुते तिनिपै आया, तिनि बहुत आदर कीया ॥७१॥ चक्रवर्ती अति कृपावान, ताके कृपाके समाचार वाणीकरि प्रकाशे जैसें दिवसका आरंभ सूर्यके प्रभावथकी कमलिनीकूं प्रफुलित करै तैसें वे सुमुखनामा दूत चक्रवर्तीकी कृपाके समाचार कहि अकंपन अर जयकुमारका मुख प्रफुलित करता भया ॥ ७२ ॥ दान सन्मान अर साधुवाद कहिये स्यावास ऐसे वचन कहिकरि यासूं अति प्रीतिकरि बहुत हर्षित भए। जे बडे राजा हैं ते कृतघ्नी नाहीं, पराई चाकरीका गुण मानै हैं ॥ ७३ ॥ वहुरि विचारमैं न आवै उदयकी प्राप्ति भई है जाकूं अर प्रकाशरूप भया है पुण्यका उदय जाकै ऐसा जयकुमार महालक्ष्मीवान सुखसूं कैयक दिन श्वसुरके गृह रहता भया ॥ ७४ ॥ सुलोचनाका मुखकमल तापरि भंवरके भावकूं प्राप्त भए हैं लोचन जाके ऐसा जयकुमार, कामका प्रचंड वाण तिनिका एक निसाणा है शरीर जाका ॥७५॥ देखो ! अर्ककीर्तिसूं ऐसा संग्राम भया परंतु वाणनिकरि याका शरीर भेद्या न गया, अखंडित रह्या अर ए

कामके अतिकोमल पुहुपबाण तिनिकरि भेद्या गया सो कर्मनिकी विचित्रवृत्ति है ॥७६॥ वह सुलोचना नाहीं मुलकै थी सो मुलकनिसहित करी, अर न हंसै थी सो हास्यसहित करी, अर भयसहित थी सो निर्भय करी अर व्याकुल हुती सो निराकुल करी ॥ ७७ ॥ अर वचनालाप रहित हुती सो वचनालाप सहित करी, अर न विलोकती हुती सो विलोकनसहित करी अर न सपरसती हुती सो सपरस करि याकी लज्जाका लोप कीया ॥ ७८ ॥ भवांतरका बांध्या है इनि दोउनिके परस्पर स्नेह ताकरि कामने जयकुमारकूं सुलोचनाका अभिलाषी कीया ॥ ७९ ॥ सुलोचनाके मनकी वृत्ति सोई भई कामनामा समुद्रकी लहरि ताहि अनुराग-रूप चंद्रमा वृद्धिकूं प्राप्त करता भया ॥ ८० ॥ सुलोचनाका मुख मुद्रित हुता ताविषैं विकास कहिए प्रफु-ल्लितपना सो अनुक्रमतें स्थानक करता भया सो विना कहे ही सब सखीनि जानी-जो याहि कामका दवाब भया ॥ ८१ ॥ वह सुलोचना मदनग्रह करि ग्रही सखीनिका मुख देखि कछु इक बात करि और दिशाकी उर झांकि अपनी इच्छाकरि हँसने लग गई ॥ ८८ ॥ कामकूं अपना सहायीकरि अर श्वेतता कृष्णता आरक्तता धरे जे तीक्ष्ण चंचल कटाक्षकरि विलोकनि तेई भए तोमरनामा आयुध तिनिकरि जयकु-मारका हृदय भेदती भई ॥ ८३ ॥ जैसैं कोऊ चोर रात्रिके समै परधन हरै तैसैं इह रात्रिसमैं मेघस्वर कहिए जयकुमार ताका मन हरती भई सो लाजकी भरी किंचित् भयकूं धरै नाना प्रकार चेष्टाकरि इनका मन मोहती भई ॥ ८४ ॥ जो सर्पने न डसी अर मादक वस्तहूका कछु सेवन न कीया अर चित्तभ्रम नाम रोगहूकरि न दवी तथापि शरीर पसेवनिकरि युक्त होय गया ॥ ८५ ॥ अर याके मनोहर वचन मुखतें निकसैं सो डिगते निकसैं अर हृदय कंपित होता भया अर विलोकनि चंचल भई मानूं इह अपने वसि नाहीं, काहूके वसि भई है। या सौभाग्यरूपिणीके पसेवके जलकरि मानूं लज्जा धुइ गयी अर प्रेम वचन-रूप ईंधनकरि कामरूप अग्नि प्रज्वलित भई। भावार्थ—इह व्रतवती धर्मवती यद्यपि अशुभ क्रियातें रहित है तथापि पतिके प्रसंगकरि प्रेमविषैं अनुरागवती होती भई ॥ ८६-८७ ॥ इह कथा गौतमस्वामी राजा

श्रेणिकसूं कहै हैं—हे श्रेणिक ! लज्जा हू तोलग ही है, अर ये भय हू तोलगही है, अर करिबे योग्य, न करिबे योग्यका विचार भी तोलगही है अर धैर्य हू तोलगही है, जोलग कामरूप ज्वर नाहीं विस्तरै है ॥ ८८ ॥ वे दंपती कहिए प्रियतम अर प्रियतमा परस्पर सर्व इंद्री भिन्न भिन्न विषयरूप करिके परमप्रीतिकूं प्राप्त होते भए ॥ ८९ ॥ यद्यपि दोऊ ही महा विवेकी हैं, तथापि अत्यंत आसक्त, तातैं अनुक्रमतैं पदार्थनिका ग्रहण करणहारा इह इंद्री तिनिकरि तृप्त भए। भावार्थ—एक इंद्री एकही विषय सेवै, दूजी इंद्रीका विषय न सेयसके, इह भाव भया—जो एक ही इंद्रीविषै सर्व ही विषयसेवनेकी शक्ति क्यों न भई ? आंखनिमें देखिवेहीकी शक्ति और कार्य न बने अर नासिकामैं गंधग्रहणकी शक्ति और विषय न सेयसकै, अर काननिमें शब्द ग्रहणकी शक्ति और विषय न सेया जाय. अर जिह्वामें रसस्वादकी शक्ति और विषय न सेया जाय अर सपरस इंद्रीमैं सपरसहीकी शक्ति और नाहीं अर जयकुमार सुलोचनाके परस्पर आसक्ति तातैं ऐसा अभिप्राय भया, जो एक एक इंद्रीमैं सर्व विषयकी शक्ति क्यों न भई, एक इंद्रीमैं सकल विषय ग्रहणकी शक्ति न करणहारा जो पूर्वोपार्जित कर्म ताहि निंदते भए जो निर्माणप्रकृतिनैं इह कहा कीया जो एक एक इंद्रीमैं एक एक ही विषयशक्ति धरी। भावार्थ—पंच इंद्रीनिके सत्ताईस विषय, तिनिमैं स्पर्श इंद्रीके आठ, स्निग्ध रूक्ष सीत उष्ण कोमल कठोर गुरु लघु अर रसना इंद्रीके विषय पांच—खाटा मीठा कडवा कषायला अर चिरपरा अर खार मीठेमैं आय गया क्षारहूकूं मीठा कहे हैं अर नासिकाके दोय विषय एक तौ सुगंध अर एक दुर्गंध अर नेत्रनिके पांच श्वेत, स्याहा, हरित, पीत. आरक्त अर कानके सप्तस्वर—षडज ऋषभ गांधार मध्यम पंचम धैवत अर निषाद सो कोऊ काहू इंद्रीका विषय न सेय सकै ॥ वे दोऊ परस्परके संबंधतैं उपज्या जो पांचू इंद्रीनिका सुख ताहि भोगवते भए, वह सुख अन्य जे वस्त्र आभरण गंधादि द्रव्य तिनिकी अभिलाषातैं रहित है अर सामान्य पुरुषनिकरि अलभ्य हैं, बडे पुरुषनिहूकूं ऐसे अद्भुत सुख प्राप्त न होय हैं ॥ ते दोऊ सुखसागरमैं मग्न भएथके कैइक दिन संसारतैं विरक्त न होते भए। कैसे है वे ? प्राप्त भई हैं इच्छाकी पूर्णता जिनिके

कैसा है वह सुख ? परस्परके संयोगकरि उपज्या है ॥ ९०-९२ ॥ रतिक्रीडाके अंतविषैं दोऊ असक्त भए संते परस्पर रूपका अवलोकन करते थकित होय रहे। दोऊनिके नेत्र अनुरागके भरे सोहते भए मानूं चित्रामहीके हैं, दोऊ ही अतिरूपवान अर अतिचतुर अर अति प्रेमके भरे सो इनिकूं कौनकी उपमा दीजे ? परस्पर उपमाहीके जोग्य होते भए, वाकी उपमा वाहि अर वाकी उपमा वाहि मानूं दोऊ एकरूप ही हैं, वह तो वाकरि अनुरागरूप होता भया अर वा पतिकरि अनुरागरूप होती भई सो दोऊनिके परस्पर अधिक प्रीति होती भई ॥ ९३-९४ ॥ काहूके विभागकरि संपत्ति घटै है, अर इन दोउनिके परस्पर विभागकरि सुख संपत्ति बढती भई ॥ ९५ ॥ या भांति परस्पर उपजी है प्रीति जिनिके, सो अनुरागरूप अमृतके भीजे कामरूप समुद्रविषैं मग्न भए इच्छापूर्वक चिरकाल क्रीडा करते भए ॥ ९६ ॥ जयकुमारकूं ससुरके घर बहुत दिन व्यतीत भए तब हस्तिनापुरतैं मंत्रीनिके पठाए गूढपत्र आए जिनिकूं सासुरेके न जानिसकैं तब उन पत्रनिकरि जयकुमारका चित्त शीघ्र हस्तिनापुर जायवेरूप भया ॥ ९७ ॥ तब राजा अकंपनसूं वीनती करी– हे प्रभो ! आपका दिया हैं ऐश्वर्य जाकूं ऐसा मैं सो मोहि मेरे सेवक लोक देख्या चाहै हैं, आज्ञा होय सो करूं। या भांति ससुरकूं प्रयाणकी प्रार्थना करी ॥ ९९ ॥ तब नाथवंशका नाथ राजा अकंपन कछुयक चिंतारूप होता भया, अपने घरमेंसूं जय जाय तब मन व्याकुल होयही होय ॥९९॥ बहुरि राजा कार्यका रहस्य विचारि करि कही–तिहारी इच्छा होय सो करो। राजा विचारी–बडे पुरुष बहुत दिन कैसे रहैं, अपने स्थानक ही सोहैं। इह विचारि सीख देना विचाऱ्या। जे बुद्धिमान हैं ते अपनी बुद्धिकूं स्नेहतैं निवृत्त नांही करै हैं जैसे दीपकके राखनहारे दीपकमैं तेलका अंत न होने दे हैं ॥ १०० ॥ जब सुलोचना दई तब सर्वस्व दीया तथा लौकिकाचार पालनेके आर्थि भंडार आदि सबही दीया ॥१०१॥ शुभ दिनविषैं पुत्री अर जमाईकूं घरतैं चलाए, बहुत दूरितक राजा अकंपन अर रानी सुप्रभा जयकुमार अर सुलोचनाकूं पोहोंचायकरि नाठि नाठि पीछैं फिरि सो अपने बालकनिका वियोग अति-

दुस्सह है ॥ २ ॥ अथानंतर विजयार्ध नामा गजपरि जयकुमार अर सुलोचना आरूढ भए अर जयकुमारके विजय आदि छोटे भाई चौदा ते सब हाथिनिपरि चढे हैं हेमांगद कुमार सुलोचनाका भाई हजार भाइनि सहित बहन बहणेवूंकूं ठेठ तक पहुंचायवे चाल्या, सोऊ सर्व हाथीनिपरि आरूढ हैं सोऊसूं जयकुमार महामनोहर हास्यरसकी वार्ता करते चले जाय हैं वे वार्ता पंथविषें महाहित रूप हैं ॥ ३–५ ॥ जैसैं चंद्रमा नक्षत्रनिकरि वेढ्या सोहै तैसैं जयकुमार भाई अर सगेनिकरि वेढ्या अति सोहै, धीरै धीरै गंगाके तीर चल्या जाय है जैसैं वडी सेनाकरि पृथ्वीकूं चलायमान करता संता दिग्विजयके समै प्रयाण कीया था तैसैंही धीरां धीरां चाल्या ॥ ६ ॥ अपने कटकके गंगाके तीर आछ्या क्षेत्र देखि डेरे करावता भया, जयकुमार महानीतिमार्गी शास्त्रका वेत्ता ॥ ७ ॥ जाका कटक अतिमनोज्ञ मानूं दूजा स्वर्ग लोकही है सो अतिसोहता भया। कैसाक है कटक–महा देदीप्यमान वस्त्रनिका डेरा अति निकट निकट तिनिके आटोपकरि दुर्गम है। सो जहां डेरे खडे भए हैं तहां आय राजद्वारके समीप हाथीकूं खडा राखि सब राजानिकूं अपने अपने डेरानिकूं विदाकरि आप हाथीतैं उतरि सुलोचनाकूं अपनी भुजानितैं उतारि अर मांहि लेगये, कोमल शय्यापरि प्राणवल्लभाकूं बैठाया वह चित्तकी वृत्तिका जाननेवारा भोजन, प्रियवचन, गीत, नृत्य, वादित्र अति विनोदनिकरि प्रियाकूं तृप्त करता संता सुखसूं रात्रि पूरी करी। प्रभात ही प्रियाकूं इहां राखि मर्यादिकी रीति समझायकरि आय स्वामीपै चालिवेकूं उद्यमी भया। प्रियाकूं कही–जो मैं स्वामीके निकट होय यहां वेगही आऊंहूं। तुम सुखसूं रहियो, मैं शीघ्र तिहारे निकट आय हस्तिनापुर ले चालूंगा ऐसा कहि प्रियाकूं इहां राखि अति दिलासा देय धीर्य बंधाय आप चाले अर हेमांगद आदि राजा अकंपनके हजार पुत्र सुलोचनाके निकट राखे अर अपने छोटे भाई चौदा तेऊ सुलोचनाके निकट राखे अर सकल कटककूं इहां राखि कटककी रक्षा भाइनिकूं सौंपि आप केतेक निकटवर्ती लोकनिसहित अयोध्याकी उर चाल्या ॥ ८–१३ ॥ जब इह अयोध्याके समीप पहुच्या तब चक्रवर्त्ती अति प्रसन्न

होय अर्ककीर्ति पुत्रकूं आदि दे बडे बडे राजा सन्मुख भेजे ते अतिस्नेहतैं जायकरि जयकुमारसूं मिले अर अति आदरसूं पुरीमें ल्याय, अर्ककीर्ति जयकुमारसूं अति हित जनाया ॥ १४ ॥ अर अनुरागकी भरी अयोध्या ताहि जयकुमार अति अनुरागतैं अवलोकन करता चक्रवर्तिकी नाईं पुरीमैं प्रवेश करता भया जैसैं नगरीके लोक चक्रवर्तिकूं प्रणाम करैं तैसैं याहि प्रणाम करते भए जो राजमान्य होय ताहि सबही पूजैं ॥ ११५ ॥ जयकुमार राजद्वारके समीप आए जैसैं इंद्र भगवानके समोशरणके द्वार आए हाथीतैं उतरि समोशरणमैं प्रवेश करै तैसैं जयकुमार हाथीतैं उतरि जहां सभागृहमैं चक्रवर्ति विराजे हैं तहां आया, कैसा है सभागृह? मणिनिकी फरसकरि सोहै है पृथ्वी जहां ॥ १६ ॥ अर सभागृहके मध्य मणिनिका मंडप तहां सिंहासनपरि पृथ्वीनाथ विराजै हैं तहां आया। कैसा है मणिमंडप? देदीप्यमान रत्नमई थंभ तिनिके ऊपरि रच्या है अर नेत्रनिकूं आह्लादकारी पटवस्त्र तिनिका ताना है चंदोबा जहां ॥१७॥ अर मणिमुक्ताफल तिनिकरि मंडित सोहै हैं झालरि जहां अर अमोलिक रत्ननिकी क्रांतिके समूहकरि नानाप्रकारके रंगकूं धरैं हैं ॥ १८ ॥ अर जैसैं चंद्रमा ज्योतिषी देवनिके समूहकरि संयुक्त सोहै तैसैं राजानिके समूहकरि संयुक्त राजेंद्र विराज्या है अर निर्मल कीर्तिसमान उज्वल चमर जापरि ढरैं हैं ॥ १९ ॥ अर इंद्रधनुष समान नानाप्रकारके आभर्णकी क्रांतिनिकरि वेष्टित है मानूं तेजही करि घडी है मूर्ति जाकी अर शुभआयु शुभनाम शुभगोत्र सातावेदनीय ए चतुरविध पुण्य तिनिकरि मंडित सबनिकरि पूजनीक है ॥२०॥ अर उत्तुंग सिंहासनपरि तिष्ठै है जैसा उदयाचल पर्वतविषैं सूर्य तिष्ठै सो जयकुमार दूरिहीतैं राजानिके राजाकूं देखिकरि महाभक्तिका भऱ्या ॥२१॥ जैसैं तीर्थंकरदेवकूं प्रणाम करिए तैसैं नमस्कार करि दूर ऊभा रह्या। चक्रवर्ति अपने हाथके सेना (इशारे) करि सिंहासनके समीप बुलाय आज्ञाकरी तहां इह तिष्ठ्या ॥ २२ ॥ चक्रवर्तिकी कृपादृष्टिकरि यह अत्यंत प्रसन्न भया सभाके मध्य अद्भुत प्रकाशकरि भासता भया ॥ १२३ ॥ बहुरि अपना प्रसन्न वदनरूप चंद्रमा ताकरि निकसे

आह्लादकारी वचन तेई भई किरण तिनिकरि जयकुमारकूं अति हर्षितकरि पृथ्वीका नाथ आज्ञा करता भया तू अकेलाही क्यूं आया, बहूकूं क्यों न लाया ? हम बहूको देखिबेकै अभिलाषी हुते ॥ १२४ ॥ अर तेरे विवाहके उत्सवविषैं हमकूं क्यों न बुलाया ? इह काम राजा अकंपननैं अयुक्त कीया हमकूं मित्रवर्गनिके बाह्रिर किए ॥२५॥ अर मैं तो तेरे पितासमान हूं मोहि आगैंकरि तोहि परणना योग्य हुता सो तू भूलि गया ॥२६॥ याभांति स्नेहरूप वचनकरि चक्रवर्तिनैं जयकुमारकूं तृप्त कीया तब यह अपनी भक्तिभाव प्रगट करता संता बारंबार नमस्कारकरि अपने मुखकूं मणिनिके आंगणमैं निरखतासंता धनीकी दयाप्रसाद सन्मान ताहि ग्रहिकरि धरतीमैं सिरलगाय नमस्कार करताहुवा उठिकरि हाथजोरि राजेंद्रसूं वीनती करी ॥२८॥ हे देव ! आपका आज्ञाकारी राजा अकंपन तातैं स्वयंवर रच्या सो इह विधि बिवाहके भेदनिमैं अनादिकालतै हैं ॥ २९ ॥ सो शास्त्रके वेत्ता सर्व मंत्री तिनिसूं मंत्रकरि अपनी पुत्रीका स्वयंवर रच्या सो दैवने औरहो प्रकार करी ॥ ३० ॥ मेरे मूलके उच्छेद कारण भया हुता सो आपके प्रसाद करि शांत भया आपके चरणारविंदका शरण मैं रणविषैं ग्रह्या तातैं जीवता बच्या ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! देव विद्याधर भूमिगोचरी तिहारे चरणकमलके भ्रमर हैं अर आप चक्रकरि दाब्या है दसूं दिशाका चक्र कहिये मंडल तहां मुझसे किंकरनिकी कहा बातैं ॥ ३२ ॥ परि आपनैं मेरा अद्भुत सन्मान कीया कृपाकरि मोहि ऐसा कर्जदार कीया जैसैं परभवविषैं भी कृपाके कर्जतैं न छूटूं ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! ए नाथवंश अर सोमवंशरूप अंकूरे श्रीऋषभदेवनैं उगाए अर आपनैं बढाए पाले जौलग पृथ्वीतल है तौलग थापे ॥ ३४ ॥ ऐसी विनयकी वाणी सुनिकरि नवनिधिका स्वामी अति प्रसन्न भया अत्यंत कृपाकरि वस्त्र आभर्ण वाहन दीए ॥ ३५ ॥ अर सुलोचना योग्य वस्त्र आभर्ण दीए अर याहि विदा कीया तब इह पृथ्वीकूं प्रियाकी नाईं सपरसिकरि स्वामीकौं नमस्कार करि विदा होय चाल्या ॥ १३६ ॥ जे पुण्याधिकारी हैं तिनिकैं संपदा अधिकी बधै है नगरके लोग अर जाचकनिके समूह तिनिकरि स्तुतियोग्य है साहस जाका ऐसा जयकुमार नगरतैं

हाथी चढि करि बाहरि निकस्या ॥ ३७ ॥ प्राणप्रियाके अवलोकनकी है अभिलाषा जाकै अपने मनके वेगका प्रेरया शीघ्रही गंगाके निकट आया ॥ ३८ ॥ सो एक अशुभ शुकन देख्या, सूखे वृक्षकी शाखाके अग्रभाग एक काग सूर्यके सन्मुख होय करि शब्द करता देख्या ताहि देखिकरि मति कदाचि प्राणवल्लभाकूं कछू पीडा होय ऐसी चिंतवतासंता प्रेमके सद्भावतैं मूर्च्छित होय गिर पर्‍या सो गणधर देव राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे राजा श्रेणिक! ऐसे प्रेमके सद्भावकूं अर रतिके सुखकूं धिक्कार होउ ! जब इह मूर्च्छा खाय पर्‍या तब चेष्टाका जाननहारा शकुनशास्त्री ऐसे वचन कहिकरि जयकुमारकूं धैर्य बंधावता भया—हे देव ! सुलोचना तौ सुखसूं तिष्ठै है तिनिकूं कछूही चिंता नाहीं ॥ १३९–४१ ॥ अर या शकुनतैं आपकूं कछूइक जलका भय है ऐसे वचन शुकनीके सुनि हस्तनागपुरका पति सोमवंशीनिका शिरोमणि सचेत भया ॥ ४२ ॥ वह सुरदेवनामा निमित्तज्ञानी ताके वचन प्राणावलंबन करि जयकुमार शीघ्रही चाल्या सो मोहके उदयतैं गंगाविषैं औंडे पानी हाथी प्रेर्‍या जो कामी मोहित चित्त है तिनिकूं हेयोपादेयका विवेक कहा? ऊंची हैं सूंडि अर दांत जाकै अर कुंभस्थलके अधोभाग आय लग्या है जल जाकै ॥ ४३ ॥ ऐसा वह गजराज मगरके आकार जलमैं तिरता जाय है सो जहां गंगाविषैं सरजूनदीका समागम भया तहां औंडे ह्रदके मध्य वह सर्पणीका जीव जो काली नामा देवी भई है तानैं जलचरका आकार करि हाथीके चरन पकरे ॥ ४४ ॥ अपनैं स्थानकविषैं निर्वलहू बलवान भासै है सो हाथीकूं डगता देखि हेमांगद आदि सुलोचनाके भाई तटपरि आय करि अति संभ्रम करि द्रहमैं परे अर सुलोचनाहू इह उपद्रव देखि कीया है णमोकार मंत्रका स्मरण जानैं भक्तिकरि पंचपरमेष्ठीकूं हृदयविषैं थापिकरि उपसर्गके अंतपर्यंत तज्या है आहार जानैं ॥ ४५–४७ ॥ अर शरीरका ममत्व तजि अनेक स्हेलिन सहित गंगामैं प्रवेश करती भई जैसैं गंगादेवी प्रवेश करै तैसैं सुलोचना प्रवेश कीया तब गंगाप्रपातकुंड तहां गंगाकूट नामा पर्वत ताकी निवासिनी गंगा नामा देवी ॥ ४८ ॥ ताका

आसन कंपायमान भया तातैं आसन कंपायमान होवेकरि जानी जो सुलोचनाके पतिकूं उपद्रव भया अर सुलोचना जलमैं प्रवेश कीया है सो वह देवी सुलोचनाकी मित्र सुलोचनाका वापरि गुण है सो वह कृतज्ञ शीघ्रही आयकरि कालीकूं दरबडाय सबनिकूं गंगाके तीर ल्यावती भई ॥ ४९ ॥ जे पुण्याधिकारी हैं तिनिकी आयकरि कौन रक्षा न करै ? गंगाके तीर सब संपदाकरि एक मायामई शुभमंडप बनाया ॥ ५० ॥ तहां मणिमई सिंहासन परि सुलोचनाकूं थापि पूजाकरि गंगादेवी कहती भई—तैं मोहि णमोकार मंत्र दीया हुता ताके प्रसादतैं मैं गंगादेवी भई ॥ ५१ ॥ तेरे प्रसादतैं इह सर्व विभूति है, मैं पहले स्वर्गकी इंद्रकी आज्ञाकारिणी हूं जब गंगादेवीनैं ऐसैं कह्या तब जयकुमार सुलोचनाकूं पूछता भया इह वृत्तांत कौन भांति है ॥ ५२ ॥ सुलोचना कही—जो विंध्याचल पर्वतके समीप प्रसिद्ध है विंध्यपुरी नामा नगरी तहां राजा विंध्यकेतुके रानी प्रियंगुश्री तिनिकी पुत्री विंध्यश्री ताहि ताके कलागुण सीखिबे अर्थि मेरे समीप राखी मेरे पिताकूं सौंपी मेरे समीप कलागुण सीखती हुती एक दिन वसंततिलक नामा उद्यानविषैं क्रीडा करती सर्पनै डसी तहां मैं णमोकारमंत्र दीया ॥ ५३—५४ ॥ सो णमोकारमंत्रका स्मरण करती मूई सो इह गंगादेवी भई ए समाचार सुलोचनाके सुनिकरि जयकुमार हर्षित भया ॥ ५५ ॥ उचित सन्मानकरि गंगादेवीकूं विदा करी अर गंगाके तीर अपना डेरा हुता तहां प्रियासहित अर भाईनिसहित प्रवेश कीया कैसा है डेरा ? चालती ध्वजानिकी पंक्ति करि आकाशकूं शोभित करै है ॥ ५६ ॥ डेरामें प्रवेशकरि स्नेह सहित राजेंद्रकी कृपाके वचन प्राणप्रियाकूं कहिकरि जे चक्रवर्तिनैं वस्त्राभरणादि दीए हुते ते प्रियाके प्रियाकूं दए ॥ ५७ ॥ अर ताकूं अतिहर्ष उपजायकरि वह रात्रि तौ वहांही पूर्ण करी अर प्रभातही सूर्यकी नाईं उद्योत कीया है अखिल दिशामें जानैं ऐसा जयकुमार सो अपने अनुरक्त पुरुषनिके हर्षित करिबेकूं हथनापुरकी उर चाल्या गंगाके तीर तीर गमन कीया ॥ १५८—६१ ॥ प्रेमकरि कुरुवंशीनिका वल्लभ जयकुमार सुंदर जे प्रीतिके वचन तिनिकरि कामिनिकूं अतिहर्ष उपजावता भया, गंगाकूं स्त्री समान वर्णन

करैं हैं कैसी है–गंगा? भंवर है नाभि जाकै अर दोऊ ढाहे है नितंव जाकैं ॥ ६० ॥ अर चंचल जलचर तेई हैं लोचन जाके अर पति जो समुद्र ताके सन्मुख चली जाय है तरंगरूपी वाहु तिनिकरि अत्यंत आलिंगनकी है अभिलाषा जाकै ॥ ६१ ॥ अर स्वभावकरि सुंदर है अर स्वच्छताके गुणतें निर्मल है हृदय जाका अर फूलिरहे हैं दोऊ तटके वन सोई भई पुष्पमाला ताहि धरै है ॥ ६२ ॥ अर अति वेढ्या है जलरूप रसका वेग जाकै ताहि थांबिवेकूं असमर्थ है पानी ढाहा तोडि वारै आवै है सो जयकुमार सुलोचनासूं कहै है–हे प्रिये ! इह गंगा अपना पति जो समुद्र ताकी उर चली जाय है सो याहि नीकै देखि। कैसा है समुद्र? जलरूप है स्वरूप जाका अर कामविना रतिक्रीडाकी इच्छा नाहीं मिलापकी वांच्छा है अर समुद्रके संगमविषै यह तनमई होय जाय है सो प्रेमका यही लक्षण है। अर समुद्रकी लावण्यता या गंगाकरि सफल होय है। गंगाकी उत्पत्ति तौ हिमवान पर्वत है अर पृथ्वीविषैं वृद्धिकूं प्राप्त भई है अर समुद्र है पति जाका इह आप निर्मल है अर औरनिके वाह्यमल नाश करै है महा उज्वल है लोकनिकरि मान्य है महा सतीनिकी है उपमा जाकूं। इहां कोऊ पूछै है–महा सतीनिकी उपमा कैसे वनै? ताका समाधान–तिनिहूके एक पति है। अर वे पति सो इकरंग है अर याहूकै एक समुद्र पति है अर इह वासूं इकरंग होय प्रवर्तें है तन्मई होय जाय है दूजा भाव नाहीं। अर वे पति, कवि याकी प्रशंसा करै हैं–महादिव्य है लोकगुणप्रिय है जामैं गुण होय ताकी सब प्रशंसा करैं, जो गुण न होय तौ कौन प्रशंसा करै? या भांति जयकुमार सुलोचनासूं गंगाका वर्णन करते अर और अनेक कौतूहलकी वार्ता करते कईक प्रयाणकरि कुरु जांगलदेश आय पौंहचे। जयकुमारके वचन सुनिबे योग्य हैं अर अति मनोहर हैं ॥१६८॥ वहुरि कुरुजांगलदेशके वर्णनके मिषतैं सुलोचनाकूं आनंद उपजावता नगरके निकट आया तब फल पुष्पादि अनेक वस्तु लेकरि निज जन सन्मुख आये, मानूं वही पुरी सन्मुख आयकरि सर्वरूप नेत्रनि करि राजा अर रानीकूं देखैं है। कैसे हैं सर्वरूप नेत्र प्रफुल्लित जे नीलकमल अर लालकमल तिनि करि शोभित हैं अर वह पुरी मानूं सुलोचना ही

है सत्-समीचीन पडकोट सोही हैं नितम्ब जाकै अर वापी कूप तेई हैं नाभि जाकै अर सुवर्णका कोट सोही है कटिसूत्र जाकै. अर सिंगारी हैं गली तेई हैं बाहू जाकै अर उत्तुंग मंदिर तेई हैं कुच जाकै अर देदीप्यमान दरवाजे तेई हैं मुख जाकै, अर केशरि अगर कपूर तिनिका कर्दम ताकरि सुगंध है गात्र जाका अर नाना प्रकारके पहुप तिनिकरि गूंथी माला सोई गुंथी है चोटी जाकी अर तोरणनिके बंधी रत्नादिक माला ताकरि सोभित है शरीर जाका अर ध्वजा ऊंची जाय नीची आवै सोई भए हाथनिके झाले तिनिकरि प्रिया अर प्रीतमकूं बुलावै है। अर घरनिके किवाड उघडि रहे हैं तेई नेत्र जाकै अर घरमें उच्छव होय रह्या है नगरकी नारी कलश बंधायवे आई हैं अर प्रोहित मंत्री अर बडे वडे प्रसिद्ध सेठ ते सन्मुख आए हैं नाना प्रकारकी भेट करी है आसिखा दीनी है अर आशीर्वाद दे हैं महाआनंदरूप दर्शनके अभिलाषी परिजन कहिए परिवारके लोक अर पुरजन कहिए नगरके लोक ते सन्मुख आए हैं तिनिसहित जयकुमार इंद्रकी नाईं नगरीमें प्रवेश कीया वादित्रनिके मंगल शब्द होय रहे हैं नगरीकी शोभा निरखता महा आनंदकी करणहारी नानाप्रकारकी रिद्धि तिनिसहित राजमहल आया। नगरके जन तिनिके हृदयविषैं स्त्रीसहित बसता भया। भावार्थ—नगरके नर नारी तिनिके चित्तमें राजा रानी बसते भए सबनिकूं हर्षित करते भए, जयकुमारकी अर सुलोचनाकी शोभा देखि सबही अचिरजकूं प्राप्त होय अति आनंदकूं प्राप्त भए. ऐसी पति पत्नीकी जोडी जगतमैं नाहीं। तिथि, वार, नक्षत्र, योग अर कर्ण ए पंच गतिनि करि शुद्ध भले मुहूर्तविषैं राजा रानीके राजमहल आए, सबनिकूं संतोष उपजाय महामंगल संपदासहित श्रीजिनेश्वरदेवकी पूजाकरि राजा जयकुमार उपज्या है महा उच्छव जाकै सो हेमांगद आदि सुलोचनाके भाई तिनिकै समीप उचित सिंहासनविषैं सुलोचनाकूं बैठाय करि पट्टरानीका पद दीया अति हर्ष करि पट्ट वांध्या। जे महापुण्यवंत स्त्री हैं तिनिकै पतिकी कृपाही विषैं अनुराग है और काहू वस्तुका अनुराग नाहीं अर पतिकी प्रीतिका हद्द यही है जो पट्टरानी पद दे या समान और नाहीं

॥१६९-१८१॥ अर भाईनि सहित हेमांगद आया था सो जयकुमारने अति आदरसूं पाहुण गति करी, सब उत्तमकार्य इनकूं आगैं धरि कीए गावमैं ल्याया अर जे भोगिवे योग्य वस्तु हैं ते सब इनकै आगैं धरी अर गीत नृत्य वादित्र मीठा बोलना इत्यादि अनुराग चेष्टाकरि प्रियाके भाईनिकूं अति प्रसन्न कीए अर एक हाथी परि हेमांगद अर आप चढिकरि वन वापी सरोवर तिनिविषैं क्रीडाकरि अर कंदुकादि विनोद करि इनिकूं अति रिझाए, कैयक दिन हेमांगदादि हजार भाईनिकूं अति सुखसूं राखे। बहुरि मनवंछित गज, अश्व, शस्त्र, वस्त्र, दासी, दास, आभूषणादि देइ करि विदा कीए जो उनका सन्मान उचित था सो कीया, रत्न, सुवर्ण, रूपा तथा रुपया पैसा इह चतुर्विध भंडार भेटकरि इनको काशीकी उर प्रयाण कराया ॥ १८२—८५ ॥ सो ये हेमांगदादि कुमार कैयक प्रयाण करि अति सूखसूं काशी जाय पहौंचे, राजा अकंपन अर रानी सुप्रभा तिनिकूं देखिकरि प्रणाम करि जयकुमार सुलोचनाकी वार्ता कहि उनकूं अति आनंद उपजाया ॥ १८६ ॥ राजा अकंपन सुखसूं राज करै, कैइक दिन वितीत करते भए, अकंपनकूं वैराग्य उपज्या तब काम भोगविषैं विरक्त होयकरि मनमैं चिंतवता भया ॥ ८७ ॥ अहो ! मैं प्रमादी विषय करि अंधा तातैं संसारका चरित्र असार न देख्या ? यह बडा कष्ट है ॥ ८८ ॥ यह संसार शरीर अर भोग सबही असार या शरीरका मूलकारण पिताका वीर्य अर माताका रुधिर सो महा अशुचि अर याके सब अवयव अशुचि, इह शरीर महा अशुचिका करणहारा, पापरूप अर खोटी चेष्टानिका स्थानक, निरंतर स्रवै है नव द्वारनिमैं दुर्गंध जाकै, अर क्रमिनिके पुंज ताकरि भर्‌या इह शरीर कैतौ भस्म हो जाय अर कै कोऊ खाय जाय तौ विष्टा होय जाय ॥ ८०-९० ॥ ऐसे मलिन शरीरविषैं तिष्ठि करि इह मूढप्राणी पंचइंद्रीरूप अग्नि करि तप्तायमान भया संता कुगतिकूं प्राप्त होय है, कैसी है इंद्रीरूप अग्नि ? संपूर्ण विषयरूप है इंधन जाविषै ॥ १९१ ॥ आशारूप खानि एक जीवकै ऐसी अगाध जाविषैं त्रैलोक्यका समस्त धन एक अणुसमान है धनकरि आशा न मिटै जैसैं समस्त इंधन

करि अग्नि तृप्त न होय अत्यंत बढती ही जाय, ता आशारूप खानिकूं में निश्चयसेती पूर्ण कीया चाहूं हूं संख्यारूप धन करि सो कैसें पूर्ण होय ? ॥ ८२ ॥ अर संसारका कारण इह शरीर है जाहिं अंगीकार करि यह जीव चतुर्गतिमैं भ्रमै है अर जब शरीरका ग्रहण छूटै तब यह जीव मुक्त होय है, सो शरीरका यथार्थ स्वभाव जानिकरि बुद्धिमान कैसें पोखैं ? राजा अकंपन विचारै है—हाय हाय ! मैं मोहकरि ऐसा हत्या गया जो वृद्ध हूवाहू मेरे वैराग्य उपजनेका समय है तौऊ माया जालमें फंसि रहा हूं अनादिकालका लागा मोह अद्यापि न छूटै । इह अशुचि ताविषैं पवित्रता नाहीं सो शरीरका ममत्व तजना दुर्लभ नाहीं सुलभ है यह ममत्वही ज्ञानका निरोधक है ॥ १९३-९४ ॥ अर या संसारविषैं कोऊ तौ दुखी होय जाय हैं अर कोऊ सुखी होय हैं अर कोऊ दुखी सुखीही होय हैं निश्चय विचारिए तौ संसार अवस्थाविषैं केवल दुखीही हैं ॥ ९५ ॥ अर या जगतविषैं धनवान तौ निर्धन होय जाय है अर निर्धन धनवान होय जाय है अर कोई निर्धन निर्धनही बने रहै हैं या भांति चिरकालतैं वांछित अर न वांछित जो संसारकी त्रिविध अवस्था तिनिकरि अनादिकालतैं जीव भ्रमै है चौथा भाग जो मोक्ष ताहि न पायकरि संसारसमुद्रविषैं भ्रमै है ॥ ९६ ॥ जा स्त्रीकूं इह इच्छै है सो स्त्री काहू औरकूं इच्छै है अर वह काहू और नारीकूं इच्छै है, अर वह नारी काहू औरकूं इच्छै है या भांति अनिष्ट कष्टकी परंपरा दृष्टिमैं आवै है ॥९७॥ जो इष्ट है सो अनिष्ट होय जाय है अर अनिष्ट है सो इष्ट होय जाय है इष्ट अर अनिष्टकी निश्चयकरि थिरता नाहीं ॥ ९८ ॥ अर या संसारविषैं पुरुषतैं स्त्री होय जाय हैं अर स्त्रीतैं नपुंसक होय जाय हैं अर नपुंसकतैं स्त्री होय जाय हैं अर स्त्रीतैं पुरुष होय जाय हैं अर नपुंसकतैं पुरुष होय जाय हैं अर नपुंसकतैं नपुंसक भी होय जाय हैं या भांति संसारचक्रविषैं जीव परिभ्रमण करै है ॥ १९९ ॥ तातैं मैं जिनभाषित धर्मका चिंतवनकरि या संसारका अंत करूंगा या संसार वनविषैं अनादिकालका भ्रमूं हूं अब कालतैं डर्‍या कालके जीतिवेका यत्न करूंगा ॥ २०० ॥ ए भोग कारे नागके फणसमान भयंकर हैं

अर ए भोगी पुरुष सर्पसमान विषयरूप विषके भरे हैं अर मेरे ऐसा भोगहू नाहीं भोगनिविषैं जे उत्कृष्ट भोग हैं ते मेरे कहां ? मैं वृथाही उच्छिष्ट वस्तुविषैं रचि रह्या हूं ॥२०१॥ जो भोगवै सो भोगी अर भोगवेकी सामग्री सो भुक्ति अर भोगवना सो भोग सो ए नर्कविषैंहू हैं काहेतैं जो नर्कविषैं दुखदाई पदार्थ हैं ते तौ भुक्ति अर भोगवना सो भोग अर दुःखके भोक्ता नारकी ए विषयके सुख सवही दुःख हैं तिनिविषैं कहा रति ? ॥ २०२ ॥ ए भोग तृष्णारूप अग्निके वधायवेकूं इंधन समान हैं जैसैं दीपनीय औषधि जठराग्निकी वृद्धि करै है तैसैं ए वांछारूप अग्निकी वृद्धि करैं इनि भोगनिकरि वढी तृष्णारूप अग्नि ताकी शांतिकै अर्थि मोहि वैराग्यभावकरि चिंतवन करना और उपाय नाहीं इनि भोगनिकरि तृष्णा न मिटै ॥ २०३ ॥ ऐसा चिंतवनकरि वह सुवुद्धि तत्काल तृष्णारूप विषयका वमन करता भया अर हेमांगदनामा पुत्रकूं बुलायकरि पूज्य जो भगवान तिनिकी पूजापूर्वक ताका अभिषेक करि लक्ष्मीकूं चंचल जानि पट्टबंध करि कोइक दिन निश्चल करी हेमांगदकूं राजलक्ष्मी सोंपिकरि आप महाविरक्त होय ऋषभदेवके समीप गया। वडे वडे वहुत राजा तिनिसहित अर रानी सुप्रभासहित वैराग्यकूं धारता भया आप मुनि भया रानी अर्जिका भई अनुक्रमतैं राजा अकंपन क्षपकश्रेणी चढि केवलज्ञान उपजावता भया ॥ ४-६ ॥ अथानंतर—जन्मांतरतैं चल्या आया जो महास्नेह ताकरि परिपूर्ण जयकुमार सुलोचना दोऊ, सो राजा जयकुमार रानी सुलोचनाका मुख सोई भया चंद्रमा ताथकी निकस्या क्रांतिरूप अमृत ताहि प्रफुलित नीलकमलसमान अपने लोचन तिनिकरि पीवतासंता अर ताकी वाणी सोई भया अमृत ताहि कानरूप पात्रकरि पीवतासंता आनंदकूं प्राप्त होता भया। भावार्थ—नेत्रनिकरि ताके मुखकी क्रांतिकूं निरखता भया अर काननिकरि ताके गीत श्रवण करता भया। अर हाथीकी सूंडिसमान अपने कर तिनिकरि तासूं आलिंगन करतासंता ताका जो गात्र सोई भया रसकूप ताविषैं तिष्ठता जो सुखरूप जल ताहि सपरसता अर किंदूरीसमान अपने कर तिनिकरि तासूं ताके आरक्त अधर तिनिका आस्वादन करतासंता अर

ताका मुख सोई भया कमल ताकी सुगंध आघ्राण करता संता काल वितीत करता भया मानूं ऐसी विचारै है जो मेरे याही भवविषैं स्त्रीका संबंध है आगैं नाहीं सो अपने नेत्रादिक इंद्रीनिकूं सुलोचनाके संगतैं तृप्ति करता भया । भावार्थ—जयकुमार याही भवतैं मुक्त होयगा आगैं भव धारना नाहीं सो स्त्रीका संग नांही ॥ ७-११ ॥ अर जो वस्तु पूर्ण होय सो एकवार अधिक बढै जैसैं दीपक बुझनेरूप होय तब प्रकाश अधिक करै रागभावनिथकी दोऊनिके रतिकी तुल्यता होती भई दोऊही परस्पर अति अनुरागी सो संभोग अर शृंगाररूप जो समुद्र ताकै मध्य मग्न होते भये ॥ २१२ ॥ अतिशयपणे रतिकी परणतिकरि लुप्त भए हैं मलयागिरि चंदन केशर आदि सुगंध वस्तुनिका लेप अर दले मले गए हैं पुष्पमाला अर आभरणादि सो राजा जयकुमार रानी सुलोचनाकी सकल इंद्रीनिका विषयरूप ही होता भया अर वह सुलोचना जयकुमारके इष्ट विषयनिका कारण होती भई, ए दोऊ अनुरागरूप रसके भरे समान रति करि, विषय जीवनिकूं प्रिय लागैं ऐसे इंद्रीनिके सुख तिनिकूं भोगवते भए ॥ १३ ॥ तिन दोऊनि कामकरि उपज्या जो सुख सो सेया परंतु अनुरागके योगतैं दोऊनिके परस्पर अति अभिलाष सो मनकी तृप्तिकूं न प्राप्त भए वांछा न मिटी दोऊ अनुरागरूप जो भाव ताकरि अत्यंत युक्त हैं सो तिनिका मन इंद्रीनिके उपायकरि उपज्या जो सुख ताकूं प्राप्त होता भया परंतु इंद्री सुखनिकरि तृप्त न भये, इहां गणधरदेव श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे श्रेणिक ! आत्मानुभव टारि जो परजनित सुख सो काहू क्षेत्रविषैं अर काहू कालविषैं तृप्तिका कारण नांही । भावार्थ—इंद्रियजनित सुख व्याकुलतारूप है तामैं तृप्ति कहा ? तृप्तिका कारण इंद्रीरहित आत्मीक सुख है ॥ १४ ॥ अपने श्वासकरि उपजी जो शीतल सुगंध पवन ताकरि अर मधुर वचन तिनिकरि अर आस्वादवे योग्य जे अधरादिक तिनिकरि अर महासुंदर कोमल शरीररूप वेलि ताकी हद्द करि समस्त इंद्रीनिका सुख दोऊ भोगवते भए ॥ १६ ॥ वे दोऊ झरोखनिके मार्गकरि प्रवर्ती जो शीतल मंद सुगंध पवन ताकरि रति कीडाके अंत उपजा जो पसेव ताके विच्छेदका जो सुख

ताहि प्राप्त होते भए। कैसी है पवन? हस्या है कमलनिका मकरंद जानै वहुरि कैसी है पवन? प्यारी सखी समान है, अर भ्रमरनिके शब्द करि शोभायमान है अर निरंतर अरतिकूं निवारै है अर रतिका कारण है॥ १६॥ ता सुलोचनाकूं जयकुमारकी सकल चेष्टा अनुरागरूप होती भई अर सुलोचनाकी सकल चेष्टा जयकुमारकूं अनुरागरूप करती भई, इन दोऊनिका परस्पर रागरूप प्रवर्तन सोई रतिकी तृप्ति ताका निमित्त होता भया वल्लभ और वल्लभा इनि दोऊनिविषैं प्रेम पूर्ण होता भया, इन दोऊनिका भाव काहूके चिंतवनमें न आवै पिछले भवके पुण्यकरि उपजी साता ताका उदय अर जन्मकी प्राप्तिका फल दोऊ भोगवते भये॥ १७॥ काम जो है सो संभोगवृत्तिविषैं जयकुमारका शिष्य होता भया अर रति जो है सो सुलोचनाकी शिष्यणी होती भई, अपने इष्ट अर्थकी सिद्धीके कारण जे गुणाधिक्य तिनिविषैं कौन सुबुद्धि गर्वको धरै? कदाचि न धरै, जो व्रताभिमानी न होय सो गर्व कदाचि न धरै गुणाधिक्यविषैं मूढजन गर्वकूं धरै॥ १८॥ या भांति वे दोऊ चिरकाल शरीरके सुख भोगवते अभिलाषाके अंतकूं न प्राप्त होते भए तातैं इष्टविषयकरि उपज्या जो सुख ताहि धिक्कार होउ यह विषयसुखही महाकष्ट है जे पंडित जन हैं ते विषयरहित जो आत्माके सुख ताके अर्थि यत्न करहु॥

इति श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे सुलोचनासुखानुभव व्यावर्णन नाम पैंतालीसवां पर्व पूर्ण भया॥ ४५॥

अथ छियालीसवां पर्व।

अथानंतर—जयकुमार महलनिके ऊपर वैठे दिशावलोकन करते हुते सो विद्याधर विद्याधरी अपनी इच्छाकरि विहार करते आय निकसे, तिनिकूं देखिकरि जयकुमारकूं जातिस्मरण भया सो "हा प्रभावती!" ऐसा विलापका शब्दकरि तत्काल मूर्छाकूं प्राप्त भया, परभवकी प्रीति यादि आय गई अर ताही समय कबूतर कबूतरीके युगलकूं देखिकरि 'हा! रतिवर!' ऐसा शब्द कहिकरि सुलोचनाहू मूर्छाके भावकूं प्राप्त

भई तब जे चतुर दासी हैं ते शीघ्रही सीतोपचार करि याकूं सचेत करी जैसैं कमोदनी चंद्रमाके प्रकाशकूं पाय प्रफुल्लित होइ तैसैं प्रफुल्लित भई अर कपूर चंदनकरि गिश्रित जो जल अर सीतल मंद सुगंध पवन ताकरि जयकुमारहू सचेत भया सो मंद मंद दिशानिकी उर देखै किंचिन्मात्र उपजी है लज्जा जाकूं सो प्रवीण सर्व जानताथकाहू रणवासकूं अैसैं पूछता भया जो तुम समस्तही सांझका कमलसमान मुद्रितमुख होय गये सो कारण कहा ? अर प्रभावतीके नाम ग्रहण करि मति कदाचि प्रिया अप्रसन्न होय अैसी विचारि सुलोचनाकूं अनेक उपायकरि हर्षित करी अर याहि अपने जन्मांतरकीहू स्त्री जानी जो इह मेरे हिरण्यवर्माके भवमें प्रभावतीनामा स्त्री हुती, या भवसमेत पांच भवकी स्त्री है सो आप याहि प्रसन्न करि आलापरूप करते भए। कांताविषैं अनुरागी हैं ते ठगविद्याविषैं प्रवीण होय हैं ॥ १-८ ॥ इनि दोऊनिके जन्मांतरका स्मरण भया तापीछैं स्वर्गलोकविषैं अवधिज्ञान हुता सो इनिकूं प्राप्त भया। इनि दोऊनिका चरित्र देखिकरि सुलोचनाकी पहिली सौकि श्रीमती अर शिवंकरा अदेखिसकेपनेतैं परस्पर बतरावती भई—जो देखो! सिद्धांतविषैं कही है, स्त्रीविषैं मायाचार होय है सो इह काशीपतिकी पुत्री मायाचारकूं प्रगट करती पतिकी मूर्छाका कारण पाय आपहू मूर्छित होय गई, कृत्रिम जो मूर्छा ताके वशिकरि अचेत होय गई निरंतर चित्तविषैं तिष्ठता जो रतिवरसूं अधिक प्रेम ताकरि प्रेर्या है चित्त जाका ताकरि शीलव्रतका भंग करणहारा जो अन्य पुरुषके नामका ग्रहण ताकरि दूषित है सो रतिवरकूं चितारिकरि मूर्च्छित भई। इह कुलदूषिणी कन्यापनेमैं व्रतलोपित भई है, गोत्रस्खलनकरि दूषित है अर याहि पति महाशीलवती कहताथका वर्णन करै है सो इह बात सत्य है, जो रागी पुरुष होइ तिनिकूं दोष गुणवत् भासै हैं। इह पति कैसा धूर्त है प्रियाकूं प्रसन्न करिवेकी इच्छा जाकै सो आप मूर्छित होयकरि 'प्रभावती' अैसा शब्द कहि करि याहि प्रसन्न करी। याकी प्रीतिकरि हमकूं शोकरूप करै है ॥९-१५॥ ए उनके वचन सुनिकरि अवधि है नेत्र जाकै अैसा जयकुमार सो उनके मनमें संदेह उपज्या जानिकरि आप मुलकनिसहित सुलोचनाका प्रफुल्लित

मुख देखताथका तासूं कहता भया—हे कांते ! अपना जन्मांतरका सकल वृत्तांत इनिकूं कहिकरि संदेहरहित करहु। रतिवर अर प्रभावतीके नामकरि इनिकूं कौतुक उपज्या है सो पूर्वजन्मका सकल वृत्तांत कहौ। याभांति पतिनें प्रेरी तब वह महासती पतिके भावकी जाननहारी मिष्टभाषिणी प्राचीन सकल कथा कहिवेकूं उद्यमी भई सुलोचना कहै है अर सर्व सुनै हैं ॥ १८ ॥ या जंबूद्वीपविषैं पूर्वविदेह नामा क्षेत्र तहां पुष्कलावती नामा देश ताविषैं पुंडरीकिणी नामापुरी तहां प्रजापाल नामा राजा होता भया सो पुण्याधिकारीमैं श्रेष्ठ वह राजा प्रजाकूं पालता संता धर्म अर्थ कामका अंगीकारकरि राज्य करै। तापुरीविषैं कुवेरमित्रनामा राजश्रेष्ठी महा लक्ष्मीवान लोकविषैं प्रसिद्ध जाकी राज द्वारविषैं महाप्रतिष्ठा ताकै धनवती आदि वतीस स्त्री मनकूं प्रिय अर श्रेष्ठीका मंदिर उतुंग अनेक प्रकारके मंदिरनिकरि वेढ्या ताविषैं एक परेवा पंखीनिमैं उत्तम रहै, परेवाका नाम रतिवर सेठने धर्या ॥ २२ ॥ परेवासूं शेठकी अतिकृपा, सो कबहू तो राज द्वारतैं सेठ आवै तब ताहि अतिलढावै, स्नेहकरि सेठ मुलकता थका परेवासूं वचनालाप करै अर अपने हाथनिकरि ताहि चुगावै, हाथनिपरि राखै, अर कबहूक सेठकी स्त्री तिनिकै सुंदर हस्त कमल तिनिकरि दिया मिश्री सहित सुंदर चावल तिनिकूं चुगै अर कबहुक सेठ वाहि दृष्टांत पूर्वक अहिंसा धर्मका उपदेश दे, जीवनिकूं हितकारी ताहि वह चितकरि धारै अर कबहुक सेठकै घर मनिराज आहारकूं आवै तिनिके चरण कमलकी रेणुकाका समूह अपनी पांखनिकरि झारै अर कबहूंक साधर्मी लोक याहि कौतूहलकरि पूछैं—हे रतिवर ! पापीनिकी अर पुन्यवंतनिकी कहा गति ? तब वह चूंचसूं लिखि दिखावै जो पापीनिकी अधोगति अर पुण्यवंतनिकूं ऊर्ध्वगति मानूं यह मोनी आगमका पारगामी ही है, क्षयोपशमके महातपतैं तिर्यंचहू विवेकी होय है ॥२३–२८॥ ता रतिवर कबूतरके रतिषेणा नामा कबूतरी अतिप्रिया तासहित क्रीडा करता संता सुखसूं काल व्यतीत करै सो वह रतिवर कबूतर तुम राजा जयकुमार मेरे वल्लभ अर मैं रतिषेणा नामा कबूतरी तिहारी प्रिया, संसार भ्रमणविषैं प्राणीकै कहा कहा जन्म न होय है ? ॥३०॥ अथानंतर कुवेरमित्र श्रेष्ठीके अर धन-

वती सेठानीकें महापुण्याधिकारी कुबेरकांत नामा पुत्र भया सो महा सुबुद्धि मानूं दूजा कुबेर ही है अर कुबेरकांतके प्रियसेन नामा महामित्र होता भया सो मानू याका दूजा प्राण ही है, बाल्यावस्था हीतें इनि दोऊनिकी संगति होती भई अर कुबेरकांतका जन्म हुवा ताही दिनसूं अत्युत्तम कामधेनु इनिके घरमैं मनवांछित समस्त सुखके साधन उपजावती भई। कामधेनुके प्रभावकरि एक खेत सुगंध शालिका नित उपजै अर एक खेत अमृत समान सांठनिका नित उपजै, सांठे महास्थूल अर अत्यंत सूक्ष्म है द्योति जिनिकी, अर कुबेरकांत कुमारके समीप कामधेनु देवी निरंतर वीणा बजावै अर कुबेरकांत स्नान करै तब स्नानके समय सर्व रोग अर मल तथा पसेवका निवारणहारा सुगंध गंगाजल गंभीर ध्वनि करते मेघकुमार आकाशतें वरसावै अर एक कल्पवृक्ष मनोहर वस्त्र दे तथा एक कल्पवृक्ष सुंदर आभरण दे अर एक कल्पवृक्ष अद्भुत भोजन दे अर एक कल्पवृक्ष महारमणीक जल आदि पीवेकी वस्तु दे। या भांति औरभी समस्त भोगनिके कारण कुबेरकांतके देवनिकरि निर्मापे हैं, ताकी बाल्यावस्था निरंतर देवोपनीत वस्तुनिकूं भोगवतें पूर्ण भई ॥ ३१–३८ ॥ जब कुमार नवयौवन अवस्थाकूं प्राप्त भया तब याहि देखिकरि माता पिताकै यह संदेह उपज्या जो इह एक नारी परणेगा अर बहुत परिणेगा सो या संदेहकरि व्याकुलचित्त भए। तब कुमारका मित्र जो प्रियसेन ताहि बुलायकरि मनकी वार्ता पूछी—वानै कही—कुमारकै एक नारी व्रतका धारण है तब वाके वचन सुनि निश्चय भया चित्तकी व्याकुलता मिटी मित्रता सोही, जो दोउनिका एकचित्त होय, कुबेरकांतकै अर प्रियसेनकै अद्वितीय मित्रता है ॥ ३९–४० ॥ अथानंतर कुबेरकान्तका पिता कुबेरमित्र ताकी बहिन जो कुबेरमित्रा सो समुद्रदत्त सेठ परण्या है अर कुबेरमित्रकी स्त्री धनवती सो समुद्रदत्तकी बहिन है सो धनवती अर कुबेरमित्राकी बहिन दोऊ समान वय हैं, एक दिन दोउनिका जन्म है सो समुद्रदत्त सेठकी स्त्री कुबेरमित्रा ताकी पुत्री प्रियदत्ती, जाकै रतिकारिणी सखी सो प्रियदत्ता आदि बत्तीस कन्या सुंदराकार बडे घरनिकी पुत्री तिनिकी सगाई

कुबेरकांतकी आई हुती सो कुबेरमित्र विचारी—जो सगाई तो मेरे पुत्रकी बत्तीस आई अर याके एक
नारीव्रत सो कहा करिये ? तब बत्तीस भाजनानिविषैं नानाप्रकारके भोजन तथा खीर अर घृत धरया अर ५६
एक भाजनविषैं नानाप्रकारके खीर आदि भोजन अर अलौकिक रत्न धरया अर बत्तीस कन्यानिकूं एक
एक भाजन दीया सो भोजन यक्षके मंदिरमैं करि आई, सेठ सबनिकूं पूछ्या—रत्न कौनके हाथ आया ?
तब प्रियदत्ता कही—हे माम ! रत्न मेरे हाथ आया । तब सेठ जानी यह मेरे पुत्रकी प्रिया होयगी सो शुभ
मुहूर्त्तविषैं महाविभूतिसूं प्रियदत्ता कुबेरकांतकूं परिणाई और सब लज्जावान होय विलखे वदन होय गई
अर उन सबनिमैं राजा प्रजापालकी पुत्री गुणवती अर यशस्वती भोजन न कीया, भक्षणसे पूर्ण भाजन
कुबेरमित्र जो मामा ताहि अपने हाथसौं सोंपि लज्जाकरि नीचेमुख होय, उपज्या है वैराग्य जिनिकूं
तत्काल अमितमती अर अनंतमती आर्यिका समीप आर्यिका भई, परम संयम आदरया अर प्रजापाल
बहुतदिन राजकरि लोकपाल पुत्रकूं राज देयकरि शिवंकर नामा वनविषैं शीलगुप्त नामा गुरुके निकटि
मुनिव्रत आदरे अर रानी कनकमाला आदि आर्यिका भई, जो अग्रेसर समर्थ होय तौ अल्पशक्तिहू विषम
मार्गविषैं गमन करै ॥ ४५–४९ ॥ प्रसिद्ध है उदय जाका ऐसा लोकपाल राज करै सो कुबेरसेठकी
बुद्धिकरि पृथ्वीकूं पालै । राजाके मंत्री फल्गुमति सो बालकबुद्धि अर असत्य है प्रिय जाकूं, राजाकी अर
मंत्रीकी समान वय, मंत्री दुष्ट चपल स्वभाव सो कुबेरमित्र सेठतैं शंकित रहै, यह बात दबा राजाकी
हजूर बोलि न सकै । मनके ऐसी विचारै—श्रेष्ठी राजाके ढिंग न आवै तो अच्छा । तब यह उपाय कीया
शय्याका अधिकारी ताहि प्रियवचन अर सुवर्ण रत्नादिक देकरि अपने वश कीया अर वाहि कही—जो
तू रात्रिविषैं जब राजा अर्धनिद्रारूप होय तब देवताकी नाई संस्कृत वाणीमैं ऐसैं कहियो—हे राजन् !
श्रेष्ठी कुबेरमित्र तिहारा ससुर पितासमान गुरु है, निरंतर राजद्वार आवै, सो विनय न सधै तुम सिंहासन-
पर तिष्ठौ अर वह नीचा आय बैठै सो योग्य नाहीं, तातैं कोऊ कार्य होय तब बुलाय लेहु । यह मंत्रीकी कहावति ३००

उरमें धारि शय्याके अधिकारीने ऐसें ही कीया—जो अर्थका अर्थी होय सो कहा न करै। या लोकविषैं ऐसा कोऊ न्यून कार्य नाहीं, जो लोभी न करै ॥ ५५ ॥ ऐसे वचन सुनिकरि राजा विचारी—जो इह देवआज्ञा भई। प्रभात श्रेष्ठीको बुलायकरि कही, तुम निरंतर आवौ मति, हम बुलावैं जब आवौ। विना विचारै राजानैं श्रेष्ठीसूं ऐसैं कह्या। जो विना विचारै कहिए सो आगामीकाल विषरूप होय परिणवै है। श्रेष्ठी राजाके वचनतैं उदास होय तत्काल घर गया। एकदिन राजा हाथीनिकी घटासहित विहारके अर्थि वनमें गया सो एक वापिका देखी ताके तीर एक सूखा वृक्ष ताकी शाखाके अग्रभाग काग पद्मरागमणि ल्याया ताकी प्रभाकरि वापिकाका जल पद्मरागमणिसमान रक्त भास्या, देखिकरि राजा अचिरजकूं प्राप्त भया ॥ ५६-५९ ॥ जानी—वापिकामें मणि है सो मनुष्यनिकूं वापिकामें पैसाय करि मणिकूं ढूंढिबेका उपाय कीया सो मणि न पाई, जे भ्रांतिकरि प्रवर्त्तैं तिनिकूं क्लेश ही होय फलकी सिद्धि न होय ॥ ६० ॥ चिरकाल ढूंढिकरि न पाई तब सब ही खेदखिन्न होय राजाकी लार नगरमें आए जिनिके बुद्धि अग्रेसर नाहीं तिनिकूं फलकी प्राप्ति न होय जो उद्यम करै सो वृथा जाय ॥ ६१ ॥ एक तौ वह बात भई बहुरि एक दिन श्रेष्ठीकी पुत्री रानी वसुमती तासौं राजा अनुरक्तचित्त सो रात्रिविषैं तासहित शय्याविषैं पौढ्या था सो केशरिकरि आर्द्र ताके चरण ताकरि तानैं राजाके ललाटविषैं चिन्ह कीया। भावार्थ—अपने चरणनिकी राजाके ललाटमें दई। ए स्त्री अपने वशीभूत भया पुरुष तासूं कहा कहा न करै? ॥ ६२-६३ ॥ वह रानीके चरणका चिन्ह ललाटविषैं उघड्या ताकूं राजा पट्टबंधहूतैं अधिक मान्या। प्रभातही राजा सभामैं आय बैठा तब मंत्री आदि सब आए तिनिकूं राजा ऐसैं पूछता भया जो काहूनैं राजाके ललाटविषैं पांयनिकी चोट लगाई होय ताके पांयनिका कहा करिए सो तुम कहौ तब मंत्री (फल्गुमति) मूर्ख कहता भया, हे देव! राजानिका ललाट पट्टबंध (राजाका मुकुट) टारि और कोऊ न सपरसि सकै अर जानैं पायनिकरि ताड्या होय सो प्राण हरिवे-योग्य है अथवा ताका पाय काटिए ॥ ६५-६६ ॥ इह वार्ता सुनिकरि राजा मुलक्या अर मंत्रीकूं मूर्ख

जान्या। कही—तुम समझते नांही। श्रेष्ठीकूं शीघ्रही बुलाया सो श्रेष्ठी आया। राजा ये समाचार कहे तब श्रेष्ठी कही—जो गुरुजनका पांय होय तौ पूजिए अर स्त्रीका होय तौ सव आभूषण कराय पहराइए अर बालकका पग होय तौ ताहि मिष्ट वस्तु खवाइए। ए वचन सुनिकरि राजा प्रसन्न भया बहुरि मणिकी वार्त्ता कही॥ ६७-६८ ॥ तब श्रेष्ठी कही—मणि वापिकाके जलमें नांही, वापिकाके तट वृक्ष है ताकी शाखाके अग्रभाग तिष्ठै है विचारिकरि श्रेष्ठीने राजासूं ए बात कही॥ ६९ ॥ तब राजा सेठकूं महा बुद्धिमान जान्या अर आपकूं अज्ञानी जान्या अर मंत्रीकी दुष्टता जानि अतिपश्चात्ताप कीया, मनमैं विचारी—मैं मूर्ख सो मोहि धूर्तनि ठग्या श्रेष्ठीका अति सन्मान कीया अर कही—निरंतर आयवौ करौ। ताहि अपना निकटवर्ती कीया॥ ७०-७१ ॥ स्वचक्र परचक्रका सकल भार राजा ताही दिनतैं श्रेष्ठीकूं सौंपि करि आप निश्चिंत धर्म अर कामका सेवन करता भया॥ ७२ ॥ एक दिन श्रेष्ठी कुवेरमित्रके सिरमैं श्वेतकेश देखि ताकी स्त्रीने कही जो कालका दूत आया। तब श्रेष्ठी ताकी अतिस्तुति करी अर कही तू सत्यवादिनी धर्मपत्नी है॥ ७२ ॥ आप हू श्वेत केश देखिकरि विरक्तचित्त भया राजासूं क्षमाभावकरि आपकूं राजाके मोहतैं छुडाया अर सेठ समुद्रदत्तादि सहित धर्मगुरुके निकट जायकरि सुर नामा पर्वतविषैं मुनिव्रत धारे॥ ७४ ॥ कुवेरमित्र अर समुद्रदत्त दोऊ मुनि महा तप करि अंतकाल समाधिमरणकरि पांचमैं स्वर्ग लौकांतिक देव भए, जे बुद्धिमान अपना शरीर विनश्वर जानि काल पहली तपका साधन करैं तिनिकूं कहा सिद्ध न होय? सवही सिद्धि होय॥ ७५ ॥ अथानंतर कुवेरमित्रका पुत्र कुबेरकांत सो श्रेष्ठीपद धारै नानाप्रकारके सुख भोगवै ताके प्रियदत्ता नामा स्त्री समुद्रदत्तकी पुत्री सो एक दिन विपुलमति नामा चारणमुनि तिनिकूं नवधा भक्तिकरि शुद्ध आहार देय महापुण्य उपार्ज्या॥७६॥ अर महाविनयकरि मुनिराजकूं पूछती भई—हे देव! मेरे थोडे ही दिनमैं अर्जिकाके व्रत होने हैं कि नाहीं?॥ ७७ ॥ तब मुनि अवधिनेत्रकरि जानी याकै पुत्रकी बांछा है सो याका अभिप्राय जानिकरि दाहिने हाथकी पांचू अंगुली ऊंची करीं॥७८॥ अर

बांये हाथकी एक चढी आंगुरी ऊंची करी ताका अर्थ कहा ? जो पहली तौ तेरे पांच पुत्र होंहिगे बहुरि एक पुत्री होइगी, सो ऐसेंही भया। प्रियदत्ताके पांच पुत्र अर एक पुत्री भई ॥ ७९ ॥ एक दिन जगतपाल चक्रवर्तीकी पुत्री अमितमति अर अनंतमति अनेक आर्यकानिकी गुराणी महागुणनिकरि शोभित ते या नगरके समीप आईं तिनिके साथि अनेक आर्यका तिनि राजा प्रजापालकी पुत्री यशस्वती अर गुणवती तेऊ आईं। पुंडरीकिणी नगरी परमरिद्धिकी भरी है तहां मुनि आर्यकानिका आगम होयवोही करै ॥८०-८१ ॥ सो आर्यकानिका संघ आया सुनि राजा लोकपाल प्रजापालका पुत्र राजलोकसहित बंदिवा गया अर कुवेरकांत श्रेष्ठी हू गया सो अमितमती अनंतमतीके निकट धर्मका स्वरूप सुनि राजा अर सेठ दानादिकके उद्यमी भए ॥८२॥ अथानंतर—श्रेष्ठी कुवेरकांतके घर एक दिन दोय जंघाचारण मुनि आए तिनिकूं सेठ सेठानीने भक्ति करि आहारके अर्थि स्थापे ॥८३॥ तिनिके दर्शनमात्रही कबूतर कबूतरीनिकूं पूर्वभवका स्मरण भया सो कबूतर कबूतरी मुनिनिकूं नमस्कारकरि अपनी पांखानिसूं मुनिके चरण सपरसते भए अर कबूतर कबूतरीनिके पूर्वभवका स्मरणतैं परस्पर अत्यंत स्नेह वध्या तिनिका पूर्वभवका वृत्तांत जानिकरि मुनियोंके आहारका अंतराय भया। दोउ मुनि श्रेष्ठीके घरतै निकसिकरि वनकूं गए। कैसे मुनि ? उपज्या है संसारसूं वैराग्य जिनिकै बहुरि एक दिन कुवेरकांतकी स्त्री प्रियदत्ता कबूतर कबूतरीकी चेष्टा देखि जानी—जो इनिकूं पूर्वभव स्मरण भया, ऐसा जानि कबूतर कबूतरीकूं पूंछी—तेरा पूर्वभवविषैं कहा नाम हुता ? ।८६। जब कबूतरीने चूंचसूं लिखि बताया जो पूर्वभवविषैं मेरा नाम रतिवेगा हुता अर या भवविषैं तिहारे पतिका दीया नाम रतिषेणा है इह वार्ता सुनि कबूतरनैं जानी इह मेरी पूर्वभवकी हू प्रिया। यह जानि कबूतरीसूं अतिप्रीति करता भया ॥ ८७ ॥ बहुरि प्रियदत्तानैं रतिवर कबूतरसूं पूर्वभवका नाम पूछ्या तब वाहूनैं सुकांत ऐसा नाम चूंचसूं लिखि बताया ॥ ८८ ॥ सो देखिकरि कबूतरीनैं जानी ए मेरा पूर्वभवका पति है सो कर्मानुयोगतैं कबूतरीका अति अनुराग होता भया ॥ ८९ ॥ सो यह कथा सुलोचनाके मुख जयकुमारकी अंतःपुरकी सभा

सुनिकरि अत्यंत प्रीतिकूं प्राप्त भई बहुरि वाकी सव कथा सुनिवेका सबनिकै अभिलाष भया ॥ ९० ॥ अर जयकुमार सुलोचनासूं कहता भया । आपुने जो पूर्वभवविषैं चरित्र देखे सो तुम सव जानौ हौ तव सुलोचना कही मैं भली भांति जानूं हूं आप सुनौ ॥९१॥ ऐसा कहिकरि अपने वचनरूप अमृत जलकरि सकल सभाकूं सींचती संती कहती भई ॥९२॥ चारणमुनि श्रेष्ठीके घरतें आहार तजिकरि आकाशमार्ग विहार करि गए सो यह वृत्तांत राजा सुनि अमितमति आर्यासूं पूछी सो अमितमतीनैं मुनिनिके मुख सुन्या हुता सो राजासूं कह्या ॥९३॥ याही देशविषैं विजयार्द्धनामा गिरि ताके समीप एक धान्यकमालनामा वडा वन ताके निकट शोभानगर ताका राजा प्रजापाल ताकै रानी देवश्री महासुखकी देनहारी मानूं दूजी लक्ष्मी ही है ॥ ९४-९५ ॥ अर राजा प्रजापालके शक्तिषेणनामा सामंत ताकै अटवीश्रीनामा स्त्री महाप्रीतिकारिणी पतिव्रता तिनिकै सत्यदेवनामा पुत्र ते सवैंही निकटसंसारी, सो आर्यका कहै है—हे राजा लोकपाल ! वे सव मेरे निकट धर्मोपदेश सुनि राजासहित श्रावकके व्रत धारते भए । मद्य, मांस, मधु अर पंच उदम्बर आदि सर्व अभक्ष्य तजे, सर्व व्यसन तजे अर अष्टमी चतुर्दशीके दिन प्रोषधसहित उपवास आदरे अर शक्तिषेण सामंत महाभक्तिमान सो यानैं एक यह व्रत अधिक आदर्‍या जो मुनिके आहारकी वेला उलंघि जाय तब मैं भोजन करूं ॥९६-९८॥ अर सावंतकी स्त्री अटवीश्रीनैं एक इह व्रत आदर्‍या जो शुक्लपक्षकी परिवाका उपवासकरि कृष्णपक्षकी अष्टमीका उपवास पांच वर्षतक करना, ए ऐसा संयुक्त उपवास करना, चतुर्विध आहार अर च्यारि कषाय च्यारि विकथा तजनी ॥ ९९ ॥ ए प्रोषधकी रीति है अर अटवीश्रीनैं प्रवृद्धकल्याणकनामा व्रत आदर्‍या अर सावंतके पुत्र सत्यदेवनैं पंचपरमेष्ठीका स्तोत्र अंगीकार कीया ॥ १०० ॥ या भांति ए सब व्रतरूप आभूषणके धारक भए परंतु सम्यक्त्व नाहीं । एक दिन अटवीश्री अपना पीहर मृणालवतीनामा नगरी तहां गई हुती ॥ १०१ ॥ ताहि लेवेकूं शक्तिषेण गया सो स्त्रीकूं लेकरि पाछा आवै था सो सेनासहित धान्यकमालनामा वनविषैं सर्प सरोवर तहां डेरा करि सुखसूं तिष्ठ्या

॥ २ ॥ तहां एक और कथा चाले है मृणालवती नगरीका राजा धरणीपति अर ता नगरविषैं एक रतिवर्मा नामा सेठ ताका पुत्र भवदेव सो हीनपुण्यी ताकी माता कनकश्री अर वाही नगरमैं एक श्रीदत्त नाम शेठ ताकै रतिवेगानामा पुत्री, अर एक अशोकदेवनामा शेठ ताकै जिनदत्तानामा स्त्री ताका सुकांतनामा पुत्र अर रतिवर्माका पुत्र भवदेव अति कुरूप अर दुराचारी तातैं लोकनि वाका नाम दुर्मुख ठहराया ॥ १०३-६ ॥ अर उष्ट्रग्रीवहू कहा। एक दिन वह भवदेव दुर्मुख रतिवेगाके परिणवेका अभिलाषी सो रतिवेगाका पिता श्रीदत्त अपना मामा ताहि कहता भया- तुमारी पुत्री मोहि परिणावहु तब वानें कही—तू निखट्टू है कमाऊ नाहीं तब यानैं कही मैं देशांतर जाय बहुत द्रव्य कमाय ल्याहूं हूं बारह वर्ष उलंघि जाय तौ तुम औरकौं परणाय दीज्यौ यह बारह वर्षका करार, ऐसैं करि यह वाणिजके निमित्त देशांतर चाल्या बारह वर्ष होय गए यह न आया तब रतिवेगाके मातापितानैं अपनी पुत्री सुकांतकूं परणाई सो महारूपवान अर परणैंपीछैं भवदेव आया यह वार्ता सुनी । सो पापी वींदनी पर अति कुपित भया, इनका मारना विचाऱ्या तब ए भाजिकरि शक्तिषेणके शरण गये ॥ १०७–९ ॥ अर पीछेंसूं भवदेव गया। जायकरि कहता भया मेरे शत्रु तिहारे डेरानिमैं हैं सो निकासि देहु। तब सावंत हाथमैं शस्त्र धरे निकसे अर कही तू सावंतनिके शरणतैं लीया चाहै है सो तोमैं बल कहा? तब यानैं आगै सुनि राखी थी जो सावंत सहस्रभट है सो आपकूं मिथ्यावादकरि कोटीभट बताया। सावंत कही जो तू कोटीभट है तौ अति भला सम्हारि। तब यानैं जानी इहां माराही जाऊंगा सावंतके भयतैं भागा परंतु उनपरि दृढ वैर रह्या वे दोऊ सावंतके शरणै रहे ॥ ११० ॥ एक दिन सावंतके घर दोय चारण मुनि आहारकै अर्थि आए सो सावंतनैं विधिपूर्वक आहार दीया मुनिदान इहभव परभवमैं सुखका कारण है ॥ १११ ॥ अर जहां सर्पि सरोवर परि सावंतके डेरा हैं तहां दूजी तरफ एक मेरुदत्तनामा श्रेष्ठी ताहूकै डेरा भए ताकै धारणीनामा स्त्री ॥ ११२ ॥ अर च्यारि मंत्री एक भूतार्थ दूजा शकुनि तीजा बृहस्पति चौथा धन्वंतरि ए १०

चारयौं सर्व शास्त्रके पाठी ॥ १३ ॥ इनि करि मंडित श्रेष्ठी बैठा हुता सो एक हीनअंग पुरुष आया ताहि देखि करि श्रेष्ठी मंत्रीसूं पूछी जो इह कौन कारणतैं ऐसा भया है ? ॥ १४ ॥ तब शकुनी कही—खोटे शकुनतैं अर वृहस्पति कही खोटे ग्रहतैं अर धन्वंतरि कही त्रिदोषतैं ऐसा भया है ॥ १५ ॥ तब श्रेष्ठीनें भूतार्थ पहला मंत्री ताहि पूछी—यह कहा कारण है तब वानैं कही यह सब हिंसादि पापनिका फल है पापकर्म कीया है तातैं हीनअंग भया ॥ १६ ॥ शक्तिषेण नामा सावंतनैं पुत्रबुद्धि करि पाल्या जो इह सत्यदेव नामा हीनअंगी सो याका पिता सत्यक नामा या सत्यदेवकूं अपनी इच्छाकरि ढूंढता हुता सो सर्पि सरोवरके तीर याहि देखि करि महादुखी होय सभाके लोकनिसूं कहता भया—जो हे सभाके लोक हो ! तुम सुनौ, या सत्यदेवके पापके उदयतैं हाथतैं पात्रथकी चावंल गिरे, तिनिकूं परेवा आदि चुगने लगे सो यानैं उडाये नाहीं, देखता चुप होय खडा होय रह्या तब याकी छोटी मौसी यासूं खिजी (क्रोधित हुई) सो इह रोस करि उठि आया है। अर याके नाकका छिद्र गलि गया है तौऊ क्रोध न तजै है, क्षमाका धारण न करै है सो कर्मके उदयकी प्रबलता है या भांति सत्यकनैं लोकनिसूं कही ॥ ११७-२० ॥ अर याहि लेजावेका उद्यम कीया सो यह सत्यदेव न गया तब याका पिता सत्यक खेदखिन्न होय द्रव्यलिंगी मुनि भया अर यह निदान कीया जो परभवविषैंहू मैं तेरा स्नेही हौंहु, ऐसा निदान करि याके स्नेहकूं लीए मूवा सो लोकपाल देव भया ॥२१-२२॥ अथानंतर—एक दिन शुक्ल पक्षकी पडिवाके दिन सावंतकी स्त्री उपवास कीया तासहित सावंतनैं भक्तिपूर्वक मुनिनिकूं दान दीया, दानके प्रभावकरि पंचाश्चर्य भया सो पंचाश्चर्य देखिकरि श्रेष्ठी मेरुदत्त अर ताकी स्त्री धारिणीनैं इह निदान किया जो हमारे परभवविषैं शक्तिषेण सावंतका जीव पुत्र हूज्यौ अर याकी स्त्री अटवीश्री पुत्रवधू हूज्यौ ऐसा निदान कीया अर श्रेष्ठीके मंत्री च्यारि सकल परिग्रह तजि मुनि भए। महातप करि पर्याय तजि लोकपाल देव भए अर सुकांत अर रतिवेगा जो इनिकै शरणैं हुते तिनि दानकी अनुमोदना करि पुण्य उपार्ज्या ॥ १२३—२६ ॥

इह कथा अमितमती अर्जिकाके मुख राजा लोकपालकी रानी वसुमती सुनी सो सुनिकरि वसुमतीकूं पूर्वभव स्मरण भया मूर्च्छा आय गई बहुरि सचेत होय रानी आर्यासूं कहती भई—हे मात ! मैं पूर्वभवविषैं शोभा नगरके राजा प्रजापालकी रानी देवश्री हुती तिहारे प्रसादतैं राजा लोकपालकी रानी वसुमती भई अब वह पूर्वभवका हमारा राजा कहां उपज्या है तब आर्यिका कही—वह राजा प्रजापाल तेरा पूर्वभवका पति या भवविषैंहू तेरा पति राजा लोकपाल भया है। यह वार्ता सुनि सेठ कुवेरदत्तकी स्त्री प्रियदत्ताहू अपना पूर्वभव जानि करि अर्जिकाकूं नमस्कार करि कहती भई—हे मात ! मैं पूर्वभवविषैं अटवीश्री हुती सो मेरा पूर्वभवका पति शक्तिषेण कहां उपज्या ? ऐसा शेठानीनैं पूछ्या तब अमितमती आर्यका कही—तेरा पूर्वभवका पति शक्तिषेण या भवविषैं हू तेरा पति कुबेरकांत भया है अर आगैं तिहारे मौंहबोल्या पुत्र सत्यदेव हुता सो अब तिहारे कुबेरदयित नामा पुत्र भया है ॥२९-३१॥ अर मेरुदत्त श्रेष्ठीके च्यारि मंत्री मुनि होय लोकपाल देव भए हुते तिनि तेरे पतिका जन्म भया तबहीतैं सेवा करी पूर्वजन्मके स्नेहतैं ॥३२॥ अर कुबेरदयितका पूर्वजन्मका नाम सत्यदेव हुता ताका पिता सत्यक सो देव होय अब तेरे पुत्र कुबेरदयितकी रक्षा करै हैं ॥ ३३ ॥ पुण्यके उदयतैं पूर्वभवके मित्र औरगतिकूं प्राप्त भएहू सहाइ होंहिं अर मेरुदत्तनामा श्रेष्ठी अर ताकी धारिणी नामा स्त्री सो पूर्वै निदान कीया हुता जो यह शक्तिषेण मेरा पुत्र होय अर याकी स्त्री पुत्रवधू होय सो तेरे पतिके माता पिता भये तेरे या भवविषैं सासू सुसरा। पूर्वभवके स्नेहतैं या भवविषैं परस्पर अति स्नेह भया अर शक्तिषेणके मरण पीछैं भवदेवनैं सुकांत रतिवेगा दोऊ शरणागत तिनिका घर दग्ध किया सो दोऊ मरि करि ए कबूतर कबूतरी भए। अर भवदेवकूं सावंतके सेवकनि वाही अग्निमैं जलाया सो मरि करि विलाव भया, यह कथा कहि करि अमितमती आर्यका बहुरि कहती भई—बैताढ्य पर्वतके समीप मलयकांचन नामा पर्वत तहां दोय चारणमुनि विराजे हुते, जिनके उपदेशतैं तेरा पिता अर तेरे पतिका पिता मुनि भए, वे तिहारे गुरुनिके गुरु तेरे भिक्षाके

अर्थि आए हुते सो तोहि कहि गये जो तैरैं पांच पुत्र अर एक पुत्री होइगी। अर उनकूं तुम पूर्वभवविषैं दान दीया हुता तिहारे रत्नधारादि पंचाश्चर्य भए हुते अर वेही तिहारे या भवविषै एक दिन आहारकूं आए सो कबूतर कबूतरीकूं देखि उनके पूर्वभव चितारि करुणाभावकूं प्राप्त भए सो आहार न लीया पाछे वनमें गये। वे तेरे पिताके अर तेरे धनीके पिताके गुरु तिनिहीके उपदेशतैं मैं यह कथा सुनी सो तोहि कही ॥ १३२–३८ ॥ या भांति अमितमती अर्जिकानैं प्रियदत्तासूं कही सो राजा लोकपाल आदि बहुतनि सुनी, संसारका स्वरूप बारंबार भली बिचारते भए ॥ १३९ ॥ सुखसौं सबका काल व्यतीत होय बहुरि एक दिन प्रसंग पाय प्रियदत्ता कुवेरकांतकी स्त्री यशस्वती अर गुणवती आर्य्यकाकूं पूछती भई—जो तुम कूंन कारण नवयौवनमें दीक्षा आदरी ॥ ४० ॥ तब उन कही—हमारी अर तेरी बत्तीस कन्यानकी सगाई तेरे पतिकै अर्थ आई हुती सो उनकै एकनारीव्रत हुता सो तेरे सुसरनैं बत्तीस भाजन नाना प्रकार भोजनके खीरसहित भरे सो और भाजनमें तौ घृत मेल्या अर एक भाजनमें रत्न मेल्या सो जामें रत्न मेल्या हुता सो भाजन तेरे हाथ आया तब तेरा तौ विवाह भया अर हम सब अर्जिका भई या भांति अपने वैराग्यका यथावत वृत्तांत कह्या ॥ १४१ ॥ सो कथा सुनिकरि कुवेरकांतकी माता धनवती अर जगत्पाल चक्रवर्तिकी रानी कुवेरसेना अमितमती अनंतमती आर्य्यकाकी माता सो अमितमती आर्य्यकाके निकट आर्यकाके व्रत धारती भई ॥ ४२ ॥ तहां पीछैं एक दिन नगरीके समीप जंबूग्राम तहां कालके प्रेरे कबूतर कबूतरी चावल चुगते हुते ॥ ४३ ॥ सो पूर्वभवका वैरी भवदेवका जीव बिलाव भया हुता तानैं देखिबे मात्रही कोपकरि दोऊ मारे वह पापी बिलाव जंबूग्रामके कदलीवनमैं उपज्या हुता ॥ ४४ ॥ सो याके मारे कबूतर कबूतरी मरणसमें शुभ ध्यानकरि पुष्कलावती देशविषैं विजयार्द्ध पर्वत ताकी दक्षिणश्रेणिविषैं गांधारदेश तहां उशीरवती नगरी ताका अधिपति राजा आदित्यगति ताकै पट्टरानी शशिप्रभा तिनिकै रतिवर कबूतरका जीव हिरण्यवर्मा नामा पुत्र भया ॥ १४५–४६ ॥ अर वाही विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणि

विषैं प्रसिद्ध गौरी देश भोगपुर नगर तहां राजा वायुरथ विद्याधर ताकै रानी स्वयंप्रभा ताकै रतिषेणा कबूतरीका जीव प्रभावती नामा पुत्री भई "जैनधर्मका अंशहू प्राणीनिका उद्धार करै है" ॥ ४७–४८ ॥ जे सुकांतके भवमैं माता पिता हुते अशोकदेव अर जिनदत्ता ते हिरण्यवर्माके माता पिता भए अर जे रतिवेगाके माता पिता श्रीदत्त अर विमलश्री हुते ते प्रभावतीके माता पिता भए, कबूतर कबूतरीनैं मरण समैं विद्याधरका विमान देख्या सो देखिकरि ऐसे भाव भए हम धर्मके प्रसादतैं विद्याधर पद पावैं सो विद्याधर विद्याधरी भए "संसारकी अवस्था विचित्ररूप है" ॥ ४९ ॥ कबूतरीका जीव प्रभावती ताका रूपका कहा वर्णन करैं जाहि सुलोचना छतै जयकुमार "हा प्रभावती" ऐसा शब्द करते भए। भावार्थ—सुलोचनाका रूप सर्वोत्कृष्ट है सो सुलोचनाहूतैं प्रभावतीका अधिक रूप जानना ॥ ५० ॥ जब प्रभावती नवयौवनकूं प्राप्त भई तब ताहि देखिकरि प्रभावतीके पितानैं विचारी यह पुत्री कौनकूं परणाईए मंत्रीनिसूं मंत्र कीया ॥ ५१ ॥ तब मंत्रीनि कही शशिप्रभा तिहारी वहन राजा आदित्यगति परण्या है अर आदित्यगतिकी वहन स्वयंप्रभा तुम परणै हौ सो आदित्यगतिकैं हिण्यवर्मा नामा पुत्र है सो आदित्यगति तौ अपने पुत्रके अर्थि कन्याकूं यावैही है। अर और हू अनेक राजा याचनां करैं हैं तातैं स्वयवरकी युक्तिविषैं विरोध नाहीं यह मंत्रिनि कही तब निश्चयकरि राजाहू प्रमाण करी स्वयंवर रच्या स्वयंवरकी वार्ता सुनि अनेक राजकुमार आये तिनिविषैं कन्यानैं काहूंके कंठविषैं वरमाला न डारी तब माता पितानैं प्रभावतीकी सखी जो प्रियकारिणी ताहि पूछी तब वानैं कही तिहारी पुत्रीकै ऐसी प्रतिज्ञा है 'जो गति युद्धविषैं मोहि जीतै ताकै कठंविषैं मैं वरमाला डारूं' ये सखीके वचन सुनि राजा वायुरथ वा दिन तौ सबनिकूं योग्य वचन कहि उनके डेरा हुते तहां पठाये अर औरैंदिन राजा स्वयंवरकी घोषणाकरि सिद्धकूट चैत्यालय जाय चैत्यालयके द्वार पुत्रीके हाथतैं माला भूमिविषैं नखाई अर विद्याधर कुमारनिकूं कहि जो मेरुकी तीन प्रदक्षिणा देय मालाकूं अधर झेलै धरतीपर परने न दे सो कन्याका वर सो यह कार्य काहूतैं न बन्या ॥ ५२–५८ ॥

सबही माला झेलिवेकूं समर्थ न भया लज्यावान होय अपने अपने घर गया एक प्रभावतीनैं सब विद्याधर कुमार जीते। जे कुमार मानी पुरुष हैं तिनिके मानभंग समान मृत्यु नाहीं बहुरि आदित्यगतिका पुत्र हिरण्यवर्मा आया सो गतियुद्धविषैं प्रवीण तानैं गतियुद्धविषैं प्रभावती जीती तब प्रभावतीनैं ताके कंठविषैं वरमाला डारी बडे उछाहसूं इनिका विवाह भया इनि दोऊनिकैं जन्मातंरके स्नेहतैं अति अनुराग बध्या। ते संपदाकरि पूर्ण सो सुखसूं कालवितीत होय एकदिन कबूतर कबूतरीके देखिवेतैं प्रभावतीने जान्या पूर्व भवका संबंध, सो उदास भईसंती अकेली ही शोककरि आकुल कछूइक चिंतवन करै थी अर हिरण्यवर्मा-हूनैं पूर्वभव जान्या सो पूर्वभवका पट्ट लिखिकरि प्रभावतीकी सखी प्रियकारिणी ताकैं हाथि सौंप्या सो पट्ट प्रभावती देखिकरि पूछी तेरे हाथ यह पट्ट कहांतैं आया तब वानैं कही तेरे पतिनैं लिख्या है ताका चेरा सुकांत तानैं मोहि सौंप्या है ॥५९–६२॥ ऐसे सखीके वचन सुनिकरि प्रभावती अपने पूर्वभवका चरित्र-पटविषैं आपहू लिखिकरि सखीके हाथ दिया ताहि देखिकरि हिरण्यवर्मा प्रभावतीविषैं अति आशक्त भया अर प्रभावतीहू पतिविषैं अनुरक्त भई इनि दोऊनिके पूर्व संस्कारतैं प्रीति द्विगुण होती भई सब कुटुंबके भेले होय इनिका कल्याणाभिषेक कीया मानूं दूजा कल्याण भया विवाहके दिनतैं दसवैंदिन सिद्ध-कूट चैत्यालय जाय अभिषेक पूजाकी विधिकरि हिरण्यवर्मा और प्रभावती अवधिज्ञानी चारणमुनिकूं अपना पूर्वभवका वृत्तांत पूछते भये तब मुनि अनुग्रहकरि तिनिकूं पूर्ववृत्तांत कह्या या जन्मतैं पहलै तीजै भव तुम मृणालवती नगरीमैं वणिककुलविषैं उपजे हुते तेरा नाम सुकान्त अर तेरी प्रियाका नाम रति-वेगा तिहारे दोऊनिकै स्त्री पुरुषका संबंध स्नेहरूप भया बहुरि शत्रुके भयतैं शक्तिषेण सावंतकै सरणैं गया सो शक्तिषेणनैं मुनिदान कीया सो तुम दानकी अनुमोदना करि पुण्यकूं सन्मुख भये। सावंतके मूए पीछैं शत्रुनैं अग्निमैं जलाये सो आर्तध्यानके योगतैं कबूतर कबूतरी भए सो श्रेष्ठी कुवेरमित्रके योगतैं तुमकूं धर्मकी प्राप्ति भई धर्मके प्रसादतैं अब विद्याधर अर विद्याधरी भये। अर तिहारे वणिकजन्मके माता

पिता हुते ते अबहू माता पिता भये अशोकदेवका जीव आदित्यगति भया अर जिनदत्ताका जीव रानी शशिप्रभा भई अर श्रीदत्तका जीव राजा वायुरथ भया अर विमलश्रीका जीव रानी स्वयंप्रभा भई ए या भवके माता पिता तिहारे अगिले भवके माता पिताके जीव हैं। रतिषेणगुरुके निकट इनि पूर्वभवविषैं प्रोषधोपवास धारे, चिरकाल श्रावकके व्रत पाले ॥६९-७३॥ जिनमंदिरविषैं महा भक्तिकरि नानाप्रकारके उपकरण चढाए अर विधिपूर्वक पूजाकरि ए विद्याधर विद्याधरी भए अर मैं भवदेवका पिता या भवविषैं विद्याधर भया, श्रीवर्म मेरा नाम, सो संयमकूं पायकरि चारणऋद्धिका धारक मुनिभया अर अवधिज्ञान उपज्या। ए मुनिके वचन सुनि हिरण्यवर्मा अर प्रभावती अत्यंत प्रीतिकूं प्राप्त भए ॥७६॥ या भांति सुखसूं सबनिका काल व्यतीत होय। एक दिन राजा वायुरथ प्रभावतीका पिता मेघपटलकूं विनशता देखि मनमैं विचारी—जो इह समस्त लोकका ठाट क्षणभंगुर है। याविषैं इह प्राणी थिरताकी बुद्धि करै है अर याहि शाश्वता मानै है सो यासमान अज्ञान कहा ? इही बडा अज्ञान है जो अथिरकूं थिर जानै ! ॥७७-७८॥ याभांति यथार्थस्वरूप जानिकरि मनोरथनामा पुत्रकूं राज दीया अर मुनि होयबेकी है अभिलाषा जाकै सो हिरण्यवर्माका पिता आदित्यगति याका बहणेऊ अर साला दोय संबंध सो प्रीतिकरि सब भाइनि सहित ताके निकट आया, अर तासूं कही—जो मेरी पुत्री प्रभावती ताकी पुत्री रतिप्रभा सो मेरो मनोरथ नामा पुत्र ताका पुत्र चित्ररथ ताहि परिणाइयो। भावार्थ—मेरे पोतेसूं तिहारी पुत्रीका पाणिग्रहण कराइयो (आगैं मामा भूवाके पुत्र पुत्रीनिका संबंध हुता) सो इह वायुरथकी प्रार्थना आदित्यगति प्रमाणकरी अर वायुरथके भाई वायुरथकी लार आए हुते, विदा कीए अर आप आदित्यगति हिरण्यवर्मा पुत्रका अभिषेककरि ताहि राज दीया अर आप अनेक राजानि सहित अर वायुरथ सहित महामुनिपै जाय संयम आदर्या, विधिपूर्वक बारह प्रकारका तप आचर्या इह कथा कहिकरि जयकुमारकी अंतःपुरकी सभामैं सुलोचना पतिसूं कहती भई—हे नाथ ! वह रतिवेगा मैं अर वह रतिषेणा कबूतरी मैं अर वह प्रभावती विद्याधरी मैं, तब सुनिकरि जयकुमार बोले—तिनिका अनुक्रमतैं पति मैं, जब तू रतिवेगा

तब मैं सुकांत, अर तू रतिषेणा तब मैं रतिवर, अर तू प्रभावती तब मैं हिरण्यवर्मा, तू भव भवकी मेरी स्त्री है, ए सबनिकूं अचिरजके करणहारे वचन जयकुमार कहे ॥ ७९-८५ ॥ बहुरि जयकुमार सुलोचनाकूं कहता भया—हे प्रिये ! कथा बाकी रही सो पूर्ण कहो । या भांति आज्ञा करी तब यह अपने दांतनिकी चांदिनीकरि कमोदिनीरूप सभा ताहि प्रफुलित करती सकल वृत्तांत कहती भई । वह राजा हिरण्यवर्मा विद्याधर प्रभावतीसहित सुखसूं राज भोगवै । एक दिन प्रभावतीसहित खगपति अपनी इच्छाकरि वनविषैं विहार करता हुता सो धान्यकमाला नामा अटवीविषैं सर्पसरोवरकूं देखिकरि अपना पूर्वभव प्रत्यक्ष देखता भया । काललब्धिके बलतैं वह ज्ञानीनिमैं श्रेष्ठ संसारतैं विरक्त भया, पाया है परम वैराग्य जानैं । इनि प्राणीनिकै या लोकविषैं सबही संयोग क्षणभंगुर हैं, मेरे अल्पविभूति ताकी कहा बात ? वह पवनवत् चपल है, अर यह काय रोगनिका स्थानक त्याज्यही है, ए लोलुपी मूर्ख जीव बहुत दोषका देनहारा राज्य ताहि भोगवै है, सो याका फल कुगतिही है । या राज्यका अंत नजीक है, अर असार है, पापका आश्रय है, याका यासूं आतमाकी एकता मानें है ऐसा बहिरात्मा जीव ताहि धिक्कार होहु, अशुचि है प्रिय जाकूं । या प्राणीकूं देहविषैं निवास भयकारी नाहीं भासै है अर या देहतैं गमन करना महाभयकारी भासै है सो येही बात मोक्षमार्गतैं विपरीत है । इह प्राणी अपने रूपकरि अरूप है, अर देहनिके धारिवेकरि रूपी भासै है अर निर्वाणकी प्राप्तितैं अरूपता है तातैं जिहतिह प्रकारकरि या देहका संबंध छूटै बहुरि देह न धरिए सो कर्तव्य है अर पुत्रमित्रादिका संबंध सर्वही बंधका कारण है अर ए भोग रोगसमान हैं अर ए भोग, शरीर शत्रुसमानही हैं अर प्राणीनिकूं आय अत्यंत खेदके भावकूं प्राप्त करैं हैं अर यह धन तृष्णारूप अग्निका इंधन है । संसार समुद्रके मध्य या प्राणीका चक्रवत् भ्रमण है आदि तौ जन्म है, मध्यविषैं रोग अर जरा है अर सदाही मरण है । ए विद्याधरनिहूके भोग कारे नागके फण समान भयंकर हैं, भोगिवे योग्य नाहीं, ज्यूं ज्यूं इह प्राणी भोगनिकूं भोगवै है त्यूं त्यूं ए भोग भयके उपजावनहारे होय हैं । ए विषय सेये संते विष

तुल्य महाविषम हैं, वांछारूप अग्निकरि प्राणीनिकूं भस्म करै हैं जैसैं दीपनीय कहिए क्षुधाकी बढावनहारी औषध क्षुधाकूं प्रबल करै तैसैं ए विषय तृष्णारूप अग्निकूं प्रबल करै हैं इनिकरि तृप्ति नाहीं। इनिमैं इह दोष तो है ही, और हू बडा दोष है जो ए तृष्णारूप विषकी वेलिके बढावनहारे हैं अर संसारके अवलंबन हैं इनिहीतैं संसारभ्रमण है ॥ ८६-२०० ॥ स्त्रीके शरीरतैं उपजी कामरूप अग्नि सो प्रीतिरूप तेलके सींचिवे करि अधिक प्रज्वलित होय है, कामीनिकूं भस्म कीए विना वह अग्नि न बुझै। इनि प्राणीनिके भोगनिकूं सेवतैं भोगनिके अंतविषैं तो निःसंदेह अरुचि होय ही है अर निरंतर अरुचि होय सो यत्न करना, विवेकीनिकूं यही योग्य है। भावार्थ—पांचू इंद्रीनिके सबही भोग अंतविषैं फीके लागैं हैं, उनकी अरुचि होय है सो यह अरुचि सदा काल रहै ऐसा यत्न करना। इनि भोगनिकरि इह जीव वारंबार दुखी भया तौऊ फिरि तिनिहीकूं वांछैं है जैसें मातानैं पगनिसूं ताड्या बालक फिरि फिरि माताके चरण गहै है। ए भोग अर आयु अर काय संपदा इनिका विनश्वरपण्या ही गुण मानूं हूं जो ए थिर होते तो इनिकूं कौन तजता ? अर इनिके तजे विना मुक्ति कैसे होती ? अर मुक्ति विना सुख कैसैं होता ए विषय जीवनिके महा शत्रु बटमारे समान हैं, पहिली तो विश्वास उपजावै हैं अर पीछैं प्राण हरै हैं इनिकरि कौनकूं आपदा न भई। ए सब ही संसारी जीव विषयके मारे आपदा भोगवै हैं अर यह दुःखहीका माहात्म्य है जो विषयनिकूं सुख मानैं हैं जैसैं कडुवे कांचे करेलेनिकूं स्वादिष्ट जानि खाय है सो यह भूखहीका प्रभाव है। कल्पनामात्र ए सांसारिक सुख तिनिहीं सुख मानि इह प्राणी आत्मसुखतैं विमुख भया है। इह प्राणी बंदर समान है जैसैं बंदर सीतका पीड्या चिरमनिकूं (गुंजाके फल) अगनि जानि तापै है, अर सुख मानैं है, सो चिरमनीतैं सीत न मिटै तैसैं तापना वृथा है तैसैं विषयसुख सेवना वृथा है। या जीवकै संसार अवस्थाविषैं सदा निर्जरा होय है परंतु वह निर्जरा मुक्तिके अर्थि नाहीं, बंधके नाश विना मुक्ति कैसैं होय ? सो बंधका नाश, बंधके कारण जे रागादिक तिनिके नाशतैं होय है तातैं मैं रागादि-

कके नाशका यत्न करूं। परिग्रहका जो अंगीकार सोई भया ग्रह ताकरि संसार समुद्रविषैं ग्रह्या जीव ताकै ऐसी बुद्धि कहांतैं होय? जो मोक्षका उपाय कहा? अर कैसैं इह जीव मरणतैं रहित होय, अविनाशी सुख पावै इह बुद्धि निकट संसारीनिकै ही उपजै है अर जिनिकूं अनंतकाल भ्रमण करना तिनिकै न उपजै। कांताके कटाक्ष तेई भए वाण तिनिकरि वेध्या है मन जिनिका ऐसे जीव सो संसारकी विभूतिकूं अनित्यहू जानिकरि अनुराग न तजै हैं सो ए भव्य हैं अर अभव्य हैं ऐसा पंडितनिकै संदेह उपजै है यह कायरूप वृक्ष कांतारूप वेलसूं वेढ्या संसार बनविषैं कालरूप अग्निसूं जरिकरि भस्म होयगा, सब जीवनिके शरीर कालके ग्रास हैं। हिरण्यवर्मा विद्याधर विचारै है—जो देखो निदानके विषकरि दूषित ए धर्मका लेश ताकरि मैं ऐसा भया—जो कबूतरके जीवतैं विद्याधरनिका अधिपति भया अर अब धर्मरूप अमृतके सागरमैं मग्न होय जाऊं तो कहा पूछनौ? अज्ञानरूप रागद्वेष तेई संसार हैं अर इनिका अभाव सोई मोक्ष है। इह ज्ञानवंतनि जान्या, तब मोक्षके साधनविषैं विलंब कहा? मुनिराजका धर्म महा उग्र तपरूप सो आर्यक्षेत्र अर क्षत्रियादि उत्तम कुलकरि होय है सो मोहि या जन्मविषैं कुल जात्यादि सब सामिग्री मिली है जो अब ही मैं मुनिव्रत आदरूं। तौ बहुरि ऐसी सामिग्री कहां? जैसैं समुद्रके मध्य हाथतैं रत्न गिरा सो फेरि कब हाथ आवै? हे आतमाराम! तू आपविषैं आपकरि आपकूं ध्याय, तेरा स्वरूप ही परमात्मा है, तू दुरात्मता तजिकरि आत्माका हित जो रत्नत्रय मार्ग ताविषैं आपकूं प्रवर्ताय, ऐसा चिंतवन करता संता परमतत्त्वका वेत्ता राजा हिरण्यवर्मा धान्यकमाला वनतैं निजपुर जाय करि अपना पुत्र सुवर्णवर्मा ताका अभिषेक करि राज्यसंपदा देय विजयार्ध पर्वततैं नीचा उतरि लक्ष्मीका स्थानक जो श्रीपुरनामा नगर तहां जाय करि श्रीपाल गुरुके निकट जिनेश्वरी दीक्षा आदरी। वह हिरण्यवर्मा नामा सूर्य परिग्रहरूप राहुतैं छूट्या जिनदीक्षा धरि तपरूप किरणनिकरि देदीप्यमान भासता भया अर हिरण्यवर्माकी रानी प्रभावती अर माता शशिप्रभा, ए दोऊ सासु बहू गुणवती नामा आर्यिका जो राजा प्रजापालकी पुत्री अर लोकपालकी

बहन ताके समीप जायकरि आर्यिकाके व्रत धारती भई । चंद्रमाकूं तजि करि चांदनी कहां रहै ? तैसें जे महासती हैं ते पति विना घरमैं कैसें रहैं ? आर्यिका ही होंय । अथानंतर—हिरण्यवर्मा नामा मुनि सूर्यसमान सोहता भया । सूर्य तो सद्वृत्त कहिए मंडलाकार है अर यह सत् समीचीन व्रतकूं धरै है, सूर्य तौ तापकरि देदीप्यमान है अर यह बारह प्रकार तपकरि देदीप्यमान है अर सूर्य तौ दिशा अर आकाश तिनिकूं शोभित करै है अर याकै दिशा अर आकाश ही आभूषण हैं अथवा दिगंबर जे मुनि तिनिका मंडन है, मुनिमंडलीकूं शोभित करै है । अर सूर्य तौ निसंग कहिए अकेला है अर इह परिग्रहरहित है अर सूर्य तौ व्योमगामी कहिए आकाशगामी है अर इह गगन चारण एकविहारी है अर सूर्य तौ लौकिक जन करि बंदिवेयोग्य है अर इह जगतकरि बंदिवे योग्य है अर सूर्य सदा उदयकूं धरै है अर यह सदा ज्ञानके उदयकूं धरै है अर सूर्य तौ बुधादि कहिए बुधनामा देव ताका अधीश है अर इह बुध जे पंडित तिनिका स्वामी है अर सूर्य जगतका नेत्र है अर इह जगतका नेत्र है अवधिज्ञानकरि मूर्तिक वस्तुकूं देखै है अर सूर्यका तो नाम विरोचन है अर इह संसारकी मायातैं अरुचिकूं धरै है तातैं विरोचन है विरक्त है अर सूर्य तिमिरकूं हरै है अर इह अज्ञान तिमिरकूं हरै है सो सूर्यतैं अधिक गुणकूं धरै विहार करता भव्यरूप कमल तिनिकूं प्रफुलित करता एक समय पुंडरीकिणी नामा नगरी आया अर दैवयोगतैं गुणवती आर्या हू आर्यानिके संघसहित पुंडरीकिणी नगरी आवती भई । सो गुणवतीकी लार प्रभावतीकी सासु शशिप्रभा आर्या हू आई, सो गुणवतीकूं सेठ कुबेरकांतकी स्त्री प्रियदत्ता नमस्कार करि पूछी जो अमितमती अर अनंतमती तिहारी गुराणी अर यशस्वती तिहारी बहन कहां ? तब गुणवती कही वे तौ समाधिमरणकरि स्वर्गकूं प्राप्त भई तब सुनिकरि प्रियदत्ता शोकरूप भई अर प्रियदत्ताकूं देखि प्रभावतीकै अनुराग उपज्या तब प्रियदत्ता पूछी तेरे प्रीति कैसें उपजी तब प्रभावती कही ॥ २४ ॥ हे प्रियदत्ता ! तू हमकूं नांही जानै है हम तिहारे कबूतर कबूतरी हुते सो रतिषेणा कबूतरीका जीव मैं हूं, तब प्रियदत्ता पूछी रतिवर कबूतर कहां उपज्या है तब प्रभावती कही

विद्याधरनिका अधिपति हिरण्यवर्मा भया सो कर्मशत्रुनिका घातनहारा महामुनि होय इहां ही आया है ॥२५-२६॥ ये समाचार सुनि प्रियदत्ताहू हिरण्यवर्मा मुनिके दर्शन जायकरि घर आई बहुरि आर्यानिके दर्शन आई तब प्रभावती पूछी सेठ कुवरकांत कहां ? तब प्रियदत्ता अपने पतिका वृत्तांत कह्या ॥ २७ ॥ जो विजयार्द्ध नामा गिरि तहां गंधारनामा नगर तहांके राजा रतिषण सो विहार करता अपनी गांधारी प्रिया-सहित इहां आया ॥ २८ ॥ सो गांधारी मृषावादिनी अपने पतिसूं वृथा कहती भई मोहि सर्प डसी तब विद्याधर अपनी स्त्रीकूं सर्प डसी जानि मंत्र अर औषधनिका उपाय कीया सो सर्प डसी होय तौ आछी होय कपटका कहा उपाय ? गांधारी कपटकरि कही मोहि शांति नाहीं तब विद्याधर अर श्रेष्ठी कुवेरकांत गांधारीकूं असाध्य देखि खेदखिन्न भए बहुरि विद्याधर प्रियाकूं सेठके समीप मेलि आप शक्तिवान औषधके लैनेकूं विजयार्द्धके वनमैं गया, विद्याधरका परम मित्र है। जब विद्याधरकूं गया जानि सेठकूं अकेला देखि गांधारी कुलटाका भाव अंगीकार करि कामचेष्टा दिखावती भई ताहि देखि करि श्रेष्ठी दृढव्रत कहता भया जो मैं नपुंसक हूं तैं कहा न सुन्या है ? या भांति उपायकरि वाहि शांति करी इही बुद्धिका फल है ॥ २९-३२ ॥ तबही वाका पति आया जब वानै कही पहली मोहि औषधि दई हुती तिनिकरि मैं आछी भई ऐसे कहि करि पतिकी लार अपने पुर गई ॥ ३३ ॥ अर प्रियदत्ता प्रभावतीसूं कहै है मेरे पांच पुत्र कुबेरदयित, कुवेरमित्र, कुवेरदत्त, कुवेरदेव, कुवेरप्रिय सो ए सब ही शास्त्रके पाठी अर कलाविषैं कुशल नवयौवन पांचू पुत्र मेरे लार तिनि सहित मैं पालकीविषैं चढी अर कुवेरश्री पुत्री मेरे गर्भमैं या भांति वनविहारकूं गई थी सो गांधारी विद्याधरी मोहि एकांतविषैं पूछती भई जो तेरा पति पुरुष नाहीं यह बात सत्य है कि नाहीं ? तब मैं कही मोविगारि और स्त्रीविषैं पुरुष नाहीं यह बात सत्य है सो विद्याधरी यह वृत्तांत सुनिकरि विरक्त होय अपने पतिसहित संयमकूं प्राप्त भई ॥ ३४-३८ ॥ बहुरि आर्जिका भए पीछैं विद्याधरी यहां आई तब मैं नमस्कार करि प्रियवचन कहि पूछा जो तुम कौंन कारणतैं वैराग्य धारा

॥ ३८ ॥ तब वानै कही जो तेरा पतिही मेरे वैराग्यका कारण है सो ए वचन श्रेष्ठी कुबेरकांतनैं गुप्त (छिपकर) सुने बहुरि प्रगट होय अर्जिका पै आया ॥ ४० ॥ अर कहा मेरा मित्र रतिषेण कहां? तब गांधारी आर्या कही जो मेरे कारणहीतैं तप धरचा है अर यहां ही आया है ॥ ४१ ॥ ए वचन सुनि श्रेष्ठी कुबेरकांत अर राजा लोकपाल रतिषेण मुनिके दर्शन आया, बंदना करि धर्मश्रवण कीया बहुरि काललब्धिका प्रेरचा राजा लोकपाल अपने पुत्र गुणपालकूं राज दे ताही रतिषेण मुनिके निकट संयम आदऱ्या ॥२४२-४३॥ अर श्रेष्ठी कुबेरकांत अपना पांचवां पुत्र कुबेरप्रिय ताहि श्रेष्ठीपद देइ अपने च्यारि पुत्र (कुवेरदयित कुबेरमित्र कुबेरदत्त कुबेरदेव) तिनिसहित ताही मुनिके निकट जिनदीक्षा आदरी मोक्षकी है बांछा जाकै ॥ ४४ ॥ इह कथा अपने पतिकी प्रियदत्ता प्रभावतीसूं कहिकरि अपनी पुत्री कुबेरश्री राजा गुणपाल लोकपालका पुत्र ताहि परिणाई, आप प्रभावतीके उपदेशकरि अर्जिका भई, प्रभावतीकी गुराणी गुणवती ताके निकट अर्जिकाके व्रत धारे ॥ ४५ ॥ अथानंतर—कबूतरका जीव हिरण्यवर्मा विद्याधर जो मुनि भया है सो स्मशानभूमिविषैं सात दिनका कायोत्सर्ग धारि तिष्ठ्या था ॥ ४६ ॥ ताकी वंदनाकरि नगरके लोक पाछैं नगरमैं आवैं थे सो मुनिके पूर्वभवकी कथा करते आवैं थे जो कबूतरके जीवतैं हिरण्यवर्मा विद्याधर भए सो मुनि भए हैं कबूतरके भवमैं विलावनैं भखे थे सो इह कथा प्रियदत्ताकी दासीके मुख विद्युत्चोरनैं सुनी वह पापी विडालका जीव है सो कथा सुनते प्रमाण अनंतानुबंधी क्रोधके उदयतैं जाकूं विभंगा उपजी सो मुनि तौ नित्यमंडित चैत्यालयके आगैं प्रतिमायोग धार तिष्ठे हुते अर प्रभावती गुणवती आर्याके संघमैं हुती सो वा दुष्टनैं दोऊनिकूं एक सलामैं डारि भस्म कीये ॥२४७-४९॥ वे उत्तमजीव विशुद्ध परिणामके योगतैं ताका कीया उपसर्ग सहिकरि स्वर्गविषैं कनकप्रभदेव अर कनकप्रभा देवी भए "क्षमाकरि कहा न होय?" अर हिरण्यवर्माका पुत्र सुवर्णवर्मा विद्याधरोंका राज करै तानैं सुनी जो मेरे माता पिता विद्युत्चोरनैं भस्म कीए तब सुवर्णवर्मा प्रतिज्ञा करी जो मैं विद्यु-

चोरका निग्रह करूंगा सो इह वार्ता अवधिज्ञानकरि हिरण्यवर्मा अर प्रभावतीका जीव देव देवी हुते तिनि जानी सो स्वर्गतैं मध्यलोकविषैं आयकरि मायामई हिरण्यवर्मा मुनिका अर प्रभावती आर्जिकाका रूप धरि पुत्रकूं धर्मकथा कहि संबोध्या तत्त्वकी श्रद्धा उपजाई क्रोधतैं शांत कीया, कैसे हैं वे देव देवी ? जीवदया करि आर्द्र हैं चित्त जिनिके ॥ २५०-५४ ॥ बहुरि अपना देवरूप प्रगट करि पूर्वला सब वृत्तांत कह्या अर पुत्रकूं अमूल्य आभरणादि देय अपने स्थानक गए ॥ ५५ ॥ एक दिन बच्छदेशविषैं सुसीमा नगर ताके वनविषैं शिवघोष मुनिको केवलज्ञान उपज्या ॥ २५६ ॥ केवलीके निकट इंद्रकी वल्लभा सची अर मेनका दर्शनकूं आई सो केवलीकूं नमस्कार करि देवीनिकी सभामैं बैठी तब इंद्र केवलीसूं पूछी जो ए पूर्वजन्मविषैं कौन हुतीं ? तब केवलीकी दिव्यध्वनिमैं आज्ञा भई जो ए पूर्वजन्मविषैं पहुप बेचनहारे (माली) की पुत्री हुतीं आजतैं सातवैं दिन पहली इनिकै जिनधर्मकी रुचि उपजी एकका नाम पुष्पवती दूजीका नाम पुष्पपालिता सो पुष्पकारण्यनामा वनविषैं ए दोऊ पुष्प बीनती थीं सो सर्पके विषरूप अग्नितैं मूई, चैत्यालयके दर्शनमैं परिणाम रह्या सो ए देवी भई ॥ २५७-५९ ॥ इह कथा सुनि प्रभावतीका जीव कनकप्रभा देवी अर हिरण्यवर्माका जीव कनकप्रभनामा देव तिनिहू केवलीके मुख अपने पूर्वभव सुने सो अपने अन्य जन्मके सुख भोगकै स्थानक अवलोकन करते सर्पि सरोवरके समीप आए ॥ २६०-६१ ॥ तहां भीमनामा मुनि संघमैं तिष्ठते हुते तिनिकूं ए देव देवी विनयकरि नमस्कार करते भए अर मुनिकूं धर्मका स्वरूप पूछा ॥ ६२ ॥ मुनि कही मैं नवीन संयमी हूं धर्मोपदेश देवेविषैं समर्थ नाहीं इह कार्य आगमके वेत्तानिका है सो मोहि एता ज्ञान नाहीं तथापि तिहारे आग्रहतैं कछूइक बुद्धिप्रमाण कहूंगा तुम सावधान होयकरि सुनौ ॥ ६३-६४ ॥ ऐसा कहिकरि सम्यक्त्वका स्वरूप अर पूजा दान आदि श्रावकका आचार अर तप संयमादि यतीके धर्म अर च्यारूं गतिका स्वरूप अर गतिके कारण पुण्य पाप अर सुख दुखादि तिनिके फल अर मुक्तिके कारण रत्नत्रय अर स्वर्गके कारण तप व्रतादिक अर जीवादिक द्रव्यनिका स्वरूप यथा-

वत् संक्षेपमें कह्या ॥ २६५-६६ ॥ सो सुनिकरि देव देवी पूछते भए तुम कौन कारणतें दीक्षा धरी ? तब भीम मुनि अपने वैराग्यका कारण इनिकूं कहते भए ॥ ६७ ॥ विदेहक्षेत्रविषें पुष्कलावती देश पुंडरीकणी नगरी तहां मैं दरिद्रीके घरि उपज्या मेरा नाम भीम ॥ ६८ ॥ सो एक दिन काललब्धिके योगतें वनविषें मुनींद्रका दर्शन भया अर धर्मश्रवण करि श्रावकके व्रत आदरे सो मैं व्रत लेकरि अतिहर्षित भया ॥६९॥ पिताके निकट गया व्रत लिए जान मोहि कहता भया—हे पुत्र ! श्रावकके दुर्द्धर व्रत तैं वृथा लीए ए तौ द्रव्यवंतनिके कामके हैं आपां दरिद्ररूप कीचकरि लिप्त अपने ताईं व्रत कहा ? ॥ ७० ॥ तातैं ए व्रत स्वर्गलोकका अभिलाषी वह यती ताहि पाछैं सौंपैंगे जो परभवके फल चाहैं ताके ए कामके हैं आपां तौ या लोकका फल चाहैं हैं जाकरि आजीविका होय सो अपने ताईं कर्तव्य ॥ २७१ ॥ तातैं तोहि व्रत दए हैं ता यतीका स्थान मोहि दिखाय या भांति मेरे पितानैं मोहि कही तब मैं वाहि लेकर मुनिके निकट जाता हुता सो मार्गमैं वृत्तांत देखे सो सुनहु—नगरके चौहटेमैं एक वज्रकेतुनामा पुरुष ताहि बहुत मारते हुते सो मैं पिताकूं पूछी यानैं कहा अपराध कीया है जो याहि राजाके किंकर मारै हैं। तब पिता कही "या पुरुषनैं धूपमैं नाज सुखाया हुता सो कूकडा (मुर्गा) चुगै था सो यानैं मार्‍या सो मरि गया" तातैं वाहि मार्गमैं यह चरित्र देख्या। बहुरि आगैं "एक दुर्बुद्धि धनदेवनामा पुरुष ताके जिनदेवनामा पुरुषनैं धन सौंप्या हुता सो वानैं लोभतैं धन दाब्या, ताकी जीभ खंडित करते थे सो मैं देखे अर एक पिंगलनामा शेठ ताका अमौलिक मणिनिका हार एक चोरनैं चोर्‍या अर गणिकाकूं दीया सो चोरकूं कोटपाल सूली चढावते थे सोहू मैं देख्या अर एक पापी अज्ञानी कामकरि लोप्या है विवेक जानैं सो अपनी माताकी छोटी बहिनकी बेटी ताके घर रात्रिविषें चेष्टाकूं गया था सो कोतवाल वाका अंग छेदता सोऊ मैं देख्या ॥ अर एक लोलनामा महालोभी सो खेतके लोभतैं अपने ज्येष्ठ पुत्रकूं दंडतैं हन्या सो मरिगया। तातैं लोक अनेक प्रकार करि निग्रह करते हुते सो विलाप करता मैं देख्या। अर एक सागरदत्तनैं समुद्रदत्तका प्रचुर

धन द्यूतक्रीडामैं जीत्या सो समुद्रदत्त देवैमें असमर्थ महानिर्धन ताका वानैं क्रोधकरि निग्रह कीया। आतापमैं बैठाया सो सागरदत्तकूं राजकिंकर एक कोठेमैं रोकिकरि दुर्गंधका धूंआ देते सो मैं देख्या। अर राजा आनंदतैं इह दुहाई फेरी हुती जो कोई जीव न मारै सो एक अंगकनामा पुरुषनैं बकरा मार्या ताका राजाकी आज्ञातैं हाथ काटै थे सोहू मैं देख्या। अर राजाके पोतानैं मांस भख्या हुता ताहि विष्ठाका भक्षण करावते हुते सोहू मैं देख्या। अर एक कलाली पापिणी अधर्मिणी मदकी वेचनहारी काहू बालककूं आभरणकी इच्छाकरि मारि धरतीमैं गाड्या हुता वाका वृत्तांत अपने पुत्रकूं कहती हुती सो राजाके किंकरनि सुनिकरि पकरि ताका निग्रह करते हुते सोऊ मैं देख्या। ए पापकर्म हिंसादि दोषनितैं उपजे तिनिका फल या भवहूमें खोटा अर परभवमैं नरकादि अत्यंत दुख। सो मैं इह बात अवधारिकरि व्रतके त्यागतैं परान्मुख भया व्रतका धारनही मोहि नीका लाग्या अर परभवके भयतैं मैं कंपायमान भया। हिंसा, मृषा, चौर्य, कुशील अर बहुपरिग्रह ए पापके मूल हैं अर पाप दुखनिका मूल है ए पाप एही भवमैं दुखके कारण नाहीं परभवमें हू नानाप्रकार वध बंधनके कारण हैं ऐसा जानि मैं पितासूं कही—हे तात! अपन दरिद्र हैं सो पूर्वोपार्जित पापका फल है॥ तातैं भली चेष्टा करि महापुण्यका संचय करना जाकरि जीव सुखी होय पितासूं यह वचन कहि मोह छुडाय मैं निर्वाणका अभिलाषी जिनदीक्षा धरता भया॥२७६-२८६॥ गुरुके प्रसाद करि तत्काल शास्त्रका मर्मी भया अर बुद्धिकी निर्मलता भई। एक दिन मैं केवलीके निकट अपने पूर्व भव महादुष्ट सुने, सो जैंसे सुने तैसे तुमकूं कहूं हूं। याही पुष्कलावती देशविषैं पुंडरीकिणी नगरी तहां राजा वसुपाल राज करै अर प्रीति करि प्रजाकूं पालै। सो वसुपालके राजमैं विद्युतवेगनामा चोर मुनि अर्जिकाका घातक ताहि बलात्कारै राजाके किंकरनि पकर्या सो ताकै निकट धन हुता सो तौ सब लिया अर चौरकूं कही और धन तेरा जहां होय तहां बताय। कोतवालने चोरकूं त्रास दई तब चोर कही मैंने अपना धन एक विमतिनामा पुरुषकूं सौंप्या तब विमतिकूं पकर्या विमति कही मेरे याका धन

नाहीं। तब कोतवालनें उपाय कीया सो उपायकरि विमतिके घरमें धन निसरया तब विमतिकूं कही कैतौ तीन थाल विष्ठाके भरे भखि, कै तीस मुकी मलकी खाहु, कै सर्वस्वहरण, तब वानें पहले तौ मल भक्षण आरे कीया सो न भख्या गया तब मलकी मुकी आसंगी सोभी न सही गई तब सर्वस्व देय मूवा। सो पापके योगतें नारकी गति पाई अर विद्युतचोरकूं महापापी जानि राजा मारवेका हुक्म कीया। तब कोतवाल चांडालकूं कही जो तू राजाकी आज्ञातें या चोरकूं मारि तब चांडाल कहीं मैं साधुके निकट हिंसादिक पापनिके त्यागकी प्रतिज्ञा धारी है सो मैं जीवमात्रकी हिंसा न करूं यह तौ मनुष्य है याहि कैसैं हनूं यह काम मोतें न बनैं। तब कोतवाल राजासूं कही राजा जानी या चांडालनें सौंक (रिश्पत) लई है तातें न मारे है चांडालके श्रावकके व्रत कहां पाई? राजा क्रोध करि चोरकूं अर चांडालकूं सांकलमें गाढे बांधिए भाखसीमें डारे ॥ २८७–२९६ ॥ रात्रिकूं चोरनें चांडालसूं पूछी जो तू मोहि क्यों न मारे वा मेरे वास्तें तू क्यों मरै? तब चांडाल कही मैं दुर्लभ अमोलिक जिनधर्म पाया है सो काहूकूं न मारूं मोहि कोऊ मारै तौ मारौ मोहि धर्मकी प्राप्ति कौंन भांति भई सो सुनि—या राजा वसुपालका पिता गुणपाल या नगरका राज करता हुता तासमैं श्रेष्ठी कुबेरप्रिया सो एक नाटकाचार्यकी पुत्री नाट्यमाला तानैं राजाकै आगैं अद्भुत नृत्य कीया। रति, हास. शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय ए सब भाव दिखाए सो नृत्य देखि राजा अचिरजकूं प्राप्त भया तब एक उत्पलमाला नामा गणिका राजासूं कहती भई जो हे देव! नृत्यकारिणी नृत्य करै ही करै ताकौ कहा अचिरज मैं एक अति आश्चर्य देख्या सो सुनहु। श्रेष्ठी कुबेरप्रिय कुबेरकांतका पुत्र सो महाशांत परिणामी एकदिन कायोत्सर्ग धारि प्रोषधोपवास संयुक्त तिष्ठ्या हुता सो मैं जायकरि ताका चित्त चलायवेकूं समर्थ न भई सो बडा अचिरज, उत्पलमाला इह बात कही तब राजा कही उनके कुलकी ऐसीही रीति है अर यासूं अतिप्रसन्न भया कही तू गुणप्रिय है सो मनवांछित प्रार्थनाकरि मैं तुष्टमान भया तब वानैं कही अब मेरा भाव शील पालनेका है। तब राजा आज्ञाकरी

तू शीलपालि वानैं शीलव्रत लीया। एकदिन ताकै घर सर्वरक्षितनामा कोतवाल आया वह जानै नाहीं जो यानै शीलव्रत लिया है। कोतवालकूं देखि गणिका कही जो मैं रजस्वला हूं या भांति उछांटकी बात करैथी ताही समैं मंत्रीका पुत्र पृथुमती आया सो राजाका साला ताहि देखि कोतवालकूं मंजूसमैं घाल्या अर मंत्रीके पुत्रसूं कही जो तू मेरे आभरण तेरी वहिन सत्यवती राजाकूं परणाई तब ले गया था सो ल्याव तब वानैं कही तयार है ल्याऊंगा तब गणिका कही लेकरि आइयो सो वह घर गया या वातका कोतवाल मंजूसमैं था सो साखी भया दूजेदिन वानैं सुनी जो उत्पलमाला तौ शीलव्रत लीया तब वह ईर्षाकरि गहणा देवेसूं नट गया गणिकातैं मंजूसविषैं तिष्ठता कोतवाल साखी कीयाही था सो राजाके निकटि मंत्रीके पुत्रपै गहणा मांग्या वह नटि गया सो मैं तौ गहणा न लीया तब राजा रानी सत्यवतीसूं पूछी जो तेरे व्याहमैं तेरा भाई उत्पलमालाका गहणा ल्याया था तब वानै कही ल्याया था अर मेरे ही निकट है सो लेहु। रानी राजाकूं गहणां सौंप दीया राजा क्रोधकरि मंत्रीके पुत्रकूं मारिवेकी आज्ञा करी। इहां एक और कथा चालै है—वनविषैं महामुनि जिनसूत्रका पाठ करते हुते सो राजाके पटहस्तीने सुन्या ताहि भवस्मरण भया सांततार्कूं प्राप्त भया ॥ २९७-३११ ॥ श्रावकके व्रत धार अयोग्य वस्तुका आहार न करै तब हाथीकूं देखि श्रेष्ठी कुवेरप्रिय अनेक उपायका वेत्ता गुण घी मिश्रित सोधे चावल अर अवीध अन्नका चून आचार पूर्वक हाथीकूं दीए सो हाथी लिए। राजा प्रसन्न भया सेठसूं कही मनकी इच्छा होय सो मांगऊ सेठ कही मेरा वचन भंडार रहै मोहि चाहिएगा तब ल्यूंगा। सो वह वचन सेठ यादिकरि राजासूं कही जो वह वचन मैं पाऊं राजा कही मांगहु तब सेठ कही मंत्रीके पुत्रका जीव बचै राजापै मंत्रीका पुत्र छुडाया। सो सेठ तौ बडा उपकार कीया मंत्री महादुष्ट सो उल्टा औगुन मान्या जो सेठहीनैं गणिकाकूं समझाय मेरे पुत्रकी निंदा कराई। अर आप बचायवेका यश लीया इह उल्टी समझ पापीका उपकारहू सर्पकूं दूध प्यावना है मंत्रीने सेठसूं वृथा वैर बांध्या। सेठका घात चिंतवे, एकदिन मंत्रीका पुत्र स्वइच्छा विहार करता वनमें गया हुता सो एक काम मुद्रिका मनवांछित

रूपकी करनहारी विद्याधरतैं पाई ॥१२-१७॥ ताहि अंगुलीमें घालि घर आया सो वह मुद्रिका पिताके कहते अपने छोटे भाई वसुके हाथमें दई अर कही तू श्रेष्ठी कुवेरप्रियका रूप करि सत्यवतीके मंदिर जाहु सो वह श्रेष्ठी कुवेर प्रियाका रूपकरि सत्यवतीके मंदिर गया अर इह पापी आप जायकरि राजाके समीप बैठा, राजा सत्यवतीके मंदिर कुवेरप्रियकूं विना समैं देखिकरि कही इह आवनकी बिरियां कहा? तव मंत्री कही यह तो यासमैं सदा आवै है पापी कामाग्नि करि तप्तायमान है तब राजा बिना विचारे मंत्रीके पुत्रकूं कह्या जो तूही याके प्राण हरि ॥१८-२१॥ सो ता दिन सेठ अपने घरही पौसा संयुक्त कायोत्सर्ग धरि तिष्ठता हुता सो पृथुमति अपने भाईकूं तौ घर पहुंचाय दीया अर सेठकूं घरतें पकरि ल्याया मारिबेकूं ले चाल्या अर नगरमैं यह कहते जाहि जो शेठ अपराधी है सो काहूके मनमैं न आई शेठकी सब लोकनिके प्रतीति, मंत्रीका पुत्र शेठकूं मारिबेके स्थान ले जाय चांडालकूं सौंप्या, चांडाल खड्ग चलाई ॥२२-२४॥ सो शीलका प्रभावकरि सेठके उरमैं हार होय गया । इह महाशीलवान अरहंतदेवका भक्त विना परखें राजा दंड दीया सो नगरमैं महा उत्पात भए जो निरापराधकूं दंड देइयौ तौ महाउत्पात होय सबनिका क्षय होय सो राजा अर नगरके लोक विह्वल होय वनमैं शेठके शरणैं आए ॥ २५–२७ ॥ श्रेष्ठीका उपसर्ग दूरि भया अर स्वर्गके देवता शीलके प्रभावका वर्णन करि श्रेष्ठीकूं पूजते भए ॥ ३२८ ॥ अर राजा श्रेष्ठीसूं वीनती करी जो मैं विना विचारैं काम कीया सो आप क्षमा करौ भयकरि कंपायमान नृपादिक तिनसूं शेठ कहता भया जो मेरे उपार्जे अशुभकर्मके उदयतैं इह भया तिहारा अपराध नाहीं तुम विषाद न करहु या भांति कहकर उनकूं प्रसन्न कीए अर सबनिकी चिंता निवारी श्रेष्ठी क्षमावंतनिमैं मुख्य है सबनिकरि पूज्य श्रेष्ठी सबनिके आगैं होय बडी विभूतिसूं नगरमैं प्रवेश कीया। श्रेष्ठीका सुखसूं कालव्यतीत होय। अथानंतर—श्रेष्ठीकी पुत्री वारिषेणा राजा गुणपाल अपने वसुपाल पुत्रकूं परणई अतिविभूतिसूं विवाह भया ॥२३॥ एकदिन राजा सभाके मध्य श्रेष्ठीसूं पूछा जो धर्म अर्थ काम मोक्ष ए च्यारि पदार्थ परस्पर अनुकूल कौनकै अर प्रतिकूल कौनकै? तब सेठ कही

सम्यग्दृष्टिकैं तौ च्यारूं अनुकूल कहिए अविरुद्ध हैं अर मिथ्यादृष्टिके ए च्यारूं प्रतिकूल कहिए विरुद्धरूप हैं या भांति धर्मतत्त्वका वेत्ता श्रेष्ठी यथावत कहता भया। श्रेष्ठीके वचन सुनि राजा तुष्टमान भया अर कही मनवांछित मांगहु सेठ कही जन्म मरणका क्षय मांगे हैं। राजा कही ए दोऊबात मेरे वश नाहीं तब सेठ कही ए वात मैं सिद्ध करूंगा मोसूं मोह तजो। श्रेष्ठीके ए वचन सुनि राजा गुणपाल कही जो मैंहूं तिहारै साथ घरका त्याग कीया चाहूंहूं परन्तु मेरे पुत्र बालक हैं। राजा इह वार्ता सेठसूं कहीं ताहीसमैं ग्रहकोकिला अंडेमेंसूं निकल्या सो निकलताही मक्षिकाकूं ग्रहता भया। ताहि राजा देखि मनमें विचारी सबही जीव आजीविकाका उपाय विना पराये उपदेश जानैं हैं मेरे बालककी चिंताकरि कहा? ए बालक अपनी आजीविकाका उपाय आपही करलेंगे। ऐसा विचार राजा गुणपाल अपने बडे पुत्र वसुपालकूं विधिपूर्वक राज देइ छोटा पुत्र श्रीपाल ताहि युवराजपद दीया। अर आपकूं कुवेरप्रिय श्रेष्ठीसहित अर बहुत राजानि सहित दमवर नामा मुनिके निकट तप अंगीकार कीया। इह कथा चांडाल विद्युत् चोरसूं कही अर कही देखो श्रेष्ठी कुवेरप्रियने मंत्रीका पुत्र पृथुधी ताकूं अभयदान दिया हुता ताके फलतैं परम अतिशयकूं प्राप्त भया। इह वृत्तांत देखि मैं दयाव्रत अंगीकार कीया तातैं तोहि न मार्‌या तब वह चोर चांडालकी स्तुति करता भया॥ ३३३-३४२ ॥ भीमनामा मुनिकूं केवली कही—जो वह विद्युत् चोरका जीव नरकतैं निकसि करि तू भीमनामा वणिक होय मुनि भया अर पहिले मृणालवती नगरीविषैं भवदेवनामा पुरुष हुता रतिवेगा अर सुकान्त अग्निविषैं जलाय मारे सो वे तौ कबूतर कबूतरी भये अर तू बिलाव भया सो बिलावके भवमैं कबूतर कबूतरी हने सो कबूतर कबूतरी शुभ ध्यानतैं मरि विद्याधर विद्याधरी भए! अर तू बिलावतैं विद्युत्चोर भया सो विद्युतचोरके भवमैं मुनि अर अर्जिका अग्निमें जलाये सो पापके बंधतैं नरकविषैं दुख भोगि तू भीम भया। इह सब कथा भीमनैं केवली भगवानके मुख सुनी हुती सो कनकप्रभदेव अर कनकप्रभा देवीसूं कही। तब वे देव देवी कहते भए—हे मुनि! वे हिरण्यवर्मा प्रभावतीके

जीव हम तुम तीनबार मारे सो हमारी तुमसूं क्षमा है। ऐसा कहि मन वचन कायकी शुद्धता करि वे देव देवी जान्या है धर्मका सद्भाव जिन, सो भी मुनिकी बंदना करि अपने स्थानक गए। यह कथा सुलोचना कहि करि कहती भई जो भीम मुनिकूं पुंडरीकिणी पुरीके सिवंकरनामा रमणीक उद्यानविषैं घातिया कर्मके नाशतें केवलज्ञान उपज्या। सो केवलसंयुक्त विराजते हुते तिनिके दर्शनकूं चार देवी आईं। आयकरि केवली भगवानकूं वंदि धर्मश्रवणकरि पूछती भई—हे त्रिलोकनाथ ! हमारा पति पापके उदयतें मूवा सो अब हमारे पति कौंन होयगा। तब केवली भगवानकी दिव्यध्वनिमें आज्ञा भई जो याही पुंडरीकिणी पुरीविषैं एक सुरदेवनामा मनुष्य ताकै वसुषेणा, वसुंधरा, धारिणी, पृथिवी ये च्यारि स्त्री अर श्रीमती, वीतशोका, विमला अर बसंतिका ॥ ४३–५२ ॥ ये चार स्त्रीनिकी ए चार चेरी सो एकदिन ते सर्व वनविषैं मुनिके समीप दानादिक धर्म अंगीकार करती भईं। सो धर्मके फलकरि स्त्री तौ सोलमां स्वर्गका प्रतीन्द्र ताकै देवी भईं तिनिके नाम रतिषेणा, सुसीमा, सुखावती अर सुभगा। अर ए चार चेरी विंतरी देवी भईं तिनिके नाम चित्रषेणा, चित्रवेगा, धनवती अर धनश्री अर वे स्वर्गकी देवी तुम हो। अर सुरदेव मरिकरि पुंडरीकिणी पुरीका पिंगलनामा कोतवाल भया। सो अपने दोषकरि वंदीखानेमें पर्‍या अर सुरदेवीकी माता काहू राजाकें पुत्री भई। सो श्रीपाल कुमारकूं परणाई सो विवाहके उछवविषैं सब वंदीवान छूटे तिनिमें पिंगलनामा कोतवाल रुक्या था सो छूट्या सो पिंगल सुरदेवका जीव है, संन्यास धारि मरिकरि अच्युत स्वर्गविषैं तिहारा पति होयगा। ताहिसमैं वह देव मुनींद्रके दर्शन आया चित्तके हरणहारे मुनिके वचन सत्य कीए अर वे चारो चेरी विंतरी भईं हुती तिनिहू मुनिकूं पूछी जो हमारा पति कौंन होयगा। तब मुनि कही—पिंगलका पुत्र अतिपिंगल सोहू सन्यास धारि मरिकरि विंतर देव तिहारा पति होयगा। ऐसे मुनिके वचन सुनि वे अतिपिंगलके समीप गईं अर ताकी पूजा करी ताके देखिबेतैं देवीनिके राग अति उपज्या यह कथा सुलोचना पतिके समीप सकल सभासूं कही। अर कही रतिमाल नामा

श्रेष्ठीकी कथा मुनिके समीप तिनि चारो देवीनि सुनीं अर रतिमालका पिता मणिनागदत्त ताकी सकल चेष्टा तिनि सुनी। अर सुकेतु श्रेष्ठीका सकल चरित्र सुन्या ते चारो देवांगना मुनींद्रकी बंदनाकरि हर्ष पाय अपने स्थानक गई॥ ५३–६४॥ अर आप कनकप्रभ देव कनकप्रभा देवी भीम केवलीकी बंदनाकूं आई हुते सो केवलीका दर्शनकरि सकल कथा सुनि प्रीतिकरि मंडित है हृदय जिनिका सो अपने स्थानक गए। या भांति अपनी भवावलि मनोहर है कथा जामैं सो मिष्ट वचननिकरि सुलोचना कहती भई। सुलोचनाके वचन सत्यार्थ हैं मानिवेयोग्य हैं सबनिके मनकूं प्रिय हैं सुंदर हैं अर अस्खलित हैं संपूर्ण प्रसंगकूं लीए हैं, व्याकुलता रहित हैं ऐसे वचननिकरि अपनी प्राचीन सकल कथा कही अर अपने शुभाशुभ परिणामनिकरि उपज्ये पुण्य पाप तिनिके उदयतैं धारी ऊंच नीच अवस्था सो सब कहि अपने दांतनिकी फैलती किरण ताकरि सभाके लोकनिकूं शोभित करती भई। याके दांतनिकी ज्योति सबनिके मुखपरि जाय परी। प्राणवल्लभाके मुखतैं निकसी हृदयकूं प्यारी जो वह कथा सो समस्त सुनिकरि जयकुमार अतिप्रसन्न भया जैसे मनवांछित सुखतैं निकसी हृदयकूं प्यारी जो वह कथा सो समस्त सुनिकरि जयकुमार अति प्रसन्न भया मनवांछित सुखपाय तृप्ति होय अर सकलसभा विकाशरूप भई जैसैं शरद ऋतुकूं पाय सरोवर विकाश लक्ष्मीकूं प्राप्त होहि। अर जयकुमारकी पहिली रानी श्रीमती अर सिवंकरा तिनिके मुखरूप चंद्रमाकी कांति सुलोचनाके वचनरूप सूर्यके उदयतैं मंद होय गई। जो विना स्थानक अदेखसका भाव करै सो दुख लहै तातैं पंडितनिकूं अदेखसका भाव तजना। यह अदेखसका भाव तो सर्वत्र त्याज्यही है अर आपसूं गुणाधिक्यविषैं करै तो महामूढता है। वे तो एक भवकी स्त्री अर इह सुलोचना पांच भवकी स्त्री अर पतिका प्राण सो यासूं मत्सर भाव उनकूं योग्य नाहीं। सुलोचना कहै है पहिले भवविषैं प्रीतमका जीव तौ सुकांत अर मेराजीव रतिवेगा। बहुरि दूजै भव वभल्लका जीव रतिवर कबूतर अर मेरा जीव रतिषेणा कबूतरी कुवेरमित्र सेठके घरमें होते भए। अर तीजै भव पतिका जीव तौ हिरण्यवर्मा अर

मेरा जीव प्रभावती अर चौथे भव भर्तारका जीव तो स्वर्गविषैं कनकप्रभ देव अर मेरा जीव कनकप्रभा देवी अर या भवविषैं मैं महारानी सुलोचना अर आप महाराजेश्वर मेरे पति मोकरि सेविवे योग्य। या भांति संपूर्ण पूर्व भवका विस्तार रमणीके मुखकमलतैं रसका भर्या अपने श्रोत्ररूप पात्रविषैं धारिकरि ताके वचन औरहू सुनिवेकी है अभिलाषा जाके ऐसा जयकुमार प्रियाके मिष्ट वचन सुनता तृप्त न भया सुन्या ही करूं। जो कामीजन हैं ते प्यारी स्त्रीके मुखके वचन सुनिकरि तृप्त न होंहि वारंबार सुन्या ही चाहैं॥ ३६९॥

इति श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे जयकुमार सुलोचनाभवांतर वर्णन नाम छीयालीसवां पर्व पूर्ण भया॥४६॥



अथ सैंतालीसवां पर्व।

अथानंतर इह कथा सुनिकरि जयकुमार सुलोचनासूं कहता भया—हे कांत! या कथाविषैं श्रीपाल चक्रवर्ति संबंधी औरहू व्याख्यान है सो तोहि स्मरण है? तब सुलोचना कही—मैं भली भांति सब वृत्तांत जानूं हूं वह श्रीपाल चक्रवर्ति महा सौभाग्यवंत ताका चरित्र मोहि ऐसैं यादि है मानूं अब देख्या है तब पति कही वह कथा सुनिवेयोग्य है सो कहौ। तब सुलोचना कहती भई—जंबूदीप पूर्वविदेह पुंडरीकणी नगरी पृथ्वीविषैं महाप्रसिद्ध जैसैं इन्द्रकी पुरी स्वर्गविषैं सोहै तैसैं वह नगरी मध्यलोकमैं सोहै। तहां राजा वसुपाल अर श्रीपाल दोऊ भाई राजा गुणपालके पुत्र चांदसूर्य सारिखे कान्तिधारी सकल पृथ्वीकूं जीति करि पुंडरीकणीका राज करैं मानूं ए दोऊ भाई विनय अर बुद्धि पराक्रमका स्वरूप ही हैं। सो कुवेरकांत श्रेष्ठीकी पुत्री कुवेरश्री राजा गुणपाल श्रीपालकी मा ताहि एक दिन वनपालनैं आय करि कही जो तिहारा पति राजा गुणपाल मुनि भया हुता ताहि सुरगिर नामा पर्वतविषैं केवलज्ञान उपज्या है तब सुनिकरि कुवेरश्री सातपैंड सन्मुख जाय केवलीकूं वंदना करी। अर वनपालकूं बहुत बधाई दई अर

नगरविषैं घोषणा दिवाई जो सबही नगरके लोक पूजाकी सामिग्री ले केवलीके दर्शन चालौ, सो सबही बंदनाके उद्यमी भए। अर कुवेरश्री पहलीही आप जाय करि वंदना करती भई अर श्रीपाल बसुपाल हर्षके भरे पीछैंसूं चले, सो एक प्रमदनामा वन तहां गए ता वनविषैं वृक्षनिके मध्य बटका वृक्ष ताके नीचैं आगैं जगत्पाल चक्रवर्तिनैं संयम लीया हुता सो वा वृक्षके नीचैं ए दोऊ भाई नृत्य होय था ताहि आदरतैं देखते भए सो नृत्य देखिकरि श्रीपाल कही जो इह पुरुष तौ स्त्रीका भेषधरि नाचै है सो पुरुषकी जगह जो कदाचि स्त्री ही नाचती होती तौ नृत्य अति मनोहर भासता। य श्रीपालके वचनसुनि नृत्यकारिणी मूर्च्छाकूं प्राप्त भई। तब ताहि उपायनितैं सचेतकरि विनयपूर्वक कोईक स्त्री श्रीपालसूं वीनती करती भई। कैसा है श्रीपाल? याही भवविषैं होनहार है चक्रवर्तिपदवी जाकूं सो श्रीपालसूं वह स्त्री कहा बीनती करै है—हे देव! सुरम्यनामा देश तहां श्रीपुरनामा नगर ताका राजा श्रीधर ताकै रानी श्रीमती ताकै पुत्री जयवती सो जब जयवतीका जन्म भया तब पंडितजन कहते भए जो यह पुत्री चक्रवर्तीकी पटरानी होयगी सो चक्रवर्तीके जानिबेका इह उपाय जो नट अर नटीका भेद जानैं सो चक्रवर्ति सो हम तिहारे परिखिवेकूं आई हुतीं सो पुण्यके योगतैं हम तुमकूं देखे तुम महा निधि समान हौ। वह स्त्री कहै है—मेरा नाम प्रियरति है अर इह पुरुषका आकार धरि नाचै है सो याका नाम मदनवेगा है इह मेरी पुत्री है अर इह स्त्रीका भेष धरि नाचै है सो वासवनामा नटवा है ए समाचार प्रियरतिके मुख सुनिकरि श्रीपाल प्रसन्न भया अर यथा-योग्य उनका सन्मान करि आप केवलीकी वंदनाके अर्थि सुरगिरिनामा पर्वतकूं जाय था सो मार्गमैं एक विद्याधर मायामई अश्व लाया तापरि आसक्त चित्त होय श्रीपाल चढ्या अर तुरंगकूं दौडाया सो केतेक दूरि तौ वह पृथ्वीमैं दौड्या बहुरि विद्याधरका आकार करि आकाशमैं ले उड्या॥ २०॥ तब वा बडके नीचे जहां नाच देख्या हुता तहां एक यक्षणीका मंदिर है सो वा देवीनै विद्याधरकूं दव बढाया अर श्रीपालकूं पर्णलघुनामा विद्याकरि रत्नावर्तनामा गिरिके शिखर थापे, याकूं बहुत लाभ होने हैं तातैं गिरिके

शिखर छोडिकरि देवी अपने स्थानक गई अर श्रीपाल एक सरोवर है तहां स्नानकरि मार्गका खेद निवाऱ्या अर सरोवरके निकट एक उज्वल मंदिर है तामैं याहि राजपुत्र जानि कैइक राजकन्या याके ढिग आई, याहि देखिकरि अपना वृत्तांत कहती भई अर अपने कुल, गोत्र, नामादिक कहिकरि इह वात कहती भई जो एक अशनिवेगनामा विद्याधर है तानैं हमकूं बलात्कारैं रोकि राखी है। ए समाचार सुनिकरि श्रीपालकूं करुणा उपजी अर श्रीपाल उनकूं अपने आवनेका वृत्तांत कहता भया सो वृत्तांत कहै हैं ताही समैं एक विद्युतवेगानामा विद्याधरी आई सो याहि पापी अशनिवेगनैं श्रीपालके मारिवेकूं पठाई हुती सो इह श्रीपालकूं देखिकरि कामातुर होय गई "प्राणीनिकी चित्तकी वृत्ति विचित्ररूप है" सो वह विद्युतवेगा श्रीपालसूं कहै है जो एक राजपुरनामा नगर ताका राजा स्तनितवेग ताकै रानी ज्योतिर्वेगा ताका पुत्र अशनिवेग सो मित्रता थकी तुमकूं मायामई अश्वकरि इहां ल्याया सो मेरा बडा भाई है अर मेरा नाम विद्युतवेगा है तातैं मोहि पठाई है वह तिहारा साला है। भावार्थ—तुम मेरे पति हौ मैं तुमकूं वऱ्या चाहूं हूं सो अशनवेगनैं मोहि कही जो वे रत्नावर्त गिरि पर हैं तू वहां जाउ सो मैं तिहारे समीप आई ए वचन कहि अपनी राग चेष्टा दिखावती भई अर कही यह निकटही मंदिर है तहां चालौ रसक्रीडा करैं असा कह्या सो ए महात्मा इनिके स्त्रीकी अभिलाषा कहां? ए तौ धर्ममूर्त्ति हैं तब वा निर्लज्जनैं तहांही विद्याकरि मंदिर निरमाप्या कामी जीवनिकै लाज कहां? वे और राजकन्या हैं तिनिके मोह आगैं अनुरागके वचन कहती भई, ताही समैं तहां विद्युतवेगाकी सखी अनंगपताका आई सो विद्युतवेगाके अनुमारही श्रीपालकूं वचन कहे—हे देव! तिहारे पिता गुणपाल केवलज्ञानकूं प्राप्त भए हैं तिनिके दर्शन तिहारी माता कुबेरश्री गई सो तानैं या विद्युतवेगाकी माता ज्योतिर्वेगाके पितासूं कही जो श्रीपालकुमार तिहारे विद्याधरनिके खंडमैं आया है सो वाहि ले आऊं तब ज्योतिर्वेगाके पितानैं अपने जमाई स्तनितवेगसूं कही जो मेरा स्वामी श्रीपाल है ताहि ले आओ तब स्तनितवेगनैं अपने पुत्र अशनिवेगसूं कही जो तू श्रीपालकूं ले आव सो अशनि-

वेग विद्युद्वेगाका भाई तिहारा सालाही है सो तुमपैं गया, अर उत्तरश्रेणिका अधिपति अनिलवेग इनका शत्रु है वह विद्युद्वेगाकूं परणा चाहै है अर अशनिवेग तुम्हें परणा चाहै है सो वैरीके भयकरि तुमकूं यत्नतैं पाल्या तुमसूं अनुरागी है चित्त जाका वानैं मनमैं विचारी मत कदाचि उत्तरश्रेणिका अधिपति अनिलवेग श्रीपालका आगमन जानि मार्गमैं घात करै इह आशंकाकरि तुमकूं या गिरिपर पधराए अर सब भाई भेले होय अनिलवेगकूं निवारि हमकूं कही जो तुम यत्नसूं कुमारकूं ल्यावौ सो या कारणतैं हम यहां आई हैं यह विद्युद्वेगा तिहारी नियोगिनी तौ है ही तुम याहि अंगीकार करौहीगे इह तिहारे देखतैं ही अनुरक्त भई है सो तुमकूं विद्युद्वेगा श्रीपालकूं मंदिरके ऊपर बैठाय द्वारजडितजनी गंधर्व विवाहकरि अंगीकार करो इह वार्ता श्रीपाल सुनिकरि उचित वचन कहता भया—जो मैं जनेऊ लई तब यह व्रत ग्रह्या जो उपासकाध्ययनसूत्र पूर्ण न होय तौ लग मेरे ब्रह्मचर्यही है अर सूत्रपाठं पूर्ण भए विवाह करूंगा परंतु वा कन्याके माता पिता अथवा बडा भाई आदि मोहि परणावै तब परणौं मेरी इच्छातैं अथवा कन्याकी इच्छातैं परणूं नहीं ॥४१॥ ए वचन श्रीपाल कहे तब विद्युद्वेगा अर महलमांहिली छहकन्या अर अनंगपताका ए आठौं नानाप्रकार शृंगाररसकी चेष्टाकरि श्रीपालकूं अनुरागरूप करिबेकूं प्रवर्त्तीं परंतु अनुरागी न करि सकी वे बडेपुरुष कौनके डिगाए डिगैं जैसैं पवनका डिगाया सुमेरु न डिगै। तब विद्युद्वेगा श्रीपालकूं मंदिरके ऊपरि बैठाय द्वार जडि आप माता पिताके लेबेकूं उनके निकट गई जो उनकूं ल्याय अर याकूं परणूं सो वह तौ किवाड जडि गई अर श्रीपाल लाल रतकी कंबलकूं ओढि सूते तिनिकूं देखिकरि भेरुंड पक्षी जानी जो इह मांसका पिंड है सो उठाय करि वैताढ्य पर्वतका सिद्धकूट चैत्यालय ताकै शिखर परि जाय खायबे लागा सो जीवता पुरुष देखि तजि गया इह उन पक्षियोंका जातीय स्वभाव है जो जीवतेकूं न भखैं मृतककूं भखैं सो पंखी तौ गया अर श्रीपाल शिखरतैं उतरि एक सरोवर है तहां आय स्नान करि सुगंध पुष्प ले चैत्यालय गया, तीन
प्रदक्षिणा देइ स्तुति करी तब चैत्यालयके द्वार स्वयमेव खुले सो देखि करि प्रसन्न भया भीतरि जाय जिनें-

द्रकी पूजाकरी ॥ ४६ ॥ बारंबार नमस्कार करि वहां तिष्ठै था सो एक विद्याधर आयकरि उठाय करि आकाशके मार्ग ले चाल्या सो जाता थका मनोहर नामा देश तहां शिवंकरपुर ताका राजा अनिलवेग ताकी रानी कांतिवती ताकै पुत्री भोगवती सो आकाशसमान फटिकमणिका महल ताविषैं कोमल शय्या तापरि सूती थी सो ताहि देखि विद्याधर जो श्रीपालकूं लीए जाय था सो श्रीपालसूं पूछता भया—हे कुमार ! इह कौन है ? तब कुमार कही इह विषमसर्पिणी है महाविषकी भरी है ऐसे वचन श्रीपालके सुनि वह विद्याधर क्रोधकरि श्रीपालकूं भोगवतीका पिता अनलवेग ताके निकट लेगया अर कही इह तिहारी पुत्रीकूं सर्पिणी कहै है तब वह क्रोधकरि कहता भया जो या दुष्टकूं सघन वनमें डारौ जो वन दुर्द्धर तपके धारक जे योगीश्वर तिनिके विराजिवे योग्य होय राजानें यह कही तब वाकी आज्ञाप्रमाण विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणी मनोहरपुरके स्मशान तहां श्रीपाल महासुंदरकूं शीतवैताली विद्याके योगतैं वृद्धरूप करि डारि गए तहां चांडाली विद्याके साधक जे विद्याधर तिनिके कुलविषैं उपजी कोऊ विद्याधरी सो अपने जवाईकूं श्वानका रूप बनाय अपनी पुत्रीके चरणनिमैं लुटाय पुत्रीकूं प्रसन्नकरि बहुरि जवाईकूं प्राचीन पुरुषरूप करि दीया इह चरित्र देखि श्रीपाल विचारी जो मोहि विद्याधरनैं मायाकरि वृद्धरूप कीया है सो इह विद्याधरी ज्यूंकाज्यूं करिबे समर्थ है या भांति मनमैं चिंतवता संता अपना रूप दुष्ट विद्याधरकरि और रूप कीया देख्या कालकी अग्रगामिनी जो जरा ताकरि युक्त अपने शिरके बाल ऐसे देखे जैसा हास्यका स्वरूप उज्वल होय अथवा समुद्रकी तरंग जैसी उज्वल होय तैसे धौले देखे अर जैसी जलकी तरंगविषैं किरवरी तैसी अपनी त्वचा देखी दुष्ट विद्याधरकी मायाकरि अपना ऐसा रूप देखि लज्जा अर शोककरि पीडित श्रीपाल धीरां धीरां जाय था सो वह भोगवती जाहि श्रीपालने सर्पिणी बताई हुती ताका भाई हरिकेत ताहि बाही वनमैं विद्या सिद्ध भई, सो विद्यानैं श्रीपाल कुमारके करमैं अमृत डार्या अर कही तू निःसंदेह पीजा शंका मति करै सो इह पीगया ताहि देखिकरि भोगवतीके भाई हरिकेतुनैं कही

जो तोहि सर्वव्याधिविनाशिनी विद्या प्राप्त भई ऐसे प्रीतिके वचन कहि महाप्रीति उपजाई हरिकेतु तौ अपने स्थानक गया अर श्रीपाल निजरूपकूं प्राप्त भया विकार मिटि गया सो श्रीपाल चल्या जाय था मार्गविषैं एक वडका वृक्ष ताके अधोभाग तिष्ठता एक विद्याधर ताहि देखिकरि पूछी जो इह कौंन स्थानक है तब विद्याधर कही ॥ ६४ ॥ वैताढ्य पर्वतकी तौ पूर्वदिशा अर नीलाचलकी पश्चिमदिशा तहां इह सुसीमानामा देश है अर याविषैं महानगर नामा पुर है, ताका इह भूतनामा वन है इह निश्चय अवधारि अर या वनविषैं ए सात वडी शिला हैं इनकूं जो ऊपरा ऊपरी धरै सो चक्रवर्ती पद पावै ऐसे वचन विद्याधरके सुनि श्रीपालनें वाही भांति करी एकके ऊपर सब मेल्ही। तब विद्याधर श्रीपालका साहस देख नगरके राजाकूं कहने गया अर कुमार तहांतैं निकसिकरि आगैं चाले जगतके प्रपंचतें उदास है चित्त जिनिका आगैं एक स्त्री वृद्धरूप धरे कुरूप शरीर काहू एक वृक्षके अधोभाग तिष्ठती हुती ताहि श्रीपाल पूछते भए जो पुष्कलावती देशका मार्ग किधर है सो कहो। तब वानैं कही विमानविषैं आरूढ होय जाय और भांति पुष्कलावती न जाय सकै। पचीस योजन ऊंचा विजयार्द्धगिरि है ताकै पैली उर है इह वार्ता सुनिकरि श्रीपाल कही—वहां पहौंचिवेका उपाय कहो तब वह कहती भई या जंबूद्वीपविषैं वच्छकावती देश तहां विजयार्द्धगिरि ताविषैं राजपुर नगर तहां विद्याधरनिका चक्री राजा धरणीकंप ताकै रानी प्रभाकरी सो रानी मानूं चंद्रकला ही है। ताकी पुत्री मैं सुखावती सो तीन प्रकारकी विद्यानिकी पारगामिनी तीनप्रकार विद्या कौन सो सुनहु—ननसालकी विद्या अर ददसालकी विद्या अर साधी विद्या सो मोमैं अनेक विद्या हैं एकदिन मैं वच्छकावती संबंधी विजयार्द्धगिरि तहां राजा अकंपन ताकी पुत्री पिप्पला मेरे प्राण समान सखी है। ताके निकट गई सो एक विचित्र रूप रत्नकंवल देख्या तब मैं वाहि पूछी जो इह कंवल तेरे कहांसूं आया है। तब वानै कही जो इह कंबल मेरे आदेशके वशतें आया है जाका इह कंवल है सो मेरा पति होयगा। या कंबलके धनीका ध्यान करती तिष्ठूंहूं जोलग वाका दर्शन नाहीं तोलग मैं आतिविह्वल हूं या

भांति पिप्पला मोसूं कही। ताही समै वाकी सखी कांचनपुरके राजाकी पुत्री मदनावती आई। सो वाहूने रत्नकंवल देख्या ताके रत्न मुद्रिका बंधी हुती ताविषैं श्रीपालके नामके अक्षर। सो सुखावती श्रीपालसूं कहै है जो मैं नामाक्षर देखि कामके वाणनिकरि भेदी गई तब मैं मनमैं विचारी जो यह विद्याधरनिका लोक श्रीपाल कैसैं आया अर पिप्पलाके हाथ यह कंबल कैसे आया। तब मैं निश्चय करिबेकूं पुंडरीकिणी नगरी गई सो जिनमंदिरमें दर्शनकरि तिष्ठी। तहां तिहारी माताके मुखतैं तिहारे देशान्तर गमनके समाचार सुने तब मैं तिहारी मातासूं कही—जो तिहारे पुत्रकूं मैं निश्चय थकी ल्याऊंगी। सो मैं तिहारे अर्थि आवती हुती मार्गमैं तिहारी वार्ता असनिवेगकी वहण विद्युतवेगा ताके मुख सुनी सो वह भी तुमविषैं अति आसक्त है ताहि मैं कही जो तोसूं श्रीपालकूं अवश्य मिलाऊंगी। तू और ठौर विवाह करै मति, या भांति मैं विद्युतवेगाकूं धैय वंधाय सिद्धकूट चैत्यालयका दर्शनकरि तिहारे निकट आई। अब जो तिहारी इच्छा पुंडरीकिणी जायवेकी होय अर माता तथा भ्रात तथा कुटंबजनके देखिवेकी होय तो मेरी लार चलो मैं तुमकूं ठिकाणैं पौहोंचाऊंगी। ए सुखावतीके वचन सुनि श्रीपाल पूछी—तेरा ऐसा वृद्धरूप कौन कारणतैं है। तब सुखावती हंसिकरि कही जो तिहारे निमित्त मेरे वृद्धपन आया है अर तिहारे हू वृद्धपना आया है सो तुम कहा न जानो हो? तब श्रीपाल कही तें कौंन कारण मेरा जरारूप शरीर किया॥ ७७-८८॥ तब वानें कही जो पिप्पला अर मदनावती मेरी परममित्र हैं अर वे तुमविषैं अति आशक्त हैं तुमहीकूं वरेंगी सो उन दोऊनिके अर्थी जगतविषैं प्रसिद्ध महाबलवान हैं—पिप्पलाका अर्थी तो धूमवेग अर मदनावतीका अर्थी हरिवर सो ए दोऊ उन दोऊ कन्यानिके मामा भूवाके पुत्र हैं सो उनके भयतैं तुमकूं छिपाय करि पुंडरीकिणी लेऊं। ता कारण अपना रूप मैं वृद्ध किया है अर तिहारा भी कीया था। हे कुमार! हाथमें महास्वादिष्ट ये अमृतफल है सो तिनिके भक्षणतैं तुम शीघ्रही क्षुधा निवारहु। अर मोपरि चढिकरि वेगही पुंडरीकिणी पुरी चालहु तब श्रीपाल कहते भए जो मैं विना विवाह स्त्रीकूं कदाचि

न सपरसूं चढना कैसैं होय, मैं प्रथम अवस्थाविषैं ए व्रत श्रीगुरुके निकट धारे हैं सो व्रतभंग कैसैं होय? इह बात सुनिकरि सुखावती विचारि करि कही—जो तुम व्रत लिया तौ मैं पुरुषका आकार धरि तुमकूं ले चालूंगी ऐसा कहिकरि पुरुषका आकार धरि शीघ्रही ले चाली, सो श्रीपालकूं लेकरि सिद्धकूट चैत्यालय आई तहां दर्शन करि विश्रामके अर्थि तिष्ठी सो ताही दिन भोगवती जाहि श्रीपालनैं भुजंगी कही हुती सो वानैं स्वप्न देख्या जो अपने मंदिरमैं कलाकरि वर्धमान चंद्रमा आया, बहुरि पाछा गया सो या अमंगलीक शांतिके अर्थि सिद्धकूट चैत्यालय पूजाके अर्थि महा सुंदर राजानिकी पुत्री कांतवती, सुवेगा, रत्नवेगा, अमितमति, रतिकांत, चित्तवेगा अर राजा अकंपनकी पुत्री पिप्पला अर ताकी सखी मदनावती अर अशनवेगकी वहन विद्युद्वेगा तथा औरहू कैइक कन्या तिनिकरि मंडित भोगवती आई हुती सो तीन प्रदक्षिणा जिनमंदिरकी देयकरि विधिपूर्वक प्रभुकी पूजाकरि स्तुति करै थी ॥८९-९९॥ ते सबही राजपुत्री श्रीपालकी लगनिकरि व्याकुल हैं चित्त जिनके सो एक शिवकुमार काहू राजाका पुत्र ताका मुख वक्र होय गया था सो श्रीपालके देखिबेकरि मुख वाका पूर्वस्वरूप होय गया तब सुखावती जानी इहां श्रीपाल प्रगट होयगा सो वा स्थानकतैं उठाय श्रीपालकूं रूप पलटि वृद्धरूप करि औठै पधराया सो मदनावतीका अर्थी हरिवर कामरूपिणी मुद्राके प्रभावतैं श्रीपालका रूप यथार्थ करि वहांतैं उठाय पापी क्रोधके योगतैं पुण्याधिकारीकूं महाकाल गुफाविषैं डारता भया ॥ १००-३ ॥ तहां महाकाल नामा राक्षस श्रीपालके हनिवेकूं आया सो याके पुण्यके प्रभाव करि कछू न करि सका तहां कोमल शय्यापरि श्रीपाल पोढै दूजे दिन गुफातैं निकसि करि आघे चाले सुखावतीके मंत्र करि श्रीपालनैं अपना रूप पलटि लीया—वृद्ध कीया तथापि पिप्पलाका अर्थी धूमवेग विद्याधर तानैं अपने सेवक श्रीपलकूं ढूढिबेकूं राखे थे सो तिनि श्रीपालकूं जानि करि अपने स्वामीसूं कही जो इह श्रीपाल है तब वह क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित श्रीपालकूं देखिकरि सेवकनिसूं कहता हुवा जो याहि चंद्रपुरके बाहर स्मशान भूमिविषैं पाषाण अर तीक्ष्ण शस्त्रनिकरि मारो, सो वे मारते भए परन्तु यह

पुण्याधिकारी उनका मारचा कैसे मरै ? जे पाषाण अर शस्त्र उन चलाए सो या परि फूल होय आय परे अर वहां एक और वृत्तांत भया एक राजा अतिवल विद्याधर ताकै रानी चित्रसेना तासूं एक दुष्ट सेवक अनुरक्त हुता सो राजानैं वा सेवककूं मारिकरि अग्निमें फूक्या सो धूमवेग श्रीपालकूं वा अग्निमैं डारि करि आय गया अर श्रीपालकी महौषधीकी शक्तितैं वह अग्नि शीतल होय गई, अर वह सेवक दुराचारी रानीसूं अनाचार करनहारा जो राजानैं मारि बाल्या हुता सो वाकी स्त्री अग्निकूं शीतल जानि वा अग्निमैं पैसि गई अर जीवती निकसी अर लोकनिमैं हेला मारि कहती भई जो मेरा धनी निरपराध हुता या पापी राजानैं वृथा मारचा मैं धीज लेय निरपराध होय निकसी हूं, श्रीपालनैं ए स्त्रीके चरित्र देखे सो देखिकरि अति अचिरजकूं प्राप्त भया अर मनमैं विचारी जो स्त्रीनिका कपटमई बगतर इंद्रके वज्रहू करि अभेद्य है इंद्रहू भेदि न सकै इह विचार करता तहां तिष्ठै था सो चंद्रपुरका राजा विमलसेन ताकी पुत्री कमलावती कामग्रह करि पीडित सो विकार कोऊ न जानैं लोग जानैं याहि कोऊ व्याधि है सो समूह भेला होय रह्या था श्रीपाल वहां गया वह याहि देखतैंही नीरोग होय गई राजानैं आगैं निमित्तज्ञानीकूं पूछ्या हुता जो मेरी पुत्रीका वर कौन होयगा ? तब वानैं कही थी जाके देखतैंही कन्या निरोग होय सो कन्याका वर है सो राजा इह आदेश सत्य जानि तुष्टमान होय कन्या श्रीपालकूं देना विचारचा सो श्रीपाल न इच्छै तब राजा जानी इह कुमार बंधुवर्गनिसूं दूर है तातैं उदास है कुटुंबके समीप जाय तौ प्रसन्न होय परणै तब वह राजा अपने पुत्र वरसेनकूं आज्ञा करता भया जो तू याहि याके कुटुंबके समीप यत्नतैं लेजाउ ॥१०४–११७॥ सो पिताकी आज्ञातैं याकूं लेजाय था सो विमलपुरके बाहर श्रीपाल तृषातुर भया तब वरसेन याहि पूछि करि जल लेबेकूं गया ताही समैं कूबडीका रूप करि सुखावती आई सो विद्यामई फूलनिकी मालाका सपरस कराय श्रीपालकी तृषा हरी अर श्रीपालकूं विद्याकरि कन्याके रूप कीया सो कन्या अद्भुत बनी, ताके अर्थि धूमवेग पिप्पलाका अभिलाषी अर हरिवर मदनावतीका अभिलाषी ए दोऊ परममित्र हुते सो या कन्याकै

अर्थि परस्पर द्वेषरूप भए अर युद्ध करने लगे। व कहैं मैं बरूं व कहै मैं बरूं तब उनके बंधुजन हुते तिनि उनकूं मनै कीए जो स्त्रीके अर्थि वृथा युद्ध क्यौं करौ हौ, यह कन्या जाहि इच्छै सोई याका वर। तब वे बंधुजनके कहेतैं वैरतैं रहित भए। इनि स्त्रीनिके निमित्त कौनकी प्रीति भंग न होय? वैरका कारण ए वनिता ही हैं॥ १२२॥ या कन्यानैं वे दोऊ ही न इच्छे तब विलखे वदन होय परैं गए अर श्रीपालकूं कन्याके आकारही सुखावती ले गई, महासुंदर इनिकी नियोगिनी सुकांता, रतिकांता, कांतवती ए सब भेलीही थीं तहां ले जायकरि पूर्वरूप प्रगट कीया तब देखि करि कैइक तौ लज्जारूप होय गई अर कैइक रागभावकूं प्राप्त भई इनि स्त्रीनिके नानारूप भाव हैं काहूके रागकी तीव्रता है अर काहूकै लज्जाकी मुख्यता है तहां श्रीपाल जुदी सेज परि सूते प्रभातही सुखावती यत्नसूं उठायकरि ले चाली तब श्रीपाल आंख उघारि कही—तू मोहि इहां अकेला छांडि कहां गई तब वानैं कही मै कहूंभी न गई सदा तिहारे समीपही हूं, इहां तुमकूं स्त्रीरत्ननिका लाभ है ए सब तिहारी नियोगिनी अनुरागकी भरी हैं इहां तुमकूं भय नाहीं तातैं तिहारा रूप पहली छिपाया था बहुरि प्रगट कीया है अर मैं इनिकूं तिहारी जानि क्षणमात्र इतउत भई मैं तुमकौं छोडि कहां जाऊं? तुमहीपै आई या भांति वानैं कही तब वाके वचन सुनि हर्षकूं प्राप्त होय विजयार्द्ध गिरिविषैं आए तहां दक्षिणश्रेणीविषैं एक गजपुर नामा नगर तहां एक महागजेंद्र थंभकूं उपारि करि उन्मत्त भया हुता सो काहूकै वशि नाहीं ताहि श्रीपालनैं हाथी वशि करिवेकी बत्तीस क्रीडा ग्रंथनिमैं कही हैं तिनि करि वश कीया॥ १२३—१२९॥ बहुरि सूर्यके उदय होतैं नगरके लोग हाथीके जीतिबेतैं श्रीपालका आगम जानि संतुष्ट भए अर ध्वजा खडी करि सन्मुख आये पुण्यके प्रेरे श्रीपालका अति आदर करते भए बहुरि गजपुरतैं गगनके मार्ग गमनकरि श्रीपाल हरिपुर गए तहां एक तुरंग प्रदक्षिणा देइ इनिकै निकट आया सो या पुरके लोगनिहू इनिकूं सर्वोत्तम जानि पूजा करी बहुरि तहांहूतैं निकसि करि अपनी इच्छा थकी चले जाते थे सो च्यारि देशनिकै मध्य एक सीमा नामा पर्वत

तहां अनेक लोक भेले होय रहे थे, एक खड्गकूं म्यानतैं काढै सो काहूतैं न निकसी सब असमर्थ होय गये तब श्रीपाल जायकरि लीलामात्रमैं खड्ग काढा अर एक सूखा वांसनिका बीडा हुता तापरि चलाई सो सब कटि गए यह वृत्तान्त लोक देखि करि बहुत हर्षित भए अर इनिका अति आदर कीया अर वाही सीमा पर्वतपरि एक गूंगा आय श्रीपालसूं प्रणाम करि जय जयकार शब्दपूर्वक वचन उचारता भया, अर एक अंगुलीरहित पुरुष श्रीपालके निकट आया सो अंगुली पूर्ण होय गई हाथ जोडि नमस्कार करता भया, अर ताही गिर परि एक पुरुष वज्रमणि जो हीरा तिनिकूं भस्म करै था सो याकै सिद्ध न होय था सो श्रीपालके आगमनकरि याके सिद्ध भया तब वह पुरुष श्रीपालके निकट आइ अति विनय करि नमस्कार करता भया। पहली जो खड्गका स्वामी कह्या जाकी खड्ग आप निकासी अर सूकें वांसनिके वीडेपरि चलाई सो पुरुष विजयपुरनामा नगरविषैं उपज्यो है अर ए श्रीपाल याही जन्ममैं चक्रवर्तिपद धारैगा सो इह इनिका सेनापति रत्न होनहारा है ॥ १३०-४० ॥ अर विजयपुर नगरका राजा वरकीर्ति ताकै रानी कीर्तिमती ताकै पुत्रीके निमित्त निमित्तज्ञानीकूं राजा पूछा हुता जो कन्याका वर कौन होयगा? तब वानैं कही थी जो सीमाचलपरि म्यानतैं खड्ग काढैगा सो होयगा, अर वह गूंगा जो श्रीपालकूं देखि बोलने लग्या श्रेयपुरका वासी सो श्रीपाल चक्रवर्तिकै प्रोहित रत्न होयगा, अर श्रेयपुरका राजा शिवसेन ताकै रानी वीतशोका ताकी पुत्री कमललोचना सो आगैं निमित्तज्ञानीकी इह आज्ञा हुती जाके देखैं गूंगा बोलै सो कन्याका पति होयगा, अर वह अंगुलीरहित शिल्पपुरका वासी सो श्रीपाल चक्रवर्तिकै सिलावटरत्न होयगा अर शिल्पपुरका राजा नरपति ताकी पुत्री रतिविमला सो आगैं निमित्तज्ञानीकी इह आज्ञा हुती जाके देखिबेतैं अंगुलीरहितकी अंगुली नीकी होय सो महाभाग कन्याका वर होयगा, अर वज्रमणिका पाक करणहारा श्रीपाल चक्रवर्तिकै प्रधान रत्न होयगा सो धान्यपुरका वासी तहांका राजा विशाल ताकी पुत्री विमलसेना सो आगैं निमित्तज्ञानी इह कही हुती जाके देखैं वज्रमणिका पाक सिद्ध होय सो कन्याका

वर होयगा सो ए सब कार्य श्रीपालके देखें भए । एते राजानिके मनुष्य वहां परीक्षाकूं हुते सो सब श्रीपालकूं देखि याकी खबर पौंचायबेकूं अपने स्वामिनिके निकट गए अर सुखावती श्रीपालकूं आकाशके मार्ग ले चाली, सो आकाशमार्गविषैं धूमवेग आय पहुंच्या, खड्गका धारक खेटनामा आयुधकरि युक्त सो श्रीपालकूं देखि महाभयंकर शब्दकरि तर्जना करता मार्ग रोकिकरि तिष्ठ्या तब प्रमदावनका निवासी देव विद्याधरका स्वरूप करि सुखावतीपै आया अर सुखावतीसूं कही जो तू निर्भय होयकरि या नीच विद्याधरसूं युद्धकरि जीति ॥ १४१-५१ ॥ तब सुखावती महाशूरवीरता युक्त धूमवेगसूं रणभूमिविषैं चिरकाल युद्धकरि अपनी विद्याके प्रभावथकी धूमवेगकूं दाबती भई अर श्रीपाल निकटही एक पर्वत है ताकी शिला परि जाय प्राप्त भए तहां इनिकै पूर्वभवकी माता देवश्री यक्षणी देवी आय इनिकूं हाथसूं सपरसती भई अर कहती भई जो तू खेद तजि या द्रहविषैं प्रवेश करि तब यक्षिणीके वचन सुनि विश्वास मानि द्रहमैं प्रवेशकरि एक थंभके ऊपरि शिला है तहां रात्रिकूं रहे, णमोकारमंत्रका स्मरण करतेसंते रात्रि व्यतीत करी अर प्रभातही द्रहकी उत्तरदिशाविषैं जिनेंद्रका प्रतिबिंब देख्या सो देखि करि अति हर्षित होय अष्ट द्रव्यसूं पूजा करी अर बारंबार नमस्कार कीया अर वा यक्षिणीके उपदेशतैं द्रहविषैं एक सहस्रदल कमल ताहि चक्ररूप देख्या अर एक काछिवा ताहि छत्ररूप देख्या अर एक हजार फणका सर्प ताहि दंडरत्नरूप देख्या अर एक मैंडका ताहि चूडामणिरत्नरूप देख्या अर एक वक्र जातिका जलचर ताहि चर्मरत्नरूप देख्या अर एक लाल वीछी ताहि काकिणी रत्नरूप देख्या या भांति वह पुण्यात्मा यक्षणीके उपदेशतैं द्रहविषैं इनि वस्तुनिकूं रत्नरूप देखता भया तब हर्षितचित्त होय छत्रकूं उठायकरि दंडकूं धार्‍या अर वा यक्षिणीनैं दैदीप्यमान रत्नमई पादिकानिकी जोडी दई सो पहरिकरि सकल द्रह देख्या सर्व रत्नमई दिव्य आभूषण तिनिकरि शोभित तहांतैं निकस्या ताही समैं सुखावती धूमवेगसूं अति युद्धकरि ताहि भगाय द्वितीयाके चंद्रमाकी द्युतिसमान वृद्धरूपिणी श्रीपालके निकटि आई चंद्रकलासमान ज्योतिरूप खड्ग ताकरि शोभित ॥१५२-

१६० ॥ सो सुखावतीसहित श्रीपाल सुरगिरिनामा पर्वत जापर पहली आए थे अशनिवेगतें देवतानें छुडाए थे तहां आय गुणपालकेवली इनका पिता ताके निकट आए। तहां मन वचन कायकी शुद्धताकरि केवलीकी अति स्तुति करी अर अपने माता कुबेरश्री अर भाई वसुपाल तिनिके निकट आय बैठे। माता और भाईने असीस दई ए उनके निकट सुखावतीके गुण वर्णन करते भए जो याके प्रभावकरि तिहारे निकट कुशल क्षेमसूं आया हूं माता और भ्रातासूं सुखावतीकी अति प्रशंसा करी यह सत्पुरुषनिका सहजसुभाव ही है जो आपसूं उपकार करे तिनिके गुण कबहू न भूलै। वसुपाल श्रीपालका बडा भाई ताके प्रश्नतें केवली भगवानकी वाणी खिरी जो यह श्रीपाल सात दिन विद्याधरनिकी श्रेणींमें तिष्ठकरि अनेक लाभनिकूं प्राप्त होय पुंडरीकिणीपुरीविषैं प्रवेश करैगा सो असी ही भई जो पुन्याधिकारी हैं पूर्वभवविषैं पुन्यका संचय कीया है तिनिके आपदाहू संपदारूप होय परणवै है। बडा भाई वसुपाल ताका वारिषेणा आदि राजकन्या तिनिसहित बडा विभूतिसूं विवाह होता भया। अर श्रीपालका जयावती सुखावती सुखवि भोगवती विद्युतवेगा आदि अति प्यारी चौरासी कन्या तिनिसहित विवाह होता भया। जयावती वह जो वडवृक्षके नीचै आप नृत्य देखि अर कही थी जो यह पुरुषका रूप धरि नाचै है सो स्त्री अर स्त्रीका स्वरूप धरि नाचै है सो पुरुष। याकी जायगा स्त्री होती तो नाच अति सोहता तब एक विद्याधरीने कही जो इह पुरुषका भेष धरि नाचै है सो मेरी पुत्री है अर स्त्रीका भेष धरि नाचै है सो वासवनामा नट है अर हम आगै सुणीथी जो नट नटीका भेद बतावै सो चक्रवर्ती होयगा अर जयावतीकूं परणैगा सो वह जयावती परणी। अर और हू वे भोगवती सुखावती विद्युतवेगा आदि सब परणीं। वसुपाल श्रीपाल दोऊ भाई अपनी प्रभाकरि दसूंदिशाविषैं उद्योत करणहारे चांद सूर्यकी नाईं पृथ्वीमंडलकूं पालते चिरकाल सुख भोगते भये। श्रीपालके जयावती रानी ताके महागुणवान गुणपालनामा पुत्र भया अर श्रीपालके आयुधशालाविषैं चक्ररत्न उपज्या। सो श्रीपाल चक्रवर्ती संबंधी उत्कृष्ट भोग भोगवता भया लक्ष्मीकरि मंडित है शरीर

जाका सो इंद्रकी लीलाकूं उलंघता भया। अथानंतर रानी जयावतीका भाई जयावर्मा ताकी पुत्री जयसेना सो कांतिकी सेना नाईं सब स्त्रीनिके रूपको जीतनहारी ॥ १६३-१७४ ॥ अर राजा मनोवेग, अशनिवर, शिवघोष अशनिवेग हरिकेतु अर और हू विद्याधरनिके नायक वडे वडे राजा तिनकी पुत्री सो जयसेनाके लार सवनिका पालक वडा पुत्र जो गुणपालक तासूं अतिहर्षसहित विवाह भया। श्रीपाल चक्रवर्ती अतिसुखसूं छह खंडका राज्य भोगवै। अथानंतर शीघ्रही है शिवपद जाके ऐसा गुणपाल सो काललब्धिका प्रेर्‍या एक दिन आकाशकी उर देखता संता अकस्मात् अंधकार देख्या चंद्रग्रहणकूं देखिकरि गुणपाल विचारी जो या संसारविषैं चंद्रहूकी यह अवस्था है तो और हीण पुन्यनिकी कहा गति। या भांति उदार है बुद्धि जाकी ऐसा गुणपाल कुमार सो विरक्त होय करि उपज्या है जातिस्मरण जाकूं सो अपने पूर्वभवका संबंध प्रत्यक्षकी नाईं देखता भया। सो पूर्वभवका संबंध कहा? पुष्करार्द्धद्वीपके पश्चिमविदेह तहां पद्मकनामा देश ताविषैं कांतपुरनामा नगर तहां राजा कनकरथ ताके रानी कनकप्रभा ताकै कनकप्रभनामा पुत्र सो अपनी प्रभाकरि जीत्या है सूर्य जानें ताकै रानी विद्युत्प्रभा अतिवल्लभा सो वनविषैं सर्प डसी तब वाके वियोगकरि विरक्त होय वा कनकप्रभनें समाधिगुप्तनामा मुनिके समीप संयम आदर्‍या अर ताके माता पिता तथा कुटुंवके तासूं अतिस्नेहरूप हुते सो वेऊ वैराग्य धारते भये। गुणपाल विचारै है वह कनकप्रभ मैं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावना भाय जयंतनामा विमान तहां अहमिंद्र भया। तहांतैं चयकरि मैं श्रीपाल चक्रवर्तीका पुत्र गुणपाल भया यह विचार कीया अर लौकान्तिक देव स्तुति करिवे आये तिनिमें उपजे हैं राजा आदित्यगति हिरण्यवर्माका पिता अर राजा वायुरथ प्रभावतीका पिता अर समुद्रदत्तसेठ प्रियदत्ताका पिता अर श्रेष्ठी कुवेरमित्र अर कुवेरकांतका पिता ए लौकान्तिक देव नए हुते सो सब लौकान्तिक आये तिनिमें एहू आये महास्तुतिकरि अपने अपने स्थानक गये भगवान गुणपाल तीन कल्याणके धारक हैं महाविदेह क्षेत्रविषैं तीर्थंकरोंके

कल्याणक पांच भी होंय तीन भी होंय अर केवल निर्वाण दोय भी होंय अर भरत ऐरावत क्षेत्रविषैं कल्याणक पांच ही होंय इह नियम है सो गुणपाल मोहपाशकूं काटि महातपकरि घातिया कर्मके नाशतें केवली भए ॥ ७५–८७ ॥ अर श्रीपाल चक्रवर्तीका छोटा पुत्र जसपाल जाकी माता सुखावती सो गुणपालके निकट संयम धारि पहिला गणधर भया। अथानंतर राजानिका राजा श्रीपाल सो महाविभूतिसहित गुणपाल स्वामीके दर्शन गया पूजाकरि धर्म श्रवण कीया। धर्मके दो भेद हैं एक यतिका एक श्रावकका सो श्रावक धर्म तो अणुव्रतरूप अर यतिका धर्म महाव्रतरूप है सो धर्मका मर्म पाय चक्रेश्वर महाविनयरूप होय जिनेश्वरसूं अपने पूर्वभवका संबंध पूछता भया तब भगवान गुणपाल याके पूर्वभवकी कथा कही सो कथा सुलोचना जयकुमारके पूछेंतें कहती भई। दुष्टतारहित सुष्ठताकरि मंडित मिष्ट हैं वचन जाके सो कहै है—विदेह क्षेत्रविषैं पुंडरीकिणी पुरी तहां राजा जसपाल अर नगरविषैं सर्वसमृद्धनामा सेठ ताकै धनश्री नामा स्त्री धनकी वढावनहारी सो वह धनंजय सेठकी छोटी वहिन ताकै सर्वदयित नामा पुत्र ताकै दोय स्त्री एक तौ सागरसेनकी पुत्री जयसेना अर दूजी धनंजय मामाकी पुत्री जयदत्ता सो ए दोय सर्वदयितके चित्तकूं प्रिय अर सर्वदयितकी वहिन सर्वदयिता अर सर्वदयिताका पिता सर्वसमुद्र ताकी छोटी बहिन देवश्री सागरसेनकूं परिणाई, ताके दोय पुत्र, एक तौ सागरदत्त दूजा समुद्रदत्त अर तिनि दोऊनितैं छोटी सागरदत्ता वहन अर सागरसेन सो वह श्रवणदत्तकी छोटी वहन सागरसेना सर्वसमृद्ध परण्यां सो सर्वदयितकी छोटी माता ताकै वैश्रवणदत्त पुत्र अर वैश्रवणदत्ता पुत्री सो वैश्रवणदत्त सर्वदयित माईका पुत्र जाके परिणाम कछुइक दुष्ट अर वैश्रवणदत्ता तौ सागरदत्तकूं परिणाई अर सागरदत्ता वैश्रवणदत्त परण्यां अर सर्वदयिता समुद्रदत्तकूं परिणाई । ए दोऊ सागरसेनके पुत्र सर्वदयितके साले अर दोऊ ही वहणेऊ, एक तौ मामाकी पुत्री परण्यां अर एक मांईकी पुत्री परण्यां । समुद्रदत्तकै स्त्री सर्वदयिता सो सर्वदयितकी सगी वहन अर सागरदत्तकै स्त्री वैश्रवणदत्ता सो सर्वदयितकी छोटी

माताकी पुत्री । या भांति इनिके संबंध सो सवनिका सुखसू काल व्यतीत होय । एकदिन धनजय नामा सेठ, सर्वदयितका दूजा सुसरा जयदत्ताका पिता सो द्वीपांतरसूं बहुत धन कमाय ल्याया। भले भले रत्न राजाकी भेटकरि मिल्या अर द्वीपांतरकी वस्तु दई सो राजा अतिसन्मान कीया अर रत्ननिका बहुत द्रव्य दीया सो धनंजयका सत्कार देखि सबही वणिक धन कमायवेके उद्यमी भए, द्वीपांतर जायबेकूं गांवके नजीक डेरा करते भए सो जहां डेरा कीए तहांथकी समुद्रदत्त, सागरसेनका पुत्र जाकी माता देवश्री, सो रात्रिकूं अपनी स्त्री जो सर्वदयिता ताके ढिंग आया सो काहूनें न जान्या रातिही आया रातिही गया, सर्वदयिताकूं गर्भ रह्या तब सागरदत्त समुद्रदत्तका बडा भाई, तानें छोटे भाईकी बहूकूं गर्भवती जानि झूंठा कलंक लगाया जो यह पापिनी दुराचारिणी है । सो जेठकूं सर्वदयितानें घनाही कह्या—जो तिहारा भाई, जादिन सब लोग गांव बाहरि गए तादिनही डेरानितें घरि आया था। यथार्थ कही परंतु सागरदत्त न मानी विना समझे पतिव्रताकूं घरतें निकासि दई । तब यह अपने भाई सर्वदयितकैं आई सो वाहूनें न राखी । कही—तू दुराचारिणी है तातें हमारै मति आवै सो इनहू आवा न दई । तब सर्वदयिता कोई एक घर लेयकरि तहां रही, नवमे महीने पुत्र भया सो पुत्र महापुण्याधिकारी, ताका जन्म सर्वदयित मामा सुनिकरि जानी जो इह मेरी बहिनके दुराचारका भया है सो याकरि हमारा अपजस होयगा तब एक चाकरकूं कह्या—जो तू बालककूं गंभीर बनमैं डारि आवै, सो बालककूं लेगया, तहां श्मशानभूमिविषैं विद्या साधिवेकूं आया हुता भोगपुरका राजा जयधामनामा विद्याधर ताकै स्त्री जयभामा तिनिकूं वह बालक सर्वदयितके सेवकनैं सौंप्या तिनि बालकका जितशत्रु नाम धऱ्या अपना निज पुत्र जानि बडा कीया । अर पुत्रके वियोगकरि सर्वदयिता अति खेदखिन्न भई, स्त्रीवेदकूं निंदती मरिकरि पुरुष जन्म पावती भई । कैयक दिननिमैं वणिकनिका समूह देशांतरतैं आया सो उनकी लार समुद्रदत्तहू आया, तानैं अपनी स्त्रीका वृत्तांत सुन्या—जो निरपराध मेरे बडे भाईनैं काढी, अर मेरा साला सर्वदयित

ताहूनें न राखी। अर सर्वदयितका बडा भाई दूजी माका पुत्र वैश्रवणदत्त तानें यासूं इह दोष कीया जो बडा भाई मैं, सो मोहि होतेसंते छोटा भाई सर्वदयित सेठपद भोगवै इह कहांकी बात? सो सर्वदयितसूं वैश्रवणदत्त तौ सेठपदका दोष राखै अर सागरदत्त, वैश्रवणदत्ताका धनी, वैश्रवणदत्तका सगा साला सो ताकै लेखे तो कोप करै ही, अर दूजा दोष इह पकऱ्या जो याकी सगी बहिन सर्वदयिता मेरा छोटा भाई समुद्रदत्त परण्या सो मैं तो विगारि विचारे भाईकी बहूकूं काढी हुती परि यानें क्यों न राखी? यानैं मोहि मेरा भाईसूं तुडाया सो मेरा बडा दोषी है। अर समुद्रदत्तनैं सर्वदयितसूं पूरा दोष बांध्या जो इह काहेका मेरा साला अपनी बहिनकूं यानै न राखी। सो सर्वदयितसूं ए सब दोष राखै, देखि न सकै सो ए मत्सर भाव जीवनिकूं काहूविषै न करना, जगतसूं उदास होय दुर्धर तपविषै प्रवर्तैं सो योग्य है। एकदिन श्रेष्ठी सर्वदायित जितशत्रु नामा अपना भानेज, जो विद्याधरकै पल्या हुता ताहि देखि करि पूछता भया जो तू कौन कारण समुद्रदत्तकासा रूप है। सो वानै पहिली सुन्या हुता सो सब वृत्तांत कह्या जो मोहि होतैं ही वनविषै डाऱ्या सो विद्याधर पाल्या मैं पुत्र समुद्रदत्तका हूं। ए समाचार सुनि सेठ सर्वदयित जानी यह सत्यार्थ मेरा भाणिजा है। यामैं संदेह नाहीं याके हाथविषैं तिष्ठती मुद्रिका देखि निश्चय कीया अर अपनी विचारशून्यता बहुत निंदी अर सागरदत्तकी बहुत भूलि जानि अपना सकल धन अर अपनी पुत्री सर्वश्री अर अपनी श्रेष्ठी पदवी भाणिजेकूं देइ करि सर्वदयित विरक्त भया अर जयधामा विद्याधर अर जयभामा ताकी स्त्री जिनकै बालक पल्या सो वे दोन्यूं, सर्वदयितकी दोऊ स्त्री—जयसेना अर जयदत्ता अर वैश्रवणदत्तकी बहू सागरदत्ता अर वैश्रवणदत्तकी सगी बहिन वैश्रवणदत्ता सागरदत्तकी स्त्री अर और हू कैइक, उपज्या है आतमबोध जिनिकूं तिनिसहित सर्वदयित श्रेष्ठी संयम अंगीकार करता भया। रतिवरनामा मुनि तिनिके चरणनिका सरण लेइ करि ए सर्व ही चिरकाल संयम पालते भए। समाधिमरण करि ए सर्व ही स्वर्गलोकविषै उपजे। सो गुणपाल तीर्थंकर श्रीपाल चक्रवर्तीसूं कहे हैं—स्वर्गतैं चयकरि जयधामा विद्याधर तो तेरा बडा भाई वसुपाल भया अर

जयधामाकी स्त्री जयभामा या भवविषै तेरे जयावती नाम पटरानी भई। अर सर्वदयितके भवविषै तेरे दोय स्त्री हुतीं तिनिमैं जयसेनाका जीव तौ पिप्पली भई अर जयदत्ताका जीव मदनावती भई ॥२२५॥ अर वैश्रवणदत्ता सर्वदयितकी पुत्री सागरदत्तकी स्त्री, सो सकलकलाकी धारक विद्युद्वेगा भई अर वैश्रवणदत्तकी स्त्री सागरदत्ता सो स्वर्गतैं चयकरि सुखावती भई। अर सागरदत्ता समुद्रदत्तका वडा भाई सो पुरूरव विद्याधरका पुत्र हरिवर भया अर सर्वदयितका वहणेऊ समुद्रदत्त सो ज्वलनवेग विद्याधरका पुत्र धूमवेग भया विद्याकरि धर्या है पुरुषार्थ जानै ॥ २६–२९ ॥ अर सर्वदयितकी मांईका पुत्र, वैश्रवणदत्त सो अशनिवेग विद्याधर भया अर वह सर्वदयित श्रेष्ठी तू श्रीपाल चक्रवर्ती भया। तैं विनाविचारे भाणजेकूं वनविषैं नखाया हुता ता अपराधतैं कुटुंबका वियोग भया अर सागरदत्त समुद्रदत्त वैश्रवणदत्त ए तीनू पूर्वभवविषैं भी तोसूं द्वेष रांखते सो अबहू हरिवेग धूमवेग अशनिवेग द्वेष राखै है अर जयधामादिक पूर्वै तेरे मित्र हुते ते अबहू वसुपालादि परमहितू हैं, अर तैं बालककूं न मार्‍या वाके प्राण बचाए ताकरि माता पितासूं मिलाप भया अर सर्वदयितके भवमैं तप आदर्‍या ताके फलतैं सकल पृथ्वीका राजा चक्रवर्ती भया अर वह अब सर्वपरिग्रहका त्यागकरि शीघ्रही मोक्ष पावैगा ॥ २९–३२ ॥ या भांति तीर्थेश्वरके वचन सुनिकरि ते सबही परस्पर द्वेषतैं रहित भए, यह कथा सुनि सकलकूं विस्मय उपज्या। अर चक्रवर्ती महाभाग धन्य है जन्म जाका सो जन्म जरा मृत्यु ए अनादिकालके रोग सदा जीवके लार लागे आए हैं तिनिके हणिवेकी बुद्धिकरि धर्मरूप अमृतकूं पीवता भया। श्रीपाल चक्रवर्ती विचारै है–धिकार होहु या छहखंड पृथ्वीके राजकूं, कुम्हार समान चक्रवर्तीका जीतव्य है, जैसैं कुमार चक्रकूं फिराय माटीके वासन बनाय आजीविका करै है, तैसैं चक्री चक्रकूं भ्रमाय माटी वा पृथ्वीसे उत्पन्न रत्न फलकी प्राप्तितैं आजीविका करै है। इह आयु है सो वायुके वेगसमान चंचल है, अर इह इनिभोगनिका संगम क्षणभंगुर है अर इह शरीर पापका पात्र है अर विभूति विजुरीके चमत्कार समान है अर यह यौवन मार्गतैं भ्रष्ट करनेका

कारण गहन वन समान है, जो विषयविषैं रति है सो अरतिकूं उपजावै है जोलग या जीवकी बुद्धि विपर्यय है तोलग याहि ए विषय सुखरूप भासै हैं अर जब बुद्धि निर्मल होय अर मिथ्यात्व जाता रहै तब ए विषय दुखरूप ही भासैं इनिसिवाय और तजिवे योग्य कौंन ? इह चित्तरूप विषवृक्ष ताकी वृद्धि अभिलाषारूप विषके अंकुरेंनिही करि होय है तौ संभोगरूप वृक्षके फल दुखरूप क्यों न होंहि अर दशांगभोग मैं चिरकाल यथेष्ट भोगए तथापि रंचमात्रहू मेरे तृष्णाकी घात करणहारी तृप्ति न भई। दशांगयोगके नाम रत्न निधि १ रानी २ नगर ३ शय्या ४ आसन ५ सेना ६ नाट्य ७ भाजन ८ भोजन ९ वाहन १० ए समस्त इष्ट वस्तु मनवांछित होहु तथापि इनितैं अल्पमात्र हू तृप्ति नाहीं। स्त्रीनितैं सुखकी प्राप्ति मानना मिथ्या है, जो स्त्रीके सेवनकूं सुख मानिए तो और दुःख कौन ? स्त्रीसेवन ही महादुःख है। इह विषयसुख कल्पनामात्र, विषयका सेवन सोही दीनता अर दीनता सोही दुःख। तातैं यह कल्पनाजाल तजिकरि सुखी होंहु। इह आत्मा परम पुरुष है सो मैं परम धामका उपाय करूं ॥ ३३–४२ ॥ या भांति श्रीपाल चक्रवर्ती पदकी संपदाकी एकै लार तजिवेकी है इच्छा जाकी सो वैराग्यविषै बुद्धि विस्तारता भया। रानी सुखावतीका पुत्र जो नरपाल ताहि अभिषेक करि आपके उतुंग सिंहासनपर बैठाया, ताहि पृथ्वीका राज्य दीया अर जयावती आदि अनेक रानी तिनिसहित अर वसुपाल भाई आदि अनेक राजानिसहित श्रीपाल चक्रवर्ती संयम अंगीकार करता भया सो वाह्य अभ्यंतर बारह प्रकार विधिपूर्वक तपकरि क्षपक श्रेणी चढि मोहरूप वैरीकूं जीतता भया, सकल कषायरहित यथाख्यात नामा चारित्र ताहि पायकरि शुक्लध्यानका दूजा पाया एकत्ववितर्क अविचार ताहि ध्यायकरि ज्ञानावरणी दर्शनावरणी अंतराय तिनिकूं हतिकरि पाई है नवकेवल लब्धि जानैं सो तेरमा गुणस्थानक सयोग स्थान उलंघिकरि चौदमा अयोग ताहि प्राप्त भया, दूर कीए हैं सकल कर्म जानैं। नव लब्धिके नाम—क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक चारित्र, अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग, अनंत उपभोग, अनंतवीर्य, औदारिक तैजस कार्मण इनि तीनौं

शरीरनिके अभावतैं प्रगट भया है अनंतगुणका समूह जाकै, जाका अंत नाहीं ऐसा अनंत उत्तमसुख निर्वाण पदका श्रीपाल पाया। पहिली तौ च्यारि घातिया कर्मनिका क्षयकरि अरहंत भए बहुरि च्यारि अघातिया कर्मनिहूका नाशकरि सिद्ध परमेष्ठी भए, औदयिकादि पंचभावनिके तिरेपन भाव तिनिमैं भाव पांच रहे क्षायिक सम्यक्त्व सोई अनंत सुख अर केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य ये च्यारि तौ नव लब्धिमैं क्षायिकके रहे अर पारणामिकके तीन तिनिमैं एक जीवत्व रह्या, ये पांच महाभाव रहे। अर सांसारिक सब भाव गए अर श्रीपाल चक्रवर्तीकी रानी नानाप्रकार तपकरि स्वर्गलोकविषै देव भए, अपने अपने तपके अनुसारि स्वर्गलोकके सुख भोगवते भए॥ २४३–२५०॥ सुलोचना जयकुमारकूं कहै है-जो आपां दोऊ ही इह श्रीपालका चरित्र सुनि ताहि नमस्कार करि स्वर्गविषै अपने स्थानक गए, आयुपर्यंत स्वर्गका सुख भोगि, बाकी रह्या पुण्य ताके उदयतैं इहां आय उपजे। कनकप्रभ देवका जीव तौ तुम राजा सोमप्रभका पुत्र जयकुमार भए अर कनकप्रभा देवीका जीव, मैं राजा अकंपनकी पुत्री सुलोचना भई। इह संपूर्ण कथा सुलोचना कही सो सुनिकरि जयकुमार अपनी स्त्रीकी बुद्धि अत्यंत जानि अतिहर्षित भया। तासमै सभाके लोग सब ही सुलोचनाके वचनकी प्रतीति करते भए, भले जीवनिके वचननिकी प्रतीति कौन न करै? जो दुष्ट जीव होय सो न करै॥ २५१–५३॥ या भांति वे जयकुमार सुलोचना सारभूत राज्यके भोग सुखसूं निरंतर भोगवते भए, परस्पर अनुरागी है चित्त जिनिके सो हर्षसूं काल व्यतीत करते भए। या भवविषै पूर्वस्मरणतैं प्रज्ञप्ति आदि सकल विद्या दोऊनिकूं सिद्ध भई, बडी है राजलक्ष्मी जिनिके, दोऊ प्रीतिके भरे नानाप्रकार क्रीडा करि काल व्यतीत करते भए। प्रज्ञप्ति आदि विद्याके बलतैं सुलोचनासहित जयकुमार अढाई द्वीपविषै विहार करता भया, राज्यका भार तो विजयनामा छोटे भाईके सिर धऱ्या अर आप देवनिकी भांति नानाप्रकार क्रीडा करते अनेक देशनिमैं विहार करते भए। विमानका है वाहन जाकै ऐसा जयकुमार सो प्रियासहित यथेष्ट रमता भया, लवणो-

दधि कालोदधि समुद्रविषै अर जंबूद्वीप धातकीखंड पुष्करार्ध द्वीपविषै अर कुलाचलनिविषै तथा नदी सरोवरनिके तीर तथा नाना प्रकारके रमणीक वन तहां विहार करते भए ॥ ५४-५७ ॥ एक दिन कैलास पर्वतके वनविषै जयकुमार सुलोचनातैं किंचित् न्यारा होय गया, इंद्रकी सभाके मध्य, शीलकी प्रशंसा होय थी सो जयकुमार अर सुलोचनाकी सौधर्म इंद्र अति प्रशंसा करी–जो ऐसे शीलवान स्त्री पुरुष संसारमैं अल्प हैं। इह बात सुनिकरि पहिले स्वर्गके रविप्रभनामा विमानका रविप्रभनामा देव बडी ऋद्धि-का धारी, जानै जयकुमारके शीलकी परीक्षानिमित्त अपनी कांचनानामा देवी जयकुमारके निकट भेजी सो आयकरि तासूं बुद्धीसूं कहती भई–जो इह भरतक्षेत्रविषै विजयार्ध गिरि ताकी उत्तरश्रेणी ताविषै मनोहरनामा देश तहां रत्नपुरनामा नगर ताका राजा पिंगलगांधार ताकै रानी सुप्रभा सुखकी देनहारी ताकी मैं पुत्री, मेरा नाम विद्युत्प्रभा, सो अपनी इच्छाथकी भ्रमण करै थी सो महामेरुके नंदन वनविषै तुमकूं क्रीडा करते देखि अभिलाषवंती भई, तादिनतैं मेरे चित्तविषै तिहारी आकृति लिखिराखी है। तिहारे संगकी वांछा करती तिहारा ध्यान करती मैं दैवयोगतैं आजि अकेले या स्थानकविषै तुमकूं देखे सो कामवेग सहारिवेकूं असमर्थ हों ऐसा कहि अपने लारके लोक तिनिकूं न्यारे करि कामकरि विह्वल अपना अनुराग जयकुमारविषै प्रगट करती भई। विकाररूप हैं नेत्र जाके सो वाकी दुष्ट चेष्टा देखिकरि जयकुमार कहते भए–जो ऐसे पापके वचन मति कहै। मेरे तो तू बहन है, मैं मुनिराजके समीप दृढव्रत लीया है, परस्त्रीके अंगके संग मेरैं विषभक्षण समान हैं। जयकुमारने ऐसे वचन कहे तब वह पापिनी वृथा कोपकरि राक्षिसीका रूप धरि जयकुमारकूं उठाय ले चाली तासमैं पहुपनिकूं वीणती सुलोचना तानै देखिकरि वाकूं डरवडाई। तब वह शीलके प्रभावतैं भय मानि अदृश्य होइ गई, कांचना है नाम जाका सो देवी सीलवंती स्त्रीके प्रभावतैं बडी डरी सो सीलके प्रभावतैं कौन न डरै। तब वह देवी कांचना जाय करि जयकुमार सुलोचनाके शीलका माहात्म्य अपना पति जो रविप्रभनामा देव ताकौं कहती भई

तब वे दोऊ देव देवी गुण हैं प्रिय जिनिकूं सो अति आश्चर्यथकी जयकुमारके निकट आए अर अपना वृत्तांत कहिकरि कहते भए जो तुम दोऊ ही हमसूं क्षमा करो, महारत्ननिकरि इनिकी पूजाकरि देवदेवी स्वर्गलोककूं गए ॥ २५८–७२ ॥ अर जयकुमार सुलोचनासहित चिरकाल विहार करि अपने नगर आया, सुखसूं सारभूत भोग भोगवै ॥ ७३ ॥ अथानंतर एक दिन उपज्या है ज्ञान जाकूं जैसा मेघस्वर कहिए जयकुमार सो ऋषभदेवके दर्शन गया, वे आनंदके भाजन प्रभू तिनिकी बंदना करी, धर्मश्रवण करि कैइक धर्मके प्रश्नकरि उत्तर सुने अर आक्षेपिणी कहिए जिनमतका संग्रह करणहारी अर विक्षेपिणी कहिए पापके मार्गका निषेध करणहारी अर संवेगिनी कहिए धर्मकी रुचि बढावनहारी अर निर्वेदिनी कहिए वैराग्यकी उपजावनहारी च्यारि प्रकारकी कथा भगवानकी वाणीमैं सुनी, बंध मोक्ष अर यतिनिके आचारका स्वरूप सुन्या। तदनंतर कर्मनिके समूहसे रहित कल्याणको प्राप्त करनेकी इच्छासे शिवंकर महादेवीका पुत्र, प्राणीनिके समूहकूं प्रिय, जो अनंतवीर्यनामा कुमार, शत्रुनिकरि नाहीं निवाऱ्या जाय पराक्रम जाका, शस्त्रशास्त्रका वेत्ता कुमारकालहीतैं जाके शूरवीरपनैंका यश पृथ्वीविषैं विस्तरि रह्या है शत्रुनिका जीतनहारा है पराक्रम जाका, अर जाका दान सर्व आर्थिनिका तृप्ति करणहारा अर महा सत्यवादी जाका सत्यवचन स्वप्नविषैंहू च्युत न भया ताहि अभिषेकपूर्वक अपनी संपदा देय करि अविनाशीपदके पायबेकी है अभिलाषा जाकै जासमान और पद नाहीं समस्त व्याकुलतारहित ता पदके अर्थि तजे हैं समस्त कुटुंबादि जानैं अर जीती हैं पांच इंद्री अर छठा मन जानैं अर जीत्या है महामोह जानैं अर उपज्या है कल्याणका आश्रय जाकै सो जयकुमार अपने छोटे भाई विजय वैजयंत इत्यादि तिनिसहित अर औरहू अनेक राजा निश्चयसेती त्यागकी है बुद्धि जिनकी रागद्वेषादिकरि अदूषित तिनिसहित मुनिव्रतकूं उन्मुख भया अर रविकीर्ति, रविजय, अरिंदम, अरिंजय, सुजय, सुकांत, सप्तम अजितंजय, महाजय, अतिवीर्य, वरंजय, रविवीर्य तथा औरहू चक्रवर्तिके पुत्र तिनिसहित जयकुमार चरमशरीर विशुद्ध-

ताका भजनहारा संसारका त्यागी भया जे चक्रवर्तीके पुत्र यासहित वैरागी भए ते संसारतैं निवृत्त हैं चित्त जिनिके ॥ २१४–२८३ ॥ जयकुमार भरतेश्वरनैं सर्वेश्वरकूं सौंप्या अर कही–हे प्रभो ! इह तिहारे जिन-शासनके धारणका विशेष पात्र है, याहि दिगंबरी दीक्षा देयकरि कृतार्थ करहु तब देवाधिदेवकी आज्ञातैं या जयकुमारनैं परिग्रहका त्याग किया, पाया है शास्त्रके अर्थका संग्रह जानैं उत्कृष्ट संयमकूं पाय करि सिद्ध भई हैं सप्त ऋद्धि जाकूं, च्यारि ज्ञानरूप निर्मलज्योतिका धारक भया, हत्या है मनका तिमिर जानैं वह तिमिर अनादिकालका विस्तरि रह्या था सो तत्काल दूर कीया, श्रीभगवानके चौरासी गणधर तिनिमैं इकहत्तरिमा गणधर भया। अर सुलोचना पतिके वियोगतें उपज्या है दुर्निवार शोक जाकूं सो कल्पवृक्षतैं विछुरी कल्पवेलि तासमान शोभारहित होय गई। तब चक्रवर्तिकी सुभद्रा नामा रानीनैं संबोधिकरि उप-शांतताकूं प्राप्त करी तब ब्राह्मीके समीप दीक्षा धारि आर्जिका भई चिरकाल तप कीया होनहार है भवांतरविषैं मुक्ति जाकूं। सो महातप करि सुलोचना सोलहवें अच्युत स्वर्गके अनुत्तरनामा विमानविषैं बडी ऋद्धिका धारक देव भया। अर श्रीभगवान ऋषभदेव मोक्षमार्गके प्रगट करिबेकूं विहार करते भए तिनिके नानाप्रकारकी ऋद्धिकरि मंडित वृषभसेन आदि चौरासी गणधर होते भए अर सैंतालीससै पचास चौदह पूर्वके पाठी भए अर इकतालीससै पचास शिष्य मुनि भए अर नवहजार अवधिज्ञानी मुनि भए अर बीस हजार केवलज्ञानी भए अर वीस हजार छसै विक्रियाऋद्धिके धारक भए अर बारह हजार सातसै पचास मनःपर्ययज्ञानी मुनि भए अर बारह हजार साढे सातसौ ही वादित्व ऋद्धिके धारी मुनि भए जिनिसूं वाद-करि कोई जीति न सकै। ए सब मुनि भेले करिए तब चौरासी हजार चौरासी होंय अर ब्राह्मी अर्जिका आदि साढा तीन लाख आर्या भई संयमकी प्राप्ति सोई है संपदा जिनिकै। उत्तमजीवनिकरि पूज्य जे आर्यका तिनिकरि स्तुति करिवेयोग्य हैं नानाप्रकारके गुणनिका उदय जिनिका, ऐसे श्रीरिषभदेव दृढव्रतादि तीन लाख श्रावक तिनिकरि सेयवेयोग्य हैं अर सुव्रता आदि पांच लाख श्राविका तिनिकरि स्तुति करिवेयोग्य

अर भवनवासी व्यंतरिणी स्वर्गवासी असंख्यात देव देवी तिनिकरि पूजनीक हैं पांय जिनिके, अर चतुष्पद अनेक तिरजंच तिनकरि सेवनीक आदिनाथ चौंतीस अतिशयकरि लखिए है उदय जिनिका, सर्वोपाधिरहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य तिनिकरि मंडित, सत्यार्थ हैं नाम जिनिके अर देहकी सुंदरताकूं धरैं सप्त परमस्थानकरि शोभित, अष्ट प्रातिहार्यकरि मंडित, नष्ट कीए हैं च्यारि घातिया कर्म जिनि अर वृषादि एकहजार आठ नामकरि जपैं हैं योगीश्वर जिनिकूं ऐसे जिनेंद्रदेव भव्यजीवनिकूं कल्याणके कर्त्ता होहु ॥ अथानंतर भरतेश्वरने भगवानकी पूजाकरि धर्मका स्वरूप पूछ्या, कैसा है भरतेश्वर ? अपने वचनरूप किरणनिकरि प्रफुल्लित करी है भव्यजीवरूप कमलनिकी पंक्ति जानैं, सो अपने दोऊ हस्तकमल जोरिकरि प्रभुसूं धर्मका स्वरूप पूछता भया। तव भगवान धर्मका स्वरूप कह्या—जो कुगति थकी वचायकरि भव्यजीवनिकूं उच्चपदविषैं धारै सो धर्म। ता धर्मके च्यारि भेद हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर तप। ए च्यारि आराधना सोई धर्म है। जीवादि सप्त तत्त्वनिका श्रद्धान गुरूपदेशतैं होय अथवा स्वतःस्वभाव होय ताका नाम सम्यग्दर्शन कहिए। सो सम्यक्दर्शन शंकादि दोषनिकरि रहित अर उपशम वेदक क्षायिक इनि तीन भेदनिकरि युक्त जीवादि सप्त तत्त्वनिके श्रद्धानतैं होय है जा श्रद्धानमैं संशय विमोह विभ्रम नाहीं। अर इनि जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ परिज्ञान सो सम्यक्ज्ञान कहिए, अर जाकरि कर्मनिका आश्रव न होय सो सम्यक्चारित्र कहिए अथवा संयम कहिए अर जाकरि कर्मनिकी निर्जरा होय सो तप कहिए। ए च्यारि आराधना जो कषायनिकरि मिश्रित होंय तो स्वर्गका कारण है, अर कषायरहित होंय तो मोक्षका कारण है। जे कल्याणके अर्थी हैं तिनिकूं ए च्यारि आराधना मुक्तिका मार्ग है, वह मुक्तिका मार्ग प्राणीनिकूं दुर्लभ है। मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषाय शुभ अशुभ योग प्राणीनिके कर्मबंधके कारण हैं, तिनमैं मिथ्यात्वके भेद पांच—एकांत, विपरीत, विनय, संशय अर अज्ञान अर अव्रतके भेद एकसौ आठ—संरंभ, समारंभ, आरंभ ए तीन, इनिकूं मनवचनकायकरि गुणिए तब

नव, अर नौकूं कृत कारित अनुमोदनाकरि गुणिए तब सत्ताईस अर सत्ताईसकूं क्रोध मान माया लोभतैं गुणिए तब एक सौ आठ होंय अर प्रमादके भेद विकथा च्यारि कषाय च्यारि इंद्रीनिके विषय पांच, निद्रा एक अर स्नेह एक ए पंदरा अर कषायके भेद च्यारि–क्रोध मान माया लोभ अर योगके भेद पंदरा–सत्य मनो योग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग ये मनके च्यारि, अर वचनके च्यारि, याही भांति वहां मनकी जायगा वचन कहना अर कायके सात औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र आहारक आहारकमिश्र अर कार्माण एवं योग पंदरा ए श्रावकके सम्यग्ज्ञान ही है नेत्र जिनिके तिनि कहे अर कर्मके मूलभेद आठ, उत्तर भेद एक सौ अडतालीस कहे अर बंधके भेद च्यारि प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, अर प्रदेशबंध। अष्ट कर्म अपने अपने स्वभावकूं लेयकरि तिष्ठै हैं, ज्ञानावरणका स्वभाव पटसमान, अर दर्शनावरणका द्वारपालसमान. अर वेदनीका शहत लपेटी खडगकी धार समान अर मोहनीका मदिरा समान अर आयुका खोडे समान, नामका चतेरे समान, गोत्रका कुम्हार समान अर अंतरायका भंडारी समान। ए कर्मनिके स्वभाव हैं, सो अपने अपने स्वभावकूं लीए बंध तो प्रकृतिबंध कहिए अर स्थितिबंध कहा कहिए सो सुनहु-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय अर अंतराय इनि च्यारि कर्मनिकी स्थिति तौ उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागर अर मोहनीयके भेद दोय, तिनिमैं दर्शनमोहनीकी तौ सत्तरि कोडाकोडी सागर अर चरित्रमोहनीकी चालीस कोडाकोडी सागर अर नामगोत्र दोउनिकी वीस कोडाकोडी सागर अर आयुकी उत्कृष्ट तेतीस सागर इह तौ कर्मनिकी उत्कृष्ट स्थिति कही अर जघन्य स्थिति नामकर्मकी तौ आठ मुहूर्त्त अर गोत्रहूकी आठमुहूर्त्त अर वेदनीकी बारा मुहूर्त्त अर और सबनिकी एक एक मुहूर्त्त इह जघन्यस्थिति कही अर मध्यके नाना भेद इह स्थितिबंधका स्वरूप कह्या अर अनुभाग बंधका स्वरूप सुनहु। अनुभाग कहिए रस–जैसे जैसे शुभ अशुभ परिणाम जीवके होंय तैसाही बंध होय, शुभके भेद च्यारि–गुड, खांड, मिश्री,

अमृत अर अशुभके भेद च्यारि-नींव, कंजीर, विष, हलाहल, जैसे जैसे परिणाम होंय तैसाही शुभ अशुभका बंध होय अर प्रदेशबंध कहिए–जीवके असंख्यात प्रदेश, तो एक एक प्रदेशपरि अनंत अनंत वर्गणा बैठी हैं, ए कर्म उदयकी प्राप्तिकरि बंधके अर फलके कारण हैं। सो श्रीभगवान, भरतेश्वर आदि सकल सभाकूं कहै हैं जो तुम संसारका कारण इह गृहस्थाश्रम ताहि तजिकरि मुनिराजका धर्म आराधो। कैसा है गृहस्थाश्रम ? दोष दुःख जरा जन्म मृत्यु पाप इनिका मूल है अर भयकारी है ॥ ३१३ ॥ तुम भक्तिवंत हो अर निकटसंसारी हो आगमके वेत्ता हो सो तीन गुप्ति, पांचसमिति, दश लक्षण धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहका जीतना, अर चारित्रके भेद पालना, यह छह प्रकारका यतीका धर्म भलीभांति जानकरि यथायोग्य पालहु। चारित्रके अनेक भेद हैं। उपेक्षा संयम कहिए शुद्धोपयोगरूप तीन गुप्ति विषैं आरूढ अवस्था अर अपहृतुत संयम कहिए पंच समिति साधनरूप शुभोपयोग अवस्था, सरागसंयम तथा वीतराग संयम अर पुलाक वकुश कुशील निग्रंथ अर स्नातक इत्यादि यतीके धर्म, सो तुम प्रमत्तगुण स्थान आदि ऊपरले गुणस्थानक तिनिविषैं तिष्ठ थके निश्चय व्यवहाररूप मोक्षका मार्ग आराधहु, वह मार्ग सर्वोत्तम है तथा जिनितैं यतीका धर्म न सधै ते गृहस्थका धर्म आराधहु। सो गृहस्थका धर्म सम्यग्दर्शन पूर्वक दान शील उपवास अरहंत पूजा आदि अनेक प्रकार है ॥ १४-१७ ॥ ग्यारह प्रतिमारूप श्रावकके व्रत हैं ते बुद्धिवंत पालहु, शुभ हैं परिणाम जिनिके, पाए हैं परम स्थान सप्त जिनि ऐसे बुद्धिवंत यति श्रावकके धर्म आराधहु। यतिका धर्म महाव्रतरूप है अर गृहस्थका अणुव्रतरूप है। सप्त परमस्थानके नाम—सज्जाति, सद्गृहस्थता, मुनिपद, इंद्रपद, चक्रवर्तिपद, अरहंतपद, निर्वाण पद। या भांति तत्त्वका समूह जाके गर्भमैं है ऐसा वचन ताके वक्ता श्रीभगवान तीर्थंकर, सो सभासहित भरतचक्री सर्व ही धर्मका स्वरूप धारता भया, तीन ज्ञान हैं नेत्र जाकै, अर सम्यक्त्वकी शुद्धताका भजनहारा, श्रावकके व्रतका पालनहारा देशव्रती भरतेश्वर सो जिनेश्वरकूं बंदिकरि कैलासतै अयोध्या आया, भरतक्षेत्रविषैं जेते नगर

हैं तिनिविषैं अयोध्या उत्तम है ॥ १८-२० ॥ अथानंतर तीन लोकका नाथ आदिनाथ धर्मक्षेत्र कहिए आर्यक्षेत्रविषैं धर्मकी वृष्टिकरि संतनिकूं निर्वाण फलकी प्राप्तिके अर्थि उत्तम धर्मका वीज सींचता भया। बारह सभा तिनिसहित विहार करते आयुकर्मके चतुर्दश दिन बाकी रहे तब कैलासविषैं आए, प्रभुका चौरासी लाख पूर्वका आयु, तामैं कुमारकाल वीस लाख पूर्व, अर राजअवस्था त्रेसठ लाख पूर्व, बाकी लाख पूर्व रहे तब मुनि भए। जब हजार वर्ष तप कीया अर हजार वर्ष तथा चौदा दिन घाटि लाख पूर्व भव्यजीवनिकूं धर्मोपदेश दीया। चौदादिन आयुके बाकी रहे तब वचनवर्गणा खिरवेसूं रही। पौषसुदी पूर्णमासीके दिन आप पद्मासन धारि तिष्ठे। जादिन प्रभू वचननिरोधकरि कैलासपरि विराजे ताही रात्रि भरत राजेंद्रकूं इह स्वप्न आया जो सुमेरुपर्वत दीर्घताकरि सिद्धक्षेत्रपर्यंत वध्या (वढा) अर अर्ककीर्ति कुमार युवराज ताकूं स्वप्नमैं इह अवलोकन भया—स्वर्गके शिखरतैं एक महौषधि वृक्ष भूतलविषैं आया था सो मनुष्यनिके जन्मरोग मेटि लोकके शिखर जायवेकूं उद्यमी भया अर चक्रवर्तीका गृहपति रत्न तानैं ऐसा स्वप्न देख्या जो ऊर्ध्वलोकतैं मध्यलोकविषैं एक कल्पवृक्ष आया था, सो जिनि जीवनिके लेयवेकी इच्छा थी तिनिकूं मनवांछित फल देकरि ऊर्ध्वलोककूं जायगा अर चक्रवर्तीका मुख्यप्रधान (मंत्री) तानैं इह स्वप्न देख्या जो लोकनिके भाग्यतैं एक रत्न द्वीप आया सो जिनिकै लेवेकी इच्छा थी तिनिकूं नाना प्रकारके रत्ननिके समूह देकरि गगनविषैं गमन करिवेकूं उद्यमी भया। अर भरतका सेनापति सो स्वप्नविषैं ऐसा विलोकता भया—जो अनंतवीर्यका धारक अद्भुत मृगराज, कैलासरूप वज्रके पींजरेकूं भेदकरि ऊर्ध्वविषैं उछलिवेकूं उद्यमी भया अर महालक्ष्मीवान राजा जयकुमारका पुत्र अनंतवीर्य हस्तिनापुरका धनी ताकूं स्वप्नविषैं ऐसा प्रतिभास्या जो अद्भुत चंद्र अनंतकलाका धारक जगतविषैं उद्योतकरि तारानिसहित ऊर्ध्वविषैं गमनकूं सन्मुख भया। भावार्थ—अनेक मुनिसहित मुनिनिका इंद्र ऊर्ध्वगमनकूं उद्यमी भया है अर चक्रवर्तीकी पट्टरानी सुभद्रा स्त्रीरत्न ताहि ऐसा स्वप्न दर्शन भया जो यशस्वती अर

सुनंदा दोऊ ऋषभकी रानी अर इंद्राणी शोचरूप बैठी हैं, अर काशीका पति चित्रांगद सो अैसा स्वप्न देखता भया जो अनुपम सूर्य पृथ्वीविषैं उद्योतकरि ऊर्ध्वकूं गया चाहै है ॥ ३२२-३३१ ॥ या भांति देखे हैं चक्रवर्त्यादि वडे पुरुषनि स्वप्न सो सूर्यके उदयविषैं सभामें उनका फल पुरोहितसूं पूछते भए तव पुरोहित कही स्वप्न अैसा फल दिखावै है जो आठूं कर्मनिका नाशकरि वहुत मुनिओं सहित आदीश्वर स्वामी लोकके शिखर पधारे। अैसे स्वप्नके फल पुरोहित भरतादिककूं कहे ताहीसमैं आनंदनामा एक पुरुष चक्रवर्तिपै आयकरि सव वृत्तांत कहता भया जो पौषसुदी पूर्णमासीके दिन श्रीजी कैलास पधारे अर दिव्यध्वनि होवैतैं रही। प्रभुकी ध्वनि जव होने न लागी तव सव सभाके लोग हस्तकमल जोरि मौन गहि रहे हैं जैसैं सरोवरीविषैं कमल मुद्रित होय जाय तैसें सभारूप कमल मुद्रित भासै हैं। वारह सभाके नाम—मुनियोंकी सभा कल्पवासिनी देवांगना आर्जिका अर श्राविका ज्योतिषी देवनिकी देवांगना व्यंतर देवनिकी देवांगना भवनवासी देवनिकी देवांगना व्यंतरदेव भवनवासीदेव ज्योतिषीदेव स्वर्गवासीदेव नरेंद्र आदि नर मृगेन्द्र आदि पशु ए वारह सभाके जीव मौनरूप हाथ जोडे खडे हैं ए समाचार आनंद नामा मनुष्यनैं कहे तव सुनतेही चक्रवर्ति प्रभुके निकट गया तीन प्रदक्षिणा दई वारंवार नमस्कारकरि अतिस्तुति करी अरि भक्तिकरि महापूजा करी, चौदह दिन तक सर्वज्ञका सेवा करी ॥ ३२--३७ ॥ माघ वदि चतुर्दशीके दिन सूर्य उदयसमें भगवान अभिजित नामा मुहूर्त्तविषैं अनेक मुनियों सहित पद्मासन धरि पूर्व सन्मुख तीसरे शुक्लध्यानकरि तीनों योग रोके, तीसरे शुक्लध्यान नाम सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति है अर चौथे शुक्लध्यानका नाम समुच्छिन्नक्रिया सो चौथे शुक्लध्यानकरि नाम, गोत्र, वेदनी अर आयु ए च्यारि अघातिया कर्म तिनिका अंत किया अ इ उ ऋ ऌ ए पांच ह्रस्व स्वर तिनिका उच्चारण करते जेता काल व्यतीत होय तेता काल चौदमें गुणस्थान तिष्ठि करि परमऔदारिक तैजस अर कार्माण अंतकरि सिद्ध पर्यायकूं प्राप्त भए। सम्यक्त्व, णाण, दंसण, वीर्य, सूक्ष्म, अवगाहन,

अगुरुलघु, अव्याबाध ए आठ गुण इनि आदि अनंत गुणनि करि पूर्ण जो सिद्धपद सो पाया एकसमैमें लोकके शिखर तनुवातवलयमैं तिष्ठे, चरमशरीरतैं किंचित् ऊन नित्य निरंजन अमूर्त्तस्वरूप पुरुषाकार विराजे परमानंदविषैं मग्न निरंतर लोकालोककूं विलोकते निजस्वरूपविषैं निवास कीया ताही समैं सर्व देव आयकरि निर्वाणकल्याणककी पूजा करिवेकी इच्छा जिनिकी सो प्रभुका शरीर परमपवित्र मोक्षका साधन महाशुचि महानिर्मल ताहि पालिकीविषैं आरोपणकरि ले चाले, अग्निकुमारनिका इंद्र ताके मुकुटतैं उपजी रत्नप्रभारूप अग्नि ताविषैं चंदन अगर कपूर केशर आदि सुगंध द्रव्यनिकरि दागक्रिया करी, घृत दुग्धादिकरि अग्नि प्रज्वलित करी, भगवानके शरीरका सुगंध ताकरि सब सुगंधरूप होय गये अनादिकालतैं ऐसा शरीर न पाया था जाकरि मुक्ति होय सो अनंतशरीरनिके अंत इह दिव्यशरीर पायाहूकूं तजिकरि आप परमधाम पधारे, शरीरका आकार अग्निके योगतैं भस्मभावकूं प्राप्त भया ॥ ४३-४६ ॥ जा अग्निकुंडमें भगवानका शरीर दग्ध कीया ता अग्निकुंडकी गंध पुष्पादिकरि देवनि पूजा करी अर दाहनी तरफ गणधरनिके शरीरनिका दाग कीया, अर वाम भागविषैं और केवलीनिके कायका दाग किया या भांति दागकरि ए तीन अग्नि पृथ्वीविषैं थापि करि देवनिके इंद्र भस्म लेकरि ललाटविषैं अर दोऊ भुजानिविषैं अर कंठविषैं अर हृदयविषैं महापवित्र जानि लगावते भए, भक्तिके रागकरि पूर्ण है चित्त जिनिके अर इह भावना करी जो हमहू पंचकल्याणकके भोक्ता होंहि अर हर्षथकी सब देव भेले होय करि आनंद नाटक करते भए अर सातवां उपासकाध्ययन अंग ताकी आज्ञा प्रमाण उत्तमकुलके श्रावक तिनिकूं देव कहते भए जो ए तीन अग्नि तीन कुंडविषैं थापि करि तीनूं संध्याविषैं पूजा करो। तीनौं अग्निके समीप चक्र छत्र अर जिनेंद्रकी प्रतिमा थापि करि मंत्रपूर्वक तीनूं अग्निविषैं प्रासुक द्रव्यनितैं होमकरि उत्तम गृहस्थ इनि अग्नि कुंडनिकूं यत्नतैं राखहु। जहांलौं सचित्तका त्याग नाहीं तहांलौं उत्तमकुलके श्रावकनिकूं अग्निहोत्र करना ए तीनूं अग्नि बुझिवा न देनी बहुरि पांचमी प्रतिमातैं

सचित्तका त्यागी होय तब अग्निहोत्र नाहीं या भांति श्रावकके धर्म पालि तुम मुनि होउ। इंद्रादिक देव इह ब्राह्मण क्षत्री वैश्यनिकूं कहते भए, निर्वाण कल्याणकका समय साधि देव तौ देवलोक गये॥ ४७-५४॥ अर स्नेह थकी भरतेश्वरके इष्ट वियोगकरि शोकरूप अग्नि प्रज्वलित हुई यद्यपि भरतेश्वर महा ज्ञानवंत हैं तथापि शोकरूप अग्नि इनिके चित्तकूं दाह उपजावती भई, तब वृषभसेन गणधर शोक दूर करनेकी इच्छाकरि सबनिकी पूर्व भवावलि कहिवेकौं आरंभ करते भए। गणधर देव कहैं—अहो भरत! भगवान ऋषभदेव पूर्वभवविषैं प्रथमही जयवर्मा भए अर दूजे भव महावल विद्याधर भए अर तीजे भव ललितांग देव भए अर चौथे भव राजा वज्रजंघ भए अर पांचवे भव भोगभूमिविषैं उपजे अर छठे भव श्रीधर देव भए अर सातवें भव राजा सुविधि भए अर आठवें भव अच्युतेंद्र भए अर नवमें भव महाविदेहमें वज्रनाभि चक्रवर्ती भए अर दशवें भव सर्वार्थसिद्धि गए तहांतें चयकरि सर्व इंद्रनिकरि वंदित ऋषभ जिनेंद्र भए॥ ५५-५९॥ ए तौ श्रीऋषभदेवके भव कहे अव राजा श्रेयांसके भव सुनहु—पहले भव धनश्री दूजे भव निर्नामिका तीजे भव स्वयंप्रभा देवी चौथे भव श्रीमती पांचवे भव भोगभूमिविषैं युगलनी छठे भव सम्यक्त्वके प्रसादतें दूजे स्वर्ग स्वयंप्रभ देव सातवें भव राजा सुविधिका पुत्र केशव आठवें भव सोलवैं स्वर्ग प्रतींद्र नवमें भव धनदत्त वज्रनाभि चक्रवर्तिका गृहपति रत्न अर दशवें भव सर्वार्थसिद्धि विषैं अहमिंद्र अर ग्यारवें भव राजा श्रेयांस दानतीर्थके नायक जिनिके घर भगवान ऋषभ आहार लीया पंचाश्चर्य भए दानतीर्थके कर्मभूमिकी आदि प्रथम प्रवर्तक भए॥६०-६२॥ अव तिहारे भव सुनहु—पहले भव राजा अतिगृद्ध दूजे भव चौथे नरक तीजे भव सिंह चौथे भव दिवाकरप्रभ नामा देव पांचवें भव वज्रजंघका मतिवर नामा मंत्री छठे भव ग्रैवेयकविषैं अहमिंद्र सातवें भव वज्रनाभि चक्रीके छोटे भाई सुवाहु आठवें भव सर्वार्थसिद्धिविषैं अहमिंद्र अर नवमें भव तुम ऋषभ देवके पुत्र षट्खंडके अखंडपालक भरतनामा चक्रवर्ति॥ ६३-६४॥ अब वाहुवलीके भव सुनहु-पहले भव राजा प्रीतिवर्द्धनका सेनापति दूजे भव भोगभूमिविषैं जुगलिया

तीजे भव प्रभंकर नामा देव चौथे भव राजा वज्रजंघका अकंपन नामा सेनापति पाचवें भव ग्रैवेयकविषैं अहमिंद्र छठे भव वज्रनाभिका छोटा भाई महाबाहु सातवें भव सर्वार्थसिद्धिविषैं अहमिंद्र आठवें भव नाभिनंदनका पुत्र बाहुबली प्रथम कामदेव ॥ अब मेरे भव सुनहु—प्रथम भवविषैं राजा प्रीतिवर्धनका मंत्री दूजे भव भोगभूमियां तीजे भव कनकप्रभनामा देव चौथे भव राजा वज्रजंघका आनंदनामा पुरोहित पांचवें भव ग्रैवेयकविषैं अहमिंद्र छठे भव वज्रनाभिका छोटा भाई पीठ सातवें भव सर्वार्थसिद्धिविषैं अहमिंद्र आठवें भव मैं वृषभसेन नामा तिहारा छोटा भाई वृषभेश्वरका आदि गणधर। अब अनंतविजयके भव सुनहु—पहले भव राजा प्रीतिवर्द्धनका पुरोहित दूजे भव भोगभूमियां तीजे भव प्रभंजननामा देव चौथे भव राजा वज्रजंघका धनमित्रनामा राजश्रेष्ठी पांचवें भव ग्रैवेयकविषैं अहमिंद्र छठे भव वज्रनाभि चक्रवर्त्तिका छोटा भाई महापीठ सातवें भव सर्वार्थसिद्धिविषैं अहमिंद्र आठवें भव श्रीऋषभदेव अनंतविजय नामा पुत्र सोऊ गणधर भया। अब महासेनका भव सुनहु—पहले भव उग्रसेन दूजे भव सिंह तीजे भव भोगभूमिया चौथे भव चित्रांगद नामा देव पांचवे भव वरदत्त नामा राजा छठे भव सोलवें स्वर्ग देव सातवें भव वज्रनाभि चक्रवर्तिका विजय नामा भाई आठवें भव सर्वार्थसिद्धिविषैं अहमिंद्र अर नवमें भव श्रीआदिनाथका पुत्र महासेन कर्मनिकी महासेनाके जीतवेविषैं प्रबल सोहू गणधर भया ॥ ३६७—३७१ ॥ अब श्रीषेणके भव सुनहु—पहले भव हरिवाहन दूजे भव सूकर तीजे भव भोगभूमिविषैं जुगलिया चौथे भव मणिकुंडली नामा देव पाचवें भव वरसेन नामा राजा छठे भव सोलवें स्वर्गदेव सातवें भव वज्रनाभि चक्रवर्तिका भाई वैजयंत आठवें भव सर्वार्थसिद्धिविषैं अहमिंद्र अर नवमे भव तिहारा भाई श्रीषेण लक्ष्मीकरि सेयवेयोग्य ॥ ३७१-७३ ॥ अब गुणसेनके भव सुनहु—पहले भव नागदत्त दूजे भव बांदर तीजे भोगभूमियां चौथे भव मनोहर नामा देव पांचवें भव राजा चित्रांगद छठे भव सोलवें स्वर्ग सामानिक जातिका देव सातवें भव वज्रनाभि चक्रवर्तीका छोटा भाई जयंत, आठवें भव सर्वार्थसिद्धिविषै अहमिंद्र अर नवमें भव गुणसेन नामा तिहारा

छोटा भाई, महागुणवान गुणसमुद्र जो आदिजिन, तिनिका पुत्र। अब जयसेनके भव सुनहु—पहले भव लोलप नाम युवा पापरीका वेचनहारा गिदोडी, दूजे भव न्योला, तीजे भव भोगभूमि, चौथे भव मनोरथ नामा देव, पांचवे भव शांतमदन नामा राजा छठे भव सोलवै स्वर्ग सामानिक जातिका देव, सातवें भव वज्रनाभिका छोटा भाई अपराजित, आठवें भवविषै सर्वार्थसिद्धिविषै अहमिंद्र अर नवमें भव जयसेन नामा आदिपुरुषका पुत्र मेरा छोटा भाई। या भांति भवसंकटविषै ए प्राणी इष्टवियोग अर अनिष्टसंयोग तिनकरि सदा खेदखिन्न हैं, सबही जीवनिकै इष्ट वियोग लगिरह्या है। तू ऐसी जानताहू कहा व्याकुल-हृदय भया, दूरि भया अष्टकर्मका संबंध, वे भगवान निर्वाणकूं प्राप्त भए, अनंतसुखकी प्राप्ति भई, सो आज तो परम आनंदका दिन है, हर्षविषै विषाद काहेका ? अर ऋषभदेवके सकल पुत्र चरमशरीरी हैं, बहुरि जन्म नाहीं। वह भगवान सकलका जाननहारा बुद्धिका पारगामी ताके सत्संगतैं सकल पापमलका लोप कीया अर पाया है आत्मरूप जिनि ऐसे हम तुम सकल भाई हैं। हे चक्रवर्ति ! तुमहू थोरे ही दिनमैं श्रीऋषभके धामकूं प्राप्त होउगे वह पद मिथ्यादृष्टिनिकूं अलभ्य है। कैसा है वह पद ? अनुपम है, सारभूत सुख है जाविषै। अहो ! भरत ! इष्टवर्गकी मृत्युविषै शोक होय है इह बात सत्य है परंतु जे शुभाशुभ कर्म-निकरि बंधे हैं अर अनेक जन्मकी पंकतिविषै जन्ममरण करै हैं तिनिका सोच होय तो होहु। वे भगवान भवभ्रमणके निवारणहारे, मेट्या है जगतका संबंध जिनि, अनेक भवतैं प्रार्थना करतैं जो वस्तु स्वयमेव प्राप्त भई, ताविषै बुद्धिवान काहेका सोच करै ? मित्रनिका इह धर्म नाहीं-जो मुक्त भएका सोच करै, मित्र तौ आनंद मानैं, शत्रु होय सो सोच करै प्रभुके आठूं ही कर्म दुष्ट वैरी मूलतैं उखरि गये अर कर्मनिके कारण अशुद्ध भाव सकल गए अर सिद्धनिके आठ गुण तिनकरि मंडित भए। इहां प्रभुका कहा गया ? जो जायवे योग्य वस्तु थी सो गई तातैं हे निधिके नाथ ! तुम मोह तजहु अर शोकके जीतिवे अर्थि निर्मल बुद्धि करहु सो गुरुकी देहका वियोगविषै तुम भारी सोच करो हो तौ गुरुका शरीर भस्म क्यों कीया ?

अर इंद्रादिक सर्व देव वल्भा है राग जिनिकै महा अनुरागी प्रभुका जन्म भया ताके प्रथमहीतैं नाना प्रकारकी सेवा करनहारे ते शरीरकूं दागिकरि आनंद नाटक अधिक उत्सवसूं क्यों करते भए ? आजि हर्षका दिन है, सोचका दिन नाहीं, अर जो कदाचि तुम इह जानौगे जो मैं विश्वनाथकूं दृष्टि करि नाहीं देखूहूं अर उनके वचन नाहीं सुनूहूं अर उनके चरणारविंदविषै नम्रीभूत होता जो मुकुट ताहि उनके नखनिकी कांतिकरि ज्योतिरूप नाहीं करसकूंहूं तातैं स्नेहके वश करि अत्यंत शोक रूप हौं ऐसी विचारो हो तो इह मोटी भ्रांति है। गई वस्तुविषै ताकी प्राप्तिके अर्थि तिहारी प्रार्थना है सो वृथा है, अब वह वस्तु दृष्टि-गोचर न होय ॥३८३॥ अहो चक्रेश्वर ! तुम तीन ज्ञानके धारक, अर तीन भुवनका गुरु तिहारा पिता, तुम ऐसे सर्वोत्तम, मोह करि रच्या जो स्नेह ताकरि अपनी उत्कृष्टताकूं लोपो हो, तिहारी उत्कृष्टता इंद्रहूतैं अधिक है, वा पहिली तुम मुक्त होहुगे, सो कहा न जानूहो। तुम ऐसे विवकी, सो शोक करते लज्जावान न होहु, तुमकूं शोक योग्य नाहीं। या जगतविषै इष्ट कहा ? अर अनिष्ट कहा ? सब ही भ्रम है, इह मूढ प्राणी वृथा अविवेकित्वपना करि काहू वस्तुसूं द्वेष करै है, अर काहूकी वांछा करै है, काहूकूं इष्ट जानै है, अर काहूकूं अनिष्ट मानै है अर कबहूं इष्टकूं अनिष्ट जानै है अर अनिष्टकूं इष्ट मानै है सो याही इष्ट अनिष्ट विकल्प करि पापका बंध होय है. ताकरि कुगतिविषै भ्रमै है अर या भव वनविषै भव्यहू अभव्य समान भया भ्रमण करै है, कुमार्गविषै है प्रवृत्ति जाकी, धनवान है तोऊ निर्धनकी नाईं दुखी होय रह्या है। काललब्धिविना भव्यहूकै भवधारण होय है सो काल आदितैं रहित अनादितैं है अर इह संसार अचिंत्य दुःखनिकरि भर्या है, धिक्कार या संसारकी अवस्थाकूं तातैं हे भव्योत्तम ! संसारविषै पंडितनिकूं सोच न करना। वस्तुका स्वभाव ऐसा ही है जीवनिके देह थिर नाहीं तातैं अथिर वस्तुका सोच कहा ? या प्राणीकै अनंतकाल परिभ्रमण करतैं जीवनिसूं अनेक संबंध भए सो तुम कहा न जानौ हो ? जान्या है विश्वका स्वरूप जानै ऐसा तू ज्ञानी सो वृथा अज्ञानी जीवनिकी नाईं कहा सोच करै ? ए भगवान देवादि

देव जगतके पति तिनहूके शरीरादिक कर्मजनित हैं सो कदाचि न रहैं। जे विवेकी हैं ते इनिकी शरीरादिकनिकूं त्याज्य ही मानै हैं, इनिविषै प्रीति नाहीं करै हैं। पहिली वे भगवान दृष्टिगोचर हुते अब चित्तविषैं वर्तैं हैं तातैं सोच कहा ? तू अपने चित्तविषै सदाकाल सर्वेश्वरकूं देखि। वे प्रभु सदा सर्वगत हैं या भांति मनविषै यथार्थ चिंतवन करता शोकरूप अग्निकूं निर्मल ज्ञानरूप जलकरि बुझाय ऐसे वचन गणधर देव कहे, तब चक्री ताके वचन सुनिकरि शांतभावकूं प्राप्त भया जैसैं दावानल करि दग्ध भया वृक्ष, नवीन मेघके जलकरि शांत होय ॥ ३९० ॥ गुरुके शोककरि उपजी चिंता ताहि तजिकरि भरतेश्वर गणधरकूं नमस्कार करि अति स्तुति करता भया, नम्रीभूत भया है मुकुट जाका अर निकट आय लागा है आत्मकल्याण जाकै सो अपने विस्तरती जो भोगतृष्णा ताहि अत्यंत निंदतासंता मोक्षका अभिलाषी महाविभूतिकरि अपने नगर आया ॥ ३९१ ॥ अथानंतर एक दिन मनुष्यनिका इंद्र उज्ज्वल दर्पणविषैं अपना मुखकमल निरखता संता, सो एक सुफेद केश देख्या। इह सुफेद केश परमसुखका स्थानक जो रिषभदेवका स्थल तहांतैं मानूं दूत आया है सो वाहि देखिकरि गलि गया है मोह जाकै अपने राज्यकूं जीर्णतृणवत् जानिकरि त्यागकूं उद्यमी भया, उपज्या है आत्मबोध जाकै, सो अति उछाहरूप भया संता आत्महित अंगीकार करिवेका अभिलाषी सो अपना वडा पुत्र अर्ककीर्ति ताहि अपनी लक्ष्मी देता भया, अविनाशी लक्ष्मीकी है इच्छा जाकै, जान्या है सकल तत्त्व जानें ऐसा भरत मोक्षमार्गका अनुरागी गुरुके निकट संयमकूं धारता भया सो संयम हीनपुण्यी जीवनिकूं दुर्लभ है, सकल प्रपंचतैं रहित निर्विकल्प है, जाविषैं कामक्रोधादिकका लेस नाहीं, अर पंचमहाव्रत पंचसमिति आदि अठाईस मूलगुणनिकरि पूर्ण है मोक्षमार्गकी वटसारी (कलेवा—पाथेय) है, जान्या है समीचीन अर्थ जिनि ऐसे विवेकी पुरुष संयम टारि और कहा प्रार्थना करैं ॥ ३९४ ॥ तीन ज्ञान तौ याके पहिलीही हुते अर मुनि होतैंही तत्काल मनःपर्ययज्ञान उपज्या अर ताही समैं क्षपकश्रेणी मांडी सो तत्काल केवल उपज्या। ऐसी भव्यता परम

दुर्लभ है। भरतके भाव और कौनकैं होंय। जीवनिकूं या संसारविषैं निर्वाणकी प्राप्ति अति दुर्लभ है, भरतके परिणामनिकी विशुद्धता अति आश्चर्यकारी है। पहिली गृहस्थ था तब छहखंडकेही सुर नरनिकरि पूज्य था अब मुनि होय केवली भया तब इंद्रादिक सकल देवनिकरि बंदनीक तीन लोकका नाथ भया, जो दुर्धर तप धारनेकूं समर्थ होय तो तपकरि कहा सिद्ध न होय? ॥ ३९६ ॥ सो भरत केवली अनेक मुनि तेई भए हंस तिनिकरि बंदनीक, तीन लोकका नाथ, शरद ऋतुके मेघकी नाईं धर्मरूप वृष्टि करता संता भव्यजीवरूप धान तिनिकूं पूर्णताकी प्राप्ति करता भया अनेक आर्य देशनिविषैं विहार करता भया भव्यजीवनिकूं कृतार्थ करता भया। कैसा है भरतरूप शरदका मेघ? आकाशविषैं किया है निवास जानैं अमल उत्तुंग है वृत्ति जाकी ॥३९७॥ चिरकाल विहारकरि भव्यनिका समूहका उपकारी जब आयु अंतर्मुहूर्त रही, तब करी है मनवचनकायके योगनिकी निवृत्ति जानैं, औदारिक तैजस कार्मण तीन शरीर अर च्यारि अघातिया कर्म तिनिका अभाव करि लोकशिखरकूं गमन कीया। कैसा है भगवान भरत? सारभूत अनंत गुण तेई हैं मूर्ति जाकी, सो महादेदीप्यमान तीन लोकका शिरोमणि सुखनिकी निधि अविनश्वरपदविषैं तिष्ठ्या अर वृषभसेन गणधर आदि मुनिनिमैं मुख्य सर्वजीवनिके मित्र महाशांतचित्त अठाईस मूलगुण अर चौरासी लाख उत्तरगुणनिकरि पूर्ण महागुणवान कालके अनुक्रमकरि निर्वाणकूं प्राप्त भए, सो निर्वाण अनंतसुखरूप सदा नित्य है, सत्यरूप है, जहां संसारकी झूठी मायाका लवलेश नाहीं, अनंत अविनाशी लक्ष्मीकरि भरपूर है। भगवान श्रीऋषभदेव तुम भक्तजीवनिकूं कल्याणके कर्ता होहु, कैसे हो तुम? तीन लोकका गुरु श्रीऋषभदेव ताहीका है आश्रय जिनिकै. कैसा है ऋषभदेव? च्यारि आराधना सोई है सेना जाकै, जो प्रभू सेनापतिकी नाईं, कर्मरूप शत्रुनिकूं जुदे जुदे हणता भया अर जानैं अपना देदीप्यमान निर्मल रूप पाया जैसैं पाषाणतैं कनक न्यारा होय तैसैं कर्मकलंकतैं न्यारा भया अर कर्मनिकूं जीतनहारा जाके चरण अति अनुपम तिनिकूं इंद्रादिक देव तेई भए भंवर सो अति

अनुरागसूं सेवते भए। जो भगवान कुलकरनिमैं पंद्रहवें अर तीर्थंकरनिमैं आदि जिन, राज्यविषैं मनुष्यनिकूं आजीविकाकी विधि बतलाई, मुनि होय मुक्तिका मार्ग प्रकास्या, प्रभुकै आवरणतैं रहित केवलज्ञान प्रगट भया सो अविनासी लक्ष्मीका नाथ, भरत चक्रवर्तीका पिता आदिपुरुष तुम भव्यजीवनिकूं अविनासी लक्ष्मी देहु ॥ ४०१ ॥ इक्ष्वाकुवंशका तिलक, तीन लोकका नाथ, श्रीऋषभदेव तुम भव्यजीवनिकूं निजपरका जाननहारा जो सम्यक् ज्ञान ताकी सिद्धि करहु, कैसा है आदिपुरुष ? प्रगट दिखाया है, विस्तीर्ण सप्त तत्त्वनिका समूह जानैं अर सत् समीचीन धर्मरूप तीर्थके मार्गके पालिबेका मूलकारण है ॥ ४०२ ॥ वह राजा नाभिका नंदन मरुदेवीकूं कृतार्थ करनहारा, जिनधर्मका धोरी, भव्यनिके भव हरि शिवपदका दायक होहु ॥ ४०३ ॥ जो समस्त पंडितनिकरि पूज्य है व्यवहारनयकरि राजा नाभिका पुत्र है, तोऊ निश्चयकरि स्वयंभू है, काहूकरि उपज्या नाहीं, स्वतः सिद्ध अनादि अनिधन है अर समस्त परिग्रहरहित है तोऊ सबनिका स्वामी है, जाहि जगत सेवै है, जो प्रभु रागद्वेषरहित वीतराग मध्यस्थभावका धारक है तोऊ भव्यनिका समूहका उपकारी कह्या अर अपने निजगुण निजविभूति काहूकूं दे नहीं, जीवनिके गुण अर जीवनिकी सत्तारूप विभूति इनिकी इनिमैं दिखावै है तातैं दानरहित कहिए है तोऊ स्वर्ग मुक्तिका दाता सर्व कामनाका पूर्ण करणहारा, सर्वका स्वामी जीवमात्रका मित्र, पंडितनिकरि तथा देवनिकरि आराधिवेयोग्य हैं चरण जाकै ऐसा विश्वंभर विश्वनाथ चक्रनाथका पिता सो तुम भव्यजीवनिकूं शांतिके अर्थि होहु ॥ ४०४ ॥

इति श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे प्रथमतीर्थंकरपुराणे सैंतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ४७ ॥

श्रीआदिपुराण वचनिका

(समाप्त)

